विराटपर्व

विषय सूची

अध्याय पृष्ठ

पृष्ठ

अध्याय

विराटपर्व

पहला अध्याय

पाण्डवों का अज्ञातवास के लिये सलाह करना

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने पूँछा—हे वैशम्पायन जी! हमारे पूर्व पितामहों ने विराट नगरी में दुर्योधन के भय से पीड़ित अज्ञातवास किस तरह किया? हे ब्रह्मन्! महाभागा, पतिव्रता, ब्रह्मवादिनी तथा दुःखिनी द्रौपदी ने किस तरह छिप कर अज्ञातवास का समय बिताया।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! विराट नगरी में पाण्डवों ने छिप कर, जिस तरह अज्ञातवास का समय बिताया था उसका वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिये। धर्म देव से वर पा कर युधिष्ठिर आश्रम में आये और वहाँ ब्राह्मणों को सब वृत्तान्त सुनाया। सब वृत्तान्त सुना देने के उपरान्त अरणी दण्ड ब्राह्मण को दे दिया। इसके उपरान्त महामना धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों को एकान्त में बुला कर उनसे बोले। हम लोगों का राज्य गये आज बारह वर्ष बीत गये। अब महाकष्टकारी तेरहवाँ वर्ष लगेगा, जिसे हम लोगों को बड़ी सावधानी के साथ छिप कर बिताना होगा। हे साधु कुन्तीपुत्र अर्जुन! इस तेरहवें वर्ष में हम किसी ऐसी जगह गुप्त रूप से रहें जहाँ हमें कोई पहचान न सके।

अर्जुन बोले—हे राजन्! यद्यपि धर्मदेव के बरदान के प्रभाव से, हम पृथिवी पर कहीं भी अज्ञातरूप से वास कर सकते हैं; तो भी मैं गुप्तवास के

लिये कुछ छिपने के लायक रमणीक स्थान बतलाता हूँ। इनमें आप किसी को पसन्द कर लें। कुरु देश के आस पास वाले देश पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, कुन्तराष्ट्र, सुराष्ट्र, और अवन्ति आदि देश बहुत सुन्दर और धनधान्य से पूर्ण हैं। इनमें हे राजन्! किस देश में आप वास करना अच्छा समझते हैं? आप जहाँ बतलावें वहीं यह वर्ष बिताया जाय।

युधिष्ठिर बोले—हे महाबाहो! सब प्राणियों के अधिपति भगवान् धर्म ने जैसा कहा है, वैसा ही करना उचित है। उसके विपरीत चलने में लाभ नहीं है। अतः हम सब को इकट्ठें रहने के लिये सुखदायी और रमणीक स्थान का चुनाव कर के उस स्थान में निर्भय हो कर रहना चाहिये। तुम्हारे बतलाए देशों में मत्स्य देश का राजा धर्मात्मा, उदार, वृद्ध, पाण्डवों से सदा प्रीति रखने वाला और पाण्डवों का भक्त है। हे प्रिय भारत! हम लोगों को राजा विराट के यहाँ काम करते हुए यह वर्ष बिताना उचित है। हमें अब यह निश्चित करना चाहिये कि, वहाँ चल कर हममें कौन क्या काम करेगा? अर्जुन ने पूँछा—हे राजन्! उस राजा के यहाँ रह कर आप कौन सा काम करके सुख से रहेंगे? हे पाण्डवश्रेष्ठ! आप तो बड़े कोमल स्वभाव वाले, धर्मात्मा, लज्जाशील और सच्चे पराक्रमी हैं। इस विपत्ति के समय आप क्या काम करेंगे? साधारण मनुष्यों जैसे कष्टों को पाना, हे राजन्! आपके लिये सर्वथा अनुचित है। किन्तु अब इस विपत्ति के समय आप क्या करेंगे?

युधिष्ठिर बोले—हे कुरुवंशियों! विराट राजा के यहाँ जा कर जो काम मैं करना चाहता हूँ सो सुनो। मैं राजा विराट के सदस्य बनूँगा और द्विजरूप में अपना नाम कङ्क बतलाऊँगा। चौपड़ के रंग बिरंगे कोष्ठकों पर लाल, पीली, हरी और नीली गोटों और हाथीदाँत के पाँसों से राजा विराट और उनके सगे सम्बन्धियों को चौपड़ खिला कर, मैं प्रसन्न करूँगा, इससे कोई भी मुझे पहचान न सकेगा। यदि राजा पूँछेंगे कि, तुम

कौन हो: तो मैं बतलाऊँगा कि, मैं राजा युधिष्ठिर के साथ खेलने वाला उनका प्यारा मित्र हूँ। विराट की नगरी में जा कर, मैं जो करूँगा सो मैंने बतला दिया; अब हे वृकोदर! बतलाओ तुम क्या काम कर के विराट की नगरी में अज्ञातवास करोगे?

द्वितीय अध्याय

भीम और अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने अपने गुप्तरूप से रहने का वर्णन

भीमसेन ने कहा—हे भारत! राजा विराट के समीप जा, मैं अपने को बल्लव नामक रसोइया बतलाऊँगा और उनके यहाँ रसोइये की नौकरी करूँगा। मैं रसोई बहुत अच्छी बनाता हूँ। पुराने पुराने चतुर रसोइयों की अपेक्षा मैं अच्छे पकवान बनाना जानता हूँ। इन बढ़िया पकवानों को खिला कर, मैं राजा को प्रसन्न करूँगा और लकड़ियों के बड़े बड़े गट्ठे भी ले आया करूँगा। यदि राजा मुझे कोई अमानुषिक कर्म करने की आज्ञा देंगे, तो मैं उसे पूरा कर के सब का आदरपात्र बनूँगा। इससे राजा के अन्य सेवक लोग राजा के समान ही मुझे भी मानेंगे और इससे मैं खाने पीने के सामान के भण्डार का स्वामी बना रहूँगा। हे राजन्! यदि किसी बलवान हाथी या बलवान बैल को वश में लाने के लिये मुझसे कहा जायगा तो मैं उन्हें भी पकड़ कर वश में करूँगा। सभा में यदि कोई पहलवान मेरे साथ कुश्ती लड़ना चाहेगा तो उसके साथ लड़ कर, मैं राजा को प्रसन्न करूँगा। कुश्ती में, मैं उन पहलवानों की किसी दाँव से जान न लूँगा, बल्कि उन्हें पृथिवी पर इस तरह पटकूँगा, जिससे वे मरे नहीं। कभी राजा ने यदि पूँछा कि, मैं कौन हूँ तो मैं अपने को राजा युधिष्ठिर का आरालिक अर्थात् मस्त हाथियों से लड़ने वाला गोविक अर्थात् बड़े बड़े बली बैलों को वश में करने वाला, सूपकर्ता

अर्थात् रसोइया और नियोधक अर्थात् कुश्ती लड़ने वाला बतलाऊँगा। हे राजन्! इस तरह विराट की नगरी में छिपे छिपे रह कर, मैं अपने बुद्धिबल से अपनी रक्षा करूगा।

युधिष्ठिर बोले—खाण्डव वन को जलाने के लिये अग्नि ब्राह्मणवेश में श्रीकृष्ण के साथ बैठा हुआ जिस महापराक्रमी अजित और महाबाहु अर्जुन के पास गया था; वह कुन्तीपुत्र अर्जुन विराट की नगरी में किस तरह रहेगा? जिसने अकेले ही रथ पर चढ़ कर इन्द्र को हरा कर और दैत्यों तथा पन्नगों को मार कर अग्निदेव को तृप्त किया था, जिसने राजा वासुकि की बहन का हरण किया था और जो महाबलवान् शत्रुओं का सामना करने में श्रेष्ठ है, वह अर्जुन क्या काम करेगा? तपाने वालों में जैसे सूर्य, मनुष्यों में जैसे ब्राह्मण, सर्पों में जैसे सब से जहरीला साँप और तेजस्वियों में जैसे अग्नि श्रेष्ठ हैं, आयुधों में जैसे वज्र, बैलों में जैसे ऊँचे कन्धे वाला बैल, ह्रदों में समुद्र, मेघों में जैसे पर्जन्य श्रेष्ठ है, नागों में धृतराष्ट्र, हाथियों में ऐरावत, प्यारों में पुत्र और मित्रों में जैसे स्त्री श्रेष्ठ है, हे वृकोदर! उपरोक्त वस्तुएँ जैसे अपने अपने जाति में श्रेष्ठ हैं, उसी तरह धनुषधारियों में युवा अर्जुन श्रेष्ठ है। इन्द्र और वासुदेव के समान कान्ति वाला, गाण्डीव धनुषधारी और श्वेत अश्वों का रथ वाला अर्जुन विराट नगरी में क्या करेगा? जिसने इन्द्र के पास पाँच वर्ष रह कर मनुष्यों को आश्चर्य में डालने वाली अस्त्रविद्या सीखी थी, जो दिव्य अस्त्रों को पा कर, देवताओं के समान शोभित हुआ है, जिसे मैं बारहवाँ रुद्र, तेरहवाँ आदित्य, नवमाँ वसु और दशवाँ ग्रह मानता हूँ, जिसके दोनों बाहु समान और लंबे हैं और रोदे को चढ़ाते चढ़ाते जिसके हाथों में ऐसी ठेठें पड़ गयी हैं जैसे कन्धों पर जुआ रखे जाने से बैलों के पड़ जाती हैं, जो पर्वतों में हिमालय के समान, जो नदियों आदि (जलाशयों) में समुद्र के समान, जो देवताओं में इन्द्र के समान, जो वसुओं में अग्नि के समान है, जो पशुओं में सिंह के समान, जो पक्षियों में गरुड़ के समान है; वही श्रेष्ठ अर्जुन विराट नगरी में क्या करेगा?

अर्जुन बोले—हे राजन्! राजा विराट के पास जा कर, मैं अपने को हिजड़ा बतलाऊँगा। हे राजन्! धनुष चढ़ाते चढ़ाते मेरे हाथों में जो ठेंठें पड़ गयी हैं, उनको छिपाना मुश्किल है। मैं उन ठेंठों को हाथीदाँत की चूड़ियाँ पहन कर छिपाऊँगा और कानों में अग्नि के समान चमकते हुए कुण्डल पहनूँगा। शङ्ख के कड़े हाथों में पहन और जूड़ा बाँध कर मैं अपना रूप हिजड़ों जैसा बना कर, अपना नाम बृहन्नला बतलाऊँगा। स्त्रियों की तरह बार बार मैं पुराने राजाओं के चरित्र कह कर राजा और अन्तःपुर वालों को प्रसन्न करूँगा। हे राजन्! राजा विराट के अन्तःपुर और नगर की स्त्रियों को तरह तरह के गीत गाना बाजे बजाना और नृत्य सिखलाऊँगा। प्रजा के किये अच्छे कामों की प्रशंसा करता हुआ मैं नपुंसक के रूप में अपने को छिपाये रहूँगा। राजा के पूँछने पर मैं कहूँगा कि, राजा युधिष्ठिर के महल में मैं द्रौपदी की सेविका था। हे राजेन्द्र! राख में छिपी हुई अग्नि की तरह मैं, राजा विराट के महलों में अपने यथार्थ रूप को छिपा कर रहूँगा।

तृतीय अध्याय

नकुल, सहदेव और द्रौपदी का युधिष्ठिर से अपने अपने गुप्तरूप में रहने का वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ और पुरुषों में महाबलवान् अर्जुन इतना कह कर जब चुप हो गये; तब महाराज युधिष्ठिर अपने दूसरे भाइयों से पूँछने लगे। युधिष्ठिर ने पूँछा—हे नकुल! तुम सुकुमार हो, वीर हो, सुन्दर हो और सुख भोगने के योग्य हो। तुम वहाँ चल कर, क्या काम कर के समय बिताओगे? नकुल ने उत्तर दिया। मैं राजा विराट के यहाँ अश्वबन्ध बन कर रहूँगा। मैं रक्षा करने के काम में बड़ा निपुण हूँ और घोड़ों के सम्बन्ध में मुझे पूरा ज्ञान है। अश्वशिक्षा और

अश्वचिकित्सा में मैं निपुण हूँ और आपकी तरह मुझे भी घोड़े बड़े प्रिय हैं। मैं ग्रन्थिक नाम धारण कर, राजा विराट् के यहाँ अश्वपालन का काम करूँगा। राजा विराट् या उनके नगर के लोगों से पूँछे जाने पर, मैं बतलाऊँगा कि, मैं पहले पाण्डवों के यहाँ घोड़ों का अध्यक्ष था! इस तरह बातें बना कर, मैं विराट् के नगर में छिपा रहूँगा। युधिष्ठिर बोले—हे सहदेव! तुम विराट् नगर में क्या काम कर के अपने को छिपाओगे? सहदेव ने उत्तर दिया—मैं राजा विराट के यहाँ गोसंख्याता या गोरक्षक का काम करूँगा। मैं उद्धत गौओं को सीधी करने, गौओं को दुहने और उनकी परीक्षा करने में कुशल हूँ। वहाँ मैं तन्त्रिपाल नाम धारण कर अपने को गुप्त रखूँगा आप मेरी तरफ़ से निश्चिन्त रहें। हे राजन्! आपने पहले जब गौओं का काम मुझे सौंपा था, तब मेरी चतुराई आप देख ही चुके हैं। गौओं के मङ्गलचिह्नों तथा अन्य बातों को मैं खूब जानता हूँ। इसके अतिरिक्त गौ सम्बन्धी और भी अनेक विषयों से मैं परिचित हूँ। हे राजन्! मैं प्रशंसनीय उन बैलों के लक्षणों को भी पहचानता हूँ, जिनकी पेशाब सूँघने ही से वन्ध्या स्त्री के गर्भ रह सकता है। काम में मेरी बड़ी रुचि है। अतः मैं यही काम कर के राजा को प्रसन्न रखूँगा और इस तरह छिपा रहूँगा कि, कोई मुझे पहचान न सकेगा।

युधिष्ठिर बोले—यह हमारी स्त्री द्रौपदी हमें प्राणों से भी अधिक प्यारी है, यह माता के समान पालने योग्य और बड़ी बहिन के समान पूज्या है। यह कृष्णा द्रौपदी क्या काम कर के विराट् के नगर में समय बितावेगी? क्योंकि मामूली औरतों की तरह यह तो कोई काम भी करना नहीं जानती। यह कोमलाङ्गी बाला यशस्विनी राजकुमारी है। यह महाभागा पतिव्रता क्या काम कर के विराट् नगरी में समय बितावेगी? द्रौपदी तो जन्म ही से पुष्प, चन्दन, आभूषण तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों के सम्बन्ध ही की बातें जानती है। द्रौपदी बोली—हे भारत! सैरन्ध्री (अर्थात् रानियों के बाल काढ़ने वाली) सुरक्षित

रहती हैं। उनके पास कोई भी पराया आदमी नहीं जा सकता। अतः मैं सैरन्ध्री बन कर राजा विराट् के पास जाऊँगी और अपने को केश सँवारने के काम में चतुर बतलाऊँगी और उन्हींके यहाँ रहूँगी। राजा द्वारा पूँछे जाने पर मैं बतलाऊँगी कि, मैं राजा युधिष्ठिर के यहाँ द्रौपदी की दासी थी और उन्हींके घर रहती थी। इस तरह बतला कर, मैं राजा विराट् की स्त्री सुदेष्णा की सेवा में छिप कर रहूँगी। रानी मेरी रक्षा करेंगी और मैं छिपी भी रहूँगी। आप मेरी चिन्ता न कीजिये।

युधिष्ठिर बोले—हे कल्याणी! तेरे योग्य ही तेरे मुँह से बातें निकली हैं। इनसे तू सुखी रहेगी। तेरा जन्म उत्तम कुल में हुआ है। तू साध्वी है और सत्पुरुषों के व्यवहारों को जानती है। तू पाप से बिलकुल अनभिज्ञ है। फिर भी हे कल्याणि! तू इस तरह छिप कर रहना, जिससे शत्रु तेरा पता न पा सकें जिससे कि उन्हें प्रसन्नता है।

चौथा अध्याय

धौम्य ऋषि का पाण्डवों को उपदेश, पाण्डवों का अज्ञातवास के लिये वन से चलना

युधिष्ठिर बोले—अच्छा जो जो काम तुम लोग करोगे वह मैंने सुन लिये और मैंने भी अपना कार्यक्रम सुना दिया। अब हमारी इच्छा यह है कि, हमारे पुरोहित धौम्य सारथी और रसोइयों को साथ ले कर आप राजा द्रुपद के यहाँ चले जावें और वहाँ हमारे अग्निहोत्र की रक्षा करें। इन्द्रसेन आदि अन्य मनुष्य हमारे खाली रथों को ले कर द्वारका चले जावें और द्रौपदी की ये सब दासियाँ सारथियों और रसोइयों के साथ पाञ्चाल देश में चली जावें। हम लोगों के सम्बन्ध में पूँछे जाने पर इन लोगों को उत्तर में कहना चाहिये कि "पाण्डव हम सब को छोड़ द्वैतवन से न मालूम कहाँ चले गये। हमें इसका कुछ पता नहीं है।"

वैशम्पायन जी बोले—इस तरह परस्पर अपना अपना कार्य निश्चित करने के बाद उन्होंने पुरोहित धौम्य को बुला कर, सब हाल कहा और इस विषय में उनकी सम्मति माँगी।

धौम्य ने कहा—हे भारत! आपने अपने स्नेही ब्राह्मणों, वाहनों, अस्त्र शस्त्रों तथा अग्नि का जो प्रबन्ध किया है वह शास्त्र की विधि के अनुसार ही है। आपको और अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा बड़ी सावधानी से करनी होगी। इस लोक के व्यवहार को तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं तो भी मित्रता के अनुरोध से मैं आपसे कहता हूँ। क्योंकि सनातन काल से धर्म, अर्थ और काम का यही नियम रहा है। इसीसे मैं भी आपसे कहता हूँ। ध्यान से सुनिये। हे राजकुमारों! व्यवहार-कुशल व्यक्तियों को भी राजा के यहाँ रहना बड़ा कठिन हो जाता है। अतः मैं आपको राजा के यहाँ जिस तरह रहना चाहिये सो बतलाता हूँ। सुनो। मेरे कहने पर चलने से, राजा के यहाँ रहते हुए भी आप लोगों पर कोई सङ्कट नहीं आवेगा और आप सुख से रहेंगे। मानापमान सहते हुए भी किसी तरह आप लोगों को इस तेरहवें वर्ष में छिपे हुए रहना ही होगा। अज्ञातवास का समय बीतने पर चौदहवें वर्ष से आप लोग प्रकट हो कर, स्वाधीनता से विचरण कर सकेंगे। राजा से मिलना हो तो पहले द्वारपाल द्वारा राजा की आज्ञा मँगा कर अन्दर जाना। बिना आज्ञा पाये सहसा अन्दर जा कर राजा से न मिलना। राजाओं का कभी विश्वास न करना। राज-सभा में जा कर ऐसे आसन पर बैठना जिस पर कोई दूसरा बैठने की इच्छा न करे। राजा द्वारा सम्मानित होने पर भी जो व्यक्ति राजा की सवारी, शय्या, आसन, हाथी तथा रथों पर बैठने की इच्छा नहीं करता, वही राजा के यहाँ रह सकता है। जहाँ बैठने से राजा के नीच विचार वाले दूतों को किसी तरह का सन्देह हो वहाँ न बैठने वाला ही राजमन्दिर में रह सकता है। राजा को बिना माँगे अपनी सम्मति कभी न दो, किन्तु चुपचाप उसकी सेवा करो और समय आने पर अपना पुरुषार्थ दिखला कर, राजा को सन्तुष्ट करो।

राजा मिथ्याभाषियों से अप्रसन्न रहते हैं और झूठे मंत्रियों का तिरस्कार करते हैं। राजमहल में रहने वाले के रनिवास की स्त्रियों और उन लोगों से जिनसे राजा द्वेष रखते हों या अप्रसन्न रहते हों मित्रता न करनी चाहिये। छोटे छोटे कार्यों को करते समय भी राजा को उनकी सूचना देने से हानि की सम्भावना नहीं रहती। राजा के सामने बिना उनकी आज्ञा के न सो बोलना चाहिये और न बैठना ही चाहिये। मर्यादा को भङ्ग करने पर पुत्र पौत्र तथा भाई आदि स्नेहियों तक का शत्रुदमन करने वाले राजा अपमान करते हैं। संसार में राजा की सेवा यत्नपूर्वक वैसे ही करनी चाहिये; जैसे मनुष्य देवता तथा अग्नि की करते हैं। जो लोग कपटपूर्वक राजा की सेवा करते हैं उनका नाश राजा शीघ्र कर डालता है। राजा जिस समय कुछ पूँछे अथवा आज्ञा दे, तो उसे उसी समय बिना घमण्ड या क्रोध के पालन करना चाहिये। प्रत्येक बात का समर्थन करते समय हितकर और प्रिय बात कहे। हितकर वचन के सिवाय हानिकारक प्रिय वचन कभी न कहने चाहिये। सब विषयों और बातों में राजा के अनुकूल ही कहना चाहिये किन्तु ऐसी प्रिय बात भी न कहे जो सुनने में तो अच्छी हो किन्तु वास्तव में हानिकारक हो। यह जानते हुए भी कि, मैं राजा का कृपापात्र हूँ चतुर मनुष्य को कोई काम असावधानी से न करना चाहिये, किन्तु हमेशा राजा को अच्छे लगने वाले काम सावधानी के साथ करने चाहिये। राजा को हानि पहुँचाने वाली बातों में जो नहीं पड़ते और जो राजा के शत्रुओं से अलग रहते हैं तथा राजा के आज्ञानुसार ही काम करते हैं; वे ही लोग राजभवन में रह सकते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य को राजा के दाहिने या बाएँ बैठना चाहिये और शस्त्रधारी अङ्गरक्षकों को राजा के पीछे बैठना चाहिये। राजा के सामने बड़े आसन पर बैठना अनुचित है और अपने सामने राजसभा में यदि कोई गुप्त वार्तालाप हो तो उसे बाहर प्रकट करना भी अनुचित है। ऐसा करने से तो दरिद्र तक का अपमान होता है तो राजा की क्या गिनती है और राजा की कही हुई कड़ी बात भी बाहर न प्रकट करना चाहिये। झूठ बोलने

वाले लोगों की राजा निन्दा करते हैं और अभिमानी परिडतों का अपमान करते हैं। राजा के सामने अपनी वीरता और बुद्धि की डींगें नहीं मारनी चाहिये। किन्तु राजा को अच्छे लगने वाले कार्य कर के राजा का प्रियपात्र बनना चाहिये; जिससे सब सुख प्राप्त हों। जिस मनुष्य को राजा से अप्राप्य ऐश्वर्य तथा कामना की प्राप्ति हुई हो, उसे चाहिये कि, वह सावधानी से राजा की भलाई करे। जिसका क्रोध अति दुःखदायी और जिसकी कृपा बड़े बड़े फलों को देने वाली हो, ऐसे राजा का अनिष्ट कौन बुद्धिमान् चाहेगा? राजा के सामने मनुष्य को दोनों हाथ, दोनों ओठ, दोनों भुजाएँ, दोनों घुटने और वाणी को वश में रखना चाहिये। राजा के सामने थूकना और पादना बहुत धीरे से चाहिये। वहाँ पर कोई हँसी की बात हो तो पागलों की तरह दाँत निकाल कर न हँसना चाहिये और न ऐसा चुपचाप ही बैठा रहे, जिससे लोग उसे जड़ समझें; बल्कि ऐसे मौक़े पर धीरे से मुसकरा देना चाहिये। लाभ होने पर जो प्रसन्न नहीं होते और अपमान होने पर जो दुःखी नहीं होते तथा सेवा करने में जो सावधान रहते हैं, वे ही मनुष्य राजघराने में रह सकते हैं। राजा और राजपुत्रों की प्रशंसा करने वाले बुद्धिमान मंत्री बहुत दिनों तक राजा के प्रियपात्र बने रहते हैं। राजा का जिस मन्त्री पर सदा अनुग्रह रहा हो, उसे यदि कभी राजा दण्ड दे और दण्ड पाने पर भी यदि मन्त्री राजा की निन्दा न करे तो वह मन्त्री फिर भी राजा का कृपापात्र बन सकता है। इससे राजा की प्रजा और उपजीवियों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष में राजा की प्रशंसा ही करनी चाहिये। जो मन्त्री बलपूर्वक राजा से अपनी इच्छा पूरी कराता है, वह मन्त्री अधिक समय तक अपने पद पर नहीं रहता और उसके प्राण भी सङ्कट में रहते हैं। अपना लाभ देख कर भी राजा को सदा शत्रुओं से लड़ाना ठीक नहीं; किन्तु राजा को उपयोगी विषयों में शत्रुओं की अपेक्षा अधिक बलवान बनाना चाहिये। उत्साही, वीर, बली, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और मिष्टभाषी तथा राजा के साथ छाया की तरह रहने वाला मनुष्य ही राजभवन में रह सकता है। किसी काम के

लिये राजा यदि किसी आदमी को बुलावे तो उस समय पास वाला जो मनुष्य राजा के समीप जा कर कहता है कि, क्या आज्ञा है, वही पुरुष राजा के पास रह सकता है। अपनी या अपनी रानियों की रक्षा या किसी बाहरी सामन्त को हटाने की आज्ञा जब राजा दे; तब उस आज्ञा का अविचल रूप से पालन करने वाला ही राजमन्दिर में रह सकता है। दूर देश में जा कर भी जो स्त्री, पुत्र तथा प्रिय मित्रों के वियोग रूपी दुःख को भावी सुख की आशा से सहता है वही राजभवन में रह सकता है। जो मनुष्य राजा के सामने राजा जैसे कपड़े नहीं पहनता और न उसके सामने बहुत हँसता है तथा दूसरे लोगों के साथ बहुत देर तक जो छिप कर बात नहीं करता वही राजा का प्रियपात्र बन सकता है। राजा के द्वारा किसी कार्य पर नियुक्त किये जाने पर, रिश्वत न खानी चाहिये। क्योंकि ऐसा करने वाले के प्राण सदा सङ्कट में रहते हैं। राजा यदि कोई सवारी, वस्त्र या आभूषण पुरस्कार में दे तो सदा उन चीज़ों को काम में लाने वाला राजा का कृपापात्र बन जाता है। हे प्रिय पाण्डवों! इस तेरहवें वर्ष में अपने मन को वश में रख कर, व्यवहार करना और ऐश्वर्य की इच्छा न करना। इस वर्ष के बीतने पर स्वाधीनतापूर्वक अपने देश में जा कर विचरण करना।

युधिष्ठिर ने कहा—हे भद्र! आपका भला हो, आपने जैसा उपदेश दिया है वैसा माता कुन्ती और महाबुद्धिमान विदुर जी के सिवाय दूसरा नहीं दे सकता। इस दुःख को दूर करने और प्रस्थान करने के लिये जो जो काम करने हों वे आप करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इसके उपरान्त प्रस्थान के समय के सब आवश्यक कर्म धौम्य ने विधिपूर्वक किये। इसके उपरान्त पाण्डवों की बढ़ती और पृथिवी-विजय के लिये अग्नि को प्रज्वलित कर के मन्त्रों से धौम्य ने हवन किया। हवन हो जाने पर पाण्डवों और द्रौपदी ने मिल कर अग्नि और तपस्वी ब्राह्मणों की परिक्रमा की और द्रौपदी को आगे कर पाँचों पाण्डव अज्ञातवास के लिये चल दिये। वीर पाण्डवों के अज्ञातवास के

लिये चल देने पर, पुरोहितप्रवर धौम्य अग्नि और अग्निहोत्र के पात्र ले कर पांचाल देश को चले गये। इन्द्रसेन आदि सूतगण पाण्डवों के आज्ञानुसार द्वारिकापुरी में जा कर पाण्डवों की बातों को गुप्त रख कर रथ और घोड़ों की रक्षा करते हुए वहाँ रहने लगे।

पाँचवाँ अध्याय

पाण्डवों का विराट नगर के पास पहुँच कर हथियारों को छिपना

वैशम्पायन जी बोले—महावीर पाण्डव तलवार, तीरों से भरे तरकस, ढाल और धनुष लिये हुए तथा चमड़े के दस्ताने पहने हुए यमुना जी की ओर चल दिये। यमुना के दक्षिणी तट को, दशार्ण और दक्षिण की ओर पांचाल देशों को छोड़ते हुए एवं दक्षिण के जंगली और दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर होते हुए और शिकार खेलते खेलते आगे बढ़ने लगे। वन में लगातार रहने से उनके शरीरों का रंग काला पड़ गया था और उनकी डाढ़ियाँ बढ़ गयी थीं, जिससे लोग उन्हें पहचान भी न सकते थे और जिससे लोग उन्हें बहेलिया समझते थे। इस तरह जंगलों को नाघते नाघते वे लोग मत्स्य देश पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर से बोली। महाराज! देखिये, सामने हरे हरे खेतों में बहुत सी पगडंडियाँ जाती हुई दिखलायी पड़ती हैं। इससे मालुम पड़ता है कि, राजा विराट की राजधानी दूर है। मैं बहुत थक गयी हूँ अतः आज की रात यहीं ठहर जाइये।

यह सुन कर युधिष्ठिर अर्जुन से बोले—हे भारत! द्रौपदी थक गयी है, अतः तुम इसे उठा कर ले चलो, जिससे वनवास से आज ही छूट कर हम राजधानी में वास करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इतना सुनते ही अर्जुन गजराज की तरह द्रौपदी को उठा कर ले चले। राजधानी के पास पहुँच कर,

उन्होंने द्रौपदी को भूमि पर उतार दिया। इस तरह विराट की राजधानी के पास पहुँच कर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे प्रिय! हम अपने अस्त्र शस्त्र कहाँ छिपावें जिससे नगर में प्रवेश करें। क्योंकि अस्त्रों को साथ में देख कर, नगरवासी घबड़ावेंगे और तरह तरह के सन्देह करेंगे। इस दृढ़ और बड़े गाण्डीव धनुष को सभी पहचानते हैं। इसे साथ में देखते ही लोग हमें तुरन्त पहचान लेंगे और ऐसा होने से हमें फिर बारह वर्षों तक वनवास करना पड़ेगा। हममें से यदि एक के भी लोगों ने पहचाना, तो हम सब का भेद खुल जायगा। यह सुन कर अर्जुन ने कहा—हे राजन्! सामने श्मशान के पास टीले पर बड़ा भारी छेंकुर का पेड़ है, यह बहुत ही सघन है और इस पर सहसा मनुष्य चढ़ भी नहीं सकता और इस समय यहाँ पर कोई मनुष्य भी नहीं है, जो हम लोगों को वृक्ष पर शस्त्र रखते हुए देख ले। इसके सिवाय यह मार्ग से भी अलग है और ऐसे वन में है जिसमें हिंस्रपशु और साँप रहते हैं और यह भयङ्कर श्मशान के पास है। अतः हमें इसी वृक्ष पर अपने हथियार रख कर नगर में प्रवेश करना चाहिये।

वैशम्पायन जी बोले—यह कह कर अर्जुन उसी वृक्ष पर पाण्डवों के अस्त्र शस्त्र रखने लगे। अर्जुन ने उस गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा को पहले उतारा जिसके बल पर अकेले रथ पर चढ़ कर अर्जुन ने देवता, मनुष्यों तथा अनेक देशों को जीता था। इसके बाद जिस धनुष से तपस्वी राजा युधिष्ठिर ने कुरुक्षेत्र की रक्षा की थी उस बड़े धनुष की प्रत्यञ्चा उतार डाली। इसी तरह भीम ने भी अपने उस धनुष की प्रत्यञ्चा उतार डाली, जिससे उन्होंने अकेले ही पाञ्चालराज तथा अनेक शत्रुओं को हराया था और जिसके वज्र के समान छूटने की आवाज़ सुन कर शत्रु लोग रणभूमि से भाग जाते थे और जिससे सिन्धुराज पर उन्होंने विजय पाया था। कुल में जिनकी बराबरी का स्वरूपवान कोई नहीं था और जिनका लाल मुँह था और जो सप्रमाण ही बातें कहते थे, ऐसे माद्रीपुत्र नकुल ने अपने उस धनुष की प्रत्यञ्चा उतार डाली; जिससे उन्होंने पश्चिम दिशा जीती थी।

सदाचारी सहदेव ने भी अपने उस धनुष का रोदा उतार डाला; जिससे उन्होंने दक्षिण दिशा जीती थी। इस तरह सब के अपने अपने धनुषों के रोदे उतार डालने पर उन्होंने अपनी, चमकती हुई तलवारें, तरकस और तेज़ फल वाले बाणों को एक जगह इकट्ठा कर के बाँधा।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने नकुल को आज्ञा दी कि, तुम इस छेंकुर के पेड़ पर चढ़ कर, सब हथियारों को रख दो। आज्ञा पा कर, नकुल वृक्ष पर चढ़ गये और एक अच्छी जगह देख कर जहाँ मेह की बूंद न पड़े, हथियारों को डोरी से कस कर बाँध दिया। इसके उपरान्त पाण्डवों ने उस पेड़ में एक मुर्दा बाँध दिया जिससे लोग पेड़ के निकट न जावें। पाण्डव जिस समय अपने अस्त्र शस्त्र पेड़ पर बाँध रहे थे; उस समय कुछ ग्वाले और गड़रिये अपने पशु चराते हुए इधर आ निकले और पूँछने लगे कि, तुम शमी के वृक्ष पर क्या बाँध रहे हो? तब पाण्डवों ने उत्तर दिया कि, यह हमारी माता है, एक सौ अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो कर मरी है, अपने कुल की रीति के अनुसार हम इसे शमी वृक्ष पर बाँधे जाते हैं। इस तरह उत्तर दे कर पाण्डवों ने विराट नगरी में प्रवेश किया। उस समय युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के गुप्त नाम रक्खे। अपना जय, भीम का जयन्त, अर्जुन का विजय, नकुल का जयत्सेन और सहदेव का जयद्बल नाम रक्खा। इसके अनन्तर अपने प्रतिज्ञानुसार तेरहवें वर्ष अज्ञातवास में रहने के लिये पाण्डव लोग विराट के विशाल नगर में घुसे।

छठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर की दुर्गास्तुति, दुर्गा का दर्शन दे कर अन्तर्धान होना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! राजा विराट के नगर में प्रवेश करते समय युधिष्ठिर ने त्रिभुवन की ईश्वरी उन दुर्गा देवी की मन

ही मन स्तुति की जो यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं; जो भगवान नारायण की प्यारी हैं, जिन्होंने नन्दगोप के घर में जन्म लिया था, जो मङ्गलकारिणी और कुल को बढ़ाने वाली हैं। जो कंस को भय देने वाली, असुरों का नाश करने वाली हैं; जो कंस द्वारा शिला पर पटके जाने पर हाथ से छूट कर आकाश में उड़ गयी थीं। जो वासुदेव की बहिन, दिव्यमालाओं और आभूषणों से सुशोभित, दिव्यवस्त्रों को धारण करने वाली, खड्ग और खेटक धारण करने वाली, पृथ्वी का भार उतारने वाली एवं पुण्यदायिनी हैं। जो ध्यान करने वाले को गौओं को दलदल से निकालने की तरह पापों से बचाने वाली हैं। युधिष्ठिर ने ऐसी देवी का स्मरण किया। इसके उपरान्त स्तोत्रों में कहे हुए अनेक नामों से युधिष्ठिर देवी की स्तुति करने लगे। हे वर देने वाली कृष्णे! कुमारि! ब्रह्मचारिणि! बाल सूर्य के समान आकार वाली! पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली! हे देवी! आपको प्रणाम है। हे चतुर्भुजे! हे चार मुख वाली! हे पीनश्रोणिपयोधरे! मोर पंख के कड़े पहनने वाली, मुकुट और बाजूबन्द पहनने वाली देवी! आप नारायण की पत्नी पद्मा के समान ही शोभित हैं। आपका स्वरूप और ब्रह्मचर्य विशद है, आप आकाशचारिणी हैं। हे देवि! आपके शरीर का वर्ण श्याम है। इसीसे आप कृष्णा कहलाती हैं, संकर्षण जी के समान आपका मुख है। आपकी भुजाएं इन्द्र की ध्वजा के समान बड़ीं और ऊँची हैं। आप अपने हाथों में पात्र, घण्टा, पाश, धनुष, महाचक्र तथा और भी अनेक शस्त्र धारण किये हुए हैं। आप पृथ्वी की सब स्त्रियों में विशुद्ध हैं। आपके सुन्दर कान दिव्य कुण्डलों से शोभित हैं। आपके मुख की कान्ति के सामने चन्द्रमा की छटा भी फीकी पड़ जाती है। आपकी शोभा मुकुट और विचित्र केशबन्ध से बढ़ गयी है और आपकी मेखला ऐसी प्रतीत होती है, मानों मन्दराचल पर्वत में सर्प लपटा है। मोरपङ्ख की ऊँची ध्वजा से तुम शोभित हो रही हो, हे ब्रह्मचर्य के व्रत को धारण करने वाली तुमने स्वर्ग को भी पवित्र किया है। हे देवि! इसीसे देवता भी तुम्हारी पूजा करते हैं। तुमने त्रिलोकी की

रक्षा के लिये महिषासुर का नाश किया था। हे देविश्रेष्ठ! तुम हमारे ऊपर दया करो। हे देवि! तुम्हीं, जया और विजया हो। संग्राम में जय देने वाली भी तुम्हीं हो। हे वरदे! तुम अब हमें भी विजय दो। विन्ध्य पर्वत पर तुम्हारा सनातन स्थान है। हे काली! हे महाकाली! हे मधु-मांस और पशुओं को चाहने वाली! हे कामचारिणी! तुम वरदा हो, तुम भार को उतारने वाली हो। ब्रह्मादि देवताओं ने तुम्हारी भक्ति की है। प्रातःकाल तुम नमस्कार करने वालों को धन और सन्तान की कमी नहीं रखती। सङ्कट से छुड़ा देने के कारण तुम्हारा नाम दुर्गा पड़ा है; घने वन में घबराए हुए, या समुद्र में डूबते हुए अथवा चोरों से घिरे हुए मनुष्य को तुम निर्भय करने वाली हो। जल से पार हो जाने पर या वन के कठिन मार्गों से निकल आने पर जो लोग तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हें कभी कोई कष्ट नहीं होता। कीर्ति, श्री, धृति, ह्री, सिद्धि, लज्जा, विद्या, नम्रता, मति, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, कान्ति, क्षमा और दया तुम्हीं हो। तुम्हारी पूजा करने से मनुष्यों के बन्धन, मोह, पुत्रनाश, धनक्षय, रोग, मृत्यु तथा भय आदि समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं। मैं भी राज्य से भ्रष्ट हुआ तुम्हारे शरण में आया हूँ। हे देवि! हे सुरेश्वरि! मैं तुमको मस्तक झुका कर प्रणाम करता हूँ। हे सत्या! हे कमलपत्राक्षि! मेरी रक्षा करो और मेरे काम में सच्चे रूप से प्रकट हो। हे दुर्गे! हे शरण्ये! हे भक्तवत्सले! मुझे अपनी शरण में लो।

इस तरह स्तुति किये जाने पर देवी ने पाण्डवों को दर्शन दिये। राजा युधिष्ठिर के पास जा कर देवी ने कहा—हे महाबाहु राजन्! मेरी बात सुनो। थोड़े दिनों में संग्राम होगा, जिसमें तुम्हारी जीत होगी। मेरे प्रसाद से कौरवों की सेना का नाश करके, तुम जीतोगे। राज्य को निष्कण्टक करके, पृथ्वी को फिर तुम भोगोगे। भाइयों सहित तुम्हारे ऊपर लोगों की बड़ी प्रीति होगी। मेरे प्रसाद से तुम निरोग और सुखी रहोगे। हे राजन्! तुम्हारी तरह जो लोग मेरी स्तुति करेंगे उनके सब पाप नष्ट हो जावेंगे। उन पर प्रसन्न हो कर, मैं उन्हें राज्य, आयु, सुन्दर शरीर और पुत्र दूँगी। विदेश में

साथ सखा के समान रहो। तुम भीतर (अर्थात् धनागार और रनिवास) बाहर (सेना और बगीचे आदि) सब जगह आ जा सकते हो, मैं तुम्हारे लिये सब द्वारों को खोलने की आज्ञा दिये देता हूँ। जो कोई दुःखी आजीविका के लिये आवे उसका हाल तुम्हीं हमसे कहा करो, तुम्हारी सलाह ही से हम उसकी व्यवस्था करेंगे। तुम्हें हमसे किसी तरह का भय मानना उचित नहीं।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इस तरह वरदान और सत्कार पा कर युधिष्ठिर वहाँ रहने लगे और इन बातों को किसी ने न जाना।

आठवाँ अध्याय

भीम का विराट के पास जाना और विराट द्वारा उनका रसोइयों का अध्यक्ष बनाया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इसके बाद पराक्रमी भीम जिनके चेहरे से श्री टपकी पड़ती थी और जो सिंह के समान बली थे हाथ में कलछी मन्थनदण्ड और तलवार लिये हुए राजा विराट के पास पहुँचे। उस समय भीम काले कपड़े पहने थे, उनके पर्वत समान शरीर से सूर्य के समान तेज निकल रहा था। वे राजा विराट के पास जा पहुँचे। उनको देख कर, राजा विराट ने पास बैठे हुए लोगों से कहा कि, यह सिंह के समान ऊँचे कन्धों वाला, स्वरूपवान युवा पुरुष कौन है? मैंने इस सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को पहले कभी नहीं देखा। मैं बहुत सोचता हूँ, किन्तु इसे मैं पहचान नहीं सकता। इसी तरह मैं यह भी नहीं कह सकता कि, इसके मन में क्या है? नहीं कह सकता कि, यह कौन है, न जाने यह इन्द्र है या कोई गन्धर्व है जो मेरी तरफ़ देख रहा है। जाओ इससे पूछो

कि, यह क्या चाहता है। इतना सुनते ही बहुत से लोग भीम के पास जा कर पूँछने लगे। इसके उपरान्त महामना भीम दीन रूप में विराट के पास जा कर बोले कि, हे महाराज ! मैं बल्लव नामक रसोइया हूँ और मैं तरह तरह के पकवान बनाना जानता हूँ। आप मुझे अपने यहाँ रखें। विराट ने कहा—बल्लव ! तुम कहते हो कि, तुम रसोइया हो, किन्तु मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता। तुम्हारा तेज इन्द्र के समान है और तुम्हारी कान्ति तथा पराक्रम महापुरुष के समान है। भीम ने कहा—हे नरेन्द्र ! मैं आपकी सेवा करने वाला रसोइया ही हूँ और मैं उन सब उत्तम उत्तम पदार्थों का बनाना जानता हूँ; जिन्हें किसी समय राजा युधिष्ठिर ने बनवा बनवा कर खाये थे। मैं पहलवान भी हूँ और मेरे जोड़ का लड़ने वाला कोई भी नहीं है। मुझे कुश्ती लड़ने का बड़ा शौक है। सो मैं सिंहों और हाथियों से युद्ध कर के आपको प्रसन्न करूँगा। यह सुन कर राजा विराट ने कहा—बहुत अच्छा तुम ठीक ही कहते हो। अच्छा तुम हमारे यहाँ रह कर अच्छे अच्छे पकवान बनाओ। यद्यपि यह काम तुमसे लेने को, मेरा जी नहीं चाहता क्योंकि तुम तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के राजा बनने के योग्य हो; तथापि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं तुम्हें अपने सब रसोइयों का अध्यक्ष बनाता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—इस तरह भीम राजा विराट के यहाँ रसोइया बन कर रहने लगे। राजा विराट का उन पर बड़ा अनुराग था; किन्तु उनका (भीम का) असली रहस्य किसी ने न जाना।

नवाँ अध्याय

विराट की रानी का, सैरन्ध्री रूपी द्रौपदी को अपने यहाँ रखना

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! इसके उपरान्त मन्द और पवित्र हास्य करने वाली एवं बड़े बड़े नेत्रों वाली द्रौपदी ने अपने पतले, मुलायम और काले बालों को गुह कर वेणी बनायी और उन्हें दहिनी ओर छिपा कर बाँध लिया। फिर एक मैला सा काला कपड़ा पहन कर और सैरन्ध्री का रूप बना कर, वह चल दी; उसके रूप को देख कर, छोटे बड़े सभी लोग चकित हुए और कौतूहल से पास जा कर उसे देखने और उससे पूँछने लगे—तू कौन है और क्या चाहती है? यह सुन कर द्रौपदी ने कहा—मैं सैरन्ध्री हूँ और जो मुझे रखेगा उसीका काम करूँगी। उसके रूप, वेष, लक्षण तथा वाणी को सुन कर किसी को विश्वास नहीं होता था कि, वह स्त्री अन्न के लिये ही इधर उधर मारी मारी फिर रही है। उसी समय विराट की प्यारी रानी कैकेयी ने उसे महल पर से देखा। उसे रूपवती, अनाथ और एकवस्त्र पहने हुए देख कर, उसने उसे बुलवाया और पूँछा कि, तुम कौन हो और क्या चाहती हो? हे राजेन्द्र! इस तरह पूँछे जाने पर उस स्त्री ने रानी से कहा—मैं सैरन्ध्री हूँ और आजीविका के लिये यहाँ आयी हूँ, जो मुझे काम देगा उसीके यहाँ मैं रहूँगी। यह सुन कर सुदेष्णा ने कहा—हे भामिनी! तेरी जैसी रूपवती स्त्रियाँ दासी का काम तो नहीं करतीं; किन्तु वे तो बहुत से दास दासियों पर आज्ञा चलाया करती हैं। तेरी एड़ियाँ नीची, तेरी जाँघें पुष्ट, तेरे शब्द, मधुर, नाभि और बुद्धि गम्भीर हैं। तेरी नासिका, आँख, कान, स्तन, और गर्दन ऊँची है और हाथ पैर के तलुवे, ओठ, जीभ और नख लाल लाल हैं। तेरी वाणी हंस के समान गदगद् है, तेरे केश काले और मनोहर हैं। शरीर

श्याम रंग का तथा पुष्ट है, तथा तू पुष्ट पयोधरों वाली है। इस तरह काश्मीरी घोड़ी के समान तू अनेक शुभ लक्षणों से युक्त है। तेरे पलक श्यामवर्ण हैं और कटि रक्तवर्ण है, ओठ बिम्बाफल के समान लाल हैं, कमर पतली और गर्दन शङ्ख की तरह गोल है। शरीर में रुधिर इस तरह भरा है कि, एक भी नाड़ी नहीं देख पड़ती। पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान तेरा मुख है। शरद ऋतु के नील कमल के समान तेरे नेत्र हैं और शरीर की कान्ति तथा रूप भी उन्हीं कमलों के समान है। हे कल्याणि! इन सब लक्षणों के तुममें होते हुए, मैं तुझे दासी किस तरह समझूँ? इसलिये सचसच बतला कि, तू है कौन? तू या तो यक्षिणी है, या देवी है, या गन्धर्वी है और या अप्सरा है। देवकन्या है कि, नागकन्या है? नगर की देवी है या विद्याधरी या किन्नरी है? या साक्षात् रोहिणी? अलम्बुषा है कि मिश्रकेशी? पुण्डरिका है या इन्द्राणी? मालिनी है, या वारुणी है या विश्वकर्मा की स्त्री? ब्रह्माणी है या प्रजापति की स्त्री? हे कल्याणी! बता। तू इन प्रसिद्ध देवाङ्गनाओं में कौन है।

यह सुन कर द्रौपदी ने कहा—न मैं देवी हूँ, न गन्धर्वी हूँ, न आसुरी हूँ और न राक्षसी हूँ। मैं आपसे सत्य ही बतलाती हूँ कि, मैं पराये घर में काम करने वाली सैरन्ध्री हूँ। हे शुभे! मैं केशों को सँवारना और गूँथना अच्छी तरह जानती हूँ। अङ्गराग बनाना भी मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उत्पल, मालती कमल और चम्पा की मालाएँ भी मैं अच्छी बनाती हूँ। पहले मैंने श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा और पाण्डवों की स्त्री अनुपम सुन्दरी महारानी द्रौपदी की सेवा की थी, किन्तु अब मैं इधर उधर भोजनों के लिये मारी मारी फिरती हूँ। मुझे जहाँ सुन्दर भोजन और वस्त्र मिलते हैं वहीं मैं आनन्दपूर्वक रहती हूँ। द्रौपदी मुझे मालिनी के नाम से पुकारती थी और हे रानी सुदेष्णा! वही मैं आज तुम्हारे यहाँ नौकरी के लिये आई हूँ। यह सुन कर, सुदेष्णा ने कहा—मैं तुझे सिर माथे रखने को तैयार हूँ, किन्तु मुझे यही शङ्का है कि, राजा तेरे रूप पर मोहित न हो जावें। क्योंकि रनिवास की स्त्रियाँ ही जब तेरी

ओर टकटकी लगाये देख रही हैं, तब मनुष्य तुझे देख कर क्यों न मोहित होगा। देखो मेरे यहाँ के वृक्ष कैसे झुके हुए तुझे नमस्कार कर रहे हैं। फिर भला मनुष्य तुझे देख कर क्यों न मोहित होंगे। सो मुझे तो यही डर है कि, कहीं तेरे दिव्य रूप को देख कर, राजा विराट मुझे छोड़ कर कहीं तुझे न चाहने लगें। क्योंकि तेरी चञ्चल बड़ी बड़ी आँखें जिस पुरुष पर पड़ेगीं वही काम पीड़ित हो जावेगा। तेरे अङ्ग निर्दोष हैं और तेरी मुसक्यान कटीली है। उसे देख कर कोई मनुष्य अपने आपेमें नहीं रह सकता। हे सुन्दर भौंहों वाली! जैसे कोई मनुष्य जिस डाली पर बैठे यदि उसीको काटे, तो उसका अवश्य नाश होता है, वैसे ही तुझे राजमहल में रख कर, मैं भी बड़े सङ्कट में पड़ूँगी। तेरा वास मेरे लिये उसी तरह का होगा जैसे खच्चरी का गर्भ धारण करना (मरने के लिये)। द्रौपदी ने कहा—मुझे राजा विराट अथवा अन्य कोई पुरुष कभी भी नहीं पा सकता। हे भामिनि! मेरे पति पाँच तरुण गन्धर्व हैं। वे एक बलवान गन्धर्वराज के पुत्र हैं और सदा मेरी रक्षा किया करते हैं। अतः मुझे कोई नहीं सता सकता। दासी जान कर भी जो मुझसे जूठा नहीं छुआते और जो अपने पैर नहीं छुलवाते उनके इस व्यवहार से उन पर मेरे गन्धर्व पति प्रसन्न रहते हैं। साधारण जान कर जो पुरुष मुझ पर बलात्कार करने की इच्छा करते हैं, उन्हें मेरे पति रात्रि में मार डालते हैं। हे देवि! किसी भी पुरुष में मेरा सतीत्व नष्ट करने की शक्ति नहीं है। क्योंकि मुझे मेरे गन्धर्व पति बड़े प्रिय हैं और किसी कारण वश वे इस समय विपत्ति में हैं। हे शुचिस्मिते! वे गुप्तरूप से सदा मेरी रक्षा करते हैं। सुदेष्णा ने कहा—यदि ऐसा है तो मैं तुझे खुशी से अपने यहाँ रखूँगी। तुझे कभी किसी की जूठन उठानी न पड़ेगी और न तुझे किसी के पैर धुलवाने पड़ेंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इस तरह राजा विराट की स्त्री से सान्त्वना पा कर पतिव्रता द्रौपदी वहाँ रहने लगी और किसी ने उसे न पहचाना।

दशवाँ अध्याय

राजा विराट द्वारा सहदेव का गोसंख्यक बनाया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! सहदेव भी गोपों का सा वेश बना कर और उन्हींकी भाषा में बात करता करता राजा विराट के पास चल दिया । वह राजा के महल के पास ही गौशाला के सामने आ कर खड़ा हो गया । राजा को उस पुरुष को देख कर बड़ा विस्मय हुआ । उसका नाम धाम आदि जानने के लिये राजा ने उसके पास अपने आदमी भेजे और वे लोग कुरुनन्दन को राजा विराट के पास लिवा लाये । तब उन्होंने पूँछा—तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो और क्या चाहते हो ? हे नरर्षभ ! मैं यह सब इसलिये पूँछता हूँ कि, मैंने पहले कभी तुम्हें नहीं देखा । राजा द्वारा इस तरह प्रश्न किये जाने पर, सहदेव ने मेघगर्जन के समान गम्भीर स्वर में कहा—महाराज ! मैं अरिष्टनेमि नामक वैश्य हूँ और कुरुवंशियों के यहाँ गौ बैलों का परीक्षक था । अब मैं आपके यहाँ रहना चाहता हूँ । क्योंकि पाण्डवों का कुछ पता नहीं कि, वे कहाँ चले गये और बिना किसी जीविका के निर्वाह होना कठिन है । अतः मैं अपनी रुचि के अनुसार आपके यहाँ आया हूँ ।

विराट ने कहा—तुम तो ब्राह्मण या क्षत्रिय मालुम पड़ते हो और स्वरूप तुम्हारा चक्रवर्ती राजा के समान है । अतः तुम मुझसे सच्ची बात बतलाओ । क्योंकि तुम वैश्यकर्म के लिये सर्वथा अयोग्य हो, तुम किसके राज्य से आये हो और क्या काम कर सकते हो ? हमारे यहाँ तुम किस तरह रहोगे और क्या वेतन लोगे ? सहदेव ने कहा—पाँचों पाण्डवों में राजा युधिष्ठिर ज्येष्ठ थे । उनके यहाँ सौ सौ गौवों के ग्यारह लाख गोल थे । इनके सिवाय और भी हज़ारों गौओं के गोल थे । उन सब की देखरेख का भार मुझी पर था और मुझे लोग तन्त्रिपाल कहते थे । चालीस कोस के गिर्द में घूमने वाली गौओं की भूत भविष्यत् और वर्तमान संख्या को मैं

जानता था और उनके घटाव बढ़ाव पर मैं बराबर ध्यान रखता था। इसीसे दस दस योजन के अन्तर की गौओं का हाल मुझसे छिपा न रहता था। इन सब बातों को महात्मा कुरुराज भली भाँति जानते थे और इसीसे मुझ पर बड़े प्रसन्न थे। मेरी रक्षा में गौओं की बढ़ती खूब होती है और उन्हें कभी कोई रोग नहीं होने पाते। मैं गोरोगों की चिकित्सा अच्छी तरह जानता हूँ और इसी विद्या में मैं पटु भी हूँ। हे राजन्! मैं उन शुभ लक्षणों वाले साँडों को भी पहचानता हूँ, जिनकी पेशाब सूँघने ही से वन्ध्या के भी सन्तान हो जाती है।

विराट ने कहा—अच्छी बात है, मैं तुम्हें अपने एक रंग वाले और चितकबरे एक लाख पशु, पशुपालों सहित सौंपता हूँ। आज से ये सब तुम्हारे अधीन हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इस तरह पुरुषश्रेष्ठ सहदेव वहाँ रहने लगे। राजा विराट ने उनकी इच्छानुसार उन्हें वेतन दिया और उनका रहना सिवाय युधिष्ठिर के और किसी ने न जाना।

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन का नपुंसक के रूप में राजा विराट के यहाँ जाना और विराट द्वारा उसका अन्तःपुर में गीतवाद्यशिक्षक नियुक्त किया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजेन्द्र! इसके उपरान्त शङ्ख और सोने की चूड़ियाँ आदि स्त्रियों के गहने पहने हुए, सिर के लंबे बालों को नीचे तक लटकाये हुए, एक परम सुन्दर महापुरुष, जिसमें हाथी के समान पराक्रम था राजा विराट की सभा के समाने जा कर खड़ा हो गया। इस प्रकार छद्मवेश धारण किये परम तेजस्वी, शत्रुहन्ता, गजेन्द्र के समान बलशाली, महेन्द्रपुत्र

अर्जुन को सभा की ओर आते देख कर, राजा विराट ने सभा के लोगों से पूँछा—यह कौन मनुष्य आ रहा है? मैंने तो पहले इसे कभी नहीं देखा। लोगों ने उत्तर दिया कि, महाराज हम लोग भी इसे नहीं जानते।

तब राजा ने आश्चर्य के साथ अर्जुन से कहा—तुम बलशाली हाथियों के झुंड में गजेन्द्र के समान शक्तिशाली, श्याम कान्ति वाले, युवा, सोने के गहने और शंख की चूड़ियाँ धारण किये हुए, मस्तक के केशों को खोले हुए और कानों में कुण्डल धारण किये हुए, पुरुषों के बीच पुष्पों की माला धारण किये हुए भी ऐसे दीखते हो मानों तुम धनुष, बाण और कवच धारण करने वाले कोई महापुरुष हो। मैं अब बूढ़ा हुआ और अब मैं राज्य को मन्त्रियों पर छोड़ने वाला हूँ। अतः तुम मेरी सवारियों पर चढ़ कर विहार करो और तुम चाहें मेरे समान हो या मेरे पुत्र के समान हो; किन्तु इस मत्स्य देश के पालन का भार सम्हाल लो।

अर्जुन ने कहा—महाराज! मैं तो गाता बजाता और नाचता हूँ, मैं इन कामों में बड़ा निपुण हूँ और देवी का नृत्यशिक्षक भी हुआ करता हूँ। आप मुझे उत्तरा को गीत वाद्य सिखाने के लिये रख लीजिये। जिस कारण से मुझे यह रूप धारण करना पड़ा है उसके बतलाने में मेरे चित्त पर बड़ी चोट पहुँचेगी। हे राजन्! मेरे माता, पिता, पुत्र या पुत्री कोई नहीं है और मेरा नाम बृहन्नला है। यह सुन कर राजा विराट ने कहा—अच्छी बात है यद्यपि तुम समुद्र पर्यन्त पृथिवी को भोगने के योग्य हो और इस काम के करने के सर्वथा अयोग्य हो, तो भी तुम्हारे इच्छानुसार ही मैं उत्तरा और उसके समान अन्य लड़कियों को नाचना और गाना सिखाने का काम तुम्हें सौंपता हूँ।

वैशम्पायन जी ने कहा—इसके उपरान्त राजा विराट ने नाचने, गाने और बजाने में बृहन्नला की परीक्षा ली और स्त्रियों से उसके नपुंसकत्व की परीक्षा करायी और फिर मन्त्रियों की राय से कन्या के महल में भेज दिया। महल में जा कर क्लीव रूप में अर्जुन उत्तरा, उसकी सखियों तथा दासियों

को गाना बजाना सिखाते हुए वहीं रहने लगे और अन्तःपुर वासिनी भी उन्हें प्यार करने लगीं। इस तरह रहने वाले अर्जुन को भीतर बाहर किसी ने न पहचान पाया।

बारहवाँ अध्याय

नकुल का विराट के यहाँ जा कर अश्वबन्ध होना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इसके बाद कुछ समय बीतने पर पाण्डुपुत्र नकुल भी राजा विराट के नगर में गये। उसको बादल से निकले हुए सूर्य के समान आते हुए बहुत से लोगों ने देखा। राह में जहाँ कहीं घोड़े बँधे मिलते वहीं नकुल खड़े हो कर देखने लगते थे। राजा विराट ने उन्हें इस तरह आते हुए देख कर, अनुचरों से पूँछा कि, देवताओं के समान यह तेजस्वी पुरुष कहाँ से आ रहा है? यह पुरुष मेरे घोड़ों को बड़ी बारीकी से देखता चला आता है। इससे यह घोड़ों को पहचानने वाला कोई विद्वान् पुरुष प्रतीत होता है। इसे शीघ्र मेरे पास लाओ। यह तो देवताओं के समान कान्ति वाला है। यह सुनते ही लोग जा कर उसे राजा के पास लिवा लाये। राजा के पास जा कर नकुल ने कहा—महाराज! आपकी जय हो। ईश्वर आपका भला करें। मैं अश्वविद्या में निपुण हूँ और राजाओं से सम्मानित हुआ हूँ। मैं आपके यहाँ घोड़ों का रक्षक और सूत बन कर रहना चाहता हूँ। विराट ने कहा—तुममें अश्वशिक्षक की योग्यता है। अतः मैं तुम्हें निर्वाह के लिये वेतन, रहने के लिये घर और चढ़ने के लिये घोड़ा देता हूँ और तुम यहीं रहो। अब तुम बतलाओ कि तुम कहाँ से आये हो? किस लिये आये हो? किसके लड़के हो? और किस विद्या में निपुण हो? नकुल बोले—हे महाराज! सर्वज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर के यहाँ मैं घोड़ों की देखरेख पर नियुक्त था। घोड़ों को सिखाना और उनकी जातियाँ मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं दुष्ट घोड़ों को सीधा

कर देता हूँ और उनकी चिकित्सा भी करता हूँ, मेरे सिखाये हुए घोड़े न तो दुष्ट ही रहते हैं और न डरते हैं। युधिष्ठिर के यहाँ लोग मुझे ग्रन्थिक के नाम से पुकारते थे।

यह सुन कर राजा विराट ने कहा—अब से हमारे सब वाहन और घोड़े तुम्हारे अधीन हैं और साथ ही उनके पुराने सारथी और अश्वपोषक भी तुम्हारे अधीन रहेंगे। किन्तु हे देवरूप! यह घोड़ों का काम तो तुम्हारे अनुरूप नहीं प्रतीत होता; किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा इसी काम को करने की हो तो तुम्हारी मर्ज़ी। अच्छा बोलो तुम कितना वेतन लोगे। मैंने आज तुम्हें पहली ही बार देखा है और तुम्हें देखने से मुझे राजा युधिष्ठिर की याद आ गयी। न मालुम सेवकों को त्याग कर पवित्राचरण वाले राजा युधिष्ठिर कहाँ जंगलों में अकेले फिरते होंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह कह कर राजा विराट ने गन्धर्व के समान युवा पाण्डव नकुल को अपने यहाँ अश्वशिक्षक के काम पर रख लिया। नकुल भी वहाँ आनन्द से लोगों का प्रियपात्र हो कर रहने लगा। उसका वहाँ इस तरह रहना किसी ने न जाना। इस तरह चक्रवर्ती पाण्डव, जिनके दर्शन ही से पाप नष्ट हो जाते थे, विराट के यहाँ रह कर, अपने प्रतिज्ञानुसार अज्ञातवास का समय बिताने लगे।

तेरहवाँ अध्याय

भीमसेन का मल्लों को कुश्ती में जीतना और व्याघ्र सिंह आदि पशुओं से युद्ध कर के राजा को प्रसन्न करना

उपरोक्त वृत्तान्त को सुन कर, जनमेजय ने पूँछा—हे वैशम्पायन! जिस समय पाण्डव विराट के यहाँ अज्ञातवास कर रहे थे; उस समय वहाँ उन्होंने क्या किया?

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! मत्स्य देश में छिपे रह कर पाण्डवों ने जो जो कार्य किये थे उन सब को मैं सुनाता हूँ। सुनिये तृणबिन्दु मुनि और धर्मराज की दया से उन्हें किसी ने नहीं पहचाना। हे राजन्! इनमें युधिष्ठिर तो राजा विराट, उनके पुत्रों और देशवासियों के प्रियपात्र बन गये थे। वे जुए में उन सब को अपने इच्छानुसार ही इस तरह खिलाते; जैसे डोरी में बँधे हुए पक्षी को कोई खिलावे। अपने जीते हुए धन को विराट से छिपा कर युधिष्ठिर यथायोग्य अपने भाइयों में बाँट देते थे। इसी तरह भीम को राजा विराट इनाम में जो माँस आदि देते थे उसे वे बेच कर उसका धन चुपचाप युधिष्ठिर को देते थे। अन्तःपुर में जो पुराने वस्त्र या अन्य पारितोषिक अर्जुन को मिलते थे सो वे बेच कर उसका धन अपने भाइयों में बाँट देते थे। इसी तरह ग्वाले के भेष में सहदेव दूध दही घी आदि गोरस जो उन्हें मिलता था अपने भाइयों में बाँट देते थे। राजा विराट जो धन नकुल को उनके घोड़ों की शिक्षा से प्रसन्न हो कर देते थे वे उसे अपने भाइयों में बाँट देते थे। पतिव्रता तथा तपस्विनी द्रौपदी अपने पतियों को गुप्त रूप से देख लिया करती थी। इस तरह परस्पर सहायता करते हुए और द्रौपदी की देख रेख करते हुए विराट के नगर में इस तरह छिप कर वे रहते थे मानों फिर गर्भवास में आए हों। कौरवों की शङ्का और भय से उस समय पाण्डव बड़ी सावधानी से द्रौपदी की ख़बर लेते हुए गुप्तवास कर रहे थे। इस तरह जब पाण्डवों को रहते हुए चौथा महीना, लगा तब मत्स्यदेशवासियों के यहाँ ब्रह्मोत्सव हुआ। उस उत्सव को वे लोग बड़ी धूमधाम से मनाते थे। जिस तरह ब्रह्मा और शिव की सभा में अनेक देवता आते हैं; वैसे ही इस महोत्सव पर मत्स्य देश में सब दिशाओं से हज़ारों मल्ल आये। ये मल्ल कालखञ्ज असुरों के समान महाकाय और बड़े पराक्रमी थे। अपने अपने बल में ये लोग मत्त हो रहे थे। राजा ने इन सब का यथायोग्य सत्कार किया। ये सब वहीं राजा के पास बैठ गये और कुश्ती होने लगी। इनकी गर्दनें और कन्धे सिंह

के समान थे। इनमें एक मल्ल बड़ा बलवान था। उसने एक एक कर के वहाँ बैठे हुए सब मल्लों को ललकारा, किन्तु उससे लड़ने के लिये कोई न उठा। जब सब मल्ल उससे न लड़ सकने के कारण लज्जित हो रहे थे, तब उस समय उस बड़े मल्ल से लड़ने के लिये राजा ने अपने रसोइये बल्लव को भेजा। उस समय भीम की लड़ने की इच्छा न थी। क्योंकि उन्हें डर था कि, मैं कहीं प्रकट न हो जाऊँ; किन्तु राजा का कहना भी वे टाल नहीं सकते थे। तब उन्होंने उदासीनता के साथ लड़ने का निश्चय किया। इसके बाद वे पुरुषव्याघ्र सिंह के समान झूमते हुए धीरे धीरे मल्ल के पास पहुँचे और विराट को नमस्कार किया। वहाँ उसके लँगोट कसने पर लोगों को प्रसन्नता हुई और वृत्रासुर के समान उस मल्ल को युद्ध करने के लिये उन्होंने ललकारा। उस मल्ल का नाम जीमूत था और वह अपने बल के लिये बड़ा प्रसिद्ध था। दोनों भीम पराक्रम वाले थे और दोनों में लड़ने के लिये बड़ा उत्साह था। वे दोनों उस समय साठ साठ वर्ष वाले मत्त महाकाय हाथियों से दीखते थे। उन दोनों की कुश्ती आरम्भ हुई। वे दोनों वीर बड़े प्रसन्न थे और परस्पर विजयाकांक्षी थे। उनके परस्पर भिड़ जाने पर वज्रपात और पर्वत टूटने जैसा शब्द होने लगा। वे दोनों मतवाले हाथियों की तरह प्रसन्न हो कर एक दूसरे से लड़ने लगे और तरह तरह के दाँव पेच चलाने लगे। कोई किसी के अङ्ग को दबाता तो दूसरा उसे बचाता था। कभी कभी दोनों परस्पर घूँसेबाज़ी करते थे। कभी परस्पर अङ्ग रगड़ने लगते थे। कभी छातियों पर घूँसे मारते थे। कभी औंधेमुख शत्रु को उठा कर दूर पटक देते थे। वे लोग तमाशे, चपेटा, और पद का प्रहार एक दूसरे पर कर रहे थे। उनकी जाँघों और खोपड़ियों की टक्करों से जो शब्द होता था, वह ऐसा मालूम पड़ता था, मानों पत्थर पटके जा रहे हों, बिना हथियार के भी उन दोनों की कुश्ती ने बड़ा भयङ्कर रूप धारण कर लिया था। उन वीरों के प्राणबल और शारीरिक बल को देख कर लोग बहुत प्रसन्न हुए, बड़ा शोर होने लगा। इसके बाद

लगा मों इन्द्र और वृत्रासुर की तरह एक दूसरे को खींच कर दबाने, सामने गिराने और अगल बगल घुमाने, पीछे गिराने के पेच चलाने लगे और परस्पर डाँट डपट कर, घुटनों की मार देने लगे। फिर दोनों परस्पर लोह परिघ समान भुजाओं को पकड़ कर लिपट गये। तब उस हाथी के समान चिल्लाते हुए मल्ल की दोनों भुजाए शत्रुमर्दन महापराक्रमी भीम ने पकड़ लीं और वे उसे चारों ओर घुमाने लगे, यह देख कर वहाँ बैठे हुए मल्ल तथा और लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। भीम के सौ बार घुमाने से वह मल्ल बेहोश हो गया और प्राणहीन सा प्रतीत होने लगा। तब भीम ने ज़मीन पर उसे पटक दिया और उसे मार डाला। इस तरह संसारप्रसिद्ध जीमूत को भीम द्वारा मारे जाते देख कर, राजा विराट तथा अन्य सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उस समय कुबेर की तरह उदारचित्त हो कर विराट ने बल्लव को बहुत सा धन पुरस्कार में दिया। इसी तरह बहुत से पराक्रमी बड़े बड़े मल्लों को मार कर, बल्लव ने राजा विराट को बहुत प्रसन्न किया। जब भीम की बराबरी का कोई पहलवान न मिलता, तब भीम को राजा विराट शेर, व्याघ्र और हाथियों से लड़ाते थे। इसी तरह राजा विराट अन्तःपुर में भी रानियों के सामने भीम को शेरों से लड़ाते थे। अर्जुन भी रनिवास में तथा अन्य सब लोगों को राजा विराट को, गाने और नाचने से प्रसन्न करते थे। अपने सिखाये घोड़ों की तेज़ चाल दिखा कर नकुल भी विराट को प्रसन्न करते थे। राजा विराट प्रसन्न हो कर, उन्हें पुरस्कार स्वरूप बहुत सा धन और बहुमूल्य वस्त्र देते थे। इसी तरह सहदेव के सिखलाये बैलों को देख कर, प्रसन्नतापूर्वक विराट उन्हें भी बहुत सा धन देते थे। हे राजन्! तो भी उन महावीरों को दुःखी देख कर द्रौपदी को बड़ा क्लेश होता था और वह लंबी साँसें लिया करती थी। इस तरह पाण्डव लोग विराट राजा का काम करते हुए उसके नगर में अज्ञातवास कर रहे थे।

चौदहवाँ अध्याय

कीचक का द्रौपदी पर आसक्त होना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इस तरह महारथी पाण्डवों को विराट नगर में अज्ञातवास में रहते रहते दस महीने बीत गये। हे जनमेजय ! बड़े कष्ट सह कर द्रौपदी महल में रह कर अपनी सेवा से सुदेष्णा और महल की अन्य स्त्रियों को सन्तुष्ट रखती थी। इस तरह रहते हुए जब एक वर्ष पूरा होने में थोड़े ही दिन रह गये; तब एक दिन राजा विराट के सेनापति महापराक्रमी कीचक ने द्रुपदकन्या को देखा। उस देवगर्भा को देवियों के समान इधर उधर घूमते देख कर, कीचक कामासक्त हो गया। वह कामाग्नि से पीड़ित हो कर, सुदेष्णा के पास गया और हँस कर बोला। जिस भली स्त्री को आज मैंने राजा विराट के महल में घूमते देखा है, उसे आज से पहले इस नगर में कभी भी न देखा था। जिस तरह उत्तम मदिरा की गन्ध से मनुष्य मतवाला हो जाता है, उसी तरह इसके रूप को देख कर, मैं मतवाला हो गया हूँ। हे शुभे ! यह देवसुन्दरी हृदय को हर लेने वाली स्त्री कौन है ? किसकी स्त्री है ? और कहाँ से आयी है ? यह सब हाल मुझे बतलाओ। क्योंकि इसने मेरा चित्त अपने आपेमें कर लिया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, मेरी इस कामपीड़ा की औषधि उसके सिवाय और कुछ नहीं है। इसको तेरी सेवा करते देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। यह तो मुझे रूप में परमसुन्दरी प्रतीत होती है। इसका दासीकर्म करना तो मुझे बड़ा अयुक्त प्रतीत होता है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसे अपनी और अपनी सम्पत्ति की स्वामिनी बनाऊँ। मेरे यहाँ बहुत से हाथी, घोड़े, रथ और आदमी हैं और खाने पीने के सामान से भी हमारा घर भरा पूरा है। मनोहर और सोने के जड़ाऊ आभूषणों आदि से शोभित यह स्त्री मेरे घर की बड़ी शोभा बढ़ावेगी। सुदेष्णा से इस तरह बातचीत कर के कीचक द्रौपदी के पास आया और वह उसे धैर्य दे दे कर ऐसी बातें करने

लगा मानों गीदड़सिंह की कन्या से बातें करता हो। तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो ? हे सुन्दर-मुख-वाली ! तुम विराट नगर में कहाँ से आयी हो ? यह सब तुम हमें ठीक ठीक बतलाओ। तुम्हारा रूप अनुपम है। तुम्हारी कान्ति और सुकुमारता भी श्रेष्ठ है। तुम्हारे मुख की कान्ति चन्द्रमा के समान निर्मल है। हे सुभद्रे ! तुम्हारी आँखें कमल की पंखड़ी के समान बड़ी बड़ी और बड़ी सुन्दर हैं। तुम्हारी बोली कोयल की तरह है। इस पृथ्वी पर तुम्हारे समान रूपवती स्त्री मैंने कहीं नहीं देखी। हे सुमध्यमे ! क्या तुम पद्मालया लक्ष्मी हो ? क्या तुम विभूति हो ? ह्री, श्री, लज्जा, कान्ति, कीर्ति आदि में तुम कौन हो ? क्या तुम कामदेव के साथ विहार करने वाली रति हो ? हे सुन्दर भौंओं वाली ! चाँदनी की तरह तुम बहुत दमक रही हो। तुम्हारे अनुपम चन्द्रमुख को देख कर और तुम्हारे इन धीरे धीरे खुलने मुदने वाले पलकों की चाल को देख कर, जिनसे चन्द्रज्योत्स्ना की प्रभा सी निकला करती है, संसार में कौन सा मनुष्य कामासक्त न होगा ? तुम्हारे दोनों स्तन जिनके ऊपर हार तथा और तरह तरह के गहने रहने चाहिये, बड़े ही सुडौल और कड़े, पुष्ट और गोल हैं तथा कमल की कली से दीखते हैं। सो ये कामदेव के कोड़ों के समान मुझ पर चोट कर रहे हैं। हे पतली कमर वाली ! तुम्हारी कमर में तीन बल पड़ जाते हैं और वह दोनों स्तनों के भार से बेत की तरह झुकी पड़ती हैं। हे भामिनी ! नदी के दोनों तटों के समान तेरी जंघाओं को देख कर, असाध्य कामरोग मुझे बड़ी पीड़ा दे रहा है। यह कामाग्नि दावानल के समान प्रज्वलित हो उठा है और तेरे समागम के सङ्कल्प से और भी अधिक प्रज्वलित हो कर, मुझे जला रहा है। अतः हे सुन्दरी ! उस अग्नि को तुम्हारी अपने समागम रूपी मेघ और आत्मसमर्पण रूपी वर्षा से शान्त कर। हे चन्द्रमुखी ! तेरे समागम से काम बाण की चोट से उन्मत्त हुआ मेरा मन, बहुत शान्त हो जावेगा। ऐसा न होने पर वे पैने और भयोत्पादक बाण शरीरत्याग आदि महा उन्माद को प्रकट करेंगे। अतः तुम्हें चाहिये कि, तुम तरह तरह की

मालाओं, अलङ्कारों और वस्त्रों को धारण कर, आत्मप्रदान कर के मेरा उद्धार करो। हे विलासिनि! तुम मेरे साथ रह कर विहार करो और सब तरह सुख के योग्य हो कर, यहाँ दुःख रूपी वास न करो। अमृत के समान स्वादिष्ट, मनचाहे हुए तरह तरह के खाने पीने के सामानों को खा कर, इच्छानुसार विहार करो। चित्त को प्रसन्न करने वाले पदार्थों को ग्रहण कर के सर्वोत्तम सुखों को भोगो। हे निर्दोष सुन्दरि! इस समय तेरा यह उमड़ता हुआ नवीन यौवन और उत्तम रूप व्यर्थ नष्ट हो रहा है। तरह तरह की मालाओं और आभूषणों को धारण करने से तेरा रूप ख़ूब बढ़ेगा। बिना इनके तू शोभा नहीं पाती। अपनी पहली सब स्त्रियों को मैं त्याग दूँगा, वे सब और मैं तेरी सेवा करेंगे।

द्रौपदी ने कहा—हे सूतपुत्र! मेरे समान नीच जाति की बाल काढ़ने वाली सैरन्ध्री पर तेरा अनुरक्त होना अनुचित है। इसके अतिरिक्त मैं दूसरे की स्त्री हूँ। इसलिये तुझे मुझको पाने की इच्छा न करनी चाहिये, देखो सभी को अपनी स्त्री प्यारी होती है। इसी तरह मैं भी अपने पति की प्यारी हूँ। अतः तू धर्म का विचार कर के बात कर जिससे तेरा कल्याण हो। तुझे पराई स्त्री का तो विचार भी मन में न लाना चाहिये, सत्पुरुषों को तो हमेशा बुरी बातों का त्याग करना चाहिये। मिथ्या विषयों की ओर तो पापी ही ध्यान देते हैं और मोह से अन्धे हो कर बड़ी विपत्ति में पड़ जाते हैं।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! यह सुन कर, अजितेन्द्रिय, दुर्बुद्धि, कामासक्त कीचक यह जानते हुए भी कि, परस्त्रीगमन से निन्दा होती और प्राणहानि तक की आशंका रहती है, न माना और द्रौपदी से बोला, हे सुन्दराङ्गी चारु वदने! तुम्हें इस तरह साफ़ मना करना उचित नहीं है। हे चारुहासिनि! मैं तुम्हारे लिये ही कामपीड़ित हो रहा हूँ। हे भीरु! मैं तुम्हारे अधीन हूँ और तुमसे प्रिय वार्तालाप कर रहा हूँ। मुझसे इस तरह नाहीं मत करो। नहीं तो पछताओगी। हे सुभ्रु!

इस सम्पूर्ण देश का बसाने वाला स्वामी मैं हूँ और मेरे समान बलशाली इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। रूप, यौवन, भाग्य में तथा उत्तम प्रकार के ऐश्वर्यों के भोग करने वाला मेरे समान इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं है। सो तुम सब तरह के उत्तमोत्तम भोग्य पदार्थों को पा कर भी उनका तिरस्कार करती हो। हे कल्याणि! तुम दासत्व पर क्यों इतनी प्रीति करती हो। अतः तुम उत्तमोत्तम पदार्थों का भोग करो और मुझे चाहो, इससे तुम इस राज्य की स्वामिनी होगी।

ऐसे पापपूर्ण प्रस्ताव की निन्दा करती हुई पतिव्रता, द्रौपदी ने कहा—हे सूतपुत्र! तू काम के वेग से अन्धा मत बन जा और व्यर्थ ही अपने प्राणों को गँवाने की चेष्टा न कर। याद रख, पाँच वीर सदा मेरी रक्षा किया करते हैं। तू मुझे कभी नहीं पा सकता क्योंकि मेरे पति गन्धर्व हैं। उनके कुपित होने से तुझे अपने प्राण गँवाने पड़ेंगे। इसलिये इस बात का विचार ही छोड़ दे। तू उस राह चलना चाहता है, जिस पर कोई नहीं चल सकता। तेरा, मुझे प्राप्त करने की इच्छा करना वैसा ही है, जैसे एक मूर्ख बालक का नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुँचने का प्रयत्न। मुझे बुरी निगाह से देख कर फिर तू चाहे कि, मैं आकाश, पाताल या समुद्र में छिप कर अपने प्राण बचाऊँ सो असम्भव होगा। क्योंकि मेरे पति देवता और आकाशचारी हैं। वे कहीं भी तेरा पीछा न छोड़ेंगे। मुझे पाने के लिये तेरा हठ उसी तरह है; जैसे माता की गोद में बैठे बालक का चन्द्रमा पाने का यत्न। क्या तू जीवन से हताश हो गया है जो घबड़ाये रोगी की तरह कालरात्रि से प्रार्थना करता है। गन्धर्वों की प्रिय स्त्री को कुदृष्टि से देखने पर तू पृथ्वी पर तो क्या, स्वर्ग में भी न बचेगा। इस समय तेरी बुद्धि ठीक नहीं है। इसीसे तू अपने जीवन से हाथ धोने की चेष्टा कर रहा है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कीचक का सुदेष्णा के साथ परामर्श और सुदेष्णा का सैरन्ध्री को कीचक के यहाँ सुरा लाने के लिये भेजना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! राजपुत्री द्रौपदी से तिरस्कार पूर्ण उत्तर पा कर मर्यादाहीन कामोन्मत्त कीचक सुदेष्णा के पास जा कर कहने लगा—हे कैकेयी! अब तुम ऐसा उपाय करो, जिससे गजगामिनी सैरन्ध्री मेरे पास आ कर मेरी सेवा करे और मुझे चाहने लगे, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा और जान दे दूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—इस तरह प्रलाप करते हुए कीचक की बात सुन कर, मनस्विनी विराट की पटरानी ने उस पर कृपा की। पहले उसने मन में कीचक और सैरन्ध्री को मिलाने का उपाय मन में सोचा और फिर वह बोली। अच्छा तुम किसी पर्व के दिन बहुत से पकवान और सुरा तय्यार करवाना। तब मैं सैरन्ध्री को मदिरा लाने के लिये तुम्हारे पास भेजूँगी। तब अपने घर पर किसी एकान्त और निर्विघ्न स्थान में समझा बुझा कर सैरन्ध्री को अपने वश में ला कर, अपनी मनोकामना पूरी कर लेना।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तब बहिन की बातें सुन कर, कीचक वहाँ से चला गया। एक दिन उसने चतुर रसोइयों से राजा के खाने पीने योग्य बहुत से स्वादिष्ट भोजन और मदिरा तैयार करवायी। तरह तरह का सब सामान तैयार हो जाने पर, कीचक ने अपनी बहिन के यहाँ निमंत्रण भेजा। तब पूर्व निश्चित उपाय के अनुसार, सुदेष्णा ने सैरन्ध्री को कीचक के मकान पर भेजा।

सुदेष्णा ने कहा—सैरन्ध्री उठो और कीचक के यहाँ चली जाओ। हे कल्याणि! वहाँ से मेरे पीने लायक कोई अच्छी चीज़ ले आओ। मुझे बड़ी प्यास लगी है।

सैरन्ध्री ने कहा—हे राजपुत्री! मैं उसके मकान पर न जाऊँगी। हे महारानी! तुम जानती ही हो कि, वह कैसा निर्लज्ज है। हे पवित्राङ्गी! मैं आपके यहाँ रह कर पतियों से विमुख हो इच्छाचारिणी की तरह व्यभिचार में लिप्त न होऊँगी। हे देवि! आपको याद है कि, आपके यहाँ रहने के पहले मैंने क्या प्रतिज्ञा की थी, फिर आप इसके घर मुझे क्यों भेजती हो? हे सुकेशी! मेरे वहाँ पहुँचते ही मन्दबुद्धि एवं कामान्ध कीचक मेरा अपमान करेगा। अतः मैं वहाँ न जाऊँगी। तुम्हारे यहाँ और भी तो अनेक दासियाँ हैं। उनमें से किसी को भेज कर सुरा मँगा लो। वहाँ जाने से निश्चय ही वह मेरा अपमान करेगा।

सुदेष्णा ने कहा—मेरी भेजी हुई जान कर कीचक कभी तेरा अपमान न करेगा। ले इस सोने के ढक्कन वाले पात्र में सुरा ले आ। सैरन्ध्री ने डरते डरते उस पात्र को ले लिया और रोती हुई कीचक के यहाँ से सुरा लाने के लिये वह चल दी।

सैरन्ध्री ने कहा—हे ईश्वर! यदि मैंने मन और बुद्धि से सिवाय अपने पतियों के और किसी को न चाहा हो, तो इस सत्यबल से कीचक मुझे अपने वश में न कर सके।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह दो घड़ी उस अबला ने सूर्य की प्रार्थना की। सूर्य ने भी उसकी दुःखगाथा समझ के उसकी रक्षा के लिये अदृश्यरूप से एक राक्षस नियुक्त कर दिया जो सदा द्रौपदी के साथ रहने लगा। इसके उपरान्त जब द्रौपदी कीचक के यहाँ पहुँची, तब भयभीत मृगी के समान उसे देख कर, सूतपुत्र कीचक प्रसन्नतापूर्वक इस तरह उठ कर खड़ा हो गया, जैसे नदी के पार जाने वाला मनुष्य आई हुई नाव को देख कर, उठ खड़ा होता है।

सोलहवाँ अध्याय

सैरन्ध्री का कीचक के यहाँ से भाग कर राजसभा में जाना, कीचक का राजसभा में सैरन्ध्री को मारना

कीचक बोला—हे सुकेशान्ते! तेरा स्वागत है। आज मेरी रात खूब कटेगी। आओ मेरी पटरानी! बैठो और मेरी इच्छानुसार काम करो। ये सुवर्ण की मालाएँ, हाथीदाँत की चूड़ियाँ, सोने के जड़ाऊ गहने, तरह तरह के कुण्डल जिनमें बहुत से मणि माणिक्य लगे हैं, रेशमी वस्त्र और मृगचर्म लो। मेरी दिव्य शय्या तैयार है, चलो मेरे साथ वहाँ मदिरा-पान करो। द्रौपदी ने कहा कि, रानी ने मुझे तेरे पास मदिरा लाने के लिये भेजा है, उन्हें बड़ी प्यास लगी है। इसलिये तू शीघ्र मदिरा मँगा कर मुझे दे दे तो मैं उन्हें दे आऊँ। यह सुन कर कीचक ने कहा—और दासियाँ रानी के लिये मदिरा ले जावेंगी। यह कह कर कीचक ने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया; तब द्रौपदी ने कहा—यदि मैंने मन से अपने पतियों के सिवाय और किसी को न चाहा हो, तो मैं उसी सत्य के प्रभाव से तुझे पृथिवी पर घसिटता हुआ देखूँगी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उस समय इस तरह निन्दा एवं तिरस्कार करती हुई द्रौपदी की साड़ी का एक पल्ला कीचक ने पकड़ लिया। इस पर द्रौपदी गुस्से के मारे लंबी साँसें लेने लगीं और कीचक को एक ऐसा धक्का दिया जिससे कीचक जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा। इस तरह कीचक के गिर जाने पर काँपती हुई द्रौपदी राजसभा की ओर दौड़ कर गयी, जहाँ युधिष्ठिर थे और उनका शरण लिया। तब भागी जाती द्रौपदी के पीछे कीचक दौड़ा और द्रौपदी की चोटी पकड़ के राजा के सामने उसके लातें लगायीं। तब सूर्य ने जिस राक्षस को द्रौपदी की रक्षा के लिये नियुक्त किया था; उसने पवनवेग से कीचक को दूर फेंक दिया और वह

राक्षस के धक्के से काँप गया और जड़ से कटे हुए पेड़ की तरह पृथिवी पर निश्चेष्ट हो कर गिर पड़ा। उस समय सभा में बैठे हुए युधिष्ठिर और भीम ने द्रौपदी की दुर्गति को देखा, जिससे उनके मन में क्रोध का सञ्चार हो आया। गुस्से के मारे भीम कीचक को मारने की इच्छा से दाँत पीसने लगे। उनकी भौंहे टेढ़ी पड़ गयीं, माथे पर पसीना आ गया और आँखें लाल हो गयीं एवं वीर शत्रुहन्ता भीम ने अपने क्रोध को छिपाने के लिये पसीना पोंछ डाला, तो भी उसका क्रोध न शान्त हुआ और वह सहसा उठने की चेष्टा करने लगा। भीम की यह दशा देख युधिष्ठिर ने प्रकट हो जाने के भय से पैर के अँगूठे से भीम का अँगूठा दबा दिया और बैठे ही रहने का इशारा किया। मतवाले हाथी के समान उस समय भीम सामने के एक बड़े गुद्दे वाले पेड़ को देख रहा था। युधिष्ठिर ने उसके असली क्रोध को छिपाने के लिये प्रकट में कहा—ओ बल्लव ! क्या तू ईंधन के लिये इस पेड़ की ओर देख रहा है ? यदि तुझे लकड़ी ही चाहिये तो बाहर जा कर क्यों नहीं काट लाता। इतने ही में रोती हुई द्रौपदी अपने उदास पतियों की ओर देखती हुई सभा के द्वार पर आयी और लाल लाल आँखें कर के अपने गुप्त अभिप्राय को छिपाती हुई राजा विराट से बोली—राजन् ! आज सूतपुत्र कीचक ने उन पतियों की मानिनी स्त्री के लातें लगायी हैं, जिन्हें कुपित करने पर कोई छठे देश (अर्थात् मन) में भी रक्षा नहीं पा सकता। जो ब्राह्मणों के प्रतिपालक, सत्यवादी और दाता हैं, ऐसे महानुभाव की मानिनी स्त्री के कीचक ने लातें लगायी हैं। जिनकी प्रत्यञ्चा का शब्द दुन्दुभी के समान है, उनकी मानिनी स्त्री के कीचक ने लातें लगायी हैं। जो जितेन्द्रिय और तेजस्वी तथा बड़े आदरणीय पुरुष हैं; उनकी मानिनी स्त्री के इस कीचक ने लातें मारी हैं। जिनमें सम्पूर्ण जगत के नाश करने की शक्ति है, जो धर्म में बँधे हैं, उन्हीं की आदरणीय भार्या के आज कीचक ने लातें मारी हैं। जो शरणागतों को सदा शरण देते हैं, वे महारथी क्या संसार में छिप कर फिरते हैं ? हाय ! महापराक्रमी हो कर अपनी सती स्त्री का सूतपुत्र के द्वारा पीटा जाना, वे नपुंसकों

की तरह कैसे सह रहे हैं। दुरात्मा के हाथों पीटे जाते देख कर, उनका तेज क्रोध और पराक्रम कहाँ गया। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि, अधर्मी राजा विराट मुझ निरपराधिनी को कीचक द्वारा पीटे जाते देख कर भी कुछ नहीं कहता; किन्तु शान्ति से चुपचाप देख रहा है। मैं अबला क्या कर सकती हूँ। कीचक पर यह राजधर्मानुसार शासन क्यों नहीं करता? यह तो चुपचाप बैठा है। अरे राजा! तेरे इस लुटेरों जैसे धर्म से, तेरी राजसभा भी कलङ्कित होती है। हे मत्स्यराज! तेरे सामने राजसभा में कीचक का मुझे मारना क्या ठीक है? हे सभा के लोगों! तुम्हीं इस कीचक के कुकृत्य पर ज़रा ध्यान दो, कीचक तो धर्म के ज्ञान से हीन है। इसी तरह राजा विराट को भी धर्म का कुछ ज्ञान नहीं है। वैसे ही तुम सब भी, जो इन राजा की उपासना करते हो धर्म को नहीं जानते।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस प्रकार सुन्दरी सुलोचना द्रौपदी के निन्दा करने पर राजा विराट ने कहा—तुम दोनों के बीच उत्पन्न हुए झगड़े के कारण को जाने बिना मैं क्या कर सकता हूँ?

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! इसके उपरान्त द्रौपदी से सारा हाल सुन कर, सभासदों ने द्रौपदी की प्रशंसा की और कीचक को धिक्कारा। वे कहने लगे कि, यह विशालनेत्रा, सर्वाङ्गसुन्दरी जिसकी स्त्री होगी, वह तो बड़ा भाग्यवान होगा। उसे इसकी ओर से किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिये। क्योंकि ऐसी सुन्दरी स्त्री का मिलना बड़ी कठिन बात है, यह तो साक्षात् देवी है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह द्रौपदी को देख कर सभासद उसकी प्रशंसा करने लगे, किन्तु उस समय मारे क्रोध के युधिष्ठिर के माथे पर पसीना आ गया और उन्होंने कहा—हे सैरन्ध्री! तू यहाँ न ठहर और सुदेष्णा के पास चली जा। पतिसेवा करने वाली स्त्रियों को क्लेश उठाना ही पड़ता है और उसी कष्टकारक पतिसेवा के बल से वे स्वर्ग को जीत लेती हैं। मेरी समझ में तेरे गन्धर्व पति जो सूर्य के समान तेजस्वी हैं, इस

समय क्रोध करना उचित नहीं समझते। इसीलिये वे तेरी सहायता के लिये दौड़ कर नहीं आये। हे सैरन्ध्री! तू अवसर नहीं देखती और निर्लज्ज नटनी की तरह रो रही है और मत्स्यराज की सभा में द्यूत के खेल में विघ्न डाल रही है। हे सैरन्ध्री! अब तू अपने स्थान पर चली जा। तेरे गन्धर्व पति तेरा प्रिय करेंगे और तुझे दुःख देने वाले कीचक को नष्ट कर देंगे। द्रौपदी ने कहा—मेरे गन्धर्व पति बड़े दयावान हैं। बड़ा गन्धर्व द्यूतविद्या में बड़ा चतुर है और मेरे गन्धर्वपति मेरे शत्रु का अवश्य नाश करेंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह युधिष्ठिर से कह कर, सुन्दरी द्रौपदी बाल खोले और लाल लाल आखें किये हुए सुदेष्णा के महल में गयी। बहुत देर तक रोने के कारण उसका मुँह ऐसा मालूम पड़ता था, मानों बरसते हुए मेघों से चन्द्रमा निकल आया हो। उसे देख कर सुदेष्णा ने कहा—हे वरानने! तुझे किसने मारा है? तू क्यों रोती है? आज किसने तेरा अप्रिय कर के अपना सुख नष्ट किया है।

द्रौपदी ने कहा, मैं आज कीचक के यहाँ तुम्हारे लिये मदिरा लाने गयी थी, तब वहाँ कीचक ने बहुत सी अनकहनी बातें मुझसे कहीं और मैं जब भाग कर राजसभा के शरण में गयी, तब वहीं जा कर राजा के सामने कीचक ने मुझे इस तरह मारा है, जैसे कोई किसी को निर्जन वन में मारे। यह सुन कर सुदेष्णा ने उससे कहा—अच्छा हे सुन्दर केशी! अब तू कहे तो कीचक को प्राणदण्ड दिलवा दूँ। क्योंकि वह तुझ जैसी दुर्लभ स्त्री का अपमान करता है।

यह सुन कर द्रौपदी ने कहा—उसने जिनका अपराध किया है, वे ही उसे मारेंगे। वह गन्धर्वों द्वारा शीघ्र मारा जायगा। तुम्हें उसे मरवाना न पड़ेगा।

सत्रहवाँ अध्याय

द्रौपदी का रात्रि में जा कर भीमसेन से अपना दुःख कहना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! इसके उपरान्त सूतपुत्र मे मारी गयी वह यशस्विनी राजपत्नी द्रौपदी, उस सेनापति का वध कराने की बात सोचने लगी। द्रौपदी अपने आवासस्थल को गयी और पतली कमर वाली कृष्णा ने नियमानुसार शौच आदि नित्य कर्म से निवृत्त हो कर जल से स्नान किये और कपड़े धोये । फिर रोते रोते वह अपने दुःख के निवारण का उपाय सोचने लगी। वह मन ही मन कहती कि, मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस तरह मेरा काम पूरा हो। इसी तरह सोचते विचारते उसका ध्यान भीम की ओर गया । भीम का ध्यान आते ही, उसने सोचा कि, भीम के छोड़ मेरे मन का काम और कोई नहीं कर सकता। उसी समय रात्रि में वह बिछौने पर से उठ बैठी । अपने पति के मिलने की इच्छा से पतिव्रता एवं विशालनेत्रा द्रौपदी जल्दी जल्दी भीमसेन के आवासस्थान की ओर चल दी। उस समय उसके मन में बड़ा दुःख था। वहाँ पहुँच कर सैरंध्री ने कहा। मुझे मारने वाले पापी कीचक के जीवित रहते, तुम कैसे पड़े पड़े सो रहे हो ?

वैशम्पायन जी ने कहा - हे राजन् ! यह कह कर, वह मनस्विनी रसोई में घुस गयी। उस समय वहाँ भीम, सिंह की तरह खुर्राटे भर कर सो रहे थे। द्रौपदी के रूप और सोते हुए महात्मा भीम के तेज से वह पाकशाला जगमगा उठी। उस समय मन्द हास्य वाली द्रौपदी वैसे ही भीम के पास बैठ गयी, जैसे तीन वर्ष की सफ़ेद गौ कामातुर हो कर श्रेष्ठ बैल के पास जाती है अथवा जलोत्पन्न बगली कामातुर होने पर जैसे नरपक्षी बगले के पास जाती है। गोमती नदी के किनारे बड़े भारी शाल वृक्ष से जैसे लताएँ चारों ओर लिपट जाती हैं, वैसे ही द्वितीय पाण्डव भीम से द्रौपदी जा

लिपटी। सोते हुए भीम को द्रौपदी ने उसी तरह जगाया; जैसे सिंहिनी निर्जन वन में सिंह को जगाती है । द्रौपदी ने उसका वैसे ही आलिङ्गन किया जैसे हथिनी गजराज का या वीणा, गान्धार नामक स्वर का करती है। उस समय अनिन्दिता द्रौपदी ने भीम से कहा—भीम जागो! उठो! मुर्दे की तरह क्यों सो रहे हो? सजीव पुरुष की स्त्री को छेड़ कर क्या कोई पापी जीता रह सकता है ? राजपुत्री के ऐसे वाक्यों से जग कर, मेघ के समान श्याम वर्ण भीम उठ कर गद्दों वाले पलंग पर बैठ गये और कौरवकुमार अपनी प्रिय राजमहिषी राजपुत्री द्रौपदी से बोले कि, इस समय घबड़ाई हुई तुम मेरे पास क्यों आयी हो? तुम्हारा रंग बदल गया है, तुम बिल्कुल दुबली और पीली पड़ गयी हो। बतलाओ तो हुआ क्या? सब बातें मुझसे साफ़ साफ़ खोल कर कहो। तुम्हारे ऊपर चाहे जैसी बीती हो, वह सुख की बात हो या दुःख की; सब मुझे बतला दो; जिससे मैं ठीक ठीक उपाय कर सकूँ। हे कृष्णे! सब कामों में, मैं ही तेरा विश्वासपात्र रहा हूँ। मैंने ही बार बार तुझे विपत्तियों से छुड़ाया है । इस लिये जो कुछ हो, मुझसे जल्दी से कह कर सोने के लिये चली जा, जिससे कोई जान न सके।

अठारहवाँ अध्याय

द्रौपदी का भीम से अपने मानसिक दुःखों का कहना

द्रौपदी ने कहा—जिसके पति युधिष्ठिर हों, वह स्त्री बिना चिन्ता के कभी रह सकती है ? तुम सब बातों को जानते हुए भी क्यों पूँछते हो ? हे भारत! दुर्योधन की सभा में जिस समय प्रतिकामी दासी दासी कह कर मुझे ले गया था, उसी दुःख से मेरी छाती जल रही है। मेरे समान दुःख पा कर क्या कोई राजपुत्री जीती रह सकती है? वन में रहते समय पापी

सिन्धुराज ने मेरा जो तिरस्कार किया था, उसे क्या कोई स्त्री सह सकती है? यहाँ भी धूर्त राजा विराट के सामने कीचक ने जिस तरह लातें मार कर, मेरा अपमान किया उसे क्या कोई स्त्री सहती हुई जी सकती है? इस तरह बड़े बड़े दुःखों से मैं पीड़ित हूँ। तब भी तुम उसे दूर करने का उपाय नहीं करते। अतः हे कुन्तीपुत्र! मेरा जीना अब व्यर्थ है। राजा विराट का साला कीचक जो सेनापति है बड़ा ही दुष्टबुद्धि है। मैं जब सैरन्ध्री के वेश में विराट के यहाँ काम करती हूँ, तब वह पापी वहाँ आ कर नित्य मुझसे विनती करता है कि मैं उसकी स्त्री हो जाऊँ। उस मारे जाने के योग्य पुरुष की बातें सुन सुन कर, मेरा कलेजा फटा जाता है। जिस बड़े भाई के कपट द्यूत में हार जाने से मुझे अनन्त कष्ट भोगने पड़ रहे हैं; उसे क्या तुम्हें उलहना देना चाहिये? जुआड़ी के सिवाय ऐसा कौन होगा जो अपना राज्य और सर्वस्व हार कर वनवास के लिये जुआ खेलेगा? यदि तुम्हारे भाई सवेरे और शाम एक एक हज़ार सोने की मोहरों को दाँव पर लगाते तो भी उनके पास चाँदी, सोना, वस्त्र, सवारियाँ, रथ, घोड़े, खच्चर, भेड़, बकरी, आदि इतना धन था जो निबटाये न निबटता; किन्तु मूर्खों की तरह जुएँ में हार कर धन-हीन युधिष्ठिर चुपचाप अपने काम पर पछताते हुए बैठे हैं। जिन राजा युधिष्ठिर की सवारी के आगे पीछे सोने की जंजीरें डाले दस हज़ार घोड़े हाथी चलते थे, वे ही राजा युधिष्ठिर आज जुए की कमाई से रोटी खा रहे हैं। बड़े पराक्रमी राजाओं के एक लाख रथ उनकी सेवा में इन्द्रप्रस्थ में रहा करते थे, उनकी रसोई में अतिथियों को एक लाख दासियाँ सोने के पात्र हाथ में ले कर भोजन कराती थीं। जो राजा युधिष्ठिर नित्य एक हज़ार मुहरों का दान करते थे वे ही महाअनर्थकारी जुए की कमाई से अपना निर्वाह करते हैं। सवेरे और शाम मणियों से युक्त कुण्डल पहने हुए बहुत से सूत मागध मधुर स्वर से जिनके गुणगान करते थे और हज़ारों तपस्वी, जितेन्द्रिय और विद्वान् ऋषि जिनकी सभा के सदस्य थे, इनके सिवाय जिनके यहाँ अट्ठासी हज़ार स्नातक गृहस्थ ऋषि रहते थे और जहाँ एक एक स्नातक

की सेवा के लिये तीस तीस दासियाँ नियुक्त थीं और जो दान न लेने वाले दस हज़ार ऊर्ध्वरेता ऋषियों का भी पालन करते थे, वे ही युधिष्ठिर आज छिपे हुए रह रहे हैं। जिसमें दया, कोमलता और सब चीजें बट जाने पर शेष में प्रसन्न रहना आदि गुण हैं, वे ही राजा युधिष्ठिर आज छिप कर रह रहे हैं। धैर्यशाली, सच्चे पराक्रमी, वस्तुओं को बाँट कर उपभोग करने वाले और जो अपने राज्य में अन्धे लूले तथा अनाथों का पालन करते थे, वे ही राजा युधिष्ठिर आज गुप्त भेष में रह रहे हैं। वे ही आज आज्ञाकारी दास के समान राजा विराट के यहाँ अपने को युधिष्ठिर के साथ खेलने वाला कंक नामधारी ब्राह्मण बतला कर जुआ खिलाते हैं। इन्द्रप्रस्थ में बड़े बड़े भूपाल जिन्हें भेंटें चढ़ाते थे और अधीन रहते थे, वे ही आज दूसरों के अधीन रह कर अपनी जीविका चलाते हैं। जो पृथिवी पर सूर्य की तरह तपते थे और जिनकी सभा के बड़े बड़े ऋषि और राजा लोग सदस्य थे, वे ही युधिष्ठिर, आज राजा विराट की सभा के एक साधारण सदस्य हैं। और देखो वे क्या से क्या हो गये हैं? जिस समय मैं युधिष्ठिर को विराट की सभा के एक साधारण सदस्य की हैसियत से दूसरों को प्रसन्न करने के लिये ठकुरसुहाती बातें करते देखती हूँ, उस समय मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आता है। अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध दूसरे के यहाँ आजीविका के लिये युधिष्ठिर को रहते देख, किसे दुःख न होगा? हे भारत! जिसकी उपासना पृथ्वी के बड़े बड़े राजा लोग सभा में आ कर करते थे, उन्हींको इस सभा में बैठे देख कर तो विश्वास ही नहीं होता कि, यह वही हैं। इन्हीं सब कष्टों से मैं अनाथ की तरह दुःखी रहती हूँ और दुःखसागर में डूबी रहती हूँ। देखो भीम! तुम भी तो कुछ उपाय नहीं करते।

उन्नीसवाँ अध्याय

द्रौपदी का पतियों की दशा से दुःखी हो कर भीम से उसका हाल कहना।

द्रौपदी ने कहा—हे भारत! मैं ऐसी बातें बड़े असह्य दुःख ही के कारण कह रही हूँ। इससे तुमको बड़ा कष्ट होगा। मेरी बातों का तुम बुरा न मानना। तुमको विराट के यहाँ बल्लव नाम धारण कर के रसोइये का छोटा काम करते देख, किसे शोक न होगा? भला इससे बढ़ कर मुझे और अधिक दुःख क्या होगा कि, सब लोग आपको राजा विराट का बल्लव नामक रसोइया कहें। रसोई तैयार हो जाने पर तुम जब विराट के पास जा कर कहते हो कि, 'रसोई तैयार है, बल्लव रसोइया आपको बुलाने आया है" तब यह सुन कर मुझे बड़ा ही कष्ट होता है। राजा जब तुमको हाथियों से लड़वाते हैं और जब तुमको देख कर महल की सब स्त्रियाँ हँसती हैं, तब मैं मन ही मन जला करती हूँ। सुदेष्णा के सामने जब आप सिंह, भैंसों और बाघों से लड़ते हैं तब मुझे बड़ा कष्ट होता है। मुझे दुःखी देख कर सुदेष्णा अन्य स्त्रियों से और अन्य स्त्रियाँ सुदेष्णा से मेरे उदास होने का हाल कहती हैं। फिर आपस में ठहाका मार कर हँसती हुई मुझसे कहती हैं, यह सैरन्ध्री सिंह से लड़ने वाले रसोइया के लिये बहुत सोच किया करती है। उस समय मुझ सर्वाङ्गसुन्दरी को उदास देख कर, सब दासियाँ सुदेष्णा से कहती हैं हाँ ठीक तो है, सैरन्ध्री भी रूपवती है और बल्लव के भी रूपवान होने से दोनों का जोड़ ठीक है और कहती हैं कि, स्त्रियों का चरित्र जानना बड़ा कठिन है, और ये दोनों युधिष्ठिर के यहाँ एक साथ ही रहते थे और इन दोनों का रूप भी एक ही सा है। यह कह कर वह मुझे डराती हैं और मुझे क्रुद्ध देख कर शङ्का करती हैं; इन बातों से मुझे बड़ा क्रोध आता है। महापराक्रमी भीम को इस तरह पराधीन देख और युधिष्ठिर को शोकान्वित

देख, मुझे जीवित रहने की इच्छा ही नहीं होती। जिसने अकेले एक रथ पर सवार हो सब देवताओं और मनुष्यों को जीत लिया, उसी तरुण को मैं आज राजा विराट की कन्याओं को नाचना गाना सिखाते देखती हूँ। हे पराक्रमी! जिसने खाण्डववन में अग्नि को तृप्त किया था, उसीको मैं कुएँ में छिपी अग्नि की तरह, विराट के अन्तःपुर में रहते देखती हूँ। जिस नरपुङ्गव से शत्रु सदा भय खाते थे, वही अर्जुन तिरस्कार के योग्य नपुंसक का वेष धारण कर, अन्तःपुर में रहता है। धनुष की ज्या खींचते खींचते जिसकी परिघ समान भुजाएँ पत्थर सी कड़ी हो गयी हैं, वही अर्जुन आज हाथों में हाथीदाँत की चूड़ियाँ पहन कर शोक कर रहा है। जिसके धनुष की टंकार सुन कर शत्रुओं का कलेजा दहल जाता था, उसी अर्जुन के मुँह से गीत सुन सुन कर, स्त्रियाँ आज प्रसन्न होती हैं। जिस अर्जुन के मस्तक पर चमकता हुआ सोने का मुकुट रहता था, उसीके माथे पर आज स्त्रियों की तरह बालों का जूड़ा रहता है। भयङ्कर धनुपधारी अर्जुन को अपनी चोटी गुहे हुए, कन्याओं के बीच बैठा देख, मुझे घोर कष्ट होता है। जिस महात्मा के पास सब दिव्य अस्त्र रहा करते थे और जो सर्वविद्याओं का आधार है, वही आज कुण्डल पहने हुए हैं। हज़ारों मानी राजा जिसे देख कर, मर्यादा पर समुद्र के रुकने की तरह ठिठक जाते थे, वे ही अर्जुन आज विराट के यहाँ कन्याओं को नाचना गाना सिखाते हुए दास की तरह रह रहे हैं। हे भीम! जिसके रथ के चलने की घर्घराहट सुन कर, समस्त वनों एवं पर्वतों सहित सारी पृथिवी और सभी स्थावर जङ्गम काँपते थे और जिसके जन्म से माता कुन्ती को अपार सुख हुआ था, उसी तुम्हारे छोटे भाई की दशा देख देख मुझे अपार शोक होता है। उसीको सोने के गहने और कानों में कुण्डल पहने देख मुझे बड़ा कष्ट होता है। पृथिवी पर अद्वितीय धनुर्धारी आज कन्याओं से घिरा हुआ गीत गाता है और नाचा करता है। जिसे मनुष्यमात्र धर्म, वीरता और सत्य में अद्वितीय मानते हैं, उसी अर्जुन को स्त्रीवेश में देख, मैं मन ही मन जला करती हूँ। मदमत्त हाथी जैसे हथिनियों के बीच

में हो कर जाता है, वैसे ही अर्जुन को राजकन्याओं के बीच राजा विराट के पास जा कर गाते बजाते देख कर, तो शोक के मारे मैं अन्धी हो जाती हूँ और मुझे कुछ नहीं सूझता। कष्ट में प्राप्त हुए धनञ्जय और जुए तथा दुर्दैव के कारण अजातशत्रु युधिष्ठिर पर जो बीत रही है, निश्चय ही आर्या कुन्ती को उसका कुछ भी हाल नहीं मालूम है। हे भारत! जब मैं सहदेव को गौओं के साथ गोपाल वेश में आते देखती हूँ, तब सोच के मारे मैं पीली पड़ जाती हूँ। हे भीम! सहदेव की दशा का स्मरण आने पर तो मुझे नींद ही नहीं आती, सुख की कौन कहे। उसने तो कभी कोई पाप नहीं किया, फिर न जाने उसे क्यों इतना कष्ट भोगना पड़ रहा है। हे भरतश्रेष्ठ! श्रेष्ठ शरीर वाले सहदेव को राजा विराट ने गौओं और गोपालों पर नियुक्त किया था। उसी तुम्हारे छोटे भाई को गौओं और साँड़ों के बीच आते जाते देख, मैं उदास हो जाती हूँ। लाल कपड़े पहने जल्दी जल्दी हाथ में कोड़ा लिये गोपालों के आगे आगे आते हुए और उसे विराट को ससम्मान प्रणाम करके बातें करते देख कर तो मुझे, ज्वर सा चढ़ आता है। इसी सहदेव की प्रशंसा करते करते मेरी सास कहा करतीं थीं कि, यह बड़ा शीलवान्, सदाचारी एवं महाकुलीन है। जब हम सब वन को चलने लगे थे, तब उन्होंने मुझसे कहा था कि, सहदेव शर्मीला, मधुरभाषी, धर्मात्मा और मेरा प्यारा है और राजा का आज्ञाकारी है। रात में इससे चला न जायगा। जब यह सो जाय; तब तुम उसकी रक्षा करना और इसे स्वयं भोजन कराना। इसी वीर सहदेव को गौओं की सेवा करते देख और बछड़ों की खाल पर सोते देख, हे पाण्डव! कहो मैं किस तरह जीवन धारण करूँ। रूप, शस्त्रविद्या और बुद्धि में जो बेजोड़ समझे जाते हैं, वे ही आज राजा विराट के यहाँ अश्वबन्ध का काम कर रहे हैं काल की विपरीतता तो देखो। जिसे घोड़े पर सवार और बागडोर पकड़े देख कर शत्रुओं के दल फट जाते थे, उसी तेजस्वी नकुल को मैं आज राजा विराट को घोड़े दिखलाते हुए देखती हूँ! हे कौन्तेय! ऐसी दशा में भी क्या तुम मुझे सुखी समझते हो! राजा युधिष्ठिर के कारण

में अनेक दुःखों में डूबी हूँ। हे भारत! इनके अतिरिक्त और भी महाकष्टों को भी सहती हूँ। सुनो उन्हें भी मैं कहती हूँ। हाय तुम्हारे जीते जी अनेक दुःख मेरे शरीर को सुखाये देते हैं। इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है।

बीसवाँ अध्याय

द्रौपदी की अपने दुःखों के कहने के बाद भीम से कीचक को मारने की प्रार्थना करना

द्रौपदी ने कहा—हे भीम! मैं राजप्रासाद में अक्षधूर्त शकुनि के कारण सैरन्ध्री के वेश में सुदेष्णा की शौचदासी बन कर रह रही हूँ। मुझ राजकुमारी की इस विपरीत दशा को देखिये; किन्तु सब दुःख अमर नहीं हैं। इसी लिये मैं सुखदायी समय के आने की प्रतीक्षा कर के जीवित हूँ। मनुष्यों का जय, पराजय, सफलता और असफलता तो अनित्य हैं; यही सोचते सोचते मैं पतियों के उदय की प्रतीक्षा किया करती हूँ। दुःख सुख तो चक्र की तरह घूमा करते हैं, कभी दुःख आता है तो कभी सुख आता है, इसीका ध्यान रख कर मैं बराबर अपने स्वामियों के अभ्युदय की प्रतीक्षा किया करती हूँ। जिस कारण मनुष्य को विजय मिलती है कभी कभी उसी कारण से पराजय भी मिलती है, सो मैं उसी अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे भीम! तुम मुझ मरी हुई के समान की सुधि क्यों नहीं लेते? समय की गति ही न्यारी है। जो मनुष्य किसी समय दाता हो कर लोगों को दान देता है, शत्रुओं का नाश करता है और प्रबल को भी स्थानभ्रष्ट करता है; वही मनुष्य काल की विपरीत गति आने पर क्रम से भीख माँगता है। शत्रुओं द्वारा नष्ट किया जाता है और लोग उसे स्थानभ्रष्ट कर देते हैं। दैवगति को कोई नहीं रोक सकता और न कोई उसको उल्लङ्घन

ही कर सकता है। यही सोच कर मैं दैव पर विश्वास करती हूँ और उदय-काल की प्रतीक्षा किया करती हूँ। जहाँ पहले जल था और समय के फेर से जहाँ का जल सूख गया है, वहीं कालान्तर से जल पहुँच जाता है। इसी तरह अपने समय में परिवर्तन की आशा से मैं बराबर उदयकाल की प्रतीक्षा करती हूँ। जिस मनुष्य का बना बनाया खेल काल की प्रतिकूलता से बिगड़ जाता है उसे काल के अनुकूल करने की चेष्टा करनी चाहिये। इन मेरी सब बातों का तात्पर्य यदि तुम न समझे हो और यदि उनके समझने की तुम्हारी इच्छा हो, तो सुनो। मैं बतलाती हूँ। सुनो। पाण्डवों की पटरानी और राजा द्रुपद की पुत्री हो कर मेरी ऐसी दुर्दशा हुई है। मेरे सिवाय और कौन सी स्त्री ऐसी दशा में जीवित रहेगी। हे अरिन्दम! हे भारत! पाण्डवों के कारण प्राप्त मेरे दुःख से सब कौरव और पाञ्चाल दुःखी होंगे। भाई, ससुर और बहुत से पुत्रों वाली कौन स्त्री, इन दुःखों को भोगेगी। बाल्यावस्था में जब सुख और ऐश्वर्य में मेरे दिन कटते थे; तब अवश्य ही विधाता का कुछ अपराध मुझसे बन पड़ा था, जिसका फलरूप, हे राजन्! मुझे ये दुःख मिल रहे हैं। मेरे शरीर की वह सब कान्ति नष्ट हो गयी है, जो बनवास में स्वतन्त्र रहने के कारण मेरे शरीर में थी। मेरे बीते हुए सब कष्टों को तो आप जानते ही हैं और अब दासी की पराधीन अवस्था के कारण मुझे न सुख है और न शान्ति है। यह दैव की गति नहीं तो क्या है कि, महाबाहु एवं भयङ्कर धनुर्धारी अर्जुन छिपी हुई अग्नि के समान रहते हैं। भविष्य में होने वाले सुख और दुःख का हाल मनुष्य नहीं जान सकता, तुम्हें भी अपने इस अचानक पराभव का हाल नहीं ज्ञात होगा। किसी समय तुम सब इन्द्र के समान मुझे देखा करते थे और वही मैं अब हूँ जो दूसरे पुरुषों का मुख देखती हूँ। हे पाण्डव! देखो तुम्हारे सामने और जीते हुए मैं इस दुर्दशा को भोग रही हूँ, यही समय का हेरफेर है। बस इसीको देखो। जिसके आधीन किसी समय सागर तक समस्त पृथिवी थी, वही आज सुदेष्णा के आधीन है। जिसके आगे पीछे हज़ारों दासियाँ चलती थीं, वही मैं आज सुदेष्णा के

आगे पीछे चलती हूँ। इन सब के सिवाय एक और असह्य दुःख सुनो। मैं माता कुन्ती के लिये छोड़ कर अपने लिये भी अङ्गराग चन्दन आदि कभी नहीं घिसती थी। सो वही मैं आज राजा विराट के लिये अङ्गराग और चन्दन घिसा करती हूँ। हे कौन्तेय! देखो अङ्गराग घिसते घिसते मेरे हाथों में ठेठें पड़ गयी हैं। यह कह उसने भीम को अपने हाथ की ठेठें दिखलायीं और कहा, जो मैं तुमसे और आर्या कुन्ती से भी कभी नहीं डरती थी वही मैं हूँ; जिसे अब राजा विराट के सामने डरते डरते खड़ा होना पड़ता है। राजा मुझसे पूँछते हैं कि, चन्दन घिसा या नहीं? उन्हें मेरे घिसे हुए चन्दन के सिवाय और किसी का घिसा चन्दन अच्छा ही नहीं लगता।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह अपने दुःखों को सुना कर द्रौपदी, धीरे धीरे भीम के सामने रोने लगी। बार बार लंबी साँसे ले कर रोते रोते भीम के हृदय को कँपाती हुई द्रौपदी बोली कि, मैंने तो पहले देवताओं का कोई अपराध नहीं किया। फिर क्यों मुझे इतना कष्ट मिल रहा है, जो इस अवस्था में भी मुझे मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तब अपनी पत्नी के ठेठें पड़े छोटे छोटे हाथों को मुँह के समीप ला कर, शत्रुनाशन भीम भी रो पड़े। कौन्तेय दोनों हाथों को पकड़े पकड़े आँसू बहाते बहाते बड़े दुःखित हो कर बोले।

इक्कीसवाँ अध्याय

भीमसेन का द्रौपदी को समझाना

भीम ने कहा—हे द्रौपदी! मेरे भुजबल और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है जो तेरे लाल लाल हाथों में ठेठें पड़ गयी हैं। सभा ही में मैं विराट का नाश कर सकता था; किन्तु हे प्रिये! मेरे चुप रहने का कारण है, जिसकी तुम प्रतीक्षा किया करती हो। ऐश्वर्यमद से मत्त कीचक का सिर भी मैं बड़े भारी हाथी की क्रीड़ा की तरह कुचल डालता। हे द्रौपदी! मैंने

तो उसी समय विराट को उसके मनुष्यों सहित मारने की इच्छा की थी, जब उसके सामने कीचक तुझे लातों से मार रहा था। किन्तु मुझे धर्मराज ने आँख के इशारे से मना किया। इसलिये हे भामिनि! मैं चुप हो गया। अपने देश से निकाला जाना और दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र, शकुनि और पापी दुःशासन के शिरों का न कटना—ये दोनों बातें मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभ रही हैं। हे सुश्रोणि! तू अपना धर्म न छोड़ और हे बुद्धिमती! तू अपना क्रोध शान्त कर। राजा युधिष्ठिर यदि तेरे ये आक्षेप भरे वचन सुनेंगे तो निश्चय ही प्राण देदेंगे और अर्जुन तथा यमज भाई नकुल और सहदेव यदि इन बातों को सुनेंगे तो वे भी प्राण दे देंगे, उनके प्राण दे देने से मैं भी जीवित न रह सकूँगा। प्राचीन समय में वन में तप करते हुए शान्ति में लीन भृगुपुत्र च्यवन के शरीर पर वल्मीक नामक कीटों ने अपने मिट्टी के बिल तक बना डाले थे। तब भी उनकी स्त्री सुकन्या वन में उनकी सेवा करती थी। इसी तरह शायद हे भामिनि! तुमने सुना हो कि, परम रूपवती लक्ष्मी के समान इन्द्रसेना ने हज़ार वर्षों के अपने बुड्ढे पति की सेवा की थी। तूने जनकपुत्री सीता का भी हाल सुना होगा। वह भी वन में श्रीरामचन्द्र की सेवा किया करती थी। उसी वनवास के समय सीता को रावण लंका में हर कर ले गया था जहाँ उसने अनेक कष्ट सहे थे; किन्तु अन्त में अपने पति से वह मिली थी। इसी तरह अपनी सब अमानुषी इच्छाओं को रोकती हुई, हे भीरु! युवती और रूपवती लोपामुद्रा ने अगस्त्य मुनि की सेवा की थी। द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के मर जाने पर उनकी स्त्री पवित्राचरण वाली मनस्विनी सावित्री यमराज के पीछे पीछे यमलोक जाने को उद्यत हुई थी। हे कल्याणि! इन्हीं पतिव्रता स्त्रियों की तरह तुम भी सर्वगुणों से युक्त हो। तेरहवाँ वर्ष पूरा होने में केवल डेढ़ महीने और बाकी हैं। इनके बीतने पर तू फिर महारानी होगी।

द्रौपदी ने कहा—हे भीम! मुझ पर इतने दुःख पड़े कि, उन्हें न सह सकने से मैं घबड़ा कर रो पड़ी हूँ; किन्तु मैं राजा युधिष्ठिर को

ये उलाहने न दूँगी । बीती बातों के कहने से कोई लाभ नहीं; किन्तु वर्तमान में जो कर्तव्य है, हे भीम ! उसे तुम करो । सुदेष्णा के मन में सदा यही शङ्का बनी रहती है कि, कहीं मेरे अर्थात् सैरन्ध्री के अनुपम रूप को देख कर राजा विराट उन्हें अपने मन से उतार न दें। सुदेष्णा का मतलब समझ कर ही कीचक, जिसका देखना ही पापदायक है, सदा मुझसे प्रार्थना किया करता है । हे भीम ! उस समय मुझे क्रोध आ गया था; किन्तु उसे छिपा कर, मैंने उससे कहा कि, तू काम से अन्धे अपने आत्मा की रक्षा कर और कहा था कि, ओ कीचक ! मैं पाँच गन्धर्वों की प्यारी स्त्री हूँ और उन साहसी वीरों के क्रोध करते ही तेरा नाश हो जायगा । इस तरह मेरे बहुत समझाने पर भी पापी दुष्ट कीचक ने कहा—हे हास्यवदने ! मैं गन्धर्वों से नहीं डरता । उसने मुझसे कहा कि, लाखों गन्धर्व भी मुझसे लड़ने को आवेंगे तो मैं अकेला ही उन सब को मार डालूँगा । अतः हे भीरु ! तू निर्भय हो कर मुझे स्वीकार कर । उसके इतना कहने पर मैंने उस मदमत्त और कामान्ध कीचक से कहा—तू यशस्वी गन्धर्वों के समान बलवान नहीं है और मैं सुशीला, धर्मचारिणी तथा उत्तम कुल में उत्पन्न होने के कारण नहीं चाहती कि, मेरे पीछे किसी का नाश हो । इसी लिये हे कीचक ! तुम अभी तक जीवित हो । मेरी बातें सुन कर वह पापी बड़े ज़ोर से ठट्ठा मार कर हँसने लगा और फिर कैकेयी ने अपने भाई के स्नेह के कारण मुझे उसके यहाँ भेजा । कीचक ने मुझे अपने यहाँ किसी बहाने भिजवाने का प्रबन्ध अपनी बहिन से पहले ही कर रक्खा था और अपने भाई की इच्छा पूरी करने के लिये सुदेष्णा ने मुझे आज्ञा दी—तू कीचक के यहाँ से मेरे लिये मदिरा ले आ । मेरे वहाँ मद्य लाने के लिये जाने पर सूत-पुत्र मेरी खुशामद कर मुझे अपने जाल में फँसाना चाहता था; किन्तु उसकी बातों का तिरस्कार करने पर वह मुझ पर क्रुद्ध हुआ और उसने ज़बरदस्ती मुझे पकड़ना चाहा । मैं उस दुष्टात्मा के सङ्कल्प को जानते ही भाग कर, राजा के शरण में गयी ; परन्तु कीचक मेरे पीछे पीछे आया और राजा के सामने ही

गिरा कर मेरे लातें मारी। मुझे उस सभा में विराट, कङ्क तथा और भी बहुत से लोगों ने जिनमें रथी, महावत आदि थे, देखा था। राजा और कङ्क को मैंने बार बार उलहने दिये; किन्तु न तो राजा ने ही उसे रोका और न तुमने ही उसे मारा। यह राजा विराट का कीचक नाम का सारथि है, यह धर्महीन, नृशंस, स्त्री और पुरुषों का प्यारा, शूर, अभिमानी, पापी, व्यभिचारी और बहुत ढीठ है तथा राज्य से भी उसे बहुत सा धन मिलता है। प्रजा के रोते चिल्लाते रहते भी वह उनका धन छीन लेता है, वह सन्मार्गहीन है और अधर्मी है। पापी, पाप भावों से पूर्ण, काम के बाणों से पीड़ित एवं अविनयी कीचक को मैंने बार बार धिक्कारा है। देखते देखते ही वह मुझे मारेगा और पिटती हुई मैं यदि जीती भी रही तो बहुत दिनों का सञ्चय किया आपका धर्म कहीं नष्ट न हो जाय। यदि तुम अपनी वनवास की प्रतिज्ञा पर अड़े रहोगे तो तुम अपनी स्त्री से हाथ धोओगे। स्त्री के रहने से सन्तान की रक्षा होती है। सन्तान की रक्षा से अपनी रक्षा होती है। ज्ञानी लोगों ने इसी लिये स्त्री का नाम जाया रखा है। क्योंकि उसीसे पुत्ररूप में पुरुष का आत्मा उत्पन्न होता है। वर्णधर्म के उपदेश देने वाले ब्राह्मणों से मैंने सुना है कि, स्त्री को भी पति की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि वह चाहती है कि, पति किसी तरह उसके गर्भ से जन्म ले। शत्रुओं का नाश करना क्षत्रियों का सनातन धर्म है। धर्मराज की आँखों के सामने कीचक ने मुझे लातों से मारा है। उस समय तुम भी तो वहाँ मौजूद थे; किन्तु हे भीम! तुमने तो भयङ्कर जटासुर से मेरी रक्षा की थी, सो उस समय तुमने भी मेरे लिये कुछ न किया। इसके सिवाय सिन्धुराज जयद्रथ जब मुझे हरे लिये जाता था; तब अपने भाइयों के साथ तुमने मुझे बचाया था। सो मेरा अपमान करने वाले इस पापी को तुम क्यों नहीं मारते? वह राजा का मुँहलगा है। इसलिये मुझे दुःख देता है, अतः हे भीम! तुम उस कामोन्मत्त को वैसे ही मार डालो, जैसे कोई घड़े को फोड़ डालता है। हे भारत! जो मेरे बहुत से दुःखों का कारण है, वह यदि सूर्योदय तक जीवित रहा; तो मैं

कीचक के वश में न जा कर, विष घोल कर पीलूँगी। क्योंकि उसकी अपेक्षा हे भीम! तुम्हारे सामने मेरा मर जाना अच्छा है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! यह कह कर, द्रौपदी भीम की छाती पर गिर कर रोने लगी। तब भीम ने उसके आँसू पोंछ कर उसे छाती से लगाया और बहुत से दृष्टान्त दे कर उसे शान्त किया। तब फिर से द्रौपदी के आँसू पोंछ कर, वे ओठ काटते हुए कीचक का वध करने का विचार करने लगे और कुछ देर में क्रुद्ध भीम ने दुःखिनी द्रौपदी से कहा।

बाईसवाँ अध्याय

भीमसेन द्वारा कीचकवध

भीम बोले—हे भीरु! जैसा तू कह रही है मैं वैसा ही करूँगा। आज ही मैं बान्धवों सहित कीचक को मारूँगा। हे पवित्रहास्य वाली याज्ञसेनि! कल सायङ्काल को तू अपने दुःख और शोक को छिपा कर, कीचक से कहना—मैं चाहती हूँ कि, मेरे और तेरे सम्मिलन को कोई न जाने। इसलिये राजा विराट की बनवायी नृत्यशाला में, जहाँ दिन में कन्याएँ नाचना गाना सीखतीं और रात में जहाँ एकान्त रहता है—मिलना। वहाँ काठ की एक दृढ़ तथा सुन्दर शय्या है। वहीं तू कीचक से मिलने का प्रबन्ध करना और कीचक के वहाँ आने पर मैं उसे उसके बाप दादों के पास यमराज के यहाँ भेज दूँगा। हे कल्याणि! तू उससे ऐसी जगह छिप कर बात करना, जहाँ कोई तुझे उससे बातें करते न देख ले और ऐसा प्रबन्ध करना जिससे वह वहाँ अवश्य आ कर मारा जाय।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इसके उपरान्त, दोनों ने दुःख से दुःखी हो और रो रो कर, वह शेष भयानक रात्रि व्यतीत की। उस रात के बीतने पर सवेरे कीचक उठा और राजमहल में जा कर, द्रौपदी से बोला—राजा के सामने ही गिरा कर मैंने तेरे लातें मारी थीं। उस समय कोई तुझे न

बचा सका। विराट तो मत्स्य देश का नाममात्र का राजा है। वास्तव राजा तो मैं ही हूँ और मैं ही सेनापति भी हूँ। अतः हे भीरु! तू प्रसन्नतापूर्वक मेरा कहना मान तो मैं तेरा दास बन कर रहूँगा और तुझे सौ मोहरें रोज़ दूँगा। मैं तुझे सौ दासियाँ और अनेक दास दूँगा और घोड़ों से युक्त रथ दूँगा। तू मेरे साथ समागम करने को राज़ी हो जा।

द्रौपदी ने कहा—अच्छा मुझे मंज़ूर है, किन्तु कीचक! आज से तुझे प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि, तेरे भाई मित्र आदि कोई भी मेरे तेरे समागम को न जानें। क्योंकि मैं यशस्वी गन्धर्वों की निन्दा से बहुत डरती हूँ और इसी शर्त पर मैं तेरे अधीन हो सकती हूँ।

कीचक ने कहा—हे सुश्रोणि! जो तू कहेगी वही मैं करूँगा। हे भद्रे! मैं अकेला ही तेरे बतलाये एकान्त-स्थान में तुझसे मिलूँगा। हे रम्भोरु! मदनपीड़ित मैं तेरे साथ समागम के लिये ऐसे आऊँगा, जिससे सूर्य के समान तेजस्वी गन्धर्व तुझे न देख सकें।

द्रौपदी ने कहा—हे कीचक! राजा विराट ने अभी हाल में एक नृत्यशाला बनवायी है। उसमें दिन में लड़कियाँ नाचना गाना सीखती हैं और रात में वह सूनी पड़ी रहती है। इसलिये अन्धेरी रात में तुम वहाँ आना जिससे गन्धर्वों को भी पता न लगेगा और मैं बदनामी से भी बची रहूँगी।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इन बातों के हो जाने पर, द्रौपदी को वह दिन एक वर्ष के समान मालूम पड़ने लगा। कीचक भी अभिमान में भरा प्रसन्न होता हुआ घर चला गया। उस मूढ़ ने यह नहीं समझा कि, यह सैरन्ध्री उसकी कालरूपिणी है। उस काममोहित ने जल्दी जल्दी गन्ध, माला और गहनों से अपने शरीर को सजाया। विशालनेत्रा द्रौपदी का ध्यान करते करते और अपनी सजावट करते करते उसे वह दिन बहुत बड़ा प्रतीत होने लगा। उस समय कीचक की शोभा वैसे ही बहुत बढ़ी हुई थी; जैसे बुझने वाले दीपक का प्रकाश बत्ती भस्म होते समय होता है। काममोहित और स्त्री के शब्दों पर विश्वास करने वाले कीचक ने

समागम की चिन्ता में वह दिन विता डाला। इसके उपरान्त लंबे केशों वाली द्रौपदी रसोई घर में भीम के पास गयी और प्राणपति को प्रणाम कर के कहा—हे परन्तप! तुम्हारे आज्ञानुसार मैं नृत्यशाला में रात को कीचक से मिलने की प्रतिज्ञा कर आयी हूँ। उस शून्य नृत्यशाला में रात्रि को जब कीचक आवे; तब हे महाबाहो! तुम उसे वहीं समाप्त कर देना। हे पाण्डव! हे कौन्तेय! उस अभिमानी सूतपुत्र कीचक को तुम उस शून्य नृत्यशाला में जा कर मार डालना। वह अभिमानी सूतपुत्र गर्वीले गन्धर्वों का अपमान करता है। अतः हे श्रेष्ठ! तुम उसे उसी तरह ठीक करना जैसे श्रीकृष्ण ने यमुना में कालिय नाग को ठीक किया था। ऐसा करने से मुझ दुःखिनी के आँसू पुछेंगे, तुम्हारा भला होगा और अपने कुल का नाम होगा।

भीमसेन ने कहा—हे भद्रे! हे भीरु! जैसा तुम कहती हो, मैं वैसा ही करूँगा। तुमने यहाँ आ कर अच्छी बात सुनायी। हे सुन्दराङ्गी! मैं किसी की सहायता नहीं चाहता। कीचक से तेरे इस सम्मिलन की मुझे वैसी ही खुशी हुई है, जैसी मुझे हिडिम्ब राक्षस को मारने पर हुई थी। भाइयों और धर्म की शपथ खा कर मैं सत्य कहता हूँ कि, मैं कीचक को वैसे ही मारूँगा; जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था। अँधेरे या उजेले में कहीं भी हो, मैं कीचक को जीता न छोड़ूँगा और यदि मत्स्य देशवासी भी मुझ पर चढ़ाई करेंगे, तो मैं उन्हें भी मारूँगा। राजा युधिष्ठिर भले ही राजा विराट की सेवा किया करें; किन्तु मैं तो दुर्योधन को मार कर, पृथिवी को ले लूँगा।

द्रौपदी ने कहा—हे सामर्थ्यवान भीम! देखो, तुम प्रतिज्ञा तोड़ कर प्रकट न हो जाना, तुम गुप्त रूप ही से कीचक को मारना।

भीमसेन ने कहा—हे भीरु! तू जैसा कहती है मैं वैसा ही करूँगा। आज मैं उस कीचक को बान्धवों सहित मार डालूँगा। अँधेरी रात में अपने को गुप्त रखते हुए तुझ अलभ्या नारी को चाहने वाले कीचक का सिर मैं वैसे ही तोड़ डालूँगा, जैसे हाथी बेल को तोड़ डालता है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! रात होते ही भीम नाचघर में जा

छिपे और उसी तरह कीचक के आने की राह देखने लगे, जिस तरह सिंह छिप कर किसी क्षुद्र मृग के आने की राह देखता है। समय आने पर कीचक चन्दन लगा कर, पुष्पमाला तथा आभूषण आदि से सज कर, द्रौपदी के साथ समागम करने के लिये नृत्यशाला में गया। नृत्यशाला में प्रवेश कर वह द्रौपदी के बतलाये स्थान की ओर चला। वहाँ उस समय बड़ा अँधेरा था। उसके आने के पहले ही से अनुपम बल वाले भीमसेन एकान्त में बिछी शय्या पर लेटे हुए थे। उसी एकान्त में बिछी शय्या के पास वह दुर्बुद्धि जा पहुँचा। सूतपुत्र ने बड़ी प्रसन्नता के साथ शय्या पर सोने वाले का स्पर्श किया। उस समय द्रौपदी के अपमान को स्मरण कर के भीम क्रोध में भरे हुए थे। काममोहित कीचक भीम के शरीर को छू कर बड़ा प्रसन्न हुआ और हँस कर बोला—मेरा अनन्त धन, रत्न, सैकड़ों दास और दासियाँ आदि सामान आज तेरा हो गया। हे सुभ्रु! रूप लावण्य और गहनों से सजी सजाई अनेक युवतियों से शोभित अन्तःपुर आदि भी तैंने प्राप्त किया। तेरे लिये मैं सहसा यहाँ चला आया हूँ। घर की स्त्रियाँ सदा मेरी प्रशंसा करती और कहती हैं कि, मेरे समान सुन्दर वस्त्र धारण करने वाला और दर्शनीय पुरुष कोई भी नहीं है।

भीमसेन ने कहा—जो तू अपने रूप की प्रशंसा कर रहा है वह ठीक ही है, किन्तु तूने भी आज से पहले मेरे अङ्ग के समान और कोई अङ्ग भी स्पर्श न किया होगा। कामधर्म में चतुर होने से तू स्पर्श के भाव भी जानता होगा और स्त्रियों में प्रेम उत्पन्न करने वाला तेरे समान पुरुष भी दूसरा नहीं है।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इतना कहने के बाद एक साथ भीमकर्मा महाबाहु कुन्तीपुत्र भीम छलाँग मार कर खड़ा हो गया और हँस कर बोला—आज मैं तुझे पृथिवी पर वैसे ही घसीटूँगा जैसे सिंह पर्वताकार हाथी को घसीटता है और तेरी बहिन देखेगी। तेरे मरने पर सैरन्ध्री निर्विघ्न विचरेगी और उसके पति भी निश्चिन्त हो कर रहेंगे। इतना कह कर भीम ने मालादि से विभूषित कीचक के केश पकड़ लिये और उस

बली कीचक ने भी बड़ी तेज़ी से अपने बाल छुड़ा लिये और भीम की दोनों बाहें पकड़ लीं। वे दोनों क्रुद्ध वीर, दो सिंहों के समान लड़ने लगे। वसन्त ऋतु में जैसे एक हथिनी के पीछे दो हाथियों में युद्ध होता है, वैसे ही कीचकों में श्रेष्ठ कीचक और महापराक्रमी भीम में युद्ध होने लगा। प्राचीन काल में जैसा कपिसिंह वालि और सुग्रीव का युद्ध हुआ था, उसी तरह एक दूसरे को हराने की इच्छा से दोनों लड़ने लगे। उस समय वे लोग बाँहें ऊँची उठा उठा कर नाखूनों से खरवोट खरबोट कर उसी तरह लड़ रहे थे, जैसे पाँच फन वाले दो सर्प अपने अपने फन उठा कर क्रोध में भर कर युद्ध करते हैं। लड़ते लड़ते कीचक ने सहसा भीम पर प्रहार किया; किन्तु पराक्रमी भीम एक पग भी पीछे न हटे और जहाँ के तहाँ खड़े रहे। फिर वे एक दूसरे से लिपट कर इस तरह खींचाखाँची करने लगे जैसे बड़े भारी भारी दो साँड़ लड़ते समय करते हैं। दो व्याघ्रों के समान उस समय वे दोनों नाखूनों और दाँतों के हथियारों से तुमुल युद्ध कर रहे थे। इतने में कीचक ने दौड़ कर भीम की बाँहें इस तरह पकड़ लीं जैसे एक मत्त हाथी दूसरे मत्त हाथी को पकड़ लेता है। तब महाबली भीम ने भी उसे जकड़ लिया; किन्तु ज़ोर लगा कर कीचक छुट गया। उस समय दोनों की बाँहों के टकराने से ऐसा शब्द होता था, मानों बाँस फट रहे हों। बहुत ज़ोर की हवा चलने से जैसे पेड़ झुक कर टेढ़े मेढ़े हो जाते हैं, वैसे ही महाबली भीमसेन ने कीचक को उस नृत्यशाला में ज़ोर से दे मारा। युद्ध में भीम से पटका हुआ दुर्बल कीचक भी अपने बल के अनुसार भीम को खींचने लगा और क्षण भर को अपने वश में कर के अपनी जगह से हटे हुए भीम को उसने घोटुओं के बल गिरा दिया। इस तरह कीचक द्वारा गिराये जाने पर भीम दण्डधारी यम के समान फिर उठ खड़े हुए। इसके उपरान्त उस निर्जन स्थान में स्पर्धा और बल से उन्मत्त भीम और कीचक एक दूसरे को रगड़ने लगे। गुस्से के मारे दोनों गर्जने लगे जिससे वह नृत्यशाला काँप उठी। इतने में बलशाली भीम ने कीचक की छाती में एक घूँसा मारा, जिससे

कीचक हिल तो गया; किन्तु जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। थोड़ी देर तक तो वह पृथिवी पर खड़ा खड़ा भीम की दुःसह मार सहता रहा, किन्तु वह सूतपुत्र पीड़ा के मारे निर्बल हो गया। उसे निर्बल होता देख कर भीम उसे छाती से दबा कर, मसलने लगे। फिर क्रुद्ध भीम ने कीचक के बाल पकड़ कर ज़ोर से उसे ज़मीन पर पटक दिया। उस समय भीम वैसे ही देख पड़ते थे, जैसे अपनी शिकार मृग को मार कर सिंह। इसके उपरान्त भीम ने अपनी बाँहों में उसे इस तरह जकड़ लिया जैसे कोई पशु को रस्सी से बाँधता है। उस वेहोश और फूटी हुई भेरी के समान शब्द करने वाले को पकड़ कर भीम ने चारों ओर घुमाया। फिर उसने द्रौपदी का क्रोध शान्त करने के लिये दोनों हाथों से उसका गला दबा दिया। उस समय कीचक का सारा शरीर टूट गया था, और आँखों की पुतलियाँ निकल आयी थीं। उस समय भीम नीच कीचक की कमर को घुटनों से दबा कर हाथ से उसे यज्ञपशु की भाँति मारने लगे। पाण्डुनन्दन ने कीचक को छटपटाते देख कर पृथिवी पर अच्छी तरह घसीट कर कहा—आज मैं अपनी स्त्री के बैरी को मार और भाई के ऋण से मुक्त हो कर सैरन्ध्री के काँटे को दूर करता हुआ, शान्ति पाऊँगा। यह कह कर वीर भीम ने जिनकी आँखें क्रोध के मारे लाल लाल हो रही थीं वस्त्र और आभूषणों आदि से हीन छटपटाते कीचक को निर्जीव जान कर छोड़ दिया। जिस तरह पिनाकी शिव ने पशु को मार कर उसके अवयव उसीके शरीर में घुसेड़ दिये थे; उसी तरह भीम ने भी क्रोध के मारे ओठ चबाते और हाथ मींजते हुए कीचक के शरीर पर चढ़ कर कीचक के हाथ पैर और खोपड़ी को उसीके धड़ में घुसेड़ दिया। इसके उपरान्त उस माँसपिण्ड को द्रौपदी को दिखलाने की इच्छा से भीम ने द्रौपदी को बुला कर दिखलाया। महातेजस्वी भीम ने स्त्रियों में श्रेष्ठ द्रौपदी से कहा—हे पाञ्चाली! देखो, इस कामी की कैसी गति हुई है। हे महाराज! इतना कह कर भयङ्कर पराक्रमी भीम ने उस पापी की लाश को पैरों से ठुकराया और अग्नि जला कर द्रौपदी को उसका शरीर दिखाते हुए पाञ्चाली से कहा—हे सुन्दरकेशी! जो कोई तुझ

शील गुणों से युक्त स्त्री से दुष्ट अभिप्राय के लिये प्रार्थना करेगा, तो हे भीरु ! उसकी कीचक जैसी दशा होगी। द्रौपदी के मनचाहे उस कठिन काम को समाप्त कर के अर्थात् कीचक को मार कर क्रोध को शान्त करता हुआ द्रौपदी की अनुमति ले कर भीम तुरन्त पाकशाला को चला गया और स्त्रीश्रेष्ठ द्रौपदी भी अपना काम पूरा करवा कर प्रसन्न होती हुई और सन्ताप को शान्त कर के, बाहर आयी और बाहर आ कर उसने सभापालों से कहा—परस्त्री की कामना से मत्त कीचक को आज मेरे गन्धर्व पतियों ने मार डाला है; तुम लोग नृत्यशाला के अन्दर जा कर उसे देख आओ। उसकी बात सुन कर नृत्यशाला के रक्षक लोग बहुत सी मशालें लिये हुए अन्दर गये। वहाँ उन्होंने खून से डूबी निर्जीव कीचक की लोथ देखी। लोथ को हाथों और पैरों से रहित देख कर वे लोग बड़े दुःखी हुए। वे सब लोग बड़े विस्मय के साथ उसे देखने लगे। उसका मारा जाना अमानुषिक कर्म बतला, गन्धर्वों द्वारा मारे गये कीचक को देख कर, वे चिल्ला उठे और बोले अरे उसकी गर्दन कहाँ गयी, हाथ कहाँ गये, पैर कहाँ गये और सिर क्या हुआ !

तेईसवाँ अध्याय

कीचक के भाइयों का द्रौपदी को जलाने के लिये ले जाना, भीम द्वारा उन सब का मारा जाना और द्रौपदी का छुटकारा

वैशम्पायन जी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इतने ही में वहाँ पर कीचक के सब भाईबन्धु आ गये और उसे मरा हुआ देख कर, सब रोने पीटने लगे। स्थल पर चले आने पर कछुआ जैसे अपने सब अंग अन्दर कर लेता है, वैसे ही कीचक के सर्वाङ्ग शरीर में घुसे हुए देख कर, मारे डर के उन सब के रोएँ खड़े हो गये। इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था, वैसे ही भीम द्वारा मारे

गये कीचक का अन्तिम संस्कार करने की इच्छा से, लोग उसे बाहर निकालने लगे। उन आये हुए सूतपुत्रों ने पास ही खम्भों से लगी निर्दोषाङ्गी द्रौपदी को देखा। इकट्ठे हुए वे सब लोग चिल्लाने लगे और कहने लगे कि जिसके लिये कीचक की मृत्यु हुई, उसे शीघ्र ही मार डालना चाहिये या न मार कर इसे कीचक के साथ जला दो। क्योंकि हम लोगों को उचित है कि कीचक के मन की साध पूरी करें। तब उन लोगों ने राजा विराट से कहा कि, कीचक इसीके कारण मारा गया है। अतः हम लोग इसे भी कीचक के साथ जला देना चाहते हैं। इसलिये आप हमें आज्ञा दे दें। सूतपुत्रों के पराक्रम का विचार कर, राजा विराट ने कीचक के साथ द्रौपदी के जलाये जाने की अनुमति दे दी। उस समय कमल के समान नेत्रों वाली डरी हुई द्रौपदी बेहोश हो गयी। तब सब ने जा कर, उसे पकड़ लिया। फिर सुमध्यमा द्रौपदी को सब ने बाँध कर, कीचक के शव पर डाल दिया और सब सूतपुत्र, कीचक की अर्थी को ले कर श्मशान की ओर चल दिये। हे राजन्! इस तरह से पकड़ी हुई अनिन्दिता नाथवती सती द्रौपदी ने अपने पतियों को ज़ोर से पुकारा। द्रौपदी ने कहा—हे जय! हे जयन्त! हे विजय! हे जयत्सेन! हे जयद्बल! सुनो सूतपुत्र मुझे लिये जाते हैं। जिन मेरे गन्धर्व पतियों का शब्द और धनुष का टंकार वज्रपात के शब्द के समान है और जिनके रथ के चलने का महाशब्द होता है ऐसे हे गन्धर्व पतियों! सुनो। अरे ये सूतपुत्र मुझे श्मशान लिये जाते हैं। उस समय सोने के लिये जाते हुए भीम ने द्रौपदी के दीन विलाप को सुना और वहीं से बोले—हे सैरन्ध्री! मैंने तेरी कही बातें सुन लीं। इसलिये हे भीरु! अब तू सूतपुत्रों से मत डर।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इतना कह कर भीम ने जम्भाई ली और गन्धर्वों का वेष धारण किया और पाकशाला की दीवार छलाङ्ग कर वह बाहर आया और एक बड़े वृक्ष पर चढ़ कर उसने अर्थी ले जाते हुए सूतपुत्रों को देखा और उतर कर वह श्मशान की ओर उधर ही से चल दिया जिधर वे सूतपुत्र गये थे। इसके बाद नगरप्राकार को लाँघ कर, वह बाहर

हुआ और बहुत जल्दी सूतपुत्रों के आने के पूर्व ही श्मशान पर जा पहुँचा। हे राजन्! सूतपुत्रों ने जहाँ चिता बनायी थी उसीके समीप भीम ने एक ताड़ के गुच्छों के समान फल वाला लंबा और सूखा पेड़ देखा। परन्तप भीम ने उसे हाथों से उखाड़ लिया और दण्डधारी यम के समान शाखा प्रशाखा वाले उस बीस गज लंबे पेड़ को कन्धे पर रख कर, वे सूतपुत्रों की ओर तेज़ी से झपटे। उनके वेग से दौड़ते समय घुटनों की चपेट से बहुत से पीपल, बड़ आदि के वृक्ष ज़मीन पर गिर पड़े। उस समय क्रुद्ध सिंह के समान गन्धर्व को आते देख कर, सब सूतपुत्र भय और विषाद के मारे काँपने लगे और बोले कि, देखो बलवान् गन्धर्व क्रुद्ध हो कर वृक्ष को उखाड़े हुए आ रहा है। सैरन्ध्री को शीघ्र छोड़ दो। क्योंकि बड़ा भारी सङ्कट आ रहा है। जब वे इस प्रकार आपस में बातें कर ही रहे थे कि, इतने में वृक्ष लिये हुए भीम आ धमके। उन्हें देखते ही सब लोग कीचक और द्रौपदी को छोड़ कर नगर की ओर भागे। उन सब को नगर की ओर भागते देख कर जैसे इन्द्र दानवों का संहार करते हैं, वैसे ही हे राजन्! भीम ने उखाड़े हुए वृक्ष से एक सौ पाँच कीचकों को मार डाला। हे राजन्! इसके बाद महापराक्रमी पवनपुत्र भीम ने द्रौपदी को अर्थी से खोला और धैर्य बँधाया। वहाँ पर दुर्धर्ष महाबाहु वृकोदर भीम ने आँसू बहाती हुई दीना द्रौपदी से कहा—हे भीरु! तुझ जैसी निरपराधिनी को कष्ट देने वालों की यही गति होती है। हे कृष्णे! अब तू नगर में जा। तुझे अब कुछ भी भय नहीं है। मैं भी दूसरी राह से विराट की पाकशाला में जाता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जंगल के कटे हुए वृक्षों के समान कीचक के एक सौ पाँच भाई पृथ्वी पर निर्जीव पड़े थे। विराट के यहाँ कीचक को जोड़ कर एक सौ छः सूत थे। सो भीम ने उन सब को समाप्त कर डाला। हे भारत! यह देख कर, वहाँ के नरनारी—सब लोग बड़े विस्मित हुए और चुपचाप खड़े रहे।

———

चौबीसवाँ अध्याय

नगरवासियों का सूतों के मारे जाने से डर कर विराट से शिकायत करना और विराट का रानी द्वारा द्रौपदी से चले जाने के लिये कहना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! मरे हुए सूतों को देख कर, उन सब ने राजा विराट को सूचित कर के कहा—हे राजन् ! महाबली सूतपुत्रों को गन्धर्व ने मार डाला। जिस तरह वज्र की चोट से पर्वतों के शिखर टूक टूक हो कर गिर पड़ते हैं, उसी तरह सूत लोग भूमि पर मरे पड़े हैं। सैरन्ध्री मुक्त हो कर फिर आप ही आप महलों में आ रही है। हे राजन् ! इस लिये आपके नगर में सब संशय युक्त रहेंगे। सैरन्ध्री बड़ी रूपवती है और गन्धर्व लोग बड़े बलवान हैं और मनुष्य मैथुनप्रिय होते हैं। हे राजन् ! अतः आप कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे सैरन्ध्री के कारण आपका राज्य नष्ट हो न जाय। उनकी बातों को सुन कर, सेनापति राजा विराट ने आज्ञा दी कि, सब सूतों की अन्त्येष्टि क्रिया अच्छी तरह की जाय। एक ही चिता पर अग्नि प्रज्वलित कर के रत्न और सुगन्धियों के साथ सब कीचकों का शीघ्र दाह किया जाय। इसके उपरान्त अपनी पटरानी सुदेष्णा के पास जा कर राजा ने कहा कि, सैरन्ध्री के आने पर, उस से कह देना कि, सैरन्ध्री ! अब तेरी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जा। क्योंकि हे सुश्रोणि ! राजा, गन्धर्वों के द्वारा होने वाले अपने नाश से डरते हैं। गन्धर्वों से रक्षित होने के कारण तू त्याज्य है। यह कहने का साहस राजा को स्वयं नहीं है। स्त्रियों का एक दूसरी स्त्री से ऐसी बातें कहने में कोई हानि नहीं है। इस लिये कह देना कि राजा ने तुझसे कहलवाया है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इसी बीच में सूतपुत्रों के बन्धन से भीम द्वारा मुक्त की हुई द्रौपदी नगर की ओर चली। सिंह के भय से डरी

हुई छोटी मृगी के समान डरती हुई द्रौपदी अपने वस्त्रों को धो कर और स्नान कर, नगर में आयी। हे राजन्! उसे देखते ही लोग गन्धर्वों के डर से दसों दिशाओं में भागने लगे और बहुत लोगों ने उसे देखते ही अपनी आँखें बन्द कर लीं। द्रौपदी ने नगर में आ, पाकशाला के द्वार पर भीम को मत्त गजराज के समान खड़ा देखा। उसे देख कर द्रौपदी धीरे से मुस्कराई और इशारा कर के द्रौपदी ने कहा जिसने मुझे कष्टों से मुक्त किया मैं उस गन्धर्वराज को नमस्कार करती हूँ। भीम ने कहा—जो लोग पहले से पराधीन हो कर गुप्त वास कर रहे हैं, वे तेरे प्रेमपूर्ण वचनों को सुन कर हे सुभगे! अनृण हो कर सुखपूर्वक विहार करेंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इसके उपरान्त द्रौपदी नृत्यशाला में पहुँची और वहाँ उसने विशालबाहु अर्जुन को, राजा की कन्याओं को नाचना गाना सिखाते हुए देखा। निरपराधिनी होने पर भी दुःखिनी द्रौपदी को आते देख कर सब कन्याएँ अर्जुन के साथ बाहर निकल आयीं और बोलीं—हे सैरन्ध्री! तुझे मुक्त हो कर लौटते देख कर और तुझ निरपराधिनी को कष्ट देने वाले कीचकों का मारा जाना सुन कर, हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

वृहन्नला ने पूँछा—हे सैरन्ध्री! तू कैसे मुक्त हुई और वे पापी किस तरह मारे गये? यह सब हाल तू मुझे सुना।

सैरन्ध्री ने कहा—हे वृहन्नले! तुझे सैरन्ध्री से क्या काम? क्योंकि तू तो हे कल्याणि! कन्याओं के साथ सुख से रहती है। हे बाले! जो दुःख सैरन्ध्री भोगती है, उसे न जान कर ही तू हँसती है।

वृहन्नला बोली—हे कल्याणि! क्या तू नहीं जानती कि, मैं भी इस योनि से बड़ी दुःखी हूँ। जब से तू यहाँ है तभी से मैं भी यहाँ हूँ और तेरे कष्टों को देख कर किसे दुःख न होगा। किन्तु कोई भी किसी के आन्तरिक दुःख की अवस्था को नहीं जान सकता। इसीसे तू मेरी दशा नहीं जानती।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! इसके उपरान्त उन कन्याओं के साथ साथ महल में जा कर, द्रौपदी सुदेष्णा के पास खड़ी हो गयी। महा-

रानी ने राजा विराट की आज्ञा को सुनाते हुए उससे कहा—हे सैरन्ध्री ! अब जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ तू यहाँ से शीघ्र चली जा । हे भद्रे ! राजा और अन्य सब लोग तेरे गन्धर्वपतियों से डरते हैं । हे सुभ्रु ! तू भी तरुण है और तेरा रूप पृथ्वी पर बेजोड़ है और पुरुषों के मन में तुझे देखते ही विषयवासना उत्पन्न होती है और गन्धर्व बड़े क्रोधी हैं ।

सैरन्ध्री ने कहा—हे भामिनी ! राजा तेरह दिन क्षमा करके और मुझे रहने दें । इतने में वे अपना काम निस्सन्देह पूरा कर लेंगे । इसके बाद तुम्हारा प्रिय करने के लिये वे मुझे लेजावेंगे । इससे राजा और तुम सब का भला होगा ।

पचीसवाँ अध्याय

दुर्योधन के दूतों का पाण्डवों के न मिलने पर हताश हो कर लौटना और दुर्योधन को कीचक की मृत्यु का समाचार देना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! अपने छोटे भाइयों सहित कीचक के मारे जाने की घटना का विचार कर के लोगों को बड़ा भय लगा और आश्चर्य हुआ । वे कहने लगे कि, इस भरे पूरे नगर में दो ही मनुष्य बल के लिये प्रसिद्ध थे, एक तो राजा विराट का रसोइया बल्लव और दूसरा कीचक । शत्रुओं की सेना का नाश करने वाला दुर्मति कीचक पर-स्त्री-गामी था और इसी लिये वह पापी अपने कुकर्म के फल से गन्धर्वों द्वारा मारा गया । हे महाराज ! विरोधी सेनाओं के नाश करने वाले कीचक का वृतान्त देश-देशान्तरों में लोग जा जा कर कहने लगे । इसी समय कौरवों के भेजे हुए दूत बहुत से गाँवों और देशों में पाण्डवों को ढूँढ़ रहे थे । बहुत से देशों को मझाते और उनका हाल लेते अपना काम पूरा कर के वे चर अपने नगर

हस्तिनापुर में लौट आए। वहाँ राजसभा में धृतराष्ट्रपुत्रों, अन्य कौरवों, द्रोण, कर्ण, कृप और महात्मा भीष्म के अलावा त्रिगर्त के महारथी राजाओं के साथ सभा में बैठे हुए राजा दुर्योधन से वे कहने लगे।

दूत बोले—हे महाराज! महावनों में हम लोगों ने पाण्डवों को बहुत ढूँढा। हमने मृगों से पूर्ण, नाना वृक्ष तथा लताओं से पूर्ण और झाड़ियों तथा कुँजों से भरे हुए जंगलों के बहुत से स्थानों में उनकी खोज की; किन्तु बहुत ढूँढ़ने पर भी उन महापराक्रमी पाण्डवों के जाने के मार्ग का पता हमें नहीं मिला। फिर हमने उन्हें ऊँचे पर्वतों पर, पर्वत शिखरों पर, भिन्न भिन्न देशों में, मनुष्यों से भरी बस्तियों वाले नगरों में और उजाड़ स्थानों में खोजा; पर वहाँ कहीं भी उनका पता नहीं लगा। अतः हे राजन्! आपका भला हो, हमें प्रतीत होता है कि, निश्चय ही वे विनष्ट हो गये। इसके उपरान्त रथ के आने जाने वाले मार्गों में हमने उन्हें ढूँढा; किन्तु वे महारथी कहाँ हैं या क्या करते हैं सो हमें कुछ भी पता न लगा। कुछ समय के बाद ढूँढ़ते ढूँढ़ते हम लोग द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ हमें पाण्डवों के रथ और सूत तो मिले; किन्तु पाण्डवों या द्रौपदी का कुछ भी पता न मिला। हे भरतर्षभ! आपको नमस्कार है। वे लोग अवश्य नष्ट हो गये। क्योंकि उन महात्माओं की गति अथवा वासस्थान का कुछ भी पता नहीं लगा। हे राजन्! और न कोई कर्म ही ऐसा दिखलायी पड़ता है, जिसे हम पाण्डवों द्वारा किया हुआ कह सकें। अतः आप जैसा बतला दें वैसे ही हम पाण्डवों को फिर ढूँढ़ें। हे वीर! कल्याणकारी हमारी एक और बात आप सुनिये। त्रिगर्त देश के बहुत से महाबली योद्धाओं को जिसने मारा था, वही मत्स्य देश का बलवान सेनापति कीचक अपने भाइयों सहित अदृष्ट गन्धर्वों द्वारा मारा गया है। शत्रु की इस हानि को सुन कर, आप अवश्य प्रसन्न होंगे। आप अब जो उचित समझें सो करें।

छब्बीसवाँ अध्याय

दुर्योधन का सभासदों से पाण्डवों के ढूँढ़ने का उपाय पूछना, कर्ण और दुःशासन का अपनी अपनी सलाह देना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! दूतों की बातें सुन कर राजा दुर्योधन कुछ देर विचार कर अपने सभासदों से बोला—किसी बात को पूरी तरह जानना निश्चय ही बड़ा कठिन है। इसलिये आप सब इस बात का निश्चय कीजिये कि, पाण्डव कहाँ गये। अब पाण्डवों के अज्ञातवास का वर्ष समाप्त होने में थोड़ा ही समय शेष है। इस समय के व्यतीत होते ही सत्य-व्रत-परायण पाण्डव अपने राज्य को लौटेंगे। मद टपकते हुए हाथी और बड़े भारी विषधर सर्प के समान वे पाण्डव कौरवों के लिये अवश्य ही बड़े दुःखदायी होंगे। छिपे हुए सब पाण्डव काल के जानने वाले हैं। इस लिये उनके आने के पूर्व ही उनका पता लगा कर, उन्हें फिर से वनवास दे देना चाहिये, जिससे हमारा राज्य चिरकाल तक निष्कण्टक तथा शत्रुरहित हो! हे राजन्! यह सुन कर कर्ण ने कहा—हमारा भला चाहने वाले चालाक लोग गुप्त रूप से बड़े बड़े देशों और मनुष्यपूर्ण नगरों में जावें और वहाँ विद्वानों की सभाओं अथवा सिद्धों के आश्रमों में, राजधानियों, तीर्थों और पर्वतों की गुफाओं में बड़ी सतर्कता से पाण्डवों को ढूँढ़ें। इसी तरह अपना रूप बदल कर वे चतुर पुरुष अपना कार्य करते हुए नदी के तट वाली झाड़ियों, गाँवों, तीर्थों, रमणीक आश्रमों, पर्वतों की गुफाओं में जहाँ कहीं पाण्डव छिपे हों, उनका पता लगा कर उन्हें ढूँढ़ निकालें। इसके उपरान्त दुर्योधन के छोटे भाई पापी दुःशासन ने अपने बड़े भाई दुर्योधन से कहा—हे महाराज! हमें वेतन पाने वाले विश्वासी दूतों को मार्ग का खर्च दे कर पाण्डवों को ढूँढ़ने के लिये, फिर भेजना चाहिये। अभी कर्ण

ने जो कहा उसीको मान कर हमारे आज्ञानुसार सब दूत पाण्डवों को फिर ढूँढें। अभी तक पाण्डवों के जाने के मार्ग और आवासस्थान का पता नहीं लगा है। न जाने वे कहाँ छिपे हैं। या तो वे समुद्र के पार चले गये, या वन में सर्पों ने उन्हें डस लिया और इस प्रकार वे अभिमानी वीर मर गये। अथवा कष्ट के मारे घबड़ा कर, उन्होंने स्वयं प्राण त्याग दिये। अतः हे कुरुनन्दन! आप चित्त को स्थिर कर और मेरा कहा मान कर, उत्साह-पूर्वक उचित कार्य कीजिये।

सत्ताइसवाँ अध्याय
द्रोणाचार्य का परामर्श

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इसके उपरान्त तत्त्वार्थदर्शी महा-पराक्रमी द्रोण ने कहा—पाण्डवों जैसे महापुरुषों का नाश अथवा पराभव नहीं हो सकता। वे लोग वीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, कृतज्ञ तथा धर्मराज के अनुगामी हैं। नीति तथा धर्मार्थ के तत्व को जानने वाले, धर्म में स्थित, सत्यव्रत, छोटे पाण्डव अपने ज्येष्ठ भ्राता का पिता के समान आदर करते हुए उनके आज्ञाकारी हैं। हे राजन्! इसी तरह अजात-शत्रु धर्मराज भी छोटे भाइयों पर प्रीति रख कर बड़ों का सा आचरण करते हैं। इस तरह सावधान रहने वाले अपने महात्मा भाइयों के कल्याण का उपाय नीतिमान अर्जुन क्यों न करेंगे। पाण्डव मरे नहीं हैं; वे बड़ी सावधानी से सुकाल के उदय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बहुत विचार करके मेरे विचार में तो यही आता है। इसलिये अब जो काम करना हो, उसे शीघ्र करो। अच्छी तरह सोच विचार कर उनके आवासस्थान को ढूँढ निकालो। क्योंकि वे दुर्जेय, वीर और तपस्वी हैं। अतः उनको खोज लेना कोई सरल काम नहीं है। उनमें अर्जुन शुद्धात्मा, गुणवान, नीतिज्ञ, तथा सत्यव्रत है और वे इतने तेजस्वी तथा पवित्र हैं कि, प्रत्यक्ष दिखलायी

पढ़ने पर भी मनुष्य उन्हें पहचान न सके। इसलिये बहुत समझबूझ कर फिर से उनकी खोज कराओ। उनको अच्छी तरह पहचानने वाले ब्राह्मणों, दूतों, सिद्धों तथा अन्य ऐसे ही चतुर पुरुषों को खोज करने के लिये भेजो।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

भीष्म पितामह की सम्मति

वैशम्पायन जी बोले—तब भरतवंशियों के पितामह शान्तनु भीष्म ने देश काल तथा तत्वों को जानने वाले धर्मज्ञ द्रोण की बातें सुन कर, कहा—आचार्य का कहना यथार्थ है। पाण्डवों के विषय में और कौरवों के लाभ के लिये वे ठीक ही कहते हैं। धर्मात्मा युधिष्ठिर के सम्बन्ध में भीष्म पितामह ने ऐसी बात कही जो धर्मयुक्त, नीचों के लिये दुर्लभ और सत्पुरुषों द्वारा अङ्गीकृत थी। भीष्म ने कहा कि, सर्वार्थतत्वों को जानने वाले इन ब्राह्मण द्रोण ने जो कहा कि, पाण्डव सब सुलक्षणों से सम्पन्न, अच्छे व्रतों का पालन करने वाले, विद्वान्, सदाचारी, अनेक आख्यानों को सुने हुए, माननीय वृद्धों के उपदेशों पर चलने वाले, समय को पहचानने वाले, सत्यपरायण, प्रतिज्ञा को निबाहने वाले, पवित्र नियमों पर चलने वाले, क्षात्रधर्म में स्थित, सदा श्रीकृष्ण के अनुगामी, बड़े ही वीर तथा महाबली हैं और धर्म से रक्षित होने के कारण उन्हें कष्ट नहीं मिल सकता। मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि, वीर्यवान पाण्डव धर्मतः ही गुप्त हैं और उनका नाश नहीं हुआ है। हे भारत ! पाण्डवों के ढूँढ़ने का मैं तुम्हें बुद्धिमानी से भरा एक उपाय बतलाता हूँ। अच्छे नीतिज्ञ पाण्डवों को ढूँढ़ने के लिये साधारण दूत नियुक्त न किये जाँय। अपनी बुद्धि के अनुसार पाण्डवों की खोज के लिये जो उपाय मैं ठीक समझता हूँ वही बतलाता हूँ। इसे तुम यह न समझना कि, मैं द्रोह के कारण कहता हूँ। क्योंकि मेरे समान वृद्ध पुरुष को ऐसी नीति बतलाना अनुचित है। यह नीति अच्छी ही होगी और

निश्चय ही इसे कोई भी अनीति न कहेगा। हे तात! वृद्धों की आज्ञा में चलने वाले और सत्य बोलने वाले को सज्जनों की सभा में सदा नीतिपूर्ण वाक्य ही कहना उचित है। इस सज्जनों की सभा में जो कोई भी कुछ कहे उसे सब अवस्थाओं में यथार्थ ही कहना उचित है। अतः अन्य मनुष्य जैसा कहते हैं उसके अनुसार मैं पाण्डवों का रहना इस तेरहवें वर्ष में नहीं समझता। जिस नगर या बस्ती में राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ के लोगों का या उस नगर का कभी अकल्याण न होगा। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे वहाँ के लोग प्रियवादी, दानी, भव्य तथा सत्यपरायण, हृष्ट, पुष्ट, शुद्ध और चतुर होंगे। जिस जगह राजा युधिष्ठिर होंगे वहाँ के लोग असूयारहित (निष्कारण दूसरों में दोष देखने वाले) न होंगे, द्वेषरहित, अनभिमानी, मत्सरताशून्य और अपनी जाति धर्म के अनुसार आचरण करने वाले होंगे। वहाँ वेदगान का घोष होता होगा, यज्ञों की पूर्णाहुति पड़ती होगी और बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ होते होंगे। वहाँ निस्सन्देह सदा समय से वर्षा होती होगी और वहाँ की पृथिवी धनधान्य से पूर्ण होगी और वहाँ अकाल कभी न पड़ता होगा। वहाँ का धान्य गुणकारी और वहाँ के फल रसीले होंगे। मालाएँ गन्धवती होंगी और वहाँ के लोगों की वाणी शुभ शब्दों से पूर्ण होगी। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ का वायु शरीर को अच्छा लगता होगा, पाखण्डरहित धर्मानुष्ठान होता होगा और वहाँ किसी तरह का भय न होगा। वहाँ गौएँ बहुत होंगी और वे भी दुबली या कमज़ोर न होंगी, बल्कि बलवान तथा हृष्टपुष्ट होंगी और वहाँ का दूध, दही और घी हितकारी तथा रसयुक्त होंगे। जिस देश में राजा युधिष्ठिर होंगे, वहाँ की खाने पीने की सब चीजें गुणकारी तथा रसयुक्त होंगी। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे वहाँ के रस, स्पर्श, गन्ध और शब्दादि गुणकारक होंगे तथा वहाँ के दृश्य बड़े ही मनोहर होंगे। इस तेरहवें वर्ष में जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे; वहाँ के द्विजन्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी अपने अपने धर्म में युक्त होंगे। हे तात! जहाँ पाण्डव होंगे, वहाँ के लोग परस्पर प्रीति रखने वाले, सन्तोषी तथा पवित्र होंगे। वहाँ अकाल मृत्यु न

होती होगी। वहाँ के सब लोग देवता और अतिथि की पूजा करने में बड़ा अनुराग दिखलाने वाले और बड़ी प्रीति से दान देने वाले और अपने अपने कर्त्तव्यों में रत होंगे। उनके आचरण शुद्ध होंगे और वे स्वभाव से ही यज्ञ, व्रत और शुभ कर्म करने वाले होंगे। वहाँ के मनुष्य कभी भी झूठ न बोलते होंगे, शुभ बुद्धि तथा शुभ अर्थ को चाहने वाले हो कर, कल्याणकारी कर्म करने वाले होंगे। वहाँ के लोग उद्योगी तथा प्रिय व्रतों को करने वाले होंगे। हे तात! उन धर्मात्मा को द्विजाति भी न पहचान सकेंगे। जिनमें सत्य, धैर्य, दानशीलता, उत्तम शान्ति, नित्य क्षमा, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्ति, परम तेज, दया तथा सरलता आदि गुण सदा विद्यमान रहते हैं, उन युधिष्ठिर को भला साधारण मनुष्य कैसे पहचान सकता है। उपरोक्त प्रकार के नगर में राजा युधिष्ठिर अज्ञातवास करते होंगे इसलिये तुम वहीं प्रयत्नपूर्वक उनकी खोज कराओ, मेरी समझ में यही आता है। यदि तुम्हें अच्छा लगे, तो मेरे कथन पर विचार कर तदनुसार शीघ्र ही कार्य करो।

उन्तीसवाँ अध्याय

कृपाचार्य का सेना और कोष तैयार रखने का परामर्श

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इसके उपरान्त शारद्वत् कृपाचार्य ने कहा—वृद्ध भीष्म ने पाण्डवों के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है। उनके वाक्य धर्मार्थपूर्ण, युक्तियुक्त तथा समयानुकूल हैं। भीष्म के अनुरूप मैं भी जो कहता हूँ सो सुनो। पाण्डवों की गति और आवासस्थान दूतों के द्वारा जानना उचित है और अब ऐसी नीति पर चलना चाहिये जिससे कल्याण हो। साधारण वैरी की भी जब उपेक्षा करनी ठीक नहीं, तब हे तात! पाण्डव तो रण की सब विद्याओं में कुशल हैं। इसलिये गूढ़ भेष में छिपे हुए

महात्मा पाण्डवों के समय पर प्रकट होने के पूर्व ही स्वराष्ट्र का परराष्ट्र का तथा अपना बल जान लेना चाहिये। क्योंकि वह समय अब दूर नहीं है कि, जब समय को पूरा कर के पाण्डव प्रकट होंगे। महाबली महात्मा पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुकने पर बड़े उत्साह वाले हो जावेंगे। अतः अब आप नीतिपूर्वक काम करें अर्थात् सेना और कोष तैयार रखिये, जिससे उनके प्रकट हो जाने पर आवश्यकतानुसार सन्धि अथवा विग्रह किया जावे। हे तात! इन सब को जानते हुए भी अपना बल और अपने मित्रों तथा अपनी सेना की क्या दशा है सो बुद्धि से जाँचो। हे भारत! आप इसकी भी जाँच करें कि, कौन सी सेना आपसे प्रसन्न है कौन अप्रसन्न है और कौन तटस्थ है। उनकी प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता देख कर हमें सन्धि अथवा विग्रह करना चाहिये। नीति के अनुसार शत्रु को साम, दाम, दण्ड तथा भेद से जीतना चाहिये तथा दुर्बल शत्रु को बल से हराना चाहिये। इसलिये सान्त्वना से मित्रों को और मीठी बातचीत से सेना को प्रसन्न कीजिये। इस तरह सेना और कोष की वृद्धि से आपको कार्य में सफलता मिलेगी। इस प्रकार सेना तथा अपना बल तैयार रखने से बलवान शत्रु का आप सामना कर सकते हैं। फिर सेना और वाहनों से हीन पाण्डवों के चढ़ आने पर उनका सामना करना आपके लिये कुछ भी कठिन न होगा। इस तरह सब सोच विचार कर, धर्मपूर्वक कार्य करने पर हे नरेन्द्र! आप बहुत समय तक स्थायी रूप से सुखी रहेंगे।

तीसवाँ अध्याय

राजा सुशर्मा का कौरवों के साथ जाकर विराट पर चढ़ाई कर के उनका गोधन छीनने की मन्त्रणा देना और सब का विराट पर चढ़ाई करना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इसके उपरान्त त्रिगर्त का राजा रथी सेना का स्वामी सुशर्मा उस समय एक साथ बोला—हे प्रभो! शाल्व-देश-वासियों और मत्स्य-देश-वासियों की सेनाओं ने पूर्व समय में हमें बार बार हराया है और मत्स्यराज के सेनापति बलवान सूतपुत्र कीचक ने हमें भाईबन्धु समेत बड़ा कष्ट दिया था। कर्ण की ओर देखते हुए उसने दुर्योधन से कहा—उस समय बारम्बार मत्स्यराज ने हमारे देश को दुःख दिया था। क्योंकि उसका सेनापति बलवान कीचक था। वही पृथिवी पर विख्यात विक्रमशाली दुष्टात्मा तथा नृशंस कीचक अपने दुष्ट कर्म के कारण गन्धर्वों द्वारा मारा गया है। उसके मारे जाने से हे राजन्! मेरी समझ में विराट निराश्रय तथा दर्पहीन हो गया होगा। हे अनघ! मेरी राय है कि, हम सब वहाँ चढ़ाई करें। यदि सब कौरवों और महात्मा कर्ण की सम्मति हो तो ऐसे मौके पर विराट के धनधान्यपूर्ण देश पर चढ़ाई करने से बहुत से रत्न तथा नाना प्रकार का धन हमारे हाथ लगेगा। हम लोग उसके देश और गाँवों को जीत कर आपस में बाँट लेंगे या उसके यहाँ जा कर नगरवासियों को खूब तंग कर के उसके यहाँ से तरह तरह की सैकड़ों गौएं उड़ा लावेंगे। अतः हे राजन्! आज ही त्रिगर्त और कौरव मिल कर, उसकी गौओं को छीन लावें। यदि ऐसा न हो तो हम सब अपनी सेनाओं को विभक्त कर के उस पर चढ़ाई कर के उसके पराक्रम को नष्ट कर दें और उसकी सब सेना का नाश कर के उसे अपने वश में कर लें। उसे न्यायपूर्वक वश में करने से निश्चय ही हम सब सुखी

होंगे और उससे आपका भी बल बढ़ेगा। तब उसकी बात सुन कर दुर्योधन से कर्ण ने कहा—हे दुर्योधन ! सुशर्मा ने समय के अनुकूल ही बात कही है और इसमें अपना भी लाभ है इस लिये हे अनघ ! सेना को सजा कर और उसके छोटे छोटे भाग कर के शीघ्र ही मत्स्यराज पर चढ़ाई कर दें तो अच्छा है। आगे आपकी मर्ज़ी और कौरवों में सब से बड़े भीष्म जो बड़े बुद्धिमान हैं, द्रोण और शरद्वान के पुत्र कृपाचार्य की सलाह ले कर चढ़ाई के विषय में विचार कीजिये। हमें धन बल और पुरुषार्थ से हीन पाण्डवों के लिये उद्विग्न न होना चाहिये। क्योंकि वे नष्ट हो कर यमलोक पहुँच गये होंगे। हमें तो अब एक मत हो कर विराट की गौएँ और नानाप्रकार का धन लाना चाहिये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! यह सुन कर राजा दुर्योधन ने कर्ण की बात मान ली और उसने अपनी आज्ञा में चलने वाले छोटे भाई दुःशासन को आज्ञा दी कि, तुम वृद्ध कौरवों से सलाह ले कर शीघ्र सेना तैयार कराओ। हम कौरव लोग वहाँ एक ही उद्देश्य से जावें और वहाँ पहुँच कर पहले त्रिगर्तों सहित राजा सुशर्मा अपनी सेना और वाहनों को ले कर मत्स्यदेश पर एक ओर से चढ़ाई करें। उसके मत्स्यदेश पर चढ़ जाने के बाद शाम होते होते हम लोग समृद्ध और धन धान्यपूर्ण मत्स्यराज पर चढ़ाई करेंगे। जब कि वे सब त्रिगर्त विराट के नगर की ओर होंगे; तब उस समय हम लोग सपाटे से ग्वालों को घेर कर बहुत सा गोधन छीन लेंगे। अपनी सेना को दो भागों में बाँट कर, हम लोग विराट की सैकड़ों हज़ारों सुन्दर और बढ़िया गौएं छीन लेंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! कृष्णपक्ष की सप्तमी को त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपनी महाबली पैदल और रथियों की सेनाएँ ले कर गौओं को हरने और पुराने वैर का बदला लेने के लिये, अग्निकोण की ओर से राजा विराट के नगर पर चढ़ाई की। हे राजन् ! दूसरे दिन अष्टमी को सब कौरवों ने एकत्रित हो कर, दूसरी ओर से विराट के नगर पर चढ़ाई कर के हज़ारों गौएँ पकड़ लीं।

इकतीसवाँ अध्याय

पाण्डवों और सेना सहित राजा विराट का त्रिगर्तों का पीछा करना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! छद्मवेश में रहते और राजा विराट का काम करते हुए महातेजस्वी महात्मा पाण्डवों का तेरहवाँ वर्ष अच्छी तरह समाप्त हो चुका था। कीचक के मारे जाने के बाद से राजा विराट का कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पर बहुत विश्वास हो गया था। तदनन्तर तेरहवें वर्ष के बीतने पर बहुत सी सेना ला कर राजा सुशर्मा ने सहसा विराट पर चढ़ाई कर के बहुत सी गौएं पकड़ ली थीं। उन गौओं का रखवाला कानों में कुण्डल धारण करने वाला बड़ा गोप रथ में बड़े वेग से विराट नगर में आया और रथ से कूद कर सभा में गया, जहाँ कुण्डल आदि धारण किये हुए वीर योद्धाओं मन्त्रियों तथा पाण्डवों सहित राजा विराट बैठे थे। उसने सामने जा राजा से कहा कि, मुझे बान्धवों सहित युद्ध में हरा कर त्रिगर्त का राजा आपकी एक लाख गौएँ हँकाए लिए जाता है। हे राजेन्द्र ! अतः आप ऐसा उपाय करें, जिससे आपकी गौएँ आपको मिल जावें और वह उन्हें लेकर भाग न जाने पावें। यह सुनते ही राजा ने मत्स्यदेश की सेनाओं को सजाने की आज्ञा दी। उस सेना में बहुत से हाथी, रथ, घोड़े और पैदल थे और वह सेना फहराती हुई पताकाओं से सुशोभित थी। इसके उपरान्त राजा और राजकुमारों ने कवच पहने। उनके कवच चमकते हुए सोने के थे और इतने मज़बूत थे कि, वज्र भी उनमें प्रवेश न कर सकता था। विराट के प्रिय छोटे भाई शतानीक ने सब शस्त्रों को रोकने वाला सोने से मढ़ा हुआ कवच पहना। उसी तरह शतानीक के छोटे भाई मदिराक्ष ने भी सब शस्त्रों के प्रहारों को सहने वाला एवं सोने से मढ़ा हुआ कवच पहना। राजा विराट ने जो कवच धारण किया, वह सफ़ेद रंग का और दुर्भेद्य था और उस पर सौ दफ़े घिसने से भी न मिटने वाले, सौ

सूर्य, सौ विन्दु और नेत्राकार सौ पद्मवत् अंक बने थे। सेनापति सूर्यदत्त ने सूर्य की प्रभा के समान प्रभा वाला सोने की पीठ वाला दृढ़ कवच धारण किया। विराट के ज्येष्ठपुत्र वीर शंख ने सफ़ेद रंग का और लोहा भरा हुआ दृढ़ कवच पहना। इसके उपरान्त इसी तरह बहुत से देव समान योद्धागण अपने अपने कवच धारण कर युद्ध के लिये तैयार हो गये और हथियारों से भरे सुशोभित रथों पर, जिनमें सोने के कवच पहने हुए घोड़े जुते थे, बैठ कर लड़ने के लिये निकले। इसके उपरान्त सूर्य और चन्द्र जैसी कान्ति वाले एक रथ में राजा विराट की विशाल ध्वजा स्थापित की गयी। इसके बाद अन्य वीरों ने अपने अपने रथों पर ध्वजा लगायी। इसके उपरान्त राजा विराट ने अपने छोटे भाई शतानीक से कहा। कङ्क, बल्लव, गोपाल, तथा अश्वपाल दामग्रन्थि भी लड़ने वाले प्रतीत होते हैं। मेरी राय में ये लोग भी निस्सन्देह अच्छी तरह युद्ध करेंगे। अतः इन्हें भी ध्वजा पताका वाले रथ और विचित्र तथा दृढ़ कवच देने चाहिये। शरीर पर कवच धारण कराने के बाद इन्हें शस्त्र दो। क्योंकि इनका रूप वीरों का है और इनके अङ्ग हाथी की सूँड के समान गोल तथा दृढ़ हैं। यह सुन कर चारों पार्थों के लिये शतानीक ने सारथियों को शीघ्रता पूर्वक रथ तैयार करने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव के लिये सूतों ने रथ ला कर उनके सामने खड़े कर दिये। उन रथों को देख कर प्रसन्नतापूर्वक चारों पाण्डवों ने विराट के दिये भीतर से कोमल और बाहर से कठोर कवचों को पहना। सुन्दर घोड़ों से जुते हुए रथों पर सवार हो कर, शत्रुओं का नाश करने वाले नरश्रेष्ठ पाण्डव प्रसन्नतापूर्वक विराट नगर के बाहर निकले। रणविद्या में निपुण तेजस्वी, सत्यपराक्रमी, महारथी भिन्न नामों से छद्मवेश में रहने वाले चारों वीर भाई भिन्न भिन्न सोने से मढ़े रथों में सवार हो कर राजा विराट के पीछे पीछे युद्ध करने के लिये चल दिये। इसके बाद साठ साठ वर्ष की आयु वाले और जिनके विशाल मस्तकों से मद चूता था और जिनके बड़े बड़े दाँत बहुत ही अच्छे जान पड़ते थे तथा युद्ध विद्या, में शिक्षित थे, और जिनके ऊपर चतुर, युद्धकुशल

महावत बैठे थे, ऐसे हाथी चलायमान पर्वतों की तरह चले। इस तरह आठ हज़ार रथी, एक हज़ार हाथी और साठ हज़ार घुड़सवार सेना जो युद्ध करने में बड़ी कुशल थी, प्रसन्नता पूर्वक राजा को घेर कर नगर के बाहर आयी। हे भरतवंशी राजन्! हाथी, घोड़ों और रथों तथा मनुष्यों से भरी हुई वह सुशोभित सेना गौओं के पदचिन्हों को देखती हुई आगे बढ़ी।

बत्तीसवाँ अध्याय

राजा विराट और सुशर्मा का युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! शत्रुओं के नाश करने वाली तथा व्यूह बना कर चलती हुई मत्स्य देशी सेना ने सन्ध्या होते होते त्रिगर्तों की सेना को जा पकड़ा। त्रिगर्त योद्धा और मत्स्य देशी योद्धा दोनों ही बड़े लड़ाके थे और एक दूसरे से गौओं को हस्तगत करने के लिये वे सिंहनाद कर रहे थे। युद्धकुशल हाथियों पर सवार योद्धागण तोमरों तथा अङ्कुशों की मार से भयङ्कर हाथियों को शत्रुसेना की ओर बढ़ाने लगे। हे राजन्! यम के राष्ट्र को बढ़ाने के लिये वे दोनों सेनाएँ परस्पर प्रहार कर के बड़ा ही घोर तथा लोमहर्षण युद्ध करने लगीं। हे राजन्! सूर्य के डूबते डूबते परस्पर युद्ध करते हुए दोनों ओर के योद्धाओं में देवासुर संग्राम की तरह भयङ्कर युद्ध होने लगा। उस समय पैदल, हाथी, घुड़सवार आदि आपस में ख़ूब भिड़ रहे थे। उस समय दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे पर आक्रमण कर के ऐसा युद्ध कर रहे थे कि, उससे धूल उड़ कर चारों ओर फैल गयी और कुछ दिखलायी न देता था। सेना के पैरों से इतनी धूल उड़ी कि, आकाशचारी पक्षीगण अन्धे हो हो कर पृथिवी पर गिरने लगे और दोनों तरफ़ के योद्धाओं ने इतने बाण छोड़े कि, सूर्य नारायण ढक गये। उस समय आकाश के तारे जुगनू की तरह चमकते प्रतीत होते थे। उस समय दहिने और बाँए हाथ से बाण चलाने वाले वीर मर मर कर गिर रहे थे और बड़े

चढ़े योद्धा जल्दी जल्दी अपने सोने से मढ़े धनुष एक हाथ से दूसरे हाथ में बदल रहे थे। उस समय रथी सें रथी, पैदल से पैदल, घुड़सवार से घुड़वार, हाथीसवार से हाथीसवार, लड़ रहे थे। उस समय क्रोध से भरे हुए योद्धा गण एक दूसरे पर तलवार, प्रास, शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे। हे राजन् ! परिघ के समान बाहु वाले योद्धा लोग एक दूसरे पर वार करते थे; किन्तु वे लोग परस्पर एक दूसरे को भगा न सके। उस समय रणभूमि वीर योद्धाओं के कटे हुए कुण्डल आदि से अलंकृत सिरों से, जिनके ओठ और केश तलवारों से कट गये थे, बड़ा भयङ्कर दृश्य उपस्थित कर रही थी। कितनों के शाल वृक्ष जैसी टेढ़ी मेढ़ी शाखाओं के समान शरीर इधर उधर कटे हुए पड़े थे। उस समय वीरों की कटी हुई भुजाएँ ऐसी दीखती थीं मानों चन्दन लगाये हुए सर्प पड़े हों। इसी तरह की भुजाओं और कुण्डलों तथा मुकुटों से अलंकृत कटे हुए शिरों से समरभूमि भरी हुई थी। उस समय रथी लोग परस्पर भिड़े हुए भयानक युद्ध कर रहे थे। उस समय फिर हाथीसवार हाथीसवार से, पैदल पैदल से और घुड़सवार घुड़सवार से भिड़ कर घोर युद्ध करने लगे। उनके घावों से बहते हुए रक्त से धूल का उड़ना बन्द हो गया। अब योद्धा लोग आवेश में आ कर, युद्ध की मर्यादा का उल्लङ्घन कर के भयङ्कर युद्ध करने लगे। उनके बाणों की चोटों से घबड़ा कर आकाशचारी पक्षीगण रथों की ध्वजाओं पर आ बैठे। परिघ के समान बाहु वाले योद्धागण समर में एक दूसरे पर भयङ्कर प्रहार करते हुए भी कोई किसी को पीछे न हटा सके। शतानीक सौ योद्धाओं को मार कर और चार सौ योद्धाओं को मार कर, विशालाक्ष महारथी त्रिगर्तों की विशाल सेना में जा घुसे और वे दोनों मनस्वी तथा पराक्रमी योद्धा त्रिगर्त सेना में घुस कर बाहुबल से रथियों के बाल पकड़ पकड़ कर रथों से खींच खींच कर मारने लगे। त्रिगर्तों पर निशान लगाते हुए दोनों ने रथ आगे बढ़ाये। सूर्यदत्त आगे से और मदिराक्ष पीछे से घुसे। महारथी राजा विराट ने, उस युद्ध में पाँच सौ हाथी, सौ घुड़सवार और पाँच महारथियों को मार कर

समरभूमि में अपने सोने के रथ को विविध मार्गों में घुमा और युद्ध करते हुए त्रिगर्तराज सुशर्मा पर आक्रमण किया। अब वे दोनों महाबली महात्मा एक दूसरे को देख कर वैसे ही गर्जने लगे जैसे गौओं के झुंड में दो साँड गर्जते हैं। इसके उपरान्त द्वैरथ युद्ध करता हुआ त्रिगर्तों का राजा सुशर्मा विराट के सामने आ गया। क्रोध में भरे हुए दोनों वीरों ने अपने अपने रथ आगे बढ़ा कर, एक दूसरे के सामने डटा दिये और दोनों इस तरह बाण चलाने लगे जैसे मेघ जल बर्साते हैं। दोनों ही अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण थे और दोनों के पास गदा शक्ति और तलवारें थीं और वे असह्य क्रोध में भरे हुए पैने बाण चला कर युद्ध करने लगे। इतने में विराट ने दस बाण मार कर सुशर्मा को बींध डाला और उसके पाँचों घोड़ों के पाँच पाँच बाण मारे। तब युद्धकुशल सुशर्मा ने मत्स्यराज के पचास पैने पैने बाण मारे। हे महाराज! उस समय विराट ने और सुशर्मा की सेनाओं में परस्पर युद्ध होने से चारों ओर इतनी धूल छा गयी थी कि, कोई एक दूसरे को पहचान न सकता था।

तैंतीसवाँ अध्याय

मत्स्य-त्रिगर्त युद्ध में विराट का पकड़ा जाना और पाण्डवों द्वारा उनका त्रिगर्तों से छुटकारा

वैशम्पायन जी बोले—हे भारत! धूल उड़ने और रात होने से उस समय बहुत अन्धकार छा गया था। इसलिये व्यूह रचने वाले योद्धा गण मुहूर्त भर के लिये युद्ध रोक कर चुपचाप खड़े रहे। इसके उपरान्त अन्धकार को दूर करता और रात्रि को निर्मल करता हुआ चन्द्रमा निकल आया, जिसके दर्शन से क्षत्रिय बड़े प्रसन्न हुए। प्रकाश होने पर फिर घोर युद्ध आरम्भ हुआ। परस्पर एक दूसरे को न देख कर, आवेश में भरे हुए योद्धा युद्ध करने लगे। इतने में त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने छोटे भाई के साथ बड़े

बड़े रथियों को ले कर मत्स्यराज पर धावा किया और पास आ कर दोनों वीर क्षत्रिय भाई गदा हाथ में लिए हुए रथ से कूद कर राजा विराट की ओर झपटे। इसी तरह उनकी सेना के अन्य योद्धागण भी गदा, तलवार, खड्ग, फरसे और पैने प्रासों से क्रोध में भर कर युद्ध करने लगे। त्रिगर्त-राज सुशर्मा ने भाई की सहायता से राजा विराट की सेना तितर बितर कर दी और बलपूर्वक सेना को हरा दिया और विजयी लोगों ने राजा विराट पर चढ़ाई की। उन्होंने राजा विराट के दोनों घोड़ों, अंगरक्षकों तथा सारथी को काट कर राजा विराट को जीवित ही रथ के भीतर से बाहर खींच लिया। जैसे कोई कामी पुरुष युवती को हरता है, वैसे ही सुशर्मा, राजा विराट को अपने रथ में ढकेल कर जल्दी जल्दी रथ को हँका कर भागने लगा। जब विराट को रथहीन कर के और अपने रथ में कैद कर के सुशर्मा जाने लगा, तब त्रिगर्तसेना की मार से विराट की सेना इधर उधर भागने लगी। मत्स्यदेशी सेना को इस तरह नष्ट होते देख कर, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर शत्रु-नाशन महाबाहु भीम से बोले—त्रिगर्तराज सुशर्मा, विराट को पकड़े लिये जाता है। अतः हे महाबाहो! शत्रुओं के अधीन होने के पूर्व ही तुम उन्हें छुड़ा लाओ। हे भीम! विराट के यहाँ हमने सुख से समय बिताया है और उसने हमारी सब इच्छाएँ पूरी की हैं और बराबर उसने हमारा सन्मान किया है। अतः तुम्हें उसका बदला चुकाना चाहिये भीम ने कहा—बहुत अच्छा। आपके आज्ञानुसार मैं उन्हें छुड़ाता हूँ। अब आप शत्रुओं के साथ हमारा भयानक युद्ध देखिये। आप भाइयों सहित यहीं ठहरिये और अपने बाहुबल से जो युद्ध हम करते हैं उसे देखिये। सामने वाले वृक्ष के गुद्दे गदा की तरह हैं। उसे उखाड़ कर उसकी मार से मैं शत्रु को भगाता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! मत्त हाथी की तरह भीम को उस वृक्ष की ओर देखते हुए देख कर, धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने वीर भ्राता से कहा—अरे भीम! ऐसे साहस का काम न करना। इस वृक्ष को जहाँ का तहाँ रहने दो। हे भारत! यदि तुम वृक्ष को उखाड़ कर, अमानुषिक कर्म करोगे, तो सब

लोग जान जावेंगे कि, यह भीम है। अतः तुम किसी अन्य मानवी शस्त्र को ले कर मनुष्यों की तरह काम पूरा करो; जिससे तुम्हें लोग पहचान न सकें। सो तुम धनुष, शक्ति, तलवार या फरसा ऐसे मानवी शस्त्र को ले कर जल्दी से त्रिगर्तराज के बन्धन से विराट को छुड़ा लाओ। पराक्रमी नकुल और सहदेव तुम्हारे साथ रह कर, चक्ररक्षकों का काम करेंगे। फिर तुम सब युद्धभूमि में जा कर राजा विराट को छुड़ाने का प्रयत्न करो।

वैशम्पायन जी ने कहा—इतना सुन कर बड़ी तेज़ी से भीम ने एक बड़ा भारी धनुष ले लिया और वे इस तरह तेज़ी से बाण चलाने लगे, जैसे मेघ जल बर्साते हैं। फिर अपने रथ को सुशर्मा के रथ के पीछे भगा कर राजा विराट को देख कर भीम ने कहा—ठहर ठहर। अपने पीछे खड़े रहो खड़े रहो की आवाज़ सुन कर, सुशर्मा, अपने रथ के पीछे महाकाल के समान भीम को खड़ा देख कर, चिन्तित हुआ। उसने देखा कि, बड़ा भारी युद्ध फिर करना पड़ेगा। पलक मारते मारते भाइयों के साथ सुशर्मा धनुष ले कर लौट पड़ा। सहस्रों घुड़सवार, हाथी, रथी तथा उग्रधन्वा वीरों को भीम ने विराट के सामने ही मार गिराया। इस तरह भयानक युद्ध होते देख युद्धदुर्मद सुशर्मा ने सोचा कि, हमारे पास अब शेष क्या बचा, हमारे सामने ही हमारी सेना का नाश हो रहा है और हमारा भाई भी बड़ी बलवती सेना के बीच पड़ गया है। यह सोच कर कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींच खींच कर वह पैने बाण छोड़ने लगा। यह देख कर पाण्डवों को त्रिगर्तों पर बड़ा क्रोध आया और वे उनकी ओर रथ बढ़ा कर दिव्य अस्त्रों की वर्षा करने लगे। त्रिगर्तों की ओर पाण्डवों को रथ फेरते देख कर विराट के पक्ष की सेना क्रोध में भर कर भीषण युद्ध करने लगी। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने एक हज़ार त्रिगर्त मारे और सात हज़ार त्रिगर्तों को भीम ने यमलोक का दर्शन कराया। नकुल ने अपने बाणों की मार से सात सौ त्रिगर्त परलोक भेजे और सहदेव ने तीन सौ वीरों को सदा के लिये धराशायी किया और युधिष्ठिर की आज्ञा से महाउग्र सहदेव अस्त्र उठा कर सुशर्मा पर चढ़ दौड़े। इस तरह मारते काटते महारथी

राजा युधिष्ठिर त्रिगर्तों की सेना को चीरते हुए तेज़ी से सुशर्मा की ओर बढ़े और उसके ऊपर बाणों की खूब वर्षा की। उस समय क्रुद्ध हो कर सुशर्मा ने युधिष्ठिर के नौ बाण और उनके रथ के घोड़ों के चार बाण मारे। इतने में भीम भी अपना रथ बढ़ाते हुए वहाँ आ पहुँचे और बड़े पैने बाण चला कर उन्होंने पृष्ठरक्षकों सहित सुशर्मा के घोड़ों को मार डाला और गुस्से में आ कर त्रिगर्तराज के रथ से उनके सारथि को गिरा दिया कि, इतने में राजा विराट का चक्ररक्षक प्रसिद्ध वीर मदिराक्ष वहाँ आ पहुँचा और रथहीन त्रिगर्त को देखते ही बाण चलाने लगा। इसी समय राजा विराट रथ से कूद पड़े और उसकी (सुशर्मा की) गदा ले कर उसीसे लड़ने के लिये दौड़े। उस समय गदा घुमाते हुए बूढ़ा राजा विराट युवा से दिखलायी पड़ते थे। इतने में त्रिगर्तराज को भागते देख कर, भीम ने कहा—हे राजपुत्र! लौट, लौट! इस तरह तेरा भागना ठीक नहीं। क्या तू इसी पराक्रम पर गौएँ हरने आया था? और अब अपने अनुचरों को शत्रु के बीच पीड़ित होते छोड़ कर, भागा जा रहा है। भीम की बातें सुन कर रथियों के स्वामी सुशर्मा ने कहा—ठीक है। तू खड़ा रह, खड़ा रह, यह कहता हुआ वह भीम पर चढ़ आया। महाबली भीम भागते हुए त्रिगर्तराज को पकड़ने के लिये अपने रथ से कूद कर सुशर्मा को जीता पकड़ लेने के लिये उसके पीछे वैसे ही दौड़े जैसे क्षुद्र मृग को पकड़ने के लिये सिंह दौड़ता है। उसने जा कर भागते हुए सुशर्मा के बाल पकड़ लिये और गुस्से से भर उसे ज़मीन पर पटक दिया और उसे वह रगड़ने लगा। रोते चिल्लाते सुशर्मा के सिर पर भीम ने एक लात जमाई और पेट में घुटने टेक कर गाल पर ऐसे ज़ोर से एक घूसा मारा कि, त्रिगर्तराज बेहोश हो गया। रथहीन महारथी त्रिगर्तराज का पकड़ा जाना देख कर, त्रिगर्तसेना तितर बितर हो गयी और डर के मारे उसका सारा उत्साह भङ्ग हो गया। महारथी पाण्डव तदुपरान्त सब गौओं को लौटा लाये और जीते हुए सुशर्मा का सब धन भी छीन लाये। बाहु-बल-सम्पन्न, लज्जाशील, दृढ़व्रती महात्मा एवं विराट का क्लेश निवारण करने वाले पाण्डव विराट के

पास आ खड़े हुए। तब भीम ने कहा—इस पापी का मेरे हाथ से जीवित निकल जाना तो ठीक नहीं है। किन्तु जो राजा सदा से दयावान है, उसके सामने मैं कर क्या सकता हूँ? इसके उपरान्त धूल से भरे और बँधे हुए राजा का गला पकड़ कर और उसे अपने रथ में बैठा कर भीम रणभूमि में राजा युधिष्ठिर के पास गये। भीम ने राजा सुशर्मा को जब युधिष्ठिर को दिखलाया तब उन पुरुषव्याघ्र ने हँस कर युद्ध में शोभा पाने वाले भीम से कहा—भाई! अब इस नीच को छोड़ दो। यह सुन कर भीम ने महाबली सुशर्मा से कहा—अरे नीच! यदि तू जीवित ही रहना चाहता है तो जो मैं कहता हूँ सो तू कर। सर्वसाधारण तथा विद्वानों की सभा में तुझे कहना पड़ेगा कि, "मैं दास हूँ।" इसी शर्त पर मैं तुझे जीवित छोड़ सकता हूँ। क्योंकि युद्ध में जीते हुओं के लिये यही विधि है। यह सुन कर बड़े भाई युधिष्ठिर ने प्रेम-पूर्वक कहा—यदि तुम मेरे वचनों को प्रमाण मानते हो, तो इस नीच आचरण वाले मनुष्य को छोड़ दो। यह राजा विराट का दास तो हो ही चुका। जाओ तुम उदास हो कर मुक्त हुए अब कभी ऐसा मत करना।

चौंतीसवाँ अध्याय

विराट द्वारा पाण्डवों का सम्मानित होना और दूतों का नगर में विजयसमाचार ले जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर की बात सुन कर लज्जा के मारे सुशर्मा ने अपना मुँह नीचे कर लिया और छूट जाने पर भी भरी सभा में राजा विराट को आ कर उसने प्रणाम किया और वह चला गया। लज्जाशील, दृढ़प्रतिज्ञ, महाबलवान पाण्डवों ने त्रिगर्तों को हरा कर और सुशर्मा को क़ैद कर के उससे विराट को नमस्कार करवाया और उस रात को रणभूमि में ही वास किया। तदुपरान्त राजा विराट ने अलौकिक पराक्रमी कुन्तीपुत्रों का

अच्छी तरह सन्मान किया और बहुत से वस्त्र तथा धन दे कर वे बोले— मेरे पास जितना धन रत्न तथा अन्य पदार्थ; जैसे मेरे हैं वैसे ही उन पर तुम्हारा भी अधिकार है। हमारे नगर में निज इच्छा के अनुसार सुखपूर्वक तुम लोग रहो। हे युद्ध में शत्रुओं का नाश करने वालों! मैं तुम लोगों को आभूषण पहने सुन्दर कन्याएँ, धन, पृथिवी आदि देता हूँ और जो कुछ तुम बतलाओ सो तुम्हारी इच्छाएँ भी मैं पूरी करूँ। तुम लोगों ही के पराक्रम के फल स्वरूप मैं मुक्त हो कर सकुशल बैठा हूँ। इस लिये तुम्हीं लोग मत्स्यदेश के अधीश्वर हो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! राजा विराट के स्नेहपूर्ण वचनों को सुन कर, युधिष्ठिर को आगे कर सब पाण्डव हाथ जोड़ कर पृथक् पृथक् कहने लगे। हे राजन्! आप जो कहते हैं वह प्रशंसनीय है, हमलोग तो आपके मुक्त हो जाने ही से बड़े प्रसन्न हैं। इसके उपरान्त महाबाहु श्रेष्ठ राजा विराट ने प्रसन्न हो कर, युधिष्ठिर से कहा—आओ, मैं आपका अभिषेक कराऊँ। आइये आप इस मत्स्यदेश के राजा बनिये, पृथिवी के दुर्लभ भोग, रत्न, गौएँ, सुवर्ण तथा मोती आपको मैं इच्छानुसार देता हूँ। हे व्याघ्रपाद गोत्र वाले ब्राह्मण! आपको सब प्रकार नमस्कार है। तुम्हारे ही कृत्य से मैं आज अपने राज्य को और सन्तान को देख रहा हूँ। क्योंकि आपके कारण शत्रु के हाथ में जा कर भी मेरा छुटकारा हो गया।

तब युधिष्ठिर ने फिर मत्स्यराज से कहा—हे राजन्! आपकी बातें बड़ी मनोरञ्जक हैं। अतः मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। ईश्वर करे आप सदा दयावान और सुखी रहें। हे महाराज! अब आप शीघ्र दूतों के द्वारा नगर में विजय-समाचार भिजवा दीजिये; जिससे विजयघोषणा होने पर आपके मित्रगण प्रसन्न हों। यह सुन कर राजा विराट ने दूतों को आज्ञा दी कि, हे दूतों! नगर में जा कर संग्राम में प्राप्त हमारी विजयघोषणा करो और आज्ञा दो कि, गहने आदि से सज कर कुमारियाँ मेरे सामने आवें और सजी हुई तथा गाती बजाती वेश्याएँ भी आवें। राजा विराट

की आज्ञाओं को सिर पर चढ़ा कर, दूत लोग प्रसन्न होते हुए चल दिये। रात्रि में चले हुए दूतों ने सूर्योदय होते होते नगर के पास पहुँच कर विजय-घोषणा करनी आरम्भ कर दी।

पैंतीसवाँ अध्याय

कौरवों द्वारा विराट का गोधन हरण और गोपालों का भाग कर उत्तर के पास समाचार लाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जिस समय त्रिगर्तराज अपनी सेना ले कर विराट के पशुओं को हरने गये थे, उसी समय अपने मन्त्रियों तथा सेना सहित प्रतिज्ञानुसार दुर्योधन ने भी पशुओं के चुराने के लोभ से विराट पर चढ़ायी की थी। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप आदि अस्त्रवेत्ता, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सुबल का बेटा शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, तथा चित्रसेन आदि वीर और दुर्मुख तथा दुःशल आदि महारथियों ने मत्स्य देश में पहुँच कर राजा विराट के ग्वालों को भगा कर बलपूर्वक गोधन छीन लिया। साठ हज़ार गौओं को कौरव लोग रथों से घेर कर ले चले। रोकने पर कौरवों ने रखवाले ग्वालों को मारा, उस मार की पीड़ा से वे सब बड़ा हाहाकार करने लगे। ग्वालों का मुखिया डर के मारे रथ पर सवार हो कर रोता चिल्लाता समाचार देने के लिये शीघ्र ही नगर में आया। नगर में आ कर वह राजमहल के पास रथ से उतर पड़ा और समाचार देने के लिये महल में घुस गया। वहाँ राजा विराट के भूमिञ्जय नामक मानी पुत्र को देख कर उसने अपने देश की गौएं छीनी जाने का सब हाल कहते कहते कहा कि, आपकी साठ हज़ार गौएं कौरव लोग हरे लिये जाते हैं। अतः हे राष्ट्रवर्द्धन! अपने गोधन को उनसे छीन लेने के लिये आप तैयार हो जाइये। हे राजपुत्र! देश की भलाई के लिये आप स्वयं शीघ्र जावें। क्योंकि राजा विराट जाते समय शून्य मत्स्य देश की रक्षा का भार आप

ही पर छोड़ गये हैं। सभा के बीच राजा विराट आपकी प्रशंसा करते हुए कहते थे कि, मेरी ही तरह वीर और कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाला, धनुष चलाने में निपुण, मेरा पुत्र उत्तर बड़ा वीर है। राजा विराट के कहे हुए वाक्यों को आज आप सत्य कर दिखलाइये। हे पशुरक्षकों में श्रेष्ठ! आप चल कर अपनी गौओं को कौरवों से लौटा लाइये और अपने भीम तेजस्वी बाणों से उनकी सेना को भस्म कर दीजिये। सुनहले पर और झुकी नोंक वाले बाणों को अपने धनुष से छोड़ कर शत्रुसेना को वैसे ही तहस नहस कर दीजिये, जैसे यूथपति हाथी के झुंडों को करता है। शत्रुओं के बीच में आज आपको अपनी धनुपरूपी वीणा, जिसमें पाशरूपी उपधान, ज्यारूपी ताँत धनुपरूपी दण्ड और बाणरूपी अक्षर हैं, बजाना चाहिये। आप चाँदी की तरह चमकते सफ़ेद रंग के घोड़े रथ में जुतवा कर, हे महाराज! सुनहले सिंह की ध्वजा अपने रथ पर स्थापित कराइये। आप अपने सुनहले पंख और झुकी नोंक वाले बाणों को चला कर, सूर्य का मार्ग ढक दें। वज्रपाणि और असुरारी इन्द्र की तरह रण में कौरवों को जीत कर आप कीर्तिवान हो कर नगर में पुनः प्रवेश करें। इस समय आप ही विराट के राष्ट्र की वैसे ही एकमात्र गति है; जैसे विजयी अर्जुन पाण्डवों की गति हैं। निश्चय ही आप देशवाशियों के आधार हैं और सब लोग आपके शरण हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अन्तःपुर में स्त्रियों के बीच बैठे हुए राजकुमार उत्तर उन गोपों के मुखिया की ये भयङ्कर बातें सुन कर और अपनी प्रशंसा करते हुए, बोले।

छत्तीसवाँ अध्याय

उत्तर का सारथि ढूँढ़ना और अन्त में बृहन्नला से सारथि बनने के लिये अनुरोध करना

उत्तर ने कहा - यदि कोई चतुर घोड़ों को हाँकने वाला सारथि मुझे मिल जाय तो इसी समय गौओं के खुरों के निशान देख कर, मैं अपना दृढ़ धनुष ले कर शत्रु के पीछे जाने को तैयार हूँ। इसलिये तुम मेरी चढ़ाई के लिये कोई चतुर सारथि खोज लाओ। क्योंकि यहाँ तो मुझे कोई ऐसा दीखता नहीं जो सारथी का काम कर सके। अट्ठाईस या इससे कुछ दिन कम एक महीना बीता कि, युद्ध में मेरा सारथि मारा गया। अतः यदि मुझे रथ हाँकने वाला दूसरा चतुर सारथि मिल जाय तो मैं शीघ्र चढ़ाई कर के हाथी, घोड़ों और ऊँची ऊँची ध्वजाओं से युक्त रथों वाली सेना में घुस कर और कौरवों को जीत कर अपने पशु लौटा लाऊँ। दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, कृप, पुत्र सहित द्रोण आदि बड़े बड़े धनुर्धारियों को संग्राम में, जैसे इन्द्र ने राक्षसों को वज्र से पीड़ित किया था, वैसे ही पीड़ित करके इसी समय पशुओं को लौटा लाऊँ। सुना है कि कौरव हमारे पशु हरे लिये जाते हैं। अब मैं क्या करूँ। उस समय भी तो मैं वहाँ न था, किन्तु अब वे कौरव सामने आकर मेरा पराक्रम देखें, जिसे देख कर वे कहने लगेंगे कि, क्या साक्षात् अर्जुन उन्हें पीड़ित करने आ गये हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उसी समय राजकुमार के कहे ये वाक्य अर्जुन ने सुन लिये और यह सोच कर कि, अज्ञातवास का समय तो बीत ही चुका है, उन्होंने पतिव्रता, सत्यप्रतिज्ञ अपने पति का भला चाहने वाली तथा अनेक गुणों से युक्त अपनी भार्या द्रौपदी को एकान्त में बुला कर कहा—हे कल्याणी! तू शीघ्र जा कर उत्तर से कह दे कि, यह बृहन्नला बड़े बड़े युद्धों में अर्जुन का सारथी रह चुका है, अतः इस युद्ध में भी यह तुम्हारा रथ हाँकेगा।

वैशम्पायन जी बोले—जब अर्जुन का नाम ले ले कर बारंबार उत्तर स्त्रियों में बैठ बातें करने लगा, तब द्रौपदी न सह सकी। इसलिये स्त्रियों के बीच से उठ कर तपस्विनी द्रौपदी लज्जित होकर उत्तर के पास जा कर धीरे से बोली कि, यह हाथी के समान शरीर वाला तरुण बृहन्नला पहले अर्जुन का सारथि था। महात्मा अर्जुन से इसने धनुर्विद्या भी सीखी है और जब मैं पाण्डवों के यहाँ थी, तब मैंने इसे देखा था। जिस समय अग्नि ने खाण्डव वन जलाया था, उस समय इसीने अर्जुन के रथ के घोड़े हाँके थे। इसी श्रेष्ठ सारथी की सहायता से अर्जुन ने खाण्डव वन के सब प्राणियों को वश में किया था। अतः इससे अच्छा दूसरा सारथि नहीं है।

उत्तर बोला—हे सैरन्ध्री! मैं जानता हूँ कि, ऐसा युवा नपुंसक नहीं हो सकता। हे शुभे! मैं स्वयं बृहन्नला से कैसे कहूँ कि तू मेरा रथ हाँक।

द्रौपदी ने कहा—हे वीर! यह जो पतली कमर वाली सुश्रोणी तुम्हारी बहिन है उसका कहा बृहन्नला अवश्य करेगा। यदि यह तुम्हारा सारथि बन जाय, तो तुम निश्चय ही कौरवों को जीत कर गौएं लौटा ला सकते हो। सैरन्ध्री द्वारा ऐसा कहे जाने पर, उत्तर ने अपनी बहिन से कहा—हे निर्दोषाङ्गी बहिन! तू जा कर शीघ्र बृहन्नला को बुला ला। भाई की भेजी वह शीघ्र ही नृत्यशाला में गयी जहाँ महाबाहु पाण्डव गुप्त वेष में रहता था।

सैंतीसवाँ अध्याय

राजकुमार उत्तर की बृहन्नला के साथ युद्धयात्रा

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! बड़े भाई की आज्ञा पा कर सोने की माला धारण करने वाली, पतली कमर वाली, कमल की पंखड़ी जैसे नेत्रों वाली राजकुमारी उत्तरा भागती हुई गयी। मत्स्यराज की श्रेष्ठ पुत्री दुबली तथा शुभ अंगों वाली और रंग बिरंगी मणियों की मेखला धारण

किये हुए थी। सुन्दर पतले पलकों वाली, विशाल नेत्रा, जिसकी सुन्दर जाँघें हाथी की सूँड़ की तरह भरी हुई थीं, सुन्दर दाँतों की पंक्ति जिसके मुख को शोभित करती और कटि जिसकी पतली थी ; वही सुन्दर माला धारण करने वाली राजकुमारी उत्तरा पार्थ के पास वैसे ही आयी, जैसे बिजली मेघ के पास जाती है या हथिनी जैसे हाथी के पास जाती है। नृत्यशाला में बैठे हुए, सुन्दर भरी हुई जाँघों वाले, सुवर्ण की सी कान्ति वाले अर्जुन के पास झपटती हुई आकर वह खड़ी हो गयी। उसे जल्दी जल्दी आते देख अर्जुन ने राजकुमारी से पूँछा—हे सुवर्ण मालाधारिणी मृगनयनी ! तुम दौड़ी हुई क्यों आ रही हो ? हे सुन्दरी कुमारी ! बतलाओ तो तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है ?

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! अर्जुन ने हँसते हँसते विशालनेत्रा और सखी रूप से रहने वाली राजकुमारी से पूँछा कि तू क्यों आयी है ? इस तरह पूँछे जाने पर वह राजकुमारी नरश्रेष्ठ अर्जुन के पास जा कर विनयपूर्वक सखियों के बीच में बोली, हे बृहन्नले ! हमारे राज्य की गौएं कौरव लोग हरे जाते हैं। उन्हें जीतने के लिये हमारा धनुर्धारी भाई जाता है ; किन्तु थोड़े दिन हुए कि संग्राम में उसका सारथि मारा गया है और उसके समान योग्य सारथि इस समय नहीं मिलता जो मेरे भाई का रथ हाँके। हे बृहन्नले ! जिस समय मेरा भाई सारथी को ढूँढ़ता था, उसी समय सैरन्ध्री ने उससे तेरे अश्वचालन की निपुणता का हाल कहा और बतलाया कि, अर्जुन ने बृहन्नला की सहायता से सारी पृथ्वी जीती थी और तू उसका प्रिय सारथि था। इस लिये हे बृहन्नले ! तुम मेरे भाई के सारथि बनो और आज अपनी चातुरी दिखलाओ, जिससे कौरव लोग हमारी गौएं दूर न ले जा सकें। आज मैं ये बातें तुमसे बड़े प्रेम से कह रही हूँ और यदि तुम मेरा कहा न करोगे तो मैं प्राण दे दूँगी। सुश्रोणी राजकुमारी की बातें सुन कर बृहन्नला के रूप में रहने वाले पराक्रमी अर्जुन उठे और राजकुमार के पास चले। उस मत्त हाथी के समान शीघ्र चलने वाले अर्जुन

के पीछे वह विशालाक्षी राजकुमारी वैसे ही चली जैसे हथिनी के साथ उसका बच्चा जाता है। उसे आते देख कर दूर ही से राजकुमार ने कहा—अर्जुन ने तुझ सारथी की ही सहायता से खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था और कुन्तीपुत्र धनञ्जय ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीता था। यह मुझे सैरन्ध्री ने बतलाया है। क्योंकि वह भी पाण्डवों के यहाँ थी। हे बृहन्नले! उसी तरह यदि आज तू संग्राम में मेरे रथ के घोड़ों को हाँके तो मैं कौरवों से लड़ कर गौएं छीन लाऊँ। तू ही अर्जुन का प्रिय सारथि था और तेरी ही सहायता से अर्जुन ने दिग्विजय की थी। यह सुन कर बृहन्नला ने राजपुत्र से कहा कि, घोर संग्राम में सारथि का काम करने की शक्ति मुझ में कहाँ से आयी। गाना, नाचना या तरह तरह के बाजे बजाने हों तो मैं भले ही गा बजा लूँ, किन्तु हे भद्र! सारथीपना भला मैं क्या जानूँ?

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नले! तुम गाना नाचना पीछे; किन्तु अभी तो मेरे रथ पर बैठ कर मेरे बढ़िया घोड़ों को हाँको।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इसके उपरान्त सब बातें जानते हुए भी छद्मवेषी शत्रुनाशन अर्जुन उस समय उत्तर के सामने बड़ा खेल तमाशा करने लगे। वे कवच को ऊँचा उठा कर पहरने लगे। यह देख कर विशाल नेत्रा कुमारियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं। उसको इस तरह खिलवाड़ करते देख उत्तर ने स्वयं उसे कवच पहनाया और फिर स्वयं सूर्य के समान कान्ति वाला कवच धारण कर सिंह के चिन्ह वाली ध्वजा अपने रथ पर लगायी और सारथि के स्थान पर बृहन्नला को बैठा दिया। फिर बड़ा भारी धनुष और बहुत से बाणों को ले उत्तर रणभूमि की ओर रवाना हुआ। इतने में उत्तरा और उसकी सखियों ने कहा—हे बृहन्नले! संग्राम में कौरवों को हरा कर, भीष्म द्रोण आदि प्रमुख कौरवों के तरह तरह के रंग बिरंगे और कोमल वस्त्र हमारी गुड़ियों के लिये लेते आना। उन कन्याओं की बात सुन कर पाण्डुनन्दन ने हँस कर मेघ तथा दुन्दुभि के समान गम्भीर स्वर में उत्तर दिया।

बृहन्नला ने कहा—यदि उत्तर संग्राम में महारथियों को जीत लेंगे तो मैं तुम्हारे लिये दिव्य तथा बढ़िया कपड़े लेता आऊँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इतना कह कर वीर अर्जुन ने अनेक प्रकार की पताकाओं से युक्त कौरव सेना की ओर अपना रथ बढ़ाया। उत्तर को उत्तम रथ में विशालबाहु बृहन्नला के साथ बैठा देख कर स्त्रियों, कन्याओं तथा व्रती ब्राह्मणों ने उस रथ की प्रदक्षिणा की और कहा—हे बृहन्नले! जिस तरह वृषभ के समान चाल वाले अर्जुन को खाण्डव वन जलते समय मङ्गल हुआ था उसी तरह कौरवों से संग्राम करते समय राजकुमार उत्तर का भी मङ्गल हो।

अड़तीसवाँ अध्याय

कौरव महारथियों के भय से भागते हुए उत्तर का अर्जुन द्वारा पकड़ा जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! राजधानी के बाहर आकर निर्भय विराटकुमार ने कहा—हे सूत! हमारा रथ उसी तरफ़ ले चलो जिधर कौरव गये हैं। विजयाकांक्षी एकत्रित हुए कौरवों को जीत कर और उनसे गौएं छीन कर शीघ्र ही मैं नगर में प्रवेश करूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह सुन कर पाण्डुनन्दन ने उन श्रेष्ठ घोड़ों को हाँका। मनुष्यसिंह अर्जुन के हाँकते ही वे सुवर्ण माला धारी घोड़े पवन से बातें करते हुए दौड़ने लगे। थोड़ी ही दूर चल कर उत्तर और अर्जुन ने पराक्रमी कौरवों की बड़ी भारी सेना को देखा। आगे बढ़ कर श्मशान के पास शमी के वृक्ष के सामने उन लोगों ने कौरव सेना को व्यूह रचते हुए देखा। कौरवों की बड़ी भारी सेना समुद्र के समान विशाल थी और ऐसा प्रतीत होता था मानों घने वृक्षों का वन आकाश में चल रहा हो। उस सेना के चलने फिरने से उठी हुई धूल से पार्थ ने आकाश को आच्छादित देखा, जिससे लोगों को कुछ

दिखलायी नहीं पड़ता था। हाथियों, घोड़ों तथा रथों से युक्त उस सेना की कर्ण, दुर्योधन, कृप, भीष्म, महान धनुर्धारी द्रोण तथा उनके पुत्र अश्वत्थामा को रक्षा करते देख, विराटपुत्र के रोएं खड़े हो गये और भय से घबड़ा कर उसने पार्थ से कहा।

उत्तर बोला—कौरवों के साथ लड़ने का मुझे उत्साह नहीं होता। देखो मेरे रोएं खड़े हो रहे हैं। इस सेना में बड़े बड़े वीर हैं और इसे देवता भी नहीं हरा सकते। इस अनन्त कौरव सेना से मैं युद्ध नहीं कर सकता। इन बड़े बड़े धनुर्धारी भरतवंशियों की सेना में मैं प्रवेश नहीं कर सकता। यह सेना रथ, घोड़े हाथी ध्वजा आदि से भरी है। संग्रामक्षेत्र में इन बैरियों को देख कर तो मेरा मन घबड़ा गया है। जिस सेना में द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, दुर्योधन आदि वीर महारथी राजा हैं और जो तेजस्वी, बड़े धनुर्धारी और युद्ध करने में चतुर हैं ऐसी ही प्रहार करने वाली कौरव सेना को व्यूह रच कर खड़े देख मेरे रोएं खड़े हो गये हैं और मुझे मूर्छा आ रही है।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! यह कह वह अज्ञान राजकुमार कपट भेषधारी अर्जुन के सामने मूर्खतावश विलाप करता हुआ कहने लगा। त्रिगर्तों से लड़ने के लिये सारी सेना लेकर मेरे पिता मुझे सूने नगर में छोड़ कर चले गये। मेरे पास अब कोई सैनिक भी नहीं है। हे बृहन्नले! एक तो मैं बालक और दूसरे अकेला। इन बड़े बड़े अस्त्रविशारदों से मैं कैसे लड़ सकूँगा। इसलिये अब तुम यहाँ से लौट चलो।

बृहन्नला ने कहा—अभी तो तुमने शत्रु के साथ किसी तरह का युद्ध भी नहीं किया है सो अभी से तुम दीन बन कर क्यों शत्रुओं का हर्ष बढ़ा रहे हो। तुमने ही मुझसे कौरवों के पास रथ ले चलने के लिये कहा था। सो मैं तो तुम्हें वहीं बहुत सी ध्वजाओं से पूर्ण सेना के पास ले चलूँगा। माँस चाहने वाले गिद्धों के समान आततायी कौरव पृथ्वी के लिये युद्ध किया करते हैं। सो हे महाबाहो! मैं तुम्हें उन्हींके पास ले चलूँगा। तुमने

स्त्रियों और पुरुषों के सामने तो अपने पुरुषार्थ की बड़ी प्रशंसा की थी, फिर अब तुम क्यों नहीं लड़ते ? यदि तुम गौओं को लेकर घर न लौटोगे तो वीर लोग, स्त्रियों और पुरुषों के सामने तुम्हारी हँसी करेंगे। सारथीपने में सैरन्ध्री ने मेरी भी ख्याति कर दी है सो मैं तो बिना गौएं लौटाये नगर में जा नहीं सकता। सैरन्ध्री की की हुई प्रशंसा और तुम्हारे उस समय के अनुकूल वाक्यों को स्मरण कर, मैं क्यों न युद्ध करूँ ? अतः तुम धीरज धरो।

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नले ! कौरव भले ही मत्स्यराज की बहुत सी गौएं और धन हर ले जायँ और स्त्रियाँ भले ही मेरी हँसी करें, मेरी गायें भले ही चली जावें, रक्षकों बिना मेरा नगर भले ही सूना रहे और पिता के सामने चाहे मैं भले ही काँपता खड़ा रहूँ किन्तु मैं युद्ध न करूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! इतना कह कर अपना, मान, दर्प, धनु तथा बाण छोड़ कर कुण्डलधारी राजकुमार उत्तर रथ से कूद कर नगर की ओर भागने लगा।

बृहन्नला ने चिल्ला कर कहा—अरे ! क्षत्रिय के रण से भागने को वीर धर्म नहीं कहते। रण में लड़ कर मर जाना डर कर भागने की अपेक्षा कहीं अच्छा है।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! इतना कह कर अर्जुन भी रथ से कूद कर भागते हुए राजकुमार के पीछे दौड़ने लगा। उस समय दौड़ने में उसकी लंबी वेणी और लाल वस्त्र उड़ने लगे। वेणी को खोल कर भागते हुए देख कर अर्जुन को न पहचानने वाले कुछ सैनिक उसके उस रूप को देख कर हँसने लगे। उसे शीघ्र भागते देख कर, कौरव कहने लगे। राख में छिपी हुई अग्नि के समान वेश में छिपा हुआ यह कौन है ? इसका कुछ अंग स्त्री जैसा और कुछ पुरुष जैसा है। इसका रूप तो अर्जुन जैसा है। उसीकी तरह गर्दन, उसीकी तरह इसकी परिघ तुल्य भुजाएं और उसी जैसा इसका सिर है; किन्तु भेष नपुंसकों जैसा है। देवताओं में जैसे

इन्द्र हैं उसी तरह पुरुषों में धनञ्जय है। इस लोक में अर्जुन के सिवाय अकेला कौन हम पर चढ़ाई कर सकता है। विराट के शून्य नगर में अकेला उत्तर ही रक्षा करने के लिये रह गया था सो वही लड़कपन से लड़ने के लिये बाहर आया था, कुछ पुरुषार्थ से नहीं। आज कल छद्म वेष में रहने वाले अर्जुन को उत्तर अपने रथ का सारथी बना कर नगर के बाहर आया था। वही हम लोगों को देख कर घबड़ा गया है और डर के मारे भागा जाता है। निश्चय ही उस भागते हुए का पीछा करने वाला अर्जुन है।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! इसी तरह पृथक् पृथक् सब कौरव विचार करते रहे किन्तु कपट वेश में देख कर कोई भी निश्चय रूप से अर्जुन को न पहचान सके हे भारत! इसी बीच में सौ पग दौड़ कर अर्जुन ने भागते हुए उत्तर की चोटी पकड़ ली। अर्जुन से पकड़े जाने पर कायर के समान विराटपुत्र बुरी तरह रोने लगा।

उत्तर बोला—हे सुमध्यमे! कल्याणी बृहन्नले! मेरी बात मान कर जल्दी से रथ को लौटा ले चलो। जीवित रहने से बड़ा कल्याण होगा। हे बृहन्नले! यदि तू मुझे छोड़ दे तो मैं तुझे शुद्ध सुवर्ण की सौ मुहरें, सोने में जड़ी हुई बड़ी चमकदार आठ वैदूर्यमणि, सुन्दर घोड़ों से जुता हुआ सोने से मढ़े डंडों वाला रथ और दस मतवाले हाथी दूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—इस तरह विलाप करते हुए बदहवास राजकुमार को पुरुषव्याघ्र अर्जुन हँसते हुए रथ के पास ले आये। तदुपरान्त डरे हुए राजकुमार से कहा, हे शत्रुकर्षण! यदि तुम शत्रु से युद्ध नहीं कर सकते तो तुम घोड़ों को हाँको और मैं शत्रु से युद्ध करूँगा। मेरे बाहुबल से रक्षित हो कर तुम रथ को उस शत्रुसेना की ओर ले चलो जिसमें बड़े भयानक महारथी हैं और जिसमें घुसना बड़ा कठिन है। हे श्रेष्ठ राजकुमार! तुम परन्तप क्षत्रिय हो कर डरो मत। पुरुषसिंह होकर, शत्रु के बीच में आ कर घबड़ाते क्यों हो? जिस रथी सेना में घुसना बड़ा कठिन है, उसी कौरवसेना में घुस कर और युद्ध कर के मैं तेरे पशुओं

को छुड़ा लाऊँगा। हे नरश्रेष्ठ! तुम मेरे सारथी बनो। मैं अब कौरवों से लड़ूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! इस तरह अपराजित अर्जुन ने राजपुत्र उत्तर को एक मुहूर्त तक समझाया बुझाया। फिर भी युद्ध करना न चाहने वाले, निश्चेष्ट एवं जड़ बने हुए भयभीत राजकुमार उत्तर को श्रेष्ठ रथी अर्जुन ने रथ पर बैठाया।

उन्तालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का रथ को शमी के पास ले जाना, अर्जुन के भय से कौरवों का डरना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! नपुंसक के वेष में उस नरपुङ्गव को रथ में शमी वृक्ष की ओर जाते देख कर, भीष्म द्रोण आदि कौरवों के सभी प्रमुख योद्धागण अर्जुन के भय से घबड़ा उठे। उन सब को हतोत्साह होते और विचित्र अपशकुनों का होना देख कर शास्त्रज्ञानी भारद्वाज आचार्य द्रोण कहने लगे। इस समय पवन रूखा और प्रचण्ड चल रहा है और चारों ओर धूल उड़ रही है। आकाश भस्म की रंगत के अँधेरे से व्याप्त हो रहा है। आकाश में रूखे रूखे विचित्र विचित्र बादल देख पड़ते हैं। अनेक अस्त्र म्यानों से निकले पड़ते हैं। दिशाएं दारुणरूप से प्रकाशित हो रही हैं और गीदड़ रो रहे हैं। घोड़े आँसू बहा रहे हैं और बिना हिलाए ही ध्वजाएं काँप रही हैं। इन सब लक्षणों से प्रतीत होता है कि, शीघ्र ही कोई भयानक घटना होगी, इसलिये सब लोग सावधान हो जाओ। अपनी रक्षा के लिये व्यूह बना कर सेना को खड़ा करो। गोधन की रक्षा करते हुए आने वाली विषम घटना की प्रतीक्षा धीरता पूर्वक करो। सर्वशास्त्रों का जानने वाला नपुंसक वेष में आता हुआ यह वीर निश्चय ही अर्जुन है। हे गाङ्गेय भीष्म! हनुमान की ध्वजा धारण करने वाला, इन्द्र

का पुत्र, किरीट धारण करने वाला अर्जुन ही नपुंसक के वेष में यहाँ आ रहा है और गौएं जीत कर ले जायगा। यह परन्तप, सव्यसाची तथा महापराक्रमी अर्जुन ही है, देवता और असुर भी मिल कर चाहे आ जावें तो भी यह बिना युद्ध किये लौटने वाला नहीं। इस वीर ने वन के कष्ट सहे हैं और इन्द्र से शिक्षा पायी है। अतः क्रोध में भर यह विकट संग्राम करेगा। इसका सामना करने वाला कौरवों में तो हमें कोई दीखता नहीं। सुनते हैं कि, हिमालय पर किरात-वेष-धारी उमापति महादेव से युद्ध कर के अर्जुन ने उन्हें प्रसन्न किया था। (यह सुन कर) कर्ण बोला—आप सदा अर्जुन की प्रशंसा कर के हम लोगों की निन्दा किया करते हैं, किन्तु अर्जुन हमारी और दुर्योधन की एक कला में भी तो पूरी पूरी बराबरी नहीं कर सकता।

दुर्योधन ने कहा—हे राजा कर्ण! यदि यह अर्जुन है तो हमारा कार्य पूरा हो गया। क्योंकि पहचाने जाने पर पाण्डवों को बारह वर्ष के लिये फिर वन जाना पड़ेगा और यदि यह और ही कोई पुरुष नपुंसक के वेष में आया है तो मैं अपने पैने बाणों से इसे पृथ्वी पर सुला दूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! परन्तप धृतराष्ट्र-पुत्र की बात सुन कर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि ने उसके (दुर्योधन के) पुरुषार्थ की प्रशंसा की।

चालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का उत्तर से कहना कि शमी पर से शस्त्रों को ले आओ

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! उस शमी वृक्ष के पास पहुँच कर अर्जुन ने विराटपुत्र को सुकुमार और संग्राम विषय में अल्पज्ञ जान

कर उससे कहा—हे उत्तर! मेरे कहने से तू इस शमी वृक्ष पर चढ़ कर उस पर रक्खे हुए धनुष आदि अस्त्र शस्त्र उतार ला। क्योंकि तेरे हथियार मेरा बल सह न सकेंगे और न मेरे भार को ही सह सकेंगे और न इनसे हाथी ही मारे जा सकेंगे और न मेरे बाहुविक्षेप को ही यह सह सकेंगे और न इनके द्वारा शत्रुओं पर विजय मिलेगी। इसलिये हे भूमिञ्जय! तू इस पत्तों से भरे शमी वृक्ष पर चढ़ जा। ये धनुष आदि पाण्डवपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के हैं। इनके सिवाय वहाँ ध्वजाएँ, बाण तथा वीरों के दिव्य कवच भी हैं और यहीं पर महापराक्रमी अर्जुन का प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष भी है, जो एक लाख धनुषों के बराबर और राष्ट्र को बढ़ाने वाला है। बड़े श्रम को सहने वाला तथा ताल वृक्ष के समान विशाल काय है। सब शस्त्रों से वह बड़ा है, शत्रुओं का नाश करने वाला, सोने से मढ़ा हुआ, दिव्य, चिकना, छिद्र रहित तथा लंबा है। युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव के भी धनुष उसी तरह बड़े सुन्दर, भार सहने वाले और दृढ़ हैं।

इकतालीसवाँ अध्याय

उत्तर का शमी पर से शस्त्रों को उतार कर अर्जुन के पास लाना

उत्तर बोला—हमने सुना है कि, इस वृक्ष पर मुर्दा बँधा है सो मैं राजपुत्र हो कर अपने हाथ से उसे कैसे छुऊँ। क्षत्रिय-योनि में उत्पन्न हुए और यज्ञों को करने वाले तथा मन्त्रों को जानने वाले मेरे समान राजकुमार को मुर्दा छूना उचित नहीं। हे बृहन्नले! इस मृत शरीर को छूने से तो मैं मुर्दा उठाने वालों की तरह अपवित्र हो जाऊँगा और फिर मैं किसी चीज़ को छूने लायक भी न रह जाऊँगा। ऐसा काम तुम मुझसे क्यों करवाती

हो। बृहन्नला ने कहा—हे राजेन्द्र! तुम डरो मत। यह मुर्दा नहीं है; किन्तु ये बँधे हुए जो दीख रहे हैं शस्त्र हैं, इनके छूने से तुम पवित्र तथा व्यवहार के योग्य ही रहोगे। हे राजपुत्र! भला मैं तुमसे मनस्वी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राजकुमार से ऐसा निन्दनीय कर्म क्यों कराऊँगा।

वैशम्पायन जी ने कहा—पार्थ से इस तरह उत्तर पा कर, कुण्डलधारी विराटपुत्र विवश हो कर रथ से कूद कर शमी वृक्ष पर चढ़ गया। रथ पर बैठे ही बैठे शत्रुनाशन धनञ्जय ने उत्तर से कहा कि, वृक्ष में बँधे शस्त्रों को शीघ्र खोल लाओ और धनुषों पर बँधे पत्तों को शीघ्र खोल कर फेंक दो। राजकुमार उत्तर ने विशाल वक्षस्थल वाले पाण्डवों के बहुमूल्य धनुषों को वृक्ष पर से जल्दी जल्दी उतारा और उन पर लगे पत्तों को शीघ्र झाड़ डाला। उनकी प्रत्यञ्चाओं को ला कर उत्तर अन्य चार विशाल धनुषों के साथ गाण्डीव धनुष को देखने लगा। सूर्य के समान चमचमाते धनुष जब खोले गये तब उदय हुए तेजस्वी ग्रह के समान उनकी कान्ति फैल गयी। सर्पों के जम्भाई लेने के समान उन विशालकाय धनुषों को देख कर, विराट-पुत्र के रोएँ खड़े हो गये और वह घबड़ा उठा। उन विशाल और तेजस्वी धनुषों को छू कर उत्तर, अर्जुन से बोला।

बयालीसवाँ अध्याय

उत्तर का अर्जुन से पूछना कि ये शस्त्र किसके हैं?

उत्तर ने पूँछा—जिसके ऊपर सोने के सौ बिन्दु हैं और जिस पर हज़ारों और लाखों जगह सोना लगा है, ऐसा उत्तम धनुष किसका है? जिस धनुष के पृष्ठ भाग पर सोने के हाथी बने हैं और जिनके सिरे और बीच के भाग बड़े सुन्दर हैं ऐसा यह धनुष किसका है? शुद्ध सुवर्ण के इन्द्रगोप कीट जिसके पृष्ठ पर बने हैं, जो बड़े अच्छे दीख पड़ते हैं, सो यह उत्तम धनुष किसका है? सोने के तीन सूर्य जिस पर बने हैं और जो अपने

तेज से प्रकाशित हो रहा है वह उत्तम धनुष किसका है? तपे हुए सोने के जुगनू जिस पर बने हैं और सुवर्ण तथा मणियों की जिस पर चित्रकारी है ऐसा उत्तम धनुष किसका है? सोने की नोकों वाले, पर लगे, सोने के तरकस में भरे हुए ये हज़ारों बाण किसके हैं? ये विपाट नामी, शिला पर पैनाये हुए तेज़ धार वाले गिद्ध के पर और लोहे के दण्डों वाले बाण किसके हैं? यह काले रङ्ग का तरकस जिस पर पाँच सिंहों के चित्र बने हैं और सुअर के कानों की तरह जिसमें दश बाण भरे हैं, किसका है? ये मोटे और लंबे अर्धचन्द्राकार शत्रुओं का रक्त पीने वाले सात सौ बाण किसके हैं? और सुनहले पर वाले, जिनके अग्रभाग का वर्ण तोतों के पर की तरह है और नीचे जिनमें सुनहली रेखाएँ हैं, जो केवल लोहे के बने और बड़ी पैनी धार वाले ये बाण किसके हैं? भारी बोझ सहने वाला, दिव्य, शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाला, जिसका मुख मेढक की तरह और जिसकी मूठ पर मेढक के चित्र बने हैं ऐसा यह खड्ग किसका है? व्याघ्रचर्म की म्यान में बन्द, जिस पर तरह तरह के सोने के चित्र हैं, जिसकी मूठ सोने की है, बड़ी तेज़धार वाली और घुँघुरू लगी यह तलवार किसकी है? गोचर्म के कोश में रक्खी और बड़ी निर्मल, यह विमल तलवार किसकी है? सोने की मूठ वाली निषधदेश की बनी हुई, भार सह सकने वाली, सोने की बनी और बकरे के चमड़े के कोश में रक्खी हुई यह तलवार किसकी है? काली, तेज़ धार वाली, अग्नि के समान चमकती हुई, लंबी, सोने के म्यान में बन्द, भारी, सोने के फूल जिस पर लगे हुए हैं, भारी चोटों को रोकने वाली यह तलवार किसकी है? इसका स्पर्श ज़हरीले साँप जैसा है, यह वैरी के शरीर में प्रवेश करने वाली, भारी बोझ सहने वाली, दिव्य और बैरियों को भयदायक है। हे बृहन्नले! इन सब अस्त्र शस्त्रों का पूरा हाल मुझे बतलाओ। इन्हें देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।

तेंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का उत्तर से कहना कि ये अस्त्र पाण्डवों के हैं

वृहन्नला ने कहा—जिस धनुप को तुमने पहले पूँछा था वह शत्रु सेना का नाश करने वाला, अर्जुन का लोकप्रसिद्ध गाण्डीव धनुष है। सब आयुधों की अपेक्षा भारी और सोने से मढ़ा हुआ, यह अर्जुन का गाण्डीव नामक परम आयुध है। यह अकेला लाखों धनुषों के बराबर है और राष्ट्र को बढ़ाने वाला है। इसीसे अर्जुन ने संग्राम में देवताओं और मनुष्यों को जीता था। तरह तरह के रंगों से चित्रित, चिकने, विशाल तथा छिद्र रहित इस धनुप को देवता, गन्धर्व तथा दानव वर्षों से पूजते चले आये हैं। पूर्व-काल में एक हजार दिव्य वर्षों तक ब्रह्मा जी ने इसे धारण किया था, फिर ५०३ वर्षों तक प्रजापति ने इसे रक्खा। ८५ वर्ष तक इसे इन्द्र ने रक्खा, फिर ५०० वर्ष तक यह चन्द्रमा के पास रहा और फिर १०० वर्ष तक महाराज वरुण इसे अपने पास रक्खे रहे। इसके बाद ६५ वर्षों से यह श्वेतवाहन वाले पार्थ के पास है। बड़े दिव्य और बड़े शक्तिशाली, इस उत्तम धनुष को चारुदर्शन वरुण से पार्थ ने प्राप्त किया था। देव मनुष्यों से पूजित सुन्दर पार्श्व वाला, बीच के भाग में जिसमें सोना लगा है वह भीमसेन का है। इससे उन परन्तप ने सम्पूर्ण पूर्व दिशा को जीता था। हे विराटपुत्र! इन्द्रगोपों के चित्र वाला दर्शनीय उत्तम धनुप महाराज युधिष्ठिर का है। जिसमें सोने के सूर्य चमकते हैं और जो ख़ूब चमक रहा है वह आयुध नकुल का है। तपे सोने के विचित्र जुगनू जिस पर चमकते हैं वह धनुप माद्रीपुत्र सहदेव का है। ये छुरे से पैनी धार वाले, पर लगे और सर्प के विप जैसे ज़हरीले सहस्र बाण अर्जुन के हैं। संग्राम में ये तेज़ से प्रज्वलित रहते हैं और बड़े शीघ्रगामी हैं। ये संग्राम में शत्रुव्यूह को तोड़ कर उनका नाश कर के भी अक्षय्य रहते हैं। ये लंबे, विशाल और अर्धचन्द्राकार, शत्रुओं का नाश करने वाले भीम के बाण हैं। पाँचसिंहों

के चित्रवाला, पीले रंग के तेज़ धार वाले और सुनहले पर के बाणों से भरा यह तरकस नकुल का है। जिन्होंने पूर्ण पश्चिम दिशा को जीता है यह तरकस उन्हीं धीमान माद्रीपुत्र नकुल का है। सूर्पाकार और वैरियों का नाश करने वाले और अद्भुत काम कर दिखाने वाले ये बाण बुद्धिमान् सहदेव के हैं। ये मोटे और लंबे और तीन तरफ पैनी धारों वाले और सोने के ये बाण महाराज युधिष्ठिर के हैं। मेढ़क के मुँह जैसी मूठ वाला, जिसकी पीठ पर मेढकों के चित्र बने हैं और जो संग्राम में बड़ा भार सह सकता है ऐसा यह दृढ़ खड्ग अर्जुन का है। व्याघ्रचर्म के कोश में रखा हुआ यह दूसरा लंबा, दिव्य, भारी और बोझ सह सकने वाला तथा शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाला खड्ग भीम का है। इसी तरह पैनी धार वाली, सोने की मूठ वाली, विचित्र म्यान में बन्द और सब से उत्तम तलवार महाराज युधिष्ठिर की है। बकरे के चमड़े के म्यान में बन्द, दृढ़, गुरु भार को सहने वाली, चौथी तलवार नकुल की है। यह जो बड़ी भारी और बैल के चमड़े की म्यान में बन्द, मज़बूत तथा सब तरह के भार को सहने वाली लंबी तलवार सहदेव की है।

चवालीसवाँ अध्याय

उत्तर का अर्जुन से उनके अर्थ सहित दश नामों का पूँछना

उत्तर ने पूँछा—आशु पराक्रमी जिन महात्मा पाण्डवों के ये सुन्दर तथा सोने के चमकीले शस्त्र हैं, वे वैरियों का नाश करने वाले अर्जुन, कुरुवंशी युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीम कहाँ हैं ? वे सब वैरियों का नाश करने वाले महात्मा राज्य को जुए में हार कर जब से वन में गये हैं; तब से उनकी कोई ख़बर नहीं सुनायी पड़ी। प्रसिद्ध स्त्रीरत्न पाञ्चाली द्रौपदी, जो जुए में हारे हुए पाण्डवों के साथ वन में गयी थी, कहाँ है ?

अर्जुन ने कहा—मैं ही पार्थ अर्जुन हूँ, तुम्हारे पिता के कंक नामक सभासद युधिष्ठिर हैं, तुम्हारे पिता के रसोइया बल्लव भीम हैं, अश्वबन्ध नकुल हैं, गोपाल सहदेव है और जिस सैरन्ध्री के लिये कीचक मारा गया था, वही द्रौपदी है।

उत्तर ने कहा—मैंने पहले अर्जुन के दस नाम सुने थे, जो तुम उन्हें बतलाओ तो मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करूँ।

अर्जुन बोले—हे उत्तर! तुमने जो मेरे दस नाम सुने हैं सो मैं बतलाता हूँ सुनो। मैं जो कहूँ उसे तुम एकाग्रचित्त हो कर सुनो। अर्जुन, फाल्गुन, किरीटी, जिष्णु, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनञ्जय (यही मेरे दस नाम हैं)।

उत्तर ने कहा—तुम्हारा नाम विजय, श्वेतवाहन, किरीटी तथा सव्यसाची क्यों पड़ा? तुम्हारे अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, बीभत्सु और धनञ्जय आदि नामों के क्या अर्थ हैं? सो मुझे अच्छी तरह समझाओ। मैंने वीर अर्जुन के नाम ही सुने हैं, इनका अर्थ मैं नहीं जानता। अतः यदि तुम उन नामों को अर्थसहित मुझे बतलाओ तो मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करूँ।

अर्जुन ने कहा—मैं सब देशों को जीत कर धन ले आता हूँ और उसी धन को काम में लाता हूँ। इसीलिये मेरा नाम धनञ्जय है। संग्राम में जा कर मदमत्त वैरियों को बिना हराये मैं पीछे नहीं लौटता। इसीसे मेरा नाम विजय है। संग्राम में मेरे रथ में सोने के कवच पहने हुए श्वेत घोड़े जुते रहते हैं इसीसे लोग मुझे श्वेतवाहन कहते हैं। मेरा जन्म उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हिमालय पर्वत पर हुआ था। इसीसे मुझे लोग फाल्गुन कहते हैं। पूर्वकाल में बड़े बड़े दानवों से जब मैं लड़ने जा रहा था तब उस समय सूर्य के समान चमकता हुआ मुकुट इन्द्र ने मेरे मस्तक पर पहनाया था; इसीसे मेरा नाम किरीटी पड़ा। युद्ध में लड़ते समय मैं कोई भयङ्कर कर्म नहीं करता; इसीसे देवता और मनुष्य मुझे बीभत्सु कहते हैं। युद्ध में गाण्डीव

धनुष पर दोनों हाथों से बाण चला सकने के कारण मेरा नाम सव्यसाची पड़ा है। चारों ओर समुद्र से घिरी पृथिवी पर मेरे समान गौर वर्ण कोई नहीं है और सदा निर्मल कर्म (शुक्ल) करने के कारण मैं अर्जुन कहलाता हूँ। दुर्दमनीय शत्रुओं का दमन करने और इन्द्र का पुत्र होने से, मेरा नाम जिष्णु है। मेरा दसवाँ नाम कृष्ण मेरे पिता ने प्यार से रक्खा है। क्योंकि उज्वल वर्ण का होने से मैं उनका बड़ा प्यारा था; (चित्ताकर्षक होने से कृष्ण नाम पड़ा)।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तब तो पास जा कर उत्तर ने अर्जुन को नमस्कार किया और कहा—मेरा नाम भी उत्तर और भूमिञ्जय है। अपनी आँखों से हे पार्थ! मैं तुम्हारा दर्शन कर रहा हूँ। हे धनञ्जय! तुम्हारा स्वागत है। हे लोहिताक्ष! नागराजकरोपम, महाबाहु अर्जुन! यदि अज्ञान से मैंने कोई ख़राब बात आपसे कही हो तो उसे आप क्षमा कीजिये। आपने पहले बड़े बड़े आश्चर्यकारक कर्म किये हैं। अब मेरा भय दूर हुआ और आपसे मुझे अब बड़ा अनुराग होगया है।

पैंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन के नपुंसकत्व सम्बन्धी उत्तर की शङ्का का अर्जुन द्वारा समाधान

उत्तर ने कहा—आप बड़े रथ में बैठ कर मुझ सारथि को सेना के किस ओर चलने की आज्ञा देते हैं?

अर्जुन ने कहा—हे पुरुषव्याघ्र! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ और अब तुम्हें कोई भय नहीं है। युद्ध में तुम्हारे सब रणविशारद शत्रुओं को मैं मार भगाऊँगा। अब तुम सावधान हो जाओ और हे महाबाहो! शत्रु के साथ जो मैं भयङ्कर युद्ध कर्म करूँ उसे तुम देखो। अब जल्दी से बाणों से भरे तरकसों को मेरे रथ में बाँध दो और सोने की मूठ वाली एक तलवार भी ले आओ।

वैशम्पायन जी बोले—अर्जुन की बात सुन कर उत्तर शीघ्र ही अर्जुन के शस्त्र ले कर उतर आया। अर्जुन ने कहा—मैं कौरवों से लड़ कर निश्चय ही तुम्हारे पशुओं को जीत लाऊँगा। तुम्हारे रथ के चारों ओर मैं नगरप्राचीर की तरह अपने बाहुबल से तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। रथ के पहिये आदि अंग इस रथरूपी नगर के घर हैं, मेरी दोनों भुजाएँ क़िले के समान हैं, धनुष का रोदा इसमें पानी के पनाले हैं, रथ के चलने की घरघराहट ही नगाड़े के शब्द हैं। इस रथ के तीन डंडे ही नगररक्षक घुड़सवार, हाथीसवार तथा रथी सेना है, इस रथ की पताका ही नगर की पताका है। इसी रथरूपी नगर में मेरे द्वारा तुम रक्षित रहोगे। गाण्डीव धनुष हाथ में धारण किये हुए मेरे साथ रथ में तुम्हारे बैठने से तुम्हें शत्रुसेना कभी भी नहीं जीत सकती। हे विराटपुत्र! तुम्हें अब भय नहीं करना चाहिये।

उत्तर ने कहा—हे अर्जुन! मैं जानता हूँ कि तुम संग्रामभूमि में श्रीकृष्ण या इन्द्र का भी सामना स्थिर रह कर, कर सकते हो। इसलिये अब मुझे डर नहीं है। किन्तु केवल एक बात को सोचते सोचते मैं मोहित हो जाता हूँ और दुर्बुद्धि ही से मैं उसका कुछ निश्चय नहीं कर सकता। वह बात यह है कि, तुम्हारे शरीर पर रूप और वीरोचित चिन्हों के होते हुए भी तुम किस कर्मफल से नपुंसक हुए। मैं तो तुम्हें क्लीववेष में शिव, गन्धर्वराज अथवा इन्द्र मानता हूँ।

अर्जुन ने कहा—साल भर हुआ मैंने अपने बड़े भाई की आज्ञा से व्रत आरम्भ किया था और उसी व्रत का पालन मैं अभी तक कर रहा था। हे महाबाहो! मैं सच कहता हूँ कि, मैं नपुंसक नहीं हूँ। बल्कि अपने धर्म में युक्त हूँ। हे राजपुत्र! अब हमारा व्रत समाप्त हुआ और हमें उत्तीर्ण हुआ जानो।

उत्तर बोला—हे नरोत्तम! आज आपने मेरा सन्देह मिटा कर बड़ी दया की। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास था कि, आप ऐसे लक्षणों वाला पुरुष नपुंसक नहीं हो सकता। ऐसी सहायता पा कर तो मैं देवताओं से भी युद्ध

कर सकता हूँ। मेरा भय अब जाता रहा अब आप बतलाइये मैं क्या करूँ? शत्रु के रथों को तोड़ने वाले तुम्हारे घोड़ों को मैं हाँकूगा। क्योंकि हे पुरुष-श्रेष्ठ! मैंने सारथिपना अपने पिता से सीखा है। श्रीकृष्ण के दारुक और इन्द्र के मातलि के समान ही, हे नरपुङ्गव! आप मुझे एक शिक्षित सारथि समझें। इस रथ में आगे की तरफ दाहिनी ओर सुग्रीव के समान जो घोड़ा जुता है, वह इतना तेज़ दौड़ने वाला है कि, दौड़ते में उसके पैर तक नहीं दिखलायी पड़ते। और जो घोड़ा रथ के आगे बाईं ओर जुता है वह तेज़ चलने में मेघपुष्प की तरह है और बाईं ओर पिछली तरफ़ सोने का कवच धारण किये जो सुन्दर घोड़ा जुता है, वह शैब्य घोड़े के समान बलवान और तेज़ चलने वाला है और जो दाहिनी ओर पिछली तरफ़ जुता है, वह घोड़ा बल में और तेज़ चलने में बलाहक से भी अधिक है। तुम्हारी तरह धनुर्धारी की सवारी के योग्य ही यह रथ है। मेरी समझ में तुम भी इस रथ में बैठ कर युद्ध करने के योग्य हो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदुपरान्त अर्जुन ने हाथ से सोने के कड़े उतार डाले और सोने का विचित्र कवच पहन लिया और अपने काले घुंघराले बालों को सफ़ेद कपड़े से बाँध दिया, फिर पूर्व की ओर मुख कर के पवित्रतापूर्वक रथ पर बैठे हुए महाबाहु अर्जुन ने अपने सब दिव्य शस्त्रों का स्मरण किया। स्मरण करते ही राजपुत्र अर्जुन के सामने वे सब हाथ जोड़ कर आ खड़े हुए और बोले—हे पाण्डुनन्दन! हम सब किंकर परम उदार आपके पास आ पहुँचे। अर्जुन ने प्रणाम कर सब का हाथ से स्पर्श किया और कहा—समय पर तुम सब याद करते ही आ जाना। अस्त्रों को धारण करने पर अर्जुन को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने गाण्डीव धनुष पर रोदा चढ़ा कर टंकार लगायी। उनके टंकार लगाते ही धनुष से बड़ा शब्द निकला और ऐसा प्रतीत होने लगा मानों दो पहाड़ आपस में टकरा गये हों। पृथिवी काँप उठी, वायु वेग से चल उठा, उल्कापात हुए और दिशाओं में अन्धकार छा गया। ध्वजाएँ

हिलने लगीं, आकाश चलता सा मालूम पड़ने लगा और पेड़ हिलने लगे। कौरवों को उस शब्द से ऐसा मालूम पड़ा, मानों कहीं वज्रपात हुआ और वे समझ गये कि, अर्जुन ने धनुष में टङ्कार लगायी है।

उत्तर ने कहा—हे पाण्डवश्रेष्ठ! आप तो अकेले हैं और ये महारथी बहुत से हैं। संग्राम में सर्व-शस्त्रास्त्र-पारङ्गतों को आप किस तरह जीतेंगे? हे कौन्तेय! आप तो असहाय हैं और कौरवों के पास पूरी सहायता है। अतः हे महाबाहो! आपके सामने मैं भयभीत खड़ा हूँ। अर्जुन ने हँस कर कहा कि तुम मत डरो। महाबली गन्धर्वों के साथ घोषयात्रा वाले युद्ध में मेरा सहायक कौन मित्र था? खाण्डव वन को जलाने के समय जब देव दानवों से मेरा युद्ध हुआ था; तब उस समय कौन मेरा मित्र था? महाबली निवातकवच और पौलोम नामक दानवों से इन्द्र के लिये युद्ध करते समय कौन मेरा सहायक था? पाञ्चाली की स्वयम्वरसभा में जब बहुत से राजाओं के साथ मेरा युद्ध हुआ था; हे तात! उस समय भी तो हमारा कोई सहायक न था। गुरु द्रोण, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, माधव कृष्ण और पिनाकपाणि शिव आदि की मैंने उपासना की है। इस पर भी इन लोगों से मैं क्यों न लड़ूँ—शीघ्र तुम रथ को बढ़ाओ और अपने मन की चिन्ता को दूर करो।

छियालीसवाँ अध्याय

अर्जुन का कौरवों की ओर चलना, द्रोणाचार्य द्वारा अपशकुनों का वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! शमी की प्रदक्षिणा कर और उत्तर को सारथी बना, पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन अपने सब शस्त्रों को ले कर चल दिये। चलते समय सिंह के चिन्हवाली ध्वजा रथ से उतार कर, अर्जुन ने वृक्ष की

जड़ के पास रख दी । विश्वकर्मा द्वारा रचित दैवी माया वाले सिंह के समान पूँछ वाले बन्दर से चिन्हित ध्वजा वाले रथ का जिसे अग्नि ने दिया था, अर्जुन ने ध्यान किया । अग्नि ने ध्यान करते जान कर भूतों को ध्वजा पर रहने की आज्ञा दी । वह विचित्र अंगों वाली ध्वजा सहित, बड़ा मज़बूत, रण सामग्रियों से भरा हुआ दिव्य तथा मनोरम रथ आकाश से उतरा । उस रथ को उपस्थित देख कर अर्जुन ने उसकी प्रदक्षिणा की और वे बीभत्सु, कौन्तेय, श्वेतवाहन रथ में बैठ गये । उन्होंने चमड़े के दस्ताने पहन कर हाथ में धनुष ले लिया । इसके उपरान्त हनुमान की ध्वजा वाले अर्जुन उत्तर की ओर चल दिये और शत्रुसेना के पास पहुँच कर अरिमर्दन बलशाली अर्जुन ने शत्रुओं को कँपाने वाला महाशंख बजाया । शङ्ख के शब्द को सुन कर रथ में जुते घोड़ों ने घुटने टेक दिये और उत्तर भी डर के मारे रथ के अन्दर खिसक पड़ा । अर्जुन ने घोड़ों की बागडोर खींच कर उन्हें खड़ा किया और उत्तर को छाती से लगा कर आश्वासित किया ।

अर्जुन बोले—हे श्रेष्ठ राजपुत्र ! डरो मत, तुम परन्तप क्षत्रिय हो । हे पुरुषव्याघ्र ! शत्रु के बीच में आ कर क्यों घबड़ाते हो ? तुमने शङ्खों और भेरियों के शब्द तो बहुत सुने होंगे और सेना के व्यूहों में खड़े हाथियों की चिंघाड़ें भी खूब सुनी होंगी । वही तुम, इस शङ्ख के शब्द को सुन कर क्यों घबड़ा गये ? तुम साधारण मनुष्यों की तरह विवर्ण और तेजहीन क्यों हो गये ?

उत्तर ने कहा—मैंने शङ्ख और भेरियों के शब्द बहुत सुने हैं और सेना के व्यूहों में खड़े हाथियों की चिंघाड़ें भी खूब सुनी हैं । किन्तु न तो इस शङ्ख का शब्द मैंने पहले कभी सुना था और न इस तरह की ध्वजा ही पहले कभी देखी थी । इस तरह के धनुष का टङ्कार भी मैंने पहले कभी नहीं सुना था । इस शङ्ख की ध्वनि और धनुष के टङ्कार से, ध्वजावासी भूतों के अमानुषी चीत्कार से और रथ के चलने की घर्घराहट से मेरा चित्त घबड़ा उठा है, सब दिशाएँ व्याकुल हैं, मेरा हृदय व्यथित हो गया है और

ध्वजा ने सब दिशाएँ ढाँक रक्खी हैं। इससे वे मुझे दिखलायी नहीं पड़तीं। गाण्डीव के शब्द से तो मेरे कान बहिरे हो गये हैं। यह कह कर उत्तर ने जब रथ बढ़ाया, तब अर्जुन ने कहा। अर्जुन बोले—हे राजपुत्र! एक स्थान पर रथ को खड़ा कर के अपने पैरों से अच्छी तरह उसे दाबे रहो और लगाम को ख़ूब कस के पकड़ लो। मैं शङ्ख को फिर बजाता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—इतना कह कर वे पर्वतों, गिरि की गुफाओं, दिशाओं और शैलों को विदीर्ण करते हुए शङ्ख को बजाने लगे। उत्तर भी उस समय रथ में चुपका बैठा रहा। शङ्ख के शब्द, रथ की घर्घराहट और गाण्डीव के टङ्कार से पृथ्वी काँपने लगी। धनञ्जय ने उत्तर को फिर आश्वासन दे कर शान्त किया।

द्रोण ने कहा—मेघ गर्जन की तरह इस रथ की जैसी घर्घराहट है और जिस तरह इस समय भूमिकम्पन हुआ है इससे साफ़ मालूम पड़ता है कि यह योद्धा सव्यसाची के सिवाय और कोई नहीं है। हमारे शस्त्रों की आभा फीकी पड़ गयी, घोड़े उदास दीख पड़ते हैं, यज्ञवेदियों की धक धक जलने वाली अग्नि मन्द पड़ गयी है, सूर्य की ओर मुख कर के हमारे सब पशु भयङ्कर चीत्कार कर रहे हैं और हमारी ध्वजाओं पर आ आ कर कौए बैठ रहे हैं। हमारी बाईं ओर आ कर पक्षी बड़े भय की सूचना दे रहे हैं। सेना के बीच हो कर बिना घायल हुए ही गीदड़ रोते हुए भागे जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि कोई बड़ा भारी भय आने वाला है। आप लोगों को मैं रोमाञ्चित देखता हूँ। इससे युद्ध में अवश्य हम क्षत्रियों का नाश होगा। ज्योतियाँ प्रकाशित नहीं हो रही हैं, पशु पक्षी सभी व्याकुल हैं। इन विविध प्रकार के सब उत्पातों से तो क्षत्रियों का नाश होता देख पड़ता है। इनमें हमारे नाश के ही लक्षण विशेष रूप से देख पड़ते हैं। हे राजन्! प्रज्वलित उल्काएँ तुम्हारी सेना के सामने ही गिर कर सेना को दुःखी कर रही हैं और सब वाहन दुःखी हो कर रो रहे हैं। तुम्हारे सामने ही गिद्ध सेना के चारों ओर आ बैठे हैं। पार्थ के बाणों से पीड़ित होते

हुए तुम अपनी सेना को देखोगे। तुम्हारी सेना तो अभी से हार मानें बैठी है और कोई युद्ध के लिये उत्सुक नहीं देख पड़ता। तुम्हारे सब योद्धा मलीन मुख और निस्तेज हो रहे हैं। गौओं को भेज कर हम सब योद्धा व्यूह रच कर, खड़े हो जावें।

सैंतालीसवाँ अध्याय

अज्ञातवास का समय पूरे होने में दुर्योधन को शङ्का, कौरवों की व्यूहरचना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उस समय समरक्षेत्र में राजा दुर्योधन ने महात्मा भीष्म, रणशार्दूल द्रोण और महारथी कृपाचार्य से कहा—मैंने अर्थयुक्त जो बात कर्ण और आचार्यवर द्रोण से कही थी, उसी को मैं फिर कहता हूँ, उसे कहते कहते मुझे तृप्ति नहीं होती। उनके (पाण्डवों के) साथ हमारा यह ठहराव हुआ था कि, वे लोग १२ वर्ष तक वनवास और १ वर्ष तक अज्ञातवास करें। उनके अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष अभी पूरा भी नहीं हुआ कि, रथ में बैठ कर अर्जुन प्रकट हो कर हमारे सामने आ गया। निर्वासित समय के समाप्त हुए बिना ही, यदि बीभत्सु सामने आये हैं, तो पाण्डवों को १२ वर्ष फिर वनवास करना पड़ेगा। लोभ से या तो पाण्डवों ने भूल की है या शायद हिसाब लगाने में हम ही भूले हैं। भीष्म जी इस समय की न्यूनता वा अधिकता को ठीक जानते हैं। दुविधा वाली बातों में सदा सन्देह बना रहता है। विचारा कुछ जाता है, तो उसका फल कुछ और ही होता है। हम तो उत्तर मार्ग से मत्स्य लोगों पर चढ़ कर आये थे। तब भी यदि अर्जुन हमसे लड़ने को आये, तो इसमें किसका अपराध हमने किया। हम लोग तो, त्रिगर्तों के लिये मत्स्यों से लड़ने यहाँ आये थे, क्योंकि त्रिगर्तों ने आप ही लोगों के सामने मत्स्य देश वालों की कैसी कैसी

निन्दात्मक बातें कही थीं और भयभीत त्रिगर्त वासियों के लिये ही हमने प्रतिज्ञा की थी कि, सप्तमी की सन्ध्या को त्रिगर्तराज दक्षिण की ओर से आकर मत्स्य देश के बड़े भारी गोधन को हरें। जब मत्स्यराज दक्षिण की ओर जावेगा तब फिर अष्टमी के दिन सूर्योदय के समय हम लोग उत्तर की ओर की गौएँ हर लावेंगे। सो या तो त्रिगर्तराज गौओं को हर कर लाते होंगे या पराजित हुए हमारे पास हमें मध्यस्थ बना कर मत्स्यराज से मेल करने के लिये आते होंगे या त्रिगर्तों को हरा कर अपने नागरिकों के साथ अपनी सब भयानक सेना लिये हुए मत्स्यराज रात को हमसे लड़ने के लिये आ रहे होंगे या उन्हींका यह कोई बड़ा योद्धा हो अथवा मत्स्यराज स्वयं हमें जीतने आ रहे हों। चाहे यह मत्स्यराज हों और चाहे यह बीभत्सु आये हों। हम सब को इनसे लड़ना होगा। क्योंकि, हम प्रतिज्ञा कर चुके हैं। ये सब रथसत्तम भीष्म, द्रोण, कृप, विकर्ण और अश्वत्थामा आदि सम्भ्रान्त हो कर इस समय क्यों बैठे हैं? इस समय युद्ध के सिवाय और किसी बात में कल्याण नहीं है। अतः सब को उत्साहित हो जाना चाहिये। हमसे गोधन छीनने के लिये चाहे वज्रपाणि इन्द्र और यम भी आ जावें तो भी क्या बिना लड़े हम हस्तिनापुर जावेंगे? गहन वन में भागने वाले पैदल इन बाणों से बींधे न जावेंगे; किन्तु हाँ अश्वारोहियों के भाग कर प्राण बचाने में भी सन्देह है। दुर्योधन की बात सुन कर, राधेय कर्ण बोले—आचार्य को आगे से हटा कर पीछे खड़ा कर के नीति से काम लो। क्योंकि ये पाण्डवों के पक्षपाती हैं और सदा हम लोगों को डराया करते हैं और इन्हें अर्जुन से प्रीति भी अधिक है। इसीलिये तो आते हुए अर्जुन की ये प्रशंसा कर रहे हैं। अब ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे सेना न भागे। यदि गुरु जी आगे रहें तो अर्जुन के घोड़ों की हिनहिनाहट सुनते ही वे घबड़ा जायँगे। उन्हें घबड़ाया हुआ देखते ही सेना में भगदड़ पड़ जायगी। इस ग्रीष्म ऋतु में परदेश के जंगल में आये हुए हमारी सेना के सैनिक जिससे शत्रु के अधीन न हो जाँय, ऐसा ही उपाय हमें करना चाहिये। आचार्य की तो सदा से

पाण्डवों पर ही बहुत प्रीति रही है और वे स्वयं भी सदा उन्हींके मतलब की बातें कहा करते हैं। अगर ऐसी बात न होती तो घोड़ों की हिनहिनाहट सुन कर और कौन अर्जुन की प्रशंसा करता। क्योंकि घोड़े तो चलते समय और अपने स्थान पर खड़े होने पर सदा हिनहिनाया ही करते हैं। वायु सदा चलता है, मेघ भी सदा बरसता है और बादल भी सदा गर्जते सुनायी पड़ते हैं। इनमें कौन सा अर्जुन का काम है, न मालूम क्यों व्यर्थ ही अर्जुन की प्रशंसा की जाती है। इसका कारण केवल हमारे प्रति द्वेष और क्रोध ही है। आचार्य लोग तो दयावान्, बुद्धिमान और अहिंसा के पक्षपाती होते हैं। ऐसे भय के समय में तो इनसे किसी तरह का परामर्श भी न लेना चाहिये। विचित्र महलों, सभाओं और उपवनों ही में ऐसी कथायें पण्डितों के मुखों से शोभा पाती हैं। सभाओं में विचित्र विनोद की बातें सुनाने से तथा यज्ञ में पात्रों के प्रोक्षण करते समय ही पण्डित शोभा पाते हैं। पराये मनुष्य के चरित्र में, छिद्र देखने में, हाथी, घोड़े और रथ पर चढ़ने में, गधे, ऊँट, बकरी आदि की चिकित्सा, करने में और भोजन बनाने की अच्छाई बुराई बतलाने ही में पण्डित शोभा पाते हैं। बैरियों के गुण गाने वाले पण्डितों को पीछे रख के ही युद्ध करने की नीति से शत्रु का नाश होता है। गौओं को बीच में खड़ा कर के चारों ओर सेना का व्यूह रच कर रक्षा करो, जिससे हम शत्रु से लड़ें।

अड़तालीसवाँ अध्याय

कर्ण का अपनी वीरता बतलाना और अर्जुन को जीतने की बात कहना

कर्ण बोले—सब वृद्ध भीत तथा डरे हुए देख पड़ते हैं। वे चञ्चलचित्त, युद्ध से उदासीन हुए देख पड़ते हैं। आता हुआ योद्धा चाहे विराट हो और चाहे अर्जुन हो, मैं उसे उसी तरह रोक दूँगा जैसे किनारा समुद्र

को रोकता है। मेरे धनुष से छूटे हुए पैने बाण सर्प की गति से जा कर निशाने पर ही बैठते हैं। पैनी नोंक और सुनहले परों की पूँछ वाले इतने बाण मैं मारूँगा कि, अर्जुन उनसे इसी तरह ढक जावेंगे, जैसे टीड़ियों से पेड़। सुनहले बाणों के मेरे धनुष से छूटने के समय मेरे धनुष से जब टङ्कार शब्द होगा; तब दो नगाड़ों के एक साथ बजने का सा शब्द होगा। तेरह वर्ष वन में रहते रहते वीभत्सु सावधान हो गये हैं और इस युद्ध में अवश्य मुझ पर चोट करेंगे। गुणी ब्राह्मण की तरह सत्पात्र अर्जुन को आज मेरे दिये हज़ारों बाण ग्रहण करने होंगे। हमारा धनुष, तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और नरश्रेष्ठ अर्जुन से मैं भी किसी बात में कम नहीं हूँ। गिद्धों के पर वाले मेरे सोने के बाण आकाश में आज जुगनू की तरह चमकेंगे। आज मैं पुरातन प्रतिज्ञानुसार संग्राम में अर्जुन को मार कर दुर्योधन को देखूँगा। जिससे उनके अक्षय्य ऋण से मैं मुक्त हो जाऊँगा। रास्ते ही में जिनकी पूँछ कट जाती है, ऐसे मेरे बाणों से आज आकाश को टीड़ीदल की तरह भरा देखना। इन्द्र के वज्र के समान दृढ़ शरीर वाले और महेन्द्र के समान तेजस्वी अर्जुन को मैं आज उसी तरह तंग करूँगा, जैसे उल्काओं से हाथी। सर्वशस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और अतिरथी वीर अर्जुन को विवश कर के मैं वैसे पकड़ लूँगा जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है। शक्ति और खड्ग रूपी ईंधन के आश्रित अग्नि रूपी अर्जुन जब वैरियों को जलाने लगेंगे, तब अश्व वेग रूपी प्रचण्ड पवन से रथ रूपी मेघ को गर्जता हुआ मैं बाण रूपी जल की वर्षा से अर्जुन रूपी अग्नि को शान्त कर दूँगा। मेरे धनुष से छूटे हुए बाण वैसे ही अर्जुन के शरीर में प्रवेश करेंगे, जैसे सर्प बाँबी में घुसते हैं। आज मेरे सुनहले पर वाले तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन वैसे ही ढँक जावेंगे, जैसे पर्वत कनैर के पेड़ों से। अपने पराक्रम और ऋषिसत्तम परशुराम से प्राप्त शस्त्रों के सहारे तो मैं इन्द्र से भी लड़ सकता हूँ। मैं आज भाले की चोट से अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठे वानर को मारूँगा, जिससे वह भयानक शब्द करता हुआ पृथिवी पर आ

गिरेगा। ध्वजावासी भूतों को भी मैं विपन्न कर दूँगा और वे बड़ा हाहाकार करते हुए चारों दिशाओं को भाग जावेंगे। बीभत्सु को रथ से गिरा कर आज मैं दुर्योधन के हृदय में सदा से चुभने वाला काँटा हमेशा के लिये जड़ से निकाल दूँगा। घोड़े मारे जाने से पार्थ रथहीन हो कर बलवान सर्प की तरह फुफकारते जब घूमेंगे, हे कौरवों! तब तुम उसे देखना। हे कौरवों! चाहे तो तुम लोग गोधन ले कर चले जाओ और चाहे रथों पर बैठे हुए मेरा युद्ध देखो।

उनचासवाँ अध्याय

कर्ण की निन्दा करते हुए कृपाचार्य का अर्जुन से लड़ने का उपाय बतलाना

कृपाचार्य बोले—हे राधापुत्र कर्ण! युद्ध के विषय में तुम्हारी मति सदा से क्रूर रही है। न तो तुम अर्थों की प्रकृति अर्थात् किसी कार्य के कारण ही को जानते हो और न उसके फल का विचार करते हो। शास्त्रों के अनुसार मैंने बहुत विचार किया; किन्तु यह युद्ध पुराने समय ही से पापिष्ठ कहलाता आ रहा है। देश और काल का विचार कर के जो युद्ध किया जाता है; वह विजय-दायक होता है। विपरीत काल में वही युद्ध अच्छा फल नहीं देता। देशकाल ही के अनुसार कार्य का फल मिलता है। देश और काल की अनुकूलता का विचार कर के काम करने ही से सफलता मिलती है। पण्डित लोग रथ बनाने वाले के कहने पर ही काम नहीं करते (वे अपनी भी बुद्धि व्यय करते हैं)। इसीलिये देश काल का विचार कर के ही तो अकेले अर्जुन से लड़ना ठीक नहीं है। अकेले अर्जुन ही ने कौरवों की चित्रसेनादि से रक्षा की थी और अकेले ही उन्होंने अग्नि को तृप्त किया था। उसने पाँच वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था और अकेले ही सुभद्रा

का हरण कर के श्रीकृष्ण को युद्ध करने के लिये पुकारा था। किरात-वेष-धारी रुद्र के साथ अकेले ही अर्जुन ने युद्ध किया था और इसी वन में हरी जाती हुई द्रौपदी को उसने अकेले ही छुड़ाया था। अर्जुन ने अकेले पाँच वर्ष स्वर्ग में रह कर इन्द्र से अस्त्र-विद्या सीखी थी और अकेले ही शत्रुओं से लड़ कर उसने कुरुवंशियों की कीर्ति फैलायी है। जिन गन्धर्वों को संग्राम में जीतना बड़ा कठिन ही था, उन्हींकी सेना से अकेले युद्ध कर के अर्जुन ने चित्रसेन गन्धर्व को जीता था। इसी तरह निवात कवच और कालखञ्ज नामक दैत्यों को जिन्हें देवता भी नहीं मार सकते थे, अकेले ही अर्जुन ने उन्हें मार गिराया था। जैसे अकेले ही जा जा कर उन पाण्डवों ने राजाओं को जीता था, वैसे ही हे कर्ण! बतलाओ तुमने किस किस को अकेले जीता है? इन्द्र भी संग्राम में अर्जुन का सामना नहीं कर सकते और इस पर भी यदि तुम उनसे लड़ना चाहते हो तो अपनी दवा करो। ज्ञात होता है कि, तुम अपना दहिना हाथ डाल कर, क्रुद्ध विषधर के मुँह से डाढ़ उखाड़ना चाहते हो या वन में विचरण करते हुए एक मत्त हाथी पर विना अंकुश अकेले चढ़ कर नगर में जाना चाहते हो। अथवा घी में डूबे हुए वस्त्र को पहिन कर उस अग्नि के बीच हो कर निकलना चाहते हो जिसमें घी मेद और चर्बी की आहुति दी गयी है। अपने गले में बड़ी भारी शिला बाँध कर और अपना सब शरीर रस्सी से बाँध कर, कौन पुरुषार्थी पैर कर, समुद्र पार करेगा? जैसे एक बड़ा दुबला और अस्त्रविद्या को न जानने वाला मनुष्य बड़े बलवान अस्त्र-विद्या-विशारद से लड़े वैसे ही जो मनुष्य अर्जुन से लड़े, तो हे कर्ण! वह बड़ा ही मूर्ख कहा जायगा। हम लोगों ने जिस अर्जुन को १३ वर्ष के लिये वन में निकाल दिया था; वही जाल से छूटे सिंह की तरह हम लोगों का नाश करेगा। कुएँ के भीतर गुप्त अग्नि के समान यहाँ पर अर्जुन गुप्त-वास करता था। अज्ञान से उसीके यहाँ आ जाने के कारण हम बड़े भय में पड़ गये हैं। युद्ध के लिये आते हुए दुर्दान्त अर्जुन के साथ हम सब को युद्ध करना चाहिये। इसलिये हमारी संहारकारिणी सेना को व्यूह बना कर, तैयार

हो जाना चाहिये। द्रोण, दुर्योधन, भीष्म, तुम, अश्वत्थामा और हम सब को पार्थ से युद्ध करना चाहिये। हे कर्ण! तुम अकेले लड़ने का दुस्साहस मत करो। वज्रपाणि की तरह उद्धत हो कर, रण के लिये आते हुए अर्जुन के सामने हम छहों महारथी मिल कर ही ठहर सकते हैं (अन्यथा नहीं)। व्यूह में खड़ी सेना तैयार खड़ी रहे। हम सब धनुर्धारी अर्जुन के साथ उसी तरह युद्ध करेंगे, जैसे दानवों का इन्द्र से युद्ध हुआ था।

पचासवाँ अध्याय

कर्ण और दुर्योधन की निन्दा तथा अर्जुन की प्रशंसा करते हुए अश्वत्थामा का स्वयं युद्ध न करने की इच्छा प्रकट करना

अश्वत्थामा ने कहा—हे कर्ण! न तो तुमने अभी गौएँ जीतीं, न सीमा के पार हुए और न हस्तिनापुर ही पहुँचे, फिर क्यों व्यर्थ की डींगे हाँक रहे हो। बहुत से संग्रामों को जीत कर तथा बहुत सा धन पा कर और शत्रु-सेनाओं को जीत कर भी ज्ञानी वीर आत्मश्लाघा नहीं करते। अग्नि चुपचाप जलता है, सूर्य चुपचाप तपते हैं और पृथिवी भी चुपचाप ही चराचर जीवों को धारण किये हुए है। बिना पाप किये ही चारों वर्णों के लिये धनोपार्जन की व्यवस्था ब्रह्मा ने कर दी है। वेदों को पढ़ कर, यज्ञ कर और करा के ब्राह्मण, क्षत्रिय वेदाभ्यासपूर्वक धनुर्विद्या को सीखे और यज्ञ करे, पर इन्हें करावे नहीं और अपनी आजीविका चलावे। खेती आदि व्यापार तथा वैदिक कर्मों को कर के वैश्य और उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा और आज्ञा पालन करते हुए शूद्र अपनी अपनी वृत्ति पर स्थित रहें। शास्त्र के आज्ञानुसार आचरण करते हुए भाग्यवान लोग नीतिपूर्वक पृथिवी जीत लेते हैं और गुणवान गुरु का सत्कार

करते हैं। कौन सा क्षत्रिय इन घृणित तथा नृशंस धृतराष्ट्र पुत्रों की तरह जुए में राज्य पा कर सन्तुष्ट होगा। व्याधों की तरह छल कपट से धन पैदा कर जो अपनी आजीविका चलाता है, उसी तरह अर्थसञ्चित कर के कौन सा चतुर पुरुष अपनी बड़ाई करेगा? कौन से द्वैरथ युद्ध में तुमने अर्जुन नकुल या सहदेव को जीता है; जिनका धन तुम हरे बैठे हो? और किस युद्ध में तुमने युधिष्ठिर या महावली भीम को जीता है? और पहले किस युद्ध में तुमने इन्द्रप्रस्थ जीता था? तुमने किस संग्राम में उस कृष्णा को जीता था, जो रजस्वला तथा एक वस्त्र से सभा में लायी गयी थी। पाण्डवों की बड़ी भारी जड़ को, जो चन्दन की तरह शान्त तथा शीतल थी, तुमने पीड़ित किया है। हे सूतपुत्र! तुझे याद है कि, उस समय विदुर ने क्या कहा था? हम मनुष्यों में यथाशक्ति क्षमा का भाव देखते हैं। कीट पतङ्गादि भी सीमा पार करने पर क्षमा नहीं करते। किन्तु द्रौपदी के ऊपर किये गये अत्याचार को पाण्डव कभी सहन न करेंगे। धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश करने ही के लिये धनञ्जय का प्रादुर्भाव हुआ है। फिर भी इन सब बातों को जान कर और पण्डित हो कर भी तुम ऐसा कहते हो। बैरियों का नाश करने वाला अर्जुन तो हमारा अन्त कर के छोड़ेगा। देवता, गन्धर्व और असुरों के सामने भी संग्राम में अर्जुन डर कर हटने वाले नहीं हैं। यहाँ पहुँच कर जिस जिस पर वह चढ़ाई करेंगे उसे वे उसी तरह नष्ट कर देंगे; जैसे गरुड़ अपने वेग से वृक्षों को नष्ट कर देते हैं। बल में तुमसे अधिक, धनुष चलाने में इन्द्र के समान और युद्ध में वासुदेव के समान अर्जुन की कौन प्रशंसा न करेगा? देवताओं से देवता के समान, मनुष्यों से मनुष्यों के समान जो लड़ते हैं और जो अस्त्र को अस्त्र ही से नष्ट कर देते हैं उन अर्जुन की बराबरी करने वाला कौन पुरुष है? धर्मात्माओं का कथन है कि, पुत्र से उतर कर शिष्य होता है। ऐसी अवस्था में उस पाण्डव पर द्रोण क्यों न प्यार करें। अतः जिस तरह तुमने जुआ खेल, इन्द्रप्रस्थ हरा, ज़बरदस्ती तुम द्रौपदी को सभा में लाये उसी तरह तुम अर्जुन से आज युद्ध करो। बुद्धिमान और क्षात्रधर्म

में पण्डित और जुआ खेलने में बड़े निपुण तुम्हारे मामा गान्धारनरेश शकुनि इस युद्ध में लड़े। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि नाम के पाँसे थोड़े ही गिरेंगे उनसे तो जलते हुए पैने बाण निकलेंगे। गाण्डीव से निकले हुए गिद्धों के परों वाले तेजस्वी बाणों को तो बड़े बड़े पहाड़ भी नहीं रोक सकते। क्रुद्ध मृत्युकाल और बड़वानल से चाहे कुछ बच भी रहे; किन्तु क्रुद्ध अर्जुन से तो कुछ भी नहीं बच सकता। जैसे मामा के साथ तुम सभा में जुआ खेले थे, वैसे ही शकुनि से रक्षित हो कर तुम संग्राम में युद्ध करो। यदि गौओं को छीनने के लिये विराट स्वयं आवें तो उनसे तो मैं लड़ूँगा। क्योंकि उनसे तो हमारी लड़ाई है; दूसरे योद्धा भले ही अर्जुन से लड़ें किन्तु मैं अर्जुन से न लड़ूँगा। क्योंकि उसके साथ मेरी शत्रुता थोड़े ही है।

इक्यावनवाँ अध्याय

भीष्म का सब को शान्त कर के द्रोणाचार्य से क्षमा मँगवाना

भीष्म बोले—अश्वत्थामा और कृपाचार्य के कहने का अभिप्राय ठीक है और कर्ण धर्मानुसार युद्ध ही करना चाहता है। ज्ञानी हो कर आचार्य पर दोष लगाना उचित नहीं। देश और काल का विचार कर के युद्ध करने ही की मेरी भी राय है। जिसके सूर्य के समान तेजस्वी पाँच पाँच शत्रु हो, वैसे शत्रु के प्रकट होने से स्वभावतः ही पण्डित मोहित हो जावें, तो कोई आश्चर्य नहीं। धर्म को जानने वाले ज्ञानी लोग भी सब के साथ अपनी प्रयोजनसिद्धि के समय मोहित हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम्हें रुचे तो राजन्! मैं भी कुछ कहूँ। कर्ण ने जो कुछ कहा था, वह केवल उत्साह बढ़ाने के ही लिये कहा था। हे आचार्यपुत्र! क्षमा करो, इस समय बड़ा भारी

कार्य उपस्थित है। कौन्तेय अर्जुन के सामने आ जाने पर यह समय विरोध करने का नहीं है। इसलिये कृपाचार्य और आचार्य द्रोण को क्षमा करना चाहिये। आप दोनों का अस्त्रज्ञान सूर्य के तेज और चन्द्रमा की प्रभा के समान है और वह किसी तरह कम नहीं हो सकता। आप दोनों में ब्रह्मण्यता और ब्रह्मास्त्र दोनों ही प्रतिष्ठित हैं। एक यदि चारों वेदों का ज्ञाता है तो दूसरे में पूर्ण क्षात्रधर्म है। किन्तु ये दोनों बातें मेरी समझ में भरत-वंशियों के आचार्य और उनके पुत्र अश्वत्थामा को छोड़ कर और कहीं देखने में नहीं आतीं। हे राजन्! वेदान्त, पुराण, पुराने इतिहास आदि के जानने में परशुराम को छोड़ कर और कोई भी द्रोणाचार्य से बढ़ा चढ़ा नहीं है। ऐसा अच्छा ब्रह्मास्त्र और वेदों का जानने वाला और कोई नहीं है। अतः हे आचार्यपुत्र! क्षमा करो। यह समय भेद का नहीं है। इन्द्रपुत्र अर्जुन के साथ लड़ने के लिये हम सब को तैयार हो जाना चाहिये। विद्वानों ने सेना की जिन बुराइयों का वर्णन किया है उनमें आपस के कलह को मुख्य माना है। अतः जो आपस में कलह करता है; वही पापिष्ठ है।

अश्वत्थामा ने कहा—हे पुरुषप्रवर! हमारी कही हुई न्यायपूर्ण बातें निन्दा के योग्य नहीं हैं। किन्तु (गुण के कारण) रोष में भर कर ही आचार्य ने पाण्डवों की प्रशंसा की थी। गुण शत्रु का भी ग्राह्य है और दोष गुरु के भी कहने चाहिये। जहाँ तक हो सके पुत्र और शिष्य के हित ही की बात कहनी चाहिये। दुर्योधन ने कहा—आचार्य! अब क्षमा करो और शान्ति स्थापित करो। गुरु लोगों के मन में भेदभाव होने से हमारा कार्य नष्ट हो जायगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे भारत! तब दुर्योधन ने भीष्म, कर्ण और कृप के साथ जा कर महात्मा द्रोण से क्षमा माँगी। द्रोण बोले—मैं तो शान्तनु भीष्म की पहली बात ही से प्रसन्न हो चुका था। इस लिये अब नीति से काम करना चाहिये। ऐसा उपाय करना चाहिये। जिससे अर्जुन मोह अथवा साहस से दुर्योधन पर आक्रमण न करे, वनवास और

अज्ञातवास का समय यदि पूरा न हो जाता तो धनञ्जय कभी सामने नहीं आते और अब तो वह गोधन को बिना लौटाये हमें क्षमा भी न करेंगे। अतः अब हमें ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे न तो वह धृतराष्ट्र पुत्रों पर ही आक्रमण कर सकें और न सेना ही को पराजित कर सकें। हे गाङ्गेय भीष्म! मेरी तरह दुर्योधन ने भी अभी आपसे पूँछा था कि, पाण्डवों के (वन और अज्ञातवास के) तेरह वर्ष पूरे हुए हैं या नहीं सो आप इसका अच्छी तरह विचार कर के उत्तर दें।

बावनवाँ अध्याय

भीष्म का कहना कि पाण्डवों का वन और अज्ञात वास का समय पूरा हो गया है और अर्जुन से लड़ने के लिये व्यूहरचना

भीष्म ने कहा—कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, महीना, नक्षत्र, ग्रह, ऋतुएँ, संवत्सर आदि समय के विभागों में कालचक्र घूमता है और उन्हींके कालातिरेक तथा नक्षत्रों के व्यतिक्रम से पाँचवे पाँचवे वर्ष में दो दो अधिमास होते हैं। अच्छी तरह विचार कर के मेरी समझ से तो पाण्डवों को वनवास में गये तेरह वर्ष से भी अधिक पाँच महीने और बारह दिन हो गये। पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण रूप से पालन की। इसीसे उक्त निश्चयानुसार ही प्रकट हो कर अर्जुन सामने आये हैं। वे सभी महात्मा हैं और धर्म को जानने वाले हैं। राजा युधिष्ठिर जिनके नेता हैं, उनसे भला धर्म के विषय में चूक ही क्यों होगी? कुन्तीपुत्र लोभी नहीं हैं और वे लोग बड़े कठिन कामों को करने वाले हैं। वे अनीतिपूर्वक कभी भी राज्य लेना न चाहेंगे। यदि वे चाहते तो वे वीर उसी समय (वनवास के समय) अपना पराक्रम दिखला सकते थे; किन्तु धर्मपाश में बँधे रहने से, वे क्षत्रियों

के नियम से विचलित नहीं हुए। जो उन्हें झूठा कहेगा उसका पराभव अवश्य होगा। पाण्डव लोग मृत्यु स्वीकार कर लेंगे; किन्तु झूठ नहीं बोलेंगे। इसी तरह समय आने पर इन्द्र से भी रक्षित अपनी चीज़ लेने में वे इतना पराक्रम दिखला सकते हैं कि वे उसे लेकर ही छोड़ें। संग्राम में सब शस्त्रों के पण्डित अर्जुन से हमें लड़ना ही पड़ेगा इस लिये जिस से लोगों का कल्याण हो और जिसे सत्पुरुष करते आये हों, उस काम को शीघ्र करो जिससे तुम्हारे हाथ से गौएँ न जाने पावें। संग्राम में हे कौरव! एकांत सिद्धि मिलते हमने कभी नहीं देखी। हे राजेन्द्र! देखो धनञ्जय आ पहुँचे। संग्राम में हानि या लाभ जय या पराजय इनमें से एक तो निस्सन्देह मिलती है। इस लिये हे राजेन्द्र! या तो युद्धोपयोगी अथवा धर्मोपयोगी कर्म शीघ्र ही करो। क्योंकि अर्जुन आ पहुँचा है।

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह! मैं पाण्डवों को राज्य तो न दूँगा। इस लिये युद्धोपयोगी कार्य ही कराइये।

भीष्म बोले—हे कुरुनन्दन! यदि तुझे पसन्द हो तो इस सम्बन्ध में मेरी बात तुम सुनो। क्योंकि मैं तो केवल कल्याणकारक बात ही कहूँगा। सेना के चतुर्थ भाग को लेकर, तुम तो शीघ्र हस्तिनापुर की ओर चल दो और दूसरा चौथाई भाग गौओं को ले कर जावे। बाकी आधी सेना से हम लोग अर्जुन का सामना करेंगे। मैं, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य युद्ध के लिये आते हुए वीभत्सु से लड़ेंगे। इतने में विराट या स्वयं इन्द्र भी लड़ने को आवें तो मैं उनको उसी तरह रोके रहूँगा जैसे किनारा समुद्र को।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महात्मा भीष्म की कही बातें उन सब को अच्छी लगीं। इसके बाद कौरवराज ने उसी तरह काम किया। भीष्म इस तरह दुर्योधन को और गौओं को रवाना कर सेना को व्यूह में खड़ा कर के मुखियों से बोले।

भीष्म ने कहा—आचार्य बीच में रहें अश्वत्थामा तुम सेना की बायीं ओर रहो और शरद्वान के पुत्र बुद्धिमान कृपाचार्य सेना के दक्षिण पार्श्व की रक्षा करें। कवच धारण करके सूतपुत्र कर्ण सेना के आगे खड़ा हो और सब सेना की रक्षा के लिये मैं पीछे खड़ा होता हूँ।

तिरपनवाँ अध्याय

कौरव सेना के पास पहुँच कर अर्जुन का शङ्ख ध्वनि करना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! जब इस तरह कौरव सेना व्यूहबद्ध हो खड़ी हो गयी, तब इतने में रथ को बढ़ा अर्जुन भी वहाँ आ पहुँचे। वे (कौरव सेना के सैनिक) अर्जुन की ध्वजा का अग्रभाग देखने लगे, रथ की घर्घराहट सुनने लगे और ज़ोर से खींचे गये गाण्डीव के टङ्कार शब्द उनके कानों में पड़े। सब की ओर देख कर और महारथ पर सवार गाण्डीवधारी अर्जुन को आया देख कर, द्रोणाचार्य बोले।

द्रोण ने कहा—यह पार्थ ही की ध्वजा दूर से प्रकाशित हो रही है। यह अर्जुन के ही रथ की घर्घराहट है और यह नाद बन्दर ही कर रहा है। श्रेष्ठ रथ में बैठा हुआ रथियों में श्रेष्ठ धनुषों में श्रेष्ठ गाण्डीव को ज़ोर से खींचने वाला यह अर्जुन ही है। ये दोनों बाण साथ साथ मेरे पैरों के पास आ गिरे और देखो दूसरे ये दो बाण मेरे कानों को छूते हुए निकल गये। वनवास से लौट कर और अमानुषिक कर्म कर के आया हुआ अर्जुन (पैरों में फेंके हुए बाणों से) नमस्कार करता है और (कानों की ओर आये हुए बाणों से) कुशलक्षेम पूँछता है। बुद्धिमान्, बान्धवप्रिय, बड़े तेजस्वी, श्रीमान् पाण्डुपुत्र अर्जुन को मैंने बहुत दिनों बाद आज देखा है। रथ, बाण,

शङ्ख, तरकस, पताका, कवच, किरीट, खड्ग और धनुष से युक्त अर्जुन ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे घृत की आहुति दिया हुआ अग्नि।

अर्जुन ने कहा—हे सारथे! तुम अपने रथ को सेना से इतनी दूर ले चल कर घोड़ों को खड़ा करो, जहाँ से बाण साधारणतया चलाये जाते हैं, जिससे हम कुरुकुलाधम दुर्योधन को देखें कि वह कहाँ है। सब का अनादर करता हुआ मैं उस अभिमानी को देख कर, उसीकी खोपड़ी पर टूटूँगा जिससे ये सब पीछे पराजित हो जावेंगे। इसके अनन्तर आगे बढ़ कर देखा तो एक तरफ द्रोण थे, उनके पार्श्व में अश्वत्थामा था और भीष्म, कृप और कर्ण आदि महावीर भी वहीं थे। इनमें दुर्योधन नहीं दीख पड़ता। इस लिये शङ्का होती है कि, वह गौओं को लेकर अपने प्यारे प्राणों को बचाने के लिये दक्षिण मार्ग से हस्तिनापुर जा रहा है। हे विराटनन्दन! रथियों की इस सेना को छोड़ो और उधर चलो जिधर दुर्योधन गया है। वहीं मैं लड़ूँगा, बिना लाभ के युद्ध करना व्यर्थ है। उसे जीत कर मैं गौएँ लौटा लाऊँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! अर्जुन की बात सुन कर उत्तर ने बड़े बड़े कौरव योद्धाओं की ओर से घोड़ों को मोड़ कर, रथ को उधर बढ़ाया जिधर दुर्योधन जा रहा था। सामने खड़ी हुई रथसेना को छोड़ कर, श्वेतवाहन अर्जुन को दूसरी ओर मुड़ते देख और उसके अभिप्राय को समझ कृपाचार्य ने कहा। दुर्योधन के यहाँ न होने से अर्जुन हमारे साथ लड़ने को नहीं खड़ा हुआ और वह दुर्योधन के पीछे जा रहा है। तेज़ी से जाते हुए अर्जुन पर पीछे से हमें भी आक्रमण करना चाहिये। क्रुद्ध अर्जुन के सामने अकेले लड़ने की शक्ति इन्द्र, देवकीनन्दन कृष्ण, महारथी द्रोणाचार्य और उनके पुत्र महारथी अश्वत्थामा को छोड़ कर अन्य किसी में नहीं है। हमारे पहुँचने के पूर्व ही, यदि दुर्योधन रूपी नौका पार्थ रूपी जल में डूब गयी अर्थात् अर्जुन ने दुर्योधन को मार लिया तो इस विपुल धन और बहुत सी गौओं को ले कर ही हम क्या करेंगे? इतने में दुर्योधन

के पास पहुँच कर और अपना नाम बतला कर बीभत्सु उसकी सेना पर टीड़ीदल की तरह बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन ने कौरव सेना पर इतने बाण बर्साये कि, उनसे भूमि और आकाश ढक गया और कौरव योद्धा पृथ्वी तथा आकाश में कोई वस्तु नहीं देख सके। युद्ध में आये हुए किसी भी योद्धा ने संग्राम से भागने का विचार न किया बल्कि वे सब मन ही मन अर्जुन के शीघ्र शीघ्र बाण चलाने की प्रशंसा करने लगे। इतने में अर्जुन ने शत्रुओं को रोमाञ्चित करने वाला शङ्ख बजाया और धनुष पर ज़ोर से टंकार कर के, ध्वजावासी प्राणियों को गर्जने का इशारा किया। उनके शङ्ख के भयङ्कर नाद और रथ की घरघराहट तथा गाण्डीव के टंकार से पृथिवी काँपने लगी और ध्वजावासी प्राणियों के अमानुषी भैरव नाद से सब काँप उठे और पूँछ ऊपर को उठा कर रँभाती हुई सब गौएँ दक्षिण मार्ग से लौट पड़ीं।

चौवनवाँ अध्याय

अर्जुन-कर्ण युद्ध और कर्ण का संग्राम से भागना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन ने अपने वेग से शत्रु सेना को तितर बितर कर के गौएँ छीन लीं और युद्ध करने की इच्छा से वे दुर्योधन की ओर बढ़े। मत्स्य देश की ओर तेज़ी से गौओं को भागते देख और किरीटी अर्जुन को सफलता मिली जान कर, और दुर्योधन की ओर अर्जुन को जाते देख कर, बड़े बड़े कौरव योद्धा एक साथ अर्जुन पर दौड़े। कौरवों की बहुत सी ध्वजाओं से युक्त विशाल वाहिनी को व्यूह में स्थित देख कर, शत्रुनाशन अर्जुन ने मत्स्यपुत्र विराटनन्दन से पुकार कर कहा—तुम इन सोने की जोतों में बँधे और सोने की लगामों वाले श्वेत अश्वों को इधर फेर कर, जल्दी से दुर्योधन की सेना की ओर ले चलो। जैसे हाथी हाथी से लड़ना चाहता हो

वैसे ही मेरे साथ सूतपुत्र कर्ण लड़ना चाहता है। अतः हे राजपुत्र! दुर्योधन का आश्रय मिलने से घमंड में भरे हुए सूतपुत्र की ओर मुझे शीघ्र ले चलो। यह सुन कर विराटपुत्र, पवन वेग वाले और सोने की झूलें ओढ़े हुए घोड़ों को दौड़ा कर और शत्रुसेना को चीरता हुआ रथ रणक्षेत्र में ले गया। उस समय कर्ण की रक्षा करने की इच्छा से चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह और जय नामी योद्धा अर्जुन के सामने आये। तदुपरान्त उस पुरुषप्रवर ने उन कौरव योद्धाओं के रथों को अपने धनुषरूपी अग्नि की बाणरूपी ज्वाला से भस्म कर दिया। उस तुमुल युद्ध में अतिरथी विकर्ण ने भीमवेग से विपाठ नामी बाण भीम के छोटे भाई अर्जुन पर चलाये। तब अर्जुन ने विकर्ण का धनुष तोड़ कर, सोने से मढ़े दोनों छोरों वाले और दृढ़ज्या वाले अपने श्रेष्ठ धनुष को खींच खींच कर बाण मारे तब तो विकर्ण की ध्वजा कट कर गिर पड़ी और वह घबड़ा कर ज़ोर से भागा। तेज़ी से बाणों की वर्षा करते हुए अमानुषिक कर्म करने वाले अर्जुन को सेना का नाश करते देख शत्रुन्तप नामक राजा अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस अतिरथी राजा के बाणों से बींधे जाने पर कौरवसेना के बीच में स्थित, अर्जुन ने जल्दी जल्दी चला कर पाँच बाणों से शत्रुन्तप को बींधा और दश बाण मार कर उसके सारथी को मार डाला। तदुपरान्त अर्जुन के बाण कवच फोड़ कर शरीर में घुसे। बाणों से मर कर वह राजा रथ से ज़मीन पर इस तरह गिर पड़ा, जिस तरह पवनवेग से टूटा हुआ वृक्ष पहाड़ पर से गिरता है। अर्जुन के इस तरह भयानक प्रहार करने पर कौरवों की ओर के बड़े बड़े वीर मारे जाने लगे। उस समय कौरव दल इस तरह काँपने लगा, जिस तरह आँधी चलने से बड़े बड़े वन काँपने लगते हैं। पार्थ के हाथों मारे गये बहुत से वीर सुन्दर वेष में पृथिवी पर लोट रहे थे और बहुत से इन्द्र के समान वेषधारी वीर पुरुष अर्जुन के सामने से भाग गये थे। सुवर्ण की चमक लोहे के कवच पहने हुए, हिमालय वासी वृद्ध हाथियों के समान देख पड़ने वाले बहुत से शत्रुपक्षीय वीरों को उस संग्राम में गाण्डीवधन्वा वीर अर्जुन ने मार

डाला। इस समय रणक्षेत्र में चारों ओर घूम घूम कर अर्जुन शत्रु को इस तरह दग्ध कर रहे थे, जिस तरह अग्नि वन को जलाता है और वसन्त में जिस तरह सूखे पत्ते पवन के झकोरों से इधर उधर उड़ जाते हैं उसी तरह अर्जुन ने शत्रु को तितर बितर कर दिया था। इस तरह घूमते घूमते अर्जुन ने कर्ण के एक भाई शोणाश्वबाहु के घोड़े मार डाले और दूसरे भाई संग्रामजित का सिर एक बाण से काट गिराया। अपने भाई को मारे जाते देख कर, सूर्यपुत्र कर्ण को बड़ा क्रोध आया और हाथी जैसे पर्वत के शिखरों पर या व्याघ्र जैसे एक बड़े साँड़ पर दौड़ता है, वैसे ही वह अर्जुन पर दौड़ा। कर्ण ने बारह बाण अर्जुन को मार कर विकल किया और घोड़ों के शरीर भी सब जगह छेद कर अर्जुन के सारथी उत्तर का हाथ भी घायल कर दिया। सहसा कर्ण को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, अर्जुन भी उस पर उसी तरह टूट पड़े जिस तरह विचित्र पंखों वाला गरुड़ वेग से सर्प के ऊपर टूट पड़ता है। उन दोनों महाबली धनुर्धारियों में उत्तम और एक दूसरे की टक्कर झेलने वाले कर्ण और अर्जुन में युद्ध शुरू होने की बात सुन कर, कौरव लोग उन दोनों का युद्ध देखने के लिये चारों ओर से आ खड़े हुए। अपराधी कर्ण को देखते ही अर्जुन क्रोध में भर गये और प्रसन्नतापूर्वक वे उस पर अविरल बाणों की वर्षा करने लगे और कर्ण को मय उसके रथ और घोड़ों के बाणों से ढक दिया। तदुपरान्त कौरवों के अन्य बड़े बड़े योद्धाओं को भी मय उनके घोड़ों रथों आदि के अर्जुन ने बाणों से ढक दिया। भीष्म आदि बड़े बड़े योद्धाओं को भी अर्जुन ने नहीं छोड़ा और उन्हें भी बाणों से ढक दिया। योद्धा, हाथी और घोड़े आदि बाणों की मार से चिल्लाने लगे। इतने में महात्मा कर्ण ने अर्जुन के छोड़े हुए बाणों को काट गिराया और धनुष बाण लिये हुए रथ में वे वैसे ही शोभित होने लगे; जैसे चिनगारी निकलता हुआ अग्नि। तब कौरवसेना तालियाँ पीट कर और शङ्खों तथा भेरियों का नाद करके और सिंहगर्जन कर के कर्ण का सत्कार करती हुई उसे उत्साहित करने लगी। अर्जुन के रथ की पताका पर ऊँची पूँछ किये वन्दर

तथा और भूतादि प्राणी बड़ा भयङ्कर गर्जना कर रहे थे। उनकी गर्जना और गाण्डीव के टङ्कार को सुन कर तथा अर्जुन को देख कर, कर्ण ने सिंहनाद किया। तब अर्जुन ने घोड़ों, रथ और सारथी सहित कर्ण को अपनी अविराम बाणों की वर्षा से घायल कर दिया और द्रोण तथा कृपाचार्य की ओर देख कर किरीटी ने भीष्म पर भी बाण बरसाये। सूर्यपुत्र कर्ण ने भी मेघ के समान अर्जुन पर बहुत बाण बरसाये और उसी तरह पैने बाणों की वर्षा करके किरीटधारी अर्जुन ने भी कर्ण को ढक दिया। रणक्षेत्र में एक दूसरे पर पैने बाणों की वर्षा करते हुए तथा भयङ्कर शस्त्र चलाते हुए वे दोनों, लोगों को ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों मेघों में सूर्य तथा चन्द्रमा रथ में बैठे हुए हैं। इतने में चतुर कर्ण ने जल्दी जल्दी बाण चला कर अर्जुन के चारों घोड़ों को घायल कर दिया, तीन बाण से सारथी को घायल कर के तीन बाणों से अर्जुन के रथ की ध्वजा काट डाली। संग्राम में इस तरह चोट खाने पर सोता सिंह जैसे जागता है, वैसे ही सावधान हो कर पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन गाण्डीव धनुष से सीधे बाण छोड़ते हुए कर्ण की ओर बढ़े। कर्ण के बाणों से घायल हो जाने पर महात्मा धनञ्जय ने अमानुषिक पराक्रम दिखलाना आरम्भ किया और कर्ण के रथ को बाणों से उसी तरह ढक दिया जिस तरह सूर्य जगत को अपनी किरणों से ढक देते हैं। एक हाथी की मार से दूसरा हाथी क्रोध में भर कर जैसे आक्रमण करता है वैसे ही कर्ण द्वारा घायल होने पर अर्जुन भाले की तरह के बाण गाण्डीव पर चढ़ा चढ़ा कर रोदे को कान तक खींच खींच कर सूतपुत्र के शरीर को घायल करने लगे। अर्जुन ने उस युद्ध में वज्र के समान तेजस्वी और पैने बाण गाण्डीव धनुष से इस तरह मारे कि, कर्ण की भुजा, जाँघें, मस्तक, ललाट तथा कण्ठ आदि अङ्ग बुरी तरह घायल हो गये। पार्थ के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए पैने बाणों की चोट से घायल हो कर, सूर्यपुत्र कर्ण वैसे ही भागा, जैसे एक हाथी दूसरे हाथी से हार कर भागता है।

पचपनवाँ अध्याय

कौरवसेना को मारते हुए अर्जुन का आगे बढ़ना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! राधापुत्र कर्ण के भाग जाने पर धीरे धीरे दुर्योधन आदि योद्धा अपनी अपनी सेना को ले कर पाण्डुनन्दन अर्जुन पर टूट पड़े। व्यूह बाँध कर खड़ी हुई तथा बाण बरसाती हुई सेना के आगे बढ़ने को अर्जुन ने अपने बाणों से इस तरह रोक दिया जिस तरह किनारा बढ़ते हुए समुद्र को रोक देता है। तदुपरान्त कुन्तीनन्दन, श्वेतवाहन बीभत्सु, रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने हँस कर कौरवसेना पर आक्रमण किया और वे दिव्य अस्त्र चलाने लगे। सूर्य जिस तरह अपनी किरणें पृथ्वी पर फैला देते हैं, उसी तरह अर्जुन के गाण्डीव से छूटे हुए बाण दसों दिशाओं में फैल गये। रथियों, अश्वों, हाथियों और वर्मधारी योद्धाओं में कोई ऐसा न था जिसमें अर्जुन के पैने बाणों से कम से कम दो दो अंगुल के घाव न हुए हों। पार्थ के दिव्यास्त्रों के प्रयोग, उत्तर के घोड़े हाँकने की विद्या में कुशलता, अस्त्रों के रणक्षेत्र में इधर उधर तेज़ी से चलाये जाने को, और सभी जगह अर्जुन को सामने देख कर सब लोग मन ही मन अर्जुन की प्रशंसा कर रहे थे। प्रजा को भस्म करते हुए धधकते हुए कालाग्नि की तरह बीभत्सु को शत्रु न देख सके। उस समय महाबली कौरवसेना अर्जुन के बाणों से वैसे ही ढक गयी थी, जैसे सूर्य किरणों से युक्त मेघ, पर्वत पर छा जाते हैं। हे भारत! उस समय कौरवसेना इस तरह से शोभित हो रही थी, जिस तरह फूलने पर अशोक के वन। उस समय अर्जुन के बाण शत्रुओं के छत्रों और पताकाओं को वैसे ही उड़ा रहे थे, जैसे वायु चम्पा के पीत पुष्पों की माला से गिरे हुए सूखे फूल को उड़ाये फिरता है। जिनकी जोतें कट गयी थीं, ऐसे कौरव योद्धाओं के रथों के घोड़े अर्जुन की मार से घबड़ा कर, रथों के टूटे भागों को ले कर चारों दिशाओं में भागने लगे। कान, नाक, ओठ, दाँत आदि मर्मस्थानों में घायल हो हो कर, कौरवों के हाथी मर मर कर गिरने

लगे। कौरव सेना के आगे चलने वाले हाथियों के मर मर कर गिरने से पृथिवी ऐसी दीख पड़ने लगी जैसे काले मेघों से भरा आकाश। प्रलय काल में सर्वसंहारकारी अग्नि जिस तरह स्थावर जंगम वस्तुओं को भस्म करता है, उसी तरह हे महाराज! उस संग्राम में अर्जुन ने शत्रुओं को जलाया। इसी समय अर्जुन के अस्त्रों के तेज, गाण्डीव के टङ्कार, ध्वजावासी प्राणियों के अमानुषी नाद और ध्वजा पर बैठे बन्दर के महाशब्द से और अर्जुन के शङ्ख के भैरव नाद से अरिमर्दन अर्जुन ने दुर्योधन की सेना को भयभीत कर डाला। उन सब को उस समय सामर्थ्यहीन जान कर अर्जुन ने उनके वध से हाथ मोड़ा। किन्तु फिर सहसा धनञ्जय लौट पड़े और संग्राम छेड़ दिया और उनके धनुष से निकले हुए पैने बाण आकाश में वैसे ही छा गये जैसे रक्त के प्यासे पैनी पैनी चोंचों के, सिखाये हुए माँसभक्षी पक्षी आज्ञा पाते ही आकाश में छा जाते हैं। हे राजन्! जिस तरह छोटे पात्र में सूर्य की किरणें संकुचित हो कर जा घुसती हैं उसी तरह अर्जुन के असंख्य बाणों के अच्छी तरह समाने का स्थान न होने से वे बाण सब दिशाओं में बड़े संकोचपूर्वक छाये हुए थे। उस समय यह दशा थी कि, पास पहुँचने पर ही योद्धा अर्जुन को पहचान पाते थे और अर्जुन भी उन्हें दूसरी बार देखने का मौका न देकर उनके घोड़े मार योद्धा को तुरन्त परलोक यात्रा करा देते थे। जिस तरह अर्जुन के बाण बिना कहीं अटके शत्रु के शरीर को भेद कर पार निकल जाते थे, उसी तरह उनका रथ भी बिना कहीं अटके शत्रुसेना में घूम रहा था। शत्रुसेना में अर्जुन ने वैसे ही बिना श्रम के खलबली मचा दी जैसे सहस्र फण वाले शेष नाग क्रीड़ा से इधर उधर उधर हिल कर, महासागर को घँघोल डालते हैं। जिस समय अर्जुन बाण चलाते चलाते अपने धनुष में टङ्कार मारते थे, उस समय उसके शब्द को सुन कर लोग कहते थे कि, ऐसा शब्द तो हमने पहले कभी नहीं सुना। उस रणक्षेत्र में जगह जगह पर अर्जुन के बाणों से गिरे हुए मरे हाथी ऐसे दीख पड़ते थे, जैसे सूर्य की किरणों से पूर्ण मेघ। अर्जुन के दाहिने और बाएं हाथों से तेज़ी से चलाया जाता धनुष, मण्डलाकार

दीख पड़ता था। अर्जुन के बाण निशाना छोड़ कर, उसी तरह कहीं नहीं पड़ते थे, जैसे आँखे बिना आकार वाले स्थान पर नहीं ठहरतीं। जिस तरह जंगल में सहस्रों हाथियों के एक साथ जाने से एक मार्ग वन जाता है; उसी तरह जहाँ जहाँ हो कर अर्जुन का रथ गया था, वहाँ भी वैसा ही मार्ग वन गया था। अर्जुन के हाथ से मारे जाते हुए शत्रु यह मान लेते थे कि, अर्जुन के विजय की इच्छा से सब देवताओं के साथ इन्द्र ही हमें मारते हैं। अर्जुन को रणक्षेत्र में सब का अच्छी तरह संहार करते देख, लोग समझते थे कि, अर्जुन के रूप में काल ही हमारा नाश कर रहा है। कौरव सेना के योद्धाओं के शरीरों को अर्जुन ने इस तरह काट गिराया कि, लोग उसकी उपमा और किसी संग्राम से दे ही नहीं सके। औषधियों के सिरों की तरह अर्जुन ने शत्रुओं के सिर काटे और अर्जुन के भय से कौरवों का पराक्रम नष्ट हो गया। अर्जुन रूपी प्रचण्ड पवन से अर्जुन के शत्रुरूपी वन छिन्न भिन्न हो गये और उनके रक्त से पृथ्वी वैसे ही लाल हो गयी जैसे वृक्ष का मद गिरने से होती है। रक्त से लाल हुई धूल हवा से आकाश में उड़ने लगी। इससे सूर्य की किरणें भी लाल लाल दीखने लगीं। थोड़ी देर में सूर्य और आकाश की रंगत ऐसी लाल हो गयी कि, मानों संध्या हो गयी हो और सूर्य को अस्ताचल जाते हुए देख कर भी अर्जुन युद्ध से न लौटा। रण में उसने बड़े पुरुषार्थ से सब बड़े बड़े धनुषधारियों को वाणों से ढक दिया और दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया। उसने क्षुर नामक ७३ वाण द्रोण के, दस वाण दुःसह के और आठ वाण अश्वत्थामा के मारे। दुःशासन के बारह और शरद्वानपुत्र कृपाचार्य के तीन वाण मारे। शान्तनुपुत्र भीष्म के ६० वाण और दुर्योधन के १०० वाण मारे और अरिमर्दन अर्जुन ने कर्णी नामक वाण से कर्ण का कान घायल कर दिया और सर्वशास्त्रकोविद महारथी कर्ण को घायल करने के बाद उसके घोड़े मार कर और उसे रथहीन कर के अर्जुन उसकी सेना का नाश करने लगे। तदुपरान्त सेना को तितर बितर होते देख और अर्जुन को रणक्षेत्र में खड़ा देख और उनका अभिप्राय समझ कर, उत्तर ने कहा। हे अर्जुन! इस

मनोहर रथ में बैठे हुए आप मुझे अब किस सेना की ओर रथ हाँकने की आज्ञा देते हैं।

अर्जुन ने कहा—हे उत्तर! वह जो लाल घोड़ों वाला और व्याघ्र चर्म से मढ़ा हुआ और नीली पताका वाला रथ सेना के आगे है, उसमें जो बैठे हैं सो कृपाचार्य हैं। अपना रथ उसी तरफ़ ले चलो तो मैं उन श्रेष्ठ धनुष-धारी को अस्त्रचालन शीघ्रता देखूँ। जिस रथ की ध्वजा पर शुद्ध सुवर्ण के कमण्डलु का चिन्ह है, वही सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य का रथ है। यह महात्मा मेरे और सब शस्त्रधारियों के पूज्य हैं। उन्हीं सुप्रसन्न और महावीर की मेरे रथ से तुम परिक्रमा करो। हमें इनका पहले ही सन्मान कर के युद्ध करने के लिये तैयार हो जाना चाहिये। क्योंकि ऐसा ही करना हमारा सनातन से चला आया हुआ धर्म है। यदि पहले द्रोण मेरे शरीर पर प्रहार करेंगे और तब मैं भी उन पर यदि प्रहार करूँगा, तो वे क्रुद्ध न होंगे। उनके कुछ दूर पर जिसकी ध्वजा के अग्रभाग पर धनुप का चिन्ह है, वही द्रोणाचार्य के पुत्र महारथी अश्वत्थामा का रथ है। यह भी सदा मेरा और अन्य शस्त्रधारियों का मान्य है। इस लिये उनके पास अपने रथ को ले जा कर बार बार पीछे फेर लेना। यह रथ जो सेना में सुवर्ण-कवच-मण्डित, लड़ती हुई तृतीय सेना के आगे खड़ा है और जिसकी सोने की ध्वजा की पताका में नाग का चिन्ह है, वह धृतराष्ट्रपुत्र राजा सुयोधन का है। हे वीर! इसीके सामने शत्रु के रथ को नाश करने वाले मेरे रथ को ले चलो। यह राजा संहारकारी और युद्ध करने में दुर्मद है। द्रोणाचार्य के शीघ्र अस्त्र चलाने वाले शिष्यों में यह प्रथम है। इस विपुल संग्राम में मैं तुम्हें इनका शीघ्र शीघ्र अस्त्रचालन दिखाऊँगा। जिसकी ध्वजा के आगे हाथी के बाँधने की साँकल का चिन्ह है, वही सूर्यनन्दन कर्ण है, जिसे हम तुम पहले ही से जानते हैं। इसी दुरात्मा राधापुत्र के रथ के पास, जब पहुँचना तब सावधान रहना। क्योंकि वह सदा मुझसे डाह किया करता है। जिस रथ पर सोने की डंडी में नीली ध्वजा में पाँच नक्षत्रों के साथ सूर्य अंकित हैं,

जिसमें हाथ में दस्ताने पहने तथा बड़ा भारी धनुष लिये हुए एक बड़े पराक्रमी योद्धा बैठे हैं, जिनके श्रेष्ठ रथ के ऊपर सूर्य और ताराओं वाली सुन्दर ध्वजा फहरा रही है और जिसमें सफ़ेद रंग का निर्मल छत्र लगा हुआ है और जो बहुत सी पताकाओं वाली रथसेना के आगे खड़े हुए, बादलों के आगे सूर्य से मालूम पड़ते हैं और जिनका कवच सूर्य तथा चन्द्रमा के समान दमक रहा है और जिनके सोने के शिरस्त्राण को देख कर मेरे चित्त में भी सन्ताप होता है, वे ही हम सब के पितामह भीष्म हैं। वे वृद्ध राज्यलक्ष्मी से युक्त दुर्योधन के अधीन हैं। इनके पास सब से पीछे चलना, जिससे ये मेरे कार्य में विघ्न न खड़ा कर दें। इनके साथ युद्ध होने के समय मेरे घोड़ों को तुम सावधानी से पकड़े रहना।

हे राजा जनमेजय! अर्जुन की बातें सुन कर उत्तर रथ को उधर हाँक ले गया, जिधर धनञ्जय से लड़ने की इच्छा से कृपाचार्य खड़े थे।

छप्पनवाँ अध्याय

विमानों पर बैठ कर इन्द्रादि देवताओं का युद्ध देखने के लिये आना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जिस तरह वर्षा काल में मन्द मन्द पवन के साथ बादल धीरे धीरे चलते हैं; उसी तरह कौरवसेना धीरे धीरे चल रही थी। एक ओर प्रहारकारी योद्धाओं को पीठ पर चढ़ाये घोड़ों की कतार खड़ी थी। उनके पास ही चमकते हुए कवच पहने और तोमरों तथा अंकुशों से उत्तेजित करते हुए महावत लोग भी महाकाय हाथियों को बढ़ावा दे रहे थे। हे राजन्! उसी समय देवताओं, विश्वेदेवा तथा मरुद्गणों के साथ सुन्दर विमानों पर सवार हो कर, इन्द्र वहाँ योद्धाओं का समागम देखने के लिये आये। वह पृथ्वी का भाग जिसमें इन्द्रादि देव-

ताओं के साथ यक्ष, गन्धर्व और बड़े बड़े नाग खड़े थे, ऐसा प्रतीत होता था, मानों नक्षत्रमण्डल का एक भाग आकाश से टूट कर पृथ्वी पर आ पड़ा है। मनुष्यों पर चलाये जाने वाले अस्त्रों का भीषण प्रयोग, अर्जुन और कृपाचार्य के भयङ्कर युद्ध को देखने के लिये आये हुए देवता लोग, अपने अपने विमानों में बैठ कर देख रहे थे। जिसमें लाखों सोने के खम्भे थे, और जिसमें स्थान स्थान पर तरह तरह के रत्न जड़े अनेक प्रासाद बने हुए थे ऐसा इच्छाचारी, दिव्य, सर्वरत्नों से भूषित देवराज का विमान आकाश में शोभित हो रहा था। वहाँ वसुओं के साथ तैंतीस देवता, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पितर, महर्षिगण, राजा वसुमना, बलाक्ष, सुप्रतर्दन, अष्टक, शिवि, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर और नल आदि महातेजस्वी राजा लोग देवराज इन्द्र के विमान में बैठे हुए देख पड़ते थे। अग्नि, रुद्र, सोम, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता, कुबेर और यम, अलम्बुष, उग्रसेन, और तुम्बुरु आदि गन्धर्वों के भी विमान अपने अपने स्थानों के अनुसार आकाश में खड़े थे। इस तरह सब देवता, सिद्ध, महर्षि आदि अर्जुन-कौरव संग्राम को देखने के लिये वहाँ आये हुए थे। हे भारत! उस समय दिव्यमालाओं के पुष्पों की सुगन्धि सब जगह वैसे ही फैल रही थी, जैसे वसन्त के आरम्भ में फूलते हुए वनों की सुगन्धि फैलती है। वहाँ पर ठहरे हुए देवताओं के रत्न, वस्त्र, छत्र, पुष्पमालाएं और पंखे चमकते हुए दिखलायी पड़ते थे। भूमि पर धूल बैठ गयी और सब जगह प्रकाश फैल गया और वायु दिव्य सुगन्धि फैला कर योद्धाओं की सेवा करने लगा। आये हुए देवताओं के तरह तरह के रत्नों और आते जाते विमानों की प्रभा से आकाश उज्वल, विचित्र और सजा हुआ दिखलायी पड़ता था। वहीं पर विमानों में बैठे देवताओं से घिरे इन्द्र भी शोभित हो रहे थे। कमलमाला धारण किये हुए महातेजस्वी इन्द्र अर्जुन का बहुतों के साथ युद्ध देखते देखते तृप्त ही नहीं होते थे।

सत्तावनवाँ अध्याय

अर्जुन और कृपाचार्य का युद्ध, कृपाचार्य का पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! कौरवों की व्यूहस्थित सेना को देख कर, अर्जुन ने विराटनन्दन को बुला कर कहा—सोने की वेदी से चिन्हित ध्वजा वाले रथ के दक्षिण की ओर मेरे रथ को ले चलो, जहाँ कृपाचार्य खड़े हैं।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय ! अर्जुन की बात सुनते ही, उत्तर ने सोने की लगाम खींच कर, घोड़ों को उसी तरफ़ मोड़ा और सब प्रकार की रीतियों से चन्द्रमा के समान सफ़ेद रंग के घोड़ों को उसने दौड़ाया। घोड़े भी क्रोध में भर कर ज़ोर से दौड़ने लगे। वह अश्वकोविद, कौरव सेना के समीप पहुँच कर, वायु के समान वेग वाले घोड़ों को फिर लौटा लाया। रथ के चलाने में चतुर उत्तर ने दहिने बाएं चक्कर लगा लगा कर कौरवों को मोहित कर दिया। इसके उपरान्त विराटनन्दन ने कृपाचार्य के रथ की परिक्रमा कराते हुए अपना रथ निर्भयतापूर्वक उनके सामने ला खड़ा किया। तब अर्जुन ने अपना नाम बतला कर अपना देवदत्त नामक महाशङ्ख बड़े ज़ोर से बजाया। अर्जुन के बजाये शङ्ख से ऐसा भयङ्कर शब्द निकला कि, लोगों ने समझा कि, कोई पहाड़ फटा जाता है। कौरवों और उनकी सेना ने शङ्ख के शब्द की प्रशंसा करते करते कहा कि, अर्जुन के इस तरह बजाने से कहीं शङ्ख के सौ टुकड़े न हो जावें। इतने में शङ्ख का शब्द चारों दिशाओं में गूँजने लगा और ऐसा प्रतीत होने लगा मानों पर्वत पर वज्रपात हुआ है। इसी बीच में महापराक्रमी तथा बलवान्, महादुर्जय कृपाचार्य अर्जुन के शङ्ख के शब्द को न सह सके और अर्जुन पर उन्हें क्रोध आ गया। अर्जुन पर क्रुद्ध हो और युद्ध की इच्छा से वे महारथी और बलशाली, समुद्र-गर्जन जैसे शब्द वाला अपना शङ्ख वेग से बजाने लगे और तीनों लोकों को शब्द से कँपा कर, रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने अपना

विशाल धनुष उठा कर टङ्कारा, उस समय सूर्य के समान तेजस्वी दोनों वीर अर्जुन और कृपाचार्य संग्राम-भूमि में शरदृऋतु के मेघों जैसे देख पड़ते थे। तब कृपाचार्य ने पैने पैने दस बाणों से अरिमर्दन अर्जुन के मर्म-स्थान पीड़ित कर दिये। पार्थ ने भी लोकप्रसिद्ध गाण्डीव धनुष से बहुत से मर्मस्थानभेदी बाण कृपाचार्य के मारे। किन्तु अर्जुन के छोड़े हुए सैकड़ों और हज़ारों रक्तपिपासु पैने बाणों को कृपाचार्य ने अपने बाणों से टुकड़े टुकड़े कर डाला। तब तो क्रोध में भर कर अर्जुन तरह तरह के कौशलों से युद्ध करने लगे। उन्होंने बाणों की मार से दिशाएं भर दीं जिससे आकाश में अन्धकार छा गया और पार्थ के सैकड़ों बाणों से कृपाचार्य ढक गये। अग्नि की लपट के समान चमकीले बाणों की मार से वे क्रुद्ध हो गये और अप्रतिम तेजस्वी पार्थ को कृपाचार्य ने हज़ारों बाण मार कर पीड़ित कर दिया और वे समरक्षेत्र में गरजने लगे। तब सोने के झुकी हुई तेज़ नोक के चार बाण अर्जुन ने जल्दी जल्दी उनके घोड़ों के मारे। उन कुपित सर्पों के समान तेज़ धार वाले बाणों की मार से घोड़े बेहोश हो गये और उनके गिर पड़ने से कृपाचार्य भी अपने स्थान से नीचे आ गिरे। इन गौतम गोत्रीय को स्थानच्युत होते देख, अरिमर्दन अर्जुन ने उनकी गौरवरक्षा करने के लिये बाण चलाना बन्द कर दिया। किन्तु कृपाचार्य ने तुरन्त ही सावधान हो बैठ कर कंक पक्षी के पर की पूँछ वाले दश बाण मार कर अर्जुन को बेध डाला। तब पार्थ ने एक तेज़ भल्ल नामक बाण से उनका धनुष काट डाला और एक भल्ल बाण से उनके दस्ताने भी काट दिये। फिर मर्मभेदी तेज़ बाणों से अर्जुन ने उनका कवच टुकड़े टुकड़े कर डाला। किन्तु इतने पर भी अर्जुन ने अपने बाणों से उनके शरीर को पीड़ा नहीं पहुँचायी। कवच टूट जाने से कृपाचार्य का शरीर वैसे ही शोभित हुआ, जैसे केँचली छूट जाने पर सर्प का शरीर शोभित होता है। पार्थ द्वारा धनुष के तोड़े जाने पर जब उन्होंने दूसरा धनुष उठाया; तब लोगों को बड़ा अचरज हुआ, किन्तु अर्जुन ने झुकी नोंक वाले बाण से उसे भी तोड़ डाला। इसी तरह

जितने धनुष कृपाचार्य ने उठाये उन सब को अरिमर्दन धनञ्जय ने काट डाला। इस तरह धनुष काटे जाने पर उन प्रतापी कृपाचार्य ने पाण्डुपुत्र के ऊपर शक्ति फेंकी। उस सुवर्णजटित शक्ति को जलती हुई उल्का के समान आते देख कर, अर्जुन ने उसके झट दस बाण मारे। पार्थ के बाणों के लगने से दस जगह से टूट कर वह शक्ति पृथिवी पर गिर पड़ी। इतने में कृपाचार्य ने धनुष पर रोदा चढ़ा कर जल्दी जल्दी दस तेज़ बाण मार कर अर्जुन को घायल कर दिया। तब पार्थ ने क्रोध में भर कर अग्नि के समान दमकते हुए तेरह तेज़ बाण कृपाचार्य के मारे। उन तेरह में से एक से रथ का जुँआ काटा, चार से रथ के घोड़े मारे और एक बाणों से रथ के सारथि का सिर धड़ से अलग कर दिया। उस समर में तीन बाणों से रथ के तीन डंडे और दो से रथ का धुरा और एक बाण से अर्जुन ने कृपाचार्य के रथ की ध्वजा काट डाली। फिर हँसते हुए इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन ने वज्र के समान तेरहवें बाण से कृपाचार्य की छाती वेध डाली। धनुष टूटने, रथहीन होने, घोड़े मारे जाने और सारथि का वध हो जाने पर, कृपाचार्य ने रथ से कूद कर अर्जुन के ऊपर गदा फेंकी। निशाने पर फेंकी गयी कृपाचार्य की भारी गदा अर्जुन के बाणों की मार से पीछे को ही लौट पड़ी। उस समय क्रुद्ध कृपाचार्य को बचाने के लिये कौरवों के योद्धागण चारों ओर से अर्जुन पर बाण बर्साने लगे। उस समय विराटनन्दन उत्तर ने रथ को बाईं ओर फेर कर वैरियों के रोकने वाला यमक नामक ऐसा चक्कर मारा कि, सब योद्धाओं का अस्त्र चलाना बंद हो गया। इतने में वे सब योद्धा रथ-हीन कृपाचार्य को उठा कर अर्जुन से दूर ले गये।

अट्ठावनवाँ अध्याय

अर्जुन द्रोणाचार्य युद्ध, द्रोणाचार्य का पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब लोग कृपाचार्य को युद्धभूमि से ले गये; तब लाल रंग के घोड़ों वाले रथ में बैठे हुए द्रोणाचार्य धनुष बाण ले कर श्वेतवाहन अर्जुन पर दौड़े। सुवर्ण रथ पर सवार हो, गुरु द्रोणाचार्य को अपनी ओर आते देख, अर्जुन ने विराटपुत्र से कहा। अर्जुन बोले—हे सारथि! जिस रथ के उत्तम दण्ड पर सोने की वेदी वाली पताका लगी है वही द्रोण हैं। तुम मुझे वहीं उनकी सेना के सामने शीघ्र ले चलो। लाल रंग के और बहुत तेज़ चलने वाले, शिक्षित, ताम्र की तरह प्रियदर्शन घोड़े जिनके श्रेष्ठ रथ में जुते हैं, वही द्रोणाचार्य का रथ है। जिनके आजानुबाहु विशाल हैं, जो महातेजस्वी और बड़े पराक्रमी तथा स्वरूपवान हैं, वे ही द्रोणाचार्य हैं। सब लोकों में विख्यात यह भारद्वाजगोत्री विप्रवर बड़े प्रतापी हैं। बुद्धि में ये शुक्र के समान और नीति में बृहस्पति के समान हैं। ये चारों वेदों के ज्ञाता और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले हैं। संहार अर्थात् चला कर लौटा लेने की रीति सहित आचार्य के पास सब दिव्य अस्त्र और पूरा धनुर्वेद सदैव रहता है। क्षमा, दम, सत्य, दया, सरलता तथा जितेन्द्रियता आदि उच्च ब्राह्मणोचित गुणों से ये महात्मा युक्त हैं : हे उत्तर! इन्हीं महाभाग से मैं युद्ध करना चाहता हूँ इसलिये तुम शीघ्र मुझे आचार्य के पास ले चलो।

वैशम्पायन जी ने कहा कि, अर्जुन की आज्ञा पा कर विराटनन्दन उत्तर ने गहने पहने हुए घोड़ों को भारद्वाज गोत्री द्रोणाचार्य की ओर बढ़ाया। रथीश्रेष्ठ पाण्डव को वेग से अपने ऊपर आते देख, द्रोण भी अर्जुन की ओर वैसे ही झपटे; जैसे एक मत्त हाथी पर दूसरा मत्त हाथी झपटता है और उन्होंने अपना महाशङ्ख बजाया, जिसमें से एक साथ सौ नगाड़े बजाने का शब्द निकला, जिससे सारी सेना में वैसे ही खलबली मच गयी, जैसे महा-

सागर में खलबली मच जाती है। लाल रंग के और मन के समान वेग-वाले हंस की तरह सफ़ेद घोड़ों को समर में आमने सामने देख, लोग आश्चर्य करने लगे। संग्राम के बीच रथों पर सवार दोनों महाबली और अस्त्रविद्या पारङ्गत गुरु शिष्य द्रोण अर्जुन को एक दूसरे के सामने देख भरतवंशियों की सेना मुहूर्त भर के लिये काँप उठी। हर्षयुक्त हो कर, पराक्रमी अर्जुन हँसते हुए अपने विशाल रथ को द्रोण के रथ के पास ले गये और द्रोण को दण्डवत कर के महाबाहु, शत्रुनाशन अर्जुन ने शान्तिपूर्वक बड़ी मीठी वाणी में उनसे कहा—हे समर-दुर्जय! हम लोग वन के महाकष्टों को सह कर अपने शत्रुओं से बदला लेना चाहते हैं। आपको हम पर सदा क्रोध करना उचित नहीं है। हे निष्पाप! मेरी इच्छा है कि, आप पहले मेरे ऊपर अस्त्र प्रहार करें तब मैं अस्त्र चलाऊँगा। इसलिये आपको ऐसा ही करना चाहिये। यह सुन कर द्रोण ने बीस से कुछ अधिक बाण अर्जुन पर चलाये, किन्तु अर्जुन ने शिक्षित तथा चतुर हाथवाले योद्धा के समान अपने पास पहुँचने से पूर्व ही उन्हें काट गिराया। तब द्रोण ने अपना शीघ्र अस्त्रचालन दिखलाते हुए एक हज़ार बाण मार कर अर्जुन के रथ को ढाँक दिया और फिर अमेयात्मा द्रोण कंकपक्षी के पर की पूँछ वाले तेज़ बाण, प्रसिद्ध एवं चाँदी के समान श्वेत घोड़ों पर मार मार कर पार्थ को कुपित करने लगे। द्रोण और अर्जुन में इस तरह युद्ध आरम्भ हो जाने पर दोनों एक दूसरे पर समान भाव से बाण चला कर युद्ध करने लगे। दोनों ही अस्त्रचालन में प्रसिद्ध थे और दोनों ही वायु के समान वेग वाले थे। दोनों ही दिव्य अस्त्रों के पण्डित थे और दोनों बड़े तेजस्वी थे और दोनों ही बाण बर्सा बर्सा कर चारों ओर खड़े हुए राजाओं को मोहित कर रहे थे। जो योद्धागण वहाँ आ कर खड़े थे, वे लोग दोनों के शीघ्रातिशीघ्र बाण चलाने की प्रशंसा साधु साधु कह कर करने लगे। संग्राम में खड़े हुए लोग कह रहे थे कि, अर्जुन के सिवाय द्रोण का सामना कौन कर सकता है। क्षत्रिय धर्म भी बड़ा भय-ङ्कर है कि, अर्जुन को गुरु से भी लड़ना पड़ रहा है। दोनों अपराजित महा-

बाहु वीरों ने क्रोध में भर कर एक दूसरे को बाणों से ढक दिया। अपने सुवर्ण जटित पृष्ठ वाले बड़े भारी धनुष से द्रोणाचार्य ने पैने पैने बाण चला कर अर्जुन को बींध डाला और अपने बाणों के जाल से अर्जुन का रथ इस तरह ढँक दिया कि, सूर्य की प्रभा भी दिखलायी नहीं पड़ती थी। महारथी महाबाहु द्रोण ने अर्जुन के रथ को अपने बाणों से इस तरह ढक दिया जैसे वर्षा करने वाले मेघ पहाड़ को ढक देते हैं। तब पराक्रमी वेगवान अर्जुन ने प्रसन्न हो कर बड़े भारी तथा शत्रुनाशन प्रसिद्ध दिव्य गाण्डीव धनुष को उठा कर तेज़ी से बाण चला कर द्रोणाचार्य के बाणजालों को छिन्न भिन्न कर डाला और सोने के बहुत विचित्र बाण द्रोण के ऊपर छोड़े, जिससे सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर दर्शनीय रथ में घूम घूम कर अर्जुन ने एक साथ इतने बाण चलाये कि, सब दिशाएँ बाणों से भर गयीं। उस समय ऊपर आकाश भी बाणों से छाया हुआ था और कुहरे में पड़ जाने से जैसे आदमी नहीं दिखलायी पड़ता; उसी तरह द्रोण भी नहीं दिखलायी पड़ते थे। द्रोण का रूप उस समय जलते हुए बाणों से ढका होने से ऐसा देख पड़ता था, मानों जलता हुआ पर्वत है। रणभूमि में अपने रथ को पार्थ के बाणों से ढका देख कर मेघ की तरह तड़तड़ाने वाले अग्नि चक्र के समान भयङ्कर धनुष से बाण चला चला कर युद्ध में शोभा पाने वाले द्रोण ने अर्जुन के सब बाण टुकड़े टुकड़े कर दिये। उस समय ऐसा शब्द होने लगा मानों बाँस जलाये जा रहे हों। तब द्रोण ने अपने विचित्र धनुष से सोने की पूँछ वाले इतने बाण छोड़े कि, उनसे सब दिशाएँ व्याप्त हो गयीं और सूर्य का प्रकाश भी हलका पड़ गया। उस समय वहाँ पर लोगों को सुवर्ण पुच्छ वाले और झुकी हुई नोंक वाले अनेक बाण आकाश में उड़ते हुए देख पड़ते थे। द्रोण के छोड़े हुए बहुत से चमकते हुए बाण जब एक दूसरे से सट जाते तो एक बड़ा सा बाण आकाश में उड़ता हुआ सा दीख पड़ता था। इस तरह वे दोनों एक दूसरे पर सुवर्ण जटित बाणों की वर्षा कर रहे थे। उनके बाणों से भरा हुआ आकाश ऐसा प्रतीत होता था; मानों बहुत से

जलते हुए उल्काओं से वह पूर्ण है। कंक पक्षी के परों की पूँछ वाले इनके बाण आकाश में जाते ऐसे प्रतीत होते थे, मानों शरद ऋतु में पंक्ति बना कर हँस उड़ रहे हों। क्रोध में भरे दोनों महात्माओं अर्थात् द्रोण और अर्जुन का युद्ध वैसे ही हो रहा था, जैसे इन्द्र और वृत्रासुर का हुआ था। वे दोनों महावीर योद्धा कान तक खींच खींच कर धनुष से बाण छोड़ कर, वैसे ही लड़ रहे थे जैसे दो मस्त हाथी आगे के दाँतों से युद्ध करते हैं। रणभूमि में आवेश में भरे हुए दोनों वीर पारी पारी से दिव्यअस्त्रों का प्रयोग करते हुए धर्मयुद्ध कर रहे थे। विजय पाने वालों में श्रेष्ठ अर्जुन द्रोणाचार्य के चलाये तेज़ बाणों को अपने बाणों से रोक देते थे। दर्शकों को अपनी अस्त्रचालन की दक्षता दिखलाते हुए महापराक्रमी अर्जुन ने अपने बाणों से आकाश छा दिया। उसी तरह समरक्षेत्र में आचार्य श्रेष्ठ, सर्व-शास्त्र-कोविद द्रोण नरव्याघ्र महातेजस्वी अर्जुन पर तीखे तीखे बाण चला कर, उसके साथ युद्धक्रीड़ा कर रहे थे। उस तुमुलयुद्ध में दिव्य अस्त्र भी चलाये गये थे। किन्तु अर्जुन ने जवाब में उसी तरह के अस्त्र चला कर उनको रोक दिया था। उन दोनों नरव्याघ्रों का आपस में प्रहार करते हुए, देव दानवों जैसा युद्ध हो रहा था। ऐन्द्र, वायव्य, आग्नेय आदि जिन जिन दिव्यअस्त्रों को द्रोण बार बार चलाते, उन्हींको अर्जुन उन के समान अन्य अस्त्रों से तुरन्त काट देते थे। इस तरह एक दूसरे पर पैने पैने बाण छोड़ते हुए उन दोनों वीरों ने बाणों से आकाश भर दिया। उस समय मनुष्यों पर छोड़े गये अर्जुन के बाणों से ऐसा शब्द होता था? मानों पर्वत पर वज्रपात हुआ है। हे राजन्! बाणों की चोट खाये और खून से तराबोर हाथी घोड़े और रथ आदि उस रण में ऐसे मालूम पड़ते थे, जैसे फूले हुए किंशुक के वृक्ष। उस समय द्रोण और अर्जुन के संग्राम से अनेक योद्धाओं का संहार हुआ। महारथियों की बाजूबन्द सहित कटी हुई बाहें; सोने के टूटे हुए विचित्र कवचों और अर्जुन के बाणों से मारे गये अनेक योद्धाओं के मृत शरीरों को देख देख कर, कौरव सेना भयभीत हो गयी। वे

दोनों कान तक धनुष खींच खींच कर झुकी नोंक के बाण चला चला कर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और एक दूसरे को दोनों ने बाणों से ढक दिया। द्रोण अर्जुन का युद्ध उस समय इन्द्र और बलि के युद्ध के समान हो रहा था। तब आकाश में खड़े हुए देवता लोग द्रोण की प्रशंसा करते हुए कहने लगे। द्रोणाचार्य ने दैत्यों को जीतने वाले, महारथी श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, प्रबलप्रतापी, दृढ़ मुट्ठीवाले निर्भय अर्जुन से लड़ कर बड़ा ही कठिन कर्म किया है। रण में अर्जुन के अचूक निशाने, शस्त्रशिक्षा, शस्त्रों को दूर तक फेंकने की दक्षता आदि देख कर द्रोणाचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके उपरान्त दिव्य धनुषश्रेष्ठ गाण्डीव को उठा कर, हे राजन् ! अर्जुन फिर बाण चलाने लगे। उसको टीड़ीदल की तरह बाण बर्साते देख, आस पास खड़े हुए सब योद्धा गण साधु साधु कह कर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसके छोड़े बाण इतने घने हो रहे थे कि, वायु भी उनमें से नहीं निकल सकता था और युद्ध में वह इतनी शीघ्रता कर रहा था कि, लोगों को यह भी नहीं मालूम पड़ता था कि, कब उसने तरकस से तीर निकाला, कब धनुष पर चढ़ाया और कब छोड़ा। उस दारुण शीघ्रास्त्र-चालन युद्ध में पार्थ जल्दी से जल्दी अस्त्र चला रहे थे। तब तो झुकी नोंक वाले लाखों बाण एक साथ द्रोण के रथ के पास गिरने लगे। हे भरतश्रेष्ठ ! तब गाण्डीवधारी अर्जुन के बाणों से द्रोण को ढके जाते देख सेना में बड़ा हाहाकार मच गया। अर्जुन के शीघ्र अस्त्रचालन की इन्द्र और वहाँ आये हुए गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने बड़ी प्रशंसा की। तब रथसेना के अध्यक्ष आचार्यपुत्र ने सहसा रथसेना से अर्जुन को घेर कर रोक दिया। अश्वत्थामा ने भीतर ही भीतर अर्जुन की वीरता को सराहा; किन्तु बाहर बड़ा क्रोध प्रदर्शित किया। क्रोध में भर कर मेघों की जलवृष्टि के समान अर्जुन पर उसने हज़ारों बाण बर्साये। तब महाबाहु अश्वत्थामा की तरफ़ अर्जुन ने इस तरह रथ मोड़ा जिससे द्रोणाचार्य चले जावें। इस तरह मौक़ा पा कर, घायल द्रोण अपने कटी ध्वजा वाले रथ को ले शीघ्र युद्ध से चले गये।

उनसठवाँ अध्याय

अर्जुन-अश्वत्थामा युद्ध, अश्वत्थामा का हारना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर द्रोणपुत्र अर्जुन की ओर झपटा। उस उद्धत को अर्जुन ने भी वायु वेग से पकड़ लिया। और उन दोनों में बाणवर्षा होने से जाल सा छा गया। वे दोनों इन्द्र और वृत्रासुर के समान बाण चलाने लगे और उनमें देवासुर संग्राम की तरह भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। आकाश में बाणों का जाल छप्पर की तरह इतना घना छा गया था कि न सूर्य का प्रकाश ही आता था और न वायु ही प्रवेश कर सकता था। हे परपुरञ्जय! उस समय इन दोनों के युद्ध में बाँस के जलने जैसा चटाचट शब्द हो रहा था! हे राजन्! अर्जुन की मार से अश्वत्थामा के रथ के घोड़े अधमरे हो गये और उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और उन्हें दिशाओं का भी ज्ञान न रहा। इतने में घूमते हुए पार्थ की ज़रा सी चूक होते ही महावीर अश्वत्थामा ने उनके धनुष का रोदा क्षुरनामक बाण से काट डाला। उसके इस अमानुषिक कर्म को देख देवताओं ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। द्रोण, भीष्म, कर्ण, और कृपाचार्य आदि महारथियों ने भी साधु साधु कह कर उसके कार्य की प्रशंसा की। इसके बाद कंकपत्री बाण को अपने धनुष पर चढ़ा कर अश्वत्थामा ने अर्जुन की छाती में मारा। उस समय महाबाहु अर्जुन ने हँसते हँसते धनुष पर दूसरा रोदा चढ़ा कर टङ्कार लगाया। फिर अर्द्धचन्द्राकार चक्कर लगाते हुए अर्जुन वैसे ही अश्वत्थामा के पास आ पहुँचे जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी से लड़ने के लिये आता है और फिर उन दोनों पृथ्वी के अद्वितीय वीरों में महाभयङ्कर लोमहर्षण युद्ध आरम्भ हो गया। यूथपतियों के समान उन दोनों में होते हुए भीषण संग्राम को सब कौरव आश्चर्यपूर्वक देखते रहे। वे दोनों समान रूप से लड़ते हुए एक दूसरे पर क्रुद्ध विषधरों के समान जलते हुए पैने पैने बाण मार रहे थे। दो दिव्य और अक्षय तरकस पास में रहने

से अर्जुन युद्ध में पर्वत की तरह अचल खड़े रहे। किन्तु जल्दी जल्दी चलाने के कारण धीरे धीरे अश्वत्थामा के सब बाण समाप्त हो गये, जिससे उसकी अपेक्षा अर्जुन प्रबल हो गया। यह देख कर कर्ण ने अपने बड़े भारी धनुष को हाथ में ले टंकार लगाया, जिससे कौरव सेना में बड़ा हाहाकार मच गया। आँख फेर कर अर्जुन ने उधर देखा जिधर से धनुष के टंकार का शब्द हुआ था। वहाँ राधापुत्र कर्ण को देखते ही उनका क्रोध बढ़ गया। रोष में भर कर बदला लेने के लिये कुरुपुङ्गव अर्जुन आँखे फाड़ फाड़ कर, देखने लगे। जब द्रोणपुत्र के बाणों की ओर से अर्जुन पलटे, तब बहुत से योद्धाओं ने उन्हें घेर लिया। किन्तु कर्ण के ऊपर धावा करके द्वैरथ युद्ध करने की इच्छा से लाल लाल आँखें कर के अर्जुन ने कहा।

साठवाँ अध्याय

कर्ण और अर्जुन का दूसरी वार युद्ध, कर्ण का पराजय

अर्जुन बोले—हे कर्ण! सभा में जो तू बहुत बलबलाता था कि, रण में तेरी बराबरी वाला कोई नहीं है सो वही युद्ध आज उपस्थित है। इस महायुद्ध में मुझसे लड़ कर और मेरा बल जान कर फिर कभी मेरा अपमान न करना। धर्म को छोड़ कर ही तूने कठोर वचन कहे थे। किन्तु मेरी समझ से तो तू बड़ा दुष्कर्म करना चाहता है। मुझसे बिना लड़े जो बातें तूने पहले कही थी, हे कर्ण! उन्हींको तू मुझसे लड़ कर कौरवों के सामने सच कर दिखा। सभा में दुरात्माओं से क्लेश पाती हुई, द्रौपदी को जो तू चुपचाप बैठा बैठा देखता था, उसीका आज तू फल ले। उस समय धर्म के पाश में बँधे रहने से मैंने तेरी सब बातें सहन की थीं, किन्तु उसी क्रोध को सहने का फल आज तू चख। हे दुष्ट बुद्धि! बारह बरस तक वन में जो क्लेश हमने सहे थे, उसी क्रोध का बदला आज तुझे मिलेगा।

हे कर्ण ! आ तू रण में मुझसे लड़ और मेरे तेरे युद्ध को तेरे सैनिक और सब कौरव देखें।

कर्ण ने कहा—हे पार्थ! जो बातें तू मुँह से कह रहा है, उसे ज़रा कर के तो दिखला। पृथ्वी पर किये हुए तेरे कर्म को तेरी बातें उल्लङ्घन कर रही हैं। (अर्थात् तू अपनी सामर्थ्य से बाहर बोल रहा है)। जो तूने मेरी बातें पहले सहन की थीं वे अपनी निर्बलता के कारण सही थीं। किन्तु यदि ऐसा न हुआ तो आज तेरे पराक्रम को देख कर हम कायल हो जावेंगे। अरे पहले जैसे तूने अपने को धर्मपाश में बँधा जान कर, मेरी बातें सही थीं। सो तू इसी समय अपने को धर्मपाश से मुक्त किस तरह समझते हो। यदि तुमने अपने वचनानुसार वनवास किया होता तो हे धर्म और अर्थ के जानने वाले। तेरा मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा करना ठीक था। हे पार्थ ! यदि इन्द्र भी तेरी ओर से आकर मुझसे लड़ें तो युद्ध करते हुए मुझे वे भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। हे कौन्तेय ! मेरे साथ युद्ध करने की तेरी इच्छा शीघ्र पूरी होगी और मेरे साथ लड़ कर मेरा बल भी तू देख लेगा।

अर्जुन ने कहा—अरे कर्ण ! अभी थोड़े समय ही पहिले तो मेरे साथ लड़ कर तू हार कर भागा था। हे राधापुत्र ! तब तो तू जीता था, जब तेरे सामने तेरे छोटे भाई को मैंने मार डाला था। भाई को मरवा कर और संग्राम से भाग कर तेरे सिवाय इतने सज्जनों के सामने कौन ऐसी बात कहेगा ?

वैशम्पायन जी बोले—कर्ण से इतना कहते कहते ही अपराजित अर्जुन ने कवच फोड़ने वाले दो बाण कर्ण के मारे। महारथी कर्ण ने उनको ग्रहण करते हुए जलवृष्टि की तरह अर्जुन पर बाण बर्साये। इस तरह बाणों की घोर वृष्टि होने से अर्जुन की बाहों में और घोड़ों के पृथक् पृथक् बाण लगने लगे। इस तरह कर्ण की मार पड़ने पर अर्जुन ने झुकी हुई नोंक के बाण मार कर कर्ण के तरकस की लटकने वाली डोरी काट डाली। तब कर्ण ने तरकस से

दूसरा बाण निकाल कर अर्जुन के मारा जिससे उनके हाथ की मुट्ठी खुल गयी। तब महाबाहु अर्जुन ने कर्ण का धनुष काट डाला। इस पर कर्ण ने अर्जुन के ऊपर शक्ति फेंकी, जिसके अर्जुन ने राह ही में बाणों से टुकड़े टुकड़े कर डाले। तब तो कर्ण के पीछे खड़े योद्धा एक साथ अर्जुन पर टूट पड़े; किन्तु गाण्डीव धनुष से बाण चला चला कर अर्जुन ने उन सब को यमलोक भेज दिया। फिर बीभत्सु ने बड़े भारवाही धनुष पर बाणों को चढ़ा कर और उन्हें, कान तक खींच कर ऐसा मारा कि, कर्ण के घोड़े मर कर पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर बलशाली कुन्तीपुत्र अर्जुन ने एक चमचमाता हुआ बाण कर्ण की छाती को तक कर मारा। वह बाण कर्ण का कवच तोड़ता हुआ शरीर में घुस गया। तब कर्ण अचेत हो कर गिर पड़ा और बहुत पीड़ा होने से कर्ण रणभूमि छोड़ कर उत्तर की ओर भाग गया। तब अर्जुन और उत्तर बड़ी ज़ोर से गरजने लगे।

इकसठवाँ अध्याय

भीष्म की ओर जाते हुए अर्जुन का धृतराष्ट्र पुत्रों से युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—कर्ण को जीत कर अर्जुन ने उत्तर से कहा कि, अब तुम मुझे उस सेना की ओर ले चलो, जिसके सामने सोने के ताल की ध्वजा वाला रथ खड़ा है। उस रथ में हमारे पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म बैठे हैं। उन देवव्रत के मन में मुझसे लड़ने की इच्छा है। रथ, हाथी और घुड़सवारों की बड़ी सेना देख कर बाणों से घायल उत्तर ने अर्जुन से कहा। हे वीर! मेरी सामर्थ्य अब नहीं है कि, मैं तुम्हारे उत्तम घोड़े हाँकूँ। मेरा चित्त विह्वल है और प्राण दुःखी हैं। जब कौरवों से तुम्हारा युद्ध होता है, तब दिव्य अस्त्रों के चलने से दशों दिशाएँ व्याकुल हो

उठती हैं। चरबी, ख़ून और मेदा आदि की दुर्गन्धि से मैं मूर्छित सा हुआ जाता हूँ। तुम्हें देख देख कर मेरा चित्त बड़ी दुविधा में पड़ जाता है। ऐसा वीरों का समागम मैंने पहले कभी नहीं देखा था। गदाओं के प्रहार, शङ्खों की ध्वनि, वीरों के सिंहनाद, हाथियों की चिंघाड़ और वज्रपात की तरह गाण्डीव के टंकार को सुन सुन कर, हे वीर! मेरा मन मूढ़ हो गया है और मेरी स्मरण तथा श्रवण की शक्तियाँ नष्ट हो गयी हैं। निरन्तर तुम्हें गाण्डीव धनुष को चक्र के मण्डल की तरह चलाते देख कर के तो मेरी आँखे चौंधियाँ जाती हैं और कलेजा फटा जाता है। क्रुद्ध पिनाकधारी महादेव के समान रण में बाण चलाते समय तुम्हारे उग्र शरीर को देख देख कर मुझे डर लगने लगता है। मैं देखते देखते भौचक्का सा रह जाता हूँ; किन्तु मुझे पता नहीं लगता कि, आप कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुष पर चढ़ाते हैं और कब उसे छोड़ते हैं। पृथ्वी मुझे घूमती सी देख पड़ती है और मैं घबड़ा गया हूँ। अब चाबुक और लगाम पकड़ने की भी शक्ति मुझ में नहीं है। (यह सुन कर) अर्जुन बोले—हे नरपुङ्गव! तुम डरो मत और अपने मन को स्थिर रखो। तुमने भी तो रण में आज अद्भुत कर्म किये हैं। तुम तो प्रसिद्ध मत्स्यवंश में उत्पन्न शत्रुनाशक राजपुत्र हो, तुम्हें इस तरह डरना शोभा नहीं देता। हे राजपुत्र! अच्छी तरह धैर्य धारण कर के मेरे रथ पर बैठे हुए तुम संग्राम होते समय घोड़ों को पकड़े रहो।

वैशम्पायन जी बोले—महाबाहु नरश्रेष्ठ अर्जुन ने विराटपुत्र को इस तरह समझाया और फिर उन महारथी ने उत्तर से कहा कि, तुम भीष्म पितामह की सेना के आगे मुझे शीघ्र ले चलो; जिससे वहाँ पहुँच कर मैं भीष्म के धनुष की डोरी काट डालूँ। आज तुम मेरे प्रयोग किये हुए दिव्य और विचित्र अस्त्रों को देखना। आज मेघों की तरह गरजते हुए मेरे सुवर्ण पृष्ठ वाले गाण्डीव से बिजली की तरह तेज़ी से बाण निकलेंगे और उस समय देख देख कर कौरव कहेंगे कि, मैं दहिने हाथ से बाण चलाता हूँ या बाएँ से। इसी तरह तर्क वितर्क करने वाले शत्रुओं के रक्त की नदी

जिसमें रथरूपी भँवर हाथीरूपी मगर और परलोकरूपी प्रवाह होगा मैं बहाऊँगा। हाथ पैर सिर पीठ बाहु आदि शाखा वाले कौरव सेनारूपी वन को मैं अपनी झुकी नोंकों वाले बाणों से काट गिराऊँगा। कौरवसेना को जीतता हुआ, मैं सैकड़ों मार्ग उसी तरह बनाता हुआ निकलूँगा जिस तरह वन को जलाता हुआ अग्नि सैकड़ों स्थानों में प्रकट होता है। तुम देखना कि, मैं शस्त्रप्रहार से इस सेना को चक्र की भाँति किस तरह घुमाता हूँ और तुम आज मेरी धनुषविद्या तथा अस्त्रविद्या की शिक्षा की विचित्रता भी देखोगे। सम और विषम स्थान आने पर तुम रथ पर सावधान हो कर बैठे रहना। मैं एक बार तो अपने बाणों से उन पहाड़ों को भी काट गिरा सकता हूँ जो सामने लड़ने के लिये आ खड़े हों। इन्द्र के कहने से मैं पहले एक बार संग्राम में सैकड़ों और हज़ारों कालखञ्ज और पौलोम नामक राक्षसों को मार चुका हूँ। मैंने इन्द्र से दृढ़मुष्टि, ब्रह्मा से हस्तलाघव और प्रजापति से अनेक प्रकार के संकुल युद्ध को रीतियाँ सीखी हैं। मैंने समुद्र पार वाले हिरण्यपुरवासी साठ हज़ार उग्रधन्वा योद्धाओं को जीता था। आज तुम मेरे द्वारा कौरव सेना को उसी तरह गिरते देखोगे, जिस तरह बढ़ा हुआ जलवेग किनारों को गिरा देता है। ध्वजारूपी वृक्ष, पैदल सैनिक रूपी तृण, और चारों ओर रथीरूपी सिंहों वाले, कौरव सेनारूपी वन को मैं आज अपने तेजस्वी बाणों से भस्म कर दूँगा। जिस तरह वज्रपाणि इन्द्र अकेले असुरों को रथ पर से गिरा देते हैं, उसी तरह मैं भी आज अकेले झुकी हुई नोंक वाले बाणों से लड़ने वाले बड़े बड़े अतिरथी कौरव योद्धाओं को रथ से गिरा दूँगा। मैंने रुद्र से रुद्रास्त्र, वरुण से वरुणास्त्र, अग्नि से आग्नेयास्त्र, वायु से वायव्यास्त्र और इन्द्र से वज्रास्त्र सीखे हैं। हे विराटनन्दन! बड़े बड़े नरव्याघ्रों से रक्षित धृतराष्ट्रपुत्ररूपी महावन को, मैं उखाड़ डालूँगा। अतः तुम डरो मत।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! सव्यसाची के इस तरह आश्वासित करने पर राजकुमार उत्तर, भीष्म द्वारा रक्षित भयङ्कर सेना के सामने अर्जुन को

ले गया। महाबाहु अर्जुन को रण में कौरवों को हराने की इच्छा से आते देख, भीम पराक्रमी गाङ्गेय भीष्म ने उन्हें रोक दिया। तब अर्जुन ने सामने जा कर, भीष्म के रथ की ध्वजा अपने बाणों से काट डाली। कटी हुई ध्वजा सामने ही पृथ्वी पर गिर पड़ी। इतने में विचित्र मालाएं और गहने पहने, विद्वान और मनस्वी दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति चार योद्धाओं ने आ कर, उस भयङ्कर धनुर्धारी वीभत्सु को घेर लिया। दुःशासन ने भाले से उत्तर को घायल कर दिया और दूसरी चोट अर्जुन की छाती पर की। तब अर्जुन ने गिद्ध के पर की पूँछ वाले तेज़ बाण से सोने से मढ़ा दुःशासन का धनुष काट डाला और पाँच बाण दुःशासन की छाती में मार कर उसे घायल कर दिया। तब पार्थ के बाण की पीड़ा से व्यथित हो वह रण से भाग गया। धृतराष्ट्रपुत्र विकर्ण ने गिद्ध के पर की पूँछ वाले तेज़ बाण चला कर, शत्रुदमन अर्जुन को बींध डाला। तब कौन्तेय ने भी झुकी हुई नोंक वाले बाण उसके ललाट पर मारे और वह घायल हो कर रथ पर से नीचे गिर पड़ा। तब भाई की रक्षा करने के लिये दुःसह और विविंशति पार्थ से लड़ने को आये और पैने पैने बाण चलाने लगे। तब धनञ्जय ने उन दोनों को गिद्ध के पर की पूँछ वाले पैने बाणों से बेध कर, उन दोनों के रथों के घोड़ों को भी तीरों से मार डाला। उन दोनों के घायल हो जाने और दोनों के घोड़ों के मारे जाने पर, बहुत से रथी और पैदल दौड़ पड़े और उनको उठा कर ले गये। तब अचूक निशाना लगाने वाला अपराजित वीभत्सु, किरीट मालाधारी कुन्तीपुत्र महाबली अर्जुन सब दिशाओं में घूमने लगा।

बासठवाँ अध्याय

सब सेना से युद्ध कर के अर्जुन का खून की नदी बहाना

वैशम्पायन जी ने कहा—हे भारत! इसके उपरान्त कौरवों के सब महारथी योद्धा सावधानी के साथ इकट्ठे हो कर अर्जुन से लड़ने लगे। अप्रमेयात्मा अर्जुन ने बहुत से बाण चला कर उन सब को वैसे ही ढक दिया, जैसे कुहरा पर्वत को ढक देता है। उस समय बड़े बड़े हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने और नगाड़ों तथा शङ्खों के नाद से बड़ा कोलाहल हुआ। पार्थ के बाणजाल ने मनुष्यों और घोड़ों के कवच तोड़ डाले और बहुतों को मार डाला। शीघ्रता से बाण छोड़ते हुए धनञ्जय उस समय शरदृतु के दुपहर के सूर्य की तरह तप रहे थे। उसके डर से घबड़ा घबड़ा कर रथी रथों से और घुड़सवार घोड़ों से पटापट ज़मीन पर गिरने लगे और पैदल खड़े खड़े ही ज़मीन पर लुढ़क पड़े। अर्जुन के बाणों की चोट से जब महात्मा वीरों के सोने चाँदी और लोहे के कवच टूटते थे; तब बड़ा शब्द होता था। उस समय पृथ्वी, अर्जुन के बाणों से मारे गये मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों आदि जीवों की लोथों से ढक गयी। उस समय रथ में से बाण चलाते हुए गाण्डीवधारी अर्जुन नाचते सी दीख पड़ते थे। गाण्डीवनिर्घोष के वज्रपात के समान भयङ्कर शब्द को सुन कर, घबड़ाई हुई सब सेनाएँ इधर उधर भागने लगी। उस समय रणभूमि में पगड़ी पहने सुवर्ण माला और कुण्डल धारण किये हुए अनेक कटे हुए सिर इधर उधर लुढ़कते दिखलाई पड़ते थे। अर्जुन के विशिख नामक बाणों से काटे गये गहनों से अलङ्कृत बहुत से शरीर और धनुष लिये हुए बहुत से हाथ, पृथ्वी पर कटे पड़े थे। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय अर्जुन के पैने बाणों से कट कट कर नरमुण्ड पृथ्वी पर ऐसे गिर रहे थे, मानों आकाश से पत्थर बरस रहे हों।

इस तरह तेरह वर्ष के रुके हुए अर्जुन, रणक्षेत्र में अपना रौद्र पराक्रम दिखलाते और धृतराष्ट्र पुत्रों पर क्रोधाग्नि बर्साते हुए घूम रहे थे। दुर्योधन के सामने ही धनञ्जय ने उसकी सेना को भस्म कर डाला और उसके सब योद्धा अर्जुन की वीरता के सामने ठंढे पड़ गये। हे भारत! उस समय विजयीश्रेष्ठ धनञ्जय कौरव सेना को भयभीत करते महारथियों को भगा कर रणभूमि में घूम रहे थे। हे अर्जुन शोणित की तरङ्गिणी बहा दी थी; जिसमें हड्डियाँ सिवार की तरह मालूम पड़ती थीं। वह साक्षात् युगान्तकारी महाकाल निर्मित देख पड़ती थी। उस नदी में धनुष बाण नाव की तरह तैर रहे थे। बहते हुए बाल सिवार से मालूम पड़ते थे, हाथी कछुओं की तरह, शस्त्र मगरों की तरह और मोतियों के हार उनमें लहरों की तरह देख पड़ते थे और अलंकार बुदबुद् से देख पड़ते थे। मेदा, वपा और रक्त से भरी वह नदी, बड़ी भयानक देख पड़ती थी। उसके आस पास माँसभक्षी वन्य पशु भयङ्कर चीत्कार कर रहे थे। बाणों के ढेर बड़े बड़े भँवर से, हाथी बड़े बड़े घड़ियाल से, बड़े बड़े महारथी बड़े बड़े द्वीप से और शङ्ख नगाड़ों के शब्द, नदी के बहने के भयङ्कर कलरव शब्द से मालूम पड़ते थे। इस तरह की दुस्तर लोहू की नदी अर्जुन ने बहाई। अर्जुन इतनी जल्दी बाण चला रहे थे कि, लोगों को दिखलायी नहीं पड़ता था कि कब, उन्होंने बाण लिया, कब चढ़ाया और कब छोड़ा।

तिरसठवाँ अध्याय

अर्जुन का इकट्ठे हो कर आये हुए द्रोणादि महारथियों को फिर हराना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि बड़े बड़े महारथी फिर

इकट्ठे हो कर, अर्जुन को मारने के लिये, अपने दृढ़ और बलवान धनुषों को टंकारते हुए आ पहुँचे। हे महाराज! तब तो बन्दर की फहराती हुई ध्वजा वाला धनञ्जय, अपने सर्प समान तेजस्वी रथ में बैठ कर उनसे लड़ने गया। अब महारथी द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य बड़े बड़े अस्त्रों से महावीर अर्जुन को रोक कर जलवृष्टि की तरह उस पर बाण वर्षाने लगे। पास में खड़े हुए अर्जुन को उन लोगों ने एक साथ घेर कर पर लगे बहुत से पैने पैने बाणों से ढक दिया। इस तरह चलाये हुए दिव्य अस्त्रों से अर्जुन चारों तरफ़ से ढक गये थे और उनके शरीर पर दो अंगुल भी ऐसा स्थान न बचा था जहाँ बाण न दीखते हो। तब महारथी अर्जुन ने हँस कर दिव्य तथा सूर्य की तरह प्रकाशित ऐन्द्रास्त्र को गाण्डीव पर चढ़ा कर चलाया। उस युद्ध में किरीट माला धारी अर्जुन ने सब कौरवों को सूर्य रश्मिरूपी बाणों से ढक दिया; जैसे जल वर्षाते हुए मेघ में बिजली और पर्वत पर अग्नि शोभा देता है वैसे ही सब तरफ़ से झुका हुआ गाण्डीव भी इन्द्र धनुष की तरह शोभा दे रहा था। जैसे बरसते हुए बादलों में चमक कर बिजली आकाश ही से सब दिशाओं और पृथिवी को सुशोभित करती है; वैसे ही हे भारत! गाण्डीव से छूटे हुए बाण दसों दिशाओं में छा गये थे और रथी, हाथी आदि बार बार मूर्छित हो कर गिरते थे। उस समय सब योद्धा ठंडे पड़ गये और उनका चित्त ठिकाने न रहा और सब योद्धा पागलों की तरह संग्राम से विमुख हो कर भागे। हे भरतश्रेष्ठ! इस तरह निराश हो कर अपने अपने प्राण बचाने के लिये कौरव सेना चारों ओर भागने लगी।

चौसठवाँ अध्याय

अर्जुन-भीष्म युद्ध, भीष्म का पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदुपरान्त भरतवंशियों के पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म, योद्धाओं के मारे जाने पर धनञ्जय के पास

सोने से मढ़ा श्रेष्ठ धनुष और मर्मभेदी तीखी नोंक वाले बाणों को ले कर, लड़ने आये। इस समय नरव्याघ्र भीष्म के ऊपर श्वेत छत्र उसी तरह शोभित हो रहा था, जिस तरह सूर्योदय के समय पर्वत शोभा पाता है। गांगेय भीष्म ने शङ्खनाद कर धृतराष्ट्रपुत्रों को प्रसन्न किया और धनञ्जय के रथ का चक्कर लगाते लगाते उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र अर्जुन ने उनको आते देख, उन्हें इस तरह घेर लिया, जैसे पर्वत को जलवृष्टि करने वाले मेघ घेर लेते हैं। तदनन्तर भीष्म ने साँपों की तरह फुफकारते आठ पैने पैने बाण बड़ी तेज़ी से अर्जुन की ध्वजा पर मारे। पहले तो अर्जुन का ध्वजावासी तेजस्वी बन्दर उन बाणों से घायल हुआ और फिर अन्य ध्वजावासी भूतगण घायल हुए। तब अर्जुन ने तत्काल एक तेज़ भाले की चोट से भीष्म के छत्र पर चोट की जिससे टूट कर वह पृथिवी पर गिर पड़ा। इसी तरह अर्जुन ने ध्वजा पर बाण मार कर उसे गिरा दिया। फिर घोड़े, सारथि और पार्श्वरक्षकों को भी जल्दी जल्दी बाण चला कर मार डाला। भीष्म इसको न सह सके और दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर, उन्होंने अर्जुन को बाणों से ढक दिया। उसी तरह पाण्डव अर्जुन ने भी दिव्य अस्त्रों की वर्षा की। तब भीष्म ने उन्हें वैसे ही सह लिया जैसे पर्वत भारी भारी मेघों को सहन कर लेता है। उस समय उन दोनों, भीष्म अर्जुन में बलि और इन्द्र के समान रोमाञ्चकारी भयानक लोमहर्षण युद्ध होने लगा। उस समय सब कौरव और सैनिकों सहित योद्धागण उन दोनों के युद्ध को देखने लगे। उन दोनों के चलाये हुए भाले जब बीच में आकर टकराते थे, तब उनकी चिनगारियाँ ऐसी चमकती थीं, जैसे रात्रि में जुगनू। उस समय अर्जुन घूम घूम कर कभी दहिने और कभी बाँये हाथ से जब गाण्डीव चला रहा था, तब वह चक्र की तरह गोल होता हुआ दीख पड़ता था। थोड़ी देर में अर्जुन ने भीष्म का शरीर सैकड़ों पैने बाणों से ढक दिया और वे उस समय पर्वत को जलधाराओं की तरह देख पड़ते थे। किन्तु भीष्म ने भी उस समुद्र के ज्वार भाटे की तरह बढ़ती हुई अर्जुन की बाणवर्षा को

अपने बाणों से काट कर धनञ्जय को बाण चलाने से रोक दिया। तदनन्तर वह बाणजाल टूट टूट कर अर्जुन के रथ के पास गिरने लगा। तब अर्जुन ने सोने की पूँछ वाले बाणों की वर्षा करनी फिर आरम्भ कर दी। बाण पाण्डव के धनुष से टीड़ी दल की तरह निकलने लगे। किन्तु भीष्म ने भी उन सब को अपने पैने पैने सैकड़ों बाणों से काट गिराया। तब तो सब कौरव साधु साधु कह कर भीष्म की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि, अर्जुन से लड़ कर भीष्म ने बड़ा कठिन कार्य किया है। बलवान, तरुण, दक्ष, अस्त्र चलाने में तेज़ धनञ्जय के वेग को युद्ध में सिवाय शान्तनुपुत्र भीष्म, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण या भारद्वाजगोत्री, आचार्यप्रवर द्रोण के और कौन रोक सकता है? वे दोनों महाबली भरतवंशी अस्त्रों को अस्त्रों से रोकते हुए और सब लोगों की आँखें मोहित करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे। प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, दारुण रौद्र, कौबेर, वारुण, याम्य और वायव्य आदि दिव्य अस्त्र चलाते हुए रण में घूम रहे थे। उन दोनों के संग्राम को देख देख कर लोग विस्मित हो हो कर कह रहे थे। महाबाहु पार्थ शाबाश, भीष्म शाबाश। जिन अस्त्रों का प्रयोग भीष्म और अर्जुन कर रहे थे, उनके लिये लोग कहते थे कि, मनुष्यों के युद्ध में इनका प्रयोग करना अनुचित है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह उन दोनों शस्त्रकोविदों का अस्त्रयुद्ध समाप्त होने पर फिर बाणयुद्ध छिड़ गया। इतने में अर्जुन ने पास जा कर, क्षुर नामक बाण से, भीष्म का सोने से मढ़ा धनुष काट डाला। पलक मारते भीष्म ने दूसरे धनुष पर रोदा चढ़ा कर और क्रोध में भर कर, अर्जुन के बहुत से बाण मारे। अर्जुन ने भी भीष्म पर पैने पैने बाणों की मारामार मचायी। इसी तरह भीष्म ने भी अर्जुन पर बहुत से बाण चलाये। हे राजन्! इस तरह वे दोनों दिव्यास्त्रकोविद एक दूसरे पर बाण चला रहे थे। उन दोनों में यह पता नहीं चलता था कि, कौन कम है और कौन ज़्यादा है। उस युद्ध में किरीट-माला-धारी अर्जुन और भीष्म के चलाये हुए बाणों से सब दिशाएँ छा गयीं। हे राजन्! उस युद्ध में कभी अर्जुन

बढ़े दीख पड़ते और कभी भीष्म अर्जुन से बाज़ी मार ले जाते थे। इससे लोगों को, बड़ा आश्चर्य हो रहा था। हे राजन्! अर्जुन से मारे गये भीष्म के वीर शरीररक्षक उनके रथ के आस पास लोट रहे थे। इतने में श्वेतवाहन अर्जुन के रथ से, छूटे हुए सुनहले पर वाले श्वेत और पैने पैने बाण आकाश में हंसपंक्ति के समान उड़ते हुए दीख पड़ने लगे। उस समय अर्जुन के अद्भुत अस्त्रप्रयोगों को विमानों पर बैठे हुए अन्तरिक्ष से देवताओं सहित इन्द्र देख रहे थे। अर्जुन के अद्भुत बाणचालन को देख कर प्रतापी चित्रसेन नाम का गन्धर्व प्रसन्न हो कर इन्द्र से बोला—अर्जुन के गाण्डीव से छूटे एक दूसरे के पीछे जाते हुए बाणों को ज़रा आप देखिये तो। अर्जुन का दिव्य अस्त्रों का प्रयोग सचमुच आश्चर्य में डालने वाला है। अर्जुन न मालूम कब बाणों को लेता है, कब उन्हें धनुष पर चढ़ाता है और कब उन्हें छोड़ता है, यह दिखलायी नहीं पड़ता। मनुष्य तो इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग अपने धनुषों पर कर ही नहीं सकते, ये तो बड़े पुराने अस्त्र हैं और दिव्य अस्त्रों का समागम भी यहाँ खूब है। जिस तरह दुपहर के तपते हुए सूर्य की ओर कोई नहीं देख सकता, उसी तरह यह सेना भी अर्जुन को नहीं देख सकती। इसी तरह लोग गाङ्गेय भीष्म की ओर देखने का भी साहस नहीं कर सकते। ये दोनों प्रसिद्ध करनी करने वाले, दोनों उग्र पराक्रमी, दोनों समान काम करने वाले और दोनों ही युद्ध में अजेय हैं। हे भारत! इस तरह कहे जाने पर, इन्द्र ने प्रसन्न हो कर, दोनों पर फूल वर्षा कर उनका सम्मान किया। इसके बाद भीष्म ने धनुष खींच कर सव्यसाची के बाएँ भाग में बाण मारे। तब अर्जुन ने हँस कर गीध के पर की पूँछ वाले पैने बाणों से भीष्म का धनुष काट दिया और फिर पराक्रमी कुन्तीपुत्र धनञ्जय ने दश बाण मार कर भीष्म की छाती बींध डाली। इस तरह पीड़ित होने पर महाबाहु एवं युद्धदुर्द्धर्ष गाङ्गेय भीष्म बड़ी देर तक रथ का डंडा पकड़ कर बैठे रहे। उसी समय सारथि अपने कर्तव्य का स्मरण कर, अचेत भीष्म की प्राणरक्षा के लिये, उन्हें रणक्षेत्र से बाहर ले गया।

पैंसठवाँ अध्याय

अर्जुन-दुर्योधन युद्ध, दुर्योधन का पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीष्म के रण से विमुख हो कर चले जाने पर, ध्वजा को फहराता हुआ और धनुष को लिये हुए गरजता हुआ दुर्योधन अर्जुन के सामने आया और कान तक धनुष को खींच कर शत्रुसेना में घूसते भीमधन्वा उग्र वीर अर्जुन के ललाट में भल्ल नामक बाण मारा। हे राजन्! वह सोने की नोंक वाला बाण अर्जुन के ललाट में घुस कर खड़ा हुआ ऐसा शोभित होने लगा, जैसे ऊँचे पर्वत शिखर पर अकेला बाँस। उस सुनहले पर वाले बाण से घायल होने पर अर्जुन के मस्तक से गरम लोहू टपकने लगा जिससे अर्जुन का ललाट शोभित हो रहा था। तब उग्र वीर एवं समान वयस्क अर्जुन और दुर्योधन, दोनों अजमीढ़वंशी योद्धाओं में युद्ध होने लगा। इतने में एक ऊंचे हाथी पर सवार हो कर चार रथी और बहुत सी सेना ले कर विकर्ण कुन्तीनन्दन अर्जुन से फिर लड़ने के लिये आया। उसी समय धनुष को कान तक खींच कर तेज़ी से आते हुए हाथी के माथे में एक पैना बाण मार कर अर्जुन ने उसे गिरा दिया। पार्थ का चलाया हुआ गिद्ध के पर की पूँछ वाला वह बाण पूँछ सहित हाथी के माथे में ऐसे घुस गया, जैसे प्रकाश करता हुआ इन्द्र का वज्र पर्वत में घुस जाता है। इससे बिलबिलाता हुआ वह हाथी वैसे ही गिर पड़ा जैसे वज्रपात होने से पर्वत का शिखर गिरता है। उस हाथी के पृथिवी पर गिर पड़ने से डर के मारे विकर्ण भी कूद पड़ा और आठ पग पीछे जा कर विविंशति के रथ पर बैठ गया। इस तरह अर्जुन ने पर्वत के समान हाथी को बाण रूपी वज्र से मार डाला। पैने बाण मार कर पार्थ ने दुर्योधन की छाती बेध डाली। हाथी को मार कर और राजा दुर्योधन को घायल कर के और पार्श्वरक्षकों सहित विकर्ण को रणभूमि से भगा कर, अर्जुन गाण्डीव धनुष से बाण चला चला कर कौरव सेना के मुख्य मुख्य योद्धाओं को मारने लगा, तब वे सब

उसके सामने से भागने लगे। पार्थ द्वार हाथी के मारे जाने पर और युद्ध से सब योद्धाओं को भागते देख, रथ में बैठ कर दुर्योधन भी उधर भागा; जिधर अर्जुन न था। बाणों से घायल रक्त की वमन करते हुए औ बुरी तरह घबड़ा कर जल्दी जल्दी भागे जाते दुर्योधन को लक्ष्य कर के और ताली बजा कर अर्जुन उससे कहने लगे।

अर्जुन बोले—दुर्योधन! अपनी विपुल कीर्ति और यश को छोड़ कर युद्ध से विमुख हो कर, क्यों भागे जाते हो? क्या तुम्हारा राज्य नष्ट हो गया? अब विजय के बाजे क्यों नहीं बजवाते! युधिष्ठिर का आज्ञाकारी मैं कुन्ती का तीसरा पुत्र युद्ध में खड़ा हूँ। हे धृतराष्ट्र के पुत्र! ज़रा पीछे लौट कर अपना मुँह तो दिखला और क्षात्र धर्म का तो कुछ विचार कर। पृथिवी पर तेरा दुर्योधन नाम रक्खा गया था, किन्तु वह सार्थक नहीं है। क्योंकि तू मुख छिपा कर रण से भागा जाता है। युद्ध में भागने वाले का नाम दुर्योधन नहीं होता। हे दुर्योधन! आगे पीछे तेरी रक्षा करने वाला अब कोई नहीं दिखलायी पड़ता। हे पुरुषप्रवीर! इस लिये तू युद्ध से शीघ्र भाग कर, पाण्डव से अपने प्यारे प्राणों की रक्षा कर।

छाछठवाँ अध्याय

अर्जुन का सब महारथियों को एक साथ हराना और उन्हें मूर्छित कर के उनके वस्त्र उतरवा लेना, कौरवों का लौट जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! इस तरह महात्मा अर्जुन द्वारा ललकारे जाने पर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन अंकुश खाये हुए मदमत्त हाथी की तरह लौट पड़ा। महारथी अर्जुन की तीखी बातों की चोट से वीर दुर्योधन उसी तरह लौट पड़ा, जैसे पैर से कुचला हुआ विषैला साँप, लौट पड़ता

हैं। बाणों से घायल दुर्योधन को लौटते देख, सुवर्ण मालाधारी वीर कर्ण दुर्योधन के उत्तर पार्श्व से अर्जुन से लड़ने को चढ़ आया और पश्चिम की तरफ़ से दुर्योधन की रक्षा करने के लिये धनुष बाण लिये हुए शत्रुनाशन विशाल बाहु भीष्म सोने का कवच पहने हुए धनञ्जय से लड़ने के लिये लौट पड़े। इसी तरह द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन आदि भी बड़े बड़े धनुष बाण ले कर, शीघ्र ही दुर्योधन की रक्षा करने के लिये लौट पड़े। इन महावीर योद्धाओं सहित सारी सेना को पूर्ण जलप्रवाह की तरह लौटते देख, अर्जुन ने उन लोगों को इस तरह तपाना आरम्भ किया, जैसे पीछे लौटते हुए मेघ को सूर्य तपाते हैं। वे सब अर्जुन को चारों ओर से इस तरह घेर कर दिव्य अस्त्रों की वर्षा करने लगे; जैसे पहाड़ को चारों ओर से घेर कर, मेघ जल बर्साते हैं। तब उन कौरव महावीरों के अस्त्रों का गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन ने अपने अस्त्रों से निवारण कर, सम्मोहन-कारी और किसी तरह भी न रुकने वाला ऐन्द्रास्त्र गाण्डीव पर चढ़ा कर चलाया। फिर अर्जुन ने बहुत से तेज़ धार वाले बाण चला कर, दशों दिशाएँ ढक दीं और गाण्डीव धनुष पर टंकार लगा कर, शत्रुओं का मन दहला दिया। फिर शत्रुनाशन अर्जुन दोनों हाथों से पकड़ कर भयङ्कर और गम्भीर शब्द करने वाला शङ्ख बजाने लगे। उसके महाशब्द से सब दिशाएँ गूँज उठीं और चारों ओर वह शब्द भर गया। पार्थ के बजाये शङ्ख के शब्द से कौरव वीर मोहित हो गये तथा उनके हाथों से भारी भारी धनुष गिर पड़े और वे ठंडे पड़ गये। उन सब को अचेत होते देख, अर्जुन को उत्तरा की बात याद आ गयी। तब उन्होंने उत्तर से कहा—कौरव जब तक अचेत हैं, तब तक कौरव सेना में जा कर आचार्य द्रोण और कृप के सफ़ेद कपड़े कर्ण के सुन्दर पीत वस्त्र और अश्वत्थामा तथा दुर्योधन के नीले कपड़े, हे नरप्रवीर! तुम ले आओ। भीष्म मेरी समझ में अचेत नहीं हुए, क्योंकि वे इस अस्त्र के प्रतिघात को जानते हैं, इसलिये तुम उनके घोड़ों की बाईं ओर से सावधानी के साथ जाना। विराटपुत्र लगाम छोड़ कर जल्दी से रथ से कूद पड़ा और

कौरवसेना में जा कर महारथियों के वस्त्र ले कर तुरन्त ही रथ पर आ बैठा और फिर विराटपुत्र सोने के फूल वाले श्वेत घोड़ों को चतुराई से हाँकते हुए अर्जुन को बहुत सी ध्वजाओं वाली कौरवसेना के बाहर निकाल लाया। उस समय अर्जुन को इस तरह सेना से बाहर निकले जाते देख कर, भीष्म तुरन्त उठ कर अर्जुन पर बाण चलाने लगे। तब अर्जुन ने दस बाण चला कर उनके घोड़े मार डाले और उन्हें भी घायल कर दिया। अर्जुन ने अपने शत्रुविनाशक धनुष से भीष्म पर बाण चलाते चलाते उनके सारथी को भी मार डाला और उस तरह वे रथों के समूह से बाहर निकल आये, जिस तरह मेघों को चीर कर सूर्य निकल आते हैं। जब कौरव महारथियों को होश आया, तब उन्होंने उठ कर सुरेन्द्र के समान अर्जुन को अलग खड़ा देखा। यह देख कर घबड़ाया हुआ दुर्योधन भीष्म से जल्दी जल्दी बोला। आपके हाथ से अर्जुन कैसे बच गया? अब भी आप इसे ऐसे मथ डालें, जिससे यह बच न सके। यह सुन कर भीष्म ने हँस कर कहा—उस समय तेरी बुद्धि और तेरी वीरता कहाँ चली गयी थी, जब तू अपने विचित्र धनुष बाण को पटक कर, अचेत पड़ा था? वीभत्सु के मन में निश्चय ही पाप नहीं है। वह इतना उदार है कि, वह क्रूर कर्म कभी भी न करेगा। त्रिलोकी का राज्य भी यदि उसे मिले तो भी वह धर्म से डिगने वाला नहीं है। इसी लिये इस संग्राम में उसने सब के प्राण नहीं लिये। हे कुरुवीर! अब तुम पार्थ को गौएँ ले जाने दो और अपनी सेना को ले कर हस्तिनापुर लौट चलो और अज्ञान के वश हो कर अपना प्रयोजन नष्ट मत करो। क्योंकि सब जीव सदा अपने हित ही का काम करते हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीष्म पितामह की हितकारिणी बातें सुन कर, विद्वेषी दुर्योधन गहरी साँसें लेते लेते चुप हो गया और सब योद्धाओं ने भी भीष्म की हितकारिणी बातें सुन कर, अर्जुन रूपी बढ़ी हुई अग्नि से दुर्योधन की रक्षा करने के लिये पीछे लौट चलना ही ठीक समझा। उन कौरव वीरों को पीछे लौटते देख कर, धनञ्जय प्रसन्न हुए और वृद्ध

तथा मान्य पुरुषों का आदर करते और शान्ति पूर्वक बातचीत करते हुए वे कुछ दूर उनके पीछे पीछे गये। अर्जुन ने पितामह वृद्ध भीष्म और गुरु द्रोण को सिर झुका कर दण्डवत की और कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि मान्य कुरुवीरों पर विचित्र बाण चला कर उन्हें नमस्कार किया। पार्थ ने एक बाण मार कर दुर्योधन का विचित्र रत्नजटित मुकुट काट गिराया। वीर और मान्यों का इस तरह सत्कार कर के धनञ्जय ने गाण्डीव पर टंकार लगा कर, तीनों लोकों को गुंजा दिया। देवदत्त शङ्ख को बजा कर, उन्होंने एक बार फिर शत्रु वीरों के हृदय दहला दिये और माला धारण किये हुए उन्होंने अपनी ध्वजा को फहराते हुए शत्रु का तिरस्कार किया। कौरवों के चले जाने पर प्रसन्न होते हुए किरीटी अर्जुन उत्तर से बोले—हे विराटपुत्र! अब तुम घोड़ों को पीछे मोड़ लो, तुम्हारे पशु मैं छुड़ा लाया। अब तुम प्रसन्नता पूर्वक नगर की ओर चलो। देवगण अर्जुन के साथ हुए कौरवों के उस विचित्र महायुद्ध को देख कर और पार्थ के अलौकिक कामों पर विचार करते हुए, अपने अपने स्थानों को चले गये।

सरसठवाँ अध्याय

कौरवों को हरा कर अर्जुन का नगर को लौटना और दूतों द्वारा नगर में विजय-समाचार भेजा जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह संग्राम में कौरवों को हरा कर अर्जुन विराट के विशाल गोधन को ले कर, नगर को लौटने लगा। लौटते समय अर्जुन को राह में बहुत से कौरव सेना के सिपाही, जो युद्ध से भाग कर इधर उधर जंगलों में जा छिपे थे, मिले। भूखे प्यासे एवं डरे हुए उन लोगों ने राह में अर्जुन को देख, उनको प्रणाम किया और

दोनों हाथों को जोड़ कर कहा—हे धनञ्जय! हम क्या कर के आपको प्रसन्न करें?

अर्जुन ने कहा—तुम्हारा भला हो, अब तुम बिलकुल मत डरो और निडर हो कर अपनी राह पकड़ो। मैं शरण में आए हुए लोगों को कभी कष्ट नहीं देता। इसका तुम विश्वास रखो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन से अभयदान पा कर, वे लोग शान्त हुए और अर्जुन को आयु, कीर्ति और यश बढ़ने का आशीर्वाद दे दे कर उसे प्रसन्न करने लगे। मदमत्त हाथी की तरह अर्जुन को विराट नगर की ओर जाते देख कर भी डर के मारे, कौरवों को पीछे से उन पर चढ़ाई करने का हियाव न पड़ा। मेघों की तरह चढ़ आने वाले कौरव-सेनारूपी मेघ को पीछे खदेड़ कर, शत्रुनाशन अर्जुन ने उत्तर को अच्छी तरह छाती से लगा कर कहा। हे प्रिय! अब तो तुम जान ही गये हो कि, सब पाण्डव तुम्हारे पिता के पास ही रहते हैं। इस लिये नगर में पहुँच कर अपने पिता से तुम पाण्डवों की प्रशंसा न करना। नहीं तो डर के मारे राजा विराट कहीं मर न जावें। नगर में पहुँच कर अपने पिता से तुम कहना कि मैंने ही कौरव सेना को हटा कर, गौएँ छीनी हैं।

उत्तर ने कहा— हे सव्यसाचिन्! किन्तु जो काम हमने किया है, उसके करने की शक्ति मुझमें नहीं है। किन्तु फिर भी जब तक तुम न कहोगे; तब तक मैं उनसे न कहूँगा कि यह काम तुमने किया है।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! कौरव सेना को हरा कर और उनसे गोधन छीन कर लाने वाला अर्जुन जिसका शरीर बाणों से घायल हो रहा था, श्मशान के पास शमी वृक्ष के समीप जा कर रुक गया। तदुपरान्त अग्नि के समान तेजस्वी बन्दर अन्य ध्वजावासी प्राणियों सहित आकाश में उड़ कर अदृश्य हो गया और इसी तरह माया भी सब छिप गयी और रथ के ऊपर फिर सिंह चिन्हित ध्वजा लगायी गयी। फिर पाण्डवों के शत्रु-संहार-कारक सब शस्त्र जैसे के तैसे शमी पर बाँध दिये गये और महात्मा उत्तर

अर्जुन को सारथी बना कर प्रसन्न होते हुए विराट नगर की ओर चल दिये। शत्रु-नाशन अर्जुन ने बैरियों का नाश कर के बड़ा अच्छा काम किया। वे वेणी गूंथ कर बृहन्नला के रूप में प्रसन्न चित्त उत्तर का रथ हाँकते हुए नगर में घुसे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भग्न मनोरथ एवं हारे हुए कौरव गण, अपनी सेना लिये हुए हस्तिनापुर भाग गये। रास्ते में जाते जाते अर्जुन ने उत्तर से कहा। देखो उन सब गौओं को हम वीर गोपालों सहित जीत कर लौटा लाये हैं। अब हम यहीं ठहर कर विश्राम करेंगे और घोड़ों को पानी पिला कर तथा दम दे कर शाम को विराट नगर में प्रवेश करेंगे। अब तुम जल्दी से इन गोपालों को अपने विजय की घोषणा करने के लिये नगर में भेज दो।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! अर्जुन की बात सुन कर उत्तर ने ग्वालियों को आज्ञा दी कि वे तुरन्त नगर में जा कर राजा से उत्तर के जीतने, शत्रु के हारने और गोधन लौटा लाने की बात कह दें। इसके उपरान्त उन दोनों भरत और मत्स्य वीरों ने मन्त्रणा की और परस्पर गले लग कर विजय से प्रसन्न होते हुए वे शमी के समीप फिर गये और शमी पर रक्खा हुआ अपना पहले का सामान उतार कर रथ पर लगा लिया। इस तरह कौरवों को हरा कर और उनसे अपना गोधन छीन कर राजकुमार उत्तर बृहन्नला सारथि के साथ प्रसन्न होता हुआ, फिर विराट नगर में आया।

अड़सठवाँ अध्याय

विराट के पास विजय सँदेस पहुँचना, उत्तर का नगर-प्रवेश, द्यूत खेलते खेलते विराट का कंक की नाक पर पाँसे मारना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! दक्षिण दिशा से त्रिगर्तों को हरा कर और गोधन छीन कर, राजा विराट भी चारों पाण्डवों सहित नगर

में आये। संग्राम में त्रिगर्तों को हरा कर गौओं को लाते हुए चारों पाण्डवों सहित नगर में आते हुए, विराट की बड़ी शोभा हुई। राजसभा में बैठ कर राजा विराट, शत्रुओं को तपाते हुए अपने सगे सम्बन्धियों का हर्ष बढ़ाने लगे। उनके आस पास अन्य वीरों सहित चारों पाण्डव बैठे हुए सभा की शोभा बढ़ा रहे थे। ब्राह्मणों को आगे कर सब प्रजा ने आ कर सेना सहित बैठे हुए राजा का सम्मान किया और प्रशंसा की। तब सेनापति मत्स्यराज विराट ने ब्राह्मणों सहित सब प्रजा को बिदा किया। तदनन्तर वे पूछने लगे राजकुमार उत्तर कहाँ गया? इस तरह पूछे जाने पर अन्तःपुर-वासिनी सब कन्याएँ दासियाँ और स्त्रियाँ बोलीं कि, कौरवों द्वारा उत्तर की तरफ़ से गोधन हरे जाने का समाचार पा कर, उत्तर बड़े क्रुद्ध हुए और पृथ्वी जय करने वाले राजपुत्र उत्तर, चढ़ कर आये हुए भीष्म, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन, कृप और अश्वत्थामा आदि छहों महारथियों को जीत कर, गोधन लौटा लाने के लिये बृहन्नला को सारथी बना कर, अकेले ही उनसे लड़ने को नगर के बाहर गये हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! बृहन्नला को सारथि बना कर अकेले उत्तर के कौरवों से लड़ने के लिये जाने का समाचार पा कर, राजा विराट बहुत दुखी हुए और अपने मुख्य मन्त्रियों से बोले कि कौरव लोग त्रिगर्तों के हार कर भागने का समाचार पा कर, कभी भी रण में न ठहरे होंगे। इस लिये त्रिगर्त युद्ध में जो योद्धा घायल नहीं हुए हैं, वे बहुत सी सेना लेकर उत्तर की रक्षा के लिये तुरन्त चले जावें। राजा विराट ने हाथी घोड़े, रथ पैदल आदि चतुरङ्गिणी सेना विचित्र शस्त्र और अस्त्र आदि बहुत से सामान के साथ पुत्र की रक्षा के लिये शीघ्र भेजी। मत्स्याधिपति राजा विराट ने शीघ्र ही चतुरङ्गिणी सेना को जाने की आज्ञा दी। फिर उसने कहा कि पहले देखो कि, कुमार जीवित भी हैं या मर गया। क्योंकि जिसका सारथि नपुंसक है उसके जीने की क्या आशा हो सकती है?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उसे इस तरह दुःखी होते देख युधिष्ठिर ने हँस कर राजा विराट से कहा—यदि बृहन्नला उत्तर का सारथि

बन कर गया है, तो शत्रु तुम्हारी गौएं कभी नहीं ले जा सकते। बृहन्नला जैसे सारथि के साथ जाने से तुम्हारा पुत्र कौरवों सब राजाओं, समस्त देवताओं, असुरों, सिद्धों और यक्षों को भी जीत सकता है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय इसी समय उत्तर के भेजे शीघ्रगामी दूतों ने विराट नगर में पहुँच कर विजय की घोषणा की। उसे सुनते ही मन्त्रियों ने जा कर राजा विराट से उत्तर की उत्तम विजय का समाचार बतलाते हुए कहा कि, कौरवों को हरा कर और गौओं को जीत कर, बृहन्नला सारथि के साथ उत्तर सकुशल है।

युधिष्ठिर ने कहा—कौरव भाग गये और गौएं छीन ली गयीं; यह बहुत ही अच्छा हुआ। किन्तु हे राजन्! तुम्हारे पुत्र ने जो कौरवों को हरा दिया तो मुझे इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि जिसका सारथि बृहन्नला है उसकी विजय निश्चित है।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! तब तो राजा विराट अपने वीर पुत्र उत्तर के विजय-समाचार पा कर खुशी से फूल उठे और समाचार लाने वाले दूतों को वस्त्रादिक दे कर मन्त्रियों से कहा। राजमार्गों को पताकाओं से सजवा दो और फूलों तथा अन्य सामग्रियों से देवताओं का पूजन कराओ। ऐसा प्रबन्ध करो कि, सब राजपुत्र, बड़े बड़े योद्धा और शृङ्गार कर सब वेश्याएं गाजे बाजे के साथ मेरे पुत्र को लेने जावें। एक आदमी के मत्त हाथी पर एक घंटा ले कर बैठा दो जो सारे नगर में घंटा बजा बजा कर हमारे विजय की घोषणा कर दे। सब कन्यायें उत्तरा कुमारी के साथ शृङ्गार करके मेरे पुत्र के सामने जावें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! राजा विराट की आज्ञा पा कर, सब पुरवासी हाथों में मङ्गलसूचक वस्तुएं लेकर और अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर गाजे बाजे के साथ और सौभाग्यवती तरुण स्त्रियाँ तथा सूत मागध आदि विजय वाद्य बजाते हुए राजा विराट के महाबली पुत्र उत्तर की अगवानी के लिये चले।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इस तरह सेना, कन्याओं और वेश्याओं को अलंकृत कर के, कुमार की अगवानी करने के लिये भेज कर, महाप्राज्ञ राजा विराट प्रसन्न हो कर बोले—हे सैरन्ध्री ! पाँसे ले आ और हे कङ्क ! तुम द्यूत आरम्भ करो। उनके यह कहने पर युधिष्ठिर ने कहा कि, बहुत प्रसन्न मनुष्य के साथ जुआ खेलने का निषेध लिखा है। इसलिये अत्यन्त हर्षित आपके साथ मैं जुआ खेलना उचित नहीं समझता; किन्तु इस पर भी यदि आपकी उत्कट इच्छा हो तो मैं आपको अप्रसन्न करना भी नहीं चाहता। विराट ने कहा—स्त्री, गौ, सोना आदि और भी जो जो धन हैं, आज मैं वह सब जुए पर लगाऊँगा। उसमें मैं कुछ भी न रख छोड़ूँगा।

कङ्क ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप इस बहुदोषपूर्ण जुए को क्यों खेलते हैं ? इसे तो न खेलना ही अच्छा है। आपने युधिष्ठिर को देखा या सुना होगा कि, वह समृद्धिशाली देश, राज्य, धन और देव समान भाइयों को जुए में हार गया। इसीलिये मुझे जुआ खेलना अच्छा नहीं लगता और यदि इस पर भी आप खेलना चाहें तो खेलें।

वैशम्पायन जी ने कहा—द्यूत के आरम्भ हो जाने पर राजा विराट ने कहा देखो कौरवों को मेरे पुत्र ने कैसा हराया। महात्मा युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि, जिसका सारथि बृहन्नला हो उसकी जीत क्यों न हो। यह सुन कर राजा कुपित हो कर युधिष्ठिर से बोला—रे नीच ब्राह्मण ! तू नपुंसक की मेरे पुत्र के तुल्य प्रशंसा कर मेरा अपमान करता है। तुझे कहनी और अन-कहनी बात का भी ज्ञान नहीं। भला बतला तो भीष्म द्रोण आदि प्रमुख योद्धाओं को मेरे पुत्र ने किस तरह नहीं जीता ? हे ब्राह्मण ! तू मेरा मित्र है इसलिये अब की मैं तुझे क्षमा करता हूँ और यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है, तो आगे फिर कभी ऐसी बात न कहना।

युधिष्ठिर ने कहा—हे राजन् ! जहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कर्ण आदि महारथी युद्ध के लिये इकट्ठे हुए हों, वहाँ बृहन्नला के सिवाय उन्हें और कौन रण में हरा सकता है। जिसके बाहुबल की समानता

करने वाला न कोई है, न हुआ न होगा और जिसके संग्राम को देख कर बड़ा आनन्द आता है और जिसने एकत्रित हुए देवता, मनुष्यों और असुरों को अकेले हराया था उसकी सहायता से उत्तर ने कौरवों को क्यों न जीता होगा। यह सुन और गुस्से में भर कर, विराट ने कहा मैंने तुम्हें इतनी बार बोलने से मना किया, किन्तु तुम चुप नहीं रहते। सच है कि, यदि संसार में कोई दण्ड देने वाला न हो तो कोई मनुष्य धर्म ही न करे।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! राजा विराट ने क्रोध में भर कर, युधिष्ठिर से कहा चुप रह और फेंक कर पाँसा उनके मुँह पर मारा। पाँसे के ज़ोर से लगने से युधिष्ठिर की नाक से ख़ून गिरने लगा; किन्तु उन्होंने उसे पृथ्वी पर न गिरने दिया और हाथों पर रोक लिया और तुरन्त ही बगल में खड़ी द्रौपदी की ओर देखा और वह भी उनका अभिप्राय समझ गयी। वह तुरन्त एक जल भरा हुआ सोने का पात्र ले आयी। युधिष्ठिर का बहता हुआ रक्त उस शुद्धचरित्रा ने उसमें रोप लिया। इतने में अतिप्रसन्न उत्तर ने पुष्पमालाओं और सुगन्धि से पूरित नगर में प्रवेश किया। राजकुमार उत्तर स्त्रियों तथा नगरवासियों से घिरा हुआ राजसभा के द्वार पर आ पहुँचा और पिता को अपने आने की ख़बर दी। उसी समय सभा के द्वारपाल ने राजा विराट को खबर दी कि, राजकुमार उत्तर बृहन्नला सहित ड्योढ़ी पर खड़े हैं। तब प्रसन्न हो कर द्वारपाल से विराट ने कहा उन दोनों को यहाँ ले आओ। मैं उन दोनों को देखने के लिये उत्सुक हूँ। उस समय युधिष्ठिर ने धीरे से द्वारपाल के कान में कह दिया कि, केवल उत्तर ही को अन्दर लाना। बृहन्नला को द्वार पर ही रोक लेना। क्योंकि उस महाबाहु का यह व्रत है कि, जो कोई संग्राम के सिवाय शान्ति के समय मेरे शरीर पर घाव कर के रक्त निकाल दे तो उसे वह जीता नहीं छोड़ता। इसलिये मुझे रक्त में सना देख कर वह क्रोध में भर जायगा और मन्त्री और सेनासहित विराट को मार डालेगा। तब पृथ्वीविजयी विराट के ज्येष्ठ पुत्र ने सभा में प्रवेश किया और पिता को नमस्कार कर के कङ्क को भी

उसने प्रणाम किया। उसने कङ्क को रुधिर से लिप्त पृथ्वी पर एकान्त में बैठे देखा और सैरन्ध्री को उनके पास खड़ा देख उत्तर ने घबड़ा कर पिता से पूँछा—हे राजन्! इन्हें किसने मारा है? किसने यह पाप किया है? विराट ने उत्तर दिया इस कुटिल को मैंने मारा है। यह प्रतिष्ठा के योग्य नहीं है। मैं जिस समय तेरी वीरता की प्रशंसा कर रहा था, उस समय यह उस नपुंसक की प्रशंसा करने लगा।

उत्तर ने कहा—हे राजन्! यह तो आपने बड़ा अकार्य किया। इसलिये इन्हें शीघ्र प्रसन्न कीजिये नहीं तो भयङ्कर ब्रह्मविष से आप समूल नष्ट हो जावेंगे।

वैशम्पायन जी ने कहा—पुत्र की बात सुन कर राष्ट्रवर्द्धन विराट ने भस्म में छिपे अग्नि की तरह छिपे हुए युधिष्ठिर से क्षमा माँगी। क्षमा करते समय युधिष्ठिर ने राजा से कहा—हे राजन्! मैंने तो आपको बड़ी देर हुई तभी क्षमा कर दिया था, मुझे तो क्रोध का लेश भी नहीं। किन्तु हे महाराज! कहीं मेरा रक्त पृथ्वी पर गिर पड़ता तो आप निश्चय ही अपने देश सहित नष्ट हो जाते। अन्याय से मुझ निरपराधी को पीड़ित करने का भी दोष मैं आप पर नहीं लगाता। क्योंकि बलवान होने पर राजा लोग ऐसे ही दारुण कर्म करने लगते हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! खून निकलना जब बन्द हो गया तब बृहन्नला ने भी सभा में प्रवेश कर के राजा और कङ्क को दण्डवत की। युधिष्ठिर के क्षमा कर देने पर राजा विराट ने रण से लौटे हुए उत्तर की अर्जुन के सामने ही प्रशंसा की। हे माता के आनन्द को बढ़ाने वाले! तेरा सा पुत्र पा कर, मैं पुत्रवान हुआ। तेरे समान पुत्र न मेरे हुआ न होने की आशा है। हे प्रिय उत्तर! जो एक साथ हज़ारों निशानों पर वार कर के एक पर भी नहीं चूकते, ऐसे कर्ण से तुम किस तरह लड़े थे? समस्त नरलोक में जिसके तुल्य कोई नहीं है, उन भीष्म के साथ तुम्हारा युद्ध किस तरह हुआ था? हे तात! जो ब्राह्मण वृष्णिवंशी और कुरुवंशी क्षत्रियों

के आचार्य हैं और जो सर्वशास्त्र-विशारद तथा अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं, उन्हीं द्रोणाचार्य के साथ तूने किस तरह संग्राम किया था? सब शस्त्रधारियों में वीर अश्वत्थामा नामक आचार्य द्रोण के पुत्र के साथ कैसे तुम लड़े थे? रण में जिसे देख कर योद्धाओं की दशा लुटे हुए व्यापारी जैसी हो जाती है ऐसे कृपाचार्य का सामना तुमने कैसे किया था? हे पुत्र! जो राजपुत्र दुर्योधन अपने बाणों से पहाड़ के भी टुकड़े टुकड़े कर सकता है, उसके साथ तुमने किस तरह लड़े थे। मेरे सब शत्रु आज हार गये और तुम्हारे कौरवों को हरा कर गौओं को लौटा लाने से, आज तुम्हारे शरीर से लग कर पवन भी मुझे सुख दे रहा है। आज तुम बड़े बड़े कौरव वीरों को रण में हरा कर, गौओं को इस तरह छीन लाये, जैसे सिंह माँस को छीन लाता है।

उनहत्तरवाँ अध्याय

उत्तर का कहना कि एक देवपुत्र ने कौरवों को हटा कर गौएं छीनी थीं।

उत्तर ने कहा—हे राजन्! न मैंने कौरवों को हराया और न मैंने उनसे गौएँ ही छीनी। यह सब काम तो एक देवपुत्र के किये हुए हैं। मुझे डर कर भागते देख, वह वज्रसमान दृढ़ शरीर वाला युवा मेरे रथ में आ बैठा और उसीने लड़ कर कौरवों को परास्त किया और गौएं जीत लीं। इस-लिये हे तात! यह कर्म उसीका किया हुआ है, मेरा नहीं है। उसीने कृप, द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण तथा भीष्म आदि छहों महारथियों को बाणों से मार भगाया था। हाथियों के समूह को ले कर जैसे गजराज भागते हैं, वैसे ही दुर्योधन और विकर्ण को सेनासहित डर कर भागते देख, उस महाबली देवपुत्र ने उनसे कहा कि, तेरी रक्षा करने वाला मुझे हस्तिनापुर में भी कोई नहीं दीख पड़ता। हे धृतराष्ट्रपुत्र! अपनी रक्षा के लिये तुम्हें युद्ध ही करना पड़ेगा। हे राजन्! समझ रखो भाग कर

तुम्हारा बचाव नहीं हो सकता। इसलिये तुम युद्ध करो इसमें जीत गये तो पृथिवी का भोग करोगे और मारे जाओगे तो स्वर्ग भोगोगे। वह नरव्याघ्र राजा साँप की तरह फुफकारता हुआ देवपुत्र की बातें सुन कर रथ पर मन्त्रियों सहित लौट पड़ा और वज्र समान बाण चलाने लगा। हे राजन्! उसे लौट कर लड़ते देख मेरे तो रोएँ खड़े हो गये और टाँगें काँपने लगीं; किन्तु उस देवपुत्र ने बाणों की बौछार से सिंह की तरह उसकी सेना तितर बितर कर दी। हे राजन्! सिंह समान उस वीर तथा दृढ़ शरीर वाले युवा देवपुत्र ने महारथियों और उनकी सेना को हरा कर मूर्छित कर दिया और हँसते हँसते प्रमुख वीरों के वस्त्र वह उतार लाया। उस अकेले वीर ने एक साथ मिल कर आये हुए छहों महारथियों को उसी तरह पछाड़ दिया, जिस तरह मत्त सिंह वनचारी पशुओं को पछाड़ देता है।

विराट बोले—वह महाबाहु महायशस्वी देवपुत्र कहाँ है, जो कौरवों को हरा कर मेरा गोधन लौटा लाया? उस महाबली देवपुत्र को हम देखना और पूजना चाहते हैं, जिसने तेरी और मेरी गौओं की रक्षा की। उत्तर ने कहा—वह महाबली देवपुत्र सो वहीं अन्तर्धान हो गया और मुझे प्रतीत होता है कि, वह कल या परसों यहीं प्रकट हो कर दर्शन देगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उक्त प्रकार से वर्णन किये जाने पर भी वहीं सामने बैठे हुए छद्मवेशी पाण्डव को राजा विराट न पहचान सका। तब महात्मा विराट की आज्ञा पा कर, अर्जुन ने कौरव महारथियों के वस्त्र विराटपुत्री उत्तरा को दे दिये। बहुमूल्य तरह तरह के नवीन वस्त्रों को पा कर उत्तरा बड़ी प्रसन्न हुई।

हे राजा जनमेजय! इसके उपरान्त अर्जुन ने राजकुमार उत्तर के साथ मन्त्रणा कर, राजा युधिष्ठिर के प्रकट होने के लिये कार्यक्रम निश्चित किया। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस तरह मत्स्यराज के पुत्र के साथ सलाह कर के पाण्डवगण बहुत प्रसन्न हुए।

सत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों का प्रकट होना, अर्जुन का युधिष्ठिर के गुण वर्णन करना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदुपरान्त तीसरे दिन शुभमुहूर्त में व्रतादि कर के पाँचों पाण्डवों ने स्नान किये और सफ़ेद वस्त्र पहन अलङ्कार धारण कर और युधिष्ठिर को आगे कर, वे महारथी द्वार के ऊपर मत्त गजराजों की तरह दिखलायी पड़ने लगे। विराट की सभा में जा कर वे लोग क्रम से राजसिंहासनों पर इस तरह जा बैठे, जैसे यज्ञवेदियों पर अग्नि स्थापित किया जाय। उनके इस तरह सभा के राज्यासनों पर बैठ जाने के बाद राजा विराट राजकाज करने के लिये सभा में आये। प्रज्वलित अग्नि की तरह श्रीमान् पाण्डवों को मुहूर्त भर देख कर, क्रोध में भरा हुआ मत्स्यराज मरुद्गण से सेवित इन्द्र के समान देवरूप कंक से बोला। मैंने तो तुझे जुआ खिलाने वाला अपना सभासद बनाया था। आज तू अलंकार आदि धारण कर, राजसिंहासन पर कैसे जा बैठा?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! विराट की हास्यास्पद बातें सुन कर, अर्जुन ने मुस्करा कर कहा—हे राजन्! ये इन्द्र के साथ उनके आधे आसन पर भी बैठ सकते हैं। ये ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, शास्त्रज्ञ, त्यागी, यज्ञ करने वाले और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। ये मूर्तिमान धर्म, वीर-श्रेष्ठ, लोकों में बुद्धिमान् और तपस्वी हैं। ये तरह तरह के अस्त्र शस्त्रों के ज्ञाता हैं और जो ये जानते हैं सो त्रिलोकी के चराचर जीव नहीं जानते हैं और न जानेंगे। जो यह जानते हैं उसे देवता और असुरों, मनुष्यों, राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, किन्नरों तथा महोरगों में भी कोई नहीं जानता। ये दूर-दर्शी, महातेजस्वी और नगर तथा देशवासियों के प्रीतिभाजन हैं। पाण्डवों में अतिरथी, यज्ञ और धर्म में रत, जितेन्द्रिय, महर्षि समान राजर्षि, और सर्व-लोक-प्रसिद्ध बलवान, धैर्यवान, चतुर, सत्यवादी,

जितेन्द्रिय, ऐश्वर्य में इन्द्र और धन में ये कुबेर के समान हैं। जैसे लोगों की रक्षा करने वाले महातेजस्वी मनु हैं, वैसे ही प्रजा पर दया रखने वाले ये महातेजस्वी राजा भी हैं, ये कुरुवंश में श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं जिनकी कीर्ति सूर्य की प्रभा के समान लोक में फैली हुई है। इनका यश सब दिशाओं में उसी तरह फैला हुआ है, जिस तरह उदय होते हुए सूर्य के तेज के साथ साथ उसकी किरणें चारों ओर फैल जाती हैं। हे राजन्! जिस समय धर्मराज कुरुदेश में थे, उस समय इनकी सवारी के पीछे दस हज़ार वेगवान मत्त हाथी चला करते थे और सुवर्ण मालाधारी तीस हज़ार रथी घोड़ों के रथों में बैठ कर इनके पीछे चलते थे। जिस तरह ऋषि इन्द्र की स्तुति किया करते हैं, उसी तरह सोने के मणिजटित कुण्डलधारी सूत और मागध इनकी स्तुति करते हुए साथ में चला करते थे। हे राजन्! सब राजा लोग तथा सेवकों की भाँति इनकी उसी तरह सेवा करते थे, जिस तरह सब देवता कुबेर की सेवा करते हैं। इन महाभाग ने सब राजाओं को अधीन कर के विवश हुए बनियों की तरह कर देने वाला बना लिया था। इन सुचरित्रवान राजा द्वारा अट्ठासी हज़ार महात्मा स्नातक ब्राह्मणों की आजीविका चलती थी और बूढ़ों, अनाथों, पंगुओं और अन्धे लोगों का पालन, ये राजा निज पुत्र की तरह कर के प्रजाधर्म का पालन करते थे। ये धर्मात्मा, दान्त, क्रोध जीतने वाले, जितेन्द्रिय, प्रसन्न-वदन, ब्राह्मण-रक्षक तथा सत्यवादी राजा हैं। इनके तेज से दुर्योधन, उस के साथी लोग, कर्ण और शकुनि आदि सन्तप्त रहा करते हैं। हे नरेश्वर! इनके गुणों की गणना नहीं हो सकती। ये पाण्डवराज नित्य धर्म में तत्पर और दयावान हैं। ऐसे महागुणी पार्थिवश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर, हे राजन्! कैसे राजसिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं हैं।

इकहत्तरवाँ अध्याय

अर्जुन तथा उत्तर द्वारा अन्य पाण्डवों का परिचय दिया जाना, राजा विराट का अर्जुन को अपनी पुत्री देना, अर्जुन का उसे अपने पुत्र के लिये अङ्गीकार करना

विराट बोले—यदि यही कुरुवंशी कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर हैं, तो इन में इनका भाई अर्जुन कौन है और महाबली भीम कौन है? नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी कौन सी हैं? जब से पाण्डव जुए में हार कर वनवासी हुए, तब से उनका कोई समाचार ही नहीं मिला।

अर्जुन ने कहा—हे राजन्! यह तुम्हारा रसोइया बल्लव ही भयङ्कर वेग वाला पराक्रमी भीम हैं। इन्होंने ही गन्धमादन पर्वत पर क्रोधवश नामक राक्षसों को मार कर दिव्य सौगन्धिक पुष्प द्रौपदी को ला कर दिये थे। यह वही गन्धर्व हैं जिन्होंने दुरात्मा कीचक को मारा था और ये ही आप के अन्तःपुर में व्याघ्र, रीछ और जंगली सुअरों को मारा करते थे। तुम्हारा अश्वाध्यक्ष ही परन्तप नकुल और सहदेव तुम्हारी गौओं के गिनने वाले ही, दोनों महारथी माद्रीपुत्र हैं। ये दोनों यशस्वी, रूपवान और शृङ्गार वेष तथा आभूषणों से युक्त रहने वाले सहस्रों महारथियों से अधिक शक्ति रखने वाले पराक्रमी भरतवंशियों में श्रेष्ठ हैं। हे राजन्! पद्मपलाश तुल्य आँखों वाली, सुमध्यमा तथा सुन्दर हास्य वाली सैरन्ध्री ही द्रौपदी है जिसके कारण कीचक मारा गया। हे महाराज! मैं ही भीम से छोटा और यमज नकुल सहदेव से बड़ा अर्जुन हूँ, जिसे आप अब जान गये होंगे। हे महाराज! हमने आपके यहाँ गर्भ के बालक की तरह सुरक्षित रह कर, अज्ञातवास का समय पूरा किया।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब अर्जुन ने पाँचों पाण्डवों को बता दिया, तब राजा विराट का पुत्र उत्तर अर्जुन के पराक्रम का हाल कहने

लगा। उत्तर ने फिर से सब पाण्डवों को दिखलाया और कहा। उत्तर बोला—ये जो शुद्ध सुवर्ण की रंगत के विशाल सिंह के समान शरीर वाले, ऊँची नासिका, बड़े बड़े और ताँबे की तरह रक्त नेत्र वाले ही कुरुराज युधिष्ठिर हैं। दूसरे जो मत्त गजराज की चाल वाले, तप्त सुवर्ण की तरह गौरङ्ग, चौड़े कन्धों और भारी भारी लंबी भुजाओं वाले ही वृकोदर भीम हैं। इनको देखिये। इनकी बग़ल में महाधनुर्धारी श्यामवर्ण जो हाथियों के यूथपति की तरह दीख पड़ते हैं, युवा, सिंह जैसे कन्धों वाले, गजराज की चाल वाले पद्मसदृश विशाल नेत्र वाले ही वीर अर्जुन हैं। राजा युधिष्ठिर के समीप जो दो विष्णु और इन्द्र के समान उत्तम मनुष्यों का जोड़ा बैठा है, उनके रूप, बल, और शील में बराबरी करने वाला लोक में कोई नहीं है। इन दोनों के पार्श्व में उत्तम सुवर्ण के आभूषण पहने, जिसकी प्रजा मूर्तिमती गौरी की तरह है, नील कमल के समान जिसके शरीर का वर्ण है, वह मूर्तिमती देवी लक्ष्मी के समान द्रौपदी है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह पाँचों पाण्डवों का राजा विराट को परिचय दे कर राजकुमार उत्तर, विराट को अर्जुन की वीर गाथा सुनाने लगा।

उत्तर बोला—ये ही वन्य पशुओं को संहार करने वाले शत्रुनाशन अर्जुन हैं। ये ही शत्रुसेना में बड़े बड़े रथियों का संहार करते हुए घूम रहे थे। सोने की झूल वाले एक हाथी को संग्राम में इन्होंने एक ही बाण से मारा था जो दाँतों के बल ज़मीन पर गिर पड़ा था। इन्होंने ही संग्राम में कौरवों को हरा कर, गौएँ जीती थीं। इन्हींके भयङ्कर शङ्खनाद से मेरे कान बहरे पड़ गये थे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! प्रतापी मत्स्यराज जिसने युधिष्ठिर को घायल किया था, ये बातें सुन कर उत्तर से बोला। इस समय मुझे पाण्डवों को प्रसन्न करना ही रुचता है। यदि तेरी सलाह हो तो मैं उत्तरा का व्याह अर्जुन से कर दूँ।

उत्तर ने कहा—इस समय ये आर्य पूज्य तथा मान्य हैं और मेरी राय है कि, इन महाभाग पूजनीय पाण्डवों का अवश्य पूजन करना चाहिये।

विराट ने कहा—ठीक है, संग्राम में मुझे हरा कर शत्रु जब मुझे पकड़े लिये जाते थे; तब भीम ने ही मुझे छुड़ा कर शत्रु से गोधन छीना था, सो इन्हीं लोगों के भुजबल से युद्ध में हम लोगों को विजय मिला है इस लिये सब मन्त्रियों सहित पाण्डवश्रेष्ठ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को प्रसन्न करें तेरा भला हो। छोटे भाइयों सहित युधिष्ठिर को तूने मुझे दिखला दिया। यदि मैंने अनजाने धर्मराज से कोई अनुचित बात कह दी हो तो उसे राजा युधिष्ठिर को क्षमा कर देना चाहिये। क्योंकि, ये पाण्डव धर्मात्मा हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस तरह धर्मराज से क्षमा माँग कर, विराट बड़े सन्तुष्ट हुए और उन महात्मा ने राज्यदण्ड और कोष सहित सारा राज्य युधिष्ठिर को समर्पण किया। तब प्रतापी मत्स्यराज सब पाण्डवों से, विशेष कर अर्जुन से बोले—आपने बहुत अच्छा किया। बहुत अच्छा किया। फिर माथा सूँघ सूँघ कर क्रम से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को उन्होंने बार बार प्रसन्नतापूर्वक छाती से लगाया। राजा विराट, उन्हें देखते देखते तृप्त ही न होते थे और अन्त में युधिष्ठिर को प्रसन्न कर के वे बोले—तुम सब ने कुशलपूर्वक वनवास से यहाँ आ कर बड़ा अच्छा किया और दुरात्मा कौरवों के न जानते हुए अज्ञातवास की प्रतिज्ञा भी पूरी की और सब वस्तुओं सहित मैं यह राज्य युधिष्ठिर को अर्पण करता हूँ। सब पाण्डव उसे निश्शंक हो कर, ग्रहण करें। सव्य-साची अर्जुन उत्तरा के साथ विवाह करें, क्योंकि वे ही महावीर इस कन्या के उपयुक्त पति हैं।

इस प्रकार कहे जाने पर धर्मराज ने अर्जुन की ओर देखा, तो अर्जुन ने भी अपने बड़े भाई की ओर देख कर कहा—हे राजन्! मैं आपकी कन्या को अपनी पुत्रवधू रूप से स्वीकार करता हूँ। यह सम्बन्ध मत्स्य और भरतवंशियों के लिये अच्छा है।

बहत्तरवाँ अध्याय

अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह

अर्जुन की बात सुन कर विराट बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम मेरी कन्या को ग्रहण करके पत्नी क्यों नहीं बनाते ।

अर्जुन ने कहा—अन्तःपुर में बहुत दिनों से एकान्त और सब के सामने आपकी कन्या मुझ पर पिता के समान विश्वास करती हुई रहती थी । नाचने और गाने में चतुर होने से मुझ पर आपकी कन्या बड़ी भक्ति रखती और मुझे सदा गुरु के समान आदर की दृष्टि से देखती थी । हे राजन् ! तुम्हारी युवा कन्या के साथ अन्तःपुर में मैं एक वर्ष तक रहा हूँ और अब मेरे उसके साथ विवाह कर लेने पर लोग तरह तरह की शङ्का करेंगे । इसीलिये हे राजन् ! मैं उसे अपनी पुत्रवधू बनाना चाहता हूँ । इसीसे लोग मुझे शुद्ध, जितेन्द्रिय और दान्त समझेंगे और उन्हें विश्वास हो जायगा कि, मैंने उस कन्या को बड़ी पवित्रता से रखा था । पुत्रवधू और पुत्री में उसी तरह कोई भेद नहीं होता, जैसे अपने में और पुत्र में भेद नहीं होता, किन्तु ऐसा करने से न तो कोई मुझ पर ही शङ्का करेगा और न तुम्हारी पुत्री के चरित्र में कोई सन्देह करेगा । हे परन्तप ! झूठी बदनामी और लोगों की खोटी बातों से मैं बहुत घबड़ाता हूँ । हे राजन् ! इसलिये आपकी पुत्री उत्तरा को मैं पुत्रवधू ही के लिये अंगीकार करता हूँ । मेरा पुत्र देवपुत्र के समान है, श्रीकृष्ण का भांजा तथा उन्हीं चक्रपाणि का स्नेहभाजन और सर्वअस्त्रों का पण्डित है । हे राजन् ! मेरा पुत्र महाबाहु अभिमन्यु तुम्हारा जमाई और तुम्हारी पुत्री के लिये उपयुक्त पति है ।

विराट ने कहा—कुरुवंशोत्पन्न हे कुन्तीपुत्र धनञ्जय ! तुम ठीक कहते हो क्योंकि तुम सदा धर्म में रत ज्ञानी मनुष्य हो । हे अर्जुन ! अब जो उचित समझो वही काम तुम करो, मेरी सब अभिलाषायें तभी पूरी हो गयीं जब अर्जुन मेरे सम्बन्धी बनें ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इस तरह विराट और अर्जुन को सम्मत देख कर, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने समय आने पर मत्स्य और भरतवंशियों का सम्बन्ध करने वाले विवाह की आज्ञा दी। हे भारत ! तब राजा विराट और युधिष्ठिर ने अपने मित्रों और वासुदेव श्रीकृष्ण को बुलाने के लिये दूत भेजे। तेरहवें वर्ष के समाप्त हो जाने पर पाण्डव प्रकटरूप से विराट के उपलव्य नामक देश में रह रहे थे। अर्जुन ने अभिमन्यु, जनार्दन और आनर्तदेशी दाशार्हों को बुलवा भेजा। युधिष्ठिर से प्रीति रखने वाले काशिराज और राजा शैव्य अपनी अपनी एक एक अक्षौहिणी सेनाओं के साथ उपलव्य में आये। एक अक्षौहिणी सेना सहित, महाबली राजा यज्ञसेन, द्रौपदी के वीर पुत्रगण, अजित शिखण्डी, समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ एवं दुर्द्धर्ष धृष्टद्युम्न अक्षौहिणी सेनाओं को ले कर आया था। उसने बड़ी बड़ी दक्षिणा वाले, अनेक यज्ञ कर अवभृथ स्नान किये थे, अनेक वीर राजागण वहाँ आये। उनके वहाँ पहुँचने पर धर्मात्मा राजा विराट ने उन सब का सेना, वाहन और सेवकों सहित विधिपूर्वक सत्कार किया और ठहरने के लिये स्थान दिया। अभिमन्यु के साथ अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह करके राजा विराट बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ आये हुए राजाओं को भोजन कराया। वनमाली वासुदेव, हलायुध बलराम, कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, साम्ब और निशठ आदि माता सहित परन्तप अभिमन्यु को ले कर आये थे। इन्द्रसेन आदि सूतगण भी एक वर्ष के बाद वहाँ आये थे। परम तेजस्वी भांजे के विवाह में श्रीकृष्णचन्द्र जी बरात के लिये अपने साथ दस हज़ार हाथी, दश लाख रथ, घोड़े, एक खरब पैदल और भोज, वृष्णि तथा अन्धक वंशी क्षत्रियों को ले कर पाण्डवों के यहाँ आये थे। विवाह के समय भेंट में श्रीकृष्ण ने महात्मा पाण्डवों को तरह तरह के रत्न, बहुत सी दासियाँ और बहुत से वस्त्र दिये। तब मत्स्यवंशी और भरत के वंशज का विवाह विधिपूर्वक हुआ। तब विवाह के समय पाण्डवों के आदमी मत्स्य-राज के प्रासाद में शङ्ख, भेरी, गोमुख आदि तरह तरह के बाजे बजाने लगे।

बहुत से पशुओं को मार कर आये हुए लोगों के लिये मास राँधा गया था। माँस और सुरा आदि बहुत से खाद्य पेय पदार्थों को इच्छानुसार खिला पिला कर लोगों को तृप्त किया गया। गाने बजाने वाले, भाँड़, नट, वैतालिक, सूत और मागध आदि गा बजा कर तथा स्तुति कर के आगत राजाओं को प्रसन्न कर रहे थे। मत्स्यराज के अन्तःपुर की सुन्दरी स्त्रियाँ रानी सुदेष्णा का शृङ्गार कर के उन्हें साथ में ले और स्वयं रत्नजटित अलङ्कार धारण किये हुए वहाँ आयीं थीं। वे गौराङ्गी और अलङ्कार धारण किये हुए सब सुन्दर स्त्रियाँ रूप, यश और श्री में द्रौपदी के सामने फीकी पड़ गयीं। राजपुत्री उत्तरा का शृङ्गार कर और उसे इन्द्रपुत्री की तरह आगे कर सब रानियाँ विवाह मण्डप में आयीं। तब कुन्तीपुत्र धनञ्जय ने अपने सुभद्राजात पुत्र के लिये निर्दोषाङ्गी विराटपुत्री उत्तरा को ग्रहण किया। वहाँ बैठे हुए इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर ने भी उसे पुत्रवधू के रूप में स्वीकार किया। पार्थ ने भगवान जर्नादन की पूजा के उपरान्त उत्तरा को ग्रहण कर अभिमन्यु के साथ उसका विवाह कर दिया। तब राजा विराट ने वायुवेग वाले सात हज़ार घोड़े, दो सौ बड़े बड़े हाथी और बहुत सा धन दहेज़ में दिया और अग्नि में हवन कर के अच्छी तरह ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया और अन्त में अपना राज्य, सेना, कोष और स्वयं अपने को भी विराट ने पाण्डवों को दे दिया। विवाह होने के बाद धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का दिया हुआ सब धन तथा एक हज़ार गौएं विविध प्रकार के वस्त्र और रत्न, आभूषण सवारियाँ और पलंग ब्राह्मणों को दिये और तरह तरह के खाने पीने के स्वादिष्ट पदार्थ भी उन्हें दिये। उस समय राजा विराट का नगर हृष्ट मनुष्यों से युक्त और उत्सव होने से बड़ा ही शोभायमान हो गया था।

विराटपर्व समाप्त

हिन्दी

महाभारत

उद्योगपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९२०

उद्योगपर्व

विषय-सूची

सेनोद्योग पर्व

अध्याय पृष्ठ

सञ्जययान पर्व

प्रजागर पर्व

सनत्सुजात पर्व

यानसन्धि पर्व

अध्याय	पृष्ठ
११३—शाण्डिली का प्रभाव	३४७
११४—राजा ययाति के निकट गमन	३५०
११५—ययाति और माधवी	३५१
११६—माधवी और हर्यश्व	३५३
११७—माधवी और दिवोदास	३५४
११८—शिवि की उत्पत्ति...	३५६
११९—माधवी और विश्वामित्र	३५७
१२०—राजा ययाति को शाप	३५९
१२१—ययाति का स्वर्ग से भ्रष्ट होना	३६१
१२२—ययाति का पुनः स्वर्ग गमन	३६३
१२३—ययाति के स्वर्गच्युत होने का हेतु...	३६५
१२४—श्रीकृष्ण और दुर्योधन	३६७
१२५—भीष्म और दुर्योधन...	३७२
१२६—भीष्म द्रोण और दुर्योधन	३७४
१२७—दुर्योधन का उत्तर ...	३७५
१२८—श्रीकृष्ण का रोष ...	३७७
१२९—गान्धारी का दुर्योधन को समझाना	३८१
१३०—श्रीकृष्ण को पकड़ने का सङ्केत	३८५
१३१—विराटरूप की झाँकी	३८९
१३२—कुन्ती का संदेश ...	३९२
१३३—विदुला का उपाख्यान	३९४
१३४—क्षात्रधर्म का गूढ़तत्व	३९८
१३५—क्षत्रिय धर्म ...	४०२
१३६—क्षत्रियों का धर्म ...	४०५
१३७—कुन्ती का संदेश ...	४०७

सैन्य-निर्याण पर्व

उलूक दूतगमन पर्व

इति

उद्योगपर्व

सेनोद्योगपर्व

प्रथम अध्याय

श्रीकृष्ण की पाण्डव-हितैषिता

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

पुरुषों में श्रेष्ठ नर और भगवान् को तथा वाग्देवी सरस्वती को नमस्कार करने के बाद जय नामक इतिहास अर्थात् महाभारत का प्रारम्भ करना चाहिये।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! अभिमन्यु के विवाहोत्सव के बाद कौरव और पाण्डव दोनों ही अत्यन्त प्रसन्नता से रात भर विश्राम कर सपरिवार वस्त्रों से सज कर महाराज विराट की सभा में गये।

अमूल्य मणिमुक्ताओं से मण्डित सुगन्धित मालाओं से पूर्ण सुन्दर बहुमूल्य आसनों वाली मत्स्य देशाधीश्वर महाराजा विराट की उस सभा में प्रथम माननीय राजा विराट तथा द्रुपद आ कर बैठे। उनके बाद अपने पिता वसुदेव जी के साथ श्रीकृष्ण और बलदेव दोनों भाई भी सभा में आये। राजा द्रुपद के समीप सात्यकि और बलदेव जी तथा मत्स्यराज के समीप श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर बैठे। द्रुपदराज के सब कुमार, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, साम्ब और अभिमन्यु आदि सब विराट-कुमारों के समीप बैठे। ये सब बल वीर्य और पराक्रम में अपने पिताओं का अनुकरण करते थे। द्रौपदी के पुत्रों सहित ये अमूल्य सिंहासनों पर जा कर बैठ गये। इस प्रकार सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित इन महारथियों से

पूर्ण विराट की सभा उस समय विमल तारागण से शोभित गगनमण्डल की तरह अत्यन्त मनोहर प्रतीत होती थी।

सभा में विराजमान राजागण विविध कथानक कहने सुनने के बाद श्रीकृष्ण जी के वचनों की प्रतीक्षा में कुछ काल के लिये मौन हो रहे। यह सभी भूपाल पाण्डवों के कार्य में सहायता करने के लिये बुलाये गये थे और यह चाहते थे कि, अब श्रीकृष्ण जी कुछ प्रस्ताव सदृश वचनों द्वारा हम लोगों को उपदेश करें। अस्तु, कुछ क्षणों के बाद आ कर श्रीकृष्ण जी ने सारगर्भित उपदेश करना प्रारम्भ किया, वे कहने लगे। हे राजाओं! आप सब लोगों को यह तो भलीभाँति मालूम ही है कि, महाराज युधिष्ठिर का सभी राजपाट शकुनि ने अपने छल प्रपञ्च से जुए में जीत लिया है और यह भी शर्त ठहरा ली है कि, आप लोग बारह वर्ष वन में जा कर निवास करें।

भला जिन पाण्डवों का रथ अग्नि, वायु, जल, स्थल आदि सभी स्थानों में बेरोकटोक आया जाया करता है; उन्हें क्या अपना राज्य इस शर्त्त को तोड़ कर स्वाधीन कर लेना कुछ कठिन था? नहीं, किन्तु उन्होंने सर्व-शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी अपनी सत्यप्रतिज्ञा को न तोड़ा और धर्म पर दृढ़ रहे। बारह वर्ष बराबर वनवास के असह्य क्लेशों को महात्माओं की तरह सहर्ष सहन कर, यह तेरहवाँ वर्ष भी जो अज्ञातवास का था, बिता दिया और आज आप लोगों के सन्मुख उपस्थित हैं।

देखिये! इन्होंने आज तक सेवकों की भाँति सब की आज्ञा का नतमाथ पालन किया है; किन्तु यह लोग अब यह चाहते हैं कि, हमें हमारा कुल क्रमागत राज्य पुनः लौटा दिया जावे। ऐसा करने से धर्मराज युधिष्ठिर और दुर्योधन इन दोनों ही का हित होगा। अतः आप लोग ऐसी सम्मति प्रदान करें जिससे धर्म की हानि न हो कर यशोलाभ हो और यह आप लोग मिथ्या न समझें कि, इन धर्मराज युधिष्ठिर को अधर्म से यदि इन्द्रासन भी दिया जावेगा तो ये उसे पैरों से ठुकरा देंगे।

धर्मपूर्वक यदि इन्हें एक ग्राम का भी राज्य दिया जावेगा तो यह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेंगे; किन्तु अधर्म से नहीं। हाँ, और यह बात तो आप सब भूपालों को मालूम ही है कि, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों का पैतृक राज्य का भाग अधर्म से छीन लिया है। आज यदि कौरव बाहु बल से पाण्डवों का राजपाट जीत लेते, तब हमें कुछ भी खेद न था; किन्तु यह बात तो हुई नहीं, बल्कि वीरता के प्रतिकूल इन लोगों ने छल कपट द्वारा पाण्डवों को अनेक असह्य कष्ट दिये हैं; जिनको इन्होंने सहर्ष सहन भी कर लिया है। यह सब कुछ होने पर भी धर्मराज युधिष्ठिर सर्वथा कौरवों का कल्याण ही चाहते हैं। वह यह नहीं चाहते कि, इस राजपाट के पीछे अपने बन्धु कौरवों से वैर बाँधे; किन्तु जो राज्य पाण्डवों ने अपनी वीरता तथा पराक्रम से अन्य राजाओं को जीत कर प्राप्त किया था, उसे ही कुन्ती और माद्री के पुत्र अब माँग रहे हैं। आह! पाण्डवों के बालपन में शत्रुरूप इन कौरवों ने उनके राज्य को छीनने के लिये और इनका सर्वनाश करने के लिये कैसे कैसे प्रपञ्च रचे थे! यह सब तो आप लोगों से छिपा नहीं है। अब इस समय चढ़े बढ़े कौरवों के लालच और युधिष्ठिर की धर्मशीलता तथा सत्य दृढ़ प्रतिज्ञा, पर दृष्टि डालते हुए तथा परस्पर के बन्धु-भाव का ध्यान रखते हुए आप लोग विचार करें और देखें कि, पाण्डव कितने सत्यप्रतिज्ञ तथा सहनशीलता से भरे हैं, जिन्होंने शक्ति-सम्पन्न होते हुए इस तेरह वर्ष के कठिन अरण्यवास के व्रत को पूर्ण किया है। आप लोगों के पृथक पृथक मत तथा सम्मिलित सम्मति को जानने के लिये ही मैंने इस विराट सभा का आयोजन किया है।

यदि इसके विरुद्ध कौरव पाण्डवों का राज्य न देवेंगे तो निश्चय ही अपनी मित्र-मण्डली सहित पाण्डव, कौरवों का संहार करने के लिये तैयार हो जावेंगे। यद्यपि यह पाण्डव संख्या में कौरवों से कहीं स्वल्प हैं; तथापि इनके अन्दर बल वीर्य पराक्रम अनल्प हैं। यह सब बात की बात में इस समस्त कौरव दल का संहार कर सकते हैं। अपने जन्म-सिद्ध अधिकार

को न पा कर, यह कौरवों का सर्वनाश करने के लिये अवश्य अनेक उपाय करेंगे। अभी तक आप सब लोगों को कौरवों का मन्तव्य नहीं मालूम है कि, इस विषय में दुर्योधन क्या करना चाहता है। अतएव आप लोग भी कुछ निश्चय रूप से अपनी सम्मति प्रकट नहीं कर सकते। क्योंकि विपक्षियों के विचारों के ज्ञात हो जाने के बाद ही अपने विचार निश्चित रूप से प्रकट किये जा सकते हैं। अतएव मेरी सम्मति में पाण्डवों की ओर से कौरवों के पास कोई मनुष्य अवश्य भेजना चाहिये जो धर्म्मात्मा, सदाचारी, कुलीन और चतुर हो। वह दूत बन कर इधर से जावे और इनकी ओर से कौरवों को जा कर समझावें और आधा राज्य देने के लिये उन्हें तैयार करें। श्रीकृष्ण जी के इन वचनों को सुन कर श्रीबलराम जी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और आगे अपने विचार प्रकट करने के लिये वे तत्पर हुए।

दूसरा अध्याय

श्रीबलदेव जी का मन्तव्य

श्रीबलदेव जी ने कहा—हे राजाओं! आप लोगों ने सारगर्भित श्रीकृष्ण जी के प्रस्ताव को सुना। मेरी सम्मति में यह प्रस्ताव धर्मराज और दुर्योधन दोनों ही के लिये हितकारी होगा। पाण्डव केवल आधे राज्य की प्राप्ति के लिये ही यत्न कर रहे हैं। दुर्योधन इनका आधा राज्य इन्हें दे कर हम लोगों के साथ सहर्ष सुखपूर्वक रह सकता है।

पाण्डवों को जब आधा राज्य प्राप्त हो जावेगा तब ये शान्ति से सब के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे। इससे राजा प्रजा सभी का कल्याण होगा। यदि शत्रुओं ने फिर भी दुर्व्यवहार किया तो उनका तथा प्रजा आदि सभी के लिये इसका फल बुरा होगा। दुर्योधन के मत के जानने तथा युधिष्ठिर के अभीष्ट को कौरवों से कहने के लिये, यदि कोई मनुष्य यहाँ से जावे, तो मेरी सम्मति में यह सब से अच्छा हो। ऐसा करने से सम्भव है कौरवों और पाण्डवों में शान्ति बनी रहे।

जो यहाँ से दूत बन कर जावे वह कौरवों में बलवान भीष्म, महाप्रतापी धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि, कर्ण और धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों के सन्मुख तथा नीति और शास्त्र में चतुर अन्य धर्मात्मा सेनापतियों तथा महारथियों के सन्मुख सभा में जा कर बड़ी नम्रता से कौरवेश्वर को प्रसन्न करे और इस सावधानी और चतुराई से दूतकर्म करे, जिससे कि, युधिष्ठिर को कार्य में सफलता प्राप्त हो।

जहाँ तक हो सके नम्रता ही से काम लेना चाहिये। कटु वचनों से कौरवों के क्रोधानल को भड़काना ठीक नहीं। क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं ही जुए में आसक्त थे। इसी कारण उनके राज्य को कौरवों ने जीत लिया। यदि उन्हें द्यूतकर्म से घृणा होती तो यह अनर्थ कभी न घटता। राज्य छिन जाने के बाद अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर, पाण्डवों ने वनवास के समय को पूरा कर लिया है।

युधिष्ठिर जुआ खेलना भली भाँति नहीं जानते थे। यह जान कर ही इनके मित्रों ने बहुत इनकार किया; किन्तु इन्होंने नहीं माना और द्यूत-चतुर शकुनि के साथ जुआ खेलने लगे। यद्यपि उस समय वहाँ पर दुर्योधन कर्ण आदि सैकड़ों ऐसे खिलाड़ी मौजूद थे, जिन्हें युधिष्ठिर दो चार छः पाँसों ही में हरा सकते थे; तथापि उन्होंने इनमें से किसी को भी अपने से विरुद्ध पक्ष में खेलने के लिये नहीं पुकारा। केवल शकुनि के साथ ही खेलना स्वीकार किया। अन्त में यह हुआ कि, युधिष्ठिर का पाँसा बराबर नीचा पड़ने लगा और वे अपनी हार होती देख कर, जोश में आ गये। इस कारण और भी मति ठिकाने न रही और राजपाट सभी गमा बैठे। अब भला बतलाइये इसमें बिचारे शकुनि का क्या दोष है? अतएव उचित यही है कि, यहाँ से एक दूत महाराज धृतराष्ट्र के पास भेजा जावे और वह वहाँ जा कर ऐसी नम्रता और मधुर भाषण से बातचीत करे, जिससे कि, दोनों पक्षों (कौरवों और पाण्डवों) में सन्धि हो जावे।

क्योंकि विनीत वचनों ही से दुर्योधन पाण्डवों की इच्छा पूरी कर सकेगा। इसलिये कौरव पाण्डवों में लड़ाई जैसे न ठने वैसा ही उपाय करना चाहिये। जहाँ तक हो सके मेल ही से काम करना चाहिये। दुर्योधन के लिये सन्धि का ही निमंत्रण भेजना उचित है। देखिये, जो काम मिल जुल कर किया जाता है वही परिणाम में मीठा होता है। बिना विचारे शीघ्रता से किसी काम को कर डालने में न्याय का गला प्रायः घुट जाया करता है। इस लिये खूब सोच समझ कर काम करना चाहिये।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! जब बलदेव जी का कथन समाप्त हुआ तब महावीर सात्यकी को उन पर बड़ा क्रोध आया और वह इनके प्रस्ताव की निन्दा करता हुआ बोला।

तीसरा अध्याय

सात्यकि का रोष

सात्यकि ने कहा—भाई बलदेव! सुनो—जो मनुष्य जैसा होता है वह बात भी वैसी ही कहता है। तुमने भी वैसी ही बात कही जैसे कि, तुम और तुम्हारा अन्तःकरण है।

संसार में शूर और कायर दोनों प्रकार के मनुष्य मौजूद हैं। मानव समुदाय के लिये यह दोनों ही पक्ष दृढ़ हैं।

जैसे एक ही वृक्ष की बहुत सी शाखाएँ फलती हैं और बहुत सी नहीं भी फलती, वैसे ही एक कुल में नपुंसक और शूर वीर दोनों का जन्म होना सम्भव है।

हे बलदेव! मैं कुछ तुम्हारे वाक्य की निन्दा नहीं कर रहा हूँ; बल्कि निन्दा मैं उन लोगों की कर रहा हूँ, जो लोग ऐसे कायर वचनों को सुन रहे हैं। बिना सभासदों की सम्मति या सङ्केत के यह कि

की सामर्थ्य है जो धर्मराज के अल्प दोष का भी निर्भय हो कर वर्णन कर सके। भला तुम्हीं बतलाओ एक जुआ न जानने वाले को कोई निमंत्रण दे कर बुलावे और चतुराई से उसे जीत लेवें तो क्या उसे कोई भी बुद्धिमान् धर्म्म-विजय कह सकता है? कदापि नहीं। जब कि धर्म्मराज द्यूत-क्रीड़ा नहीं जानते और उन्हें चतुर खिलाड़ियों ने घेर कर जीत लिया, तब क्या कहीं हम उसे धर्मविजय मान सकते हैं? हाँ, यह बात और है कि, कौरव या शकुनि आदि कोई भी, जिस समय धर्मराज अपने घर में भाइयों के साथ खेल रहे हों और वे लोग भी वहीं आ कर खेलने लगें, उस समय यदि धर्मराज को जीत लेवें तो वही धर्मविजय कहा जा सकता है; किन्तु यहाँ तो सब प्रतिकूल ही काम किये गये। बेचारे क्षात्र-धर्म-परायण धर्मराज को वहाँ बुलाया गया और कपट भरे पाँसों से जुआ खिलाया और हरा दिया गया। भला बतलाओ कहीं ऐसे नीच कर्मों से इन कौरवों का भला हो सकता है? बस कुछ नहीं, महाराज युधिष्ठिर अपने प्रतिज्ञानुसार वन-वास की अवधि पूरी कर लौट आये हैं और अब अपने पितामह के राज्य को वापिस लेना चाहते हैं। अब वे उस राज्य के पाने के अधिकारी हैं। ऐसी दशा में उन्हें दुर्योधन के सन्मुख जा कर हाँ हाँ और हें हें करने की या माथा नवाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तो यही कहूँगा कि, क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होने के कारण यदि राजा युधिष्ठिर अन्याय से भी राजलक्ष्मी पाने की इच्छा करें तो भी वह इससे कहीं अधिक न्याय-सङ्गत होगी कि, वे अपने प्रबल वैरियों से भीख माँगने जावें। यह कभी भी उचित नहीं है। वर्ष भर के अज्ञातवास को पूरा कर चुकने के बाद ही प्रकट होने वाले पाण्डवों के विषय में कौरवों का यह कहना कि, इन लोगों ने अज्ञातवास की अवधि से पहिले ही अपने को प्रकट कर दिया; केवल यही तात्पर्य रखता है कि, इन लोगों ने ऐसी ऐसी कठिन शर्तें भी पूरी कर लीं, अब अवश्य राज्य देना पड़ेगा। इस लिये कुछ न कुछ ऐसा दोष लगाया जाय, जिससे इन्हें राज्य फिर न मिल सके और स्वयं उसे हड़प

जावें। भीष्म, द्रोण और विदुर जी ने दुर्योधन को खूब समझाया बुझाया किन्तु 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरिञ्चि सम' सब कहना सुनना बेकार गया। भला वह क्यों सुनने लगा। वह तो मदान्ध हो कर पाण्डवों को राज्य देना ही नहीं चाहता; परन्तु कुछ चिन्ता की बात नहीं। हम लोग युद्ध में अपने तीक्ष्ण शरों द्वारा कौरवों के शरीरों को चलनी बना देंगे और क्षण भर ही में उनका घमंड नीचा कर देंगे।

यदि कौरवों के नमित मस्तक महात्मा धर्मराज के चरणों को न चूमें तो हमारी वीरता को धिक्कार है। याद रक्खो यदि कौरवों ने धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों को प्रणाम नहीं किया तो निश्चय वे अपने मन्त्रि-मण्डल सहित यमलोक के पथिक बनेंगे। जिस प्रकार वज्र के भयङ्कर वेग को पर्वत सहन नहीं कर सकते, उसी भाँति क्रुद्ध हुए युयुधान के वाणों को संग्राम में कौरव सहन न कर सकेंगे। गाण्डीवधारी अर्जुन और चक्र-धर श्रीकृष्ण के सन्मुख संग्राम में ऐसा कौन सा माई का लाल है जो डट सकेगा। भयङ्कर गदाधारी भीम तथा काल के समान प्रचण्ड नकुल और सहदेव के सन्मुख आ कर ऐसा कौन सा वीर है जो दो चार हाथ वीरता के दिखलावेगा। महाराज द्रुपद और विराट की विराट वीराम्बरा मूर्त्ति के सन्मुख कौन वीर आ सकता है।

अपने प्राणों को मोह रखने वाले किस वीर में यह शक्ति है कि, वह महावीर धृष्टद्युम्न के सन्मुख आ कर तलवार चला सके। पाण्डवों के समान ही बल वीर्य पराक्रम वाले द्रौपदी के पुत्रों का कौन इस पृथ्वी पर विपक्षी (शत्रु) बन कर सामना करेगा। भला यह तो बतलाइये कि, जिसे देवताओं ने भी न हरा पाया, ऐसे महाधनुर्धारी वीर अभिमन्यु के संग्राम में अवतीर्ण होने पर कौन अपने प्राणों को न्योछावर करने की शक्ति रखता है? प्रद्युम्न, साम्ब, गद आदि वीरों के धावे को सहन करने की सामर्थ्य रखने वाला एक आध ही वीर हमें कौरवदल में दिखला दीजिये। बस हम सब लोग दुष्ट दुर्योधन, प्रपञ्ची शकुनि आदि आततायियों को मार कर

पाण्डवों का राज्याभिषेक करेंगे। ऐसे नीच नराधमों के मारने में कोई दोष नहीं है। शत्रुओं के सन्मुख हाथ फैलाना और गिड़गिड़ाना धर्म के विरुद्ध और अयशस्कर है। इस लिये आप सब लोग सब तरह से श्री महाराज युधिष्ठिर के मनोरथों को पूरा करने के लिये तैयार हो जाइये और धर्मराज अपने राज्य को प्राप्त करें। या तो धर्मराज युधिष्ठिर अभी राजसिंहासन पर बैठेंगे या आज सब कौरव मृत्युशय्या पर सदा के लिये सो जावेंगे।

चौथा अध्याय

राजा द्रुपद की सम्मति

राजा द्रुपद ने कहा—हे महाबाहो! जैसा आप कह रहे हैं वैसा ही होगा, क्योंकि दुर्योधन नम्रता से राज्य नहीं देगा। धृतराष्ट्र अपने पुत्र के स्नेह में आ कर उसकी ही तरफ़दारी करेंगे। भीष्म और द्रोण भी उसी भाँति दीनता से हाँ जी हाँ जी किये बिना न रहेंगे और कर्ण और शकुनि जो महामूर्ख हैं उनके प्रति तो कुछ कहना ही नहीं है। हाँ, बलदेव जी ने जो सम्मति प्रदान की है, नीति-संपन्न मनुष्य को पहिले उसीके अनुसार कार्य करना चाहिये; किन्तु इस समय उनकी यह सम्मति अनुचित ही ठहरेगी। दुर्योधन अत्यन्त नीच प्रकृति का मनुष्य है। इस लिये उसके साथ नम्रता का व्यवहार ठीक नहीं। क्योंकि वहाँ नम्रता से कार्य में सफलता प्राप्त होना दुर्लभ है।

पापात्मा दुर्योधन के साथ जो नम्रता का व्यवहार करे वह मनुष्य मानों गधे के साथ कोमलता और गौ के साथ कठोरता तथा निर्दयता से काम लेता है। वह पापी दुर्योधन विनीत वचनों से यही समझेगा कि, इन लोगों में शक्ति तो है नहीं; अतएव यह नम्रता का व्यवहार कर रहे हैं। नीच-

प्रकृति मनुष्य विनम्र मनुष्यों को देख कर समझ लेते हैं कि, बस अब काम बन गया। इस खुशामद में कुछ शक्ति तो है नहीं। इसे मार लेना कितनी बड़ी बात है। किन्तु हम लोग अवश्य कोमलता से काम लेंगे और साथ में अपने मित्र तथा सहायक राजाओं के पास दूत भी भेजेंगे। ताकि युद्ध के लिये वे हमें सेना आदि की सहायता प्रदान करें, क्योंकि थोड़ी नम्रता से ये लोग और भी फूल कर कुप्पा हो जावेंगे। हे राजन्! शीघ्रगामी दूतों को केकय-देश-पति तथा शाल्व, धृष्टकेतु, जयत्सेन आदि राजाओं के पास भेजना चाहिये। यह तो सिद्ध ही है कि, दुर्योधन भी अपनी सहायतार्थ राजाओं के पास अपने दूतों को भेजेगा और जो प्रथम अपने दूतों से सहायता प्राप्त करने का संदेश उनके पास भेजेगा, उसीके वचनबद्ध हो कर वे राजा लोग सहायक हो जायँगे। अतएव दूतों को जहाँ तक हो सके सब से प्रथम राजाओं के पास भेज देना चाहिये, जिससे वे लोग हमारी सहायता करने के लिये वचनबद्ध हो जावें। समय बहुत थोड़ा है। काम अधिक है। अतएव अब हमें शीघ्रता करनी चाहिये।

महाराज शल्य के तथा उनके मित्र अन्य अन्य राजाओं के पास भी दूत भेजिये। पूर्व-सागर-निवासी भगदत्त के पास भी अपने चर भेजिये। उग्र, हार्दिक्य, अन्धक, दीर्घप्रज्ञ तथा बलवान् रोचमान आदि राजाओं के पास शीघ्रातिशीघ्र दूत भेजिये। राजा बृहन्त, सेनाबिंदु, सेनजित्, मुञ्जकेश, बाल्हीक, सुवास्तुक, चित्रवर्मा, प्रतिविन्ध्य, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथी पौरव को भी अपना संदेशा भेजे तथा शक, पल्हव, दरद के भूपाल, सुरारि नदी तट निवासी नरपाल, कर्णवेष्ट वीर नील, वीरधर्मा, दुर्जय दन्तवक्र, जनमेजय, आषाढ़, रुक्मी, वायुवेग, राजा पूर्वपाली, देवक, एकलव्य, कारूषक नामी राजा, महाशूर क्षेमधूर्त्ति, काम्बोज देश के राजा, पश्चिम देशीय राजा तथा जयत्सेन, काशिराज, पञ्चनद के भूपाल, पर्वतीय राजा, जानकि, अतिमत्सक, सुशर्मा, मणिमान, तुवड, दण्डधोर, धृष्टकेतु, बृहत्सेन, अपराजित निषाद, श्रोणिमान, वसुमान्, बृहद्बल, बाहूराज, समुद्रसेन के पुत्र उद्भव, क्षेमक, राजा वाटधान,

वीर श्रुतायु, दृढ़ायु, शाल्वपुत्र, युद्धप्रिय कलिङ्ग देशी राजकुमार, इन सब राजाओं के पास शीघ्र ही संदेशा भेजिये। यही मेरी सम्मति है।

हे राजन्! तुम्हारे सन्मुख जो यह विद्वान् ब्राह्मण देवता हैं, यह मेरे पूज्य पुरोहित हैं। इनसे जो कुछ संदेशा धृतराष्ट्र के लिये कहना हो, कह कर इन्हें वहाँ भेज दीजिये तथा दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य आदि के लिये जो कुछ भी अलहदा अलहदा संदेश, भेजना हो, वह सब इन्हें समझा दीजिये। यह सब कार्य ठीक ठीक कर लावेंगे।

पाँचवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का मत

श्रीकृष्ण ने कहा—सोमक-वंश-मणि राजा द्रुपद ने जो सम्मति प्रदान की है वह अत्यन्त उत्तम है। वास्तव में इनकी सम्मति महाराज युधिष्ठिर के कार्य को सफलता प्राप्त करावेगी। बुद्धिमान् को उचित भी यही है कि, वह जहाँ तक हो सके नीति का उल्लंघन न करे। नीति के अनुसार कार्य करना ही बुद्धिमानी है। जो नीति विरुद्ध अन्याय से कार्य करता है वही महामूर्ख कहलाता है।

हम सब राजाओं के लिये कौरव और पाण्डव दोनों ही एक से हैं। उनके स्वच्छन्द कार्यों में हमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। हम सब लोग तो विवाह में बुलाये हुए उनके पाहुने बन कर यहाँ आये हैं। विवाहकार्य सम्पन्न हो जाने पर सहर्ष अपने अपने घरों को चले जावेंगे। आप विद्यावयोवृद्ध हैं। हम सब आपकी शिष्यश्रेणी में हैं। इसमें थोड़ा सा भी सन्देह नहीं है। धृतराष्ट्र भी आपको सन्मान दृष्टि से देखते हैं तथा द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के मित्र हैं। अतएव यह सब आपको ही अधिकार है कि, आप पाण्डवों की भलाई के लिये

जैसा चाहें वैसा संदेशा धृतराष्ट्र के पास भेजें। जो आप निश्चय कर देंगे वह सब हम लोगों को सर्वथा स्वीकार होगा। यदि आपके विनय तथा नीतिपूर्ण वचनों के अनुसार कौरव और पाण्डवों में शान्ति स्थित रहे तो सब से अच्छा है। यह जो भविष्य में बन्धुसंहार होने वाला है वह सब शान्त हो जावेगा। किन्तु अज्ञानवश यदि दुर्योधन अपने घमंड से सन्धि करने की इच्छा न करे और आपके प्रस्ताव की उपेक्षा कर देगा तो वह सब से पूर्व अन्य राजाओं के पास दूत भेजेगा और उन सब के सहायतार्थ आ जाने पर हम लोगों को भी बुलावेगा; किन्तु उस मूर्ख दुर्योधन को यह पता नहीं है कि, जब गाण्डीवधारी अर्जुन संग्राम में क्रुद्ध होगा, तब उसे अपने मन्त्रियों सहित यमराज के मन्दिर का पथिक बनना पड़ेगा।

वैशम्पायन जी कहने लगे—इसके बाद राजा विराट् ने सबन्धु बान्धव श्रीकृष्ण का सन्मान कर उनको द्वारकापुरी जाने के लिये विदा कर दिया। जब श्रीकृष्ण द्वारका चले गये, तब युधिष्ठिर और विराट तथा अन्य राजाओं ने युद्ध की तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कीं तथा सब देश के राजाओं के पास निमंत्रण भेजे। महाराज युधिष्ठिर के इस निमंत्रण को पा कर, राजा लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आने लगे। इस प्रकार दुर्योधन ने जब पाण्डवों के यहाँ बड़े बड़े राजाओं की भीड़ तथा सेना की सन-सनाहट सुनी, तब उसने भी अपने मित्र महीपालों को बुलवाया।

हे राजन्! जिस समय दोनों पक्ष की सहायता के लिये ससैन्य राजाओं का आना प्रारम्भ हुआ, उस समय यह पृथ्वी डगमगाने लगी। इसके बाद बुद्धिमान् वृद्ध राजा द्रुपद ने पाण्डवों की सम्मति ले कर अपने वृद्ध पुरोहित को कौरवों के पास भेजने का निश्चय किया।

छठवाँ अध्याय

पुरोहित जी को सूचना

राजा द्रुपद ने पुरोहित जी को बुलाया और कहा—महाराज! सुनो! सब भूतों में प्राणि श्रेष्ठ हैं और प्राणियों में बुद्धि से अपनी जीविका करने वाले श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमानों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में द्विजाति श्रेष्ठ हैं। द्विजों में विद्वान् उत्तम हैं और विद्वानों में सिद्धान्त-ज्ञाता विद्वान् सब से उत्तम हैं तथा सिद्धान्त के अनुकूल तत्त्वबोध हो जाने पर उत्तम आचरण करने वाले श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मवादियों का तो आसन उनसे भी अधिक कहीं चढ़ा बढ़ा है। सिद्धान्त-तत्त्व-दर्शी महात्मा विद्वानों में आप सब से अधिक विद्या और बुद्धि में उत्तम हैं। महाराज! आप शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान बुद्धिमान हैं। आपसे यह तो छिपा ही नहीं है कि, दुर्योधन का पाण्डवों के साथ कैसा व्यवहार है। धृतराष्ट्र के सब कुछ जानते बूझते हुए भी कौरव बराबर पाण्डवों के साथ प्रपञ्च करते चले आ रहे हैं।

यद्यपि विदुर धृतराष्ट्र को बराबर समझाते रहते हैं; तथापि अपने पुत्रों की तरफदारी करते हैं। देखिये, शकुनि ने उन्हें जान बूझ कर चतुराई से जुआ खेलने के लिये बुला ही तो लिया। जिन कौरवों ने क्षत्रियवृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाले सीधे साधे महाराज युधिष्ठिर को जुआ में चतुर शकुनि के द्वारा हरा दिया और उनका राजपाट सब स्वाधीन कर लिया, सब वे कौरव अब सीधी तरह पाण्डवों को राज्य नहीं देंगे; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस लिये अब आपको मैं वहाँ भेज रहा हूँ और यह चाहता हूँ कि, आप वहाँ जा कर महाराज धृतराष्ट्र को धर्मशास्त्रानुकूल वचनों से समझावें तथा कौरवों के वीर योद्धाओं के मन फेरने का प्रयत्न करें। आपकी सहायता तथा आपके प्रस्ताव का अनुमोदन करने वाले विदुर जी वहाँ पर मौजूद हैं।

हे महाराज ! आपको चाहिये कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महारथियों और दुर्योधन के मन्त्रियों में भेद पैदा कर दें। जिस समय कौरव-दल में मुख्य योद्धाओं और मन्त्रियों में भेद पड़ जावेगा, उस समय दुर्योधन को उनके एकत्र संघटन करने का एक और भी काम बढ़ जावेगा। जितना समय दुर्योधन को इस संगठन कार्य में लगेगा उतने ही समय में वीर पाण्डव अपनी सेना और द्रव्य आदि का प्रबन्ध भली प्रकार कर लेंगे। कौरवों के उत्तम योद्धा जब फिर जावेंगे, तब वे अत्यन्त उदासीन हो जावेंगे और आपके वहाँ रहते रहते शीघ्र सेना का संगठन न कर सकेंगे।

पुरोहित जी! आपके वहाँ जाने से मेरा एक और भी विशेष कार्य बनता है और वह यह है कि, संभव है राजा धृतराष्ट्र आपके संसर्ग से सुमति प्राप्त कर लें। क्योंकि सच्चे-धर्मात्माओं के सत्संग से बड़े बड़े कुमति के मनुष्यों का भी उद्धार हो जाता है। आप धर्मनिष्ठ हैं। वहाँ के सज्जन मनुष्यों में पाण्डवों पर पड़े हुए सङ्कटों का प्रकाश डालना। पूर्वजों के कुलधर्मों का वर्णन करना। इससे मुख्य मुख्य मानवों के हृदय भी कौरवों से फिर जावेंगे। यह मुझे आपसे पूरा भरोसा है। भगवन् ! आप कौरवों से भयभीत न हों। भला वेदवेत्ता ब्राह्मणों को ऐसी कौन सी शक्ति है जो भयभीत कर सके। इस लिये आप पवित्र लग्न और विजय मुहूर्त्त में पाण्डवों के दूत बन कर हस्तिनापुर शीघ्र ही पधारें।

वैशम्पायन ने कहा—इस प्रकार राजा द्रुपद से सब सन्देशों को समझ-बूझ कर, पुरोहित अपने योग्य शिष्यों को साथ ले कर, पुण्य मुहूर्त्त में हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

सातवाँ अध्याय

अर्जुन और दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण से साहाय्य याचना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! द्रुपद ने जब अपने पुरोहित जी को दूत बना कर हस्तिनापुर भेज दिया, तब पाण्डवों ने अन्य अन्य राजाओं के पास भी दूत भेजे और श्रीकृष्ण जी को बुलाने के लिये स्वयं अर्जुन गये। जिस समय श्रीकृष्ण और बलराम जी अनेक वृष्णियों और यादवों के साथ द्वारका में पहुँच गये, उस समय दुर्योधन ने अपने दूतों को भेज कर पाण्डवों के यहाँ का सब समाचार भलीभाँति जान लिया था। जब दुर्योधन ने अपने विश्वस्त गुप्तचरों द्वारा यह जान लिया कि, पाण्डव अपना राज्य लेने के लिये संग्राम करने को तैयार हो रहे हैं, तब वह वेगवान् घोड़े पर सवार हो कर और कुछ थोड़ी सी सेना को साथ ले कर द्वारका को गया। जिस दिन दुर्योधन द्वारका जा रहा था, उसी रोज़ अर्जुन ने भी श्रीकृष्णचन्द्र जी को युद्ध का निमंत्रण देने के लिये द्वारका की ओर प्रस्थान किया था।

अतएव दोनों वीरों ने एक ही दिन द्वारका में प्रवेश किया। जिस समय अर्जुन और दुर्योधन राजमहल में गये, उस समय श्रीकृष्ण जी सो रहे थे। सब से पहिले दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के शयनागार में प्रवेश किया और वह भगवान् कृष्ण के सिरहाने की ओर एक सिंहासन पर बैठ गया ; किन्तु उदारमना अर्जुन श्रीकृष्ण के शयनागार में गया और बड़े विनीत भाव से हाथ जोड़ कर भगवान के पाँयत की ओर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद जब श्रीकृष्ण जागे, तब उन्होंने अपने सन्मुख अंजलिबद्ध खड़े हुए अर्जुन को देखा तथा पीछे सिरहाने सिंहासनासीन दुर्योधन को देखा। देखते ही भगवान् कृष्ण ने दोनों वीरों का सत्कार किया और कुशल प्रश्न के बाद पूँछा कि, कहो भाई ! आज आप लोगों ने यहाँ आने का क्यों कष्ट किया ? तब प्रथम दुर्योधन ने हँस कर कहा—

हे माधव! भावी युद्ध में आप हमें सहायता प्रदान करें। क्योंकि आपके लिये मैं और अर्जुन दोनों ही बराबर हैं। जैसा स्नेह आपका अर्जुन पर है वैसा ही मुझ पर होना उचित है तथा मैं आज आपके यहाँ भी अर्जुन से पहिले आया हूँ। इसलिये आपको मेरा पक्ष लेना चाहिये। क्योंकि सज्जन लोग प्रथम आने वालों की प्रार्थना सब से प्रथम ही स्वीकार करते हैं। आप सज्जन-शिरोमणि हैं। आपको भी सज्जनों की मर्यादा का पालन करना चाहिये।

श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे दुर्योधन! तुम सचमुच अर्जुन से पहिले आये हो; किन्तु मैंने तुम्हें अर्जुन से पहिले नहीं देखा है। तुम अर्जुन से पहिले यहाँ आये हो और अर्जुन को मैंने तुमसे पहिले देखा है; इस कारण अर्जुन और तुम दोनों को मैं सहायता दूँगा। शास्त्रों की आज्ञा है कि, बालकों की प्रार्थनाओं को सब से पहिले पूरा करना चाहिये। इस लिये पहिले अर्जुन की भिक्षा को पूरा किया जावेगा। मेरे समान ही दृढ़ बलवान वीर मेरे एक अरब गोप हैं उनका दूसरा नाम नारायण भी है। वे सब संग्राम में लड़ सकते हैं।

प्रचण्ड पराक्रमी वे गोप योद्धा तुम दोनों में से किसी एक की ओर लड़ने को खड़े होंगे और एक तरफ़ मैं रहूँगा; किन्तु आप लोग यह भली भाँति सोच समझ लेवें कि, मैं शस्त्रधारण नहीं करूँगा। कहो भाई अर्जुन! प्रथम तुम्हारी अभिलाषा पूरी होनी चाहिये। अतः इन दोनों में जो तुम्हें ठीक मालूम पड़े वही तुम माँग लो।

श्रीकृष्ण की इस बात को सुन कर, अर्जुन ने एक अरब सशस्त्र योद्धाओं को त्याग कर केवल निःशस्त्र श्रीकृष्ण को स्वीकार कर लिया। अर्जुन जानता था कि, भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुसंहारक श्रीनारायण की मूर्त्ति हैं। वे लीला मात्र को मानव शरीर धारण किये हुए हैं। अतः इनका त्याग नहीं करना चाहिये। इनके मेरे पक्ष में होने पर मुझे इस सशस्त्र सेना की कोई

आवश्यकता नहीं है। तब दुर्योधन ने उनकी समस्त सेना को माँग लिया।

हे राजन्! दुर्मति दुर्योधन ने समझा कि, अब की बार मैंने खूब हाथ साफ़ किया। लाखों योद्धाओं की सहायता ले कर भी मैंने श्रीकृष्ण को सेनारहित कर डाला। इस खुशी में दुर्योधन ने बड़ी शीघ्रता के साथ श्रीकृष्ण से अपने साथ समस्त सेना ले जाने की अनुमति माँगी और दल बल सहित श्रीबलदेव जी के पास गया। वहाँ जा कर उसने उनसे अपने शुभागमन का कारण बतलाया।

उसकी बातें सुन कर श्रीबलदेव जी ने कहा—हे दुर्योधन! तुम्हें यह मालूम है कि, मैंने राजसभा में श्रीकृष्ण जी से तुम्हारे विषय में क्या कहा था ; मैंने कहा था कि, हमारा और तुम्हारा सम्बन्ध कौरवों और पाण्डवों से एक सा ही है ; किन्तु उस समय श्रीकृष्ण जी ने इस मेरे कथन का कुछ भी आदर नहीं किया। वास्तव में बात यह है कि, मैं श्रीकृष्ण के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता तथा तुम्हारा सार्थी बन कर श्रीकृष्ण का सामना करूँ यह भी असम्भव है। अतएव मैंने यह निश्चय किया है कि, मैं इस युद्ध में न तो तुम्हें सहायता दूँगा और न अर्जुन को ही सहायता दूँगा। हे दुर्योधन! तुम भरतवंश में अत्यन्त प्रतिष्ठित वीर हो। इस लिये अब अपने घर जाओ और युद्ध की तैयारियाँ करो।

श्रीवैशम्पायन बोले—जब श्रीबलदेव जी की ऐसी उदासीनता दुर्योधन ने देखी, तब वह अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और बलदेव के हृदय से चिपट कर मन में सोचने लगा कि, अब क्या है मैदान साफ़ उधर श्रीकृष्ण निःसैन्य हो गये। इधर श्रीबलराम जी दोनों ओर से उदासीन हैं। अब संग्राम में मेरा विजय ही विजय है।

बलदेव से विदा हो कर दुर्योधन कृतवर्मा के पास गया और वहाँ से उसे एक अक्षौहिणी सेना प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रबल सेनापति

हो कर दुर्योधन अपने मित्रों को प्रसन्न करता हुआ हस्तिनापुर को लौट गया।

जब देखा कि, दुर्योधन चला गया तब भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! यह तो बतलाओ तुमने जो मुझे माँगा है, सो मुझे ले कर तुम क्या करोगे? संग्राम में लड़ने वाले योद्धाओं का संग्रह करना चाहिये। जब तुम सुन चुके थे कि, मैं शस्त्रग्रहण नहीं करूँगा, तब तुमने मुझे किस लिये स्वीकार किया। अर्जुन ने कहा—महाराज! इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, आप अकेले ही सब शत्रुओं का संहार कर सकते हैं और मैं भी अकेला इन सब शत्रुओं के लिये पर्याप्त हूँ; किन्तु आप संसार में महा-यशस्वी हैं। इसलिये यह सब कीर्त्ति आपको ही प्राप्त होगी। उसी प्रकार मैं भी यश का चाहने वाला हूँ। इस कारण समस्वभाव होने के कारण मैंने आपको स्वीकार किया है। मैंने बहुत दिनों से यह विचार अपने मन में निश्चय कर लिया था कि, आप कभी न कभी मेरा सारथ्य स्वीकार करेंगे। अतएव अब इससे शुभ अवसर मेरे इस मनोरथ पूर्ण होने का और कौन सा हो सकता है। अब समय है, आप मेरे सारथी बनें। यह सुन कर, श्रीकृष्ण ने कहा कि, हे अर्जुन! तुम जो मुझसे आशा रखते हो सो ठीक ही है। मैं अब तुम्हारा सारथ्य अवश्य स्वीकार करूँगा तथा यही शुभ कामना करता हूँ कि, तुम्हारे सब कार्य सफलता से हो जावें।

श्री वैशम्पायन जी बोले—भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों को सुन कर अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य मुख्य योद्धाओं के साथ धर्मराज युधिष्ठिर के समीप लौट आये।

आठवाँ अध्याय

दुर्योधन की कार्यपटुता

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! जिस समय महारथी शल्य ने पाण्डवों के दूत द्वारा सन्देशा सुना, तब वह अपने वीर पुत्रों सहित सेना ले कर तुरन्त ही युधिष्ठिर के पास जाने के लिये घर से चल दिया। हे राजन्! उस राजा की सेना का विस्तार आधे योजन का था। महारथी शल्य एक अक्षौहिणी सेना का पालन पोषण करता था। उसकी सेना में बड़े बड़े महारथी योद्धा थे। उसकी सेना के असंख्य सेनापति विविध आभूषणों तथा कवचों से शोभायमान हो रहे थे। उन वीर योद्धाओं के शरीर में स्वदेशी आभूषण और दुर्भेद्य कवच बड़े सुन्दर प्रतीत होते थे। इस प्रकार असंख्य सेना द्वारा प्राणियों के उद्वेग को बढ़ाता हुआ तथा बीच बीच में विश्राम लेता हुआ राजा शल्य जहाँ पाण्डव शिविर डाले पड़े थे वहाँ जाने लगा।

इतने में कौरव दल के गुप्तचरों ने दुर्योधन को शल्य का दलबल सहित पाण्डवों के यहाँ आगमन कह सुनाया। सुन कर दुर्योधन स्वयं ही शल्य का स्वागत करने के लिये अग्रसर हुआ। उस समय शल्य के स्वागत के लिये दुर्योधन ने खूब द्रव्य खर्च किया। राह में अनेक विचित्र विश्राम भवन बनवाये, जिनमें अनेक सुन्दर क्रीड़ास्थान बने हुए थे। महाराज शल्य के भोजन का अति उत्तम प्रबन्ध करवाया गया था। अनेक कूप और बावड़ियाँ और फव्वारे लगवाये और खुदवाये गये थे। राजा शल्य जहाँ विश्राम करता था, वहाँ वहाँ उसे सब राजसी सामग्रियाँ राज्य के स्वागतकारी मन्त्रियों द्वारा प्राप्त होती थीं। चलते चलते शल्य ने दूसरे सभामन्दिर में जा कर विश्राम किया, जहाँ पर विविध उपभोगों का भोग कर शल्य को बड़ी प्रसन्नता हुई।

उस समय के सुन्दर उपभोगों से तृप्त हो कर, महाराज शल्य अपने सम्मुख इन्द्र को भी तुच्छ समझने लगा और इस सभा-निर्माण की विचित्र कारीगरी को देख-कर, उसने महाराज युधिष्ठिर के सेवकों से बार बार यही पूँछा कि, वे कौन से कारीगर हैं कि, जिन्होंने ऐसे ऐसे सुन्दर देवमन्दिरों का निर्माण किया है। उन कारीगरों को शीघ्र ही बुलाओ। मेरी इच्छा है कि, मैं उन्हें कुछ इनाम दूँ और यह सब काम श्रीमहाराज युधिष्ठिर के सम्मुख ही होना चाहिये। मेरी इच्छा है कि, वे भी इस बात का अनुमोदन करते जावें। वह स्थान सभा-मन्दिर आदि कुछ पाण्डवों के बनवाये हुए तो थे ही नहीं। साथ ही वहाँ दुर्योधन के गुप्तचर मौजूद थे। महाराज शल्य की इन बातों को सुन सुन कर वे बड़े आश्चर्य सहित सब बातें दुर्योधन को जा कर बतलाते जाते थे। दुर्योधन ने, जो कि उसी सभामन्दिर में छिपा हुआ था जब यह भली भाँति जान लिया कि, इस समय महाराज मेरी सेवा से इतने प्रसन्न हो रहे हैं कि, यदि इस समय इनका प्राण भी माँगा जावे, तो भी यह नाहीं न करेंगे, तब वह निकल पड़ा और उसने अपने मामा शल्य के दर्शन किये।

जब महाराज शल्य ने दुर्योधन को वहाँ देखा, तब समझ लिया कि, यह सब सन्मान दुर्योधन ने ही किया है। अतः अत्यन्त प्रसन्न हो कर, शल्य ने कहा—हे दुर्योधन! मैं तुम्हारी इस विचित्र सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इस लिये जो तुम चाहो मुझसे माँग सकते हो। राजा शल्य की इस बात को सुन कर, दुर्योधन ने कहा—हे मामा जी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सत्यवाणी तथा वर द्वारा मुझे कृतार्थ करना चाहते हैं, तो आप मेरी सम्पूर्ण सेना के प्रधान नायक बन जावें।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! दुर्योधन की इस विनय को शल्य ने स्वीकार कर फिर कहा कि, हे दुर्योधन! बतलाओ और क्या तुम्हारा काम करूँ? किन्तु इसके बाद दुर्योधन ने कहा कि, महाराज! मेरी समझ में

आपने मेरा सब काम पूरा कर दिया। इस लिये अब और मुझे कोई दूसरी इच्छा नहीं है।

इसके बाद शल्य ने कहा—अच्छा दुर्योधन! अब तुम जाओ। मैं यहाँ से धर्मराज युधिष्ठिर के दर्शन करने जाऊँगा। मैं शीघ्र ही युधिष्ठिर के दर्शन कर लौट आऊँगा। क्योंकि इस समय मुझे उनका दर्शन अवश्य ही करना है। यह सुन कर दुर्योधन ने फिर कहा कि, हे महाराज! कृपा कर धर्मराज के दर्शन कर के शीघ्र ही लौटियेगा। ऐसा न हो कि, आप अपने दिये हुए वरदान को भूल जावें। हम सब लोगों का जय पराजय आप ही के अधीन है।

शल्य ने कहा–हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। यह कह कर दुर्योधन और शल्य प्रेम से मिले भेंटे। तदनन्तर दुर्योधन अपने घर गया और शल्य भी धर्मराज युधिष्ठिर से इस दुर्योधन की विचित्र सेवा का वर्णन करने के लिये चल दिये। शल्य विराटनगर के उपलव्य नामक स्थान पर पाण्डवों की छावनी में पहुँचे और पाण्डवों का दर्शन किया। वहाँ पहुँचते ही पाण्डवों के किये हुए अतिथिसत्कार को स्वीकार किया और कुशल प्रश्न पूँछते पूँछते महाराज युधिष्ठिर के गले लिपट कर मिले। वे भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि को छाती से लगा कर आसन पर बैठ गये और कहने लगे कि, हे राजन्! आप कुशल से तो हो? आपने वनवास के सङ्कटों को सपरिवार सहर्ष भोग कर समाप्त कर दिया—यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। अज्ञात-वास जो एक वर्ष भर का था वह भी आपने नियमपूर्वक समाप्त किया। राज्यभ्रष्ट हो कर सुख प्राप्त होना अत्यन्त ही दुर्लभ है। किन्तु अब कुछ घबराने की बात नहीं है। वह समय शीघ्र ही आने वाला है कि, जब जिन कौरवों के कारण आपने इन महासङ्कटों को भोगा है, उन सब शत्रुओं का संहार कर आपको राज्यलक्ष्मी का अत्यन्त दुर्लभ सुख प्राप्त होगा। हे युधिष्ठिर! आप सब संसार के तत्व को जानते हैं। आपके पास लोभ का काम नहीं और अब भी आप अपने प्राचीन ऋषियों

के क्षमा दया आदि गुणों का पालन करें। आपका अवश्य अ अपने होगा। आपकी धर्मनिष्ठा से परलोक पर आपका पूरा अधिकार ण को साधु सज्जन और ब्राह्मणों का सदा आप पालन करते रहते हैं तथा द्वार लोकों के साक्षी धर्मों को जानते हैं। हे युधिष्ठिर! आपके लिये बार बार धन्यवाद है कि, जो आपने अपनी दृढ़ सत्य प्रतिज्ञाओं से इन महान सङ्कटों को तृण तुल्य समझ कर सहर्ष सहन कर लिया। अनेक धर्माचरणों से युक्त आप सरीखे विद्वानों के दर्शन कर, मैं अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—हे प्रभो! इन सब बातों के हो जाने पर राजा शल्य ने राजा दुर्योधन का समागम और उनकी उस शुश्रूषा तथा अपने वरदान देने का सब हाल कहा। युधिष्ठिर ने भी शल्य से यह सब हाल सुन कर कहा कि, हे राजन्! आपने अपनी अन्तरात्मा से प्रसन्न हो कर जो दुर्योधन के लिये वर प्रदान किया सो सब अच्छा ही किया। किन्तु एक काम मैं भी आपसे करवाना चाहता हूँ और वह आपके लिये कुछ कठिन नहीं है। क्योंकि आप अकर्त्तव्य के भी करने में समर्थ हैं। सुनिये मेरा कार्य यह है कि, जिस समय अर्जुन और कर्ण दोनों संग्राम भूमि में युद्ध के लिये उपस्थित हों उस समय कर्ण के सारथी आप रहें और अर्जुन की रक्षा करें। यदि आप मुझसे कुछ भी स्नेह रखते हैं तो आपको मेरा यह काम अवश्य ही करना चाहिये। प्रिय अर्जुन की रक्षा करने के लिये आप कर्ण के उत्साह को भङ्ग करते रहें। हे राजन्! यद्यपि यह अकर्त्तव्य है तथापि आपको मैं स्नेहवश इस कार्य में नियुक्त करता हूँ।

यह सुन कर शल्य ने कहा—हे राजन्! सुनो। परमेश्वर आपका कल्याण करें। आप जो कर्ण के उत्साह को भङ्ग करने के लिये मुझे कह रहे हैं सो मैं उसका सारथि अवश्य हो जाऊँगा। क्योंकि वह मुझे श्रीकृष्ण के समान पूज्यदृष्टि से देखता है। जिस समय वह संग्रामभूमि में लड़ने के लिये चलेगा, उस समय मैं अवश्य ही उसके विरुद्ध उत्साह एवं शक्ति को भंग करने वाले वचन कहूँगा। ऐसा करने से उसकी शक्ति नष्ट

आपने साह भ्रष्ट हो जावेगा और वह सुख से अर्जुन का वध्य हो जावेगा। इच्छा.स्य ही आपके स्नेह से इस कार्य को करूँगा। आप निश्चिन्त रहें।

। तक नहीं, बल्कि जहाँ तक संग्राम समय में आपका कल्याण मुझसे हो सकेगा मैं अवश्य ही करूँगा। हे राजन्! आपने जो दुःख द्रौपदी के साथ द्यूतसभा में प्राप्त किया है वह सब कार्य इस दुष्ट कर्ण का ही था। आपको जटासुर और कीचक से अत्यन्त क्लेश प्राप्त हुए तथा दमयन्ती की तरह द्रौपदी को भी बड़ी बड़ी आफ़तों का सामना करना पड़ा है। हे वीर शिरोमणे! इन सब क्लेशों को याद रक्खो। परिणाम अत्यन्त सुखदायक होगा। आप अपने मन में ज़रा भी क्रोध या खेद न करें। जो कुछ भी होता है वह सब विधि का विधान है। उसमें किसी का कुछ चारा नहीं। दुःखों को सहर्ष सहन कर लेने की महात्माओं ही में शक्ति होती है और क्लेश महात्माओं को हुआ ही करते हैं। देखो राजन्! देवताओं को भी तो अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। हे धर्मराज! सुना जाता है, देवराज इन्द्र ने भी शची समेत अनन्त क्लेशों को भोगा है।

नवाँ अध्याय

इन्द्र-वृत्रासुर-युद्ध

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे राजेन्द्र! देवराज इन्द्र ने भी शची-समेत अनेक भयङ्कर दुःखों को भोगा था; यह आपने कहा है। कृपया इसकी कथा विस्तार से कहिये। शल्य ने धर्मराज की इस अभिलाषा को देख कर उस प्राचीन कथानक को कहना प्रारम्भ किया, जिसमें इन्द्र द्वारा अनेक कष्टों के भोगे जाने का वर्णन था।

पूर्वकाल में महातपस्वी देवताओं में श्रेष्ठ त्वष्टा नामक एक प्रजापति हुए हैं। उनका और इन्द्र का किसी कारणवश बैर बँध गया था। अतएव इन्द्र

के वैरनिर्यातन के लिये त्वष्टा ने एक त्रिशिर नामक पुत्र उत्पन्न किया। दुर्धर्ष तेजा विश्वरूप उस त्रिशिर ने इन्द्रपदवी लेने की इच्छा प्रकट की। त्रिशिर के सूर्य अग्नि और चन्द्रमा के समान अत्यन्त भयङ्कर तीन मुख थे। वह एक मुख से वेदपाठ दूसरे मुख से सुरापान और तीसरे मुख से सम्पूर्ण दिशाओं का भक्षण सा मानों कर रहा है। इस प्रकार देखता था। इन्द्रपदवी को प्राप्त करने की इच्छा से उस त्रिशिर ने अपने इन्द्रिय-संयम-पूर्वक बड़ा उग्र तप किया। उस प्रबल तपस्वी की उत्कट तपश्चर्या को देख कर, इन्द्र के मन में बड़ा भारी सन्देह हो गया और वह चाहने लगा कि, कैसे ही हो इसकी इन्द्र-पदवी की प्राप्ति में विघ्न करना चाहिये। रात दिन इन्द्र को चैन नहीं पड़ता था। वह यही सोचता था कि, ऐसा कौनसा उपाय किया जावे जिससे यह विश्वरूप, तपश्चर्या को त्याग कर भोग विलासों में फँस जावे। इसकी यह उग्र तपश्चर्या निश्चय सब संसार को भस्म कर देगी। यह विचार कर उसने परम सुन्दरी अप्सराओं को बुलाया और कहा कि, हे अप्सराओं! विश्वरूप त्रिशिर बड़ी उग्र तपश्चर्या कर रहा है जिससे संसार तप्त हो रहा है। इस लिये तुम लोग वहाँ जाओ और उसे जिस तरह से हो सके भोगविलास में फाँस तपश्चर्या से डिगा दो। सुन्दर सोलहों शृंगार कर के मनोहर मालाओं को धारण कर विचित्र मनोहर हावभावों द्वारा उसे अपने अधीन करो। हे वाराङ्गनाओं! मुझे उस तपस्वी के कारण अत्यन्त भय हो रहा है; मेरा अन्तरात्मा अत्यन्त ही अस्वस्थ है। इस भयङ्कर भय से तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकती हो।

अप्सराओं ने कहा—हे देवराज! आप घबराये नहीं, हम लोग यथा-शक्ति आपके इस सन्ताप को शान्त करेंगी। अपने उग्र भयङ्कर विशाल नेत्रों से जो तपस्वी जगत को जलाये डाल रहा है हम लोग आज अभी उसको वश में करने के लिये जा रही हैं।

शल्य ने कहा—इसके बाद इन्द्र ने उन देवाङ्गनाओं को जाने की आज्ञा प्रदान की। वे सब अप्सरायें सुन्दर शृङ्गारों से सजधज वहीं उस

तपस्वी को लुभाने के लिये अनेक प्रकार से हाव भाव कटाक्षों की वर्षा करने लगीं। वे अपने सुन्दर अङ्गों को दिखला दिखला कर, उसे तपश्चर्या से डिगाने का उद्योग करने लगीं; किन्तु वह तपस्वी पर्वत के समान अचल रहा, उस पर कुछ भी कामवासनाओं का असर नहीं पड़ा। वह अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन किये हुए पूर्व सागर के समान गम्भीर हो कर तपस्या में मग्न रहा। जब सब प्रकार से अप्सराओं का प्रयत्न व्यर्थ हो गया, तब वे सब खिन्न हो कर इन्द्र के पास लौट आयीं और हाथ जोड़ कर कहने लगीं कि, उस दुर्धर्ष तपस्वी का डिगाना कोई सहज काम नहीं है। हम लोगों के तो सारे प्रयत्न उस धीर तपस्वी के सामने व्यर्थ हो गये। अतएव हे महाभाग! आपको जो उचित प्रतीत हो सो आप उपाय करें। देवराज इन्द्र ने उन सब अप्सराओं का सत्कार कर, उन्हें विदा किया और वह स्वयं अपने शत्रु के विनाशार्थ विचार करने में मग्न हो गया। कुछ देर सोच कर उसने यह निश्चय किया कि, बुद्धिमान् को चाहिये कि, चाहे जैसा ही दुर्बल शत्रु क्यों न हो; किन्तु उसकी उपेक्षा न करे। अतएव मैं आज अवश्य वज्रप्रहार से इस प्रबल शत्रु का संहार करूँगा। मेरे घोर वज्रप्रहार से निश्चय ही वह यमलोक चला जावेगा। बस अब देर क्या है, यह कह कर शत्रु के संहारार्थ इन्द्र ने अपने प्रचण्ड पावक, समान भयङ्कर वज्र को फेंक दिया। बस फिर क्या था, विचारा विश्वरूप वह त्रिशिर उस भयङ्कर वज्रप्रहार से पृथिवी पर वैसे ही गिर पड़ा जैसे कोई पर्वत का शृङ्ग भूमि पर गिर पड़ा हो; किन्तु वज्राघात से निष्प्राण हो कर भूमि पर गिरे हुए भी उस पर्वताकार शत्रु को देख कर, देवराज के चित्त को शान्ति प्राप्त न हुई। वह अपने प्रबल प्रताप से अत्यन्त ही चमक रहा था और ऐसा मालूम होता था कि, अभी वह जीवित ही है।

जिस समय उस मरे हुए शत्रु के सन्मुख भी इन्द्र भय से काँप रहा था, उसी समय एक बढ़ई उस ओर आ निकला। उसे देख कर इन्द्र ने कहा भाई बढ़ई! यह जो तुम्हारे कंधे पर कुल्हाड़ी रक्खी है; इससे इस

दुष्ट मेरे महाशत्रु त्रिशिरा का मस्तक काट कर फेंक दो। बढ़ई ने कहा महाराज! इसके विशाल और दृढ़ कंधों के काटने से मेरी कुल्हारी टूट जायगी तथा सज्जन मनुष्यों ने किसी के मस्तक को काटना महापाप बतलाया है। इसलिये विद्वान् जिसकी निन्दा करते हों, वह काम कभी मैं नहीं करूँगा। देवराज इन्द्र ने कहा कि, ऐ बढ़ई! डरो मत। शीघ्र ही मेरी आज्ञा का पालन करो, मेरे प्रताप से तुम्हारी यह कुल्हारी वज्र के समान दृढ़ हो जावेगी। जब बढ़ई ने यह सुना, तब कहा कि, पहिले तो आप यह बतलावें कि, आप हैं कौन? जो ऐसा निन्दित और भयङ्कर कर्म करने के लिये तैयार हो रहे हैं। देवराज ने कहा कि, हे बढ़ई! सुन मैं देवताओं का राजा हूँ और मुझे सब लोग इन्द्र कहते हैं। इसलिये तुम्हें सब शङ्काओं को त्याग कर मेरे इस प्रबल शत्रु के मस्तकों को शीघ्र ही छिन्न भिन्न कर डालना चाहिये। बढ़ई ने कहा कि, देवराज! तुम बड़े क्रूरहृदय मालूम होते हो। तुम्हें ऐसा भयङ्कर कर्म करते हुए तनिक भी लज्जा नहीं आती? क्या इस ब्रह्मपुत्र के वध से पैदा होने वाली ब्रह्महत्या का भी तुम्हें भय नहीं है? शोक और महा शोक! जो तुम देवराज होते हुए भी राक्षसों जैसे कर्म करते हो।

विचारा इन्द्र तो भय से काँप ही रहा था। बढ़ई की इस कड़ी फटकार को सुन कर भी उसने यही कहा, भाई! तू इसे शीघ्र ही चीरफाड़ कर फेंक दे। ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त मैं बाद को शास्त्रों के अनुसार कर लूँगा। यह मेरा प्रबल शत्रु है। मैंने इसे वज्र से मार कर अभी गिरा दिया है; किन्तु मैं इसे देख कर इतना घबड़ा रहा हूँ कि, मेरा शरीर थरथर काँप रहा है। यदि तू इसके सिरों को काट डालेगा तो मैं तुझ पर अवश्य अनुग्रह करूँगा। पशुओं के सिर की बलि मनुष्य तुझे प्रदान करेंगे और तेरा अर्चन पूजन करेंगे। बस यही मैं प्रसन्न हो कर तुझे वरदान दे रहा हूँ। देवराज इन्द्र से वरदान पा लेने के बाद जब उस बढ़ई ने उस त्रिशिरा के सिरों को अपने कुठार से काट छाँट डाला; तब उसके उस

मुँह से, जिससे कि, वह सोमपान तथा वेदपाठ किया करता था, कपिञ्जल नामक [illegible] पक्षी निकल कर उड़ने लगे। तथा जिस मुख से, वह दिशाओं को पिये जाता हो इस प्रकार देखता था, उससे तीतर निकले ; किन्तु सुरापान करने वाले मुख से हे धर्मराज ! कलविंक और बाज पक्षी उत्पन्न हो गये। इस प्रकार जब उस बढ़ई ने देवराज के शत्रु त्रिशिर के तीनों मस्तक काट डाले ; तब इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो कर, स्वर्ग को चला गया।

इधर इन्द्र तो शत्रु के विनाश हो जाने के कारण अपने को कृतार्थ समझता हुआ अपने घर को गया ; किन्तु उधर जब त्वष्टा प्रजापति ने अपने पुत्र का इन्द्र द्वारा वज्रप्रहार से मरण सुना, तब वह अत्यन्त ही क्रुद्ध हो कर बोले। आहा ! शान्त मुनियों के समान परम संयम से तपश्चर्या करने वाले मेरे पुत्र को इन्द्र ने विना अपराध मार डाला है। अतएव मैं इन्द्र के विनाशार्थ वृत्र नाम के भयङ्कर बलवान् राक्षस को उत्पन्न करता हूँ और संसार को अपने तपोबल से आश्चर्यचकित कर दूँगा। इस प्रकार अत्यन्त क्रोध में आ कर त्वष्टा ने जल का आचमन कर अग्नि में होम कर अतिभीषण महाकाय वृत्रासुर को उत्पन्न किया। इसके उपरान्त तपस्वी त्वष्टा ने कहा कि, हे इन्द्रशत्रु ! खूब बढ़ो, मेरे तपः-प्रभाव से अलौकिक अतुल्य बलशाली बन जाओ। सत्यवादी ऋषि की वाणी के अनुसार प्रचण्ड पावक तथा सूर्य समान वह वृत्रासुर इतना बढ़ा कि, आकाश तक पहुँच गया। प्रचण्ड महाप्रलय के सूर्य समान उस वृत्र ने फिर त्वष्टा से कहा कि, कहिये अब मुझे क्या आज्ञा है ? इसके उत्तर में त्वष्टा ने कहा कि, और कुछ नहीं। केवल तुम्हारा यही काम है कि, तुम इन्द्र का संहार करो। यह सुन वृत्र ने स्वर्ग का रास्ता लिया और वहाँ जा कर वह इन्द्र से भयङ्कर युद्ध करने लगा।

दोनों वीरों का भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। महावीर इन्द्र को वृत्रासुर ने पकड़ कर क्रोध में भर अपने मुँह में रख लिया। बस फिर क्या था ! चारों

और स्वर्ग में हाहाकार मच गया। देवताओं में भगदड़ पड़ गयी। जगह जगह सभा समितियाँ होने लगीं कि, अब क्या करना चाहिये? अस्तु, धीरात्मा देवताओं ने कुछ काल विचार करने के वाद वृत्रासुर का संहार करने वाली जृम्भा (जम्हुआई) को छोड़ा। जृम्भा वृत्रासुर के शरीर में प्रवेश कर गयी। ज्यों ही वह वृत्र जम्भाई लेने लगा त्यों ही देवराज इन्द्र अपने शरीर को सङ्कुचित कर उसके मुँह से बाहर निकल आये। उसी समय से जम्हाई ने प्राणियों में अपना आश्रय बना लिया है। देवराज इन्द्र के निकलते ही देवता अत्यन्त प्रसन्न हो कर जय जयकार करने लगे। ज्यों ही इन्द्र निकले त्यों ही बलवान् वृत्रासुर ने पुनः संग्राम करना प्रारम्भ कर दिया। त्वष्टा प्रजापति के तपोबल से वृत्रासुर का विजय होते तथा इन्द्र को कमज़ोर पड़ते देख कर, देवता अत्यन्त दुःखी हुए। देवराज ने भी जब देखा कि, मेरी शक्ति अत्यन्त हीन हुई जा रही है; तब वे संग्रामभूमि से भाग गये और सब लोग इन्द्र के साथ मुनियों महात्माओं को एकत्र कर, इस उपस्थित आपत्ति के प्रतीकार के लिये विचार करने लगे। वे सब मन्दराचल पर खड़े हो कर अशरणशरण दीनबन्धु भगवान विष्णु का ध्यान करने लगे।

दसवाँ अध्याय

वृत्त-वध

देवराज इन्द्र ने कहा—हे देवगण! यह अखिल ब्रह्माण्ड इस भयङ्कर शत्रु वृत्रासुर से व्याप्त हो रहा है। इसका विनाश करने वाली कोई शक्ति अब मुझे प्रतीत नहीं होती। हाँ, पहिले तो मैं अवश्य इसका संहार कर सकता था; किन्तु अब मुझमें भी यह सामर्थ नहीं है, जो मैं इसका संहार कर सकूँ। यह बड़ा वीर, तेजस्वी और महात्मा है। इसमें अपार शक्ति है।

यदि यह चाहे तो क्षण भर में सचराचर जगत् को ग्रस सकता है। इस लिये हे देवताओ! अब हमारे और तुम्हारे पास इसके विनाश का कोई साधन या उपाय नहीं। अतः चलो हम सब विष्णु भगवान् के पास चलें। बिना उनके शरण में गये इस भयानक आपत्ति से छुटकारा होना असम्भव है। उन्हींसे सलाह सम्मति ली जावेगी और वे ही इसका वधोपाय बतला सकेंगे।

शल्य बोले—हे धर्मराज! देवराज इन्द्र की इस सम्मति के अनुसार सब ऋषि मुनि सहित देवगण दीनबन्धु भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और वहाँ जा कर भगवान् से कहने लगे कि, हे महाराज! आपने पूर्व वामनावतार में तीनों लोकों को तीन पग में नाप लिया था। संग्राम में बड़े बड़े दैत्यों का संहार किया था। दानवों से अमृत छीन कर देवताओं को प्रदान किया था तथा देवराज इन्द्र को पुनः स्वर्ग का सम्राट् बनाया था। हे भगवन्! आप सब देवताओं के अधिपति हैं। आपसे यह सब संसार व्याप्त हो रहा है तथा आप ही नमस्कार करने योग्य देवादि देव महादेव हैं। हे अमरेश्वर! यह सब ब्रह्माण्ड वृत्रासुर से सन्तप्त हो रहा है। इस लिये अब आप हम सब देवताओं की रक्षा कीजिये। इस प्रकार देवताओं के विनय को सुन कर, भगवान् ने कहा—हे देवताओ! सुनो, मुझे आप लोगों के विनय के अनुसार आप सब का हित अवश्य ही करना अभीष्ट है। अतएव मैं आप लोगों को उपाय बतलाता हूँ। आप लोग ध्यान पूर्वक सुनें। देखिये, आप सब लोग ऋषियों मुनियों तथा सब गन्धर्वों को साथ ले कर वृत्रासुर के पास जाइये और जैसे भी हो सके वैसे उससे सन्धि कर लीजिये। साम द्वारा ही निश्चय उसका संहार हो जावेगा। मेरे प्रभाव से निश्चय आप लोगों का विजय होगा। मैं अदृश्य रूप से देवराज इन्द्र के वज्र में प्रवेश कर जाऊँगा। बस आप लोग देर न करें, शीघ्र ही वृत्रासुर से इन्द्र की सन्धि करावें।

शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर! भगवान् के आज्ञानुसार सब देव, गन्धर्व

इन्द्र सहित जहाँ अपने प्रबल तेज से लोकत्रय को त्रास देने वाला एवं प्रचण्ड सूर्य के समान बलवान् वृत्रासुर था, वहाँ पहुँचे।

उन सब ऋषियों ने वृत्रासुर के समीप जा कर कहा—हे राक्षसोत्तम ! आपके तीव्र तेज से सब संसार व्याप्त हो रहा है। आपके समान बलवान् इस संसार में होना दुर्लभ है। हे वीरमणे ! आपका और इन्द्र का चिर-काल से महाभयङ्कर युद्ध हो रहा है ; किन्तु किसी का जय पराजय होने की सम्भावना नहीं है। अब इस दिगन्तव्यापी भीषण संग्राम से चराचर जगत् व्यथित हो रहा है। अतः हम सब लोगों की यह अभिलाषा है कि, आपमें और देवराज इन्द्र में सन्धि हो जावे। इसमें आपको परमलाभ है, स्वर्गीय संपत्तियाँ आपके सन्मुख सर्वथा विद्यमान रहेंगी और हम सब लोगों का यह सन्ताप जो आप दोनों के वैमनस्य से उत्पन्न हुआ है, शान्त हो जावेगा।

देवताओं की इन बातों को सुन कर वृत्रासुर ने सब देवताओं के लिये नतमाथ हो प्रणाम किया और कहा—हे देवताओ तथा गन्धर्वो ! आप सब लोग सौभाग्यशाली और वन्दनीय हैं। आपने जो कुछ भी कहा वह सब हमने सुना; किन्तु कृपा कर यह बतलाइये कि, हमारी और इन्द्र की सन्धि, कैसे हो सकती है। भला कहीं दो तेजस्वियों में भ्रातृभाव (धार्मिकता) हो सकती है। देवताओं ने कहा कि, हे वीरमणे ! सुनो। सत्पुरुषों को जब सत्संग का भाग्य से अवसर प्राप्त हो जाता है, तब वे लोग उसे कभी हाथ से ख़ाली नहीं जाने देते। वे सदा सत्संगति की कामना करते ही रहते हैं। महापुरुषों की मित्रता कभी झूँठी नहीं होती, किन्तु वह अत्यन्त ही दृढ़ और सत्य होती है। अर्थकष्ट या अन्य कर्त्तव्य कर्मों में आपत्ति आ पड़ने पर सज्जनों की मैत्री बड़ा काम देती है। इसी कारण बलवान् तथा बुद्धिमान् मनुष्य सत्पुरुषों से वैर नहीं करते और न उनके सर्वनाश की कामना करते हैं।

देवराज इन्द्र भी सत्पुरुषों में श्रेष्ठ महात्माओं का सम्मान करने वाला धर्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ और सूक्ष्मदर्शी है। इस लिये उसके साथ तुम्हारी

मैत्री हो जाना ही उचित है। आप विश्वास कीजिये और सम्मति प्राप्त कर इन्द्र से सन्धि कर लीजिये।

शल्य बोले—हे युधिष्ठिर! ऋषियों के इन वचनों को सुन कर, वृत्रासुर ने कहा कि, हे देवताओ! आप सब लोग मेरे माननीय और पूज्य हैं। अतएव मैं आप लोगों की इस आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा। किन्तु नियम यह है कि, आप मुझे पहले यह वरदान प्रदान करें कि, इन्द्र मुझे अन्य देवताओं से मिल कर भी सूखी, गीली किसी भी वस्तु से तथा पत्थर, अस्त्र, शस्त्र, लकड़ी आदि किसी साधन से, रात दिन में किसी समय भी न मार सके। यदि यह नियम आप लोगों को स्वीकार हो तो मैं इन्द्र के साथ सहर्ष सन्धि कर लेने को प्रस्तुत हूँ। देवताओं ने भी तथास्तु कह कर उसकी इस ठहराव को स्वीकार किया। इस प्रकार वृत्रासुर इन्द्र से सन्धि कर के अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सदा इन्द्र के साथ रहने लगा। इन्द्र भी तब से अत्यन्त प्रसन्न रहने लगा, किन्तु मन में सदा वृत्रासुर के विनाश के लिये उपाय सोचता ही रहता था। देवराज इन्द्र ऊपर से तो बड़ा प्रसन्न रहता था; किन्तु भीतर वह सदा वृत्रासुर के छिद्रों का अन्वेषण करता था और कहता था, कब अवसर पाऊँ और इस भयङ्कर शत्रु से सदा के लिये छुटकारा पाऊँ। एक दिन सन्ध्या समय समुद्र के किनारे इन्द्र ने वृत्रासुर को देखा और विचारा यह समय तो बड़ा ही उपयुक्त है। न रात है न दिन, सन्ध्या समय है। इस समय मैं अवश्य इस राक्षस का संहार कर सकता हूँ। क्योंकि विना इस दुष्ट का संहार किये मेरा कल्याण नहीं हो सकता। इन्द्र इस प्रकार शत्रु के विनाश का विचार कर ही रहा था कि, इतने में उसने समुद्र में पर्वत के समान ऊँचे फेन समूह को देखा और उसे देख कर कहा कि, यह लीजिये भगवान् की कृपा से इसका संहार करने के लिये मुझे उपयुक्त शस्त्र भी प्राप्त हो गया। यह फेन जो कि समुद्र में दिखलायी पड़ रहा है, न गीला ही है और न सूखा ही, शस्त्र है, न अस्त्र है, लकड़ी है न

पाषाण। इसलिये इसीसे इस दुष्ट का संहार करना चाहिये। यह सोच और श्रीविष्णु भगवान् का ध्यान कर शीघ्रता से उसने उस फेन को अपने वज्र पर रख कर उस वृत्रासुर की ओर फेंका और फेंकने के साथ ही भगवान् विष्णु अपने वचनानुसार अदृश्यरूप से उस फेन में प्रविष्ट हो गये और उस दुष्ट महाराक्षस का संहार कर डाला। उस महाराक्षस के मरते ही दिशाओं में प्रकाश हो गया, शीतल मन्द सुगन्ध समीर बहने लगा, सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। सुर, असुर, नर, नाग, किन्नर सभी ने मिल कर अनेक स्तोत्रों द्वारा देवराज इन्द्र की स्तुति की। स्तुति करने वाले देवताओं को इन्द्र ने सान्त्वना प्रदान की और उन्हीं देवताओं के साथ मिल कर, इन्द्र ने बड़े समारोह के साथ पतितपावन श्रीविष्णु भगवान् का पूजन किया। देवराज इन्द्र और देवताओं के भयङ्कर शत्रु का नाश हो गया। इस समय सभी आपत्तियाँ शान्त हो गयीं; किन्तु इन्द्र ने जो असत्य-भाषण किया था वह पाप और जो विश्वरूप त्रिशिरा की हत्या की थी—इन दोनों महापापों से उसका हृदय अत्यन्त जलने लगा और अपने पापों से पीड़ित हो कर, स्वर्गलोक को परित्याग कर, सम्पूर्ण लोकों के पार जा कर वह एकान्त में रहने लगा। स्वर्ग में भारी खलबली मच गयी। चारों ओर इन्द्र के अदृश्य हो जाने का कोलाहल मच गया। ब्रह्महत्या से पीड़ित हो कर जब इन्द्रदेव स्वर्ग छोड़ कर भाग गये थे; तब पृथ्वी नष्ट भ्रष्ट हुई सी प्रतीत होती थी। नदियों के प्रवाह रुक गये, सरोवरों का जल सूख कर केवल खन्दक रह गये तथा अनावृष्टि से प्राणिवर्ग असमय मरने लगे। ऋषि, महर्षि, सुर, किन्नर आदि सभी भयभीत हो गये। चारों ओर भयङ्कर उपद्रव प्रारम्भ हो गये। इस भयङ्कर अराजकता को देख कर देवताओं को बड़ा क्लेश हुआ। वे सोचने लगे कि, अब हमारा राजा कौन होवे। देवर्षियों का भी आज कोई राजा न रहा और कोई भी देव इन्द्रासन ग्रहण करने के लिये उद्यत नहीं होता था।

ग्यारहवाँ अध्याय

इन्द्र और नहुष

सारथी शल्य ने कहा—हे धर्मराज ! इस प्रकार सब देवताओं ने सलाह की और यह निश्चय किया कि, यह नहुष राजा बड़ा तेजस्वी, यशस्वी तथा धार्मिक है। इसलिये इससे ही चल कर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि, आप स्वर्ग के राज्य को स्वीकार करें। अस्तु, जब राजा नहुष से देवताओं ने इन्द्रासन स्वीकार करने की प्रार्थना की, तब उसने कहा कि, हे देवर्षियो ! तथा पितृगणो ! सुनो। मैं अत्यन्त दुर्बल हूँ मुझमें आप लोगों के पालन करने की शक्ति नहीं है। राजा को सर्वथा बलवान होना चाहिये। वह बल कि जिसके द्वारा आप लोगों का पालन हो सकता है। वह नित्य बल देवराज इन्द्र ही में है।

यह सुन कर देवताओं ने कहा—हे राजन् ! आज कल हम लोगों के यहाँ अराजकता के कारण नित्य नूतन उपद्रव उठ रहे हैं। अतः हम लोग आपके पास बड़ी आशा से आये हैं, आशा है आप हमारी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे। हे धर्मनिष्ठ राजन् ! आप स्वर्ग के इन्द्रासन को स्वीकार कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये। प्रथम तो आप स्वयं ही तपोबल-शाली हैं। दूसरे देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, पितरों तथा अन्य प्राणियों का तेज, जिन्हें आप अपने नेत्रों से देखेंगे आपके अन्दर आ जावेगा। आप जो अपनी दुर्बलता का वर्णन कर रहे हैं, वह सब दूर हो जायगी और हम लोगों के पालन करने की पर्याप्त शक्ति आपको प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार निःशङ्क हो कर आप ब्रह्मर्षियों तथा देवर्षियों का पालन कीजिये। यह कह कर देवताओं ने राजा नहुष का इन्द्रासन पर अभिषेक कर दिया और राजा नहुष स्वर्ग के राजा बन गये।

इस तरह जब राजा नहुष ने देवताओं से दुर्लभ वर प्राप्त कर, स्वर्ग का

राज्य प्राप्त कर लिया; तब 'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं' के अनुसार वह धर्म्मात्मा होता हुआ भी कामात्मा बन गया और अप्सराओं तथा देव-कन्याओं के साथ सम्पूर्ण नन्दनवन तथा देवोद्यानों में कैलास, हिमालय, सह्य, मलय आदि पर्वतों पर भोग विलास करने लगा। कोई भी समुद्रतट या नदीतट ऐसा नहीं रहा जहाँ पर राजा नहुप ने कामकेलि ने की हो? अनेक प्रकार की मनोहर कथाएँ, गाने बजाने और मधुर गीतों ही में आनन्द लूटते हुए नहुष का काल बीतने लगा। विश्वावसु, नारद तथा अप्सराएँ तथा छः ऋतुएँ यह सब देवराज इन्द्र के समान ही राजा नहुप की सेवा में उपस्थित रहने लगे। जिस समय राजा नहुप क्रीड़ागार में कामकेलि करने के लिये उपस्थित होता था, उस समय पवन अत्यन्त शीतल मन्द सुगन्ध बहने लगता था। इस प्रकार क्रीड़ा करते करते एक दिन उस दुरात्मा राजा के सन्मुख देवी इन्द्राणी पड़ गयी। तब तो उस दुरात्मा ने फौरन सभासदों से कहा कि, हे सभासदो! यह क्या बात है कि, देवी शची मेरी सेवा करने के लिये उपस्थित नहीं होती। जब कि मैं इन्द्र हूँ तब तो मुझे अवश्य उसकी सेवा ग्रहण करनी चाहिये और उसे भी यही योग्य है कि, इन्द्र की भाँति वह मेरी सेवा में उपस्थित हो कर मुझे प्रसन्न करे।

जब यह बातें पतिव्रता देवराज-पत्नी शची ने सुनीं, तब उसे बड़ा भारी क्लेश हुआ और वह अपने मन में खिन्न हो कर बृहस्पति के पास जा कर कहने लगी—हे देवगुरो! हे बृहस्पते! मैं आपके शरण आयी हूँ। आप मेरी रक्षा करें। इन्द्रासन पा कर राजा नहुप की मति बिगड़ गयी है। वह मेरे सतीत्व को नष्ट करना चाहता है। हे ब्रह्मन्! आपने तो मुझसे पहिले यह कहा था कि, तुम सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता तथा देवराज इन्द्र को सब सुख भोगाने वाली सर्वसौभाग्य-सम्पन्ना देवाङ्गनाओं में शिरोमणि हो। क्या प्रभो! यह सब आपकी बातें झूठी भी हो सकती हैं? हे देवगुरो! अब आप मेरी रक्षा कर अपनी इस पहिले कही हुई वाणी को सत्य कीजिये। मुझे तो पूरा विश्वास है कि, आपकी वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती। देवराज-पत्नी

शची की इस गद्गद वाणी को सुन कर बृहस्पति ने कहा—हे देवि ! मैंने जो कुछ भी कहा है वह सब सत्य ही होगा और शीघ्र ही तुम देखोगी कि, देवराज इन्द्र यहाँ आ कर अपना इन्द्रासन प्राप्त करेंगे । देवि ! तुम नहुष से बिलकुल मत डरो, मेरी वाणी को सत्य ही समझो । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, तुम्हें मैं शीघ्र ही इन्द्र से मिला दूँगा । इधर जब नहुष को यह मालूम हुआ कि, इन्द्राणी बृहस्पति की शरण में जा कर मुझसे अपनी रक्षा की प्रार्थना कर रही है, तब तो उसे बड़ा क्रोध आया ।

बारहवाँ अध्याय

इन्द्राणी और नहुष

राजा शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर ! देवताओं ने जब राजा नहुष के क्रोध का समाचार सुना, तब वे अत्यन्त ही घबराने और उसे समझाने के लिये गये । उन्होंने कहा, देवराज ! क्रोध न कीजिये । आपके क्रोध करने से यह सारा संसार सन्तप्त हो जावेगा । प्रभो ! क्रोध त्यागिये और प्रसन्न हो जाइये । आप जैसे बुद्धिमानों के लिये यह क्रोध अच्छा नहीं है । देखिये इन्द्राणी पराई स्त्री है । उसके प्रति पापदृष्टि न कीजिये । आप देवराज हैं । आप अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा कीजिये । राजा नहुष तो उस समय प्रबल कामवासनाओं का चेरा हो रहा था । देवताओं की यह सब धर्मचर्चा उसके सन्मुख अरण्यरोदन सी हो गयी और उसने इन्द्र की ओर इशारा कर के देवताओं से कहा—हे देवताओ ! सुनो, तुम जो आज शुभ सङ्केतमय धर्मोपदेश दे रहे हो, यह तुम्हारा धर्मोपदेश उस समय कहाँ चला गया था, जिस समय सधवा अहिल्या का सतीत्व इन्द्र ने नष्ट किया था । उसे तुमने क्यों नहीं उस पापकर्म से बचाया ? विश्वरूप त्रिशिर का संहार कर ब्रह्महत्या का पातक भी इन्द्र ही ने किया था तथा

वृत्रासुर से मित्रता कर फिर उसके साथ विश्वासघात किया था। कहाँ तक गिनाऊँ; इन्द्र ने तो असंख्य और एक से एक बड़े भयङ्कर पातक किये हैं। तब उसे आप लोगों ने यह धर्मोपदेश सुना कर क्यों नहीं रोका जो आज आप मुझे सुना रहे हैं। इस लिये हे देवताओ! आप लोगों का इसीमें मङ्गल है कि, आप मेरी आज्ञा का पालन करें। इन्द्राणी को भी उचित है कि, यदि वह अपना कल्याण चाहती है तो मेरी सेवार्थ स्वयं उपस्थित हो जावें। देवताओं ने कहा कि, हे देवराज! अच्छा यही नहीं हम इन्द्राणी को ला कर उपस्थित करेंगे, किन्तु अब आप क्रोध को दूर कर प्रसन्न हो जाइये।

शल्य ने कहा—हे धर्मराज! सब देवता देवराज नहुप का संदेशा ले कर ऋषियों के साथ बृहस्पति के पास जा कर कहने लगे। हे बृहस्पते! यह तो हम लोगों को भलीभाँति मालूम है कि, इन्द्राणी आपके शरण में आयी हैं और आपने भी उन्हें अभयदान दे कर अपनी रक्षा में ले लिया है; किन्तु हे देवगुरो! हम सब देव, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आदि मिल कर आपके पास आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि, इन्द्राणी, देवराज नहुप को प्रदान कर दीजिये। देखिये, महातेजस्वी राजा नहुप इन्द्र से बढ़ कर हैं। इसलिये इन्द्राणी को उचित है कि, वह राजा नहुप को अपना पति मान, उसकी सेवा करें। यह सुन कर, पतिव्रता शची ने विलाप करते हुए बृहस्पति से यह कहा—हे देवर्षिशिरोमणे! मैं राजा नहुप को अपना पति नहीं बनाना चाहती हूँ। इसलिये इस भयङ्कर सङ्कट से आप मेरी कृपा कर रक्षा कीजिये। महाकारुणिक बृहस्पति ने शची के विलाप को सुन कर कहा—हे देवताओ! अब आप लोग अपने अपने निवासस्थान को जाइये। मैं महापतिव्रता धर्मशीला इन्द्राणी को नहीं दे सकता। जो कि, आपत्ति के समय मेरी शरण में आयी है। मैं धर्मशास्त्रों में कहे हुए धर्म्मात्माओं के कर्त्तव्यों से भली भाँति परिचित हूँ। इसलिये शरणागत-परित्यागरूप दुष्कर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकता। देखिये, शरणागतों के

विषय में ब्रह्मा जी ने क्या क्या उपदेश दिये हैं। आप लोग ध्यानपूर्वक सावधान हो कर सुनिये। भय से अथवा और किसी कारण से शरण में आये हुए मनुष्य को, शत्रु को सौंप देते हैं। उसका बोया हुआ बीज नहीं उगता और न उसके कृषिकर्म के समय वर्षा होती है; किन्तु स्वयं भी जब वह कभी आपत्ति में पड़ जाता है तब उसकी सहायता करने वाला कोई नहीं मिलता। शरणागत की रक्षा न करने वाले मनुष्य के सब अर्थ अनर्थ हो जाते हैं। उसकी आत्मिक शक्ति नष्ट हो जाती और वह सदा चेतना-हीन हो कर स्वर्गलोक से नीचे गिरा दिया जाता है तथा उसके प्रदान किये हुए पदार्थों को देवता भी स्वीकार नहीं करते। चाहे राजा या महाराज ही क्यों न हो; किन्तु शरणागत को शत्रु के हाथ समर्पण कर देने से उसकी प्रजा में अकाल मृत्यु प्रारम्भ हो जाती और पितर लोग उसका परित्याग कर देते हैं। यहीं नहीं बल्कि, सब देवता उसे भयङ्कर वज्राघातों से नष्टभ्रष्ट कर देते हैं। इसलिये इन सब बातों को जानता हुआ मैं कभी भी पतिव्रता इन्द्राणी को नहीं दे सकता। आप लोगों को भी यही उचित है कि, आप लोग सब मिल कर यही उपाय करें, जिससे इन्द्राणी का और मेरा कल्याण हो; किन्तु यह निश्चय समझिये कि, मैं शरण में आई हुई इन्द्राणी का परित्याग कभी नहीं कर सकता।

शल्य ने कहा—अब सब देवताओं ने बृहस्पति से कहा कि, अस्तु, तब आप ही कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे इन्द्राणी का तथा हम, आप, सब लोगों का कल्याण हो। यह सुन कर बृहस्पति ने कहा कि, पतिव्रता इन्द्राणी स्वयं राजा नहुष के पास जावे और कुछ दिनों की अवधि माँग ले। इस अवधि में नहुष की पापकामनाओं में अनेक विघ्न आ पड़ेंगे। हे देवताओ! राजा नहुष वरदान से प्राप्त हुए बल वीर्य के घमंड में चूर हो रहा है। इन्द्राणी जो अवधि प्राप्त कर लेगी, उसी अवधि में उस का घमण्ड नष्ट हो जावेगा और यह दुरात्मा भी यमधाम पहुँच जावेगा। इससे बढ़ कर कल्याणकारी और कोई भी उपाय नहीं है।

शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर ! बृहस्पति की यह सम्मति सब देवताओं को ठीक प्रतीत हुई और उन्होंने बृहस्पति को अनेक धन्यवाद प्रदान कर पतिव्रता शची के पास जा कर यह कहा—हे महापतिव्रते ! हे इन्द्राणी ! तुम्हें शतशः धन्यवाद हैं। तुम्हींने इस सचराचर जगत को धारण किया है। तुम परम साध्वी महासती और सीमन्तिनी हो। बृहस्पति जी की सम्मति के अनुसार दुरात्मा नहुष के पास चली जाओ और उससे कुछ अवधि माँग लो। इसी मध्य में नहुष अवश्य नष्ट हो जावेगा और देवराज इन्द्र पुनः इन्द्रासन ग्रहण करेंगे। इस प्रकार गुरुदेव बृहस्पति की आज्ञा के अनुसार लजाती हुई शची दुरात्मा महाकामी नहुष के पास गयी। राजा नहुष भी उसको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

तेरहवाँ अध्याय

इन्द्र की खोज

धर्मराज युधिष्ठिर से शल्य ने कहा—जब इन्द्राणी राजा नहुष के सन्मुख उपस्थित हुई, तब राजा नहुष ने प्रसन्न हो कर उससे कहा कि, हे सुन्दर हास्य वाली कामिनि ! मैं तीनों लोकों का अधिपति राजा इन्द्र हूँ। इस लिये हे सुन्दरि ! तुम अपना पति समझ कर मेरी पूजा करो। जिस समय राजा नहुष की यह बात इन्द्राणी ने सुनी, उस समय वह भय से इस तरह काँपने लगी जैसे वायु के चलने पर केले का वृक्ष काँपने लगता है। किन्तु सावधान हो कर उसने मन में ब्रह्मा जी को प्रणाम किया और राजा नहुष से कहने लगी। हे महाराज ! अब तक मुझे अपने पति इन्द्र का कुछ भी पता नहीं मालूम हुआ कि, वे कहाँ और कैसे हैं ? इसलिये मैं आपसे हाथ जोड़ कर और नतमाथ यह प्रार्थना करती हूँ कि, आप कृपा कर मुझे कुछ समय की अवधि प्रदान कीजिये। इस अवधि में, मैं अपने पति इन्द्रदेव का कुछ हाल जानने का प्रयत्न करूँगी। यदि इस

और उसका कुछ हाल प्रतीत न हुआ तो मैं आपके सन्मुख सच्ची प्रतिज्ञा करती हूँ: कि, स्वयं में आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी। राजा नहुष, देव-राजपत्नी शची की इन बातों को सुन कर अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा। अस्तु, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे भी यह स्वीकार है; किन्तु इन्द्र का हाल जान कर चली आना। हे सुन्दरि! इस अपनी सत्य प्रतिज्ञा को भूलना मत।

देवराज-प्रिया शची राजा नहुष की आज्ञा पा कर वहाँ से चली आयी और सीधी वह बृहस्पति के मन्दिर की ओर गयी। वहाँ जा कर उसने जो कुछ राजा नहुष से अवधि के विषय में बातचीत हुई थी सब देवताओं के सन्मुख कह सुनायी। इधर देवताओं ने जब शची की अवधि का समाचार सुना, तब वे लोग आपस में यह सोचने लगे कि, अब शीघ्र ही इन्द्रदेव की खोज करनी चाहिये कि, वे आज कल कहाँ हैं। अस्तु, कुछ सोच समझ कर देवताओं ने यह निश्चय किया, चलो हम सब लोग श्री विष्णु भगवान के पास चलें। वे ही हमें इन्द्र की प्राप्ति का कोई उपाय बतलावेंगे; निदान सब देवता विष्णु के पास गये और जा कर विनीत वचनों द्वारा अपनी आपत्ति का हाल भगवान् को सुनाने लगे।

उन्होंने कहा—हे भगवन्! आप सब संसार की रक्षा के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। अतः ब्रह्महत्या से उद्विग्न हो कर इन्द्रासन त्याग भागे हुए इन्द्र की रक्षा कीजिये। हे प्रभो! आप ही उनका उद्धार कर सकते हैं। इन देववचनों को सुन कर, श्रीविष्णु भगवान् ने कहा कि, हे देवताओं! सुनो। इन्द्र से कहो कि, वह अश्वमेध यज्ञ द्वारा मेरा पूजन करे। मैं ब्रह्महत्या से उसका निश्चय उद्धार करूँगा और निःशंक हो कर वह इन्द्रासन को प्राप्त करेगा। रही राजा नहुष की बात सो वह तो कुछ काल के बाद स्वयं ही समाप्त हो जावेगा। उसके लिये आप लोग धैर्य धारण करें। भगवान् की सुधासमान मधुर वाणी को सुन, देवर्षि सहित सब देवगण जहाँ इन्द्र ब्रह्महत्या से घबरा कर, छिप

रहते थे वहाँ पहुँचे। हे राजन्! वहाँ पर सब देवताओं ने मिल कर इन्द्र की ब्रह्महत्या का नाश करने वाले अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया और ब्रह्महत्या को वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पृथिवी और प्राणियों में बाँट दिया। देवराज इन्द्र के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये और वे अपने चित्त में अत्यन्त शान्ति लाभ करने लगे। जब वे विशुद्ध हो गये, तब अपने राज्य के प्राप्त करने के लिये स्वर्ग में आये। वहाँ वे देखते क्या हैं कि, उनके राज-सिंहासन पर प्रबल वरदानों से तथा तपोबल से प्रदीप्त सम्पूर्ण प्राणियों के तेज को नष्ट कर देने वाला राजा नहुष विराजमान है। बस फिर क्या था, इन्द्र उसके भय से थरथर काँपने लगे और वहाँ से भाग कर सब प्राणियों से छिप कर रहने लगे, और अपने उदय काल की प्रतीक्षा करने लगे।

पतिव्रता इन्द्राणी अपने पति के भाग जाने से अत्यन्त व्याकुल हो कर विलाप करने लगी और बोली—हे प्रभो! यदि मैंने दान दिया हो और गुरुजनों का आदर सत्कार कर भली प्रकार उन्हें सन्तुष्ट किया हो तथा मुझ में यदि सत्य हो, तो मेरा एक ही पति होवे। मैं उत्तरायण में परम पवित्र रात्रि भगवती को प्रणाम कर प्रार्थना करती हूँ कि, वे मेरे इस मनोरथ को सफल करें। इस प्रकार विलाप करने के बाद पतिव्रता इन्द्राणी बड़े संयम के साथ रात्रि देवी की उपासना करने लगी और अपने दृढ़ पातिव्रत धर्म पर विश्वास कर सन्देहरहित देववाणी का आवाहन कर उससे प्रार्थना करने लगी कि, हे देवि! आप कृपा कर मेरे पति का स्थान मुझे बतला दीजिये। मेरी इस दीन दशा पर दया कीजिये। देखिये, सत्यवादी देवश्रेष्ठों का स्मरण करने वाले को अवश्य वर देते हैं। अतः आप भी मुझ पर कृपा कीजिये और वह स्थान मुझे दिखलाइये, जहाँ देवराज इन्द्र रहते हैं।

चौदहवाँ अध्याय

इन्द्र का पता

शल्य ने कहा—हे राजन्! पतिव्रता इन्द्राणी की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर देवी उपश्रुति साक्षात् शरीर धारण कर उपस्थित हो गयी। इन्द्राणी ने भी उसका सत्कार कर पूछा कि, हे देवि! मैंने आपको पहिचाना नहीं। कृपा कर आप अपना परिचय दीजिये। उपश्रुति ने कहा—हे पतिव्रते! तुमने मुझे पहिचाना नहीं। मेरा नाम उपश्रुति है, और मैं तुम्हारे सत्य एवं दृढ़भाव से प्रसन्न हो कर, तुम्हें दर्शन दे रही हूँ। तुम यम नियमों का पालन करने वाली महापतिव्रता हो, इस कारण मैं अपना दर्शन दे कर तुम्हें कृतार्थ कर रही हूँ। हे देवि! घबराओ नहीं। मैं तुम्हें वृत्रनाशक पतिदेव इन्द्र के अवश्य ही दर्शन करा दूँगी। आओ, मेरे पीछे पीछे चली आओ। मैं तुम्हारे पति का दर्शन शीघ्र कराती हूँ। निदान इन्द्राणी उपश्रुति के पीछे पीछे बहुत से वनों पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई हिमालय को पार कर, उत्तर की ओर पहुँची। वहाँ से जब आगे बढ़ी तो अनेक पर्वत उसे लाँघने पड़े और समुद्र पार पहुँच कर उसने एक महाद्वीप में प्रवेश किया। इन्द्राणी ने देखा कि, यह महाद्वीप अत्यन्त मनोहर है, इसमें अनेक पक्षियों से पूर्ण शतयोजन लंबा चौड़ा एक रमणीक सरोवर है जिसके कारण महाद्वीप का महत्व और भी बढ़ गया है। हे राजन्! उस सरोवर में अनेक दिव्य पञ्चवर्णी कमल खिल रहे थे। साथ ही उन सब कमलों में सब से अधिक सुन्दर एक कमलिनी थी; जिसे चारों ओर से एक मनोहर पङ्कज ने घेर रक्खा था। उपश्रुति ने उस सुन्दर कमल को फाड़ा और इन्द्राणी सहित उस कमल में घुस गयी। घुसते ही उसने देखा कि, कोमल कमल के सूक्ष्म तन्तुओं में इन्द्र देवता विराजमान हैं। इन्द्राणी और उपश्रुति ने भी इन्द्र का अत्यन्त सूक्ष्म रूप देखने के लिये सूक्ष्म रूप धारण किया था। बस सूक्ष्मरूपिणी देवी ने

सूक्ष्म शरीरधारी इन्द्र का दर्शन किया और पूर्वपरिचित कर्मों द्वारा अपना परिचय दिया।

देवराज इन्द्र ने कहा—तुम यहाँ कैसे आयी और तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि, मैं यहाँ हूँ। इन्द्राणी ने भी अपने ऊपर आयी हुई आपत्ति को जो कि, राजा नहुष के अधर्माचरण का फल स्वरूप है कहना प्रारम्भ किया। हे देवराज! राजा नहुष लोकत्रय का अधीश्वर बन जाने के कारण अत्यन्त गर्वीला हो गया है। उस पापात्मा ने मुझसे अपने सतीत्व का परित्याग कर, पति रूप से अपनी सेवा करने के लिये कहा। हे प्रभो! यदि आप उसको दण्ड न देंगे तो वह अवश्य ही मुझे अपने वश में कर लेगा। हे देवराज! मैं इसी कारण दौड़ कर आपके पास आयी हूँ। आप अब शीघ्र ही उस दुष्ट नराधम राजा नहुष का संहार कीजिये। हे देवेन्द्र! क्या आप अपने स्वरूप को छिपाये यहाँ पड़े हुए हैं। आपने तो सदा ही दानवों का संहार किया है। अतएव आप भयभीत न हों और शीघ्र ही अपने स्वरूप को प्रकट करें तथा इस अमरलोक की रक्षा करें।

पन्द्रहवाँ अध्याय

नहुष प्रवञ्चना

राजा शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर! देवराज इन्द्र ने शची की आत्मकथा सुन कर कहा—हे देवि! यह समय पराक्रम प्रदर्शन का नहीं है। क्योंकि राजा नहुष अत्यन्त बलवान है। ऋषियों महर्षियों ने हव्य कव्य द्वारा उसे और भी बलवान बना दिया है। इस लिये अब नीति से काम लेना चाहिये और तुम्हीं उस नीति को काम में लाओ। किन्तु देखो कहीं किसी से कह न देना। इस नीतिमन्त्र को प्राणों से भी प्रिय समझ कर गुप्त रखना। अच्छा, अब सुनो। तुम यहाँ से जा कर राजा नहुष के पास ऐसे समय में पहुँचो कि,

जिस समय वह एकान्त में हो और कामवासनाओं में विलीन हो रहा हो। विनीत भाव से प्रणाम करने के बाद उससे कहो कि, यदि आप दिव्य यान में ऋषियों को जोत कर मुझसे मिलने के लिये आवें, तो मैं प्रसन्न हो कर आपको पतिरूप से वर सकती हूँ। पतिदेव के आज्ञानुसार अन्त में इन्द्राणी राजा नहुष के पास गयी। राजा नहुष उसे देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो कहने लगा। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारा सहर्ष स्वागत करता हूँ। कहो जो मेरे योग्य कार्य हो वह मैं करूँ। हे कल्याणी! मुझसे लज्जा न करो। निःसंकोच हो कर मेरा विश्वास करो। देखो मैं तुम्हारा सच्चा भक्त हूँ। मैं सच कहता हूँ तुम्हारी सभी आज्ञाओं का पालन करूँगा। यह सुन कर इन्द्राणी ने कहा कि, देवराज! मैंने जो आपसे अवधि माँग ली है उसकी मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ। आपके प्रदान किये हुए अवधि समय के बीत जाने पर सत्य ही आप मेरे पति होंगे; किन्तु एक बात मेरे मन में है। यदि आप उस मेरे प्रेमानुरोध को पूरा कर देंगे, तो मैं आपकी प्रणयिनी एवं वशवर्तिनी हो जाऊँगी।

राजा इन्द्र के तो वाहन घोड़े हाथी आदि थे ही; किन्तु मैं आपको ऐसे वाहनों पर सवार देखना चाहती हूँ कि, जो सब से अलौकिक हों अर्थात् वैसा वाहन सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी के भी पास न हो। सब महर्षि लोग मिल कर आपकी पालकी को उठा कर चलें और आप उसमें विराजमान हों। बस इस अलौकिक वाहन पर सवार हो कर जाते हुए मैं आपको देखना चाहती हूँ। हे महाशक्तिशालिन्! आपके लिये यह कुछ भी कठिन नहीं है। क्योंकि आप केवल नेत्रसङ्केत से ही सब लोकों के तेज को खींच लेते हैं। भला ऐसी किसमें शक्ति है जो आपके सन्मुख खड़ा हो सके।

राजा शल्य ने कहा—हे धर्मराज! कामात्मा राजा नहुष शची की इन बातों को सुन कर, अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि, हे सुन्दरि! तूने यह बड़ा अपूर्व वाहन बतलाया और मुझे भी यह बहुत अच्छा जान पड़ा

है। भला जो ऋषियों को वाहन बना कर सवारी करेगा वह क्या थोड़ा शक्तिशाली होगा ? मैं भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालों का ज्ञाता महातपस्वी और अपार शक्तिमान् हूँ। मैं यदि क्रोध करूँ तो संसार ही न रहे। संसार को धारण करने वाली मेरी ही विशेष शक्ति है। हे सुन्दरि ! देव, दानव, नर, किन्नर, नाग तथा गन्धर्व आदि सब लोक भी मेरे क्रोध करने पर मेरे सम्मुख ठहर नहीं सकते। मैं जिसकी ओर देखता हूँ उसीके तेज को नष्ट कर देता हूँ। इस लिये हे देवि ! मैं तुम्हारे इस प्रेमानुरोध को अवश्य पूरा करूँगा। जितने ऋषि महर्षि हैं, वे सब ही मेरे वाहन बनेंगे और तुम मुझे उस अलौकिक वाहनों वाली पालकी में बैठा देखोगी। घबराओ मत, मैं तुम्हें शीघ्र ही अपना माहात्म्य और सिद्धि दिखलाऊँगा।

राजा शल्य ने कहा—हे पाण्डव ! राजा नहुष ने उस समय पतिव्रता इन्द्राणी को विदा किया और नियम संयम से रहने वाले ऋषियों को विमान में जोत कर वह इनसे पालकी उठवाने लगा। इस प्रकार राजा नहुष ने मदोन्मत्त हो कर ब्राह्मण ऋषियों का तिरस्कार किया। इन्द्राणी भी नहुष से बिदा हो कर सीधी बृहस्पति के पास पहुँची और बोली कि, हे महाराज ! राजा नहुष से जो अवधि मैंने प्राप्त की थी वह बहुत थोड़ी ही रह गयी है। अतः आप अब शीघ्र ही देवराज इन्द्र का अन्वेषण करो और मुझ पर दया करो। बृहस्पति ने भी तथास्तु कह कर इन्द्राणी से कहा कि, हे देवि ! पापात्मा नहुष से तुम्हें बिलकुल नहीं डरना चाहिये। बस अब उसका अन्त आने ही वाला है। उस अधर्मी ने धर्मात्मा महर्षियों को अपना वाहन बना कर, स्वयं अपनी मौत का आह्वान किया है। दूसरे अब मैं भी उसका विनाश करने के लिये यज्ञ करता हूँ और अभी देवराज इन्द्र का अन्वेषण करता हूँ। यह कह कर महातेजस्वी बृहस्पति ने पुरन्दर की प्राप्ति के लिये दिव्य यज्ञ आरम्भ किया। जब हव्य द्वारा अग्निदेव को सन्तुष्ट कर चुका, तब उससे कहा कि, जाओ शीघ्र ही इन्द्र को ढूँढ़ो। अग्निदेव भी प्रसन्न हो कर सुन्दरी स्त्री का वेष धर वहीं अन्तर्धान हो गये और दिशा, विदिशा, वन, पर्वत, आकाश

पाताल, पृथिवी आदि सभी स्थानों में इन्द्रदेव को ढूँढ़ने के लिये गये और क्षण भर बाद ही लौट कर बृहस्पति से बोले, हे बृहस्पते ! पूर्वोक्त सभी स्थानों में मैंने इन्द्र को ढूँढ़ा, किन्तु उनका कहीं पता न लगा। हाँ, जल अवश्य ढूँढ़ने से बचा है; किन्तु वहाँ जा कर ढूँढ़ने की, मुझमें शक्ति नहीं है। बृहस्पति ने कहा कि, जल में भी घुस कर इन्द्र को ढूँढ़ो। तब तो अग्नि ने कहा कि महाराज ! वहाँ तो मेरी शक्ति ही नहीं है। वह तो मेरा शत्रु है। वहाँ जा कर तो मेरा नाश हो जावेगा। इस लिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं आपके शरण आया हूँ। जल से अग्नि, ब्राह्मणों से क्षत्रिय, पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है। उनका तेज सर्वत्र तो प्रकाश करता है; किन्तु अपने जन्मदाता के सन्मुख जा कर शान्त हो जाते हैं।

सोलहवाँ अध्याय

इन्द्र-प्राकट्य

बृहस्पति ने कहा—हे अग्ने ! तुम सब देवताओं के मुख हो और हव्य को स्वीकार करते हो तथा सब प्राणियों के साक्षी बन कर अन्तःकरण में गुप्तरूप से निवास करते हो। तुम्हारे एक रूप को ही विद्वानों ने तीन रूपों में बतलाया है। तुम्हारे त्याग कर जाने पर यह सचराचर जगत् क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता। विद्वान् ब्राह्मण सपरिवार आपके इन तीनों रूपों की उपासना से अक्षय मोक्ष को प्राप्त करते हैं। हे अग्ने ! आप ही हविष्य को सब देवताओं में पहुँचाते हैं और हविष्य रूप भी आप ही हैं। विद्वान् लोग उत्तम पूर्ण यज्ञों द्वारा आपका ही अर्चन पूजन करते हैं। हे हव्यवाहन ! सृष्टि के आरम्भ में आप ही इस त्रिलोक की रचना करते तथा प्रलयकाल में आप ही अपने प्रचण्ड स्वरूप से इसका संहार कर देते हैं। हे अग्ने ! आप ही संसार के कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता हैं। हे हुताशन ! धीर मनुष्य आपको मेघ तथा बिजली कह कर पुकारते हैं और आपकी पावन ज्वालाओं से संसार

का कल्याण होता बतलाते हैं। हे देव! तुम्हींमें जल तुम्हींमें जगत् सब कुछ व्याप्त है। आप सदा गतिशील और व्यापक हैं। ऐसा कोई भी स्थान नहीं जो आपसे छिपा हो। प्रत्येक प्राणी अपने जनक की उपासना करता है। इस लिये आप निःशङ्क हो कर जल में प्रवेश कीजिये। मैं सनातन ब्राह्मण-मंत्रों द्वारा तुम्हारे बल को बढ़ाता रहूँगा। इस प्रकार अपनी स्तुति से प्रसन्न हो कर अग्निदेव ने बृहस्पति से कहा कि, आप विश्वास रखिये। मैं अवश्य आप को इन्द्र का दर्शन कराऊँगा।

राजा शल्य ने युधिष्ठिर से कहा—तब अग्निदेव ने समुद्रों तथा जलाशयों में प्रवेश किया और ढूँढ़ते ढूँढ़ते वहीं पहुँचे, जहाँ इन्द्र छिपा हुआ था; किन्तु उस असंख्य कमलों वाले सरोवर में घुस कर भी इन्द्र का पता न पा कर अग्निदेव ने प्रत्येक कमल को ढूँढ़ना आरम्भ किया। अन्त में अग्नि ने एक कमलनाल में बैठे हुए इन्द्र को देखा और तुरन्त आ कर बृहस्पति से कह दिया कि, अमुक सरोवर में कमलनाल के भीतर छिपे हुए देवराज इन्द्र बैठे हुए हैं। अनन्तर बृहस्पति, अन्य देवताओं तथा ऋषियों के साथ वहाँ गये और प्राचीन वीरकर्मों द्वारा इन्द्र की स्तुति करने लगे। हे देवराज! महा भयङ्कर राक्षस नमुचि को आपने संहार किया। महाबलवान् शम्बर और बल नामक राक्षसों का भी आपने ही सर्वनाश किया। अतएव हे शतक्रतो! आप अपनी अमित शक्ति का ध्यान कीजिये और बलवृद्धि प्राप्त कीजिये। देखिये आपके सन्मुख सभी ऋषि महर्षि खड़े हुए हैं। इस प्रकार शत्रुभय से आपको छिप कर रहना शोभा नहीं देता। उठिये और शत्रुओं का संहार कीजिये। हे भगवन्! आपने दानवों का संहार कर लोकों की रक्षा की और फेन से वज्र को सान, विष्णुतेज द्वारा महाशत्रु वृत्रासुर का भी संहार कर दिया। आप सब, प्राणियों की रक्षा करने वाले महान् पूज्य हैं। आपके बराबर इस लोक में कोई भी नहीं है। आप सब प्राणियों का पालन पोषण करते हैं। आपके समान स्तुति करने योग्य कोई भी देव नहीं है। आपने ही सब देवताओं की महिमा को

बढ़ाया है। इस लिये अब भी आप अपनी महिमा के अनुसार सब लोकों की रक्षा कीजिये।

इस प्रकार अपनी स्तुति सुन कर देवराज इन्द्र ने अपने सम्पूर्ण बल को प्राप्त किया और अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष हो कर देवताओं सहित खड़े हुए बृहस्पति से कहा—हे बृहस्पते ! हे देवताओ ! अब तुम्हारा कौन सा और कार्य बाकी रहा है कि जिसके लिये आप लोग उपस्थित हुए हैं, महाभयङ्कर त्रिशिर नामक राक्षस और वृत्रासुर भी नष्ट हो गया जो कि, सब जगत का संहार किये डालता था।

देवगुरु बृहस्पति ने कहा कि हे देवराज ! राजा नहुष देवर्षियों के तेज से प्रबल हो कर स्वर्ग का राजा बन कर हम सब लोगों को सता रहा है। यह सुन कर इन्द्र ने कहा कि, पहले यह तो बतलाइये कि उस राजा नहुष ने कब कैसे इन्द्रासन प्राप्त कर लिया। उसके अन्दर इतना बल वीर्य कैसे हुआ जो वह देवराज बन बैठा।

बृहस्पति ने कहा कि हे प्रभो ! जिस समय वृत्रासुर के भय से तुम इन्द्रासन त्याग कर भाग गये थे, उस समय देवता लोग अत्यन्त भयभीत हो कर देवर्षियों और पितरों सहित किसी योग्य धर्मात्मा बलिष्ठ राजा को इन्द्रासन प्रदान करें, इस विचार से राजा नहुष के पास पहुँचे और राजा नहुष से कहा कि हे राजन् ! स्वर्ग लोक में आज कल बड़ी अराजकता फैल रही है। इन्द्रदेव का पता नहीं कहाँ चले गये हैं। अतएव हम लोग बिना राजा के सन्तप्त हो रहे हैं। आप कृपा कर इन्द्रासन को सुशोभित कीजिये। राजा नहुष ने देवताओं से अपनी दुर्बलता प्रकट की और कहा जिस अमित पराक्रम द्वारा इन्द्र आप लोगों की रक्षा करते थे, वह पराक्रम देवराज को छोड़ अन्य किसी में नहीं है। हाँ, यदि आप लोग मुझे तपोबल प्रदान करें और सदा मेरे शक्ति को बढ़ाते रहें, तो मैं आप लोगों की आज्ञा का पालन कर सकता हूँ। निदान, देवताओं ने अनेक वरदानों द्वारा उसकी शक्ति को बढ़ाया और उस घोर पराक्रमी राजा नहुष को

देवताओं का राजा इन्द्र बना दिया। स्वर्ग की प्रभुता पा कर राजा नहुष को अत्यन्त घमंड हो गया है और वह महर्षियों को अपना वाहन बना कर इधर उधर विहार करता फिरता है। हे देवराज! भूल कर भी आप कभी राजा नहुष की ओर दृष्टि न करें। क्योंकि उसकी दृष्टि में ऐसा विष भरा है कि, जिसके द्वारा वह अन्य तेजस्वियों का भी तेज हर लेता है। सभी देवता आज कल गुप्त रूप से इधर उधर विचरते हैं। कभी भी उस दुरात्मा के सम्मुख नहीं जाते।

राजा शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर! जिस समय बृहस्पति और इन्द्र में इस प्रकार बातचीत हो रही थी उसी समय लोकपाल कुबेर, यम, सनातन देव चन्द्र और वरुण भी वहाँ आ गये। उन्होंने आपस में आलिङ्गन करने के बाद इन्द्र से कहा कि, हे महेन्द्र! आपने जो त्वष्टापुत्र त्रिशिर का स्वयं अक्षत रहते हुए संहार कर डाला, इससे हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। लोकपालों की बात को सुन कर, देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब लोकपालों से राजा नहुष की बुद्धिभ्रष्ट कर देने के लिये कहा—हे लोकपालो! राजा नहुष जो आज कल मेरे राज्यासन पर विराजमान है, अति भयङ्कर आकार वाला और प्रबल तपस्वी है। अतएव आप लोग मेरी सहायता करें। इन्द्र की बात सुन कर लोकपालों ने कहा कि, हे इन्द्र! राजा नहुष से हम सब लोग डरते हैं। क्योंकि उसकी दृष्टि में बड़ा भयङ्कर विष भरा हुआ है। यदि आप उस शत्रु का संहार करेंगे तो ही हम लोगों को यज्ञभाग प्राप्त हो सकेगा। इन्द्र ने कहा अच्छा कुछ चिन्ता नहीं। अब मैं आज से ही यम, वरुण, कुबेर आदि आप सब लोगों को अपने अपने अधिकारों पर पुनः प्रतिष्ठित करता हूँ अब देर न कीजिये। सभी देवगण संगठनशक्ति द्वारा आज ही नहुष को पराजित करने के लिये चल दें। इसीमें कल्याण है। इतने में अग्निदेव ने देवराज से कहा कि, यदि आप मुझे यज्ञभाग देवें तो मैं भी आपकी कुछ सहायता करूँ। उसी समय देवराज ने अग्निदेव के लिये इन्द्राग्नी नामक भाग देने का वचन प्रदान किया

राजा शल्य बोले—हे धर्मराज ! देवराज इन्द्र ने इस प्रकार सब सोच समझ कर कुबेर को यक्षों का राज्य तथा धनाधिपति, यम को पितृलोकाधिपति और वरुण को जल का अधीश्वर बना दिया।

सत्रहवाँ अध्याय

नहुष का पद भ्रष्ट होना

धर्मराज से शल्य ने कहा—जिस समय देवराज इन्द्र सब देवताओं और लोकपालों को साथ ले कर राजा नहुप के वध का विचार कर रहे थे, उसी समय वहाँ पर महर्षि अगस्त्य आये और उन्होंने इन्द्र का सन्मान कर यह कहा कि, हे इन्द्र ! आपने जो वृत्रासुर और त्रिशिरा का संहार किया सो सब उचित ही किया। इस समय भी राजा नहुष का स्वर्ग से पतन सुन कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हे बलमर्दन ! आपको इस प्रकार निष्कण्टक होते देख कर, बड़ा आनन्द प्राप्त हो रहा है।

इन्द्र ने कहा हे महर्षे ! मैं आज आपका दर्शन पा जाने से अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूँ। पाद्य आचमन स्वीकार कर तथा मेरी आदरकारिणी वाणी को सुनिये।

राजा शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार इन्द्र के आतिथ्य सत्कार को स्वीकार कर महर्षि ने इन्द्र के पूछने पर राजा नहुष के स्वर्गपतन का वृत्तान्त सुनाया और कहा कि, हे देवराज ! जिस समय निर्मल देवर्षि और महर्षि, राजा नहुप को वहन करते करते थक गये उस समय महर्षियों ने राजा नहुप से पूछा कि, हे राजन् ! यह बतलाइये कि, वेद में गोप्रोक्षण के जो मन्त्र आये हैं, उन्हें आप मानते हैं, या नहीं। मन्दमति राजा नहुष ने कहा कि, मैं उन मंत्रों को नहीं मानता। यह सुन कर ऋषियों ने कहा कि, हे मूर्ख ! तू अब अधर्मात्मा हो गया है, इस लिये उनको नहीं मानता। हम

लोग तो उनको महर्षियों का वाक्य होने के कारण मानते हैं। महर्षियों के साथ वाद विवाद करने वाले राजा नहुष ने अधर्म से मेरे मस्तक पर पादप्रहार किया, इस घोर कर्म के करने से राजा नहुष निस्तेज और अत्यन्त शोभाहीन हो गया। अनन्तर अज्ञानी राजा नहुष से मैंने कहा कि हे मूर्ख! तूने जो सनातन समय से प्रचलित वेदवाक्यों को दूषित किया और जिन महर्षियों को ब्रह्मा के समान संसार समझता है, उनको तूने अपना वाहन बनाया और मेरे मस्तक पर चरणप्रहार किया—इसी कारण तू अपने पुण्य और तपोबल से हीन हो कर स्वर्ग से भूमि पर गिर जा और याद रख तू इस भयङ्कर कर्म से दस हज़ार वर्ष बराबर महाविषधर सर्प के शरीर में विहार करेगा और अवधि पूर्ण होने पर स्वर्ग को प्राप्त होगा। हे देवराज! उस दुष्ट नीच राजा का इस प्रकार स्वर्ग से पतन हो गया। अतएव हम सब देवताओं का सौभाग्य है कि, जो ब्राह्मणों का कण्टक वह नष्ट हो गया। अब तुम स्वर्ग को जाओ और निष्कण्टक राज्य करो। इधर राजा नहुष की स्वर्ग से निष्कृति सुन कर ऋषि, महर्षि, यक्ष, राक्षस, नाग, गन्धर्व, देवकन्याएँ तथा सब अप्सरायें सरोवर, सागर, सरितायें आदि साक्षात् देवराज के पास आ कर नतमाथ प्रणाम कर कहने लगे। हे अमरपते! बड़े भाग्य की बात है कि, मतिमान् अगस्त्य जी ने राजा नहुष को स्वर्ग से गिरा कर सर्पयोनि में डाल दिया। आज आपके अभ्युदय के लिये बधाई है।

अट्ठारहवाँ अध्याय

शल्य के शान्ति वचन

राजा शल्य ने युधिष्ठिर से कहा कि—हे राजन्! इसके बाद यक्ष, गन्धर्व, महर्षि, अग्नि, यम, वरुण आदि लोकपालों तथा सब देवताओं से

परिवेष्टित देवराज इन्द्र अपने ऐरावत पर सवार हो कर स्वर्ग को गये और वहाँ चिर-विरह-कर्षिता पतिव्रता शची से मिल कर बड़ी प्रसन्नता से स्वर्ग की रक्षा करने लगे। उसी समय अथर्ववेद के ऋषि अङ्गिरा ने आ कर आथर्वण श्रुति से इन्द्र का पूजन किया। महर्षि अङ्गिरा के पूजन से इन्द्र को अत्यन्त हर्ष हुआ और उन्होंने महर्षि को यह वरदान दिया कि, हे महर्षे! तुमने जो अथर्व वेद का गान किया अतएव तुम इस वेद के अथर्वाङ्गिरा नामक ऋषि होवोगे और यज्ञों में तुम्हें सदा भाग प्राप्त होगा। हे धर्म्मराज! इस प्रकार अङ्गिरा ऋषि का सब प्रकार सत्कार कर, देवराज इन्द्र ने उन्हें विदा कर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण तपोधन ऋषियों महर्षियों तथा देवताओं का सत्कार कर इन्द्र धर्म पूर्वक स्वर्ग का शासन करने लगा। हे युधिष्ठिर! यही इन्द्र के अनन्त क्लेशों को सहन करने और शत्रुओं के विनाशार्थ अज्ञातवास करने की कथा है। इस लिये तुमने जो स्त्री और अपने प्रिय भ्राताओं सहित वन में अनेक आपत्तियाँ सही हैं इसके लिये शोक मत करो। तुम भी उसी प्रकार राजलक्ष्मी पा कर सदा के लिये प्रसन्न होवोगे, जिस प्रकार वृत्रासुर का संहार कर और इन्द्रासन पा कर, इन्द्र प्रसन्न हुआ था। जैसे ब्रह्मद्वेषी महापापी नहुष का महर्षि अगस्त्य के शाप से अनन्त वर्षों के लिये सर्वनाश हो गया; वैसे ही कर्ण, दुर्योधनादि तुम्हारे शत्रुओं का भी शीघ्र ही नाश हो जावेगा। उस समय तुम इस द्रौपदी तथा अपने प्रिय भाइयों सहित इस ससागरा पृथ्वी का भोग करोगे। विजय की कामना वाले राजाओं को उचित है कि, इस इन्द्रविजय नामक उपाख्यान को जब सेना की व्यूह रचना कर चुकें, तब अवश्य ही सुनें। हे धर्म्मराज! मैंने इसी कारण यह इन्द्रविजय उपाख्यान तुम्हें सुनाया है। क्योंकि सज्जनों का बल वीर्य देव स्तुतियों द्वारा और भी बढ़ता है। इस दुष्ट दुर्योधन के भयङ्कर अपराधों का परिणाम यही होगा कि, महावीर भीम और अर्जुन दोनों ही अपनी अमित शक्ति से अनेक शूरवीर क्षत्रियों का संहार करेंगे। जो मनुष्य इस इन्द्रविजय नाम के आख्यान को नियम से पढ़ेंगे, सुनेंगे उन्हें

इस लोक तथा परलोक में प्रसन्नता प्राप्त होगी। वह मनुष्य पुत्रों पौत्रों सहित निर्भय हो कर सदा आपत्तियों से दूर रहता हुआ दीर्घायु प्राप्त करेगा। हे राजन्! उसका कभी कहीं पराजय नहीं होगा।

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! इस प्रकार राजा शल्य ने धर्मराज युधिष्ठिर के लिये धर्मपूर्वक सान्त्वना प्रदान की और धर्म्मराज ने भी राजा शल्य का खूब सत्कार किया। राजा शल्य के इस उपदेश को सुन धर्मराज ने मद्रदेशाधिपति राजा शल्य से कहा—हे राजन्! निःसन्देह आप कर्ण का सारथ्य स्वीकार कर, उसके उत्साह और तेज को नष्ट कर देंगे तथा अर्जुन की अनुकूल प्रशंसाओं द्वारा कर्ण की शक्ति को घटाने का प्रयत्न करेंगे। शल्य ने कहा कि, निश्चय मैं ऐसा ही करूँगा और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा मैं आपकी सहायता अवश्य करूँगा। इस प्रकार राजा शल्य धर्मराज से मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हो, दुर्योधन के यहाँ फिर लौट गया।

उन्नीसवाँ अध्याय

पाण्डव-कौरव-सेना

वैशम्पायन ने कहा कि, इसके बाद महारथी सात्यकी अपनी चतुरङ्गिणी सेना को साथ ले कर युधिष्ठिर के यहाँ गया। महारथी सात्यकी की सेना में अनेक देशों के बड़े बड़े बलवान अनेक शस्त्रों के प्रयोग में कुशल वीर योद्धा थे। चमकती हुई तलवारों, पाशों, परिघों, शक्तियों, शूलों, तोमरों, मुगदरों, फरसों, भिन्दिपालों तथा महातीक्ष्ण शत्रुओं का संहार करने वाले धनुष बाणों से उनके सैन्य की शोभा अवर्णनीय हो रही थी। सावन के मेघों के समान श्याम सैन्यमण्डल में उत्तम सुवर्ण के आभूषणों से युक्त सेनापति ऐसे प्रतीत होते थे, मानों वनमण्डल में दामिनि दमक रही हो; किन्तु इतनी बड़ी भारी सेना भी महाराज युधिष्ठिर की सेना में जा कर, वैसे ही मिल गयी, जैसे महासागर

में क्षुद्र नदियाँ मिल जाती हैं। महाबली चेदिराज धृष्टकेतु तथा जरासन्ध-पुत्र जयत्सेन भी एक एक अक्षौहिणी सेना को साथ ले कर धर्मराज के यहाँ आये : राजा पाण्ड्य भी सागर के समीप रहने वाले अनेक योद्धाओं को साथ ले कर, पाण्डवों के पास आया। इस भाँति उस समय इन सब सेनाओं का जमघट अत्यन्त दर्शनीय था। राजा द्रुपद की सेना में भी अनेक देशों के वीर राजा मौजूद थे तथा अपने महारथी पुत्रों को भी वे पाण्डवों की सहायतार्थ लाये थे। मत्स्य देश के राजा विराट् भी अवश्य पार्वत्य वीर राजाओं को साथ ले कर ससैन्य युधिष्ठिर की सहायतार्थ आये। इस प्रकार इधर उधर चारों ओर से आ कर पाण्डवों की सहायतार्थ सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गयीं। उधर दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये राजा भगदत्त ने शत्रुओं का मान मर्दन करने वाली पिङ्गलवर्ण की चीनिया और किरात वीरों वाली एक अक्षौहिणी सेना भेजी। वह सेना उस समय कनैल के वन की तरह बसन्ती रंग बरसाती हुई, बड़ी भली प्रतीत होती थी तथा भूरिश्रवा, शल्य और कृतवर्मा ने भी एक एक अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के लिये भेजी। विविध वनमालाधारी वीर योद्धाओं से शोभित वे सेनाएँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानों मत्त गजराजों का क्रीड़ास्थल कोई महाकानन हो। इधर जयद्रथ आदि सिन्धु सौवीर निवासी राजाओं की भी अक्षौहिणी सेनाएँ पर्वतों को हिलाती हुई वहाँ आ गयीं। वायु के झोंकों से इधर उधर बिखरे हुए अनेक रूपधारी बादलों की भाँति वे सब सेनाएँ शोभित हो रही थीं। टीड़ी दल के समान एक अक्षौहिणी सेना तथा यवन और सब देश के राजाओं को साथ ले कर काम्बोजपति सुदक्षिण भी कौरवों की सहायता के लिये आ गया और उसकी वह सेना कौरवों की अगाध सेना में लीन हो गयी। दूसरी ओर विन्द, अनुविन्द तथा माहिष्मतीपति महापराक्रमी राजा नील भी अनेक युद्ध-विशारद वीरों की अक्षौहिणी सेना समेत सहायतार्थ आये। वीरकेसरी केकय, जो कि पाँच भाई थे, वे भी कौरवेश्वर को प्रसन्न करने के लिये अपनी अक्षौहिणी

सेना ले कर वहाँ आये। इस प्रकार पाण्डवों का संहार और कौरवों की रक्षा के लिये एकादश अक्षौहिणी सेना राजा दुर्योधन के यहाँ आ गयीं और उस विशाल हस्तिनापुर में सेनाओं के ठहरने के लिये पर्याप्त स्थान भी नहीं रहा। हे भारत! उस समय पञ्चनद, मारवाड़, अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गा-तट, वारण, वाटधान, रोहित वन, यमुनातट का पहाड़ी स्थानों में सेनाएँ भर गयीं। राजा द्रुपद के पुरोहित ने, जो कि दूत बन कर, पाण्डवों के यहाँ गया था, यह सेनादल देखा।

अथ सञ्जययान पर्व

बीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का दूत और उनका संदेशा

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! जिस समय राजा द्रुपद के पुरोहित जी पाण्डवों के दौत्य कर्म के लिये हस्तिनापुर पहुँचे उस समय वहाँ उनका भीष्म, विदुर और स्वयं महाराज धृतराष्ट्र ने भी बड़ा सत्कार किया। दूत ने पहिले तो सब पाण्डवों का कुशल क्षेम सुनाया और उसके बाद उनका भी कुशल पूछ कर, वह सब प्रधान सेनापतियों के बीच खड़े हो कर कहने लगा। यद्यपि आप सब लोग प्राचीन राजधर्म के ज्ञाता हैं; तथापि मैं आपसे कुछ निवेदन अवश्य करूँगा। आशा है, आप लोग उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे। राजा धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों ही एक पिता की सन्तानें हैं। अतएव अपने पिता के धन पर दोनों ही का समान अधिकार है। जहाँ तक मेरा विचार है, इस बात में किसी भी विद्वान् एवं निष्पक्ष धर्म-सेवक को कुछ सन्देह न होगा; किन्तु धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तो उस अपने पैतृक धन को पा लिया और पाण्डवों ने नहीं पाया। यह ऐसा क्यों हुआ। मेरी सम्मति में केवल इसका कारण यही है कि, दुर्योधन ने पहिले से

ही पाण्डवों की पैतृक सम्पत्ति को दबा रक्खा है। यही नहीं कौरवों ने तो पाण्डवों के विनाश के लिये वे वे कौशल रचे कि, जिनका कुछ ठीक नहीं; किन्तु 'जाको राखे साइयाँ मारि न सकि है कोय", के अनुसार उनका जीवन बदा था। इसलिये वे लोग अभी तक जीवित हैं। बेचारे पाण्डवों को, जो कुछ भी थोड़ा बहुत राज्य मिला; उन्होंने उसे अपने पराक्रम से बढ़ा लिया। जब यह बढ़ती भी इन कपटियों को सहन नहीं हुई; तब इन्होंने ऐसा षड्यंत्र रचा कि, पाण्डवों को शकुनि के साथ जुआ खिलाया और ये सब राज्य हड़प गये। अन्त में उन्हें देशनिकाला भी दे दिया और उसमें भी शर्त्त यह कि, एक वर्ष बराबर बिल्कुल छिपे रहें। यदि इस अज्ञातवास की अवधि में उन लोगों का पता चल जाता तो फिर उन्हें बारह वर्ष बराबर उसी प्रकार वन वन मारे मारे फिरना पड़ता। अस्तु, अब उन लोगों ने उसको भी पूरा कर लिया। अर्थात् वनवास और अज्ञातवास इन दोनों को पूरा कर लिया। उन वीरों ने भरी सभा में अपनी स्त्री द्रौपदी के लज्जाहरण नाटक को उदासीन भाव से देखा और वन में अनेक आपत्तियाँ सहन कीं। विराटनगर में भी पापियों की भाँति महात्मा पाण्डवों ने रूप बदल कर अनेक भयङ्कर आपत्तियों का सामना किया; किन्तु इन सब बातों और क्लेशों तथा षड्यंत्रों का कुछ भी विचार न करने वाले पाण्डव अपने बन्धु कौरवों से अब भी मेल रखना चाहते हैं। इसलिये पाण्डवों के सद् व्यवहार और दुर्योधन के दुर्व्यवहार पर विचार करते हुए आप सब सम्बन्धियों को उचित है कि, आप लोग सब मिल कर धृतराष्ट्र के पुत्रों को भली भाँति समझावें। धर्मवीर पाण्डव अपने बन्धु कौरवों तथा लोकों के विनाश से घबराते हैं और चाहते हैं कि, प्रजासंहार और बन्धुता का नाश न हो। इस प्रकार हमें अपनी पैतृक संपत्ति प्राप्त हो जावे तो अच्छा है और यदि दुर्योधन का यही विचार हो कि, राजलक्ष्मी के लिये बिना संग्राम किये, मैं न मानूँगा तब भी चिन्ता की कोई बात नहीं है। क्योंकि पाण्डव भी पूर्ण बलवान हैं। धर्मराज के पास भी कौरवों का संहार करने के

लिये सात अक्षौहिणी सेनाएँ इकट्ठी हो गयी हैं, जो युधिष्ठिर की आज्ञा ही की प्रतीक्षा कर रही हैं। महावीर सात्यकि, भीम, नकुल, सहदेव तो ऐसे महाबली हैं कि, इनके सन्मुख हज़ारों अक्षौहिणी सेना भी कुछ सामर्थ्य नहीं रखती हैं। तुम्हारी इस ग्यारह अक्षौहिणी सेना के लिये तो अनेक रूप धारण करने वाला अकेला वीर अर्जुन ही पर्याप्त है। जिस प्रकार अर्जुन सब सेनाओं से अधिक पराक्रमी है, उसी प्रकार वासुदेव कृष्ण भी संग्राम में भयङ्कर काल से कुछ कम नहीं हैं। भला पाण्डवों की अगणित सेना तथा अर्जुन के महापराक्रम और कृष्ण की बुद्धिमत्ता को देख कर कौन ऐसा वीर होगा, जो संग्राम करने को तैयार हो जावे। इसलिये आप लोग धर्मानुसार समय को विचार कर जो उत्तर देना चाहते हों शीघ्र ही देवें। कहीं ऐसा न हो कि, यह सुन्दर अवसर आप अपने हाथों से व्यर्थ खो बैठें।

इक्कीसवाँ अध्याय

कौरवों की सभा में बखेड़ा

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! उस दूत के इन वचनों को सुन कर मतिमान् तेजस्वी भीष्म जी कहने लगे—बड़ी प्रसन्नता की बात है कि, पाण्डव लोग कृष्ण सहित कुशल से रहते हुए धर्माचरण कर रहे हैं और उन्हें सहायता भी खूब प्राप्त हो रही है तथा वे लोग यह भी चाहते हैं कि, बन्धु कौरवों से मेल ही रक्खें, युद्ध न करें। हे दूतप्रवर! आपने जो कुछ भी कहा वह सब ठीक है; किन्तु आपके वाक्य में तीक्ष्णता है और वह इस कारण है कि, आप ब्राह्मण हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, पाण्डवों को यहाँ तथा वन में दोनों जगह ही अत्यन्त क्लेश दिया गया तथा उन्होंने पिता का राज्य धर्मानुसार प्राप्त किया था। धनुर्धारी, महारथी और महा-बलवान् अर्जुन जिस समय संग्राम में अवतीर्ण होंगे, उसका सामना करने

वाला भला कौन हो सकता है। मेरी सम्मति में तो साक्षात् इन्द्र भी अर्जुन से संग्राम करने की शक्ति नहीं रखते। फिर भला अन्य साधारण वीरों की क्या बात है। सचमुच अर्जुन के समान इस त्रिलोकी में कोई वीर नहीं है।

महारथी भीष्म की बात पूरी भी न हो पायी थी कि, बीच में ही उनकी बात को काट कर और क्रुद्ध हो कर भीष्म के वाक्यों का अपमान करते हुए दुर्योधन की ओर देख कर, कर्ण ने कहा—हे ब्राह्मण देवता ! सुनो, अर्जुन की बहादुरी और पराक्रम की प्रशंसा के जो पुल आप बाँध रहे हैं, सो कौन नहीं जानता है। फिर बार बार अर्जुन ऐसा है, अर्जुन वैसा है—यह कथा ले कर बकने की क्या आवश्यकता है। राजा शकुनि ने दुर्योधन के हित के लिये राजा युधिष्ठिर को जुए में हरा दिया तथा ठहराव के अनुसार वे वनवास करने चले गये ; किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न कर, वे मूर्खों के समान पाञ्चाल और मत्स्यदेश के राजाओं का आश्रय ले कर बलपूर्वक राज्य लेना चाहते हैं। हे ब्रह्मदेव ! दुर्योधन धर्म से तो अपने वैरियों के लिये भी अपना राज्य देने को तैयार नहीं ; किन्तु इस प्रकार अधर्म से या पाण्डवों से भयभीत हो कर, कोई चाहे कि, दुर्योधन से राज्य ले लें, यह नहीं हो सकता। इस प्रकार तो राज्य का चौथाई भाग भी उन्हें मिलना असम्भव है। हाँ, यदि पाण्डव चाहते हैं कि, हमें पैतृक राज्य प्राप्त हो जावे, तो उन्हें चाहिये कि, वे समयानुसार ठहराये हुए समय तक फिर जा कर वन में रहें। अवधि समाप्त होने पर आवें और दुर्योधन के पास रहें ; किन्तु अधर्म में मति न करें। यदि पाण्डव अपना धर्म त्याग कर युद्ध ही चाहते हों, तब वे निश्चय कौरवों के पंजे में पड़ कर, फिर मेरी इन बातों को याद करेंगे और आँसू बहावेंगे।

भीष्म ने कहा—अरे मिथ्याभिमानी कर्ण ! इस व्यर्थ की बकवाद को छोड़। क्या तुझे यह नहीं याद रहा कि, अकेले ही गाण्डीवधारी अर्जुन ने संग्राम में छः महारथियों को परास्त किया था। उस वीर अर्जुन ने जब

तुझे कई बार परास्त किया; तब क्या तेरी आँखें उसके पराक्रम को नहीं देखती थीं। याद रख, यदि हम लोग इन ब्राह्मण देवता के कहने के अनुसार न चलेंगे, तो निश्चय ही संग्राम में पाण्डव हमारा सर्वनाश कर देंगे और हमें लड़ाई के मैदान की धूल फाँकनी पड़ेगी।

श्रीवैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! फिर राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म के वचनों का अनुमोदन करते हुए कर्ण का अनादर किया और कहा कि, शन्तनुपुत्र भीष्म जी ने जो कुछ भी कहा है उसमें हमारा, पाण्डवों का और सब संसार का हित है। मैं इन सब बातों पर पूरा विचार कर, अभी कुछ समय बाद पाण्डवों के पास सञ्जय को भेज कर सँदेशा भेजूँगा। हे पुरोहित जी! अब आप देर न करें और आज ही पाण्डवों के पास चले जावें। राजा धृतराष्ट्र ने उन पुरोहित जी का जो दूत बन कर आये थे, खूब आदर सत्कार कर, उन्हें बिदा किया। फिर सञ्जय को सभा में बुला कर वे कहने लगे।

बाईसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का सन्देशा

हे सञ्जय! सुना जाता है पाण्डव आजकल उपप्लव्य नामक स्थान में हैं। इसलिये तुम वहाँ जाओ और कुशल क्षेम पूँछ कर विनीत भाव से उनसे कहना कि, हे निर्मल युधिष्ठिर! आप अपने स्थान पर आ गये यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। कौरव अब अच्छी तरह से हैं। हे सञ्जय! धर्मात्मा पाण्डवों ने बड़े बड़े कष्टों का सामना करते हुए भी, अब तक हमसे निष्कपट व्यवहार किया है। वास्तव में वे सब महात्मा, सत्पुरुष और उपकारी जीव हैं। इसी कारण हम पर क्रोध नहीं करते। हे सञ्जय! इतने दिन पाण्डवों को हो गये; किन्तु मैंने कभी उनकी नियत में अन्तर नहीं देखा। उन्होंने जो

कुछ भी धन अपने पराक्रम और उद्योग से जमा किया वह सब मेरे समर्पण कर दिया। मैं प्रतिदिन पाण्डवों के दोषों का अन्वेषण करता रहता था किन्तु मैंने आज तक उनमें कोई भी दोष नहीं ढूढ़ँ पाया, वे महानिर्दोष हैं। उनके जितने भी कर्म हैं वे धर्मार्थ हैं। काम्यकर्म करना तो पाण्डव जानते ही नहीं। अतएव मैं उन पाण्डवों की निन्दा नहीं कर सकता। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, निद्रा, आलस्य, क्रोध. और प्रमाद आदि सब अवगुणों का नाश कर पाण्डव निरन्तर धर्मार्थ का संग्रह करते हैं। उनकी आत्माएँ महान् आत्माएँ हैं। हे सञ्जय! पाण्डव मित्रों की आपत्तियाँ दूर करने के लिये तन मन धन से सर्वदा तैयार रहते हैं। दूर विदेशों में चले जाने पर भी वे मित्रों को नहीं भूलते। वास्तव में पाण्डव सम्मान और धन इन दोनों के देने वाले धर्मवीर हैं। हमारे कौरवों में भी उनका कोई शत्रु नहीं है। हाँ मन्दमति दुर्योधन और क्षुद्र यह कर्ण अवश्य पाण्डवों से द्वेष रखते हैं। ये दोनों ही समय समय पर राजलक्ष्मी से हीन पाण्डवों को कुपित कर देते हैं। केवल प्रारम्भ ही में शूरता दिखलाने तथा बड़ी बड़ी बातें मारने वाला मूर्ख दुर्योधन यह समझता है कि, पाण्डवों के जीते जी ही, उनके राज्य को हड़प जाऊँगा; किन्तु यह सब उसकी मूर्खता है। क्या यह उसका विचार शेखचिल्लियों का सा नहीं है? मेरी समझ में तो यही ठीक है कि, धर्मराज युधिष्ठिर को उनका राज्य, संग्राम छिड़ने के पूर्व ही समर्पण कर दिया जावे। भला तुम्हीं सोचो जिन युधिष्ठिर की आज्ञा में अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीम, सात्यकि, नकुल, सहदेव आदि महाबलवान् भूमिपाल हैं, उनके सन्मुख युद्ध में कौन ठहर सकेगा? केवल गाण्डीवधारी अर्जुन ही रथ पर सवार हो कर, समस्त भूमण्डल की रक्षा कर सकता है और भगवान् कृष्ण तो त्रिलोकीनाथ हैं ही। लोक तथा परलोक में सद्गति चाहने वाले लोग जिन भगवान् कृष्ण की निरन्तर तन मन धन से सेवा और उपासना करते हैं तथा जो घनघोर गर्जन करने वाले मेघों के समान महावेगशाली बाणों से शत्रुओं का संहार करते हैं, संग्राम में उन

भगवान के सामने इस मर्त्यलोक का कौन सा वीर ठहर सकेगा। भाई सञ्जय! जिस अकेले अर्जुन ने सारी उत्तर दिशा और उत्तर कुरुओं को जीत कर अनन्त धनराशि प्राप्त कर द्राविड़ों को जीत अपना सैनिक बनाया, उस अर्जुन का सामना करने वाला कौरवों में मुझे तो कोई दीखता नहीं। यह सब व्यर्थ ही गाल बजा रहे हैं और यह तो तुम्हें भी मालूम है कि, इसी अर्जुन ने खाण्डव वन में देवराज इन्द्र समेत सभी देवताओं को हरा दिया था और अग्नि को खाण्डव वन दे कर, पाण्डवों के अखण्ड कीर्ति-स्तम्भ की स्थापना की थी। गदाधारियों में भीम के समान यहाँ कोई है ही नहीं तथा हाथी की सवारी करने में भी भीम एक ही है और यह भी सुना जाता है कि, उसके बाहुओं में दस हज़ार हाथियों का बल है। रथ पर जब भीम हो तब तो संग्राम में अर्जुन भी उसे नहीं हरा सकता। वह बड़ा रणकुशल और शस्त्रास्त्रविद्या में चतुर है। वह वैर ठन जाने पर तृण-समान क्षुद्र कौरवों को क्षण भर में जला डालेगा। वह बड़ा क्रोधी है। बलपूर्वक साक्षात् इन्द्र भी यदि उसे हराना चाहें तो नहीं हरा सकते। इधर नकुल सहदेव भी बड़े शुद्धचित्त, बलवान् और शस्त्र चलाने में निपुण हैं। स्वयं अर्जुन ने उन्हें अस्त्रविद्या में ऐसा बना दिया है। जैसे बाज पक्षी पक्षियों को तहस नहस कर देता है, वैसे ही वे दोनों भाई भी क्षण भर में शत्रुओं का संहार करते हैं।

यद्यपि यह हमारी सेना देखने में अधिक प्रतीत होती है; तथापि पाण्डवों के सामने नहीं के बराबर है। पाण्डवों की ओर एक बड़ा भारी महारथी धृष्टद्युम्न भी है। वह मंत्रियों सहित उनकी सहायता के लिये आया है। सुना है उसने पाण्डवों की सहायता के लिये प्राण तक समर्पण कर देने का विचार कर लिया है। उधर वृष्णिवंश में सिंह समान पराक्रमी श्रीकृष्ण भी धर्मराज के अग्रणी हैं। ऐसी दशा में कौन उनको हरा सकता है? साथ ही यह भी सुना गया है कि, पाण्डवों के अज्ञातवास के समय, जो एक वर्ष तक सहचर हो कर रहा था तथा गौओं को छुड़ा कर, पाण्डवों ने

जिसकी प्राणरक्षा की थी, वह मत्स्यदेश का राजा विराट भी अपने महाबली पुत्रों के साथ पाण्डवों की सहायता करने आया है। जिन्हें केकयदेश से निकाल दिया गया था और जो अपना राज्य लौटाना चाहते थे, वे पाँचों केकय भी पाण्डवों की ओर से लड़ने के लिये आये हैं। सुना जाता है और भी बड़े बड़े पराक्रमी राजा धर्मराज की सहायतार्थ आये हैं, जिनकी धर्मराज में दृढ़ भक्ति तथा प्रेम है। पहाड़ों पर रहने वाले और दुर्गों में रहने वाले कुलीन शुद्ध राजा लोग तथा अनेक अस्त्र-शस्त्र-धारी बलवान् म्लेच्छ भी युधिष्ठिर की संग्रामसेवा करने के लिये आ रहे हैं। युद्ध-विशारद अनेक योद्धाओं को साथ ले कर, इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज पाण्डव तथा द्रोणाचार्य कृपाचार्य और भगवान् कृष्ण से शस्त्रविद्या सीखने वाला अलौकिक-बलशाली राजा सात्यकि भी पाण्डवों की ओर युद्ध करने के लिये आये हैं। कहाँ तक गिनाऊँ चेदि तथा करूषक देश के राजा भी तो सब प्रकार से सज धज कर उन लोगों की सहायता के लिये आये हैं। इधर जब श्रीकृष्ण के पराक्रम का विचार मन में आ जाता है, तब मुझे बड़ी उद्विग्नता होती है। कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। देखो न जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था तब राजमण्डलों में सूर्य के समान तेजस्वी महापराक्रमी धनुर्धरों में श्रेष्ठ शिशुपाल को सब से अधिक दुराधर्ष मान कर ही क्षण भर में समाप्त कर दिया था। उस समय करूषक आदि देशों के कोई भी राजा जो शिशुपाल के मान को बढ़ाते रहते थे, चूँ न कर सके। भगवान् कृष्ण के भयङ्कर क्रोध को देख कर, सब के सब नौ दो ग्यारह हो गये। जिस समय श्रीकृष्ण सुग्रीव आदि घोड़ों से युक्त रथ पर सवार हो कर, भयङ्कर क्रोधाग्नि भड़काते हुए घूमने लगे, उस समय छोटे छोटे राजा लोग तो सिंह को देख कर जैसे मृग भाग जाया करते हैं वैसे शिशुपाल को छोड़ कर, भाग गये थे। महाशत्रु शिशुपाल ने जब कृष्ण से द्वन्द्व युद्ध करना प्रारम्भ किया, तब वायु के झोके से जैसे कनेल का वृक्ष धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ता है, वैसे ही शिशुपाल को भगवान् कृष्ण ने बात की बात में

धराशायी बना दिया था। जब कभी मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन को रथ में बैठा हुआ देख पाता हूँ, तब पैरों तले की मिट्टी खसक जाती है और पसीना आ जाता है। हृदय धड़कने लगता है। हे सञ्जय! मैं अब क्या करूँ। दुर्योधन की मति पर पत्थर पड़ गये। मुझे पूरा विश्वास है। दुर्योधन तभी तक जीवित रह सकता है जब तक वह युद्ध से दूर रहे और युद्ध में न जाय। अन्यथा जैसे देवराज इन्द्र और विष्णु भगवान् मिल कर असुरों का संहार करते हैं, वैसे ही पाण्डव कौरवदल को भस्म कर डालेंगे। देखो सञ्जय! मैं तो अर्जुन को इन्द्र के समान और श्रीकृष्ण जी को साक्षात् विष्णु ही मानता हूँ। धर्मात्मा महाबली कुन्तीपुत्र धर्मराज को दुष्ट दुर्योधन ने जुए में अपमानित कर के छला है। अतएव वे क्रुद्ध हो कर अवश्य ही कौरवों का संहार करेंगे। हे सञ्जय! मैं अर्जुन, कृष्ण, नकुल, सहदेव और भीमसेन आदि किसी से भी इतना नहीं डरता हूँ जितना कि, धर्मराज युधिष्ठिर के क्रोध से डरता हूँ। क्योंकि वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी और महातपस्वी हैं; धर्मवीर हैं। उनका सङ्कल्प कभी असत्य नहीं हो सकता। जो वे मन में सोचेंगे वह अवश्य ही हो कर रहेगा। हे सञ्जय! मुझे विश्वस्तसूत्र से यह पता चला है कि, धर्मराज कुपित हैं और उनका कुपित होना ठीक भी है। इसलिये तुम अब जल्द ही रथ पर सवार हो कर पाञ्चालदेश के सेना शिविर में जाओ और वहाँ जा कर धर्मराज के दर्शन करो तथा विनीत भाव से प्रणाम कर उनका कुशल पूँछना तथा ऐसे मधुर वचन कहना जिससे उनका क्रोध न भड़क उठे। महापराक्रमी श्रीकृष्ण जी से भी बड़े नम्र हो कर मिलना और कहना कि, धृतराष्ट्र भी पाण्डवों से मेल करना चाहते हैं। जैसा श्रीकृष्ण आदेश करेंगे धृतराष्ट्र उसके प्रतिकूल कभी भी न करेंगे। महामति भगवान् कृष्ण पाण्डवों की सहायता के लिये सदा तत्पर रहते हैं और पाण्डवों को वे प्राणों से बढ़ कर प्यारे हैं। यदि वे चाहें तो पाण्डवों से सन्धि कर सकते हैं।

हे सञ्जय! अधिक कहने सुनने का समय नहीं रहा। सब से पहिले तू

द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, पाण्डवों और श्रीकृष्ण तथा विराट आदि वीरों से मेरी ओर से कुशल पूँछना। तब ऐसी व्यवहारकुशलता से विनयपूर्ण बातचीत करना, जिससे पाण्डवों का क्रोध न बढ़े और न लड़ाई ठन जावे।

तेईसवाँ अध्याय

कौरवों की राजनीति

वैशम्पायन बोले—राजा धृतराष्ट्र के इस वाक्य को सुन कर सञ्जय उपप्लव्य नामक पाण्डवों के सेनाशिविर में पहुँचा। वहाँ अपने भाइयों सहित धर्मराज युधिष्ठिर विराजमान थे। जिस समय सञ्जय धर्मराज की सभा में पहुँचा, उस समय उसने बड़ी नम्रता से धर्मराज को प्रणाम किया और कहने लगा—हे प्रभो! मैं आज देवराज इन्द्र के समान साहाय्यवान् आपके दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूँ तथा विद्यावयोवृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने आपको कुशलता पूँछते हुए यह कहा है कि, आप तथा भीम अर्जुन, नकुल, सहदेव, आदि सब भाई सकुशल तो हैं। महापतिव्रता सत्यवादिनी देवी द्रौपदी अपने पुत्रों सहित प्रसन्न तो है और आपके इष्ट मित्र, चतुरंग बल आदि धर्मसाधन अनामय तो हैं।

यह सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय! आज तुम्हारा दर्शन बहुत अच्छा हुआ। तुम्हें देख कर हमारा अन्तरात्मा शीतल हो रहा है। तुम्हारे कुशल प्रश्न को मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मैं अपने भाइयों सहित अत्यन्त प्रसन्न हूँ। हे सञ्जय! आज बहुत दिनों बाद राजा धृतराष्ट्र का कुशल समाचार पा कर तथा तुम्हारा दर्शन कर, मेरा हृदय पहिले की बन्धुता को स्मरण कर, उछल रहा है। तुम्हें देख कर सचमुच आज मैं महाराज धृतराष्ट्र के ही दर्शन कर रहा हूँ। मेरे पूज्य पितामह महामनस्वी भीष्म सकुशल तो हैं तथा हम पर जैसा पहिले प्रेम रखते थे वैसा ही प्रेम वे रखते हैं या नहीं?

सोमदत्त, भूरिश्रवा, पुत्रों सहित गुरु द्रोणाचार्य, महाराज शल्य, कृपाचार्य आदि महारथियों सहित राजा धृतराष्ट्र चैन से तो हैं? हे सञ्जय! कहो—प्रसन्नचित्त शास्त्रज्ञ धनुर्धारी वीर योद्धागण अपने आत्मा से धृतराष्ट्र का कल्याण तो चाहते हैं? अथवा जिस कुरुदेश में परम सुन्दर महारथी अश्वत्थामा विराजमान हैं ऐसे ऐसे वीरों का कौरव कहीं अपमान तो नहीं करते? यह सब लोग आनन्द में तो हैं? हे प्रिय सञ्जय! वैश्या पुत्र महाबली युयुत्सु तथा मन्त्री कर्ण, जिसकी आज्ञा में दुर्मति दुर्योधन चला करता है, अति कुशल क्षेम से तो हैं? भरतवंश की वृद्ध मातायें, बहुएँ, मिश्रानियाँ तथा स्त्रियाँ, पुत्र, पौत्र, भानजे, बहिनें, धेवते सब कुशल से तो हैं? कहो सञ्जय! राजा दुर्योधन पहिले की ही भाँति योग्य ब्राह्मणों को आजीविका देते हैं या नहीं तथा हमारे दिये ग्राम कहीं ब्राह्मणों से छीन तो नहीं लिये? धृतराष्ट्र और दुर्योधन ब्राह्मणों के अपराधों की उपेक्षा करते हैं या नहीं? ब्रह्मवंश की आजीविका उसने स्वयं तो नहीं रोक दी? देखो सञ्जय! तुम जानते हो ब्राह्मणों की आजीविका ही स्वर्ग को देने वाली है। संसार में इस लोक में यश और परलोक में अनुपम सुख प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा ने इस परम पवित्र ब्रह्मज्योति का निर्माण किया है। यदि कौरवों ने लोभ से या अज्ञान से इनका अपमान किया तो निश्चय ही उनका सर्वनाश हो जावेगा। राजा धृतराष्ट्र अपने सेवकों के उत्तम सेवानुसार उनकी वृत्ति का उचित प्रबन्ध करते तो हैं? कभी उत्तम सेवकों का अपमान तो नहीं करते? तथा कपट मित्र बन कर शत्रुओं के धन का तो उपभोग नहीं करते?

हे सञ्जय! गुरु द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य और कौरव हमारे पापों का वर्णन तो नहीं करते हैं? क्या कभी कौरवदल में हमारे दुःख सुख की चर्चा होती है? क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि, सब कौरव इकट्ठे हो कर धृतराष्ट्र और दुर्योधन के पास गये हों और उनसे कहा हो कि, पाण्डवों का राज्य उन्हें अवश्य ही देना चाहिये। या कभी भयङ्कर चोरों को देख

अग्रगण्य योधागण अर्जुन की तो याद नहीं आयी? अर्जुन के गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा से निकलने वाले तीक्ष्ण तिरछे तीरों की भयङ्कर गर्जना का ध्यान क्या कभी किसी कौरव को होता है? वास्तव में बात यह है कि, मैं तो अर्जुन से बढ़ कर इस भूमण्डल में किसी को वीर ही नहीं समझता हूँ, तथा न कोई वीर उसकी बराबरी ही कर सकता है। क्योंकि इसी एक वीर अर्जुन में यह शक्ति है कि, वह एक समय में इकसठ बाण चला सकता है। मूँज के वन में मदोन्मत्त हस्ती की तरह निःशङ्क के शत्रुओं के समूह में गदा धारण कर घूमने वाले भीम का भी क्या कोई कौरव स्मरण करता है? हे सञ्जय! उस माद्रीपुत्र सहदेव को भी कभी कोई याद करता है या नहीं, जिसने महापराक्रमी कलिङ्गेश्वर पर दोनों हाथों से बाण वर्षा की थी। त्रिगर्त तथा शिवि देश के राजाओं का विजय करने के लिये तो मैंने तुम्हारे सामने ही नकुल को भेजा था। यह केवल इसी एक वीर के पराक्रम का फल है कि, जो सारी पश्चिम दिशा मेरे अधीन हो गयी। क्या भूल चूक में कभी कौरवों ने नकुल का भी ध्यान नहीं किया। जिस समय घोषयात्रा में कौरवों पर आपत्ति आयी थी और शत्रुओं ने बुरी तरह, इन लोगों को घेर लिया था, उस समय हमारे वीर अर्जुन ने ही उन्हें बचाया था। क्या यह सब बातें कौरव बिलकुल भूल गये? सञ्जय! वह समय भी बड़ा भयानक था। इधर अर्जुन तो शत्रुओं को खदेड़ रहा था। उधर मैं उसके पीछे छत्रच्छाया के समान उसकी रक्षा कर रहा था। महाबली भीमसेन, नकुल और सहदेव की सहायता कर रहा था। हे सञ्जय! कौरवों को हमने हर तरह से प्रसन्न करना चाहा; किन्तु वे प्रसन्न न हुए। जब यह हमारे साम दाम आदि शान्तिपूर्ण उपायों से सन्मार्ग पर नहीं आवेंगे, तब विवश हो हमें चौथे उपाय (दण्ड) का आश्रय लेना पड़ेगा।

चौबीसवाँ अध्याय

सञ्जय के विनम्र वचन

सञ्जय ने कहा—हे धर्मराज! आप जो कुछ भी कह रहे हैं सब सत्य ही है। आप जिन कौरवों तथा अन्य जनों का कुशल पूँछ रहे हैं वे सब सकुशल हैं। कौरवदल में वृद्ध साधु महात्माओं का भी अभाव नहीं और पापियों का भी अभाव है। भला जो दुर्योधन भिक्षुक बन कर आये हुए शत्रुओं को भी धन धान्य दे कर कृतार्थ कर देता है वह क्या कभी ब्राह्मणों की वृत्ति को भी तोड़ सकता है? देखिये। आप लोग क्षत्रिय हैं आपका धर्म अति कठिन है। यदि निरपराधियों से भी द्रोह और द्वेष किया जावे तो क्षात्र धर्म नष्ट हो जाता है। आपके समान शान्त स्वभाव वाला मनुष्य मैंने नहीं देखा, किन्तु देखते हैं तब भी दुर्योधन आपसे द्वेष रखता है, सचमुच वह भयङ्कर मित्रद्रोही है। किन्तु राजा धृतराष्ट्र इस विषय में निर्दोष हैं। दुर्योधन जो आपके साथ नित नूतन प्रपञ्च रचा करता है, इसमें राजा धृतराष्ट्र का कुछ भी हिस्सा नहीं। वह तो बेचारे इस कारण दुर्योधन से प्रति क्षण जलते रहते हैं कि, वह आप लोगों से अकारण द्वेष रखता है। उनके यहाँ विद्वान् ब्राह्मणों का समागम होता रहता है और उनमें वे ब्राह्मण सुनते हैं यही उपदेश देते हैं कि, मित्रद्रोह से बढ़ कर इस संसार में कोई पातक नहीं है। हे राजन्! राजा धृतराष्ट्र जब कभी रणचर्चा सुनते हैं, तभी उन्हें गाण्डीवधारी महावीर अर्जुन का स्मरण हो आता है। जहाँ उन्होंने दुन्दुभि और शङ्खों की ध्वनि सुनी कि, वे महाबली गदाधारी भीमसेन का नाम पुकारने लगते हैं। इसी प्रकार संग्राम-भूमि में वे वीर गर्जन करने वाले शत्रुओं पर तीक्ष्ण बाण वर्षा करने वाले रणकुशल नकुल और सहदेव का भी स्मरण बिना किये नहीं रहते। यद्यपि यह बिलकुल सत्य है कि, मनुष्य के भविष्य भाग्य का

ज्ञाता कोई भी नहीं है; तथापि हे धर्मराज ! आप धर्मज्ञ हैं। जानते हैं कि, अपने सदाचरण से मनुष्य अपनी भविष्य की आपदाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस लिये आप ही कोई ऐसा उपाय सोचिये और बतलाइये कि, जिससे कौरव शान्त हो जावें और उनका हित हो। हे प्रभो ! आपने धर्मरक्षा के लिये अब तक अपरिमित क्लेशों को सहर्ष सहन किया है। आप ही प्रज्ञाबल से इस असमञ्जस में कौरवों के सहायक हो सकते हैं। देवराज इन्द्र के समान पाण्डव केवल राज्य के लिये अपने धर्म का परित्याग नहीं कर सकते। हे धर्मराज ! आप स्वयं विचार कर कृपया उपाय बतलावें कि, जिससे कौरव पाण्डव तथा सृञ्जय आदि अन्य एकत्रित हुए राजाओं का कल्याण हो। प्रभो ! राजा धृतराष्ट्र ने जो आपके लिये मुझसे संदेशा कहला भेजा है, वह सब मैं आप लोगों को सुनाऊँगा। अब आप सब लोग अपने अमात्य पुत्रादि सहित इकट्ठे हो कर बैठ जाइये।

पच्चीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का सन्देश

धर्मराज ने कहा—हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण, विराट, युयुधान, सञ्जय तथा पाण्डव आदि सभी उपस्थित हैं। इस लिये हम लोगों के लिये जो संदेशा धृतराष्ट्र ने भेजा हो वह आप सुनावें।

सञ्जय बोले—श्रीकृष्ण, अर्जुन, धर्मराज, भीम, नकुल, सहदेव, चेकितान, सृञ्जय, विराट, राजा द्रुपद, द्रुपदपुत्र, धृष्टद्युम्न, आदि सभी राजा लोग कृपा कर इस संदेशे को ध्यानपूर्वक सुनें। राजा धृतराष्ट्र चाहते हैं कि, पाण्डवों से सन्धि हो जावे। उन्होंने उन पुरोहित जी के, जो कि दूत बन कर पाण्डवों का संदेशा ले गये, संदेशे को सुन कर फौरन बड़ी शीघ्रता से रथ तैयार करा कर मुझे आप लोगों की सेवा में भेजा है। मुझे पूर्ण आशा है कि,

धर्मराज अपने भाई, पुत्र तथा और बान्धवों सहित इस कौरवों के सन्धि-संदेशे के सहर्ष स्वीकार करेंगे। पाण्डवों! आप सब लोग धर्मसम्पन्न तथा विज्ञान, दया, सरलता और कुलीनता में ब्रह्माण्ड में उपमारहित हैं। आप लोग सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों के परिणाम को जानते हैं। आप लोगों का विख्यात पौरुष हीनकर्मों का सदा शत्रु रहा है। आप लोगों से कोई सदोष कर्म नहीं हो सकता, क्योंकि निर्दोष मनुष्य में अकस्मात् यदि कोई दोष आ भी जावे तो वह ऐसा बुरा लगता है जैसे श्वेत वस्त्र में काला धब्बा। जिस कर्म से सर्वसंहार हो तथा पापों का उदय हो कर नरक का सामना करना पड़े, भला बतलाओ कौन बुद्धिमान् उस अधम कर्म के करने के लिये तैयार हो सकता है। बन्धुओं के साथ संग्राम करने में जय भी पराजय है और पराजय तो पराजय है ही। वास्तव में संसार के अन्दर वे ही बन्धु बान्धव पुत्र पौत्र आदि स्वजन सम्बन्धी धन्यवाद के योग्य हैं कि, जो अपने बन्धुओं के काम आते हैं और सच्ची बात तो यह है कि यदि कौरव अपनी इन प्रपञ्चमयी रचनाओं का परित्याग कर देवें और इस निन्दित आजीविका के लिये तिलाञ्जलि दे देवें तो अवश्य उन्हें सुख प्राप्त हो सकता है। हे धर्मराज! यदि आप लोगों के द्वारा संग्राम में कौरवों का सर्वनाश हो गया तो फिर आप सब का भी जीवन मृतक समान हो जावेगा। जिस समय कृष्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेकितान आदि राजाओं की सहायता पा कर आप कौरवों से संग्राम में भिड़ जावेंगे, उस समय भला बतलाइये आप लोगों का सामना करने के लिये कौन आ सकता है। क्या कहीं देवताओं की सहायता पा कर रणभूमि में अवतीर्ण हुए देवराज इन्द्र का विजय कोई भी शत्रु कर सका है। हाँ फिर और यह भी बात है कि, आप लोग कौरवों को भी कोरे लिफाफे ही न समझ बैठें। जिस समय कर्ण, कृपाचार्य, गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य आदि अनेक महारथियों के साथ कौरव भी रणाङ्गण में अवतीर्ण होंगे; उस समय उनका भी पराजय करना हँसी खेल नहीं है। उस समय किसी भी वीर में यह शक्ति नहीं है कि, जो दुर्योधन की सेना का सर्वनाश

कर, स्वयं अक्षत रह सके। अतएव मुझे तो कौरव पाण्डव दोनों ही का जय पराजय भला नहीं मालूम होता। क्या कभी यह सम्भव है कि, पाण्डव नीच मनुष्यों की भाँति धर्मार्थशून्य भयङ्कर कर्म करने के लिये तय्यार हो जावेंगे। इसी लिये मैं भगवान श्रीकृष्ण तथा मतिमान् वृद्धराजा द्रुपद से हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना करता हूँ कि, मैं आप लोगों के शरण में आया हूँ। आप लोग कृपया ऐसा प्रयत्न कीजिये कि, जिससे कौरव और सृञ्जय आदि सभी का कल्याण हो। आप दोनों के वचनों को कोई नहीं टाल सकता। यदि आप लोग आज्ञा प्रदान करें तो सब लोग प्राणसमर्पण करने के लिये भी तैयार हो जावेंगे। हे राजन्! मैं आप लोगों से अन्त में यही निवेदन करूँगा कि, भीष्म तथा राजा धृतराष्ट्र की भी पूर्ण सम्मति है कि, कौरव पाण्डवों में सन्धि हो जावे। अतः आप लोग वैसा ही प्रयत्न कीजिये, जिसमें यह भारी सर्वनाश का विषमय उपोद्घात शान्त हो जावे।

छब्बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का उत्तर

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय! तुमने मेरी ऐसी कौन सी बात सुनी जिससे कि, तुम युद्ध युद्ध पुकार रहे हो और इस प्रकार संग्राम से डर रहे हो। लड़ाई करने से तो न लड़ना ही अच्छा है, भला तुम्हीं बतलाओ सन्धि का पर्वाना पा कर ऐसा कौन होगा जो अपनी सेना का संहार करने वाले संग्राम को स्वीकार करे। देखो सञ्जय! यदि मनुष्य के सभी मानसिक सङ्कल्प बिना कर्म किये ही सिद्ध हो जाया करें, तो सचमुच कोई कभी कर्म ही न करे। यदि बिना लड़ेभिड़े कुछ थोड़ी सी भी वस्तु प्राप्त हो जावे, तो वह लड़ाई से प्राप्त हुई अनन्त धनराशि से कहीं बढ़ कर है। भला ऐसा कौन है जो अकारण संग्राम करने पर उतारू हो जावेगा। दुर्भाग्यवश ही

वीरों को संग्राम द्वारा अपनी प्राणप्यारी प्रजा का संहार करना पड़ता है। शान्ति चाहने वाले पाण्डव ही कर्म करना जानते हैं जिससे धर्मरक्षा और प्रजा तथा लोक का कल्याण हो; परन्तु जो मनुष्य प्रेमपथिक तथा अजितेन्द्रिय होते हैं वे ही अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये प्राणियों को कष्ट देने वाले कर्मों का आचरण करते हैं। जो हर दम कामनाओं में विहार करते रहते हैं तथा जिनका चित्त निरन्तर विषयवासनाओं में बसा रहता है उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती; किन्तु जो मनुष्य कामनाओं का चिन्तन नहीं करते उनको कभी क्लेश नहीं होता। जैसे आग में ईंधन डालने से वह और भी भड़क उठती है वैसे ही विषयवासनाओं तथा धन का लोभ करने से कभी तृप्ति नहीं होती; प्रत्युत अग्नि में घी डालने के समान वह बढ़ती ही जाती है। हे सञ्जय! राजा धृतराष्ट्र ने हमारे पास रह कर, बड़े बड़े आनन्द भोगे हैं। इस आनन्द-भोग की ओर ज़रा दृष्टि डालो। पापियों को ही संग्राम का भय लगा रहता है। क्योंकि उनका संग्राम में विजय नहीं होता। पापी गीतों को नहीं सुन पाता और न वह कुसुमसुगन्ध को ही प्राप्त कर सकता है। पापियों को चन्दन का लेप तथा सुन्दर वस्त्र भी प्राप्त नहीं होते, सच बात तो यह है कि, अज्ञानी और पामर मानवों के लिये ही अपने शारीरिक शृङ्गारों की अधिकतर आवश्यकता होती है और यही अन्त में क्लेशों का कारण हो जाती है। राजा धृतराष्ट्र पर जब कोई आपत्ति आ कर खड़ी होती है, तब वे दूसरों के सामने विनीत हो कर सहायता की भिक्षा माँगने लगते हैं। उन्हें चाहिये कि, वे अपने आचार व्यवहारों की भाँति औरों के भी व्यवहारों और आचरणों पर दृष्टि डाला करें। धृतराष्ट्र का तो वह हाल है कि, जैसे कोई गर्मियों के दिनों में सरकंडे के वन में आग लगा कर उसकी प्रचण्ड अग्नि से बचना चाहता हो और साथ में यह भी पछताता जावे कि, हाय! मेरा जीवन केवल क्लेशों के ही लिये हुआ। देखो सञ्जय! इतना बड़ा ऐश्वर्य पा कर भी धृतराष्ट्र अपने दुर्मति पुत्र दुर्योधन की तरफ़दारी कर के अब कैसे बिलबिला रहे हैं।

उन्होंने केवल पुत्रप्रेम के वश में हो कर अत्यन्त विश्वासी बन्धु विदुर के धर्मवचनों का तिरस्कार कर अधर्म में क्यों अपना पाँव अड़ा रक्खा है। राजा धृतराष्ट्र यह तो जानते हैं कि, मेरा पुत्र दुर्योधन महाअभिमानी क्रोधी, दूसरों का अपमान करने वाला, कामी, मन्दभाग्य, मित्रद्रोही विश्वासघाती तथा पापी है। तो भी वे उसकी मुँहमाँगी कामनाएँ पूरी करने पर क्यों तैयार हो गये हैं। मैं जिस समय जुआ में हटा था उस समय महात्मा विदुर ने नीतिवाक्य सुनाये थे, लेकिन दुर्योधन ने उनकी कुछ भी प्रशंसा नहीं की; बल्कि निन्दा ही की। उसी समय मुझे यह पूरा विश्वास हो गया कि, अब शीघ्र ही कौरवों का सर्वनाश हो जावेगा। देखो सञ्जय! जब तक महात्मा विदुर के धर्मवचनों के अनुसार कौरवों ने अपने आचरण शुद्ध रक्खे तब तक उनकी प्रजा सुखी रही; किन्तु जब से उस महात्मा के वाक्यों का उन्होंने तिरस्कार करना आरम्भ किया तभी से इन लोगों पर सर्वनाश की छाया पड़ गयी। सञ्जय! कदाचित् तुम्हें अभी तक दुर्योधन के लोभी दुर्मन्त्रियों का पता नहीं है। सुनो उनका मैं तुम्हें परिचय करता हूँ। दुःशासन, कर्ण, शकुनि यह दुर्योधन के सचिव हैं। इन तीनों पर जैसा दुर्योधन प्रेम रखता है उसे तुम देखते ही होवोगे। ऐसी विषम दशा में तुम्हीं बतलाओ कौरवों और सञ्जयों का किस प्रकार भला हो सकता है? इसका तो मुझे भी कोई उपाय नहीं सूझता। धृतराष्ट्र ने तो शत्रुओं से धनसम्पदा पाने के लालच में आ कर विदुर को राज्य से निकाल दिया। धृतराष्ट्र भूमण्डल का निष्कण्टक विशाल शासन चाहते हैं। अतएव मेरे वनवासी हो जाने पर उन्होंने मेरे राज्य को अपना राज्य समझ लिया है। अतएव उन लालची कौरवों से सन्धि कर ली जावे यह बात मुझे तो असम्भव सी प्रतीत होती है। कौरव कर्ण पर फूल रहे हैं और कर्ण कहता है कि, अर्जुन को मैं क्षण भर में जीत लूँगा; किन्तु ज़रा यह तो वह बतलावे कि, पूर्व समय में जब संग्राम हुए तब कर्ण कहाँ गया था। संग्राम-सागर में असहाय हो कर, गोते लगाने वाले कौरवों का

तब कर्ण ने उद्धार क्यों नहीं किया था ? भीष्म, कर्ण, द्रोण आदि सभी महारथी यह भली भाँति जानते हैं कि, अर्जुन के बराबर दूसरा कोई धनुर्धारी नहीं है और कौरव यह भी भली भाँति जानते हैं कि, अर्जुन की मौजूदगी में दुर्योधन ने पाण्डवों का राज्य कैसे छीन लिया। क्या वीरता से कहीं कौरव पाण्डवों का राज्य छीन सकते हैं ? यह सब होते हुए भी तुम यह समझते हो कि, दीर्घ धनुष ले कर भयङ्कर युद्ध करने वाला दुर्योधन अर्जुन को संग्राम में पराजित कर पाण्डवों का राज्य छीन लेगा। शोक ! याद रक्खो, जब तक धनुर्धारी अर्जुन की धनुषटंकार कौरवों के कानों में नहीं पहुँचती, जब तक दुर्योधन भयङ्कर भीम के दर्शन नहीं करता; तब तक ही यह सब लोग जीवित हैं। अर्जुन, नकुल, सहदेव और रणबाँकुरे भीम के रहते हुए हमारे ऐश्वर्य को छीनने की सामर्थ्य देवराज इन्द्र में भी नहीं है। हाँ यदि राजा धृतराष्ट्र दुर्योधन सहित यह समझ लें कि, यदि हमने पाण्डवों का राज्य न दिया तो हम निश्चय बेमौत मरेंगे तभी उनका कल्याण हो सकता है। अन्यथा पाण्डवों का यह भयङ्कर क्रोधाग्नि कौरवों को भस्मशेष कर देगा। सञ्जय ! हम लोगों ने जो जो आपत्तियाँ सही हैं वे तुमसे छिपी नहीं हैं। मैं विनीत भाव से तुमसे क्षमा माँग कर, यही निवेदन करूँगा कि, मैं कौरवों के साथ फिर वैसा ही व्यवहार करने के लिये तैयार हूँ। मैं पुनः अपना सौम्य शान्तिमय स्वरूप धारण कर सकता हूँ; किन्तु यह सब कुछ तभी हो सकता है, जब दुर्योधन हमारा राज्य लौटा दे और पहिले की तरह इन्द्रप्रस्थ में फिर हमारा शासन चलने लगे।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सञ्जय की समझदारी की बातें

सञ्जय ने कहा—हे धर्मराज ! सुनो, आपका आचरण संसार में प्रसिद्ध है। धार्मिकता में आप ऋषियों से भी बढ़े चढ़े हैं। आप अपने यशस्वी जीवन की अनित्यता को विचारिये और कौरवों के सर्वनाश के लिये प्रयत्न न कीजिये। हे युधिष्ठिर ! यदि कौरव आपका राज्य बिना युद्ध किये न लौटावें, तब भी आपको संग्राम की घोषणा नहीं करनी चाहिये। आपके लिये तो अन्धक और वृष्णि राज्यों से भीख माँग कर खा लेना ही पर्याप्त और श्रेष्ठ है। देखिये, मनुष्य का जीवन दुःखों से पूर्ण चञ्चल तथा अनित्य है। संग्राम में यशोलाभ नहीं होता, फिर आप कौरवदल का संहार करने पर क्यों उतारू हो गये हैं ? हे राजन् ! यह कामनाएँ ही मनुष्य को अन्धा बना देती हैं। इनसे वह धर्माधर्म का और कर्तव्या-कर्त्तव्य का विचार नहीं कर सकता। बुद्धिमान् को तो यही उचित है कि, वह सब से पहिले इसका सर्वनाश कर अपने जीवन को प्रशंसापात्र बनावे। संसार में धनतृष्णा से बढ़ कर कोई भी बन्धन नहीं है। यह पिशाचिनी बरबस मनुष्य को अपने शिकञ्जे में कस लेती है। धर्म की तो यह जानी घोर शत्रु है। अतएव जो मनुष्य इसका नाश कर धर्माचरण करता है, वास्तव में वही ज्ञानी, विज्ञानी और सच्चा धर्मात्मा है। इसके विपरीत-जो मनुष्य इस पिशाचिनी तृष्णा और कामनाओं का स्वागत करता है वह अवश्य अपने सच्चे मार्ग से गिर कर अधर्म का मार्ग स्वीकार करता है। जो मनुष्य पुरुषार्थचतुष्टय से धर्म को मुख्य समझ कर, उसकी रक्षा करता है, वह निश्चय भगवान् भास्कर की भाँति तेजस्वी हो कर, संसार को प्रकाशित करता है; किन्तु पापी मनुष्य को, जिसने कि, धर्म को पैरों से ठुकरा दिया है, सब पृथ्वी का राज्य पा जाने पर भी, निरन्तर दुःखों का ही स्वागत करना पड़ता है।

हे धर्मराज! तुमने शास्त्रों को पढ़ा है और ब्रह्मचर्य का पालन भी किया है। ब्राह्मणों को दान देने और ब्रह्म को यज्ञविधान से प्रसन्न किया है। यही नहीं, बलिक तुमने अपने लिये अनन्त वर्षों पर्यन्त भोगने योग्य स्वर्ग का भी सम्पादन कर लिया है। तुम्हें यह भली भाँति विदित है कि, जो मनुष्य स्त्री पुत्रादि संसार की कामनाओं का ह्रास कर, ऐश्वर्य का सेवन करता है और चित्तवृत्ति के निरोध के लिये योगाभ्यास नहीं करता, वह तभी तक अपने लिये सुखी भले ही समझ ले, जब तक कि, उसका वह ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता और जहाँ वह नष्ट हुआ कि, मानों उस मनुष्य की सभी आशाओं पर पानी फिर गया। सहसा उसके हृदयसागर में कामनाओं की तरल तरङ्गे प्रवाहित होने लगती हैं और वह सदा के लिये कामनाओं का दास बन कर मृत्युशय्या पर पड़ जाता है।

जिस मूर्ख ने आत्म और अनात्म का विचार न किया, धर्म को छोड़ अधर्म से प्रेम किया, सांसारिक विषयों के सम्मुख परलोक के चिरन्तन सुख में अश्रद्धा धारण की, वह मनुष्य मरने के बाद परलोक में भी दुःख ही भोगता है। कहावत प्रसिद्ध है 'गदहे को स्वर्ग में भी बेगार, करनी पड़ती है, पाप और पुण्य दोनों ही भोगने पड़ते हैं। बिना भोगे उनसे छुटकारा होना असम्भव है। कर्त्ता पाप और पुण्य दोनों का ही अनुचर है। वह उनसे जौ भर भी आगे क़दम नहीं बढ़ा सकता। हे धर्मराज! जिस प्रकार श्राद्धों में ब्राह्मणों के लिये सब से उत्तम घृत सुगंधित षड्रस भोजन दिया जाता है उसी प्रकार आपने भी राजसूय यज्ञ में विविध दक्षिणाओं द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों और ऋत्विजों को प्रसन्न किया है। अतएव आपने जो कर्म किये हैं वे भी बड़े प्रशंसनीय हैं और भी आपको विदित होगा कि, जो कुछ भी मनुष्य कर्म कर सकता है वह इसी लोक में कर सकता है, परलोक में कर्म नहीं किये जाते; प्रत्युत कर्मों का भोग किया जाता है। इसी लिये इस लोक का दूसरा नाम कर्मभूमि है। परलोक की प्राप्ति के

लिये जो कुछ भी आपने कर्म किये हैं उनकी प्रशंसा बड़े बड़े महात्मा पुरुषों ने भी की है।

हे महात्मन् ! परलोक में जब मनुष्य पहुँचता है, तब उसे जरा, मरण, भय, भूख, प्यास आदि मानसिक उद्वेग के बढ़ाने वाले सब दोषों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। क्योंकि वहाँ तो केवल इन्द्रियों के सन्तोष के सिवाय और कोई कर्म ही नहीं है। हे राजन् ! बस यही कर्ममीमांसा है। इसलिये आपको उचित है कि, आप पाप पुण्य इन दोनों के फल स्वरूप नरक या स्वर्ग में जाने की कामना न कीजिये; बल्कि निष्काम हो कर कर्म करते हुए योगाभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये। आप जैसे योग्य धर्मात्मा ज्ञानियों के लिये इस अकिञ्चन, नश्वर राज्यसुख की प्राप्ति के लिये बन्धु संहाररूपी भयङ्कर पापकर्म का अनुष्ठान करना शोभा नहीं देता है। आपको तो चाहिये बिल्कुल ब्रह्मनिष्ठ बन कर विज्ञान द्वारा कर्मबन्धन का ही संहार करें और बन्धु संहाररूप पापकर्म के पास भी न फटकें।

हे धर्मराज ! आप लोगों ने ही इस बन्धुसंहार से अपने को बचाने के लिये बारह वर्ष पर्यन्त अनेक आपत्तियों का सहन करते हुए, भयानक वनों में निवास किया है। क्या आप लोग इस आपत्तिसहन करने के पूर्व अपना राज्य कौरवों से नहीं छीन सकते थे ? अवश्य छीन सकते थे; किन्तु आपने धर्म का अध्ययन किया है। अतएव स्वयं कष्ट सहते हुए उस कर्म से बचे रहे। जिस समय अपनी सेना को छोड़ कर आप वनवास के लिये गये थे, उस समय भी आपको अपना भविष्य सोचना आवश्यक था। यदि आप अपनी सेना को साथ ले जाते, तो आज सब आपका मंत्रिमण्डल अनुकूल होता और आपकी सहायता करता। जिन राजाओं को आपने अपने पराक्रम से जीता था, वे सब आपको प्राणपण से कौरवों का सर्वनाश करने के लिये उत्साहित करते। उस समय आप महाप्रतापी सहायवान हो कर क्षण भर में कौरवों से अपना राज्य छीन सकते थे और राजा

धृतराष्ट्र के गर्व को धूल में मिला देते; किन्तु अब आज आप शत्रुओं से भिड़ना चाहते हैं, जब कि, आपकी इस बारह वर्ष की अनुपस्थिति में उन्होंने अपना बल का सञ्चय कर लिया है। हे राजन्! युद्ध के जय पराजय में सदा सन्देह रहता है। न मालूम किस करवट ऊँट बैठे। संग्राम में तो मूर्ख अधर्मियों का भी विजय हो जाता है और धर्मात्मा बेचारे खड़े मुँह ताकते रह जाते हैं। वे बेचारे विवश हो कर, निवृत्तिमार्ग में आ कर, ऐश्वर्य से हीन हो जाते हैं।

धर्मराज! मुझे बड़ा आश्चर्य है कि, आपने कभी कोई अधर्म नहीं किया। आपके सन्मुख आ कर पाप कर्म भी पुण्य कर्म का बाना धारण कर लेते हैं; किन्तु फिर भी आज आपकी बुद्धि में यह विरुद्ध कर्म करने की उत्तेजना कैसे पैदा हो गयी? हे भगवन्! अकारण पैदा होने वाला, धर्म और यश का परम शत्रु मस्तिष्क को घुमा देने वाला यह क्रोध, पापफलों को फलता है। इसी लिये इसका दूसरा नाम तीव्रविष है। इस विप का पान सज्जन ही कर सकते हैं, दुर्जन नहीं। समुद्रमन्थन से निकलने वाले हलाहल का आचमन भगवान् शङ्कर ही कर सकते हैं। इस लिये अब आप इसको पी कर शान्त हो जाइये। भला ऐसा कौन सा मनुष्य होगा जो इस क्रोध को बसाने के लिये पवित्र हृदयमन्दिर में एक दूसरा काला सिंहासन तैयार करावे। आपको तो क्षमा ही चाहिये। क्योंकि 'क्षमा बड़िन को चाहिये छोटिन को उत्पात'। भोग की तृष्णाओं से मुँह मोड़िये और भगवान से अपना नाता जोड़िये। आपके क्रोध करने पर भीष्म द्रोण, कृप, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, कर्ण, दुर्योधनादि का नाश हो जावेगा। इन सब के अभाव में जो आपको सम्पत्ति प्राप्त होगी, बतलाइये उससे आपको क्या सुख प्राप्त होगा? क्या समुद्राम्बरा वसुन्धरा का राज्य पा कर, आप मृत्युमुख से बच सकते हैं? अतएव आप प्रिय अप्रिय, सुख दुःख, हानि लाभ आदि का विचार कर, इस अपने संग्राम के विचार को चित्त से हटा दीजिये। यदि अपने मन्त्रियों पर ही आपने इस कर्म का भार रख छोड़ा है, तो आप उन्हीं पर इस कर्म का

भार छोड़ कर अलग हो जाइये। आपने जन्म से स्वर्गीय सुख के लिये धर्म कर्मों का सञ्चय किया है। अब आप किनारे पर आ कर, क्यों गोते खाते हैं? अपने धर्म कर्म पर आप पानी न फेरें, कुछ शान्त हो कर, हृदय पर हाथ धरें और विचार करें।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का उत्तर

धर्मराज ने कहा—हे सञ्जय! तुम्हारा कहना बिलकुल सत्य और शिरोधार्य है। वास्तव में धर्म से बढ़ कर और कोई कर्म नहीं; किन्तु यह बात तो तुम तब कहते जब कि, यह जान लेते कि, मैं धर्माचरण करता हूँ या अधर्माचरण। धर्मात्माओं के वास्तविक रूप का समझना बड़ा मुश्किल काम है। कोई तो ऐसे दम्भी होते हैं जिनमें अधर्म भी धर्म सा प्रतीत होता है; किन्तु किन्हीं महात्माओं में धर्म भी अधर्म मालूम होता है। कोई मनुष्य सच्चे धर्मात्मा सदा एक से महात्मा प्रतीत होते हैं। इस प्रकार धर्म के स्वरूप को बुद्धिमान् ही जान सकता है। धर्म अधर्म, यद्यपि सर्वदा अपना अपना काम करते हैं; किन्तु आपत्ति के समय भूल से इनका अदल बदल हो जाता है। अपने वर्ण के अनुसार जिसका जो धर्म है वही उसे माननीय है। अध्यापन तथा यज्ञ यह मुख्य ब्राह्मणों का धर्म है। शूरता, प्रजापालन यह क्षत्रियों का धर्म है। खेती, व्यापार यह वैश्यों का धर्म है। इन धर्मों का इन लोगों को सर्वदा पालन करना चाहिये। सञ्जय! सुनो। मैं तुम्हें आपत्ति समय के धर्मों को बतलाता हूँ। ब्राह्मणधर्म का अनुष्ठान क्षत्रिय के लिये अधर्म है और क्षत्रिय धर्म का अनुष्ठान ब्राह्मण के लिये अधर्म है किन्तु आपत्ति समय में यदि यह अपने अपने धर्म का व्यतिक्रम कर परकीय धर्म का आश्रय ले लेवें, तो कुछ हानि नहीं और न वह क्षत्रिय या

ब्राह्मण धर्मच्युत ही माना जावेगा; किन्तु आपत्तिसमय के बीत जाने पर वह फिर अपने मुख्य धर्म पर चला जावे अन्यथा वह अधर्म कहलावेगा। आपत्तिसमय में भी जो अपने ही धर्म पर आरूढ़ रह कर भावी अनर्थों का विचार नहीं करता, वह वास्तव में अविचारशील मनुष्य कहलाता है। यदि यह बात न होती तो विधान में एक वर्ण को दूसरे वर्ण के धर्म का आचरण कर चुकने बाद प्रायश्चित्त करने का उल्लेख न होता। इससे यह सिद्ध है कि, आपत्काल में क्षत्रिय ब्राह्मण के, ब्राह्मण क्षत्रिय के धर्म का अवलम्ब ले कर आपत्काल बिता सकता है। इसी विधान के अनुसार हमने भी एकचक्रापुरी में क्षात्र-धर्म-विरुद्ध और ब्राह्मण-धर्मानुकूल भिक्षावृत्ति से आपत्काल यापन किया। अतएव तुम्हें कर्म करने वालों पर पूर्ण विचार कर के आक्षेपों की वर्षा करनी चाहिये। यदि कोई अनुचित काम करता है, तो वह अवश्य निन्दापात्र है। धीर मनुष्य जिन्हें अपनी मनोवृत्तियों के रोकने की लालसा हो, उन्हें चाहिये कि, वे आत्मतत्व के विज्ञान के लिये सदा सर्वदा ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं में अपनी जीविका रक्खें और अपने परमधेय आत्मतत्व का निरीक्षण करें; किन्तु जो ब्राह्मणत्व से हीन हैं तथा ब्रह्मविद्या से कोसों दूर भागना चाहते हैं, उनका महात्माओं में रह कर भीख माँग कर खाना, महानिन्दनीय कर्म है। उनका वही जाति धर्म है, जिस जाति में उनका जन्म हुआ है। बस यही मेरा सिद्धान्त है। अनेक यज्ञों को करने वाले हमारे पूर्वपुरुष, पिता, पितामह आदि तथा निष्काम संन्यासी भी इसी मार्ग को स्वीकार करते चले आये हैं। सञ्जय! मैं नास्तिक नहीं हूँ। इस कारण इसके विपरीत अन्य मार्ग का अनुचर नहीं बन सकता। पूर्व पुरुषों ने भले बुरे जैसे भी इस मार्ग का अनुसरण किया है, वह ही मुझे प्यारा और श्रेष्ठ है।

हे सञ्जय! पार्थिव-ऐश्वर की तो गणना ही क्या। मैं तो अधर्म से प्रजा-पति के, देवताओं के तथा ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भी ठुकरा दूँगा। इतने पर भी यदि तुझे विश्वास न हो तो अपनी नीतिकुशलता बुद्धिमता

तथा धर्मपरायणता से परमेश्वर के समान समस्त राजमण्डली और संसार का शासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को इस विषय में मध्यस्थ बना कर उनसे पूँछो कि, मैं सन्धि करने पर धर्मात्मा कहलाऊँगा या युद्ध करने पर, केवल यही एक मूर्ति ऐसी है कि, जो निष्पक्ष हो कर, इस मामले का निर्णय कर सकती है। इन्हें न पाण्डवों से प्रेम है न कौरवों से द्वेष, यह तो दोनों ही पक्ष का कल्याण चाहते हैं। अन्धक, वार्ष्णेय, भोज, कुर, सात्यकि, चेदिराज तथा सञ्जय आदि सभी श्रीकृष्णचन्द्र की सम्मति के अनुसार कार्य करते हैं। अतएव प्रबल वैरियों पर विजयलाभ कर ये बन्धु बान्धवों की प्रसन्नता के पात्र हैं। केवल भगवान् कृष्ण के आज्ञानुसार आचरण करने ही से वृष्णि और उग्रसेन का स्वर्गीय सम्पदाओं से सिंहासन जगमगा रहा है। महाबली यादवों ने अपनी सत्यपरायणता तथा भगवान् वासुदेव की आज्ञानुवर्तिता से सर्वश्रेष्ठ विभूतियों को प्राप्त किया है। काशीधाम-वासी बभ्रु राजा ने भी सौभाग्य से भगवान् कृष्ण को पूज्य भ्राता के समान प्राप्त कर अनुपम सम्पत्ति प्राप्त की है। ग्रीष्मोपरान्त जैसे वर्षा ऋतु में मेघमण्डल जलवृष्टि द्वारा प्रजाओं के सन्ताप को शान्त करता है, वैसे ही भगवान् वासुदेव प्रजासुखों के साथ साथ राजा बभ्रु को मनोवाञ्छित ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। प्रिय सञ्जय! अधिक क्या कहूँ। भगवान् कृष्ण सब कार्यों का निर्णय करना जानते हैं। वे महामनस्वी विद्वान् हैं। हम इन्हें सब से श्रेष्ठ और प्रिय समझते हैं। जैसी इनकी आज्ञा होगी हम उसका सिर से पालन करेंगे। हममें से कोई भी इनके वचनों का उल्लंघन नहीं कर सकता।

उन्तीसवाँ अध्याय

कर्म ही सर्व श्रेष्ठ है

भगवान् वासुदेव ने कहा—सञ्जय! सुनो, मैं तो यह चाहता हूँ कि, पाण्डवों को बिना क्षति प्राप्त हुए ऐश्वर्य मिले और महाराज धृतराष्ट्र

की निरन्तर वृद्धि हो। मैं तो पाण्डवों को सदा से समझाता चला आ रहा हूँ कि, भाई! तुम शान्त रहो। देखो—संग्राम में बड़ा भारी भावी अनर्थ छिपा हुआ है। वास्तव में मेरी इच्छा ही यह है कि, इन दोनों बन्धुओं में बन्धुता बनी रहे। कभी कोई लड़ाई झगड़ा न हो, अब तुमसे सुना है कि, राजा धृतराष्ट्र भी सन्धि चाहते हैं तथा धर्मराज युधिष्ठिर का भी सन्धि कर लेना अभीष्ट है, यह सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है और मैं भी इस सन्धि को बड़े हर्ष से स्वीकार करूँगा; किन्तु अभी अभी धर्मराज युधिष्ठिर ने तुमसे कहा था कि, राज्यप्राप्ति के लिये सामर्थ्य रखते हुए भी संग्राम न कर केवल शान्तिधारण कर चुप रह जाना बड़ा कठिन काम है। उधर धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों में लोभ की मात्रा बढ़ती चली जा रही है। लोभ ही पाप का कारण है, यह तो तुम जानते होओगे। भला बतलाओ इन दोनों में फिर क्यों कभी न कभी झटापटी होगी। मेरी सम्मति में अवश्य ही खटकेगी। हे सञ्जय! तुम तो मुझसे और युधिष्ठिर से भी अधिक धर्माधर्म का ज्ञान रखते हो। फिर भी शोक है कि, उत्साहसम्पन्न धर्मानुकूल अपने कुटुम्ब का पालन न करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर के लिये यह कहते हो कि, इन्होंने धर्म का पालन नहीं किया; प्रत्युत उसका सर्वनाश कर डाला। हम लोग जिस धर्म पर निरन्तर विचार किया करते हैं, उसी धर्म के विषय में विद्वान् शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों के अनेक विचार शास्त्रों में विद्यमान हैं। कितने ही विद्वान् कर्म को मोक्ष का साधन मानते हैं और कितने ही कर्मों का परित्याग कर केवल आत्मविज्ञान को मोक्ष का कारण कहते हैं; किन्तु यह इन मतभेदों के होते हुए भी मैं यही कहूँगा कि, जिस प्रकार भोजन की सामग्रियों के केवल ध्यान से क्षुधा की शान्ति नहीं होती; उसी प्रकार धर्म को केवल जान लेने ही से मुक्ति नहीं होगी। जब तक धर्म का आचरण न किया जावे। यह कोई मनगढ़न्त मत नहीं है; बल्कि यह भी विद्वानों का ही सिद्धान्त है। जिन विद्याओं द्वारा कर्म-योग की सिद्धि होती है, वे ही विद्याएँ सफल कहलाती हैं। प्यासे

मनुष्य की प्यास पानी पी चुकने पर ही शान्त होती है केवल यह ज्ञान होने से कि, पानी से प्यास बुझती है और पानी पिया न जावे तो कभी भी प्यास की शान्ति नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि, ज्ञान और कर्म दोनों ही से कार्य चलता है केवल कर्म या केवल ज्ञान कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये अधूरे ठहरेंगे। इसलिये हे सञ्जय! कर्मों द्वारा ही विज्ञान प्राप्त होता है बिना कर्म ज्ञानप्राप्ति होना असम्भव है। क्योंकि कर्म ही ज्ञान का अधिष्ठान है। जो मनुष्य केवल ज्ञान ज्ञान का राग अलापता है और कर्मयोग के विरुद्ध है वह मनुष्य झूँठा है उसका विश्वास करना मूर्खता है।

देखो, कर्म के प्रभाव से ही सूर्यदेव रात्रि और दिन का विभाग करते हैं। चन्द्रमा भी कर्मों द्वारा ही मास पक्ष ग्रह नक्षत्रों के सम्बन्ध को प्राप्त होता है। परलोकवासी देवताओं में कर्म प्रभाव ही से दिव्य शक्तियाँ विद्यमान हैं। समिधाओं से बढ़ने वाले अग्निदेव भी कर्मबन्धन से मुक्त नहीं हैं। समस्त ब्रह्माण्ड के अनन्त भार को वहन करने वाली भगवती वसुन्धरा भी कर्म से शक्तिमती है। संसार को तृप्ति प्रदान करने वाली नदियों में भी कर्मशक्ति विद्यमान है। यह जो मेघवाहन देवराज इन्द्र घनघोर गर्जन के साथ जलवर्षा किया करते हैं, उन्होंने भी देवताओं का साम्राज्य पाने के लिये समस्त सुखों का परित्याग कर, अनन्त काल तक सत्य, धर्म, शम, दम, ब्रह्मचर्य आदि कर्मों का साधन किया था। इस प्रकार कर्म-योगी बन कर ही इन्हें स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त हुआ था। देवगुरु बृहस्पति ने समस्त विषयों को तिलाञ्जलि दे अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पूर्ण समाधिस्थ हो कर ही कर्मयोग द्वारा यह ऊँचा आसन प्राप्त किया है। हे सञ्जय! ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, विश्वेदेव, यम, कुबेर आदि सभी ने अपने अपने कर्मों के अनुसार दिव्य फल प्राप्त किये हैं। कर्मों का महत्व सब से बढ़कर है। निरन्तर धर्म कर्मों द्वारा ही उत्तम फल की प्राप्ति होती है। भाई सञ्जय! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी जातियों के

धर्म को जानते हो। तुमसे कुछ छिपा नहीं है। फिर भी तुम कौरवों का पक्ष ले कर पाण्डवों के धर्म की विडंबना करते हो। शोक। धर्मराज वेदशास्त्रों के ज्ञाता हैं। इन्होंने अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों को भी किया है। अश्व-शास्त्र, हस्तिशास्त्र तथा शस्त्रविद्या और कवच धारण करने की प्रक्रियाओं तथा विज्ञानों में आप सब से अधिक बुद्धिमान् हैं। इन्हें यदि कोई ऐसा उपाय प्राप्त हो जावे कि कौरवों को विना सताये राज्य मिल जावे तब तो यह भयङ्कर भीम को रणकर्म से रोक कर अपनी धर्मरक्षा अवश्य ही करेंगे ; किन्तु यदि इसके विपरीत कोई उपाय न सूझा तो वे अवश्य अपने पैतृक क्षात्रधर्म का आश्रय लेंगे और शत्रुसंहार के लिये तत्पर हो जावेंगे। चाहे इसमें उन्हें यमराज के भवन का अतिथि ही क्यों न होना पड़े। सञ्जय ! तुम बार बार यह कह रहे हो कि, सन्धि हो जाय, सन्धि हो जाय। कृपया यह तो बतलाओ कि संग्राम करने में धर्मरक्षा है या संग्राम से विमुख रहने में धर्मरक्षा है। इसका उत्तर मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ। देखो सञ्जय ! सब से पहिले तुम्हें वर्णाश्रम के धर्म कर्मों पर ध्यान देना चाहिये। उसके बाद अपनी सम्मति प्रदान करनी चाहिये। शास्त्रकारों की आज्ञा है कि, ब्राह्मण पढ़ें पढ़ावें, यज्ञ करें करावें, दान देवें और लेवें, मुख्य मुख्य तीर्थों की यात्रा करें। तथा क्षत्रिय के लिये बतलाया है कि वह क्षात्र-धर्म से पुत्रों के समान प्रजा का पालन करें। अपने कर्त्तव्य कर्म में कभी आलस न करे। सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन करे और अनेक यज्ञों का अनु-ष्ठान करता हुआ पुण्यात्मा बन कर गृहस्थाश्रम का सेवन करे। इस प्रकार धर्मात्मा बन कर क्षात्र धर्म का पालन करने वाला वीर क्षत्रिय ब्रह्मलोक पहुँ-चता है। वैश्य का धर्म है कि वह विद्योपार्जन कर चुकने के बाद कृषि, गोपालन और व्यापार द्वारा पुरुषार्थी बन कर धनोपार्जन करे तथा ब्राह्मण क्षत्रियों का हितकारी बनता हुआ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। शूद्रों के लिये ब्राह्मणों की वन्दना द्विजातियों की सेवा के द्वारा अपनी आजीविका करने के सिवाय अन्य धर्म नहीं हैं। क्योंकि शास्त्रकारों ने शूद्रों के लिये वेदा-

गमन आदि का निषेध किया है। राजाओं का धर्म यह है कि, वे चारों वर्णों का पुत्रवत् लालन पालन करें और उनको अपने अपने धर्मों के प्रतिकूल आचरण करने से बचावें। स्वयं सब कामनाओं से रहित रहें और प्रजाओं पर समता की दृष्टि रक्खें। धर्मात्मा राजाओं का तो यह कर्त्तव्य है कि, वह किसी धर्मात्मा श्रेष्ठ महात्मा के आ जाने पर प्रजा को उसका उपदेश सुनने के लिये पूर्ण तथा स्वतन्त्र आज्ञाप्रदान कर दें; किन्तु जो नरपति दुष्टप्रकृति के होते हैं वे इस बात को नहीं समझते; प्रत्युत भाग्यवश स्वदेश में पधारे हुए महात्माओं का अनादर करते हैं। जब दुष्टों का बल बढ़ जाता है तब वे अभागे बलगर्व से चूर हो कर और लोगों की सम्पत्ति लेने के लिये जी में ललचाया करते हैं। इसी कारण राजाओं में भारी संग्राम छिड़ जाता है। तदर्थ अनेक अस्त्रों शस्त्रों और कवचों का आविष्कार होता है। प्राचीनकाल में इन्द्रदेव ने चोर और डाकू आदि आततायियों के लिये ही इन सब शस्त्रों का आविष्कार किया था। क्योंकि प्रजा को दुःख देने वाले हिंसक मनुष्यों का नाश करने से पुण्य और धर्म की प्राप्ति होती है; किन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि वही लुटेरों चोरों और डाकुओं का भयङ्कर कर्म कौरवों ने स्वीकार किया है। महाराज धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र दुर्योधन ने पाण्डवों के राज्य को छीन लिया है यह अधर्म नहीं तो और क्या है? जितने भी दुर्योधन के अनुचर कौरव हैं वे सब आज प्राचीन धर्म से भ्रष्ट हो गये हैं। उन्होंने इस समय राज्यमद हो जाने के कारण पूर्वपुरुषों का धर्म बिल्कुल भुला दिया। डाकू चाहे बलात्कार से धन हर ले जावें, चाहे चुरा कर ले जावें—यह दोनों ही प्रकार से निन्दनीय है। सञ्जय! अब तुम्हीं सोचो कि कौरवों ने जो पाण्डवों के साथ व्यवहार किया है वह क्या डाकुओं से कम है। मेरी सम्मति में कौरवों और दस्युओं में कोई अन्तर नहीं है। क्रोधी दुर्योधन महालालची है। वह चाहता है कि, जिस किसी का भी राज्य हो मैं उसका किसी न किसी तरह सर्वेश्वर बन जाऊँ। पाण्डवों की धरोहर उसने

पचा ली। इसे क्या तुम धर्मानुकूल कर्म ही समझते हो? सञ्जय! याद रखो यदि इस राजलक्ष्मी के पाने के लिये हमारा नाश होजावे तो हमें उसका कुछ शोक नहीं। क्योंकि वह हमारा विनाश सर्वथा प्रशंसनीय होगा। क्योंकि पैतृक सम्पत्ति से बढ़ कर संसार में कोई वस्तु नहीं। उसके पाने के लिये संग्राम करना धर्मानुकूल है। देखो सञ्जय! दुर्मति मदोन्मत्त दुर्योधन से सब राजाओं के सन्मुख जो कि उसकी सहायतार्थ एकत्र हुए हैं मैंने जो तुम्हें राजधर्म सुनाये हैं उन सब का अक्षरशः वर्णन करना। तुम्हें स्वयं भरी सभा में किये गये कौरवों के पाप कर्मों की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। आह! जिस समय महापतिव्रता देवी द्रौपदी मासिक-धर्म काल में अपने महल में एकाकिनी बैठी थी; दुष्ट दुर्योधन ने उस दशा में भी उसे भरी सभा में पकड़वा मँगाया। उस समय भीष्म द्रोण आदि कौरव दल के नेताओं ने यह भयङ्कर पातक अपनी आँखों से बराबर देखा; किन्तु उस दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा का तनिक भी निरादर नहीं किया। क्या यह उनका महापातक नहीं है? उस समय बूढ़ों से ले कर बालकों तक जितने कौरव थे, इकट्ठे हो कर इस कर्म की निन्दा करते और दुर्योधन को रोकते तो क्या उनका धर्म नष्ट हो जाता? तब यदि धृतराष्ट्र इस महाअनर्थ का संवरण कर लेते तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती और यह अब प्रारम्भ होने वाला कौरवदल का सर्वनाश न हो पाता। राजमहिषियों का सभी को सम्मान करना चाहिये; किन्तु दुष्ट दुःशासन ने तनिक भी विचार न किया; बल्कि उसने भरी सभा में राजाओं और पूज्य गुरुजनों के सामने द्रौपदी को ज़बर्दस्ती ला कर खड़ा कर दिया। उस निराश्रया अबला ने जब अपनी रक्षार्थ करुण रोदन किया तब केवल एक विदुर को छोड़ कर और कोई भी वहाँ उसका रक्षक न था। शेष सभी सभासद इस भयङ्कर अन्याय को देखते रहे। बड़े बड़े महारथी भी उस समय दीनता के कारण मुँह में मसी लगाये हुए बैठे रहे। अकेले विदुर ने स्पष्ट अक्षरों में नीच दुःशासन के इस भयङ्कर कर्म की निन्दा की। सञ्जय!

मालुम होता है तब तुम्हारी धर्मबुद्धि चरने चली गयी थी, जो इस अन्याय को शान्त न कर सके थे ; किन्तु अब युधिष्ठिर को उपदेश देने के लिये आये हो। जिस प्रकार भयङ्कर तूफान मल्लाह अपनी नौका को निकाल ले जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने उस अधर्मसभा में अपनी स्वयं रक्षा की। आह! सभा में खड़ी हुई द्रौपदी से कर्ण का यह कहना कि, हे द्रौपदि! अब तुम्हारे पति तो हार गये तुम्हें अब दुर्योधन के सिवाय आश्रय देने वाला संसार में कोई नहीं है। इसलिये तुम अब दुर्योधन की दासी बन कर अपना शेष जीवन बिताओ—मेरे हृदय में तीर सा खल रहा है। कर्ण की वह तीक्ष्ण बाण अर्जुन की हड्डियों को पार कर चुका है। याद रक्खो अब तक वही चुभा हुआ है। सञ्जय! जिस समय धर्मात्मा पाण्डव कृष्णमृगचर्म को पहिन कर वनवास के लिये जा रहे थे, उस समय दुष्ट दुःशासन ने कहा था कि—देखो यह सब पाण्डव नपुंसक हो कर अपना काला मुँह किये सदा के लिये नरकलोक को जा रहे हैं। पापी शकुनि ने द्यूतसभा में धर्मराज से कहा कि, हे युधिष्ठिर! अब तो तुम अपने भाइयों को भी हार गये। अब तुम्हारे पास सिवाय द्रौपदी के और कुछ न रहा। इस कारण उसे भी एक दाँव पर रख दो। इस प्रकार इन अनुचित सभ्यताशून्य वाक्यों को तो तुम जानते ही हो। यह समस्त वाग्बाण अब तक पाण्डवों के हृदयों में चुभ रहे हैं। ऐसी दशा में भी मैं यही चाहता हूँ कि, कौरव फाँसी पर न लटकें। उनका सर्वनाश न हो और सदा चैन से रहें। मेरा विचार है कि, मैं वहाँ जाऊँगा और यह प्रयत्न करूँगा कि, इन दोनों में सन्धि हो जावे। यदि मैं इस कार्य में सफल हो गया तो मैं समझूँगा कि, मैंने कोई बड़ा अलौकिक कार्य किया। कौरव समाज, यदि मेरे वहाँ जाने पर सत्कार से मेरे नीतिवचनों को सुनेगा, तो अवश्य उसका कल्याण होगा और कहीं यदि कौरवों ने मेरे वचनों की उपेक्षा की तो निश्चय समझ लो महारथी अर्जुन, गदाधारी भीम आदि महारथी, कौरवों का संहार करने के लिये तुले खड़े हैं ही।

वे सदा के लिये राज्यभ्रष्ट कर भस्म कर दिये जायँगे। सञ्जय! कौरव दल में एक बड़ा भारी क्रोधवृक्ष पैदा हो गया है, जिसका असली स्वरूप दुर्योधन है। उस वृक्ष की प्रकाण्ड शाखा कर्ण को समझना चाहिये। शकुनि ने छोटी उपशाखा का स्वरूप धारण किया है। दुःशासन रूप उसके सुन्दर फल फूल हैं और बड़ी मज़बूत जड़ रूप से मूर्ख राजा धृतराष्ट्र बैठा हुआ है। इसके विपरीत महाराज युधिष्ठिर एक धर्मवृक्ष के समान है, जिसकी बड़ी शाखा अर्जुन और भीम छोटी शाखा है। नकुल सहदेव उसके मनोहर मधुर फल फूल हैं और मूल, इस महावृक्ष के वेद भगवान और पूज्य ब्राह्मण हैं। हे सञ्जय! सुनो—राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन वन के समान हैं और पाण्डव सिंह के समान हैं। इसलिये तुम्हें चाहिये कि, तुम न तो वन का नाश करो और न वन में रहने वाले सिंह ही का शिकार करो। क्योंकि जब तक सिंह वन में है तब तक वन को कोई नहीं काट सकता; किन्तु जहाँ वह वन में से निकल गया, फिर वन स्वयं नष्ट हो जाता है। अर्थात् सिंह जंगल की रक्षा करता है और याद रक्खो कौरव यदि लताएँ हैं, तो पाण्डव साल वृक्ष हैं, विना वृक्ष का सहारा लिये लताओं का जीवित रहना असम्भव है। देखो सञ्जय! पाण्डव तो सेवा के लिये भी कमर कस कर खड़े हैं और संग्राम के लिये भी भयङ्कर धनुष हाथ में ले कर खड़े हैं। महापराक्रमी पाण्डवों को शत्रुओं का संहार करते क्या देर लगती है। धर्मात्मा पाण्डव बड़े बाँके योद्धा हैं और सामर्थ्य-शाली हैं। अब भी वे सन्धि करने के लिये तैयार हैं। वरन् अब तुम जो मुनासिब समझो सो जा कर कौरवों से कहना सुनना। मैंने सब कुछ कह दिया, अब कहने को कुछ भी शेष नहीं रहा है।

तीसवाँ अध्याय

सञ्जय का प्रत्यावर्तन

जो कुछ कहना था भगवान् वासुदेव जी ने सञ्जय से खूब कह दिया। सञ्जय भी अब इसके आगे और क्या कहता, निदान वह अपने स्थान हस्तिनापुर जाने के लिये तैयार हुआ और चलते समय महाराज युधिष्ठिर से उसने कहा—हे धर्मराज ! आपका सदा मङ्गल हो। अब मैं आप से आज्ञा चाहता हूँ और साथ साथ यह भी प्रार्थना करता हूँ कि, यदि क्रोध के आवेश में मेरे मुख से किन्हीं अनुचित शब्दों का प्रयोग हो गया हो तो आप क्षमा करें। अब मैं जा रहा हूँ। चलते समय भगवान् वासुदेव, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि आदि वीर नरपालों से भी प्रार्थना करता हूँ कि, वे मेरी ओर शान्त हो कर प्रसन्न दृष्टि से देखें।

धर्मराज ने कहा—हे सञ्जय ! तुम कौरवों के योग्य मधुर सत्यभाषी दूत हो, शील, स्वभाव, सन्तोष तथा तुम्हारी निर्भयता सराहनीय है। अनुचित वचनों का आक्षेप सुन लेने पर भी तुम्हें क्रोध नहीं आता। तुम्हारी बातें धर्म-रहस्य से भरी हुई हैं। तुम्हारे अन्दर अधर्म अहिंसा का लवशेष भी नहीं है। तुम्हारी मधुर एवं नीतिपूर्ण बातों से किसी का जी नहीं दुःखाया जा सकता। तुम्हें हमने कई बार देखा है और इस समय तो तुम्हारी बातें सुन कर यही मालूम होता है कि, साक्षात् महात्मा विदुर ही कौरवों के दूत बन कर यहाँ आ गये हों। तुम अर्जुन के तो प्राणों से भी प्यारे मित्र हो। हे सञ्जय ! तुम अब हस्तिनापुर जाओ और वहाँ जा कर विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मणों की मेरी ओर से सेवा करना तथा विधि-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन कर तपोवन में रहने वाले वेदपाठी कुलीन वृद्ध महानुभावों को मेरा प्रणाम कहना और सब लोगों से कुशल प्रश्न करना। राजा धृतराष्ट्र के पुरोहित आचार्य तथा ऋत्विजों और विशुद्धवंशी

शीलवान्, जो थोड़ा सा भी धर्माचरण करने वाले वृद्ध हों, उन सब का मेरी ओर से कुशल पूछना। हे प्रिय सञ्जय! जो लोग देश में व्यापार, कृषि तथा प्रजापालन द्वारा अपना निर्वाह करते हों उनकी भी कुशल पूछ लेना। परमनीतिज्ञ अस्त्रविद्याविशारद अस्त्रों के मन्त्र, उपचार, प्रयोग, और संहार, इन चारों का विभाग करने वाले परम श्रद्धेय गुरुदेव द्रोणाचार्य जी के चरणों में भी मेरा नतमाथ प्रणाम समर्पण करना। जिन्होंने गुरुदेव के समीप अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदाध्ययन तथा अस्त्रविद्या में कौशल प्राप्त किया है उन अश्वत्थामा का भी कुशल समाचार पूछना। हे सञ्जय! थोड़ा कष्ट सहन कर के कृपाचार्य जी के घर भी चले जाना और उनके चरणों को छू कर तथा मेरा नाम ले कर प्रणाम कहना। महापराक्रमी दयालु, तपस्वी, शास्त्रवेत्ता, अतुल धैर्यशाली, पितामह भीष्म जी के समीप जा कर मेरी ओर से चरण छू कर वन्दना करना। हे सञ्जय! कौरवों के अधिष्ठाता प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र से भी कुशल समाचार पूछना। साथ में महापापी दुर्मति दुर्योधन से भी, जो कि समस्त पृथ्वी का राज्य भोगना चाहता है, कुशल पूछना। कौरवों में सब से बल पराक्रम में अधिक अपने बड़े भाई दुर्योधन की शह पर चलने वाले दुष्ट दुःशासन की भी कुशल पूछ लेना। समस्त राजाओं में परस्पर सन्धि करा देने का निरन्तर प्रयत्न करने वाले वीर महाराज बाल्हीक से भी मेरी ओर से कुशल समाचार पूछना और प्रणाम कहना! परम दयालु स्नेहपात्र शान्त महाराज सोमदत्त से भी मेरा प्रणाम कहना। हे सञ्जय! सोमदत्त के पुत्र परम तेजस्वी भूरिश्रवा से हमारा कुशल प्रश्न कहना। क्योंकि वह आज कल कौरवों में सब से अधिक सत्कारपात्र है और हमारे मित्र सोमदत्त जी का पुत्र है। हे सञ्जय! इनके अलावा जो कौरवों में हमारे बन्धु छोटे बड़े बराबर वाले विद्यमान हैं, उन सब से यथायोग्य प्रणाम आशीर्वाद तथा कुशल समाचार कहना सुनना। अब तो दुर्योधन पाण्डवों से युद्ध करेगा ही, इस कारण अन्य केकय, अम्बष्ठ, शाल्वक, त्रिगर्त तथा चारों दिशाओं

के राजाओं से भी मेरा कुशल पूछ लेना। सेनाओं के अश्वारोही, गजारोही, रथी, महारथी आदि सभी से मेरा कुशल कहना और उनका पूछ लेना। हे सञ्जय! मन्त्री, महामंत्री, द्वारपाल, सेनापति, मुंशी और बुद्धिमान् धर्मनिष्ठ वेश्यापुत्र युयुत्सु आदि से भी कुशल प्रश्न पूछना। हे सञ्जय! जो दर्प, बटमारी, जुआ आदि दुर्गुणों द्वारा धन हर लेने में अद्वितीय तथा अजेय है, उस चित्ररथ से तथा अपने छल कपट और अधर्माचरण द्वारा कौरवों का मान रखने वाले पाँसे को स्वाधीन कर, धन छीन लेने वाले गान्धार देश के राजा शकुनि से भी कुशल समाचार पूछना। जो मूर्ख दुर्योधन का सलाहकार परम मित्र तथा पाण्डवों को केवल एक रथ की सहायता से जीतने की डींग मारता है उस सूतपुत्र कर्ण का भी कुशल समाचार पूछना। मेरे पूज्य गुरु, भर्त्ता, पिता, माता, स्नेही, मंत्री आदि सभी पदों के योग्य मेरे जीवनसर्वस्व महात्मा विदुर जी का भी अच्छी तरह से कुशल पूछना। हम लोगों की माताओं के समान जो वृद्ध स्त्रियाँ हों, उनसे तथा माताओं से भी मेरा प्रणाम कहना तथा पूछना—आप लोगों के पुत्र पौत्र आदि सब प्रसन्न तो हैं? आपकी आजीविका का कौरव लोग ध्यान तो रखते हैं? इसके बाद हे सञ्जय! तुम कहना कि, धर्मराज युधिष्ठिर कुशलपूर्वक हैं और यदि तुम हमारे घर की स्त्रियों को पहिचानते हो, तो उनसे उनका कुशल पूछ कर, कहना कि, आप लोग सावधान हो कर अपने कुल की संरक्षता में रहती हुई अपने धर्म का पालन तो कर रही हो? अपने पूज्य गुरुओं की और अपने प्राणेश्वरों की योग्य सेवा से उन्हें प्रसन्न और अनुकूल रखना ही आप लोगों का धर्म है। हे सञ्जय! यदि तुम हमारी पुत्रवधुओं को पहिचानते होओ तो तुम उनका कुशल समाचार पूछना और उनसे मेरा आशीर्वाद कहना तथा राजमहलों में जा कर जो राजकन्यायें अपने पतिमन्दिर से घर आयीं हों उन्हें हृदय से प्यार करना और मेरी ओर से उन्हें आशीर्वाद प्रदान करना और कहना कि, तुम्हारे पति तुम्हारे और तुम अपने पतियों के

सर्वदा अनुकूल बनी रहो। यही धर्मराज युधिष्ठिर ने तुम्हें आशीर्वाद दिया है। हे सञ्जय ! अपने अनुपम रूप रंग द्वारा मनुष्यों के हृदयों को वश में करने वाली सुन्दर सुगन्धित वस्त्र भूषण तथा सोलहों शृङ्गारों से सजी रहने वाली वेश्याओं से भी कुशल प्रश्न पूछना। कौरवों के दास दासी तथा और जो कोई भी उनके अधीन रहने वाले लूले लँगड़े दीन मनुष्य हों उनका भी कुशल पूछना और मेरा कुशल उन्हें सुनाना और उनसे कहना कि, युधिष्ठिर ने पूछा है तुम्हारी आजीविका निर्विघ्न चली जा रही है या नहीं ? इन सब दीन दुःखियों की ख़ैर खबर पूछ कर उनसे कहना कि, तुम लोग घबराओ नहीं। अपने अपने पापों का फल सभी को भोगना पड़ता है। तुम लोगों ने अवश्य कोई न कोई परलोक में पापकर्म किया है जिसका कि, तुम्हें यह दण्ड मिल रहा है। अस्तु, घबराने की बात नहीं है अब तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त शीघ्र ही समाप्त होने वाला है। मैं शीघ्र ही शत्रुओं का संहार कर तुम लोगों का भरण पोषण करूँगा। देखो सञ्जय ! दुर्योधन से कहना कि, मेरे कर्म के विजय का मुख्य चिन्ह यही है कि, मैंने जो ब्राह्मणों की आजीविका के लिये बन्धान बाँध दिया था, वह अब तक बराबर चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। मैं जब अपनी प्रदान की हुई आजीविका से ब्राह्मणों का भरण पोषण होता देखता हूँ तब मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। हे सञ्जय ! ऐसे वज्रमूर्खों का भी कुशल पूछना कि, जो केवल अपना पेट भरने के लिये ही निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं तथा दिशा विदिशाओं से आ कर दुर्योधन के अधीन रहने वाले अन्य मान्य पुरुषों से भी कुशल समाचार पूछना। अनेक नरपालों से जो कि, दुर्योधन की सहायतार्थ वहाँ आये हैं उनसे भी कुशल पूछना और मेरा कुशल कहना। यद्यपि दुर्योधन ने उन वीर योद्धाओं को पाया है जिनकी समानता रखने वाले पृथिवी पर अन्य योद्धा नहीं है; तथापि धर्म में प्रबल शक्ति है। उससे विजय पाना असम्भव है। इसी कारण मैंने सनातन धर्म का आश्रय ले कर शत्रुओं का संहार करना श्रेयस्कर समझा

हैं। देखो सञ्जय ! दुर्मति दुर्योधन से यह बात कान खोल कर कह देना कि, तेरी जो यह इच्छा है कि, मैं निष्कण्टक हो कर पाण्डवों पर शासन करूँ। यही तुझे दुःख देने वाली है तथा यह तेरी इच्छा आकाश-कुसुम के समान व्यर्थ और झूठी है। हम लोग भी अब ऐसे नहीं हैं कि, जो तेरी इस इच्छा को यों ही पूरी हो जाने दें। अतएव हे दुर्योधन ! अब तुझे उचित है कि, या तो हमें इन्द्रप्रस्थ प्रदान कर दे अथवा संग्राम में मर मिटने के लिये तैयार हो जा।

इकतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का संदेश

धर्मराज ने कहा—देखो सञ्जय ! भले, बुरे, बूढ़े, बालक, बली, निर्बल आदि सब को ही विधाता अपने अधीन रखता है। जगन्नियन्ता जगदीश मूर्ख को चतुर और चतुर को मूर्ख बना देता है। वह जीवों के जन्म लेने से पूर्व ही उसके पूर्वकर्मानुसार सब चीज़ों को बाँट देता है; किन्तु यह सब कुछ जानते हुए भी दुर्योधन हम लोगों की परीक्षा करना चाहता है। तुम्हें चाहिये कि, तुम उसे जा कर खूब अच्छी तरह समझा दो कि, हे दुर्योधन ! अब पाण्डवों की सेना में बड़ा आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है और वह निरन्तर यही विचार कर रही है कि, ऐसे समय में क्या करना चाहिये। देखो सञ्जय ! तुम यहाँ से जाओ और जिस समय महाराज धृतराष्ट्र समस्त कौरव दल के साथ मिल कर बैठे हों उस समय उनके चरणों का स्पर्श करते हुए मेरा प्रणाम कहना और कुशलप्रश्न के बाद यह कहना कि, हे महाराज ! पाण्डव आपके ही पुण्यप्रताप से अपना सुखमय जीवन बिता रहे हैं। हे राजन् ! आपने स्वयं ही बालपन में पाण्डवों को राजगद्दी दी थी; किन्तु इस समय राज्यभ्रष्ट हो कर, दुःख

उठाने वाले पाण्डवों को उपेक्षा की दृष्टि से न देखिये। यह तृष्णा पिशाचिनी ऐसी बुरी बला है कि, इसका पेट समस्त भूमण्डल का राज्य पा जाने पर भी नहीं भरता ; किन्तु सब से अच्छी बात तो यह है कि, हम सब लोग मिल कर यदि राजलक्ष्मी का उपभोग करें, तो हमारे इस प्रेम और ऐक्य भाव को देख कर, कोई भी शत्रु हमें पराजित करने का व्यर्थ प्रयास नहीं करेगा। इसके उपरान्त हे सञ्जय ! तुम पितामह भीष्म से मेरी ओर से नतमाथ प्रणाम कर कहना कि, हे पितामह ! आपने नष्टप्राय शन्तनुवंश का पुनरुद्धार किया है। अतएव आप ऐसी सम्मति से काम लीजिये जिसके द्वारा आपके पौत्रों में प्रेम बना रहे। इसी प्रकार महात्मा विदुर से भी कह देना कि, आपको युधिष्ठिर अपना बड़ा हितैषी समझते हैं। कृपा कर आप महाराज धृतराष्ट्र को ऐसी सुमति प्रदान करें जिससे संग्राम न ठने। अन्त में दुर्योधन से कहना कि, भाई ! पाण्डव बड़े सहनशील और धर्मात्मा हैं। अतएव उन्होंने द्रौपदी का चीरहरण कुन्ती का अपमान सह कर तथा मृगचर्म धारण कर, भयङ्कर वनवास आदि को सहर्ष सहन किया। दुःशासन के द्वारा देवी द्रौपदी का केशाकर्षण देख कर भी सामर्थ्यशाली वीर पाण्डवों ने केवल इसी कारण कुछ नहीं कहा कि, उन्हें बन्धु बान्धवों का संहार नहीं करना था। वे चाहते हैं कि, आपस में प्रेमभाव बना रहे। बन्धुता में शत्रुता न ठन जावे ; किन्तु अब हमें हमारा उचित पैतृक भाग अवश्य मिलना चाहिये, पराये भाग पर मन डिगाना ठीक नहीं है। पराये धन से मन हटा कर यदि हमें तुम हमारा राज्य दे दोगे तो आपस में अवश्य शान्ति और प्रेम बना रहेगा। देखो हम पाँच भाई हैं। इसलिये हमें पाँच ग्राम अर्थात् एक अविस्थल, दूसरा वृकस्थल, तीसरा माकन्दी चौथा वारणावत और पाँचवा जो तुम्हारा मन चाहे सो दे दो। ऐसा करने से सब बन्धुओं में प्रेमभाव बना रहेगा। भाई भाई, पिता पुत्र सब आपस में हिल मिल कर आनन्द करें तथा पाञ्चालदेशाधिपति कौरवों की सभा में बड़ी प्रसन्नता से सम्मिलित होवें। मैं चाहता हूँ कि,

कौरव और पाञ्चालदेशी नरपाल तथा बन्धुओं में युद्ध न हो कर प्रेम बना रहे। मुझमें जितनी शक्ति मिलने की है उतनी ही संग्राम करने की भी है। जितना मैं धर्माचरण कर सकता हूँ उतना ही मैं अर्थोपार्जन भी कर सकता हूँ। इसी प्रकार जैसा मैं कोमल हूँ वैसा ही कठोर भी हूँ।

बत्तीसवाँ अध्याय

सञ्जय की कौरव-सभा में उपस्थिति

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! महात्मा धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन कर तथा पाण्डवों की आज्ञा ले कर सञ्जय हस्तिनापुर पहुँचा और राजमन्दिर में जा कर उसने द्वारपाल से कहा कि, हे द्वारपाल! जाओ महाराज धृतराष्ट्र से जा कर कहो कि, पाण्डवों के पास से सञ्जय आया है और आपके दर्शन करना चाहता है। यदि इस समय महाराज जागते हों, तो उनसे कहना कि, सञ्जय आपके सुनने योग्य पाण्डवों का सन्देशा लाया है। यह सुन कर द्वारपाल अन्दर गया और धृतराष्ट्र से कहा कि, हे महाराज! मैं नतमाथ प्रणाम कर प्रार्थना करता हूँ कि, सञ्जय जो आपके दूत बन कर पाण्डवों के यहाँ गये थे वे अब वहाँ से लौट कर आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं, कहिये उनके लिये क्या आज्ञा है?

महाराज! धृतराष्ट्र ने कहा—आह! सञ्जय की तो मैं प्रतीक्षा ही कर रहा था। द्वारपाल! जाओ उसे शीघ्र ही भेजो, वह तो मुझसे हर समय मिल सकता है। उसके लिये कोई रोक टोक नहीं है। इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पा कर सञ्जय राजमहल में गया जहाँ पर अन्य कौरवों से परिवेष्टित धृतराष्ट्र बैठे हुए थे।

वहाँ जा कर सञ्जय ने कहा—हे महाराज! आपको प्रणाम कर मैं निवेदन करता हूँ कि, आज मैं पाण्डवों के पास से आया हूँ। धर्मराज ने

आपका कुशल पूछते हुए कहा है कि, आपके पुत्र पौत्र तथा पुरजन परिजन बन्धु बान्धव मंत्री आदि जो कि, आपके आश्रय में आजीविका करते हैं सब आनन्द से तो हैं? यह सुन कर धृतराष्ट्र ने सञ्जय की प्रशंसा करते हुए पूछा कि, हे सञ्जय! धर्मराज युधिष्ठिर अपने पुत्र और मंत्रियों सहित कुशल से तो हैं?

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! धर्मराज अपने मंत्रियों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हैं। पहिले जिस बात का आपने विचार किया था वही बात ठीक निकली। हे राजन्! मैं पाण्डवों के अमोघ चरित्रों के विषय में विशेष क्या कहूँ। मेरी सम्मति में केवल इतना ही कहना काफी हो गया कि, वे लोग यही चाहते हैं कि, विशुद्ध धर्म तथा धन प्राप्त होवे। वे बड़े उदार सौम्य और विचारवान् हैं। हे महाराज! प्राणियों पर दया करना तथा अहिंसा ही उनका परमधर्म है। वे धन की अपेक्षा धर्म का ही अधिक सञ्चय करते हैं। धर्मार्थशून्य सौख्य से तो वे कोसों दूर भागते हैं। जिस प्रकार काठ की पुतली डोरे के इशारे पर इधर उधर नाचती फिरती है, उसी प्रकार प्रारब्धवशात् मनुष्य भी जगत में चलता है। धर्मराज के इस नियम को देख कर, मैं प्रारब्ध को पुरुषार्थ से कहीं बढ़ कर मानता हूँ; किन्तु आपके प्राचीन अवर्णनीय महादोषों को देख कर भी अपने मन में यही निश्चय करता हूँ कि, यशोलाभ भी परमेश्वर के ही अधीन है।

हे राजन्! जैसे सर्प पुरानी केंचली को कठिन कल्मषों के समान उतार कर फेंक देता है, उसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पापों को तुम्हारी ओर ढकेल दिया है और वे स्वयं अपनी स्वाभाविक सौम्यता से अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। आपको एक बार अपने कर्मों का निरीक्षण करना चाहिये। आपके कर्म धर्मार्थशून्य और सच्चरित्रता से रहित हैं। केवल इन्हीं कर्मों के कारण आज संसार में आपकी निन्दा हो रही है और नरक में आपकी प्रतीक्षा हो रही है। आप केवल पुत्रप्रेम में फँस कर, पाण्डवों को धोखा

दे रहे हैं। आप इस सन्दिग्ध राज्य को स्वयं अकेले भोगना चाहते हैं। यह सब बातें जो कि अनीति से भरी हुई हैं चारों ओर फैल गयी हैं। मेरी सम्मति में यह काम आपके योग्य नहीं है। निर्बुद्धि, अकुलीन, क्रूर, दृढ़ वैर, कायर और शौर्यहीन मनुष्य को ही आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं। किन्तु जो बल-बुद्धि-सम्पन्न, कुलीन, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, सुखी और जितेन्द्रिय होता है तथा सत्यासत्य एवं धर्माधर्म का विवेक रख कर व्यवहार करता है ; उसे स्वतन्त्र सुख की प्राप्ति होती है। आपत्तिकाल में भी धर्म और नीति के अनुसार चलने वाले सच्चे मंत्रियों से युक्त, बुद्धिमान् मनुष्य को कठिन और भयङ्कर कर्मों का अनुष्ठान करना असम्भव सा प्रतीत होता है। महाराज! अपराध क्षमा हो। आजकल जितने आपके राजकर्मचारी तथा अमात्यगण हैं, वे सब मिल कर सर्वदा यही सम्मतियाँ प्रदान किया करते हैं कि, सदा बुरे भयङ्कर कर्म करते रहो और पाण्डवों को एक बीघा भर भी ज़मीन मत दो। प्रभो! ये सब विचार भविष्य को अन्धकार में डालने वाले हैं। इनसे अन्त में यही होगा कि, कौरवों का सर्वनाश और भारी प्राणसङ्कट। आज यदि धर्मराज पापों का बदला पापों ही से लेना प्रारम्भ कर दें, तो निश्चय बेमौत ही सारे कौरव मारे जायँगे और संसार में तुम्हारी भारी निन्दा होगी। देखिये, अर्जुन पर देवताओं की पूरी कृपा है। तभी तो वह सशरीर स्वर्ग की यात्रा के लिये गया था। जिस प्रकार देवर्षि नारद स्वर्ग मर्त्य सर्वत्र ही घूमा करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन भी आता जाता है। उसका स्वर्ग में भी पर्याप्त स्वागत किया जाता है। वह अपने सम्मुख आये हुए योद्धाओं के पुरुषार्थ पर अपना प्रभाव जमा लेता है तथा स्वयं बलवान् हो कर विजय प्राप्त करता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। मानव जाति की उन्नति गुणों द्वारा ही होती है और गुणों की प्राप्ति कर्मों द्वारा होती है। इस कारण उन्नति अवनति दोनों ही क्षणिक वस्तुएँ हैं। राजा बलि ने भी खूब सोच समझ कर यही निर्णय किया था कि, उन्नति के केवल ईश्वर ही कारण हैं। आँख, कान, नासिका, त्वचा, जिह्वा,

इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही मनुष्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञानेन्द्रियाँ जब विषयों से तृप्त हो जाती हैं, तब मनुष्य को प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस तृप्त दशा ही में मनुष्य का कर्त्तव्य है कि, वह हानि लाभ में समान भाव धारण कर इन्द्रियों को विषयों से हटाने का उद्योग करे। मैं सर्वांश में इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि, मनुष्य सदा शुभकर्म करता ही रहता है। क्योंकि मानवजन्म माता पिता के कर्मानुरूप प्राप्त होता है और वह अन्न द्वारा पुष्ट होता है। सुख, दुःख, प्रिय, अप्रिय आदि मनुष्य के ही अधीन हैं। वही इसका एक मात्र आधार है। अपराधी की निन्दा और सत्कर्मकर्त्ता की प्रशंसा हुआ करती है। राजन्! आप कौरवों और पाण्डवों में झगड़ा करा रहे हैं। इस कारण आप निन्दा के पात्र हैं। आपकी यह करतूत प्रजाओं का संहार करा देगी। जैसे शुष्क ईंधन को आग भस्म कर डालती है, वैसे ही पाण्डवों द्वारा कौरवों का भी सर्वनाश हो जायगा। संसार में यदि कोई अन्धा हो कर पुत्र के मोह में जकड़ा हुआ है, तो केवल आप हैं। आपको बार बार समझाया गया, किन्तु आपने जुआ खेलने के समय भी कुछ ध्यान नहीं दिया। अन्त में अब आपको ही इसका विषम फल चाखना पड़ेगा। आप विश्वासपात्रों को दण्ड दे कर, निकालते जा रहे हैं और अविश्वासी झूँठे लोगों का दल जमा कर रहे हैं।

हे राजन्! आप याद रक्खे। इन कर्मों से आपकी शक्तियों का ह्रास हो जायगा और आप स्वप्न में भी इस रत्नगर्भा वसुन्धरा की रक्षा न कर सकोगे। हे नरेन्द्रमणे! आज मैं रथयात्रा के कारण थक गया हूँ। अतः आपसे विनय करता हूँ कि, आप मुझे आराम करने की आज्ञा प्रदान करें। कल मैं प्रातःकाल सभा में आ कर धर्मराज की बातें सुनाऊँगा। महाराज धृतराष्ट्र ने हम कल सुनेंगे यह कह कर सञ्जय को आराम करने के लिये घर जाने की आज्ञा दे दी और वह प्रणाम कर घर को चला गया।

प्रजागर पर्व

तैंतीसवाँ अध्याय

विदुरनीति

सञ्जय के चले जाने पर राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा—जाओ विदुर को अभी बुला लाओ। महाराज की आज्ञा पा कर विदुर को साथ ले कर द्वारपाल ने कहा कि, महाराज! विदुर जी आ गये हैं। आपका दर्शन करना चाहते हैं।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा—उन्हें शीघ्र ही बुला लाओ। उनसे तो मैं हर समय मिल सकता हूँ।

द्वारपाल ने महात्मा विदुर जी से कहा—महाराज! अन्दर चलिये। आपके लिये तो कभी निषेध है ही नहीं।

महात्मा विदुर जब महलों में पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि, महाराज धृतराष्ट्र माथा नवाये बड़ी चिन्तित दशा में बैठे हुए हैं। उस समय के सन्नाटे को तोड़ते हुए विदुर ने कहा कि, हे राजन्! मैं आपकी आज्ञा से उपस्थित हुआ हूँ। कहिये मेरे योग्य क्या काम है? राजा धृतराष्ट्र ने लंबी साँसे ले कर कहा कि, हे विदुर! अभी पाण्डवों के यहाँ से लौट कर सञ्जय आया था। वह मुझे उलटी सीधी बातें और मेरी निन्दा कर के चला गया। कल राजसभा में वह आवेगा और पाण्डवों का संदेशा सुनावेगा। न मालूम पाण्डवों ने क्या कहा होगा। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है नींद तक नहीं आती। तुम बड़े प्रवीण धर्मार्थ के तत्त्व के ज्ञाता हो। इस कारण मुझे ऐसा उपाय बतलाओ जिससे मेरी आन्तरिक अशान्ति शान्त हो जावे। सञ्जय जब से लौट कर आया है, मुझे बड़ी उद्विग्नता है। न मालूम कल वह और क्या क्या कहेगा?

विदुर ने कहा—महाराज! सुनिये, सेनारहित जो दुर्बल मनुष्य सब से विरोध रखता है, उसे और जिसका द्रव्यापहरण हो गया है उसकी और कामी तथा चोर को कभी निद्रा नहीं आती है; किन्तु इन चारों बातों में से तो

कोई बात तुममें है नहीं। सम्भव है इसलिये तुम्हें नींद न आती हो कि, तुम पराया राज्य लेने का प्रयत्न कर रहे हो।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! मैं तुम्हारे धार्मिक नीतिवचनों को सुनना चाहता हूँ। क्योंकि राजा हो कर भी विद्वानों में तुम्हारा सम्मान है।

विदुर ने कहा—हे राजन्! सुनिये। जिस मनुष्य में राजचिन्ह होते हैं, वह अवश्य ही एक न एक दिन राजसिंहासन पर अधिकार करता है। जिन पाण्डवों को आपने वनवास दिया है, उनमें सभी राजचिन्ह मौजूद हैं। उनका अपमान अनुचित है। वे अब तक आप लोगों से प्रार्थना ही करते रहे हैं। मेरी सम्मति में आपको उचित है कि, आप उन्हें बुला कर राजगद्दी दे देवें। अन्यथा वे राजलक्ष्मी का उपभोग तो करेंगे ही, क्योंकि वे समस्त राजचिन्हों से युक्त हैं। आप सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी नेत्रहीन होने के कारण राजसिंहासन पर बैठने के अधिकारी नहीं हैं। आप धर्मज्ञ हैं। यह सब बातें आपसे छिपी हुई नहीं हैं; किन्तु तो भी आप राज्यलोभ में फँस कर परायी थाती दबा कर बैठे हुए हैं; सत्यपालन, बल, वीर्य, पराक्रम, दया, भाव, सौम्यता के कारण तथा आपके बुढ़ापे के विचार से पाण्डव अनन्त आपदायें सह रहे हैं। उनमें यह सामर्थ्य है कि, वे संग्राम कर अपना अधिकार आपसे छीन सकते हैं; किन्तु वे केवल आपके बड़प्पन का विचार करते हैं और संग्राम नहीं करते। हे राजन्! कर्ण, दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, इन चारों पर ही समस्त राज्य का भार डाल कर आपको सुख शान्ति और सम्पदा की आशा करना दुराशा मात्र है। यह तो अनर्थों की जड़ हैं अब तो नित नूतन सङ्कटों का सामना करना पड़ेगा। आत्मअनात्मपन, यथाशक्ति कर्मों का अनुष्ठान, सहिष्णुता तथा धर्मपरायणता इन चारों गुणों के होते हुए भी जो पुरुषार्थी बना रहता है, वही बुद्धिमान् है। यदि इनके विपरीत आचरण किया जाता है, तो इनको पुरुषार्थ से भ्रष्ट होना पड़ता है, सत्कर्म करने वाला तथा बुरे कर्मों से बचने वाला ही बुद्धिमान् होता है। आपके पुत्र दुर्योधन आदि स्वयं सत्कर्म

न करते हुए भी सदाचारहीन हो कर धर्म की निन्दा करते हैं। फिर भी आप उन्हें बुद्धिमान समझ कर उनको राज्य का सर्वेश्वर बना रहे हैं। शोक! हर्ष, गर्व, लज्जा, अहङ्कार आदि से विचलित हो कर जो अपने धर्माचरण और कर्त्तव्य में प्रमाद करता है, वही मूर्ख है। जिसके कर्मों तथा मानसिक विचारों को साधारण नहीं जान पाते वही मनुष्य मूढ़मति कहाता है। शीत, उष्ण, भय, प्रेम संयम तथा निर्धनता आदि विघ्नों के आने पर भी जो अपने धर्म पर अटल रहता है वही सच्चा वीर और बुद्धिमान् है। जिसकी बुद्धि सदा धर्मार्थ की अनुचरी बनी रहती है और काम द्वारा भी जो अपने प्रयोजन को बुद्धिमानी से सिद्ध कर लेता है वही चतुर है। अर्थात् निष्काम बन कर धर्मार्थसंचय करने से ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। सच्चे मोक्षार्थी के लिये कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है, क्योंकि संसार के समस्त ऐश्वर्यों का अन्तर्भाव मोक्ष में हो जाता है। देखिये न, राजा जनक ने समस्त ऐश्वर्य को पा कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया था। बुद्धिमान् अपनी शक्ति के अनुकूल ही काम करना चाहते और करते हैं। वे किसी का भी तिरस्कार नहीं करते। जो वक्ता के तात्पर्य को शीघ्र ही समझ कर उसकी बात को ध्यान से सुनता है और तात्पर्य समझ कर ही उसे स्वीकार करता है, दूसरे के कामों में विना समझे बूझे हस्तक्षेप नहीं करता, वही बुद्धिमान् है। हे राजन्! जो दुर्लभ पदार्थ की चाहना नहीं करते, नष्ट हुए का शोक नहीं करते तथा आपत्तियों के आने पर घबराते नहीं, वे ही सच्चे पण्डित कहलाते हैं। यह मैं कर सकूँगा या नहीं इसका विचार कर जो काम को प्रारम्भ कर अधूरा नहीं छोड़ते तथा अपने समय को व्यर्थ न खो कर मन को स्वाधीन रखते हैं; वे ही पण्डित कहलाते हैं। जो विद्वान हैं वे अपने कर्त्तव्य कर्मों का निरन्तर अनुष्ठान करते हुए अपने ऐश्वर्य को बढ़ाया करते हैं, वे किसी भी अहितकारी पुरुष में भी ईर्ष्या द्वेष या अनादर की दृष्टि नहीं रखते।

जिसे अपने सन्मान में हर्ष और अपमान में विषाद नहीं होता; बल्कि जो गम्भीर जलाशय की भाँति आपत्तियों के आने पर शान्त बना रहता है,

वही पण्डित है। जिसने समस्त पदार्थों को क्षणिक समझ कर अनुचित ममता का परित्याग कर दिया है तथा कर्त्तव्य कर्मों की युक्तियाँ और उपाय जानता है, वही विद्वान् है। शुद्ध संस्कृत वाणी बोलने वाला अनेक इतिहासों को जानने वाला, लोकाचारचतुर अनेक कल्पनायें करने वाला तथा शीघ्रता से ग्रन्थ का आशय समझ लेने वाला विद्वान कहलाता है।

जिसे समस्त शास्त्रों पर अधिकार है तथा जिसकी बुद्धि शास्त्रों के अनुकूल चलने वाली है जिसने पूज्यों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया वही बुद्धिमान् है। हे राजन्! अब ज़रा मूर्खों के लक्षण भी सुन लीजिये। देखिये सब से पहिले नंबर का मूर्ख तो वह है कि जिसे शास्त्रज्ञान तो नाम मात्र का भी न हो; किन्तु बड़ाभारी अभिमानी हो। निर्धन और ग़रीब हो कर भी अमीरों की तरह रहता हो, जुआ चोरी आदि नीच कामों से धन सञ्चय करना चाहता हो। अपना काम तो करे नहीं दूसरों का काम हमेशा करता हो और मित्रों के लिये बुरे से बुरा काम करने पर उतारू हो; वह वज्रमूर्ख कहलाता है। हे राजन्! यह सब लक्षण राजकुमार दुर्योधन में मौजूद हैं। जो सच्चे प्रेमियों का निरादर कर कुटिल मनुष्यों से प्रेम करता है और बलवानों से बैर बाँधता है, वह बड़ा ही मूर्ख है। जो कर्ण शकुनि आदि आपके प्रेमपात्र हैं, उनका भी यही हाल है। वे लोग आपसे थोड़ा सा भी प्रेम नहीं रखते और आप उन्हें जीवनसर्वस्व समझ रहे हैं। जो पाण्डव आपके सच्चे प्रेमी तथा बन्धु हैं और आपको अब तक सत्कारदृष्टि से देखते हैं, उन्हींका आप निरादर कर रहे हैं। याद रखिये, मित्रों का संहार कर शत्रुओं से प्रेम करने वाले दुराचारी जन सदा क्लेश भोगते और महामूर्ख कहलाते हैं।

हे राजन्! अपने कर्त्तव्य को नौकरों के भरोसे छोड़ने वाला जो संशयालु (शक्की) शीघ्र करने योग्य कर्मों को विलंब से करता है, वह मूर्ख कहाता है। पितरों का श्राद्ध न करने वाले, सच्चे मित्रों से हीन, देवताओं से द्वेष रखने वाले नास्तिकों की महामूर्खों ही में गिनती है। बिना निमंत्रण

के सर्वत्र उपस्थित हो जाने वाला, न कुछ पूछने पर भी बहुत बोलने वाला अविश्वासियों का विश्वास करने वाला महामूर्ख होता है। जो दूसरों को दोषी ठहरा कर निन्दा करता है और स्वयं उसी काम को करता है तथा सामर्थ्यहीन हो कर भी क्रोध करता है वह मूर्ख होता है। हे राजन्! जो धर्मार्थ हीन हो कर अपनी शक्ति को न पहिचान कर, मुफ़्त ही में अलभ्य लाभ की लालसा रखता है, वह मूर्ख कहलाता है। अब कृपया दृष्टि डालिये अपनी ओर—कि आपको यह राज्य कैसे प्राप्त हुआ है। क्या आप इतनी सामर्थ्य रखते हैं जो इस अलभ्य लाभ को पचा सकें। हे राजन्! कुपात्रों को शिक्षा देने वाला गुप्त रीति से राजमहिषियों का भोग करने वाला तथा कंजूसों की सेवा करने वाला मनुष्य मूर्ख कहलाता है। जिस मनुष्य ने अनन्त धनराशि और विद्या द्वारा गौरव पा चुकने पर भी नम्रता का परित्याग नहीं किया और जो सरल जीवन व्यतीत करता है, वही मतिमान् है। भला बतलाओ संसार में उससे बढ़ कर भी कोई नीच और नृशंस मनुष्य होगा जो रक्षा करने वाले मनुष्य का भाग बिना निकाले ही स्वयं स्वादिष्ट भोजन कर लेता हो तथा अकेले ही सुन्दर वस्त्राभूषणों का उपभोग करता हो। हे राजन्! आपको यह ध्यान रहे कि, एक मनुष्य के पाप का फल अनेक भोगते हैं। अन्त में फल भोगने वाले तो साफ छुट जाते हैं किन्तु पापी की बड़ी दुर्गति होती है: केवल आपके इस पापकर्म का फल भोग कर आपके पुत्र के पुत्र तो साफ छुट जावेंगे; किन्तु आपका उद्धार होना असम्भव है। राजन्! यह सम्भव है कि धनुर्धारी का छोड़ा हुआ बाण एक आध का प्राणहरण कर ले और लक्ष्य से गिर भी जावे; किन्तु बुद्धिमानों का चलाया हुआ बुद्धिशस्त्र कभी नहीं चूकता। वह तो राजा सहित राष्ट्र का सर्वनाश कर के ही मानता है। देखिये, सब से प्रथम केवल एक बुद्धि से कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय कर साम, दान, भेद, दण्ड को स्वाधीन कीजिये। आँख, कान, नाक, त्वचा, जिह्वा, इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों का दमन कर सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय,

और द्वैधीभाव आदि षड्गुणों का विज्ञान प्राप्त कीजिये। स्त्रीसंसर्ग, शिकार, द्यूत, सुरापान, कठोरवाक्य, भयङ्कर दण्ड, अपव्यय आदि सात दोषों को छोड़ कर ही सुख पावोगे। इसी प्रकार परमार्थसाधन के लिये भी बुद्धितत्व से नित्य वस्तु के स्वरूप को जान कर शम, दम, उपशम, श्रद्धा, इस साधनचतुष्टय से काम, क्रोध, लोभ पर अधिकार जमाओ। पूर्वोक्त पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को स्वाधीन रक्खो। भूख, प्यास, शोक, ममता, बुढ़ापा आदि का ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि इनके सातों विषयों का त्याग कर देने पर ही परमानन्द की प्राप्ति होगी। विष और शस्त्र तो पीने और लगने ही से प्राणों को हर लेते हैं; किन्तु राजाओं का गुप्त मन्त्र यदि असावधानता से सर्वत्र फैल जावे तो वह समस्त राज्य का नाश कर डालता है। स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन अकेले ही नहीं करना चाहिये। केवल स्वयं ही किसी विषय पर विचार कर निर्णय न करे तथा एकाकी मार्ग भी न चले और सब के सो जाने पर स्वयं जागता भी न रहे। महाराज! जैसे समुद्र पार जाने के लिये नौका को छोड़ अन्य कोई साधन नहीं, उसी प्रकार सत्यनिष्ठा को छोड़ कर स्वर्गप्राप्ति का भी अन्य साधन नहीं है। केवल अद्वितीय बुद्धि ही को मोक्षसाधन समझना चाहिये। लोग क्षमाशील मनुष्य को असमर्थ और निर्बल समझने लगते हैं। बस क्षमा में यदि कोई दोष है तो यही है; किन्तु यह दोष भी वे ही लोग समझते हैं जो मूर्ख और दुर्जन हैं। क्षमा के बराबर कोई बल नहीं है। निर्बलों के लिये तो क्षमा गुण है और वह शक्तिशालियों का भूषण है। क्षमाशील के लिये कोई कार्य दुःसाध्य नहीं है। वह चाहे तो संसार को अपने अधीन कर सकता है। जैसे रेतीले मैदान में जहाँ कोई तिनका तक न हो, पड़ी हुई आग स्वयं शान्त हो जाती है उसी प्रकार जिसके हाथ में क्षमा की तलवार है, उसका कोई दुर्जन बाल बाँका भी नहीं कर सकता। क्रोधी असहनशील मनुष्य स्वयं और अपने साथियों को दोषों में फँसा सकता है। संसार में कल्याण का मार्ग

केवल एक धर्म है। शान्ति का साधन केवल एक मात्र क्षमा है। विद्या से तृप्ति और अहिंसा से सुखों की प्राप्ति होती है। हे राजन्! जैसे साँप चूहों को गड़प कर जाता है, वैसे ही भूमि भी उदासीन पराक्रमहीन राजा को तथा केवल अपने देश में पड़े रहने वाले ब्राह्मण को निगल लेती है। अर्थात् विद्वान् ब्राह्मण विदेशों में यदि न जा कर घर में पड़ा रहे तो उसका सम्मान नहीं होता और राजा यदि सब से निर्वैर हो कर रहे तो वह भी अपने राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। संसार में वही मनुष्य सब से श्रेष्ठ गिना जाता है जो कभी दुर्वचन नहीं बोलता और दुर्जनों का सत्कार नहीं करता। पुरुष और स्त्रियों का एक ही सा हाल है। स्त्रियाँ जिस मनुष्य पर विश्वास रखती हैं उस मनुष्य का समस्त नारीमण्डल भी विश्वास करने लगता है उसी प्रकार एक मनुष्य जिसकी प्रतिष्ठा करता है, उसकी अन्य लोग भी प्रतिष्ठा करते हैं। निर्धन यदि अनेक पदार्थों की लालसा करे और निर्बल मनुष्य क्रोध करे तो निश्चय वह शक्तिहीन हो जाता है। क्योंकि उन दोनों के शरीर सूख कर काँटा हो जाते हैं। उदासीन गृहस्थ और अनेक काम काज करने वाला भिखारी दोनों ही अपने अपने आश्रमों के विपरीत कर्म करने के कारण निरादर पाते हैं। हे राजन्! सामर्थ्य होने पर भी पाप न करने वाले तथा निर्धन होते हुए भी दान देने वाले मनुष्य स्वर्गमन्दिर से भी ऊँचे चढ़ जाते हैं। इसके तो प्रत्यक्ष उदाहरण आपके पाण्डव ही हैं, जो सामर्थ्यसम्पन्न होते हुए भी आप लोगों को क्षमा कर रहे हैं और राज्यभ्रष्ट होते हुए भी ब्राह्मणों का सन्मान करते हैं। न्याय से सञ्चय किये गये द्रव्य का दान पात्र ही को देना चाहिये। कुपात्र को दान देना द्रव्य का दुरुपयोग करना है। आपने अपने ऐश्वर्य का अधिकारी भी कुपात्र दुर्योधन ही को बना रक्खा है। जो पाण्डव सच्चे पात्र हैं, उनसे वे पृथक् रहते हैं। जो दरिद्री हो कर भी तपश्चर्या नहीं करता और धनी हो कर भी कृपणता करता है, इन दोनों ही को गले में पत्थर बाँध कर पानी में डुबो देना

चाहिये। जिसने संन्यास धारण कर योगविद्या को सीखा है और जिसने संग्रामभूमि में शत्रुओं के सन्मुख सहर्ष प्राणों की बलि दी है; ये दोनों ही सूर्यमण्डल का भेदन करने वाले हैं। हे राजन् ! मनुष्यों को स्वाधीन करने का सब से उत्तम उपाय तो साम है और मध्यम दान है। युद्ध तो सब से अधम उपाय है। इसलिये आप पाण्डवों के साथ जो अधम उपाय संग्राम है उससे काम लेना चाहते हो यह अनुचित है, आपको उचित है कि, आप साम द्वारा काम लेवें युद्ध कदापि न करें क्योंकि युद्ध में दोनों पक्षों की हानि है। यदि इस लोक परलोक दोनों में भला चाहते हो तो छल कपट को त्याग दो। उत्तम, मध्यम, अधम. इन तीनों प्रकार के मनुष्यों को तीन प्रकार ही के उत्तम मध्यम और अधम कर्मों में लगाना चाहिये। आपने जो नीच शकुनि और कर्ण आदि को ऊँचे ऊँचे काम सौंप दिये हैं यह आपकी भूल है। इसका परिणाम भला न होगा। हे महाराज ! स्त्री, पुत्र और सेवक यह तीन सदा पराधीन होते हैं। यह जिसके पास रहते हैं उसीके आज्ञानुसार इन्हें काम करना पड़ता है। इसलिये दुर्योधन भी आपके अधीन है। आप यदि चाहो तो उसे डाँट डपट कर सीधा कर सकते हैं और पाण्डवों को राज्य दे सकते है। याद रखिये, पराये धन का अपहरण, पर-स्त्री-गमन और बन्धुओं का त्याग यह तीनों ही अवगुण सर्वनाश करने वाले हैं। आपने लोभ से पाण्डवों का राज्य झपट लिया। द्रौपदी की लज्जा लेने का दुःसाहस भी आप कर चुके और अपने प्रिय भतीजों को भी त्याग चुके। इस प्रकार यह तीनों अवगुण आपमें प्रत्यक्ष मौजूद हैं। काम, क्रोध और लोभ यह तीनों नरक के द्वार हैं तथा इनसे आत्मस्वरूप को भूल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस लिये इन तीनों का त्याग कर देना ही उचित है। हे राजन् ! वरप्राप्ति, पुत्रलाभ और राज्यलाभ इन तीनों की प्राप्ति में एक ही सा आनन्द प्राप्त होता है; किन्तु आपत्तिमग्न शत्रु के उद्धार करने में इससे भी बढ़ कर आनन्द प्राप्त होता है। भक्त, सेवक और मैं तुम्हारा हूँ; इस बात को

कहने वाला—ये तीनों ही रक्षा करने के योग्य हैं। आपत्ति समय में भी इनकी रक्षा करना न भूले। बलवान राजा को उचित है कि, वह इन चार बातों से सदा बचता रहे। एक तो नीच मनुष्य के साथ परामर्श न करे, आलसी से बात न करे, अधिक सुखी मनुष्य से गुप्त विचार न करे। हे सञ्जय! धनी गृहस्थों के यहाँ चार मनुष्यों का रहना परम आवश्यक है। १ वृद्ध सम्बन्धी, २ कुशल कुलीन मनुष्य, ३ दरिद्री मित्र और ४ सन्तानहीन बहिन, वृद्ध सम्बन्धी कुल-धर्मों का उपदेश देता है, चतुर कुलीन पुत्रों की शिक्षा की देखरेख रखता है, निर्धन मित्र हित की बातें सुनाता है और सन्तान रहित बहिन द्रव्य की रक्षा करती है। जिस समय देवराज इन्द्र ने बृहस्पति जी से पूँछा कि, तत्काल फल देने वाली क्या क्या वस्तुएँ हैं तब उस समय बृहस्पति ने कहा —देवताओं का मनोरथ, मेधावी का प्रताप, विद्वान् की विनम्रता, पापों का नाश यह तुरन्त फल देते हैं। कीर्ति-कामना से हीन हो कर अग्निहोत्र करना, मौनव्रत धारण करना, वेदों का स्वाध्याय करना और यज्ञों का अनुष्ठान करना—यह अभयदान देने वाले पदार्थ हैं। तात्पर्य यह है सच्चे मन से किये गये कर्मों का ही उत्तम फल प्राप्त होता है। माता, पिता, गुरु, परमेश्वर, और अग्नि—ये पाँचों अग्निस्वरूप हैं। इनकी सेवा प्रमाद रहित हो कर करनी चाहिये। हे राजन्! देवता, पितर, अतिथि, भिक्षुक और मनुष्यों का यथाविधि सत्कार करने से संसार में यश मिलता है। देखिये, यह पाँच प्रकार के मनुष्य कभी पीछा नहीं छोड़ते आप चाहे जहाँ जावें आपके यह सदा अनुचर ही रहेंगे। एक तो मित्र, दूसरा शत्रु, तीसरा मध्यस्थ, चौथा पालन करने हारा, पाँचवाँ सेवक समुदाय। मनुष्य के पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उनमें से यदि एक भी विषयों में फँस जाती है तो उसके द्वारा मनुष्य की बुद्धि का वैसे ही नाश हो जाता है जैसे चर्मपात्र में ज़रा सा भी छेद हो जावे तो सब पानी निकल जाता है हे राजन्! संसार में ऐश्वर्य और सुख की लालसा रखने वाले मनुष्य को इन छः दोषों को सर्वथा त्याग देना चाहिये—१ निन्दा, २ तन्द्रा,

३ भय, ४ क्रोध, ५ आलस्य, और ६ दीर्घसूत्रता, (शीघ्र करने योग्य कार्य को देर से करना)। जैसे टूटी हुई नाव को छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य को उचित है कि, वह उपदेश न करने वाले आचर्य और मूर्ख ऋत्विज को त्याग देवे तथा प्रजा का पालन न करने वाले राजा को, कठोर वचन कहने वाली स्त्री को, गाँव में रहने की इच्छा करने वाले ग्वाले को, वन में रहने वाले नाई को भी त्याग देवे। किन्तु सत्य, दान, पुरुषार्थ, स्नेह, क्षमा, धैर्य, इन छः गुणों का परित्याग मनुष्य को कभी न करना चाहिये। नित्य धनागम, सर्वदा नीरोगता, स्नेहपात्री एवं प्रियवादिनी स्त्री, स्वाधीन पुत्र, धनोपार्जन करने योग्य विद्या, संसार में यही छः वास्तविक सुख हैं। हे राजन्! जिस मनुष्य ने काम, क्रोध, शोक, मोह, मद, मान, इन छः दोषों पर विजय प्राप्त कर लिया है, वह जितेन्द्रिय कहाता है। उसके पास कोई पाप फटकने नहीं पाता। इसी कारण उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। हे राजन्! चोरों की गुज़र असावधानों से, वैद्यों की रोगियों से, दुराचारिणी स्त्रियों की दुराचारी पुरुषों से, पुरोहितों की यजमानों से, राजा की झगड़ालुओं से और विद्वानों की मूर्खों से होती है और कोई अन्य उपाय इनकी आजीविका का नहीं हैं। गौ, सेवक, कृषि विद्या, स्त्री और शूद्र के साथ संगति इन छः बातों पर सदा ध्यान रखना चाहिये। यदि क्षण भर के लिये भी इनसे दृष्टि हटायी तो बस इनका नाश हो जाता है।

संसार में इन छः प्रकार के मनुष्यों ही से पुरुषों का अपमान होता है। व्युत्पन्न विद्यार्थी पहिले उपकार करने वाले गुरु का अपमान करता है। विवाहित पुत्र माता की निन्दा करता है। काम बन जाने पर स्वार्थी उस काम में सफलता प्राप्त कराने वाले की निन्दा करता है। कामवासना पूरी हो जाने पर मनुष्य स्त्री का अपमान करता है। सागर पार हो जाने पर नाव की निन्दा की जाती है और रोगी चंगा हो कर वैद्यराज की निन्दा करता है। महाराज! स्वस्थ रहना, ऋणी न होना, स्वदेश में रहना, सज्जनों का समागम, अनुकूल आजीविका, भयरहित निवास मन्दिर, यह संसार

के छः परम सुख हैं। दूसरों से द्वेष रखने वाला, दयालु, असन्तोषी, क्रोधी, नित्य शङ्कित रहने वाला, दूसरों के भाग्य से जीने वाला मनुष्य सदा दुःखी ही रहता है। स्त्री, जुआ, शिकार, सुरापान, कठोर वाणी, भयङ्कर दण्ड, सम्पत्ति-नाशक काम यह दोष राजाओं को त्याग देने चाहिये। हे राजन्! जिनका सर्वनाश होने को होता है उनमें ये आठ दोष पहिले से ही आ जाते हैं—१ विद्वानों से द्वेष, २ ब्राह्मणों से लड़ाई, ३ ब्राह्मणों का धन-हरण, ४ ब्राह्मणों को मारने की इच्छा, ५ ब्राह्मणों की निन्दा करना ६, ब्राह्मणों की प्रशंसा को न सहना, ७ किसी भी काम में ब्राह्मणों का स्मरण न करना, ८ भिक्षुक ब्राह्मण के अवगुण निकालना। अतएव संसार में सुख चाहने वालों के इन दोषों से बचे रहना चाहिये।

हे कौरवेश्वर! मित्रों का संग, अधिक धनागम, पुत्र-मिलन, विषय सुखों की प्राप्ति, समयानुकूल मधुर वचन, अपनी उन्नति, मनोरथों की सफलता, साधुओं के समाज में सत्कार—यह आठ गुण अपने हर्ष के सार हैं। बुद्धि, कुलीनता, जितेन्द्रियता, शास्त्र-विज्ञान, पराक्रम, मितभाषिता यथाशक्ति दान करना और कृतज्ञता, इन आठ गुणों ही से मनुष्य की शोभा है। हे राजन्! यह शरीर एक मन्दिर है जैसे घर में दरवाज़े होते हैं, वैसे इसमें भी दो आँखें, दो कान, दो नासिका-छिद्र, मुख, गुदा, मूत्रेन्द्रिय यह नौ दरवाजे हैं। जैसे मकान में मकान का भार सहने के लिये स्तम्भ (खम्भे) होते हैं, वैसे ही इस शरीर रूपी मकान में भी अविद्या, काम, कर्म यह तीन स्तम्भ हैं। जैसे घर की देखरेख रखने वाला कोई न कोई अवश्य होता है, वैसे ही इसमें भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँच द्रष्टा हैं। जिस प्रकार मकान में उसका मालिक रहता है, उसी प्रकार इस शरीर रूपी मकान में रहने वाला जीव है। इस प्रकार इस स्थूल शरीर का विज्ञान जानने वाला ही ज्ञानी कहलाता है। मतवाला, विषयी, क्रोधी, भूखा, उतावला, लोभी, डरपोंक और कामी, इन दस मनुष्यों पर धर्म का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य, इनसे सदा बचता

रहे। जो राजा काम क्रोध रहित हो कर सत्पात्र को धन दान देता है, भले बुरे की पहिचान रखता है, जो शास्त्रज्ञ है और जो शीघ्रता से काम करता है, उसे समस्त राजमण्डल सिर नवाता है। जो राजा प्रजा का विश्वासपात्र है, अपराधी के अपराध पर निष्पक्ष विचार कर दण्ड की व्यवस्था करता है, दण्ड की व्यवस्था के साथ साथ जिसका मन कठोर नहीं है, उस राजा पर महालक्ष्मी सर्वदा प्रसन्न रहती है। जो राजा दुर्बलों का अपमान नहीं करता, सावधानी से शत्रुओं के दोषों को जान कर अपने राज्य का शासन करता है, बलवानों से विरोध करना नहीं जानता और समय पड़ने पर अपने पराक्रम से संसार को चकित कर देता है, वही धीर वीर और राजाओं में श्रेष्ठ है। जो राजा आपदाओं के सहन करने की शक्ति रखता है, सर्वदा सावधानी से पुरुषार्थ करता है और दुःख के समय को सहर्ष सहन कर लेता है वह सच्चा महात्मा है और उसका कोई भी शत्रु नहीं रहता। जो राजा व्यर्थ विदेशों में नहीं घूमते, परस्त्रीसंसर्ग और पाखण्ड से सदा बचते रहते हैं, जो पापियों से मित्रता नहीं करते, चोरी और चुग़लखोरी का नाम नहीं लेते तथा सुरापान से कोसों दूर भागते हैं, वे ही स्वर्गीय जीवन का आनन्द लूटते हैं। हे राजन्! जिसके धर्मार्थ काम का प्रारम्भ क्रोधपूर्वक नहीं होता, जो पूछने पर अपनी यथार्थ और स्पष्ट सम्मति प्रदान करता है, जो मित्र और स्नेहियों से व्यर्थ विवाद नहीं करता तथा जो अपमानित होने पर क्रुद्ध नहीं होता, वही बुद्धिमान है। ईर्ष्या रहित, दयावान, शक्तिशाली होने पर भी द्वेष भाव रहित, लड़ाई झगड़ों से दूर रहने वाला मनुष्य सब जगह आदर पाता है। साधारणरीत्या जीवन व्यतीत करने वाला, बलवान् होता हुआ भी, किसी की निन्दा नहीं करता, आत्मश्लाघा रहित दुःखों को सहन करने वाला तथा मधुरभाषी मनुष्य सब का कृपापात्र होता है। जो दबे हुए वैर को उभारने की कोशिश नहीं करता, पराक्रमी हो कर भी गर्व नहीं करता, कठिन से कठिन आपत्ति आने पर भी अनुचित कार्य नहीं करता, वही मनुष्य सुन्दर स्वभाव वाला

कहलाता है। जो अपने सुख में अधिक प्रसन्न नहीं होता और परायी आपत्ति को देख कर, हर्षित नहीं होता, तथा किसी वस्तु का दान दे कर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुष कहलाता है। देश देश के आचारों विचारों को, (रीति रिवाज) तथा विविध भाषाओं को और ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णों के धर्मों को जानता हुआ जो ऊँच नीच का विवेक रखता है, वह मनुष्य जिधर निकल जाता है, वहीं सब पर अपना प्रभाव जमा लेता है। जिसने मोह, मत्सर, ढोंग, पापकर्म, राजशत्रुता, चुग़लखोरी, बहुत जनों से वैर, मत्त, उन्मत्त, दुष्टों से विवाद आदि अवगुणों को त्याग दिया है, वह सब का प्रधान नायक बन जाता है। जो मनुष्य दान, होम, देवपूजन, प्रायश्चित्त आदि आत्म-सुधारक मङ्गल कार्यों को सदा सर्वदा करता है वह देवताओं का भी प्यारा होता है तथा वे उसकी सदा वृद्धि चाहते हैं। जिसने विवाह, मित्रता, व्यवहार, तथा बातचीत में अपने से बराबर वालों का साथ किया है तथा अपने से नीच मनुष्यों से उपरोक्त प्रकार का सम्बन्ध न रख गुणों में श्रेष्ठ महानुभावों को अपना आचार्य, गुरु और पुरोहित बनाया है; वही नीतिज्ञ और विद्वान् कहलाता है। हे राजन्! उस मनुष्य के क्लेश उसे सदा के लिये छोड़ जाते हैं, जो अपने अधीन रहने वाले कुटुम्बियों का भली भाँति पालन करता हुआ, स्वयं कम खा कर, समय बिता देता है तथा जो दिन भर अत्यन्त परिश्रम कर रात को भी कम सोता है तथा शत्रुओं की भी याचनाओं को पूर्ण करता है। जिस मनुष्य के मन के विचार काम काज और अपमान सदा गुप्त रहते हैं उस मनुष्य के सावधान हो कर किये हुए विचारों को कभी हानि नहीं पहुँचती। जैसे शुद्ध कोमल उत्तम खान से निकाला हुआ सच्चा माणिक अन्य अनेक मणियों में सब से अधिक जगमगाता है; उसी भाँति दूसरों के दुःखों को दूर करने में लगा हुआ निर्मल सच्चा शुद्ध स्वभाव वाला मनुष्य भी अपनी जाति में शोभित होता है। जिसे अपने गुप्त दुष्ट कर्मों पर लज्जा आती है तथा उन पर पश्चात्ताप करता है, वही सब का गुरु बन सकता है। सावधान प्रसन्नचित्त अत्यन्त तेजस्वी

मनुष्य सूर्यदेव के समान शोभित होता है। राजा पाण्डु तो शाप के कारण स्वर्ग चले गये; किन्तु वन में उत्पन्न हुए इन्द्र समान उनके पाँचों पुत्रों का लालन पालन आपने ही किया था तथा उनकी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध भी आपने ही किया था तथा वे भी आपके आज्ञाकारी हैं। अतएव हे राजन्! उन बालकों को बुलाओ और उनका उचित राज्यभाग उन्हें दे दो, तभी तुम पुत्रों सहित सुख भोग सकते हो। इस काम करने से तुम्हें कोई भी पक्षपाती न कहेगा।

चौंतीसवाँ अध्याय

विदुरनीति

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर जी! मेरी विलक्षण दशा है, चिन्ता का चक्र मुझे घुमा रहा है। नींद आती नहीं तुम्हीं बतलाओ मैं क्या करूँ? युधिष्ठिर का निश्चय क्या है? और कौरवों का किसमें कल्याण है यह सब तुम्हीं बतलाओ, क्योंकि तुम धर्मार्थ शास्त्र में अति कुशल हो। भविष्य की आपत्तियाँ प्रति क्षण मेरे सम्मुख नाचा करती हैं और मैं शङ्कित हो कर मन ही मन दुःखसागर में डूबने उछलने लगता हूँ।

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! जो जिसका हितैषी होता है उसे उचित है कि, वह बिना पूँछे हुए भी उसे उसकी भलाई बुराई बता देवे। इस कारण मेरे कल्याणकारी वाक्यों को सुनिये। देखो, आपको उचित है कि, आप छल कपट जुआ आदि खोटे उपायों से सिद्ध होने वाले कामों पर ध्यान न दें। उसी भाँति बुद्धिमान् को उचित है कि, वह यदि उपायों द्वारा किसी कार्य में सफलता प्राप्त न कर सके तो चित्त में खिन्न न हो। सार्थक कामों में अपने प्रयोजन की प्रतीक्षा करना ही उचित है; किन्तु निष्प्रयोजन सहसा किसी कार्य का प्रारम्भ

न करे। कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व उसके परिणाम और ध्येय का विचार अवश्य कर ले। उसके बाद उद्योग करना या न करना साधक की इच्छा पर निर्भर है। जो राजा अपनी दशा तथा स्थान, वृद्धि, हानि, कोष, देश की संख्या और दण्ड देने के नियमों को नहीं जानता है उसका सिंहासन डाँवाडोल ही समझना चाहिये। इसके विपरीत जो राजा इन सब बातों को शास्त्रानुकूल यथार्थरीति से जानता है, उसका सिंहासन इन्द्रासन के समान अटल बना रहता है। अपने को राजा जान कर, अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये। क्योंकि सौन्दर्य को जैसे बुढ़ापा नष्ट कर देता है; वैसे ही अविनय से लक्ष्मी का नाश हो जाता है। हे राजन्! जैसे मछली बिना आगा पीछा सोचे लालच में फँस कर उत्तम भोजन से छिपे हुए लोहे के काँटे को निगल जाती है, उसी प्रकार आपने भी परिणाम को न सोचते हुए सारा राज्य हड़प लिया है। अतएव अब आपकी भी वही दशा होगी जो बंसी में फँसी हुई मछली की होती है। अपनी भलाई चाहने वाला उतना ही भोजन करता है जितना कि, वह पचा सकता है। इसके विपरीत करने से प्राणसङ्कट का समय उपस्थित होता है। देखिये—यदि पेड़ के कच्चे फलों को तोड़ कर कोई चाहे कि, उनसे रस निकाल ले, तो यह बात बिलकुल मूर्खता की है। बल्कि और वृक्षों के बीज का भी नाश हो जाता है; किन्तु जो मनुष्य समय पर स्वयं वृद्धि को प्राप्त हुए पके फलों को तोड़ता है वह रस भी पाता है, और साथ में उन फलों के बीजों से दूसरे फलों की भी आशा रखता है। जिस प्रकार भौंरा फूलों को बिना सताये उनका मकरन्द चूस लेता है, उसी प्रकार राजाओं को भी उचित है कि, वे बिना सताये ही रक्षा करते हुए मनुष्यों के धन को लेवें। अर्थात् अत्याचार के बिना प्रजाओं से धनसंग्रह करना चाहिये। राजा और प्रजा का माली और बगीचे का सा सम्बन्ध है। जिस प्रकार माली अपने बगीचे के वृक्षों से फूल चुन लेता है और वृक्षों की जड़ को हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार राजा को भी उचित है कि, प्रजा की रक्षा करता हुआ

ही धनोपार्जन करे। इसके विपरीत यदि राजा का प्रजा के साथ कोयले बनाने वाले का सा व्यवहार रहा तब तो बस वही मसल घट जावेगी कि, 'कोयले की दलाली में हाथ ही काले होते हैं' अर्थात् प्रजा का संहार कर धनोपार्जन करने वाले राजा की अपकीर्त्ति ही शेष रह जाती है। कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही मनुष्य को हानि लाभ फलाफल आदि का पूर्ण विचार कर लेना चाहिये। हे राजन्! कई कार्य ऐसे हैं जिनको कभी भी न करना चाहिये। जैसे 'न विरोधो बलवता' अर्थात् बलवान से कभी विरोध न करना चाहिये और ऐसे भी काम नहीं करने चाहिये कि, जिनकी कभी समाप्ति ही न हो। जिस राजा का क्रोध और प्रसन्नता दोनों ही निरर्थक होती हैं, प्रजा उस राजा को वैसे ही त्याग देती है जैसे नपुंसक पति को स्त्रियाँ त्याग देती हैं। जो मनुष्य थोड़े से उपायों से महान् फल देने वाले कामों को निर्विघ्न हो कर प्रारम्भ कर देता है, वही बुद्धिमान है। जो राजा प्रेमपूर्ण कोमल कटाक्षों से प्रजा की ओर देखता है, सारी प्रजा उससे प्रेम करती है। जिन वृक्षों के देखने से यह मालूम होता है कि, इसमें बड़े सुन्दर फल लगे हैं, चाहें वे फल वास्तविक फल भले ही न हों तथा जिन पर चढ़ना मुश्किल होता है और जो पके न होते हुए भी पके प्रतीत होते हैं वे सदा बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता।

जो राजा प्रजा को दृष्टि, दान, मन, वाणी—इन चारों उपायों से प्रसन्न रखता है वह ससागरा भूमि के ऐश्वर्य को पा कर राज्यभ्रष्ट नहीं होता। यदि पुरुषार्थ से पायी हुई पैतृक सम्पत्ति का अधिपति बन कर भी राजा अन्याय करता है तो वह ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे वायु के झोकों से बादल नष्ट हो जाते हैं। पूर्व सत्पुरुषों के आचरणों के अनुसार चलने वाला राजा इस रत्नगर्भा वसुन्धरा का भली भाँति भोग करता है। जिस प्रकार आग में डालने से चमड़ा सिकुड़ जाता है, उसी प्रकार अधर्मी राजा की राज्यभूमि भी सिकुड़ कर भस्म हो जाती है। हे राजन्! जिन उपायों से शत्रुओं का सर्वनाश सोचा जाता है, उन्हीं उपायों से अपने राष्ट्र की रक्षा करने का

प्रयत्न करना चाहिये। जो राजा धर्मपूर्वक अपने राज्य को प्राप्त कर, धर्म से प्रजापालन करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। उन्मत्त बकवादी और बालक ही चाहे क्यों न हो; किन्तु इनसे भी युक्तियुक्त बातों के वैसे ही ग्रहण कर लेना चाहिये; जैसे पत्थरों से सोना निकाल लिया जाता है। हे राजन्! बुद्धिमान् को उचित है कि, वह अपने माता, पिता, गुरु आदि पूज्यों की श्रेष्ठ श्रेष्ठ बातों को खोज कर उनके अनुसार आचरण करे। जैसे शिलहरा (शिला बीनने वाला) खेत में से अन्न का सञ्चय कर लेता है। गौओं को तो सूँघने से ज्ञान होता है तथा वेदों द्वारा ब्राह्मण देखते हैं। राजा लोग दूतों से नेत्रों का काम लेते हैं और साधारण मनुष्य चर्मचक्षुओं ही से देखते हैं। राजन्! दुहने के समय उछल कूद मचाने वाली गौ को बड़ा कष्ट होता है; किन्तु जो सहज ही में दुहा लेती है, उसे कुछ दुःख नहीं होता। जो स्वयं नम्र है उसे आँच में डाल कर नवाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जैसे मुलायम बाँस को आग में रख कर कोई नहीं नमाता। इसलिये बलवान् वीर क्षत्रियों के लिये किया हुआ नमस्कार इन्द्रदेव को प्राप्त होता है। क्योंकि विराट् ब्रह्म की भुजा बलवान क्षत्रिय को माना है और भुजाओं का देवता इन्द्र है। चौपायों की सहायता को वर्षा होती है। मंत्री राजाओं की सहायता करते हैं। स्त्रियों का सहायक पति तथा ब्राह्मणों का सहायक वेद है।

हे राजन्! सत्य बोलने से धर्म की, अभ्यास करने से विद्यार्थी की, पवित्रता पूर्वक मल कर स्नान करने से सौन्दर्य की और सदाचार से अपने वंश की रक्षा होती है। ठीक माप कूत रखने से धान्य की, प्रतिदिन फेरते रहने से घोड़े की, सावधान हो कर निरीक्षण करने से गौओं की तथा मैले कुचैले वस्त्रों से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये। स्त्रियों को सदा साफ सुन्दर सुथरे वस्त्र पहिनाना चाहिये।

हे राजन्! दुराचारी चाहे कितने ऊँचे वंश का क्यों न हो, किन्तु वह सदा निरादर ही पाता है; किन्तु सदाचार से रहने वाले का कभी न कभी

आदर किया ही जाता है। इस कारण मनुष्य को उत्तम या अधम बनाने के लिये सदाचार ही एक उत्तम उपाय है। दूसरे के ऐश्वर्य, धन, पराक्रम को देख कर जलने वाला, अन्य के सुख सौभाग्य से द्रोह रखने वाला तथा अपने सम्मुख दूसरों का सम्मान देख कर जो मन में क्लेश करता है वह मनुष्य सदा दुःखी रहता है और उसकी आपत्तियों का कभी अन्त नहीं होता। संसार में वास्तविक सुख उसी मनुष्य को मिलता है जो अकर्तव्य कर्मों को करने और कर्तव्य कर्मों के त्यागने से बराबर डरता रहता है तथा सफलता होने से पूर्व जो कभी अपने गुप्त भेदों को नहीं बतलाता और मादक द्रव्यों से सदा बचा रहता है। विद्या, धन तथा कुटुम्ब का अभिमान दुर्जनों को ही होता है, सज्जनों को नहीं। सज्जन तो इन दोषों को महागुणशाली 'दम' का स्वरूप दे देते हैं। इसके द्वारा समस्त इन्द्रियों का दमन कर वे मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं। दुर्जनों का कोई भी काम अच्छा नहीं होता। ऐसा न होने हीं से असत् पुरुष खोटा कहा गया है। कदाचित् कोई महानुभाव सज्जन उनसे सहायता माँगने लगे तो वे अपने को बड़ा प्रतिष्ठित और सज्जन समझने लगते हैं। यद्यपि उनसे कोई काम भली भाँति सधता नहीं। आत्मविज्ञानियों का अवलम्बन सज्जन होते हैं और सज्जनों के भी आश्रयदाता सज्जन ही होते हैं तथा दुर्जन मनुष्यों को भी समय पड़ने पर सज्जन ही पनाह देते हैं; किन्तु दुर्जन सज्जनों का अभयदाता कभी नहीं हो सकता। हे राजन्! इसी भाँति सज्जन धर्मात्मा पाण्डव तो तुम्हारा उपकार कर सकते हैं; किन्तु दुर्जनों के फंदे में पड़े हुए आपको उनके साथ भलाई करने का अवसर मिलना असम्भव है। साफ सुथरे वस्त्र पहिनने वाला सभाओं में विजय पाता है। जिसके यहाँ दूध देने वाली गौ है, वह मिष्ठान्न की अभिलाषा पर विजय प्राप्त कर लेता है। यान वाला मनुष्य मार्ग को जीत लेता और सौम्य स्वभाव वाला संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है। मनुष्य में सब से उत्तम गुण उसका शील स्वभाव ही है। यदि वही नष्ट हो जाय तो समझ लो सर्वस्व ही नष्ट हो गया। धनवानों के भोजन

में माँस की अधिकता, मध्यम पुरुषों में गोरस की अधिकता और दरिद्रियों के भोजन में तैल आदि तामसी पदार्थों की अधिकता होती है; किन्तु यह सब कल्पना धनाभिमानियों की है। वे ही अपने अधिक स्वाद के लिये इस घोर अत्याचार से पैदा होने वाले माँस का भोजन करते हैं। निर्धनों का भोजन बड़ा स्वादिष्ट होता है। क्योंकि उन्हें खूब भूख लगती है; किन्तु धनी सदा भूख लगने के लिये तरसते रहते हैं। प्रायः देखा गया है कि, धनी रईसों को पहिले तो भूख ही नहीं लगती; यदि सौभाग्य से कभी लग भी जाय तो जो कुछ वे खाते हैं उन्हें वह पचता नहीं। कभी दर्द है तो कभी दस्तों में पड़े चिरकते रहते हैं; किन्तु निर्धन लोगों की क्षुधा ऐसी तीव्र होती है कि, वे काठ पत्थर सब कुछ हज़म कर जाते हैं। नीच मनुष्यों को सदा अपनी नौकरी का भय लगा रहता है और मध्यम श्रेणी के मनुष्य सदा मौत से डरते रहते हैं; किन्तु उत्तम मनुष्य इन दोनों बातों की पर्वाह न कर सदा अपयश से डरता रहता है। सच है, सम्मानित मनुष्य का अपमानित हो जाना ही मरने से कहीं अधिक बढ़ कर है। शराब भाँग आदि का नशा तो एक बार चढ़ कर उतर भी जाता है; किन्तु ऐश्वर्य का मद बड़ा भयङ्कर है। क्योंकि वह तब तक नहीं उतरता, जब तक कि वह मनुष्य पूरा कङ्काल न हो जावे। जिसके पास १००० की भी पूँजी है उसे कम से कम एक बोतल का नशा बना रहता है। स्वतन्त्र हो कर इन्द्रियाँ ऐसी दुःखदायिनी हो जाती हैं; जैसे स्वतन्त्र ग्रह नक्षत्रों को दुःखदायी होते हैं। जो पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों में फँस कर अन्धा हो जाता है; उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्ष की चन्द्रकलाओं के समान बढ़ती ही रहती हैं। स्वयं जिस भूपाल ने आत्म-विजय नहीं किया; किन्तु जो मन्त्रियों को अपने स्वाधीन करना चाहता है वह पक्का मूर्ख है। वह कभी भी शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्वयं पराधीन है। उसे शान्ति कहाँ? 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं,' इसलिये हे राजन्! अपने आत्मा का विजय कर, उसे स्वाधीन रखने वाला

राजा ही शत्रुओं पर अधिकार प्राप्त कर सकता है तथा मन्त्रिमण्डल समेत अपने कार्य में सफलता प्राप्त करता है। जो आत्मविजयी जितेन्द्रिय बुद्धिसहित मन को स्वाधीन कर चुका है तथा अपराधियों को उचित दण्ड देना और विचार कर काम करना जानता है, वही राजा लक्ष्मीभाजन होता है। हे राजन्! इस शरीर रूपी रथ की इन्द्रियाँ घोड़े हैं बुद्धि सारथी है और आत्मा इन सब का अधिष्ठाता है। रथी मनुष्य जैसे शिक्षित घोड़ों द्वारा अपने मार्ग को कुशलपूर्वक सुख से तै कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी इन सब इन्द्रियरूपी घोड़ों पर पूर्णतया दृष्टि रखता हुआ इस संसारमार्ग को कुशल क्षेम से तै कर लेता है। जिस प्रकार अशिक्षित और स्वतन्त्र अश्व सारथि को गिरा देते हैं, उसी प्रकार यदि यह इन्द्रियाँ भी वश में न की जाँय तो प्राणों का नाश कर देती हैं। जो विषयों में स्वतन्त्र रहने वाली इन्द्रियों के फंदे में आ कर दुःख को सुख, भले को बुरा और बुरे को भला मान लेता है, वही अज्ञान बालक समझा जाता है। जो धर्मार्थ का त्याग कर विषयों में फँस जाता है, वह थोड़े ही से काल में सौभाग्य, धन, ऐश्वर्य, प्राण और स्त्री से बिछुड़ जाता है। जिसने ऐश्वर्यों पर प्रभुता प्राप्त कर इन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त न किया वह स्वतन्त्र इन्द्रिय होने के कारण अपने ऐश्वर्य से हाथ धो बैठता है। मन बुद्धि को वश में रख कर आत्मा का अन्वेषण करना चाहिये। क्योंकि बुद्धि ही आत्मा का मित्र और बुद्धि ही शत्रु है। जैसे स्वभाव से वैर रखने वाले मगर मच्छ जाल में फँस जाने पर उस आपत्ति से छुटकारा पाने के लिये मित्र बन जाते हैं और जाल काटने का प्रयत्न करते हैं, वैसे ही काम क्रोध भी प्रजा का नाश कर उन्हें संसार के सङ्कटों में डाल देते हैं; किन्तु यदि वही कामना मोह (अज्ञान) के नाश करने के लिये हो जावे, तो इस जगत् रूपी जञ्जाल से शीघ्र छुटकारा हो सकता है। इस लिये उचित है कि, बुरी कामनाओं और उनके सहायक क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त करें। मनुष्य को विजयप्राप्ति के साधनों का संग्रह तो अवश्य करना चाहिये; किन्तु साथ में इस बात का

ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि, उन विजयसाधनों से धर्म अर्थ पर कोई आपत्ति न आ सके। इस प्रकार पूर्वापर विचार कर विजय चाहने वाला अवश्य विजयी हो कर ऐश्वर्य का पति बन जाता है। वास्तव में शत्रुओं का संहार वही मनुष्य कर सकता है, जिसने पहिले मनोभय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि पाँचों शत्रुओं को वश में कर लिया हो। जब तक इन आन्तरिक शत्रुओं का विजय न होगा, तब तक बाह्य शत्रुओं का विजय होना असम्भव है। इन्द्रियाँ स्वतन्त्र हो कर बड़े बड़े अनर्थ कर डालती हैं। बड़े बड़े राजे महाराजे भी इनके अधीन हो कर विषय-वासना और भोगविलासों में फँस कर, मनमाने अत्याचार करते देखे सुने गये हैं। संसर्ग से गुणियों के गुण भी दूषण हो जाते हैं, भले आदमी भी दुर्जनों के चक्कर में पड़ जाने पर उनके साथ दण्ड भोगते हैं। महाराज! सुनिये, संसार में आपत्तियों से बचने का केवल एक ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है और वह यह है कि, अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को अपने अधीन रक्खें, कभी उन्हें स्वतन्त्र न होने देवे। इसके विपरीत आचरण करने पर मनुष्य को सर्वदा आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं। द्रोह का न होना, सरलता, पवित्रता, मधुरभाषण, सन्तोष, इन्द्रियदमन, सत्य, सावधानी, यही सब लक्षण मनुष्य को प्रभावशाली बनाते हैं। आत्मज्ञान, धैर्य, सहनशीलता, निरन्तर धर्मानुष्ठान, आवश्यक और मितभाषण तथा गुप्तदान ये सब सच्चे महात्माओं के लक्षण हैं। क्षमाशील पुरुषों की सहनशीलता सदा प्रशंसनीय है। दुर्जन उनकी निन्दा और आक्षेपों द्वारा कड़ी समालोचना भले ही करें किन्तु उन्हें इन बातों का कुछ भी ध्यान नहीं रहता, वे तो उन्हें क्षमा ही करते रहते हैं। इस कारण उस पातक का भयङ्कर परिणाम उन्हीं दुर्जनों को भोगना पड़ता है। हे राजन्! दुर्जन तो हिंसाकर्म को छोड़ और कुछ जानते ही नहीं। इस कारण उनसे और किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। उचित दण्ड की व्यवस्था करना ही राजाओं का बल है, सेवा शुश्रूषा करना स्त्रियों का भूषण है और गुणियों का सब से बड़ा रक्षक शस्त्र

केवल क्षमा है। हे प्रभो! अपनी जीभ को वश में करना सहज काम नहीं है। यह बड़ा कठिन काम है। हाँ, यह बात अवश्य है कि, किसी गम्भीर विषय पर प्रभावशाली भाषण देना बहुत कठिन काम है। विचारशील वक्ता अपने गम्भीर मनोहर सम्भाषणसे अनेक कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है; किन्तु वही यदि अविचारी बन कर ऊँटपटाँग बक जावे तो वह भयङ्कर अनर्थों का कारण बन जाता है। आह! यह वाणी का बाण भी कैसा भयङ्कर है इसका घाव कभी नहीं भरता। बाणों से छिन्न भिन्न तथा कुल्हाड़ी से कटे हुए वृक्षों की जड़ें फिर भी हरी हो जाती हैं; किन्तु इसका मारा बचता नहीं। बड़े भयङ्कर विषैले बाण भी शरीर में घुस जाने पर निकाले जा सकते हैं; किन्तु यह वाणी का बाण हृदय में घुस कर फिर बाहर नहीं निकाला जा सकता। हे राजन्! यह सब सुन कर आपको अब उस समय का ध्यान करना चाहिये, जिस समय राजसभा में पाण्डवों के सम्मुख द्रौपदी का अपमान करते हुए दुष्ट दुःशासन और दुर्योधन ने वाग्बाणों द्वारा पाण्डवों को मर्मान्तक कष्ट पहुँचाया था। क्या आपको यह भरोसा है कि, पाण्डवों के हृदय के घाव कभी भर जावेंगे। महाराज! इसमें किसी का कुछ दोष नहीं है। जिस पर दैव कुपित होते हैं, उसकी बुद्धि पहिले से ही खराब हो जाती है। वह सदा नीच कामों ही में अपनी भलाई समझता है। आपत्तियों के आने का पूर्वरूप ही यह है कि, वह मनुष्य बुद्धिहीन हो कर नीति को अनीति, सुकर्म को दुष्कर्म, और धर्म को अधर्म, समझने लगता है। हे राजन्! तुम्हें सूझता नहीं है। जब से पाण्डवों से विद्रोह हुआ है तब ही से तुम्हारे पुत्रों की बुद्धि विपरीत हो गयी है। तुम्हें भी अब भले बुरे, न्याय अन्याय, आदि किसी बात का ज्ञान नहीं रहा। हे धृतराष्ट्र! याद रक्खो, धर्मात्मा युधिष्ठिर किसी न किसी दिन अवश्य इस भूमण्डल का राज्य करेंगे। क्योंकि जिसमें राजाओं के लक्षण होते हैं वह अवश्य राजा होता है। यद्यपि युधिष्ठिर तुमसे छोटा और तुम्हारा शिष्य है; तथापि वह सम्पूर्ण स्वामिगुणों से युक्त है। तुम्हारे इन निकम्मे दुर्बुद्धि

पुत्रों में युधिष्ठिर बल, बुद्धि, विद्या और पराक्रम में कहीं अधिक हैं। वे राज्य के अधिकारी हैं दुर्योधन नहीं। केवल आपका गौरव रखने के लिये ही वह धर्मात्मा अब तक अनेक आपत्तियों को सहन कर रहा है।

पैंतीसवाँ अध्याय

विदुर नीति

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! तुम्हारे इन धर्मवाक्यों को जितना सुनता हूँ उतनी ही मेरी अभिलाषा और बढ़ती जाती है। वास्तव में तुम्हारी वक्तृत्वशक्ति में विचित्र आकर्षण भरा हुआ है। अतएव फिर इसी विषय पर कुछ सुनाओ।

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! सब तीर्थों का स्नान और प्राणियों पर दयाभाव इन दोनों का फल समान है; किन्तु किसी अंश में समदृष्टि मनुष्य इन दोनों से भी अधिक हैं। इसलिये आपको भी चाहिये कि, आप पुत्रों पर समानभाव रक्खें। ऐसा करने पर ही आप पूर्ण यशस्वी बन कर परलोक में अनन्त सुख पा सकेंगे। देखिये, जो मनुष्य यहाँ कीर्त्ति पाता है उसका परलोक में भी पूर्ण आदर होता है। क्योंकि जब तक इस लोक में मनुष्य के यश का गान होता रहता है; तब तक स्वर्ग में उसका आदर होता है अन्यथा वह स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाता है। इस विषय में केशिनी के लिये सुधन्वा और विरोचन का प्राचीन इतिहास भी है। सुनिये। केशिनी नाम की एक परम सुन्दरी कन्या थी। उसने चाहा कि, मैं अपने लिये योग्य पति को स्वयं वरण करूँ। निदान, उसके आज्ञानुसार स्वयम्वर की रचना की गयी। नियत समय पर केशिनी स्वयम्वरमण्डप में आयी और विरोचन दैत्य से (जो कि केशिनी को प्राप्त करने की इच्छा से स्वयम्वर में आया था) उसने पूँछा। हे विरोचन! यह बतलाओ ब्राह्मण

श्रेष्ठ हैं या दैत्य ? यदि दैत्यों से ब्राह्मण उत्तम हैं तो मैं क्यों न ब्राह्मण सुधन्वा से अपना विवाह करूँ।

विरोचन बोला—केशिनी ! सुनो। (दैत्य लोग) हमारे प्रजापति की सर्वश्रेष्ठ सन्तान हैं। इसलिये हमारे सम्मुख देवता और ब्राह्मणों की कुछ भी गिनती नहीं है।

केशिनी बोली—हे विरोचन ! कल सुधन्वा मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से आने वाला है। इसलिये हम दोनों उसकी कल तक प्रतीक्षा करें। मैं चाहती हूँ कि तुम्हें और सुधन्वा को एक साथ स्वयम्वर मण्डप में खड़ा देखूँ। विरोचन ने केशिनी की बात को मान लिया। निदान, प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् जहाँ केशिनी और विरोचन सुधन्वा की प्रतीक्षा कर रहे थे महाराज सुधन्वा भी आ गया। केशिनी ने बड़े विनय के साथ उसका आदर सत्कार कर उसे उत्तम आसन पर बिठलाया।

कुछ काल के बाद सुधन्वा ने कहा—हे विरोचन ! मैं तुम्हारे साथ एक आसन पर नहीं बैठ सकता। इसी कारण तुम्हारा आसन हटाये देता हूँ। क्योंकि पिता पुत्र, ब्राह्मण ब्राह्मण, क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य वैश्य और शूद्र शूद्र, ये सब एक जाति के मनुष्य एक आसन पर बैठ सकते हैं; किन्तु भिन्न जाति और स्वभाव वाले दो व्यक्तियों को एक आसन पर बैठने का अधिकार नहीं है। विरोचन ! तुम अभी लड़के हो। खेलना कूदना छोड़ कर, तुम लोकाचार की बात नहीं जानते। तुम्हारे पिता ही मुझे सिंहासन दे कर स्वयं नीचे खड़े हो, मेरा आदर सत्कार करते हैं।

यह बात सुन कर विरोचन ने कहा—हे सुधन्वा ! हम कुछ नहीं जानते। चलो किसी जानकार आदमी के पास चलें और कुछ बाजी बद कर पूछें कि, हम दोनों में से कौन उत्तम है। सुधन्वा ने कहा कि—हे विरोचन ! धन धान्य की बाजी तो मैं मानूँगा नहीं। हाँ, यदि प्राणों की बाजी लगाओ तो अवश्य मैं किसी चतुर मनुष्य के पास इस बात का निर्णय करने के लिये चल सकता हूँ।

विरोचन बोला—हाँ, ठीक है मैं प्राणों की भी शर्त्त लगा सकता हूँ; किन्तु एक बात है। मैं किसी देवता के सम्मुख प्राणपण से उपस्थित न हो सकूँगा, क्योंकि मैं कभी देवता या मनुष्यों में खड़ा नहीं होता हूँ।

सुधन्वा बोला—कोई चिन्ता की बात नहीं है। आप भले ही किसी देव या मनुष्य के सम्मुख इस झगड़े में प्राणों की बाज़ी लगा कर खड़े न हों। चलिये, हम आपके पिता के पास ही चलते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि, वे बड़े सत्यवादी महात्मा हैं। पुत्रस्नेह से भी कभी झूँठ न बोलेंगे। अन्त में यह दोनों ही क्रोध में भर कर प्राणों की बाज़ी लगा कर अपनी अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिये प्रह्लाद के पास चल दिये। दूर से इन दोनों को एक साथ आते देख कर प्रह्लाद को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह सोचने लगा कि, जो कभी एक साथ नहीं घूमते थे वे ही दो क्रोधी व्यक्ति भयानक सर्पों के जोड़े के समान आज एक साथ कैसे चले आ रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आता। जब यह दोनों उनके निकट आये, तब प्रह्लाद ने विरोचन से कहा कि, हे विरोचन ! हमने पहले कभी सुधन्वा को और तुम्हें एक साथ घूमते नहीं देखा, बल्कि यहाँ तक कि, तुम सुधन्वा के नाम से घृणा किया करते थे; किन्तु आज तुम दोनों को साथ साथ आते देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। क्या तुम दोनों में मित्रता हो गयी है ?

पिता की बात सुन कर विरोचन बोला—हे पूज्य पिता ! मेरी और सुधन्वा की मित्रता नहीं है; बल्कि हम दोनों प्राणों की बाज़ी लगा कर एक बात निर्णय करने के लिये आपके पास आये हैं। इस लिये आप इसमें निष्पक्ष हो कर अपनी सम्मति दीजिये। प्रह्लाद ने कहा कि, हे विरोचन ! पहिले ब्रह्मर्षि सुधन्वा के लिये मधुपर्क और जल आदि ले आओ, यह ब्राह्मण देवता पूजन करने के योग्य हैं।

सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद जी ! मधुपर्क आदि से तो राह ही में मेरा सत्कार हो चुका है। इसलिये अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं। आप

तो केवल मेरे इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर दीजिये कि, आपका पुत्र विरोचन उत्तम है या ब्राह्मण ?

प्रह्लाद बोले—हे ब्रह्मदेव ! मैं आप दोनों के झगड़े का निपटारा कैसे कर सकता हूँ ? इसमें एक तो मेरापुत्र ही है दूसरे आप साक्षात् ब्रह्मदेव ठहरे। सुधन्वा ने कहा कि, यह सत्य है; किन्तु आपको यथार्थ और सत्यता का आश्रय ले कर इस प्रश्न का उत्तर अवश्य देना चाहिये। पुत्र की पैतृक सम्पत्ति पर अधिक लालसा होती है। इसी लिये तो पिता को पुत्र ही का पक्ष लेना पड़ता है; किन्तु इस प्रश्न का तो इन सब बातों से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अतएव आपको मेरी सम्मति में इसका निपटारा कर देना कठिन न होगा।

प्रह्लाद ने कहा कि, हे ब्रह्मदेव ! कृपया मेरे इस प्रश्न का पहले आप उत्तर दीजिये कि, अन्यायियों और असत्य बोलने वालों को क्या क्या क्लेश भोगने पड़ते हैं ?

सुधन्वा ने कहा—जैसा सपत्नित्व के कारण स्त्रियों को क्लेश होता है, जुए में हार जाने वाले को जैसा दुःख होता है तथा बोझे से दबते हुए मनुष्य को जैसी तकलीफ़ होती है, जैसी मर्मान्तक व्यथा मिथ्या बोलने वाले को हुआ करती है, शत्रुओं से घिरे हुए क्षुधा से पीड़ित मनुष्य को, तथा कारागार (जेलखाने) में पड़े हुए क़ैदी को, जैसी व्यथा होती है वही व्यथा झूठी सच्ची (गवाही) देने वाले को होती है। देखो-पशुओं के लालच में पड़ कर झूठ बोलने वाला अपनी पाँच पीढ़ियों को, केवल गौ के लिये मिथ्या बोलने वाला अपनी दश पीढ़ियों को, तथा घोड़े के लिये झूठ बोलने वाला अपनी हज़ार पीढ़ियों को नरक में डाल देता है। सोने के लिये झूठ बोल कर वह अपने अगले पिछले दोनों वंशों को नरक में डालता है और भूमि के लिये झूठ बोल कर मनुष्य सब का विनाश कर डालता है। इस लिये हे प्रह्लाद ! तुम्हें भी उचित है कि, तुम केशिनी के लिये जो कि भूमि के समान है, भूल कर भी झूठ मत बोलना।

यह सुन कर प्रह्लाद ने विरोचन से कहा—हे पुत्र ! तुम्हें सुधन्वा ने पराजित कर दिया। क्योंकि मुझसे अङ्गिरा श्रेष्ठ हैं और सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है। इसकी माता तुम्हारी माता से श्रेष्ठ है। इस कारण सुधन्वा का विजय हुआ। अब तुम्हारा अपने प्राणों पर कुछ भी अधिकार नहीं रहा सुधन्वा ने तुम्हारे प्राणों को जीत लिया। किन्तु हे सुधन्वन्! मैं अब तुमसे यह प्रार्थना करूँगा कि, तुम विरोचन के लिये अपनी ओर से प्राण दे दो। सुधन्वा ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रह्लाद से कहा कि, आपने सत्य की रक्षा की है, प्राणों से प्यारे पुत्र की भी पर्वाह न करते हुए अपने धर्म का पालन किया है, इस कारण मैं आपके लिये पुनः इस पुत्र को समर्पण करता हूँ। हे प्रह्लाद ! यद्यपि मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हें देता हूँ, तथापि उसमें एक शर्त यह है कि, यह विरोचनकुमारी केशिनि के सम्मुख मेरे चरणों को धोवे।

महात्मा विदुर ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! इस लिये मैं आपको समझा रहा हूँ कि, आप भी इस तुच्छ भूमि के लिये असत्यभाषण कर, सर्वसंहार कर डालने का प्रयत्न न कीजिये। देखिये, देवता किसी के पीछे पीछे सेवकों की तरह रक्षा करते नहीं डोलते; किन्तु उन्हें जिसकी रक्षा करनी होती है उसकी बुद्धि को निर्मल कर देते हैं, जिससे कि उसका कल्याण हो जाता है और जिसे वे नष्ट करना चाहते हैं उसकी बुद्धि को बिगाड़ देते हैं। बस यही देवताओं की प्रसन्नता और अप्रसन्नता की पहिचान है। जो बुद्धिहीन हो कर अकर्त्तव्य कर्मों को करता है, समझ लो देवता उस पर अप्रसन्न हैं तथा जो योग्य धर्मानुष्ठान और सद्विवेक से व्यवहार करता है समझ लो कि वह देवताओं का प्यारा है। महाराज ! छली और कपटी मनुष्यों की रक्षा तो वेद भगवान् भी नहीं कर सकते। जहाँ छल कपट का उन्हें गन्ध आया कि, वे वहाँ से अन्तर्धान हुए। देखिये, मनुष्य जैसे जैसे अच्छे कामों में मन लगाता है वैसे वैसे ही उसके सब काम सिद्ध होते जाते हैं। शराब पीना, झगड़ा करना, समूह से वैर करना, पति पत्नियों का वियोग कराना, जाति में अनबन पैदा करा देना, राजद्रोहियों से मित्रता, स्त्री पुरुषों में भेद डलवा देना और कुमार्ग

पर चलना यह सब बड़े भयङ्कर कर्म हैं। इनको तुरन्त परित्याग कर देना चाहिये। महाराज! हाथ देखने वाले सामुद्रिक को, जो पहिले चोर हो कर फिर व्यापारी बन बैठा हो, ऐसे वैश्य को, रमल डालने वाले को, डाकू को, वैद्य को, शत्रु को और मित्र को तथा बुरे स्वभाव वालों को कभी अपना गवाह नहीं बनाना चाहिये। हे राजन्! जो मनुष्य केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये अग्निहोत्र, मौनव्रत, वेदपाठ और यज्ञानुष्ठान आदि करता है वह इन सुखप्रद पुण्य कर्मों को करता हुआ भी उलटा कष्टों को ही भोगता है। क्योंकि ढोंग से किये गये सत्कर्मों का फल सदा विपरीत हुआ करता है। यदि यही काम निष्काम भाव से और अपने कर्त्तव्य का पालन करना समझ कर किये जावें तो वे अक्षय्य सुख के कारण होते हैं। कौरवेश्वर! इन नीचे बतलाये हुए मनुष्यों को तो ब्रह्महत्यारा समझ कर त्याग देना चाहिये। घर को जलाने वाला, विष देने वाला, स्त्रियों के व्यभिचार से आजीविका चलाने वाला, शराब बेचने वाला, तीर बनाने वाला, तिथि नक्षत्र बताने वाला, मित्रद्रोही, व्यभिचारी, भ्रूणहत्या करने वाला, गुरु की शय्या पर शयन करने वाला, शराब पीने वाला, ब्राह्मण, कठोर वाणी बोलने वाला, नास्तिक, वेदों की निन्दा करने हारा, व्यापारियों से चुंगी लेने वाला, खेड़ापति, सोलह-वर्ष का हो चुकने पर भी जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो ऐसा ब्राह्मण, हल जोतने वाला, लोभी और शरण में आये हुए की रक्षा न कर, उसे मार डालने वाला ये सब महापातकी होते हैं। इनसे कभी संसर्ग न रखना चाहिये। देखिये जैसे आग से तपा कर सोना परखा जाता है, वैसे ही मनुष्य की परीक्षा उसके चालचलन से होती है। बर्तने पर सज्जन और दुर्जन का भेद खुलता है। भय के समय शूरों की शूरता का परिचय होता है। निर्धनता ही में धैर्य की परीक्षा होती है। शत्रु मित्र तभी मालूम पड़ते हैं, जब कोई आपत्ति आती है। महाराज! आशा धैर्य की शत्रु है, वृद्धावस्था सौन्दर्य की शत्रु है, मृत्यु से प्राणों का और मत्सर से धैर्य का नाश होता है, काम से लज्जा और अभिमान से तो सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है। लक्ष्मी सत्कर्मों ही से प्राप्त हो सकती है

और अप्रमत्तता (सावधानी) उसको बढ़ाती है, चतुरता, ऐश्वर्य की जड़ को मज़बूत बना देती है तथा इन्द्रियदमन द्वारा चञ्चलता का दोष हटाया जा सकता है। हे राजन्! बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियदमन, पराक्रम, शास्त्रविज्ञान मितभाषिता, यथाशक्ति दान, कृतज्ञता, इन आठ गुणों द्वारा ही मनुष्य प्रभावशाली बन कर संसार में आदर पा सकता है। जो राजा औरों का सत्कार करना जानता है वही सब महानुभावों का शिरोमणि समझा जाता है। इन आठ गुणों ही से मनुष्य स्वर्ग में आदर पाता है। बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियदमन और शास्त्रविज्ञान यह चार बातें तो सज्जनों के सदा संग ही रहती हैं; किन्तु शेष चार बातों को भी प्राप्त करने के लिये वे सदा अथक प्रयत्न करते रहते हैं। यज्ञ, दान, वेदों का स्वाध्याय, तपश्चर्या, सत्य, क्षमा, दयालुता और उदारता ये साक्षात् धर्म के मार्ग हैं। सच्चे महात्माओं में तो सत्य, क्षमा, दयालुता और उदारता रहती ही है। क्योंकि इनके बिना तो किसी को महात्मा कहा ही नहीं जा सकता; किन्तु ऊपर कहे हुए यज्ञ, दान, वेदपाठ तथा तपश्चर्या को लोग लोक दिखावे अर्थात् ढोंग के लिये भी करते हैं। हे राजन्! वह सभा सभा नहीं कही जा सकती जिसमें वृद्ध मनुष्य न हों और वह वृद्ध वृद्ध नहीं जो धर्मोपदेश न करें। इसी प्रकार वह धर्म भी धर्म नहीं कहा जा सकता, जिसमें सत्य की प्रतिष्ठा न हो तथा वह सत्य भी सत्य नहीं, जिसमें छल कपट की गन्ध हो। सत्य, विनयी वेश, स्वाध्याय, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शौर्य, युक्ति-पूर्ण बातें, यह दस बड़े भारी गुण हैं। इनसे ही मनुष्य दोनों लोकों में सफल होता है। हे राजन्! पापी अपने पाप कर्मों से कीर्त्ति पर कालौंच थोप देता है और पुण्यात्मा मनुष्य की विशद कीर्त्तिपताका जग में फहराया करती है और उसे सदा सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये पाप कर्मों से सदा बचना चाहिये, क्योंकि अनेक बार किये हुए पापों से बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि के नष्ट हो जाने पर सदसत् का ज्ञान नहीं होता, इसलिये अविवेकी सदा पापों में फँसा रहता है; किन्तु पुण्यात्मा की पवित्र बुद्धि

पापकर्मों से दूर रख कर अनेक पुण्यों का सम्पादन कराती हुई स्वर्ग सुख का सा आनन्द भुगाती है। हृदय को दुखाकर गुणों की निन्दा करने वाला, कटुभाषी तथा वैर बाँधने वाला शठ सदा पापों में फँसे रहते और क्लेशों को भोगते हैं। अन्य गुणियों का दर्शन कर हर्षित होने वाला चतुर पुण्यात्मा मनुष्य सदा सुखी रहता है। हे राजन्! विद्वानों का दर्शन मिल जाने पर उनसे कुछ न कुछ चातुर्य अवश्य ही सीखना चाहिये। ऐसा करने से ही धर्मार्थ सुख साधन प्राप्त किये जा सकते हैं। उन सब कामों को दिन में अवश्य कर लेना चाहिये, जिनसे रात को निश्चिन्त रह कर नींद आ जावे तथा वर्ष के आठ मासों में वे आवश्यक कार्य कर डालने चाहिये जिनसे चौमासे भली भाँति कट जावें। मनुष्य को चाहिये कि, अपने बुढ़ापे में सुख से रहने के लिये जवानी में अवश्य ऐसे कामों को कर डाले, जिनसे वृद्धावस्था का समय सुख से बीते तथा मरने के बाद पारलौकिक सुखों की साधना के लिये जन्म भर ही उत्तम कार्यों का अनुष्ठान करते रहना चाहिये। हे राजन्! वही मनुष्य प्रशंसनीय समझा जाता है, जो अन्याय से धनोपार्जन कर अपने दोषों को दूर करना नहीं चाहता। क्योंकि अधर्म से सञ्चित किये हुए धन से दोषों का दूर हो जाना असम्भव है। वह धन तो एक दोष को मिटा कर और अनेक दोषों को उत्पन्न करने वाला होता हैं। देखिये, पचा हुआ अन्न, गतयौवना स्त्री, विजयी शूर और पूर्ण तपस्वी की सदा प्रशंसा की जाती है। संयमी मनुष्यों पर ही गुरु का उपदेश होता हैं, दुराचारियों पर ही राजा की दमनदीक्षा का प्रभाव पड़ता है और गुप्त पापियों पर ही यमराज का भङ्कर शासन होता है। हे महाराज! ऋषि, नदी, कुल, आत्मा, स्त्री तथा दुराचारी, इन सब की शक्ति का अनुमान करना बड़ा कठिन काम है। वही राजा निर्विघ्न हो कर चिरकाल तक शासन कर सकता है जो ब्रह्म-कुल की सेवा करने वाला, दानी, स्वजातियों से सद् व्यवहार रखने वाला और सौम्य स्वभाव का होता है। शूरवीर, विद्वान् तथा सेवाधर्म को भली भाँति जानने वाले मनुष्य ही इस रत्नगर्भा वसुन्धरा के रत्नों को पा सकते हैं।

हे राजन् ! जो काम बुद्धिपूर्वक किये जाते हैं उनका परिणाम मीठा होता है; किन्तु जिन कामों में छल प्रपञ्च भरा हुआ है, वे महानीच कर्म हैं। उसी प्रकार जिन कामों में बड़े बड़े झंझटों और सङ्कटों का सामना करना पड़ता है वे अत्यन्त ही नीच और हलके काम होते हैं। दुर्योधन, शकुनि, दुश्शासन और कर्ण आदि नीचप्रकृति के मनुष्यों पर राज्यशासन का भार छोड़ कर, आप चाहते हैं कि, हमारा कल्याण हो। यह बात तीनों कालों में भी असम्भव है। आप लोगों ने यद्यपि पाण्डवों को अनेक कष्ट पहुंचाये हैं; तथापि धर्मात्मा पाण्डव आपको अब भी पिता के समान पूज्य मानते हैं। इसलिये आपको भी उचित है कि, उन्हें अपना पुत्र समझें।

छत्तीसवाँ अध्याय

विदुर नीति

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन् ! इस विषय में मुझे एक प्राचीन इतिहास याद आ गया। वह मैं आपको सुनाता हूँ। एक समय साध्य देवताओं ने महर्षि दत्तात्रेय जी से पूँछा कि, हे महर्षे ! हम लोग आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकते कि आप कौन हैं। किन्तु इतना अवश्य जानते हैं कि, आप महर्षियों में श्रेष्ठ परम योगिराज हैं। इसलिये हमें कुछ उपदेश दीजिये।

दत्तात्रेय ने कहा—हे देवताओ ! धैर्य, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, ब्रह्म-प्राप्ति के लिये ध्यान, धारणा, समाधि का अनुष्ठान, निर्भयता और निर-हङ्कारता, चैतन्य आत्मा और जड़ अन्तःकरण में समदृष्टि रखना, चपलता-रहित हो कर प्रिय अप्रिय कर्मों को अन्तःकरण के धर्म समझना, ये ही बातें मैंने अपने गुरुदेव से सीखी हैं। दुर्वचनों (गालियों) को सहन कर लेने वाले की क्षमा ही, दुर्वचन बोलने वाले दुष्टों को भस्म कर देती है। वह क्षमा-शील ही पुण्यात्मा समझा जाता है और नीच मनुष्य जो कि, दुर्व्यवहार

कर रहा है, वह तो नीच है ही। कभी किसी को गालियाँ दे कर अपमानित न करे। मित्रों से द्रोह और नीचों की सेवा न करे। सदाचार से हीन हो कर कभी क्रोध और घमंड न करे। कटुवचनों से मनुष्यों के हृदय और हड्डियाँ तक टूट फूट जाती हैं, इस लिये धर्मात्माओं का यह कर्त्तव्य नहीं है कि, वे किसी के हृदय को जलाने वाली बातें कहें। देखो, कटुवचनों से हृदय को बेधने वाला तथा कड़वी कटीली बातें सुना कर दूसरों को अपमानित करने वाला सदा क्लेशों को भोगता है। दुर्जन तो भभकती हुई आग तथा प्रचण्ड सूर्य के समान तीक्ष्ण बातों से सज्जनों को दुःख देते हैं; किन्तु सज्जन सदा उनकी उपेक्षा करते रहते हैं और यह समझ लेते हैं कि, यह दुर्जन हमारे पुण्य को बढ़ा रहे हैं। मनुष्य दुर्जनों के संसर्ग से दुर्जन और भलों के संसर्ग से भला तथा तपस्वी के सङ्ग से तपस्वी बन सकता है। जैसे वस्त्र और रंग में कोई भेद नहीं रहता और उस पर रंग अपना अधिकार जमा लेता है, वैसे ही सत्संग या कुसंग का अवश्य प्रभाव पड़ता है। परलोक में भी देवताओं का प्यारा वही होता है, जो स्वयं विवादी से विवाद न कर दूसरों को झगड़ा करने के लिये बढ़ावा नहीं देता, जो मारने वाले के बदले में किसी दूसरे को मारना नहीं चाहता तथा जो पापियों का संहार करने की भी इच्छा नहीं रखता, मौन रहने से सत्य बोलना अच्छा है और केवल प्रिय बोलने से हितकारी धर्मानुकूल प्रिय वचन बोलना कहीं अधिक अच्छा है। देखो, मनुष्य अपना जीवन स्वयं ही बना सकता है। वह चाहे तो सज्जनों के संग से महात्मा बन सकता है और चाहे तो दुर्जनों में बैठ कर पक्का चोर ज्वारी और डाकू बन सकता है। संसार में यदि कोई दुःखदायी पदार्थ है तो वह केवल विषयानुराग है। जितना जितना विषयों से मनुष्य उदासीन होता जाता है उतना उतना ही उस पर से आपत्तियों का बोझा दूर होता चला जाता है। विषयों से उदासीन मनुष्य संसार में अजेय हो जाता है। उसे हर्ष, शोक, भय, प्रीति मान, अपमान आदि से कुछ प्रयोजन ही नहीं रहता। अतएव निर्विषयानन्द ही के अनुभव करने

में वह मस्त रहता है। सब का हित चाहने वाला, कोमल, सत्यवादी, बन कर जो अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन कर लेता है, वही वन्दनीय मनुष्य है। जो व्यर्थ किसी की खुशामद नहीं करता तथा प्रतिज्ञा कर चुकने पर उसे पूरी करता है और पराये गुण दोषों को जानता है वह मध्यम पुरुष कहलाता है ; किन्तु नीच सदा बुरी सम्मतियाँ देते, पिट कुट कर भी फिर क्रोध में भर लड़ने को तैयार हो जाते, किसी का उपकार नहीं मानते तथा सब के शत्रु बन कर सदा दुष्टता और चालाकी ही में दम भरते हैं। जो दूसरों की बतायी हुई अपने लिये हितकारी बातों को सुन कर भी उन पर विश्वास न कर, सदा शङ्कित रह कर मित्रों का अनादर करता है वह बड़ा अधम जीव है। इसलिये यदि अपना कल्याण चाहे तो सदा भले आदमियों की संगति करे और यदि कभी आवश्यकता आ पड़े तो मध्यम प्रवृत्ति के मनुष्यों से काम सिद्ध कर लेवे ; किन्तु अधम जीवों के तो पास भी न फटके। छल कपट से या बलात्कार से एकत्रित किये हुए धन से कीर्त्तिनाश और कुल का विनाश हो जाता है तथा महाकुलवानों के चरितों पर भी पानी फिर जाता है।

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे महात्मन् विदुर जी! कृपा कर उन कुलों का भी वर्णन करो जिन कुलों को देवता भी सम्मान दृष्टि से देखते और उनमें जन्म लेने की इच्छा रखते हैं।

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! जिन कुलों में तपश्चर्या, इन्द्रियदमन, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ, पुण्यकर्म, विवाह तथा अन्नदान, यह सात कर्म भली भाँति विधिपूर्वक किये जाते हैं, उन्हींको महाकुल कहा गया है। जिनका मन कभी दुराचार में नहीं जाता, जिनके आचरणों से माता पिताओं को क्लेश नहीं होता, जो प्रसन्नता से धर्माचरण कर अपनी कुलकीर्ति की कामना रखते हैं वे ही कुल महाकुल कहलाने के अधिकारी हैं। यज्ञ न करने, अनमेल विवाह करने, वेदों का स्वाध्याय त्यागने तथा धर्ममर्यादा का लोप कर देने से ऊँचे कुल भी नीच हो

जाते हैं। हे राजन्! ब्रह्मकुल का अपमान, किसी की धरोहर को हड़प जाने की इच्छा तथा दुराचार आदि दोषों से, विद्या और धन आदि से परिपूर्ण भी कुल नीच कुलों ही में गिने जाते हैं; किन्तु निर्धन होने पर भी जिन कुलों में सदाचार-हीनता ने प्रवेश नहीं किया है; वे कुल महाकुल ही समझे जाते हैं। यह लक्ष्मी तो स्वभाव ही से चञ्चला है। इसका आना जाना तो लगा ही रहता है; किन्तु सदाचार एक बार जा कर फिर नहीं लौटता, इसलिये धन से भी अधिक सदाचार की रक्षा करनी चाहिये। धन का न होना दरिद्रता का लक्षण नहीं है; किन्तु सदाचारहीन होना दरिद्रता का पूरा लक्षण है। सदाचारहीन कुल चाहे कितने ही धनी और ऐश्वर्य-शाली हो जावें; किन्तु वे सत्कुल नहीं कहलाये जा सकते। हे राजन्! कुल-पति का यह परम कर्त्तव्य है कि, वह सदा इस बात का ध्यान रक्खे कि, हमारे कुल में कोई भी राजा या मन्त्री ऐसा न हो जो व्यर्थ बैर विवाद कर पराये धन को हड़प जाने की इच्छा करे। कपटी बन कर मित्रों से द्वेष और मिथ्याभाषण करने लगे तथा अतिथियों और देवर्षि-पितरों को बिना भोजन कराये स्वयं भोजन कर लेवे। उनकी सदा यह आज्ञा होनी चाहिये कि, ब्राह्मणों की हत्या करने वाला, ब्रह्म-कुल-निन्दक तथा पितरों का तर्पण न करने वाला कोई भी मनुष्य हमारी सभा में न आ सके। हे राजन्! धर्मात्माओं के यहाँ श्रद्धाभक्तिपूर्वक अतिथियों का सत्कार करने की सामग्रियाँ सदा बनी रहती हैं। उनमें नीचे लिखी चार बातों का तो कभी अभाव ही नहीं होता। बैठने के लिये आसन, निवास के लिये भूमि, पीने के लिये पानी और प्रिय मधुर वाणी। देखो, अतिथियों का श्रद्धा से सत्कार महाकुलों ही में हो सकता है अन्यत्र नहीं! क्योंकि उनके आदर सत्कार का महत्त्व वे ही जानते हैं। वह मित्र मित्र नहीं, जिसके क्रोध में भय छिपा हो अथवा जिसकी मित्रता में शङ्का हो, मित्र तो वही कहा जा सकता है, जिसका अपने हृदय में पिता के समान विश्वास हो, और अन्य सब तो परिचित कहलाते हैं, मित्र नहीं। जो किसी बन्धन में न होता

हुआ भी मित्रता का वर्त्ताव करे वही अपना बन्धु, मित्र तथा सहायक है। कामी, क्रोधी, चञ्चलमना तथा बड़ों का अपमान करने वाले मनुष्य का कोई सच्चा मित्र नहीं होता, क्योंकि वह कभी किसी की बात को नहीं मानता। हे राजन्! जैसे शुष्क सरोवरों को हंस त्याग देते हैं, वैसे ही अजितेन्द्रिय एवं चञ्चल चित्तवाले मूर्ख मनुष्य को लक्ष्मी त्याग देती है। जैसे मेघ क्षण भर में घटाटोप बाँध कर क्षण भर बाद ही तितर बितर हो जाते हैं, वैसे नीच मनुष्य भी ज़रा देर में क्रोध में भर कर अप्रसन्न और कुछ देर बाद ही बिना कारण प्रसन्न हो जाते हैं। जो उपकारी मित्रों का अपकार और अनादर करता है, मरने के बाद उस कृतघ्नी के माँस को चील कौए भी नहीं खाते। लोभी मनुष्यों की मित्रता का क्या महत्व है, यह नहीं मालूम होता। उदार मनुष्य ही अनेक सच्चे मित्रों का संग्रह कर सकता है। लोभी मनुष्य मतलब के लिये मित्रता कर लेता है और मतलब निकलने पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है; किन्तु उदार मनुष्य की मित्रता निष्काम और सच्ची मित्रता होती है। शोक मनुष्यों का परम शत्रु है। शोक करने वाला सदा रोगी, बल, विज्ञान, रूप आदि से हीन हो जाता है। चिन्ता से दुर्लभ पदार्थ का मिलना असम्भव है। इससे तो उलटा अपना शरीर ही भस्म हो जाता है। चिन्तित मनुष्य की क्षीण दशा को देख कर, उसके शत्रु बड़े प्रसन्न होते हैं। इस कारण शोकसन्ताप से सदा बचते रहना चाहिये। मर कर पुनर्जन्म हो ही जाता है एक बार निर्धन हो कर फिर भी मनुष्य के दिन बहुरते हैं; किन्तु इन विषयों पर शोक करने वाला स्वयं तो जलता है ही और दूसरों को भी जलाता है। सुख, दुःख, हानि, लाभ, जीवन, मरण, ऐश्वर्य और निर्धनता आदि का तो चक्र घूमा ही करता है, इसलिये बुद्धिमान् इन बातों के लिये शोक नहीं करते। ज्ञानेन्द्रियाँ और मन जितना जितना विषयों में फँसता जाता है, उतनी उतनी ही मनुष्य की विद्या, बुद्धि आदि का नाश होता जाता है। जैसे फूटे घड़े में से टपक कर धीरे धीरे सब पानी बह जाता है।

जाता है, वैसे ही विषयवासनाओं में फँसे हुए मनुष्य की बुद्धि भी बह जाती है।

महात्मा विदुर से धृतराष्ट्र ने कहा—हे महात्मन्! मैंने बड़ा बुरा किया कि, जो इस आस्तीन के साँप युधिष्ठिर की बाल्यावस्था में रक्षा की। अब यह महाकाल मेरे सब पुत्रों को डस लेगा। मैं क्या जानता था कि, सूखे काठ में अग्नि के समान इसमें इतना भयङ्कर बल भरा हुआ है। हे महामते! मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। मेरा मन इन्हीं चिन्ताओं से दुःखी रहता है। इसलिये तुम मुझे ऐसा उपदेश दो जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो।

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! आपकी शान्ति का उपाय इसके सिवाय कि, आप अपनी इन्द्रियों का दमन करें, विद्या, बुद्धि, तपश्चर्या तथा निर्लोभता से काम लें और कोई दूसरा दृष्टि नहीं आता। मनुष्य बुद्धि द्वारा भय को दूर कर गुरुजनों की सेवा करता हुआ, तपस्वी बन कर ही शान्ति प्राप्त कर सकता है। जिसने निष्काम हो कर दान, पुण्य और यज्ञों का अनुष्ठान किया है, वह रागद्वेष से छुटकारा पा कर जीवन्मुक्त हो जाता है। दृढ़ अभ्यासों, घोर संग्रामों और तपश्चरण तथा सत्कर्मों का फल उनकी समाप्ति हो जाने पर ही प्राप्त होता है। हे राजन्! जातीय बन्धुओं से विरोध करने वालों को फूलों की सेज पर भी नींद नहीं आती। वे सदा अपनी प्रेयसी पत्नियों से वञ्चित रहते हुए सूत मागधों के मङ्गलगान द्वारा भी प्रसन्नता नहीं प्राप्त करते। हे राजन्! अपनी जाति से वैर करने वाले कभी धर्मात्मा नहीं होते। उन्हें आत्मसम्मान और गौरव से सदा वञ्चित रहना पड़ता है तथा उनके लिये शान्ति का मार्ग सदा कण्टकाकीर्ण बना रहता है। हे कौरवेश्वर! सारांश यही है कि, जाति-विद्रोहियों को उपदेश देना भी व्यर्थ है। क्योंकि उन्हें वह बुरी तरह अखरता है। उनकी आय (आमदनी) और सञ्चित सब का सब धन नष्ट हो जाता है तथा अन्त में उनका भी चिन्ह मिट जाता है। जिस प्रकार

गौओं से दूध की आशा, ब्राह्मणों से तपश्चर्या की आशा और स्त्रियों से चञ्चलता की आशा होती है: उसी प्रकार अपनी जाति से भी सदा भय की आशा बनी रहती है। जैसे पतले पतले तन्तु मिल कर भारी बोझे को सहन कर लेते हैं वैसे ही सज्जन भी मिल कर अनेक आपत्तियों को सह लेते हैं। जैसे एकत्रित हो कर जलने वाली लकड़ियाँ धुआँ नहीं करतीं, वैसे ही जाति वाले भी प्रेमसूत्र में एकत्र बँध कर वैरभाव नहीं रखते; किन्तु अलग होते ही भयङ्कर विग्रह मचा देते हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण, स्त्री, स्वजाति तथा गौओं पर क्रूरता दिखलाने लगते हैं, उनका ऐसा अधःपतन होता है जैसा पके फल का होता है। जैसे बड़े बड़े महावृक्षों को भी हवा उखाड़ कर फेंक देती है; किन्तु उन वृक्षों को नहीं उखाड़ पाती जो झुरमुट से बन कर एक दूसरे से सटे रहते हैं; वैसे ही शत्रु रूपी पवन प्रेमबन्धन में बँधे हुए मनुष्यों को भी नहीं पराजित कर सकता। जैसे सरोवरों में कमल आपस में मिलेजुले रहने के कारण निरन्तर बढ़ते रहते हैं, वैसे हो जाति के मनुष्य भी दृढ़ता से प्रेमबन्धन में बँध कर आपत्तियों के आने पर निश्चल बने रहते हैं। ब्राह्मण, गौ, बालक, जाति तथा शरणागत मनुष्य की सदा रक्षा करनी चाहिये। हे राजन्! मनुष्य में केवल धन और नीरोगता को छोड़ कर और कुछ नहीं है, जिसके पास यह दोनों नहीं वह जीते हुए भी मरे के बराबर है। हे राजन्! भलाई इसी में है कि, तीक्ष्ण अनर्थकारी प्रचण्ड व्याधि के समान विषैले इस क्रोध को पी कर आप शान्त हों, रोगियों को स्त्री, धन, पुत्र आदि से कुछ भी सुख प्राप्त नहीं होता, भले बुरे का विवेक भी उनका नष्ट हो जाता है, उनके भाग्य में सुखपूर्वक धन का उपभोग करना बदा ही नहीं।

हे धृतराष्ट्र! सुनो अब पछताने से होता ही क्या है? मैंने तो तुम्हें पहिले ही समझाया था कि, देखो होशियार हो जाओ तुम बड़ा अन्याय कर रहे हो। हे राजन्! तुम्हें क्या नहीं मालूम कि, जिस समय द्रौपदी को जुए में युधिष्ठिर हार गये थे, उस समय मैंने तुमसे क्या कहा था? इस महाअनर्थ को

देख कर, मैंने तुरन्त तुमसे कहा कि, बस अब जुए को रुकवा दीजिये ; किन्तु उस समय मेरी सुनता ही कौन था। उस समय परवाह क्या थी ? यह जीता, वह जीता की खुशी में मेरा रोना कौन सुनता था? अस्तु, चलो यह भी अच्छा ही हुआ। आपको अपनी करतूत का स्वयं ही अनुभव तो प्राप्त हो गया और यह भी मालूम हो गया कि जुआ ऐसी बुरी चीज़ है। हे राजन् ! वह बल, बल ही नहीं जो कि, सहनशील एवं शान्त मनुष्य से वैर बाँधे ; किन्तु बलवान के साथ संग्राम करने वाले के बल वीर्य ही की प्रशंसा करनी पड़ती है। धर्माचरण चाहे स्वल्प ही करे; किन्तु करे शीघ्रता के साथ। निर्दय मनुष्यों से लक्ष्मी देवी बहुत घबराती हैं। उनके पास तो रहना उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे किसी जेलखाने में बंद हो गयी हों। इसी लिये वे वहाँ से घबरा कर, लालच के बड़े बड़े कुफ़्लो (तालों) को भी तोड़ कर भाग निकलती हैं ; किन्तु कोमल मनुष्यों से उन्हें बड़ा स्नेह है। वे उसका पीछा छोड़ना नहीं चाहतीं। उनके मर जाने के बाद भी उनके पुत्रों पौत्रों तक पर कृपा किया करती हैं। हे राजन् ! मैं तो यह चाहता हूँ कि, पाण्डव और कौरव दोनों आपस में मित्र बन कर आनन्द करें। पाण्डवों और कौरवों के शत्रु और मित्र दोनों ही एक हो आपस में एक दूसरे के साथ सहानुभूति रक्खें। महाराज ! आप कौरवकुल के मुख्य नायक हैं। समस्त कौरव आपके अधीन हैं इसलिये क्लेशों से खिन्न हुए अपने पुत्र पाण्डवों की रक्षा करो। तुम्हारी कीर्ति इसीमें है। हे राजन् ! तुम पाण्डवों से अवश्य सन्धि करो और ऐसी दृढ़ सन्धि करो कि, जिसमें कभी शत्रु कोई भेद ही न डलवा सकें। हे कौरवपते ! याद रक्खो, पाण्डवों से बिगाड़ कर संग्राम करने में कौरवों का कल्याण नहीं है। क्योंकि पाण्डव सत्य बल पर अटल भरोसा रखते हैं। उनकी सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणता के सन्मुख यह तुम्हारे बड़े बड़े रणबाँकुरे योद्धा एक पल भर भी तो न ठहर सकेंगे। इसलिये दुर्योधन से कहो कि, वह संग्राम की तैयारी न कर, सन्धि की तैयारी करे।

सैंतीसवाँ अध्याय

विदुरनीति

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन् ! कुपात्र को शिक्षा देने द्वारा, थोड़ी पूंजी पा कर भी मदोन्मत्त हो जाने वाला, शत्रु की सेवा में प्रसन्न रहने वाला, सूम तथा नीचों की याचना करने वाला, आत्मप्रशंसा करने वाला, कुलीन हो कर भी नीच काम करने द्वारा, निर्बल हो कर बलवान से विरोध करने वाला, श्रद्धाहीन को उपदेश देने वाला, अयोग्य पदार्थ की चाहना करने वाला, ससुर हो कर बहू से मज़ाक करने वाला, आपत्ति आने पर सकुटुम्ब ससुराल में रह कर अपनी प्रतिष्ठा चाहने वाला, कुलीनता को त्याग कर स्त्री की निन्दा करने वाला, अन्य के क्षेत्र में बीज बोने वाला, झगड़ालू, धरोहर रख कर उसे न देने की इच्छा से भूल जाने वाला, तीर्थ में दी हुई वस्तु का भी दान न करने वाला, अपने को बड़ा दानी समझने वाला, बुरों को भला बतलाने वाला, झूठी बात को सच साबित करने वाला, इस प्रकार के मनुष्यों को भयङ्कर दण्ड देने वाले यमदूत नरक में ले जाते हैं। यह मनुष्य आकाश को पीटने की व्यर्थ कोशिश करने वाले वज्रसमान कठोर इन्द्रधनुष को भी नवाने की आकांक्षा करने वाले कहाते हैं। मतलब यह है कि, जैसे को तैसा ही बन जाय, मायावी मनुष्यों से माया का व्यवहार करे और सज्जनों से सदा नम्रता का व्यवहार करे।

महाराज धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! जब कि मनुष्य की आयु सौ वर्ष की वेदों ने बतलायी है, तब वह फिर क्यों नहीं अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त होता ?

विदुर ने कहा—महाराज ! अभिमान, परनिन्दा, विष देना, सेंध फोड़ कर चोरी करना, लोभ, क्रोध, स्वार्थ, मित्रद्रोह, यह छः दोष हैं, जो तेज़ तलवार के समान जीवों की आयु का काट छाँट करते रहते हैं।

इन तीक्ष्ण तलवारों में प्राणियों का संहार करने की तो शक्ति है; किन्तु मृत्यु का संहार यह नहीं कर सकती। हे राजन्! जो मनुष्य विश्वस्त की स्त्री से व्यभिचार करता है, जो गुरुपत्नी से दुष्कर्म करता है, ब्राह्मण हो कर भी जो शूद्रा से समागम करता है, जो अपेय मदिरा का पान करता है, जो मज़दूरों से काम करा कर उनकी मज़दूरी नहीं देता, जो ब्राह्मण की आजीविका से द्वेष करता तथा शरणागत को मार डालता, है वह ब्रह्महत्यारे के समान पातकी है। वेदों की आज्ञा है कि, इनसे मिल कर अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो विद्वान, विनयी, नीतिज्ञ, दानी, पितरों का पूजन कर भोजन करने वाला, हिंसारहित, धर्मात्मा, कृतज्ञ, सत्यवादी और दयालु होता है वह स्वर्गलोक में पूजा जाता है। हे राजन्! मीठी मीठी बातें सुनने वालों का तो अभाव नहीं है; किन्तु कड़वी और हितकारी शिक्षा देने वालों का मिलना दुर्लभ है। जो मनुष्य धर्मानुसार राजा की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का कुछ भी विचार न करता हुआ, कटु और हितकर उपदेश देता है, वही सच्चा हितैषी और सहायक कहलाता है। कुल के लिये एक मनुष्य को, ग्राम के लिये कुल को, देश के लिये ग्राम को तथा अपनी रक्षा के लिये पृथ्वी का भी परित्याग कर देना चाहिये। कठिन समय में काम देने के लिये धन की रक्षा करे तथा धन से स्त्री की रक्षा करे और धन तथा स्त्री इन दोनों से अपनी रक्षा करनी चाहिये। प्राचीन शास्त्रों में जुआ को बैर की जड़ बतलाया है। इस कारण भूल कर भी जुआ न खेले। हे धृतराष्ट्र! मैंने तो जुआ के समय भी यही कहा था कि, यह महाअन्याय और पाप है; परन्तु मृत्यु शय्या पर, पड़े हुए रोगी को जैसे औषधि कड़वी लगती है और वह उसे पीना नहीं चाहता, वैसे ही आपने भी मेरे वाक्यों का अनादर किया। हे कौरवेश्वर! काकों के समान आपकी यह कौरवमण्डली सुन्दर पुच्छ वाले पाण्डवरूपी मयूरों को जीतना चाहती है। आप लोगों का यह परिश्रम सिंहों को गीदड़ों के अन्वेषण के समान है। हमारी कोई हानि नहीं। समय पर तुम्हें ही पछताना

पड़ेगा। हे प्रभो! जो स्वामी अपने भक्त सेवकों पर सदा प्रसन्न रहता है तथा सेवक जिसका सदा विश्वास किया करते हैं, वे सेवक स्वामी पर आपत्ति पड़ने पर भी उसका त्याग नहीं करते। जो स्वामी अपने आश्रितों की आजीविका के लिये पर्याप्त धन नहीं देता है उसे चाहिये कि, वह चुपचाप बैठा रहे। कभी किसी से लड़ाई झगड़ा न करे। क्योंकि उसके मन्त्री आदि कर्मी उसकी सहायता नहीं करते। वे समझते हैं कि, जब हमारी ही आजीविका का हमारे स्वामी को ध्यान नहीं तब हमें भी उसके भले बुरे विचार करने से क्या लाभ? इसलिये राजा को उचित है कि, वह कार्य की सिद्धि असिद्धि का पहिले ही से विचार करता रहे तथा अपने आय-व्यय के अनुसार नौकरों की जीविका का भी ध्यान रखे कि, इन्हें योग्य वृत्ति दी जाती है या नहीं। सदा अनुकूल और योग्य सहायकों का सञ्चय करते रहना चाहिये, क्योंकि समय पर इन्हींसे सहायता प्राप्त होती है। जो सेवक अभिप्राय को समझ कर सावधानी से काम करते हों तथा प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति, उत्साहशक्ति इन तीनों के जानने वाले भक्त और हितैषी हों, उनका पालन अपने प्राणों के समान ही करना चाहिये; परन्तु जो सेवक स्वामी की आज्ञा का अनादर कर कार्य के लिये इनकार कर देता है, उसको फौरन निकाल देना चाहिये। जो निरभिमानी, उत्साही, शीघ्रकारी, स्वामी की हानि का ख़याल रखने वाला, प्रसन्नमना, बहकाने में आ कर नौकरी को न छोड़ने वाला, नीरोग और मधुरभाषी है वही सच्चा सेवक है। बुद्धिमान् लोग सायंकाल के समय अविश्वासी के घर नहीं जाते, रात में चौराहों पर छिप कर नहीं बैठते, तथा राजाओं की प्रेमपात्री से कभी संयोग करने की इच्छा नहीं करते। समितियों में गुप्तमन्त्रणा (गुप्त विचार) करने के समय यदि किसी सभासद की सम्मति अनुपयुक्त हो तो उस मनुष्य का अपमान नहीं करना चाहिये तथा यह भी नहीं कहना चाहिये कि, मैं तेरी बात का विश्वास नहीं करता। हाँ, उस समय किसी बहाने से सभा से बाहर हो जाना ही उचित है।

लज्जावान्, राजा, वेश्या, राजपुत्र, भाई, बालक, पुत्रिणी, विधवा, सेनापति, तथा पदच्युत अधिकारी से कभी व्यवहार न करे। चातुर्य, कुलीनता, शास्त्राभ्यास, इन्द्रियदमन, पराक्रम, मितभाषिता, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता, इन आठ गुणों से मनुष्य तेजस्विता प्राप्त करता है। हे राजन्! राजसम्मान पा कर समस्त गुणों की वृद्धि होती है। उपरोक्त गुणों की वृद्धि का कारण भी सम्मान ही है। भले प्रकार स्नान करने वाले मनुष्य को बल, रूप, कण्ठशुद्धि, रंगस्पर्श, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता, सुगन्ध तथा उत्तम स्त्रियों की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य लालचवश अधिक भोजन नहीं करता और नियम से रहता है उसे नीरोगता, आयु, बल, सुख, वीर सन्तान आदि सद्गुणों की प्राप्ति होती है। हे राजन्! अकर्मण्य, दुराचारी, भोजन-भक्त संसार भर से शत्रुता रखने वाला, कपटी, क्रूर, देशकाल को न समझने वाला और दरिद्रवेष में रहता है, उसे अपने यहाँ कभी ठहरने के लिये भी स्थान नहीं देना चाहिये। लोभी, कंजूस, दुर्वचन बोलने वाला, मूर्ख, जङ्गली, धूर्त्त, सत्कार करने पर भी पीछे बुराई देने वाला, क्रूर, वैर बाँधने वाला, कृतघ्नी इन मनुष्यों से कभी भी याचना न करे। आततायी, प्रमादी, झूँठे, साधारण स्नेही, मित्रता को त्यागने वाले और अपने लिये बुद्धिमान समझने वाले नीच मनुष्यों की सेवा (नौकरी) न करे। संसार में धन और सहायकों का अत्यन्त सम्बन्ध है। जहाँ धन है वहाँ सहायकों की कमी नहीं। पुत्रों का भली भाँति लालन पालन कर उनकी आजीविका का प्रबन्ध कर देने के बाद उनका विवाह करा कर, महात्माओं की भाँति वन में रहने का विचार कर लेने में ही कल्याण है। क्योंकि घर में रह कर घर ही की चिन्ताओं से अवकाश नहीं मिलता, फिर भला आत्मविचार क्यों कर हो सकता है? हे राजन्! परब्रह्म परमेश्वर को वही वस्तु समर्पण करनी चाहिये, जो अपने को सब से अधिक प्यारी तथा संसार के लिये हितकारी हो। क्योंकि समस्त पदार्थों की प्राप्ति का मुख्य साधन यही है। उन्नति, बल, प्रताप,

तेजस्विता, पुरुषार्थ तथा निश्चय, इतने गुण जिसके अन्दर हों, उसे अपनी आजीविका की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हे राजन्! वीर पाण्डवों में ये गुण विद्यमान हैं। इस कारण उन्हें किसी प्रकार की भी चिन्ता नहीं है किन्तु तुम जो उनसे वैर ठान रहे हो, इससे तुम्हारा भला होना कठिन है। क्योंकि संग्राम छिड़ जाने पर समस्त देवताओं को भी क्लेश होगा और पुत्रों के विरोध से तुम्हें कभी शान्ति न मिलेगी। शत्रु भी तुम्हारा उपहास करेंगे। भीष्म, द्रोण तथा धर्मराज युधिष्ठिर का क्रोधानल भड़क जाने पर धूमकेतु तारे के समान तुम्हारा नाश हो जावेगा; किन्तु तुम्हारे शान्त और निर्वैर हो जाने पर तुम्हारे पुत्र और पाण्डव दोनों मिल कर समुद्र पर्यन्त भूमण्डल का भली भाँति शासन कर सकते हैं। हे राजन्! कौरवरूपी वन की रक्षा करने को वीरकेसरी पाण्डवों को इस कौरव कानन से मत निकालो और न उन्हें अप्रसन्न कर, इस कौरव कानन का संहार कराओ। दुर्योधन आदि सब के सब गुणग्राही नहीं हैं। जितनी सावधानी से यह लोग पराये दोष देखा करते हैं, उतनी सावधानी से पराये गुणों को नहीं देखते। जैसे स्वर्ग में जा कर अमृत की कमी नहीं रहती, वैसे ही धर्मात्मा बन कर धन ऐश्वर्य की भी कमी नहीं रहती। इसलिये ऐश्वर्य चाहने वाले को धर्मात्मा होना चाहिये। वास्तव में भलाई बुराई का ज्ञान रखने वाला वही प्राणी है, जिसने अपने मन को पापों से हटा कर धर्म में लगा दिया हो। धर्म, अर्थ और काम का समयानुसार उपभोग करने वाले के पास धर्मार्थ काम की कमी नहीं रहती। हे धृतराष्ट्र! काम, क्रोध को अपने स्वाधीन कर लेने वाले को ऐश्वर्य मिलता है और आपत्तियों के आने पर वह घबराता भी नहीं है। बाहुबल तो साधारण बल कहलाता है और भी चार प्रकार का मनुष्यों में बल होता है। सुनिये। दूसरा बल योग्य मन्त्री की प्राप्ति है तथा तीसरा बल धन प्राप्ति है और चौथा बल कुलीनता और सब बलों में श्रेष्ठ बुद्धिबल है। मनुष्य को यह न समझ लेना चाहिये कि, मैं अपकारी

मनुष्य के साथ वैर बाँध कर अलहदा हो जाऊँगा। कोई भी बुद्धिमान स्त्रियों का, राजाओं का, सर्पों का, पठितविद्या का, बली शत्रु का और ऐश्वर्य तथा आयु का विश्वास नहीं किया करता। जिस मनुष्य को बुद्धि के तीक्ष्णतीर से घायल किया गया है; उसका इलाज न वैद्य कर सकते हैं और न कोई जड़ी बूटी उसे बचा सकती है तथा यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र और पारदादि रसायन भी उसे जीवनदान नहीं दे सकती। सर्प, अग्नि, सिंह, जांति वाले इन चारों में से किसी का भी अपमान न करे। क्योंकि इनमें भयङ्करता भरी हुई है। काठ में छिपी हुई अग्नि तब तक प्रगट नहीं होती, जब तक कि, उसका मन्थन कर उसे प्रकट न किया जावे। प्रज्वलित हो जाने पर ही वह काम आ सकती है। हे राजन्! इसी प्रकार इसी वंश में उत्पन्न हुए पाण्डव पावक तुल्य प्रतापवान् हैं; किन्तु वे क्षमाशील होने के कारण अपने तेज को छिपाये पड़े हैं। आप लोग लता के समान हैं और पाण्डव साल वृक्ष सरीखे। लता को वृक्ष का सहारा अवश्य ही लेना पड़ता है। अतएव आपको भी पाण्डवों का अवश्य ही आश्रय लेना पड़ेगा। तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्र तो वन हैं। उस वन में पाण्डव सिंह हैं। सिंह वन के बिना मृतक तुल्य है और वन सिंह के बिना सुरक्षित रह नहीं सकता।

अड़तीसवाँ अध्याय

विदुरनीति

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! जिस समय तरुणों के सम्मुख वृद्ध मनुष्य अतिथि रूप से आते हैं, उस समय जवान मनुष्यों के प्राण ऊपर को निकलने लगते हैं; किन्तु जहाँ उन वृद्धों को प्रणाम किया कि, बस प्राण फिर जहाँ के तहाँ स्थिर हो जाते हैं। सज्जन अतिथि के आने पर मनुष्य को उचित है कि, वह सब से पूर्व बैठने के लिये उसे आसन देवे। इसके

ब्राह्मण की इच्छा और गुरु के वचनों द्वारा व्रत का भङ्ग नहीं होता। हे राजन्! संक्षेप में सब धर्मों का सच्चा सार तो यह है कि, जिन आचरणों से अपने लिये दुःख होता हो उनका दूसरों के साथ भी प्रयोग न करे। यही शास्त्र-सम्मत परमधर्म है; किन्तु घरजानी मनमानी करना घोर अधर्म है। क्षमा से क्रोध को, सज्जनता से दुर्जनों को, दान से कृपण को और सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करना चाहिये। स्त्री, धूर्त्त, आलसी, कायर, क्रोधी, घमंडी, चोर, कृतघ्नी और नास्तिक का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो सदा गुरुजनों की सेवा और वन्दना करता है, उस मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है। हे राजन्! अत्यन्त कष्ट से तथा अधर्म और शत्रुओं पर अनुचित दबाव डालने से प्राप्त होने वाले धन की ओर अपने मन को मत ले जाओ। ऐसा धन अनेक अनर्थों का पैदा करता है। विद्याहीन जीवन, निःसन्तान स्त्री, भूखी और हीन प्रजा तथा राजा रहित देश सदा शोचनीय होते हैं। प्राणियों को बुढ़ापा लानेवाला मार्ग का चलना है, पर्वतों का बुढ़ापा जल है। पति-समागम का न होना स्त्रियों के लिये बुढ़ापा है और वाणी का बाण मन को बुड्ढा बना देता है। अनभ्यास वेदों का, व्रत भङ्ग कर देना ब्राह्मण का मल है। बाल्हीक देश भूमि का मल है और झूँठ बोलना पुरुषों का मल है। किसी चीज़ की अभिलाषा करना सतियों का मल और पतिदेव का प्रवास स्त्रियों का मल है। सोने का मल चाँदी, चाँदी का मल राँगा, राँगे का मल सीसा और सीसे का मल मल ही होता है। सोने से नींद नहीं जीती जा सकती, भोग-विलास से स्त्रियाँ नहीं जीती जा सकतीं, ईंधन से आग पर विजय नहीं प्राप्त होता और पीने से शराब नहीं जीती जा सकती। जो मित्रों के दान से, शत्रुओं को संग्राम से और स्त्रियों को अन्नपान से जीत लेता है, उसीका संसार में जीना सफल है। हे राजन्! लखपती ही दुनियाँ में ज़िन्दा नहीं रहते; साधारण अपनी आजीविका करने वाले भी ज़िन्दा रहते ही हैं। इसलिये आपको राज्य भोगने की लालसा अपने

तथा गौओं पर अपने समान स्वभाव वाले को नियुक्त करे । बज़ारू काम नौकरों से, खेतीबारी का काम अपने हाथों से तथा अपने पुत्र से ब्राह्मणों की सेवा करावे । जल से आग, पत्थरों से लोहा और ब्राह्मणों से क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं । इनका प्रबल प्रताप सर्वत्र फैल रहा है तथा अपने अपने कारणों में मिल कर ये शान्त हो जाते हैं । हे राजन् ! पाण्डव सद्गुणी, कुलीन और महातेजस्वी हैं, वे अत्यन्त क्षमाशील हैं । जिस प्रकार काठ में अग्नि छिपी है उसी प्रकार यह लोग अपने पराक्रम और शूरता को छिपाये हुए हैं । शत्रु तो दूर रहे, जिसके गुप्त विचारों को मंत्री भी नहीं जान पाते तथा जो दूतों द्वारा सब ओर के समाचारों को जानता है, जो मुँह से कुछ न कह कर, कर के दिखलाता है, वह राजा अक्षय राजलक्ष्मी का भोग करता है । हे राजन् ! पर्वत के शिखर पर, एकान्त में बैठ कर अथवा जंगल में जा कर, गुप्त विचार करना चाहिये, जिससे कि, धर्मार्थसाधक गुप्त विचार अन्य लोगों पर प्रकट न हो जावें । शत्रुओं को कभी अपने विचारों को जान लेने का अवसर नहीं देना चाहिये । मूर्ख मित्र तथा पराधीन विद्वान की बिना परीक्षा किये उसे अपना मन्त्री नहीं बनाना चाहिये । क्योंकि योग्य मंत्री ही आर्थिक तथा राष्ट्रीय गुप्त मन्त्रणाओं का आधार है, उसके योग्य होने पर ही धर्मार्थसाधन द्वारा राजाओं की भी वृद्धि हो सकती है । हे राजन् ! अयोग्य कामों का करने वाला अज्ञानी राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । सुख चाहने वाले को सदा धर्मकार्य करना चाहिये, क्योंकि धर्म ही सुखों का मूल साधन है । अधर्माचरण से मनुष्य पछताया करते हैं । जैसे बिना वेदज्ञ हुए ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता, वैसे ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव को जाने बिना राजा भी गुप्त विचारों में सम्मिलित होने का अधिकारी नहीं होता । हे राजन् ! जिसने रक्षा, वृद्धि, नाश तथा सन्धि विग्रह आदि छः गुणों को भली भाँति जान कर अपने स्वरूप का परिचय पा लिया है तथा जो किसी का तिरस्कार नहीं करता, वह राजा समस्त पृथिवी का शासन करता है । जिसका क्रोध

और प्रमोद दोनों ही फलदायक हों, जो स्वयं काम करने पर भी अपने कामों पर सावधान दृष्टि रखता हो और स्वयं कोष (खज़ाने) का निरीक्षण करने वाला हो वही राजा निर्विघ्न शासन करता है। राजछत्र और कीर्ति ही राजाओं का सर्वस्व है अतः राजा को उचित है कि, वह लालच में पड़ कर अकेले ही धन का उपभोग करने की इच्छा न करे। बल्कि अपने आश्रितों का धन मान आदि के द्वारा सदा प्रसन्न रक्खे। ब्राह्मण को ब्राह्मण ही पहचान सकता है। राजा ही राजाओं का परिचय पा सकते हैं, पत्नी के आचरणों की देखभाल पति ही कर सकता है तथा राजा ही अमात्यों के गुण दोषों की पहिचान रख सकता है। हे राजन्! अचानक यदि कोई प्रबल शत्रु अपने अधीन हो जावे तो उसे अवश्य ही मार डाले; किन्तु यदि वह निर्बल हो तो दूर से उसकी सेवा करे और बलवान हो जाने पर उसे मार डाले। क्योंकि उसके जीवित रहने पर भय बना रहता है। हे राजन्! देवताओं पर, ब्राह्मणों पर, रोगी तथा बालक और बूढ़ों पर कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। कभी मूर्खों की भाँति लड़ाई झगड़ा न किया करे, क्योंकि इससे अपयश होता है। जिस राजा के क्रोध का तथा कृपा का कुछ फल नहीं होता, उस राजा को प्रजा वैसे ही त्याग देती है जैसे नपुंसक पुरुष को स्त्रियाँ। हे राजन्! केवल बुद्धि धनशाली नहीं बना देती और मूर्खता निर्धनी नहीं बना देती। बुद्धिमानों को इस लोक में किये हुए कर्मों का फल परलोक में प्राप्त होता है; इस बात को बुद्धिमान् ही जानते हैं अन्य नहीं। मूर्ख मनुष्य ही विद्या-वयो-वृद्ध तथा श्रेष्ठ स्वभाव वाले बुद्धिमान् तथा धन में और जाति में श्रेष्ठ लोगों का अपमान करता है। दुराचारी, मूर्ख, डाह रखने वाले, अधर्मी, क्रोधी तथा दुर्वचन बोलने वालों पर अनेक आपत्तियाँ आया करती हैं। निश्छलता, दान देना, प्रतिज्ञा-पालन तथा मधुरभाषण से शत्रुओं को भी मित्र बनाया जा सकता है। चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और शान्त राजा के कोषहीन हो जाने पर भी उसे सेवक, मित्र और परिवार आदि की कमी नहीं रहती। हे राजन्! धैर्य, शम, दम,

दयालुता, मधुरभाषण, और मित्र से द्रोह न होना यह सात गुण ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले हैं। जो आश्रितों को न दे कर स्वयं खाता है और जो निर्लज्ज दुर्जन तथा कृतघ्न होता है वह राजा सर्वथा त्यागने के योग्य है। जो दुर्जन निर्दोष गुणवान को अप्रसन्न करता है उसे वैसे ही चैन नहीं मिलता जैसे साँप वाले घर में रात को नींद नहीं आया करती। हे राजन्! ऐसे मनुष्यों का पूजन देवताओं के समान करना चाहिये, जिनके क्रुद्ध हो जाने पर धानोपार्जन और धनरक्षा में विघ्न पड़ता हो। स्त्रियों, उन्मत्तों, पापियों और दुर्जनों को जो धन सौंप दिया जाता है वह फिर नहीं मिलता। इसी प्रकार जिन घरों में नारियों का शासन हो, धूर्तों का जमघट हो तथा जिस देश का बालक राजा हो वहाँ के मनुष्य उसी प्रकार डूब जाते हैं जिस प्रकार पत्थर की नाव में बैठने वाले यात्री डूब जाते हैं। हे राजन्! दुःखी हो कर भी जो इधर उधर मारे मारे नहीं फिरते और व्यर्थ गपशप तथा झंझटों से बचे रहते हैं उन्हींको योग्य विद्वान् और बुद्धिमान् समझना चाहिये; किन्तु जो बेमतलब टल्ले लड़ाते फिरते हैं, वे महामूर्ख हैं। उन्हें सदा टक्करें ही खानी पड़ती हैं। छली कपटियों तथा वेश्याओं और चारणों का प्रशंसापात्र मनुष्य जीते ही मरे के समान हैं। हे धृतराष्ट्र! तुमने बुद्धिमान् धर्मपरायण वीर पाण्डवों को त्याग कर मूर्ख और नीच प्रकृति के दुर्योधन पर राज्य का भार डाल रक्खा है। याद रक्खो, अभी कुछ समय बाद राजा बलि की तरह यह दुर्योधन धनमद से चूर हो कर राज्य से सदा के लिये भ्रष्ट हो जावेगा। तुम्हें सोच समझ कर काम करना चाहिये।

उन्तालीसवाँ अध्याय

विदुर नीति

धृतराष्ट्र बोले—हे विदुर ! जैसे कठपुतली डोरी के अधीन हो कर नाचा कूदा करती है; वैसे मैं भी दैव के अधीन हो कर शुभाशुभ फल भोगने में पराधीन हो रहा हूँ । इसलिये मुझे ज्ञान का उपदेश दो, मैं उसे ध्यान-पूर्वक सुनूँगा ।

विदुर ने कहा—देखिये अनवसर में बृहस्पति का वाक्य भी मूर्ख-वाक्य समझा जाता और उस वाक्य की तथा बृहस्पति की भी निन्दा की जाती है । कुछ तो लोभ लालच से मित्र बन जाते हैं और कुछ मधुर-भाषण तथा गुप्त विचारों के बल से मित्र बन जाते हैं तथा कुछ सिफारिशी मित्र भी होते हैं, किन्तु इन सब में सच्चा मित्र कोई भी नहीं होता । शत्रु कभी मित्रता नहीं कर सकता तथा शत्रु की बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता पर भी तिरस्कार की दृष्टि रहती है । मित्र के सभी काम प्यारे और शत्रु के सभी काम बुरे लगते हैं । मैंने दुर्योधन के जन्मकाल ही में कहा था कि, हे राजन् ! तुम्हारे सौ पुत्रों की वृद्धि होगी यदि तुम इस एक पुत्र का त्याग कर दोगे, तब यदि इसका तुमने त्याग नहीं किया तो तुम्हारे सौ पुत्रों का अवश्य ही नाश होगा । वह वृद्धि जो कि भावी सर्वनाश का विज्ञापन बन कर आयी हो, अच्छी नहीं, किन्तु जो क्षय भविष्य के बलोपचय का सूचक हो वह श्रेयस्कर है । वृद्धि करने वाले क्षय को क्षय न समझना चाहिये । क्षय उसे समझना चाहिये जिसके कारण सामूहिक सर्वनाश का सूत्रपात होता हो । कुछ जन ऐश्वर्य के कारण बड़े कहलाते हैं और कुछ लोग अपने गुणों से बड़ाई पाते हैं; किन्तु इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में गुणों से वृद्धि पाने वालों का समागम प्रशंसनीय है और धनैश्वर्य से वृद्धि पाने वालों को त्याग देना चाहिये ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! यद्यपि तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है ; तथापि मुझसे अपने पुत्रों का त्याग नहीं किया जावेगा। जहाँ धर्म होता है वहाँ ही विजय होता है।

विदुर ने कहा—हे राजन् ! जो विनयसम्पन्न और बुद्धिमान् होते हैं, वे भी किसी को दुःख नहीं देते। परायी निन्दा करने वाले, दूसरों को दुःख देने हारे, कलह कराने में चतुर, जिनके समागम से भय प्राप्त हो ऐसे निर्लज्ज और शठ मनुष्यों को महापापी समझना चाहिये। जिन मनुष्यों में इन दोषों के सिवाय अन्य भी महान अवगुण मौजूद हों, उनका भी साथ त्याग देना चाहिये। क्योंकि मैत्री के छूट जाने पर नीच मनुष्यों का प्रेम नष्ट हो जाता है। मैत्री के फल और सुख के रुक जाने पर दुर्जन मित्र की बुराई करने के लिये तैयार हो जाता है। क्रूर दुर्जनों के प्रतिकूल यदि थोड़ा सा भी कोई मनुष्य आचरण करे तो वह उसको क्षमा नहीं करता; प्रत्युत उसका सामना करने के लिये तैयार हो जाता है। अतएव विद्वान् इन दुर्जनों पर सदा कड़ी दृष्टि रखें और परिचय पा जाने पर तुरन्त ऐसे नीचों का संग त्याग देवे। जो मनुष्य दरिद्र तथा आतुर दशा में दुःखी रहने वाले सजातीय मनुष्यों की रक्षा करता है उसके पुत्र पौत्रादि द्वारा कुल की वृद्धि होती है और वह सदा आनन्द में रहता है। इसलिये अपना भला चाहने वाले को अपनी जाति वालों से कभी वैर नहीं करना चाहिये। हे राजेन्द्र ! इसलिये आपको उचित है कि, आप कुल की रक्षा करें। क्योंकि जाति भाइयों का सत्कार करने वाला सदा सुखी रहता है। हे प्रभो ! जाति बान्धव यदि अवगुणी भी हों, तब भी उनका निरादर नहीं करना चाहिये। क्योंकि उनके अनादर से चित्त अशान्त रहता है। जब कि अवगुणी बान्धवों के पालन के लिये भी शास्त्र आज्ञा दे रहे हैं, तब पाण्डव तो सम्पूर्ण गुणों से युक्त हैं और आपकी कृपा चाहते हैं। आप क्यों नहीं उनका पालन करते ? राजन् ! पाण्डवों को अपनी आजीविका करने के लिये छोटे मोटे कुछ ग्राम अवश्य दे देने चाहिये।

इससे आपकी कीर्त्ति होगी। दूसरे आप वृद्ध हैं आप पर ही तो पुत्रों के लालन पालन का भार है। हे राजन्! मैं आपका हितैषी हूँ। इस कारण मैं आपकी भलाई की इच्छा से यह उपदेश दे रहा हूँ। कल्याणार्थी को बान्धवों से विरोध न कर उनके साथ ऐश्वर्य भोगना चाहिये। बान्धवों के साथ भोजन करना, बातचीत करना, परस्पर प्रेम करना, काम करना, आदि स्नेहियों का सा व्यवहार करना चाहिये। भूल कर भी उनसे बैर विवाद न करे। हे कौरवेश्वर! संसार सागर से निर्विघ्न पार लगा देने वाली जाति ही है। उसीसे उद्धार होता और वही गहरे नरक में ढकेल देती है। सदाचारपूर्ण जातियाँ उद्धार करतीं और दुराचारिणी जातियाँ मँझदार में डुबो देती हैं। इस लिये आप पाण्डवों के साथ बन्धु-भाव रखने पर ही शत्रुओं से अजेय बन सकते हैं। यदि धनी कुटुम्ब के आश्रय में रह कर भी कुटुम्बी मनुष्य दुःखी रहता है तो वह धनी मनुष्य पाप का भागी होता है। जिस प्रकार मृगों के मारने का पातक व्याध को लगता है उसी प्रकार उस निर्धन कुटुम्बी का पातक धनैश्वर्य-सम्पन्न कुटुम्बी को लगता है। हे राजन्! संसार में पुत्र शोक से बढ़ कर कोई शोक नहीं है। जब पाण्डव तुम्हारे पुत्रों का संहार कर डालेंगे; तब तुम्हें बड़ा सन्ताप होगा। ज़रा भविष्य की आपत्तियों और दुःसह यातनाओं पर विचार कीजिये। जीवन का कुछ ठिकाना नहीं, दम आया न आया सनद क्या है! इसलिये इस क्षणिक जीवन में ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये जिससे पड़े पड़े पछताना पड़े। नीतिशास्त्राचार्य शुक्राचार्य के सिवाय कोई अन्याय ही नहीं करता है यह बात नहीं है। भूल और अनुचित कार्य मनुष्य ही से होते हैं। इसलिये अब जो हुआ सो हुआ, अब भविष्य में भूल न होने का विचार करना चाहिये। आप कौरवकुल के अधिपति हैं। इसलिये आपको चाहिये कि, दुर्योधन ने जो क्लेश पाण्डवों को पहुँचाया है, उसे पाण्डव भूल जावें ऐसा उद्योग करें। आपके सब पापों का प्रायश्चित्त पाण्डवों के राजसिंहासन पर बैठते ही हो जावेगा; संसार आपकी प्रशंसा करेगा। विद्वानों में आपका सत्कार

होगा। हे राजन्! जो धीर मनुष्यों की हितकर बातों पर पूर्ण विचार कर उनके आदेशानुसार काम करता है, उसीका संसार में यश होता है। विद्वानों के उपदेश को यदि न समझ सके अथवा समझ लेने पर भी उस पर आचरण न करे तो वह सब व्यर्थ और अरण्यरोदन के समान हो जाता है। जिन कामों का बुरा फल मिले उनका सर्वथा त्याग कर देने वाले मनुष्य की सदा वृद्धि होती है, किन्तु जो कुछ भी सोचता समझता नहीं और बराबर पापकर्म करता चला जाता है, वह मन्दबुद्धि सदा नरक यातनाओं में पड़ा सड़ता रहता है। शराब का नशा, नींद, अपने पराये दूत की पहिचान, अपने मुँह और नयनों के विकार, दुष्ट मन्त्री पर विश्वास तथा मूर्ख दूतों का भरोसा करना यह छः चीज़ें गुप्त मन्त्र के निकल जाने के दरवाज़े हैं। हे राजन! जो मनुष्य इन छहों द्वारों को सदा बंद रखता है तथा धर्मार्थ काम का समयानुसार उचित सेवन करता है, उसी मनुष्य के शत्रुओं का नाश हो जाता है। वही शत्रुविजयी वीर कहलाता है। शास्त्र-ज्ञान के बिना, वृद्धसेवा के बिना, बृहस्पति भी तो धर्मार्थ का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। मूर्ख की विद्या, अनसुनी बात, समुद्र में गिरी हुई वस्तु तथा राख में किये गये होम को नष्ट ही समझना चाहिये। बुद्धिमान्, को चाहिये कि, अपनी बुद्धि से जब तक मनुष्य के गुण दोष आचार विचार आदि न जान लेवे तब तक उससे मैत्री न करे। विनयी मनुष्य को कभी अपयश नहीं मिलता, पराक्रमी को दुःख नहीं होता क्षमाशील को क्रोध नहीं आता और सदाचारी कुलक्षणों से बचा रहता है। हे राजन्! सेवासम्भार से, जन्म से, घर से, आचरणों से, भोजन और वस्त्र से कुलीनों की परीक्षा होती है। सम्मुख आयी हुई वस्तु का अनादर तो मुमुक्षु को भी नहीं करना चाहिये; तब फिर कामना वाला उसका निरादर कैसे कर सकता है। हे राजन्! विद्वान् जिसकी वन्दना करें, जिसे धर्म से सच्चा प्रेम हो तथा जो रूपवान उत्तम मित्रों से सम्पन्न, मधुर भाषण करने वाला सम्बन्धी हो, उसकी प्राणपण से रक्षा करनी चाहिये। नीच हो या

ऊँच कुलीन हो या अकुलीन; किन्तु निर्मयाद मनुष्य से मर्यादा में रहने वाला मनुष्य श्रेष्ठ है। जिनका मन से मन बुद्धि से बुद्धि आपस में एक-सूत्र हो कर मिल गये हों उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती; किन्तु मूर्ख से मैत्री न करे। क्योंकि वह घृणित होती है। अभिमानी, क्रोधी, मूर्ख, अविचारी तथा धर्मभ्रष्ट मनुष्य से भी मित्रता नहीं करनी चाहिये; किन्तु बुद्धिमान, धर्मात्मा, सत्यवादी, श्रेष्ठ, दृढ़ मैत्री करने वाले, जितेन्द्रिय तथा मर्यादा में रहने वाले मनुष्यों का भूल कर भी परित्याग न करना चाहिये। देखिये, महाराज! इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अपने स्वाधीन कर लेना कुछ सहज काम नहीं है, बल्कि यह काम मृत्यु से भी कठिन है। स्वतन्त्र इन्द्रियाँ देवताओं को भी देवत्व से गिरा देती हैं। सौम्यता, समानता, क्षमा, धैर्य तथा मित्रों का सत्कार इन गुणों से आयु बढ़ती है। नीतिज्ञ जिस पदार्थ का अन्य तथा अधर्माचरण से विनाश कर देता है, उसी पदार्थ को जो बुद्धिबल से फिर प्राप्त करने की इच्छा रखता है, वास्तव में वही सज्जनों के मार्ग का पथिक कहलाता है। जो भावी दुःख से बचने का उपाय जानता है, आपत्ति पड़ने पर भी जो अपने दृढ़ निश्चय से नहीं डिगता है तथा आपत्तियों के बाद शेष काम को पूरा करना जानता है, वह मनुष्य कभी ऐश्वर्य से भ्रष्ट नहीं होता। हे महाराज! मन, वाणी और कर्म द्वारा निरन्तर किये जाने वाले काम ही मनुष्य को स्वाधीन कर लेते हैं। इस कारण पहिले ही से मनुष्य को उत्तम कर्म करने का अभ्यास डालना चाहिये, जिससे मनुष्य उत्तम कर्म करने का आदी हो जावे। दर्पण, दही, दूध, माङ्गलिक गौ आदि का स्पर्श, निःसहाय हो कर भी उत्साह रखना, शास्त्राभ्यास, पुरुषार्थ, कोमलता तथा पूज्य गुरुजनों का निरन्तर दर्शन करना ये काम कल्याणकारी कहलाते हैं। पुरुषार्थी बना रहना तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होना यह कल्याण का मूल है। उद्यमी मनुष्य ही उदय प्राप्त करता है। जैसे शक्तिमान् के लिये क्षमावान् होना कल्याण साधन का एक मुख्य अंग है, वैसा और कोई पदार्थ नहीं है। निर्बल मनुष्य को

तो क्षमा करना ही पड़ता है; किन्तु सबल मनुष्यों को अपने धर्म का एक अङ्ग समझ कर क्षमाशील होना चाहिये। शत्रु मित्र में उदासीनता रखने के लिये भी क्षमा बड़ा हितकारी गुण है। धर्मार्थसाधन में जिसके द्वारा तिलमात्र भी हानि न हो उस ऐश्वर्य का सेवन अवश्य करना चाहिये; किन्तु धर्म कर्म को भूल बिलकुल भोजनभट्ट न बन जावे। दुःखी, प्रमत्त, आलसी, नास्तिक, अजितेन्द्रिय तथा निरुत्साही मनुष्य से लक्ष्मी सदा दूर रहा करती है। सरलता और नम्रता के कारण जो लज्जा करता है, उस मनुष्य को कुबुद्धि मनुष्य, शक्तिहीन समझ कर भड़काया और दबाया करते हैं। हे राजन्! अपने को बड़ा समझने वाले, अत्यन्त दाता, अत्यन्त शूर, कठिन व्रत रखने वाले तथा अपनी बुद्धि का घमंड रखने वाले के पास आने में लक्ष्मी को भय होता है। इसलिये वह इन लोगों से सदा आँख बचाती रहती है। हे राजन्! यह लक्ष्मी तो बड़ी विचित्र है। यह न तो अधिक गुणियों के यहाँ रहना पसन्द करती और न निरे निर्गुणियों के पास ही इसका दीदा लगता है। यह गुणों को चाहती नहीं और निपट निर्गुणों से प्रेम नहीं करती। पागल गौ की तरह अन्धी लक्ष्मी कहीं एक जगह जम कर रहती ही नहीं। अग्निहोत्र आदि सदाचार का पालन करना ही शास्त्र पढ़ने का फल है और स्वादिष्ट भोजन करना यह धन की कृपा है। जिसने अन्याय और अधर्म से धन इकट्ठा कर अनेक यज्ञ आदि किये हैं, उस मनुष्य को मरने के बाद उस अधर्मोपार्जित धन का फल प्राप्त नहीं होता। वीर महापराक्रमशाली मनुष्यों को भयङ्कर जङ्गलों में, कठिन आपत्तियों के आने पर और संग्राम में शस्त्रधारी योद्धाओं के सम्मुख कुछ भी भय नहीं लगता। उत्साह, इन्द्रियदमन, चातुर्य, सावधानी, धैर्य, स्मरण, शक्ति तथा विचार कर काम करने वाले के पास धन और ऐश्वर्य की कमी नहीं रहती। क्योंकि उपरोक्त गुण ही ऐश्वर्य के मूल कारण हैं। तपस्वियों का तप, ज्ञानियों का वेद, नीचों का अहिंसा और गुणी मनुष्यों का क्षमा महाबल कहा जाता है। जल, फल, मूल, दूध, हवि,

ब्राह्मण की इच्छा और गुरु के वचनों द्वारा व्रत का भङ्ग नहीं होता। हे राजन्! संक्षेप में सब धर्मों का सच्चा सार तो यह है कि, जिन आचरणों से अपने लिये दुःख होता हो उनका दूसरों के साथ भी प्रयोग न करे। यही सर्व-सम्मत परमधर्म है; किन्तु मनमानी करना घोर अधर्म है। क्षमा से क्रोध को, सज्जनता से दुर्जनों को, दान से कृपण को और सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करना चाहिये। स्त्री, धूर्त, आलसी, कायर, क्रोधी, घमंडी, चोर, कृतघ्नी और नास्तिक का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो सदा गुरुजनों की सेवा और वन्दना करता है, उस मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है। हे राजन्! अत्यन्त कष्ट से तथा अधर्म और शत्रुओं पर अनुचित दबाव डालने से प्राप्त होने वाले धन की ओर अपने मन को मत ले जाओ। ऐसा धन अनेक अनर्थों का पैदा करता है। विद्याहीन जीवन, निःसन्तान स्त्री, भूखी और हीन प्रजा तथा राजा रहित देश सदा शोचनीय होते हैं। प्राणियों को बुढ़ापा लानेवाला मार्ग का चलना है, पर्वतों का बुढ़ापा जल है। पति-समागम का न होना स्त्रियों के लिये बुढ़ापा है और वाणी का बाण मन को बुड्ढा बना देता है। अनभ्यास वेदों का, व्रत भङ्ग कर देना ब्राह्मण का मल है। बाल्हीक देश भूमि का मल है और झूठ बोलना पुरुषों का मल है। किसी चीज़ की अभिलाषा करना सतियों का मल और पतिदेव का प्रवास स्त्रियों का मल है। सोने का मल चाँदी, चाँदी का मल राँगा, राँगे का मल सीसा और सीसे का मल मल ही होता है। सोने से नींद नहीं जीती जा सकती, भोग-विलास से स्त्रियाँ नहीं जीती जा सकतीं, ईंधन से आग पर विजय नहीं प्राप्त होता और पीने से शराब नहीं जीती जा सकती। जो मित्रों के दान से, शत्रुओं को संग्राम से और स्त्रियों को अन्नपान से जीत लेता है, उसीका संसार में जीना सफल है। हे राजन्! लखपती ही दुनियाँ में ज़िन्दा नहीं रहते; साधारण अपनी आजीविका करने वाले भी ज़िन्दा रहते ही हैं। इसलिये आपको राज्य भोगने की लालसा अपने

मन से हटा देनी चाहिये। ऐसा करने पर यह न समझो कि, हम भूखों मर जावेंगे। यों तो इस रत्नगर्भा वसुन्धरा का सम्पूर्ण ऐश्वर्य पा जाने पर भी मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती। इस लिये आप तृष्णा को त्याग दीजिये। हे राजन्! अन्त में फिर भी आपसे मैं यही कहूँगा कि, आप कौरवों और पाण्डवों में समभाव रखिये, इसीमें आपका कल्याण है।

चालीसवाँ अध्याय

विदुर नीति

विदुर ने कहा—हे राजन्! सज्जनों से सम्मान पा कर भी जो गर्व-रहित होता हुआ यथाशक्ति काम करता है वह सत्पुरुष यशोलाभ करता है। क्योंकि प्रसन्न सज्जन कल्याणकारी होते हैं। जैसे साँप अपनी पुरानी केंचली त्याग कर सुख की नींद सोता है, वैसे ही मनुष्य भी अधर्म से एकत्र की गयी सम्पदा को त्याग कर, चैन की वंशी बजाता है। राजाओं के यहाँ चुगलखोरी करना, झूँठ बोल कर धन कमाना और पूज्य गुरुजनों से आग्रह करना ब्रह्महत्या के समान हैं। ईर्षा, द्वेष, हत्या, सीमा का उल्लंघन, व्यर्थ विवाद ये तीनों दोष दरिद्री बना देते हैं। गुरुसेवा न करना, शीघ्रता करना तथा आत्मश्लाघा करना ये तीन बातें विद्या की शत्रु हैं। आलस्य, मद, मोह, चपलता, व्यर्थ बातें करना, उद्धतपन, अभिमान और लोभ यह सात विद्यार्थियों के दोष हैं। सुखार्थी को विद्या नहीं आती और विद्यार्थी को विद्यार्थी दशा में सुख नहीं मिलता। इस लिये सुखिया मनुष्य विद्या पढ़ना त्याग देवे और विद्यार्थी कभी सुखिया न बने। अग्नि कभी लकड़ियों से शान्त नहीं होता, समुद्र को कभी नदियों से तृप्ति नहीं होती, सर्वसंहार कर चुकने पर भी काल की तृप्ति नहीं होती और पुरुषों से कभी स्त्रियाँ तृप्त नहीं होतीं। हे राजन्! यह आशा बड़ी बुरी चीज़ है। इससे

धैर्य का सर्वनाश हो जाता है। काल से ऐश्वर्य का नाश हो जाता है। क्रोध लक्ष्मी का नाश करता है। कंजूसी यश का नाश करती है, रक्षा न करने से पशुओं का नाश होता है और एक ब्राह्मण अपने कोप से समस्त राज्य का नाश कर देता है। हे महाराज! बकरे, काँसा, चाँदी, शहद, ज़हर चूसने वाला, पक्षी, विद्वान् ब्राह्मण, जाति का वृद्ध मनुष्य और निर्धन कुलीन इन सब का आपके घर में सदा निवास रहे। बकरा, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, शहद, घी, लोहा, ताम्रपात्र, दक्षिणावर्त्त शङ्ख, गोरोचन, शालग्राम, इन माङ्गलिक वस्तुओं को देव, ब्राह्मण तथा अतिथियों की पूजा के लिये गृहस्थ को अपने घर में अवश्य रखना चाहिये। हे राजन्! देखिये, यह बड़ी अच्छी बात मैं आपको बतलाता हूँ। मनुष्य का धर्म है कि, वह भूल कर भी किसी चीज़ के लेने की इच्छा से तथा भय, लोभ और प्राणों के लिये भी कभी धर्म का परित्याग न करे। धर्म सनातन और नित्य पदार्थ है। सुख दुःख तो चलती फिरती छाया है। आज है कल नहीं है। जीव नित्य है और माया अनित्य है। इस लिये तुम्हें चाहिये कि, तुम अनित्य सुख की कामना त्याग कर नित्य सनातन धर्म की ओर बढ़ने का प्रयत्न करो। इसीसे तुम्हें शान्तिलाभ होगा। संसार में सन्तोष से बढ़ कर कोई सुख नहीं है। बड़े बड़े राजे महाराजे इस ऐश्वर्यसम्पन्न भूमि का राज्य कर ख़ाली हाथ चले गये। विकराल काल कभी किसी की सिफारिश नहीं सुनता। हे राजन्! प्राणप्रिय लाड़ले पुत्र के भी मर जाने पर, केश खोल कर, विलाप करते हुए अपने हाथों उसके मृतक शरीर का लोगों को अग्निसंस्कार करना पड़ता है। मृतक के धन का भोग दूसरे ही करते हैं, शरीर को चील कौए नोच डालते हैं। धातुओं को आग भस्म कर डालती है और वह बेचारा ख़ाली हाथों अपने पापों पुण्यों के साथ परलोक सिधार जाता है। जैसे सूखे पेड़ को पक्षी त्याग कर चले जाते हैं, वैसे ही मरे हुए मनुष्य को त्याग कर मित्र बन्धु बान्धव आदि अपनी अपनी राह चले जाते हैं। इस लिये मनुष्य को उचित है कि, वह धीरे धीरे धर्मधन का सञ्चय करे।

हे राजन् ! स्वर्ग लोक को प्रस्थान करने के समय राह में अन्धतामिस्र नरक पड़ता है। वह नरक समस्त इन्द्रियों को महामोह में डाल देता है, परमेश्वर आपकी सदा उस नरक से रक्षा करे। यदि आप मेरे इन उपदेशों को सुन कर इनके अनुकूल आचरण करेंगे तो आपका यश होगा और आप इस लोक तथा परलोक में निर्भय विचरेंगे। हे राजन् ! जिसमें करुणा की लहरें लहरा रही हैं, तथा जिसमें धीरता के किनारों वाली पुण्य तोया आत्मा रूपी नदी में सत्य का जल भरा हुआ है; उसमें पुण्यात्मा लोग स्नान कर के पवित्र होते हैं। क्योंकि आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषों से शून्य नित्य पदार्थ है। काम क्रोध रूपी कच्छ मच्छों वाली तथा पाँच इन्द्रिय रूपी जल वाली नदी में धैर्य की नौका पर सवार हो कर, जन्म मरण के क्लेशों को पार कर जाओ। जो मनुष्य विद्या, बुद्धि, धर्म तथा अवस्था में बड़े मनुष्यों को प्रसन्न कर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में सम्मति ले कर कार्य करता है वह कभी धोखा नहीं पाता। लिङ्ग और उदर की धैर्य से रक्षा करे, हाथ तथा पैरों की आँखों से रक्षा करे। इसी तरह, नेत्रों और कानों की रक्षा मन से और मन की रक्षा बुद्धि तथा कर्मों से करे।

हे राजन् ! प्रतिदिन स्नान करने हारा, नित्य यज्ञोपवीत धारण करने हारा, वेदों का स्वाध्याय करने हारा, पापियों के अन्न का त्याग करने हारा तथा सत्यवादी और गुरुदेव की सेवा करने हारा ब्रह्मलोक से कभी भ्रष्ट नहीं होता। जिस क्षत्रिय ने वेदों का स्वाध्याय कर अग्निहोत्र किया है तथा अनेक यज्ञों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके प्रजापालन किया है और गो ब्राह्मण के रक्षार्थ संग्राम कर शरीर छोड़ा है, उसने अपने अन्तरात्मा को पवित्र कर लिया है; उसे अवश्य ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो वैश्य वेदाध्ययन कर अवसर पड़ने पर ब्राह्मण क्षत्रिय और अन्य आश्रितों को धन द्वारा सहायता देता तथा अग्निहोत्र द्वारा तीनों अग्नियों के पवित्र धूम को सूँघता हुआ शरीर त्यागता है, वह स्वर्ग के अनुपम सुखों को भोगता है। इसी प्रकार जो शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों की योग्यतानुसार सेवा

करता है, वह उनकी प्रसन्नता से निष्पाप हो कर स्वर्गलोक में जाता है। हे राजन्! मैंने यह सब वर्णों के धर्मकर्मों का वर्णन किया है। अब युधिष्ठिर प्रजा रक्षा रूपी क्षात्रधर्म से भ्रष्ट हो रहा है; इस कारण तुम्हारा कर्त्तव्य है कि, तुम उसे अब अपने धर्म में लगाओ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! जैसा उपदेश तुम मुझे अब दे रहे हो तथा पहिले से देते चले आ रहे हो, उस उपदेश के अनुसार ही चलने की मेरी इच्छा है। पाण्डवों के प्रति मेरा जैसा इस समय भाव है, वैसा ही अन्य समय भी रहता है; किन्तु जब मैं दुर्योधन से मिलता हूँ, तभी मेरा मन पलट जाता है। कोई भी मनुष्य प्रारब्ध को लाँघ नहीं सकता। प्रारब्ध एक बड़ी अटल शक्ति है, इस कारण मैंने प्रारब्ध को मुख्य मान लिया है। मैं प्रयत्न को निरर्थक समझता हूँ।

अथ सनत्सुजातपर्व

इकतालीसवाँ अध्याय

सनत्सुजात मुनि का आगमन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! तुम तो बड़ी अच्छी अच्छी और मनोहर बातें सुनाते हो, मन तो यही चाहता है कि, सदा तुम्हें पास बैठाल कर तुम्हारे सुधासने उपदेशों को सुनता ही रहूँ। इस लिये जो कुछ और शेष रह गया हो वह भी सुनाओ।

महात्मा विदुर ने कहा—हे धृतराष्ट्र! बुद्धिमानों में श्रेष्ठ प्राचीन ब्रह्मचारी सनत्सुजात कहते हैं कि, मृत्यु है ही नहीं। वेही मुनि तुम्हारे हृदय में गुप्त रूप से रह कर सन्देहों का नाश करेंगे।

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! जिन बातों का उपदेश कर मेरे सन्देहों को सनत्सुजात दूर करेंगे, उनका उपदेश तुम्हीं करो।

विदुर ने कहा—हे महाराज! मैं शूद्र जाति में उत्पन्न हुआ हूँ। इस कारण इससे अधिक और कुछ कहना नहीं चाहता। कुमार सनत्सुजात की बुद्धि सनातन बुद्धि है। जो पवित्र ब्राह्मणवंश में जन्म ले कर उपनिषदों का उपदेश करता है उसका देवता सन्मान करते हैं। बस इसी कारण मैंने उस उपदेश के लिये सनत्सुजात सरीखे महामुनि की ओर सङ्केत किया है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! बतलाओ तो सही इसी शरीर द्वारा उस महामुनि सनत्सुजात से मेरा किस प्रकार समागम हो सकता है?

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र की प्रबल इच्छा को देख कर महात्मा विदुर ने उसी समय महामुनि सनत्सुजात का स्मरण किया। उस ऋषि ने तुरन्त विदुर जी को दर्शन दिया। ऋषिदेव के शुभागमन से विदुर को तथा धृतराष्ट्र को बड़ी प्रसन्नता हुई। मधुपर्क आदि से उनका आदर सत्कार किया। आतिथ्य स्वीकार कर जब मुनि सुख से आसन पर बैठ गये, तब विदुर जी ने इन मुनीश्वर से पूँछा कि, हे भगवन्! धृतराष्ट्र को एक सन्देह हो गया है वह मुझसे दूर न हो सका; इस कारण आप उसे दूर कीजिये। आप ऐसा पावन उपदेशामृत पान करावें, जिसे पी कर राजा धृतराष्ट्र दुःखों को पार कर हानि, लाभ, भलाई, बुराई, जरा, मृत्यु, भय, भूख, प्यास, मद, ऐश्वर्य, काम, क्रोध, अरुचि, आलस्य, वृद्धि, क्षय आदि विकारों से दुःखित न होने पावें।

बयालीसवाँ अध्याय

सनत्सुजात तथा धृतराष्ट्र का वार्तालाप

श्रीवैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! राजा धृतराष्ट्र ने ब्रह्मविद्या के विषय में विदुर के कथनानुसार ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से एकान्त में सनत्सुजात से कहा आपका उपदेश है कि, मृत्यु कोई पदार्थ ही नहीं है।

यदि यह बात है तो देव और दानव मृत्यु का नाश करने के लिये ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन क्यों करते हैं? क्योंकि विना कारण के कार्य की उत्पत्ति तो होती नहीं है।

यह सुन कर सनत्कुमार ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा प्रश्न है कि, ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु का नाश किया जाता है। इस वचन से तो यह मालूम पड़ता है कि, मृत्यु कोई पदार्थ अवश्य है, जिसके विनाश करने का साधन ब्रह्मचर्य है. और मृत्यु कोई पदार्थ है नहीं। ऐसा भी किन्हीं किन्हीं आचार्यों का मत है—अब इन दोनों मतों में से कौन सा मत श्रेष्ठ और सच्चा है? बस यही तुम्हारा प्रश्न है। अब देखो, मैं इसका उत्तर देता हूँ; किन्तु तुम सावधान और निःसन्देह हो कर सुनो। यह दोनों मान्य हैं, विद्वान् लोग अज्ञान से मृत्यु बतलाते हैं, किन्तु मेरा मत यह है कि, प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमरता है। प्रमाद अर्थात् स्वाभाविक भाव से भ्रष्ट हो जाना ही मृत्यु का कारण होता है, इसी प्रमाद से प्राणियों को अनन्तकाल तक मिथ्या प्रपञ्चों में भटकना पड़ता है, किन्तु अप्रमादी अपने स्वरूप के विज्ञान से कभी मिथ्या प्रपञ्चों में नहीं भरमाता। वह आत्मविज्ञान द्वारा आत्मा की एकता तथा अन्तःकरण में स्थित अमृत का अनुभव स्वाद चखा कर मनुष्य को अमर बना देता है। असुरों ने भी प्रमाद (मिथ्या प्रपञ्चों में) फँस कर मृत्यु द्वारा तिरस्कार प्राप्त किया और उस तिरस्कार की शान्ति के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया; किन्तु अप्रमादी अपने सच्चे स्वरूप को जानने वाले देवताओं ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया। क्योंकि उन्हें अपने स्वरूप का पूर्णतया ज्ञान था। धृतराष्ट्र! मृत्यु कोई शेर नहीं है कि, जो आ कर प्राणियों को चबा डाले और न उसका कोई रूप रङ्ग है। बस अज्ञान ही मृत्यु है। क्योंकि अज्ञान से जब ज्ञान ढँक जाता है, तभी प्राणियों को भ्रम होता है; किन्तु अजान लोग यमराज को मृत्यु के नाम से पुकारते हैं और कहते हैं कि, पितृलोक में यमराज शासन करते और प्राणियों को अनेक भले बुरे कर्मों का फल देते हैं। जो

पुण्यात्मा हैं उनके लिये वे साक्षात् धर्मराज और पापियों को कठोर काल के समान हैं ; किन्तु यह सब ढकोसला है । जैसे रात के समय रस्सी में साँप की भ्रान्ति होती है वैसे ही यह सब मिथ्या कल्पना है । जो लोग पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते और योगियों के समान ब्रह्म-पदार्थ-विज्ञान के लिये निरन्तर साधन करते हैं, उनकी मृत्यु कभी होती ही नहीं । जो मूर्ख यमराज को पितृलोक का कल्पित शासक मानते हैं, उनका कहना है कि, यमराज की आज्ञा ही से लोभ, मोह, क्रोध रूप से मृत्यु का प्रकाश होता है और जीव अहङ्कारी बन कर कुमार्ग का आश्रय लेता है । उसे योग विज्ञान से प्राप्त होने वाली अमरता प्राप्त नहीं होती । वे अज्ञानी यमराज रूपी मृत्यु के अधीन हो कर यहाँ से यमलोक और यमलोक से नरकधाम पहुँचते हैं । उन्हें जन्म, बन्धन तथा सांसारिक यातनाओं से कभी मोक्ष प्राप्त नहीं होता । मरने के बाद प्राणियों की इन्द्रियों पर शासन करने वाले देवगण भी वहीं पहुँच जाते हैं । बस इसीका नाम मृत्यु है । जिस समय उनके कर्म फलों का उदय होता है तब वे उसे भोगने के लिये स्वर्ग में जाते हैं । इस प्रकार उनका वह चक्र चलता ही रहता है और अष्टांग योग से विमुख प्राणियों को कभी मोक्ष नहीं मिलता । वे सभी निरन्तर कर्मों का भोग करने ही में लगे रहते हैं ।

हे राजन् ! इन्द्रियों के विषयों में फँस कर मनुष्य बड़े भारी अन्धेर-खाते में पड़ जाते हैं, मिथ्या प्रपञ्चों में फँसा हुआ उनका आत्मा निरन्तर विषयों ही का परिशीलन करता रहता है । विषय-वासनाएँ बढ़ कर मनुष्य का सर्वनाश कर डालती हैं । अजितेन्द्रिय मनुष्य जो कि, अपनी चित्तवृत्तियों का संयम नहीं करता वही मृत्यु का शिकार होता है । इस लिये जिसे मौत का अन्त करना हो, उसे चाहिये कि, वह अभिलाषाओं का एकान्त परित्याग कर देवे । कामनाओं का दास कभी मृत्यु पर अधिकार नहीं कर सकता, केवल धीर वीर ही मृत्यु पर शासन कर सकता है । इस-लिये अज्ञान रूपी मृत्यु से बचना चाहे, तो धैर्यपूर्वक कामनाओं पर विजय

प्राप्त करे। निष्काम मनुष्य कभी मृत्यु के अधीन नहीं हो सकता। कामनाओं में फँसा हुआ मनुष्य कामनाओं के ऊपर ही अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। कामी मनुष्य पराधीन हो कर अमरता का आनन्द नहीं लूट सकता। इस कारण मनुष्य को निष्काम हो कर क्लेशों का नाश करना चाहिये। काम ही अज्ञान रूपी नरक का रूपान्तर है। इसीके आश्रय से मनुष्य स्त्री पुत्र आदि को सुख का साधन मानता हुआ इनकी ओर सरपट दौड़ता हुआ भयङ्कर गड्ढे में गिर जाता है। निष्काम पुरुष के सम्मुख तो मृत्यु का भयङ्कर व्याघ्र भी फूस का झूँठा व्याघ्र बन जाता है। इसलिये हे राजन्! सम्पूर्ण कामनाओं को मिथ्या समझ कर भूल जाने वाला मनुष्य ही मृत्यु से बच सकता है। इसलिये लोभ, मोह और क्रोध ही प्राणियों का प्राणहारी भयङ्कर मृत्यु हैं; किन्तु विज्ञानी मनुष्य के सम्मुख यह लोभ, मोह, क्रोध उसी प्रकार नहीं ठहरते; जिस प्रकार मृत्यु के सम्मुख अज्ञानी नहीं ठहरा करते। सारांश यह है कि, विज्ञान मौत की भी मौत है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाराज! वेदों में तो बतलाया गया है। 'स्वर्गकामो यजेत' स्वर्ग की चाहना वाला यज्ञ करे तथा यज्ञादिकर्मों द्वारा मोक्ष प्राप्त होता भी है। जब मोक्ष की प्राप्ति के साधन यज्ञादिकर्म हैं; तब फिर इन्हींका करना पर्याप्त होगा। व्यर्थ ज्ञान विज्ञान के चक्कर में पड़ने से क्या लाभ? क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड जब हमें सीधे और सरल मार्ग से मोक्षपद पर पहुँचाने की गारण्टी दे रहा है, तब हमें उसीका आश्रय लेना चाहिये।

यह सुन कर सनत्सुजात जी ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है। मोक्ष का एक वह भी मार्ग है; किन्तु वेदों ने उस मार्ग का उपदेश मूर्ख अज्ञानियों के लिये दिया है; किन्तु जिस समय जीव निश्चेष्ट, निष्काम और विज्ञानी हो जाता है; उस समय उसे इन क्रियाकलापों की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह तो निष्काम हो कर, सुषुम्ना नाड़ी के मार्गों का भी अतिक्रमण कर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

जिज्ञासु धृतराष्ट्र को सनत्कुमार के इस उपदेश से सन्तोष नहीं हुआ। वह बोले—हे महर्षे! आज अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को संसार में कौन भेजता है? यदि आप यह कहें कि वह स्वयं ही आकाश आदि पञ्च भूतों को रच कर उसमें प्रविष्ट हो जाता है, तो बतलाइये कि, इस प्रकार के आश्रय में पड़ने से उस निष्प्रपञ्च ब्रह्म का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है। उस महामहिम परब्रह्म ने अपना संसारी वेष धारण कर, क्यों व्यर्थ के हज़ारों अनर्थ अपने ऊपर ले लिये? हे ब्रह्मन्! मुझसे इन सब बातों का ठीक ठीक तत्त्व कहिये।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! यदि आप जीव और ब्रह्म को पृथक् मान कर फिर उनकी एकता स्वीकार करेंगे, तो बड़ा भारी दोष आ जावेगा। परमात्मा का सम्बन्ध तो स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के पदार्थों समान रूपसे है। परमात्मा द्वारा ही जीवात्मा का आविर्भाव होता है। ब्रह्म और जीव में केवल औपाधिक भेद होने के कारण ब्रह्म की अधिकता का कुछ भी विनाश नहीं होता। जीवों में अज्ञान अनादि काल से चला आता है। इसी कारण उन्हें देहसंश्रय करना पड़ता है। पूर्वोक्त कथन से सिद्ध होता है कि, परमात्मा नित्य निरञ्जन तथा एक रूप है; किन्तु वह अनादि मायायोग से अनेक रूप प्रतीत होता है। अनादि सच्चिदानन्द रूप से वह सदा निष्क्रिय है; किन्तु उसकी मायाशक्ति संसार की रचना करती है। जिस प्रकार शक्ति, शक्तिमान से पृथक् नहीं रहती, उसी प्रकार परमेश्वर में और माया में भी कुछ भेद नहीं। क्योंकि गुण और गुणी का नित्य सम्बन्ध है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे राजन्! संसार में कुछ तो धर्मात्मा हैं जो निरन्तर सत्कर्मों में तत्पर रहते हैं और कुछ अधर्मात्मा दुर्जन हैं जो धर्म के विरुद्ध मनमाने काम करते हैं। हे महर्षे! मुझे यह बतलाइये कि, धर्म पर अधर्म का अधिक प्रभाव पड़ता है या अधर्म पर धर्म का प्रभाव अधिक पड़ता है।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! पाप पुण्य दोनों ही भोगने के पदार्थ हैं और मोक्ष के साधनों में से ही हैं। क्योंकि मोक्ष के लिये तो लिखा है कि, पुण्यापुण्य-विवर्जित पन्था—अर्थात् पुण्य अपुण्य पाप आदि का सम्पूर्ण तथा उपभोग कर चुकने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि यदि पुण्य शेष होंगे तब तो पुण्य का फल स्वर्ग प्राप्त होगा और यदि पाप होंगे तो नरक का द्वार खुला ही हुआ है। इस लिये जब पाप पुण्य कुछ भी न रहे तब मुक्ति प्राप्त होती है। कर्मयोग संन्यासयोग दोनों ही मुक्ति के साधन हैं। सन्यासी और सिद्ध मनुष्य योग द्वारा सिद्धि लाभ करता है। विद्वान् कर्म-काण्डी कर्मयोग से अनेक इष्ट मनोरथ—स्वर्ग आदि की प्राप्ति करता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि, कर्मयोग द्वारा तो मनुष्य से कभी कभी पाप हो भी जाता है; किन्तु विज्ञानी मनुष्य इस धोखे की टट्टी से बचा रहता है। इस लिये कर्मयोग से संन्यासयोग ही श्रेष्ठ है। सारांश यह है कि, पाप पुण्य दोनों का ही फल क्रमशः नरक और स्वर्ग है। कर्मों से धर्म का भी नाश किया जा सकता है और पाप का भी। विद्वान् तो धर्म से पाप का नाश करते हैं; किन्तु मूर्ख लोग कर्मफलों में फँस कर पाप कमाते हैं। इस हेतु पाप से धर्म ही बलवान् है।

महाराजा धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षे! अपने वर्ण और धर्म के अनुसार धर्म का आचरण करने वाले द्विजों को कौन कौन से सनातन लोकों की प्राप्ति होती है तथा मोक्ष सुख का भी वर्णन हम आपसे सुनना चाहते हैं। जैसे पहिलवानों को आपस में अपने अपने शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिये एक दूसरे से अधिक व्यायाम करने की स्पर्धा होती है, वैसे ही जिन ब्राह्मणों को यम नियम आदि का पालन करने में परस्पर स्पर्धा होती है, वे ब्राह्मण मरने के बाद ब्रह्मलोक पहुँच कर ब्रह्मदेव के साथ अनन्त काल तक आनन्द भोगते हैं। जो ब्राह्मण लोग वैदिक धर्म पर परस्पर विशेष स्पर्धा रख कर, निरन्तर धर्माचरण करते हैं, वे सत्यलोक (स्वर्गलोक) में जाते हैं। वेदज्ञ विद्वानों का कहना है कि,

वैदिक कर्मों का अनुष्ठान तो निरन्तर स्पर्धा से करता ही रहे ; किन्तु उसके फलों की कामना करना ठीक नहीं है। जैसे बरसात के दिनों में सर्वत्र बड़ी बड़ी ऊँची घास जमा हो जाया करती है, वैसे ही अनन्त धन-धान्य-सम्पन्न कुटुम्बवान् गृहस्थ के यहाँ जा कर योगी को अपनी भिक्षा करनी चाहिये। भूल कर भी वह कभी किसी निर्धन गृहस्थ को दुःख न देवे। वास्तव में मनुष्य वही सब से श्रेष्ठ है, जो अत्यन्त आपत्ति के समय भी अपनी प्रशंसा तथा अपने गुणों का वर्णन अपने ही मुख से नहीं करता, जो उपद्रवों के स्थान में पहुँच कर शक्तिमान् होता हुआ भी मनुष्यों में अपनी शक्ति का प्रकाश नहीं करता, वही सच्चा योगी हो सकता है। अर्थात् शम, दम और अहिंसा आदि गुणों से युक्त योगी ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य अपने गुणों की प्रशंसा करने वाले पर नाराज़ नहीं होता तथा ब्राह्मणधन के हड़पने की इच्छा नहीं करता वही सब से अच्छा मनुष्य है और उसी मनुष्य का अन्न खाने के योग्य होता है। जैसे श्वान अपनी वान्त (क़ै) को अपने आप खा लेता है; वैसे ही वह मनुष्य वान्त (क़ै) खाता है जो प्राप्त दिव्य योग-सिद्धि के द्वारा मनुष्य पर प्रभाव डाल कर आजीविका करता है। विद्वानों ने उसे ही ब्राह्मण बतलाया है, जो मनुष्य अपने जाति भाइयों के समीप भी रहता हुआ यह चाहता है कि, मैं जो कुछ योग साधनादि करता हूँ किसी को भी मालूम न होवे। इस प्रकार बिना ब्रह्मज्ञता प्राप्त किये कोई भी मनुष्य निःसङ्ग, सर्वव्यापक, अद्वैत और अखण्ड ब्रह्म को नहीं पहिचान सकता। पूर्वोक्त रीति से क्षत्रिय भी स्वप्रकाश ब्रह्म में नित्य निवास करता है। जो मनुष्य आत्मरूप से प्रकट देहेन्द्रियों से भिन्न आत्मा को देह वा इन्द्रिय मानता है, वह आत्मा के स्वरूप को चुराने वाला चोर है। संसार में उसके बराबर कोई पातकी नहीं। कभी कुछ न करने वाला, किसी से कुछ न चाहने वाला, सज्जनों का माननीय, सज्जन हो कर भी दुर्जनों जैसा व्यवहार करने वाला, ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान ही भूतकालज्ञ तथा

आत्मतत्व को भली भाँति पहिचान सकता है। जिन ब्राह्मणों के पास पैसे तो कुछ है नहीं; किन्तु परलोक-साधन के कार्यों में वे सब से प्रथम भाग लेते हैं तथा परमेश्वर के आराधना में लगे रहते हैं वे मनुष्य धीर वीर और साक्षात् परमेश्वर के देह स्वरूप ही हैं। संसार में सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर देने वाले देवताओं के दर्शन करने वाला मनुष्य भी ब्रह्मज्ञानी के समान नहीं हो सकता। क्योंकि वह अपनी इष्टप्राप्ति के लिये स्वयं उद्योग करता है। क्षणिक स्वर्गादि की कामनाओं में पड़ कर उनके लिये प्रयत्न करने वालों से देवता भी प्रसन्न रहते हैं। सांसारिक मनुष्यों के मान अपमान करने से ब्रह्मज्ञानी को प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होना चाहिये। जैसे आँखें खोलने मूँदने के नियम में चल रही हैं; वैसे ही मनुष्य भी अपने अपने स्वभाव के अनुसार काम करता है। मान्य का सम्मान और अमान्य का अपमान हुआ ही करता है; किन्तु मूर्ख, अधर्मी तथा मायावी मनुष्यों से सज्जनों को अपने सम्मान की आशा छोड़ देनी चाहिये। क्योंकि वे तो केवल अपमान ही कर सकते हैं। अभिमान और योगसाधन यह दोनों बातें एक जगह नहीं रह सकतीं। क्योंकि अभिमान से ऐहिक सिद्धि प्राप्त होती है और मौन से ब्रह्मसिद्धि प्राप्त होती है। धन सांसारिक सुखों का साधन होते हुए भी परलोक का नाश करने वाला है। जो वास्तविक सुख प्रदान करने वाली ब्राह्मी लक्ष्मी है, वह निर्बुद्धि मनुष्यों को प्राप्त ही नहीं होती।

हे राजन्! पूर्वोक्त ब्रह्मानन्द का प्राप्ति के लिये अनेक साधन हैं; किन्तु उनमें से सत्य, सरलता, लोकलज्जा, इन्द्रियदमन, शौच और शास्त्रविज्ञान, यह छः साधन ही अज्ञानान्धकार का बिनाश कर ब्रह्मदर्शन करा देते हैं।

तैंतालीसवाँ अध्याय
सनत्सुजात की उक्तियाँ

धृतराष्ट्र ने कहा—महाराज ! मौन दो प्रकार का है । वाणी और मन का संयम करना यह लौकिक मौन है, और दूसरा श्रवण, मनन निदिध्यास रूप वैदिक मौन है । अब बतलाइये कि, आपका आशय किस मौन से है ? मौन का लक्षण क्या है ? विद्वान कभी निर्विकल्प एवं निरञ्जन ब्रह्मपद को प्राप्त होता है या नहीं ? तथा मौन कैसे रहा जाता है ? इन सब विषयों को ठीक ठीक बतलाइये ।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! वेदों में तथा मन में भी इतनी सामर्थ्य नहीं कि, वह ब्रह्म में प्रवेश कर सके । अतएव उस ब्रह्म को मौन कहा जाता है । वेद के समस्त शब्द ब्रह्म के उद्देश्य ही से उदित हुए हैं ।

राजा ने पूँछा—जो ऋक्, यजु, साम इन तीनों वेदों को जानता है और यदि वह पाप करने लगे तो वह उस पापकर्म में लिप्त होता है या नहीं ?

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिये । वेदज्ञ मनुष्य पाप कर्मों में लिप्त नहीं होता । ऋक, यजु, साम इस वेदत्रयी में भी यह शक्ति नहीं है कि, वह पापियों की पापों से रक्षा कर सके । बल्कि जान बूझ कर तो पापकर्म करने वालों को और अधिक दोष लगता है । मायावी मनुष्य की रक्षा वेद भी नहीं कर सकते; प्रत्युत उस पापी को त्याग कर वैसे ही अलग हो जाते हैं, जैसे पङ्ख जम जाने पर पक्षी वृक्ष से उड़ जाते हैं ।

धृतराष्ट्र बोले—जब वेद, शम दम आदि धर्मानुष्ठान के बिना पापी की रक्षा नहीं कर सकते, तो ब्राह्मणों के लिये यह विशेषता क्यों कि, ऋक्, यजु, साम वेदत्रयी द्वारा वे ब्रह्मलोक में पूजे जाते हैं । यह तो बिल्कुल झूठा प्रलापमात्र है ।

यह सुन कर सनत्सुजात जी ने कहा—हे राजन् ! यह बात नहीं है। यह वेद शास्त्र आदि समस्त प्रपञ्च जिसकी वाणी है तथा जो निर्विकारी हो कर भविकार है उसी परब्रह्म के स्वरूप में यह संसार प्रतीत होता है। अतएव परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण यह वेद अवश्य ही माननीय हैं। जो इनको अपमान की दृष्टि से देखता है उसका वेद पढ़ना पढ़ाना सब निष्फल है। जिस ब्रह्म की वाणी वेद है उसी ब्रह्म के जानने के लिये जप, तप, होमादि का अनुष्ठान किया जाता है। विवेकी मनुष्य यज्ञों तथा तपश्चरणों द्वारा पुण्यसञ्चय कर पाप का नाश करता है और अन्त में ज्ञान से आत्मा के दर्शन करता है। ज्ञान से तो मनुष्य ब्रह्मदर्शन कर मुक्त हो जाता है; किन्तु सकाम मनुष्य केवल स्वर्ग आदि क्षणिक सुखों को प्राप्त होता है। वह तो पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुए स्वर्ग आदि का उपभोग कर फिर भी जन्मता मरता ही रहता है। केवल निरन्तर कर्म करने वाले अज्ञानी मनुष्य तो अपने किये हुए तपश्चरणों का परलोक में फल भोगते हैं, किन्तु शम दम आदि यम नियमों का पालन करने वाले ब्राह्मणों का तप इस लोक में भी फलदायक होता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महर्षे सनत्सुजात ! कृपा कर यह तो बतलाओ कि, तपस्या समृद्ध और असमृद्ध कैसे हो जाती है ?

महर्षि सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! तपस्या तीन प्रकार की होती है। कैवल्य तपस्या, समृद्ध तपस्या और ऋद्ध तपस्या। कैवल्य तपस्या उसे कहते हैं जो निष्काम भाव से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक की जावे तथा जिससे मोक्षप्राप्ति होती है। श्रद्धापूर्वक सकाम भाव से जो तपस्या की जाती है, वह समृद्ध तपस्या कहलाती है। किन्तु जो केवल ढोंग या दिखावे के लिये ही की जाती है उसे ऋद्ध तपस्या कहते हैं। हे राजन् ! वेदज्ञाता विद्वान् लोग तपश्चर्या ही से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इस कारण तुम जो कुछ भी पूँछ रहे हो, वह सब कार्य तपश्चर्या द्वारा सिद्ध हो सकता है।

राजा ने कहा—महर्षे ! निष्काम तपश्चर्या का ज्ञान तो मुझे हो गया अब आप तपश्चर्या के कल्मषों का वर्णन कीजिये। जिससे कि मुझे सनातन रहस्य का ज्ञान प्राप्त हो जावे।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! काम क्रोध आदि बारह दोष तथा सात प्रकार का नृशंस वर्ग तपश्चरण के कल्मष कहलाते हैं और विद्वान् ब्राह्मण जिन्हें जानते हैं ऐसे बारह गुण तप के गुण कहलाते हैं। काम क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा का शान्त न होना, निर्दयता, अभिमान, शोक, दोष-दर्शिता, भोग्य पदार्थों की लालसा, ईर्ष्या, परनिन्दा, यह बारह मनुष्यों के महादोष बतलाये गये हैं। इनसे सदा बचे रहना चाहिये। जैसे बहेलिया मृगों के छिद्रों का अन्वेषण करता रहता है, वैसे ही यह दोष भी मनुष्यों के छिद्रों को ढूँढ़ने के लिये उनमें निवास करता है। आत्मश्लाघा करने हारा, परस्त्री और पराये धन को चाहने हारा, दूसरों का अपमान करने हारा, क्रोधी, चञ्चल, अपने आश्रितों का पालन करने हारा, इस प्रकार यह छः पापी हैं। इन्हें लोक परलोक का कुछ भी भय नहीं होता और ये बराबर पापकर्म करते ही रहते हैं। विषय वासनाओं में पड़ कर सड़ने वाला, अभिमानी, दान दे कर पश्चात्ताप करने वाला, कञ्जूस, प्रजा से अधिक कर लेने वाला, दूसरों के दुःख में प्रसन्न होने वाला, ये सात और पहिले छः इन दोनों को मिला कर तेरह का नृशंसी वर्ग कहलाता है। हे राजन् ! धर्म, सत्य, इन्द्रियदमन, तप, अमात्सर्य, लज्जा, सहनशीलता, निन्दा-रहित, यज्ञ, दान, धैर्य और शास्त्रज्ञान यह बारह ब्राह्मणों के मुख्य व्रत हैं। जो इन बारह व्रतों पर अधिकार कर लेता है अर्थात् इनका नित्य निरन्तर पालन करता है, वही सच्चा ब्रह्मवेत्ता और समस्त पृथ्वी के ऐश्वर्यों का भोक्ता बन जाता है; किन्तु जो इसके विरुद्ध इन व्रतों को लोप कर देता है, केवल एक, दो या तीन व्रतों ही का अनुष्ठान करता है, उसे ऐश्वर्यवान् समझना चाहिये। दम, दान और अप्रमान, इन तीन गुणों में अमृत भरा हुआ है। विज्ञानी ब्राह्मणों के लिये यह सत्य ब्रह्म की प्राप्ति का मुख्य साधन

है। जिस मनुष्य में निम्नलिखित अठारह गुण मौजूद हों, उसे दान्त (इन्द्रिय दमन करने वाला) संयमी कहते हैं। धर्म कर्मों में श्रद्धा रखना, सत्य बोलना, दूसरों की निन्दा न करना, विषय वासनाओं से रहित होना, धन कमाने के लिये बड़ा उद्योग न करना, स्त्रीसंगम की इच्छा न होना, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगली करना डाह आदि से शून्य होना, मारकाट न करना परिताप न करना, सत्कार प्राप्ति की कामना न करना, कर्त्तव्य कर्म न भूलना, अपने को प्रतिष्ठित न समझना, ये ही सब दान्त मनुष्यों के गुण हैं। हे राजन् ! दम में तो अठारह गुण हैं और मद में अठारह महादोष भरे हुए हैं। दान भी छः प्रकार का होता है। इसके विपरीत छः दोष और भी हैं। वे सब दोष मिल कर मद के महादोष कहलाते हैं। इस छः प्रकार के त्याग में तीसरा त्याग बड़ा कठिन है। जिसने उस त्याग का अनुष्ठान कर लिया मानों उसने द्वैत पर विजय प्राप्त कर ली। प्रथम श्रेणी में तो वह त्यागी कहलाता है, जो ऐश्वर्य पा कर भी अहङ्कारी नहीं है। दूसरा स्त्रीत्याग है। वैराग्य धारण कर इष्टापूर्त कर्मों का अनुष्ठान, सकल कामनाओं को त्याग देना सब से कठिन तीसरा त्याग कहलाता है; पूर्ण वैराग्यवान बन कर स्त्री आदि का त्याग कर देने से जो कामत्याग किया जाता है, वही सच्चा कामत्याग कहलाता है; किन्तु कामनाओं में फँस कर विषय भोगादि के लिये अधिक से अधिक धन का व्यय कर देना कामत्याग नहीं कहलाता। धनैश्वर्य-सम्पन्न गुणी पुरुषों को यदि अपने कार्य में सफलता प्राप्त न हो, तो उन्हें घबराना नहीं चाहिये और न अपने हृदय को खिन्न करना चाहिये। कीर्त्ति, धन आदि सर्वस्व नष्ट हो जाने के अवसर में भी जो शान्त बना रहता है वही चतुर्थ गुण से सम्पन्न मनुष्य है। अपने प्रिय भाई, पुत्र स्त्री आदि से भी कभी याचना न करे। योग्य याचक को दान देना भी छठा गुण है। इस प्रकार के षड्गुण-सम्पन्न मनुष्य ही को अप्रमादी कहा जा सकता है। सत्यवादिता, आत्मस्वरूप का चिन्तन, संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात आदि समाधियों का अनुष्ठान, तर्क, वैराग्य, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य; असञ्चय, (अधिक

सामान का एकत्र न करना) यही आठ गुण अप्रमाद में हैं। पूर्वोक्त मद के आठ दोषों का परित्याग और त्याग के तथा अप्रमाद के आठ गुणों का यथोचित संग्रह करना चाहिये। हे राजन्! भूत, भविष्यत् के भयङ्कर क्लेशों और मन तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा आठ प्रकार का अप्रमाद उत्पन्न होता है। इस कारण इन सब महादोषों से सदा बचे रहना चाहिये। क्योंकि अप्रमादी ही सुख भोगता है। हे राजन्! तुम अपने चित्त को ब्रह्म में एकाग्र करो। क्योंकि इन सब लोकों की प्रतिष्ठा ब्रह्म ही में है। परलोक ही सत्य सुख है तथा सत्य ही में अमृत स्वरूप मोक्ष का निवास है। वास्तव में विधि का विधान ही यह है कि दोषों का सर्वनाश हो जाने पर ही संसार में तपश्चर्या की सिद्धि होती है। अतएव दोषों का सर्वनाश हो चुकने के बाद ही तपश्चर्या करनी चाहिये। सत्य ब्रह्म ही साधुओं का मुख्य व्रत है। पूर्वोक्त दोषों से अलग रह कर पूर्वोक्त गुणों को स्वीकार करने वाला मनुष्य ही कैवल्य (मोक्ष) साधन कर सकता है तथा इसी प्रबल तपश्चरण के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है। हे राजन्! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का यह संक्षेप में उत्तर दे दिया। यह उपदेश पापों का नाशक है। ऐसे निष्काम तपश्चरण द्वारा ही जन्म मरण जरा आदि के क्लेशों से छूट कर मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे भगवन्! इतिहासकथाएँ तथा ऋग्वेदादि सभी ब्रह्म को चराचर रूप से वर्णन करते हैं। चतुर्वेदी चार वेदों का, त्रिवेदी तीन वेदों का, द्विवेदी दो वेदों का तथा एक वेदी एक ही वेद का वर्णन करते हैं। अब आप बतलाइये ऐसे असमञ्जस में किसे ब्रह्मवेत्ता समझना चाहिये? अर्थात इतिहासों को मानूँ या एक, दो, तीन या चार वेदों को मानूँ?

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! वेदवेत्ताओं का अभाव होने के कारण ही एक वेद के बहुत से वेद हुए हैं। वेद्य ब्रह्म को समझाने के लिये ही वेद है। जब कि हमारा वेद्य ही एक ब्रह्म है तो उसको

बतलाने वाला वेद भी एक ही होगा। वेदविज्ञान शून्य हो कर भी अपने को लोग बुद्धिमान समझते हैं। पे लोग केवल बाह्य सुख और दिखाने के लिये दान यज्ञ और विद्याभ्यास करने लगे हैं। जो लोग सत्य मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं, उनकी बातें भी भ्रष्ट हुआ करती हैं। इसी कारण दुःसङ्कल्प वाले लोग केवल कामनाओं के दास बन कर, वेदवचनों का आश्रय ले कर ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। किसी का यज्ञ तो मन से, किसी का वाणी से और किसी का कर्म से सिद्ध होता है; किन्तु सत्य सङ्कल्पी ब्रह्मज्ञानी मनुष्य तो काल्पनिक ब्रह्मलोक का स्वामी होता है। यदि पूर्ण आत्मज्ञान न हो तो अपने सङ्कल्पों की सिद्धि के लिये अवश्य वेदों की दीक्षा ले कर व्रत करना चाहिये। दीक्षित शब्द ही दीक्ष् धातु से बना है। महात्माओं को तो एक ब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ धेय पदार्थ है। आत्मस्वरूप से जब तक परिचय नहीं होता, तब तक प्राणियों का कोई भी सङ्कल्प सिद्ध नहीं हो सकता। अतएव मनःशुद्धि के लिये उसे अवश्य ही दीक्षा लेनी चाहिये। ज्ञान का फल प्रत्यक्ष और तप का फल परोक्ष होता है। अधिक पढ़े लिखे तो बस पढ़े लिखे ही हैं।

हे राजन्! इस कारण केवल वेद पढ़े होने के कारण ही से कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं हो जाता; किन्तु जो सत्य मार्ग से विचलित नहीं होता वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। हे राजन्! महामुनि अथर्वा ने जो महर्षियों के पास जा कर कहा उस सब को छन्दस कहा जाता है। उपनिषत् वेद आदि को पढ़े लिखे हुए भी वेदवेत्ता नहीं कहलाते। बल्कि सच्चा वेदवेत्ता वही है, जो ब्रह्म को जानता है। हे धृतराष्ट्र! वेद ही परमात्मा के स्वरूप को दर्शाने के साधन हैं और परमात्म ज्ञानी ही छन्दोवेत्ता होता है। ऐसे ही छन्दोवेत्ता लोग ब्रह्म को जानते हैं। उनके प्रति कभी सन्देह न करना चाहिये। सम्पूर्ण वेद ब्रह्म के लिये स्वतः प्रमाण हैं। इसी कारण ऋषि वेदों का अध्ययन करते हैं। यद्यपि वेदों का जानने वाला कोई नहीं; तथापि कुछ लोग मन की प्रसन्नता के बढ़ जाने पर वेदों को जानते हैं। जो वेदों का स्वाध्याय कर

चुके, किन्तु ब्रह्म को नहीं जानते और सत्य मार्ग पर अविचल भाव से खड़े हुए हैं, उन्हीं मनुष्यों को वेदान्तवेद्य ब्रह्म का ज्ञान होता है। अहङ्कार, अचेतन वेद्य का भी कोई वेत्ता नहीं। इस कारण अन्तःकरण द्वारा कोई भी परमेश्वर को नहीं जान सकता। अनात्मज्ञ कभी परमात्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। हाँ, आत्मज्ञ अनात्मा और परमात्मा इन दोनों को जान सकता है। चिदात्म विषयक प्रमाणों द्वारा ही वेदान्त वेद्य विभुरूप प्रमेय का ज्ञान हो सकता है। वेदज्ञ और प्रमाण स्वयं उस प्रमेय परमेश्वर को नहीं जान सकते। यद्यपि वेदवेत्ता और प्रमाण दोनों ही परमात्म-विषयक ज्ञान से शून्य हैं; तथापि वेदोक्त प्रमाणों से वेदवेत्ता लोग उसे जान सकते हैं। जैसे किसी अनजान मनुष्य को द्वितीया के चन्द्र का दर्शन कराने के लिये यह कहा जाता है कि, देखो वह सब से ऊँचे पेड़ की चोटी के पास चन्द्रदेव निकले हुए हैं; वैसे ही परब्रह्म के विज्ञान और दर्शन के लिये सब से पूर्व वेदों का विज्ञान होना आवश्यक है। हे राजन्! जो स्वयं संशयशून्य तथा वेदार्थ व्याख्याता है, वही सच्चा ब्रह्मवेत्ता है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशा विदिशाओं में कहीं परमात्मा को खोजने की आवश्यकता नहीं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, पञ्चकोषों में से परमेश्वर को ढूँढ़ निकालना बड़ा कठिन काम है; किन्तु निरन्तर ध्यान करने वाला तपस्वी वैदिक विधानों की ओर ध्यान न करता हुआ केवल ज्ञान से मोक्ष पाता है। ब्रह्म की प्राप्ति चाहने वाले को इस प्राकृतिक प्रपञ्च से सदा सावधान रहना चाहिये। यह वाह्य प्रपञ्च तुरन्त ही मनुष्य को अपना दास बना लेता है। विषय भोगों के लिये सञ्चयशील होना आत्मदर्शन के मार्ग में बड़ा भारी अन्तराय है। परमात्मा सर्वव्यापक है— उसे इतस्ततः खोजना व्यर्थ है। वह तो केवल विषयपराङ्मुखता तथा पूर्ण इन्द्रियसंयम से प्राप्त होता है। जब तक प्राकृतिक चकाचौंध से मनुष्य अपना पीछा नहीं छुड़ाता; तब तक उसे परमात्मदर्शन भी नहीं होता। निरन्तर धारणा, ध्यान, समाधि का अनुष्ठान करने वाला ही ब्रह्म के दर्शन

कर सकता है। इन्द्रियों के सब व्यापारों को त्याग कर एकाग्र मन से उपासना करनी चाहिये। हे राजन् ! तुम्हें उचित है कि, सब प्रकार के संकल्पों को त्याग कर उस अद्वितीय अखण्ड परब्रह्म की उपासना करो। हे राजन् ! केवल वन में रहने और ध्यान करने ही से क्या मनुष्य मुनि नहीं कहलाता; किन्तु जिस मुनि ने संसार में जन्म मरण आदि के कारण स्वरूप व्यापक आत्मा का ठीक ठीक साक्षात्कार प्राप्त किया हो, वही मुनि कहलाता है। ज्ञानी मनुष्य को हम एक प्रकार से वैयाकरण भी कह सकते हैं। क्योंकि वह सर्वज्ञ होने के कारण सब विषयों को प्रकाशित करता है। सारे विषयों का आविष्कार केवल ब्रह्म ही से हुआ है। अतएव यह व्याकृति जो मुनि में आ जाती है वह भी परब्रह्म ही की कृपा समझनी चाहिये ? सब विषयों का प्रत्यक्षतः दर्शन करने वाला मनुष्य सर्वदर्शी कहा जा सकता है और ब्रह्म-विद्या तथा सत्य का अवलम्बन करने वाला मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है। हे राजन् ! जैसे ऐसे साधनों वाला मनुष्य पूर्वोक्त धर्म और वेदों पर क्रमशः चलते चलते विज्ञान प्राप्त कर, ब्रह्म के दर्शन कर लेता है; वैसे ही असत्य आदि प्रमादों से रहित तथा द्वादश धर्मों का आश्रय ले कर यत्न करने वाला क्रमशः परब्रह्म के दर्शन करता है। यह बात मैंने तुम्हें अपने अनुभव तथा बुद्धि के अनुसार बतलायी है।

चौवालीसवाँ अध्याय

सनत्सुजात का आख्यान

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा—हे महर्षे ! आपका उपदेशामृत पी कर मेरी तृप्ति नहीं होती। अतएव विश्वब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला और भी कुछ औपनिषद ज्ञान का उपदेश कीजिये। ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली पराविद्या के आप असम्भ्रान्त विद्वान हैं। अतएव आप मेरी इस विनीत प्रार्थना को अवश्य स्वीकार कीजिये।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन् ! तुम इस समय इस मनोहर उपदेश को सुन कर उतावले हो रहे हो। ब्रह्मप्राप्ति की मुख्य साधन पराविद्या ऐसे जल्दबाज़ मनुष्यों को प्राप्त होना असम्भव है। जिस विद्या के प्रभाव से मन का विजय हो जाने से एक अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है, वह ब्रह्मविद्या विना ब्रह्मचर्य पालन किये निगुरा रह कर कभी भी प्राप्त नहीं होती। इस कारण आपको इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। धैर्य से पहिले अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कीजिये। तभी आप इस विद्या के अधिकारी बन सकते हैं। हे राजन्! जिस समय यह सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन निश्चयात्मक बुद्धि में सर्वथा लीन हो जाता है, उस समय की स्थिति का नाम ही ब्रह्मविद्या स्थिति है। इस समय सब वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यह सर्वश्रेष्ठ दशा तभी प्राप्त होती है जब कि, निरन्तर ब्रह्म का श्रवन, मनन, निदिध्यासन किया जावे।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महात्मन् ! आपके कहने से तो यह मालूम होता है कि, ब्रह्मविद्या नित्य सिद्ध है और उसकी प्राप्ति के लिये किन्हीं विशेष कर्मों का अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन करते रहने पर स्वयं ही उसका आत्मा में प्रादुर्भाव हो जाता है। जब ऐसी बात है तब फिर मुमुक्षु के लिये मोक्षसाधन करने के लिये अनेक साधनों का अनुष्ठान करना बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि प्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना एकान्त निरर्थक है। इधर ब्रह्मचर्य पालन भी एक कर्म विशेष ही है। इस कारण उसका अनुष्ठान भी निरर्थक ही ठहरा।

सनत्सुजात ने कहा—राजन् ! सुनो। यद्यपि ब्रह्म नित्य प्रत्यक्ष है; तथापि बुद्धि में अनेक मल होने के कारण उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता और वह अव्यक्त ही रहता है। यद्यपि उस अव्यक्त ब्रह्म का प्रत्यक्ष करा देने वाली पराविद्या नित्यसिद्ध है। तो भी उसकी साधना के लिये प्रयत्न करने

की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य तथा गुरु की सेवा से जिस विद्या को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य संसार के सङ्कटों से छूट जाता है, अब मैं उसी विद्या का वर्णन करता हूँ। तुम्हें ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये।

धृतराष्ट्र ने कहा—महाराज! जो पराविद्या केवल ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होती है उस ब्रह्मचर्य के साधन का प्रकार भी हमें बतलाइये।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्। निश्छल हो कर पूज्य गुरुदेव की सेवा करने वाले और ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करने वाले ही शास्त्रकार बन कर मृत्यु के बाद ब्रह्मसायुज्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जैसे मूज में से सींक खींच कर अलहदा कर ली जाती है, वैसे ही जो लोग ब्रह्मपद प्राप्ति के लिये शीतोष्ण सुख दुःख का सदर्प सहन कर लेते हैं, वे लोग शरीर से आत्मा को अलहदा कर लेते हैं। हे धृतराष्ट्र! माता पिता से उत्पन्न हुआ तो यह शरीर क्षणभङ्गुर है; किन्तु आचार्य के ब्रह्मोपदेश से उत्पन्न होने वाली जाति अजर अमर कहलाती है। आचार्य अपने उपदेशों से ब्रह्म का वर्णन कर मोक्ष का मार्ग सिखलाता है। इसलिये उसे माता पिता से भी बढ़ कर समझना चाहिये। सदा उसकी आज्ञा में रहना उचित है। राजन्! संसार में गुरुद्रोह से बढ़ कर कोई पातक नहीं। इस कारण कभी गुरुद्रोही नहीं बनना चाहिये। शिष्य का धर्म है कि, वह नित्य गुरुदेव को प्रणाम करे, क्रोध तथा अभिमान को कभी पास न फटकने दे तथा पवित्रता और सावधानी के साथ स्वाध्याय में मन लगावे। यह ब्रह्मचर्य का प्रथम पाद है। शिष्य का धर्म है कि, वह अपने भार से गुरुदेव को कष्ट न दे बल्कि स्वयं ही भिक्षावृत्ति द्वारा अपनी आजीविका कर ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करे। बस यही ब्रह्मचर्य का पहिला चरण है। तन, मन, धन, तथा वचन और कर्मों से अपने गुरुदेव को सदा प्रसन्न रखे। यह ब्रह्मचर्य का दूसरा चरण है। गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र के साथ भी वही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि, गुरुदेव के साथ किया जाता है। विद्याधन दे कर आचार्य, शिष्य का सब तरह से कल्याण कर देता है। इस कारण उसके इस महोपकार को कभी

नहीं भूलना चाहिये। जो शिष्य अपनी उन्नति कराने वाले गुरुदेव पर सदा प्रसन्न रहता है वह सच्चा ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य के तीसरे चरण का पालन करता है। ब्रह्मचारी को उचित है कि, वह विना गुरुदक्षिणा दिये अपना समावर्त्तन संस्कार न करावे तथा गुरुदक्षिणा दे कर मन में कभी उसका ध्यान न करे और न गुरुदेव के सन्तोष सूचकवाक्यों को सुनने की इच्छा करे। यही ब्रह्मचर्य के चतुर्थ चरण का पालन करना कहलाता है। जब बुद्धि परिपक्व हो जाती है, तब ब्रह्मचारी प्रथम पाद की सिद्धि को प्राप्त करता है तथा एक पाद बुद्धि के उत्कर्ष से और एक पाद सहपाठियों के साथ सत्शास्त्रविषयक बातचीत करने से प्राप्त होता है। सारांश यह है कि, प्रथम चरण की शिक्षा गुरुदेव से, द्वितीय चरण की शिक्षा अपनी बुद्धि से, तृतीय चरण की शिक्षा परिपक्व मेधा के द्वारा तथा चतुर्थ चरण की शिक्षा सहपाठियों के साथ शास्त्र-चर्चा करने से प्राप्त होती है। धर्म आदि बारह गुणों को पा कर तथा आसन और प्राण को जीत कर निरन्तर योगसाधन के लिये उद्योग करने वाला ब्रह्मचारी वेदार्थज्ञाता बन कर ब्रह्मदर्शन करता है। पूर्वोक्त सभी गुणों में सफलता तभी प्राप्त हो सकती है; जब कि, गुरुदेव की प्राप्ति हो जावे। बिना गुरुदेव के यह सब असफल ही रहते हैं। वास्तव में ब्रह्मचर्य सफल तभी होता है, जब अज अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार गुरुदेव को शिष्य अपना उपार्जित धन समर्पण करे और गुरुऋण से मुक्त हो जावे। जैसा गुरु के साथ वैसा ही गुरुपुत्र के साथ भी वर्त्ताव करना चाहिये। जो इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उन्हीं की उन्नति होती है और उन्हें ही धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादिकों द्वारा सुख प्राप्त होता है। जैसे वर्षा ऋतु में जल बरसता है वैसे ही उस ब्रह्मचारी पर धन की वर्षा हुआ करती है। इसी एक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करने से देवताओं ने देवत्व प्राप्त किया और ऋषि महर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों ने ब्रह्मलोक प्राप्त किया। गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने जो सौन्दर्य पर विजय

प्राप्त कर लिया है तथा सूर्यदेव प्रचण्डतापूर्वक उदय होते हैं यह सब ब्रह्मचर्य ही का प्रभाव है। यही ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण कामनाओं का भी देने वाला चिन्तामणि रत्न है। इसीके द्वारा देव, यक्ष, गन्धर्व तथा अन्य जो कुछ भी बनना चाहे मनुष्य बन सकता है। हे राजन्! जो पूर्ण तपस्वी बन कर ब्रह्मचर्य के चरण चतुष्टय का यथार्थ पालन करता है, वही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर कालजित् कहलाता है। हे राजन्! ब्रह्मविद्या से अनभिज्ञ मनुष्य नश्वर लोकों ही का अनित्य सुख उठा सकता है; किन्तु वह अन्त अक्षय प्रशान्त, मोक्ष सुख को कभी नहीं प्राप्त कर सकता; परन्तु जो विद्वान हैं उन्हें ज्ञान के द्वारा अवश्य अक्षय आनंदप्रद मोक्ष प्राप्त होता है। क्योंकि यदि मोक्ष ज्ञानियों को ही न मिला तो और फिर किसे मिलेगा? तात्पर्य यह है कि, बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं मिल सकता है।

धृतराष्ट्र बोले—हे महाराज! ब्रह्म का ध्यान करने पर ध्यान करने वाले को ब्रह्म का रंग लाल, काला, धुँधला तथा सुनहला सा प्रतीत होता है इसलिये ठीक ठीक बतलाइये कि, उसका रूप रंग कैसा है?

महर्षि सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! उपासक को अवश्य नीले, काले, लाल आदि रूप दिखलायी देते हैं; किन्तु वे सब रूप ब्रह्म के नहीं हैं। प्रत्युत वे रंग कफाकुल सुषुम्ना नाड़ी के हैं। ब्रह्म—पृथिवी, आकाश तथा समुद्र की अनन्त जलराशि आदि किसी एक निश्चित स्थान पर नहीं रहता है। वह तो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-हीन, विना गन्ध, अज, अव्यय, चिह्न के अनुसार इन सब उपाधियों से रहित है। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, बादल, बिजुली, पवन आदि कहीं भी ब्रह्म का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व वेदों में और रथन्तर साम, बार्हद्रथ साम, में अश्वमेधादि यज्ञों में भी उस ब्रह्म का रूप नहीं दीखता। हे राजन्! ब्रह्म का पार पाना बड़ा कठिन है। वह अज्ञान की उपाधि से शून्य, कालों का भी महाकाल सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्त्ता तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और बड़े से भी बड़ा है। सचराचर जगत् परब्रह्म ही में लय हो जाता है। वह निर्विकार हो

कर भी सब की रचना करता है। हे राजन्! यह जितने लोक दीखते हैं; यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। वह अद्वैत ब्रह्म निर्विकार है। वह यशःस्वरूप सर्व-व्यापक है। विद्वानों का यह भी मत है कि, ब्रह्म में केवल वाणी मात्र विकार है। हम लोग उसके अनेक नाम रख कर उसका आह्वान करते हैं; किन्तु यह सब मिथ्या है। केवल ब्रह्म पदार्थ ही सत्य है।

पैंतालीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र को सनत्सुजात का उपदेश

सनत्सुजात ने कहा—हे राजन्! ईर्ष्या, मोह, काम करने की इच्छा, काम, क्रोध, लोभ, शोक, अभिमान, निद्रा की अधीनता, कृपा, दोषदर्शिता, निन्दा यह बारह महादोष मनुष्य के प्राणों को नष्ट कर दिया करते हैं। प्रत्येक दोष पुरुषों का आश्रय चाहता है मूर्ख मनुष्य इन्हींके आवेश में अनेक बुरे कर्म करने लगता है। नवीन नवीन लालसायें रखने द्वारा, कठोर, कटुभाषी, बकवादी, आन्तरिक क्रोध करने द्वारा तथा निन्दक यह छः प्रकार के मनुष्य ऐश्वर्य पा जाने पर भी उसका उपभोग करना नहीं जानते तथा सदा सज्जनों का तिरस्कार किया करते हैं। विषयलम्पट, महाअभिमानी, देकर आत्मश्लाघा करवाने द्वारा, कञ्जूस, बल का दुरुपयोग करने द्वारा, अपनी प्रशंसा चाहने वाला, स्त्रियों से द्वेष रखने वाला, यह सातों क्रूर कहलाते हैं। धर्म, तपश्चरण, सत्य, शास्त्राभ्यास, इन्द्रियदमन, लज्जा, सहनशीलता, अमात्सर्य, दान, धैर्य, क्षमा, गुणग्राहक, ब्राह्मणों के लिये ये ही बारह महाव्रत हैं। हे राजन्! जो मनुष्य इन व्रतों का यथोचित पालन करता है, वह समस्त पृथ्वी का शासन कर सकता है तथा इनमें से तीन, दो या एक व्रत के भी पालन करने वाले की अनुचित ममता का नाश हो जाता है। इन्द्रिय संयम, त्याग, अप्रमाद, के द्वारा मोक्ष प्राप्त

होता है। ब्रह्मपरायण ऋषियों को अवश्य इन व्रतों का पालन करना चाहिये। सत्य असत्य कैसा भी क्यों न हो, पराई निन्दा से ब्राह्मण को सदा बचे रहना चाहिये। परनिन्दक ब्राह्मण की दुर्गति अवश्य ही होती है। पहिले जो मद के अठारह दोष केवल सङ्केतमात्र से बतलाये थे अब उनको यहाँ स्पष्ट रूप से कहते हैं। परस्त्री तथा परधन का अपहरण, धार्मिक कर्मों में विघ्न डालना, गुणियों के गुणों की निन्दा करना, काम, क्रोध, असत्य-भाषण, शराब पी कर बेहोश रहना, निन्दा करना, चुग़लखोरी, दुष्कर्मों तथा कचहरी आदि में व्यर्थ धन का नाश करना, सब से झगड़ा करना, प्राणियों से द्वेष करना, ईर्ष्या, मोह, गर्व में प्रसन्न रहना, मर्यादा का उल्लंघन करना, कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेचन में मूढ़ता तथा अन्य लोगों से द्वेष रखना यह अठारह मद के महादोष हैं, इस कारण योग्य मनुष्यों को चाहिये कि, वे कभी इन झगड़ों में पड़ कर अपना धर्म न गमावें। सब से पूर्व तो मित्रता के दो लक्षण यह हैं कि, मित्र के दुःख में दुःख और सुख में सुख माने वही सच्चा मित्र है। मित्र के याचना करने पर प्यारी से प्यारी चीज़ भी देने में नाहीं न करे यह मित्रता का तीसरा गुण है। चौथा गुण मित्रता का यह है कि, किसी मनुष्य के साथ उपकार करने पर उसके घर पहुँच कर मैंने इसके साथ यह किया वह किया इत्यादि अपने किये उपकारों का कभी भी बखान न करे। सच्चा मित्र कभी अपने मित्र के भरोसे पर कर्महीन बन नहीं बैठता। वह तो निरन्तर अपने परिश्रम से प्राप्त किये धन पर भरोसा रखता है। छठा मित्रों का गुण यह है कि, मित्र के स्वार्थसाधन के लिये अपने स्वार्थ का बिलकुल ध्यान न करे और जैसे हो वैसे मित्र की आपत्ति का प्रतिकार करे। जिस गृहस्थ ने दान, सतोगुण आदि उत्तम गुणों का संग्रह किया है वही अपनी इन्द्रियों का स्वामी है। उसकी इन्द्रियाँ कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकतीं। अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से जो अलहदा हटा देता है, वही सच्चा तपस्वी है। उसीको उच्चातिउच्च स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। जिन लोगों ने स्वर्ग आदि

के सुखों का ख्याल कर तपश्चरण और इन्द्रियदमन किया है, उन लोगों को ज्ञान नहीं होता। वे तो केवल अपनी अपनी कामनाओं में फँस कर स्वार्थसाधन के लिये यह सब अनुमान किया करते हैं। हे राजन्! सङ्कल्प द्वारा ही यज्ञों की वृद्धि होती है। सत्यसङ्कल्पों की अनुकूलता ही मन वचन और कर्म द्वारा किये गये यज्ञानुष्ठान को सफल बनाती है। योगियों के सत्य सङ्कल्प होने के कारण मानसिक यज्ञ होते हैं। मध्यम श्रेणी के मनुष्य ब्रह्मयज्ञ आदि वाचिक कर्म किया करते हैं। किन्तु साधारण मनुष्य दुग्ध दधि आदि पदार्थों से यज्ञ करते हैं। जैसे स्वामी की सेवक पर प्रभुता होती है, वैसे ही सत्य-सङ्कल्प-रहित चेतन आत्मा पर ब्रह्मज्ञानी सत्यसङ्कल्प वाले आत्मा की प्रभुता रहती है। निर्गुण ब्रह्म के जानने वाले विद्वान ब्राह्मण में ही सत्यकाम परब्रह्म का निवास है।

हे राजन्! विद्वानों का तो कहना यह है कि, केवल शिष्य को इस योगशास्त्र का उपदेश देना चाहिये। शेष शास्त्र तो केवल वाणी के विकार हैं। योगशास्त्र विश्व ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप का परिचायक है। जिस शिष्य ने इसका खूब अध्ययन कर लिया है, संसार उसके अधीन हो जाता है। परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष की भी प्राप्ति केवल इसी योगशास्त्र विज्ञान से होती है। धृतराष्ट्र! निरन्तर धर्माचरण करने वाला धर्मात्मा, असंख्य यज्ञों का करने वाला यजमान भी सत्य पर विजय नहीं पा सकता, वह ब्रह्मदर्शन से वञ्चित ही रहता है। सारांश यह कि, अज्ञानी यदि निरन्तर यज्ञादि कर्मों को करता रहे, तब भी मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि ऋतेर्ज्ञानान्नमुक्तिः—विना ज्ञान के मोक्षलाभ नहीं हो सकता। केवल ऊपर ही से राग द्वेष त्याग कर ब्रह्म की उपासना करने वाले को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि, बस इसके आगे शेष सिद्धिसाधन कुछ नहीं है। प्रत्युत इस बाह्य साधन के साथ साथ महाशय मनीराम जी को भी अपने वस में रखना चाहिये। अपनी स्तुति या निन्दा सुन कर भी हर्ष या क्रोध न करे। हे राजन्! योगियों को उचित है, कि वे क्रमशः सिद्धियों

की सीढ़ियों को पार कर अपने लक्ष्य पर पहुँचने का यत्न करें। ऐसा करने से उन्हें इसी शरीर में ब्रह्मप्राप्ति हो सकती है। बस यही सब शास्त्रों का सार योगशास्त्र है। पात्र समझ कर तुम्हें इसका उपदेश मैंने दिया है।

छियालीसवाँ अध्याय

सनत्सुजात की उक्तियाँ

सनत्सुजात ने कहा—राजन्! इस विश्व ब्रह्माण्ड का कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता उपाधियों से रहित, ज्योतिःस्वरूप सूर्यादिकों का प्रकाशक महामहिम परब्रह्म है। समस्त इन्द्रियाँ उसकी उपासना करती हैं। देवता निरन्तर उसीकी उपासना में मग्न रहते हैं। वह सनातन ब्रह्म केवल योगियों ही को दिखलायी देता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म ही इस अखिल ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है। आनन्द ही से ब्रह्म की वृद्धि होती है। परमानन्द मूर्ति परमेश्वर ही सूर्यादि ग्रहों में प्रकाशकरूप से विराजमान है। वह स्वयं प्रकाश है अन्य प्रकाशमान पदार्थों में उसकी ही शक्ति काम कर रही है। चर्मचक्षुओं से उसे देख लेना असम्भव है। केवल योगी लोग योगबल से उसका दर्शन करते हैं। नित्य एक रस परब्रह्म से पैदा होने वाले पञ्चमहाभूतों से प्राणियों के शरीर की रचनाएँ होती हैं। उन शरीरों में जीवात्मा द्वारा परमात्मा का निवास है। यह दोनों ही देवता माया की निद्रा में अचेत हो जाते हैं; किन्तु जो इनसे विलक्षण भगवान भास्कर से भी कहीं अधिक प्रकाशमान ब्रह्म है, वह माया की उपाधियों से शून्य है। वही पृथ्वी आकाश इन दोनों देवताओं को धारण करता है। योगियों को ज्ञान चक्षुओं से उसका दर्शन होता है। वही सच्चिदानन्द ब्रह्म, जीवात्मा, परमात्मा, पृथ्वी, आकाश, दिशा, विदिशाओं तथा चतुर्दश

ब्रह्माण्डों का धारण करने वाला है। उसीसे दिशा, विदिशा, नद, नदी, सरिता, सागर आदि प्राकृतिक उपयोगी पदार्थों का जन्म हुआ है। योगियों को उसका दर्शन होता है, भोगियों को नहीं। हे राजन्! यह नश्वर शरीर अविनाशी कर्मों से बना हुआ एक रथ है। इन्द्रियरूपी घोड़े इस रथ पर सवार होने वाले जीव को जरा-जन्म-विहीन अमृतस्वरूप परब्रह्म के पास ले जाते हैं। जो इस रथ के पहिये है वे प्रारब्ध और सञ्चित कर्मों के हैं। उनका नाश तो होता ही नहीं है। इस कारण विवश हो कर इन्द्रियों के घोड़े पहियों के अधीन ही चलते हैं। जिस ब्रह्म की तुलना के योग्य कोई पदार्थ नहीं, जिसे कोई आँख से देख नहीं पाता, उसे निर्मल विज्ञान की बुद्धि वाले मनीषी लोग मनःसंयम द्वारा जान कर अमर हो जाते हैं। मन, बुद्धि तथा दश इन्द्रियों वाली महानदी परमेश्वर की रक्षा में रहने वाले जीव के लिये विषय-वासनाओं की ओर वहा ले जाती है; किन्तु जो इस नदी के वेग को अपने स्वाधीन कर अमृत की ओर ले जाते हैं और विषय कुण्ड से इसके प्रवाह को हटा लेते हैं; वे मनुष्य अक्षय सुख प्राप्त करते हैं और जिस ब्रह्म का केवल योगीजन दर्शन कर सकते हैं, उसका दर्शन भी कर लेते हैं। संसारचक्र में पड़ा हुआ जीवात्मा अपनी वासनाओं के अनुसार किये हुए कर्मों का आधा फल परलोक में तथा शेष फल भोगने के लिये संसार में आता जाता रहता है। पुण्यात्मा जीव ही बलि-यज्ञ-कर्त्ता और ईशान कहलाता है। मौहर की मक्खी जैसे आधे महीने शहद का सञ्चय करती है और आधे महीने भर उसका भोग करती है; वैसे ही यह जीव आधा मास विषयसञ्चय में लगाता है और आधा मास उसके भोगने में बिताता है। जिस ब्रह्म ने जीवों के कर्मानुसार अन्नादि भोग्य पदार्थों की रचना की है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन तो योगी लोग ही कर सकते हैं। जैसे बिना पङ्ख वाले पक्षी सघन वृक्ष पर पहुँच कर, पङ्ख जम जाने के बाद मनमानी जगह उड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही अज्ञानी लोग ब्राह्मण शरीर पा कर भी वेदविज्ञान से शून्य हो कर इधर

उधर भटकते फिरते हैं; किन्तु विज्ञानी देहाभिमान को त्याग कर अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। उस पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण ही जीव की उत्पत्ति हुई, इसी कारण विद्वानों ने भी उसका नाम पूर्ण रखा है तथा पूर्ण ब्रह्म ही से पूर्ण जीव का उद्धार होता है और अन्त में वह पूर्णस्वरूप ब्रह्म ही शेष रहता है। इस प्रकार ऐसे पूर्णब्रह्म का दर्शन केवल ज्ञान-योग द्वारा योगियों ही को होता है। उसी पूर्ण ब्रह्म से अग्नि, वायु, सोम और प्राण आदि की उत्पत्ति होती है और अन्त में उसी ब्रह्म में इन सब का लय हो जाता है। उसी एक ब्रह्म से यह सब संसार उत्पन्न हुआ है; किन्तु हम उसके रूप का स्पष्ट वर्णन नहीं कर सकते। हाँ, योगी लोग अवश्य उस अवर्णनीय ब्रह्म का दर्शन कर सकते हैं। प्राण अपान को ग्रस लेता है, मन प्राण को ग्रस लेता है, बुद्धि मन को ग्रस लेती है और परमात्मा बुद्धि को ग्रस लेता है। इस प्रकार उस बुद्धिग्रासी ब्रह्म को केवल योगी ही देख पाते हैं। चार चरणों वाले हंस की तरह परमात्मा भी इस अगाध संसारसागर में ऊपरी भागों पर चरणों से विहार करता है। जिस मनुष्य ने उन प्रत्यक्ष तीनों चरणों को चलाने वाले गुप्त चौथे चरण का दर्शन किया है, उसकी मृत्यु अमृत्यु दोनों ही का अभाव हो जाता है। इस प्रकार अपने तुरीय पद से संसार को धारण करने वाले ब्रह्म का दर्शन योगी ही कर पाते हैं। केवल अङ्गुष्ठमात्र पुरुष सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से इस लोक तथा परलोक में आता जाता है। वही जाग्रत और सुषुप्ति का अनुभव करता है। वही जगन्नियन्ता जगदीश स्तुति करने योग्य सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। मूल कारण परमात्मा चैतन्य रूप से सब के प्रत्यक्ष हो रहा है; किन्तु मूर्ख लोग उस अखण्ड प्रबल शक्ति को नहीं देखते। ब्रह्म सब के लिये समान है। चाहे साधनहीन हो या साधन वाला। चाहे मुक्त हो या बद्ध, वह सर्वशक्तिमान् सब के लिये एक ही सा क्या प्रतीत होता है; परन्तु जो मुक्त हैं वे ब्रह्म के अनुपम रसास्वादन की चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। बद्ध जीवों को वह आनन्द नहीं मिल सकता। इस प्रकार सब

को एक रूप भासने वाला ब्रह्म केवल योगियों ही को दृष्टिगोचर होता है। हे राजन्! विद्वान् मनुष्य ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली प्रज्ञा के द्वारा लोक परलोक में विहार करते हैं। उन्हें विना यज्ञ होमादि किये हुए ही उनका फल प्राप्त होता है। देखिये कहीं आपकी ब्रह्मनिष्ठा कम न हो जावे। आप सावधान रहें। उस प्रज्ञान संज्ञक ब्रह्म को धीर मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं। योगी लोग भी उसका योगबल से दर्शन करते हैं। सचराचर जगत को अपने में लय कर लेने वाले परब्रह्म को जानने वाले मनुष्य का इस लोक में कोई भी प्रयोजन नष्ट नहीं होता। ऐसे विराट ब्रह्म का दर्शन योगियों ही को होता है। हे राजन्! अनन्त पङ्खों से मन के समान वेग धारण कर, जीव चाहे जितनी दूर उड़ कर क्यों न चला जावे; किन्तु वह कभी भी ब्रह्म से दूर नहीं हो सकता। वह सदा उसके पास ही रहता है। जिस परब्रह्म के कारण दूरी भी समीपता का रूप धारण करती है; उस ब्रह्म का योगी लोग ही दर्शन करते हैं। अर्थात् उस अनन्त परमेश्वर का दर्शन (अन्त) योगी जन ही पा सकता है। हे धृतराष्ट्र! कोई चाहे कि मैं चक्षुओं द्वारा ब्रह्म का दर्शन कर लूँ, तो यह बिल्कुल असम्भव है। शुद्ध-सत्व-सम्पन्न मनुष्य अपने निर्मल अन्तःकरण द्वारा उसका दर्शन कर सकते हैं। सर्व-हित-कारक मनःसंयमी धैर्यशाली मनुष्य ही संसार के बन्धन त्याग कर अमृत रूप हो सकता है। उस अमृत रूपी परमेश्वर का वह भी योगियों की तरह दर्शन करता है। संन्यासी बन कर भी बगला भगत सरीखे सिरमुँड़ों से दूर रहे। जैसे साँप काट कर भाग जाता है और अपने शरीर को बिल में छिपा लेता है, वैसे ही यह लोग भी अपने गुरु के उपदेश और रंगे हुए वेश से अपने पापों को छिपा कर दूसरों को ठगने का सदा उद्योग करते हैं। वैराग्यवान को उचित है कि, वह सदा सज्जनों की संगति करे, दुर्जनों से कभी प्रेम न करे। परमात्मा का वास्तविक रूप जानने के लिये सज्जनों के सङ्ग से बढ़ कर और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सतसङ्ग द्वारा विज्ञानप्राप्त योगियों ही को ज्या ब्रह्म के दर्शन होते हैं। जीवन्मुक्त समस्त इन्द्रियों को मिथ्या मान कर, उनके

कर्मों में लिप्त नहीं रहता। वह जरा मृत्यु आदि से तनिक भी विचलित नहीं होता। दुःख सुख से रहित एक भाव रखने वाला सत्य और मिथ्या आदि सभी को परमात्मा के अधीन समझने वाला योगी ही अहंरूपी ब्रह्म का दर्शन करता है। ऐसे जीवन्मुक्त को पाप गिरा नहीं सकते, पुण्य उवार नहीं सकते। यह सब बन्धन तो मनुष्यों के लिये हैं। वे जरा से पुण्य कर्म से उच्च और तनिक से पाप से अधम हो जाते हैं। वह ब्रह्मनिष्ठ तो कैवल्य मोक्ष के समान है। जैसे मोक्ष के लिये पाप पुण्य का स्पर्श नहीं होना वैसे ही उसे भी इनसे कुछ मतलब नहीं रहता। इसलिये योग-साधन द्वारा मुक्त हो कर ब्रह्मानन्द का आस्वादन करना चाहिये। क्योंकि योगी को ही सनातन ब्रह्म का दर्शन होता है। योगी के लिये दुर्वचनों और निन्दा के द्वारा दुःख नहीं होता और न उसे यह चिन्ता होती है कि, मैंने हवन नहीं किया, या अमुक शास्त्र नहीं पढ़ा; किन्तु उसे ब्रह्मविद्या ही ऐसी बुद्धि प्रदान करती है कि, जिसे केवल धीर मनुष्य ही पा सकते हैं। जिसे चिन्तायें हिला नहीं सकतीं, ऐसे सनातन ब्रह्म का दर्शन योगी ही कर पाते हैं। इस प्रकार जो सर्वव्यापक परमात्मा का दर्शन करता है वह विविध कर्मों में आसक्त मनुष्यों में आत्मस्वरूप से निवास करके भी किसी का भी शोक नहीं करता। हे राजन्! जैसे पूर्ण जलाशय में से जितना जिसे चाहिये उतना ही वह पानी ले कर अपना कार्य कर लेता है, वैसे ही वेदों में से भी अपने अपने काम की बातों को स्वीकार कर मनुष्य उन पर आचरण करता हुआ कृतकृत्य हो जाता है। अपने हृदय में निवास करने वाला अंगुष्ठमात्र आत्मपुरुष नेत्रलक्ष्य नहीं होता-अजन्मा हो कर भी वह रात दिन निस्तन्द्र हो कर विहार करता है। आत्मजिज्ञासुओं को उचित है कि, वे उसको आत्मा समझ कर कर्मबन्धन से मुक्त हो जावें। मैं ही माता, मैं ही पिता मैं ही पुत्र तथा मैं ही सब का आत्मा हूँ तथा और जो आगे होंगे और अब विद्यमान हैं उन सब का भी आत्मा मैं ही हूँ। हे धृतराष्ट्र! मैं वृद्ध हूँ, सब का बाबा हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, तुम मेरे आत्मा में निवास करते

हुए भी तुम मेरे नहीं हो और मैं तुम्हारा नहीं हूँ। हे राजन्! आत्मा ही मेरा स्थान है तथा मेरी उत्पत्ति का कारण भी आत्मा ही है। मैं वस्त्र में तन्तुओं की भाँति जगत में सर्वत्र व्याप्त हूँ। मैं अज अनादि होता हुआ भी आलस्य छोड़ कर विहार करता रहता हूँ। मेरा अधिष्ठान नित्य है। केवल मुझे ही जान कर जीवात्मा वास्तविक सफलता को प्राप्त होता है। वह परमात्मा अणु (सूक्ष्म) से भी सूक्ष्म है। भूत, भविष्यत् आदि कालों का प्रकाश करने वाली माया ही को उसने अपना दिव्य नेत्र बनाया है। वही सब प्राणियों में अन्तर्यामी हो कर विराजमान है। वही सम्पूर्ण जरायुज (झिल्ली से पैदा होने वाले) जीवों का सृजनहार है तथा सब प्राणियों के हृदयकमलों में निवास करता है। उसके इस वास्तविक स्वरूप को ज्ञानी लोग पहिचानते हैं।

यानसन्धि पर्व

सैंतालीसवाँ अध्याय

कौरव सभा में सञ्जय

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! इस प्रकार महर्षि सनत्सुजात और महात्मा विदुर से बातचीत करते करते ही राजा धृतराष्ट्र की वह रात बीत गयी। सबेरा होते ही अनेक देशों से हस्तिनापुर में आये हुए राजाओं तथा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, विकर्ण सोमदत्त, बाह्लीकि, महात्मा विदुर आदि लोग धृतराष्ट्र को साथ ले कर तथा दुःशासन, शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक तथा विविंशति आदि लोग दुर्योधन को साथ ले कर, सञ्जय से मिलने के हेतु तथा पाण्डवों की धर्मयुक्त बातों को सुनने के लिये जैसे देवता लोग इन्द्रसभा में जाते हैं, वैसे ही

कौरवों की सभा में आये। सभाभवन अत्यन्त स्वच्छ लिपापुता और चन्दन के जल से सिञ्चित होने के कारण सुवासित हो रहा था। उस चन्द्र-कान्त उज्ज्वल विशाल सभाभवन में सुन्दर फर्श बिछा हुआ था। उस फर्श पर सुन्दर गद्दी और चाँदनी वाले सुवर्ण तथा हाथी दाँत के रत्न-जटित सिंहासन बिछाये गये थे। इस प्रकार कौरवों की सभा का दृश्य अत्यन्त ही मनोहर प्रतीत होता था। हे नरनाथ! जैसे सिंह गिरिकन्दरा में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वीर राजाओं ने उस सभा भवन में प्रवेश किया। सूर्यसमान अत्यन्त प्रतापी नरपालों से सभा जगमगाने लगी। क्रमशः सभी राजा अपने अपने योग्य सिंहासनों पर विराजमान हो गये, इतने में बाहर से द्वारपाल ने आ कर सभा में हाथ जोड़ कर विनय की कि, महाराज! सञ्जय जो कि पाण्डवों के पास गये थे वे शीघ्रगामी घोड़ों वाले रथ पर सवार हो कर आये हैं और द्वार पर खड़े हैं। इतने में कुण्डलधारी सञ्जय शीघ्रता से राजाओं की सभा में आ कर उपस्थित हो गये और कहने लगे कि, हे कौरवों! आप लोगों को यह तो मालूम ही होगा कि, मैं पाण्डवों के पास गया था और वहाँ से उनका संदेशा ले कर लौट आया हूँ। पाण्डवों ने आप सब लोगों के लिये यथायोग्य कहा है। पाण्डवों ने अपने पूज्य श्रद्धास्पद महानुभावों को नतमाथ प्रणाम कहा है और मित्रों को नमस्कार तथा तरुण वीर क्षत्रियों को उनकी योग्यतानुसार बड़े आदर से यथोचित शिष्टाचार कहा है। हे नरपालो! मैंने महाराज धृतराष्ट्र के उपदेशानुसार ही पाण्डवों के यहाँ जा कर कार्य किया। महाराज का जो कुछ भी पाण्डवों के लिये संदेशा था, उन्हें सुना दिया, किन्तु अब जो कुछ भी उत्तर उसका प्राप्त हुआ वह आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।

अड़तालीसवाँ अध्याय

सञ्जय के मुख से अर्जुन कथित सँदेश

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! बतलाओ, उदारमना, वीर एवं दुष्टों को प्राणदण्ड देने वाले अर्जुन ने भगवान् कृष्णचन्द्र और अन्य राजाओं के सम्मुख क्या क्या कहा था ?

सञ्जय बोला—हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिर की सम्मति के अनुसार भगवान् कृष्ण के सम्मुख धनञ्जय (अर्जुन) ने जो कुछ भी कहा है वह सब विशेष कर दुर्योधन के सुनने योग्य है । इस लिये हे दुर्योधन ! युद्धार्थी धनञ्जय के वचनों को बड़ी सावधानता से सुन । महाबली और रणकुशल अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सम्मुख मुझसे कहा, हे सञ्जय ! तुम कौरवों की सभा में जा कर कटुवादी दुष्ट कर्ण से तथा मुझसे निरन्तर वैर रखने वाले दुर्मति दुर्योधन के सम्मुख निडर हो कर मेरा यह सँदेश कहना जैसे सूर्यदेव वज्रपाणि इन्द्रदेव की बातों को चुपचाप विनम्र हो कर सुनने की इच्छा करते हैं; वैसे ही अर्जुन की यह सब बातें पाण्डवों तथा सृञ्जयों ने सुनीं । गाण्डीवधारी अर्जुन संग्राम करने की इच्छा कर रहा है । उसने लाल लाल आँखें कर यह कहा कि, देखो यदि दुर्योधन, अजमीढ के वंशधर धर्मराज युधिष्ठिर की पैतृक सम्पत्ति उनको न लौटा देवेगा तो अवश्य ही धृतराष्ट्र के छोकरों को पूर्व किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और कौरवों को तो भीम, नकुल, सहदेव स्वयं वासुदेव श्रीकृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि महारथी तथा जो केवल अपने ध्यानमात्र से आकाश और पृथ्वी को भी भस्म कर सकते हैं, वे धर्मराज युधिष्ठिर संग्रामभूमि में बात की बात में तहस नहस कर देंगे। यदि आज दुर्योधन हम लोगों से लड़ना चाहे तो बड़ी अच्छी बात है। क्योंकि लड़ाई से हमें सारा राज्य मिलेगा और वैसे जितना वे देंगे उससे ही हमें सन्तोष करना पड़ेगा। इसलिये जहाँ तक युद्ध की ठहर जाय, वहाँ तक

तो सन्धि का नाम भी न लेना। धर्मात्मा पाण्डवों ने कौरवों के अत्याचार से वनवास करते हुए जिस कठिन शय्या पर पड़े पड़े अनेक क्लेश भोगे हैं अब निश्चय उसी दुःखदायिनी मृत्युशय्या पर दुर्योधन को शयन करना पड़ेगा। सञ्जय! देखो, यह मैं तुम्हारे लिये काम बतला रहा हूँ। दुर्मति दुर्योधन ने अन्यायी बन कर, कौरव और पाण्डव दोनों का पक्ष करने वाले लोगों को उनका पालन पोषण कर अपने अधीन कर लिया है। उन सब लोगों का प्रेम धर्मराज युधिष्ठिर के ऊपर फिर वैसा ही उत्पन्न कर देना यही तुम्हारा काम है। इसीमें पाण्डवों का कल्याण है और सन्धि के प्रस्ताव से पाण्डव प्रसन्न न होंगे। हमारे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर में विनय, सरलता, तपश्चरण, इन्द्रियसंयम और धर्माचरण आदि अनेक गुण मौजूद हैं। वे इतनी आपत्तियों का सामना करते हुए भी कभी क्रोध नहीं करते। कौरवों की ओर से रचे गये षडयन्त्रों को वे सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए अब भी क्षमा करते रहते हैं, किन्तु याद रखो जब तक वे महात्मा चुप हैं तभी तक दुर्योधन आदि कौरव अपना कुशल समझें। जिस दिन उस सत्य सङ्कल्प तपस्वी ने अपना क्रोध रूपीमहाशस्त्र कौरवों पर छोड़ा उसी दिन सब कौरवों का संहार हो जावेगा और दुर्योधन अपने माथे पर हाथ रख कर अपने किये हुए पापों पर पश्चात्ताप करेगा। जैसे गर्मियों में धधकती हुई आग घास के ढेरों को जला कर भस्म कर देती है, वैसे ही धर्मराज का भयङ्कर क्रोधानल कौरवों को कूड़े कर्कट की तरह भस्म कर डालेगा। जिस समय भयङ्कर गदा-धारी भीम अपने प्रबल क्रोधानल को धधकाता हुआ दुर्योधन के सम्मुख संग्राम में लड़ने के लिये आवेगा, उस समय दुर्योधन अपने मन में यही कहेगा कि, हाय मैंने यह क्या किया। काल के समान कराल क्रोधी भीम को लड़ाई के लिये सजा हुआ देख देख कर, दुर्योधन मेरी इन बातों को याद करेगा और अपने पापों की प्रायश्चित्त रूपी वेदी पर आत्मबलिदान करेगा। जब दुर्योधन की सेना के मदोन्मत्त हाथी महारथी भीम की भयङ्कर गदा से

त्रस्त व्यस्त हो कर मुख से रुधिर वमन करते हुए संग्रामभूमि में लुढ़कते फिरेंगे, तब दुर्योधन को अपने पाप कर्मों का विचार होगा और इस युद्ध-घोषणा पर वह पछतावेगा। जैसे गायों के झुंड में घुस कर सिंह गौओं का खून खच्चर कर देता है, वैसे ही जब वीरकेसरी भीम कौरवदल में घुस कर मारकाट मचावेगा; तब दुर्योधन कहेगा कि हाय! मैंने यह विपत्ति क्यों अपने सिर ली और यह युद्ध क्यों छेड़ा? जब रणकुशल अनेक भयङ्कर शस्त्रों को धारण कर वीर महारथी भीम रथ पर सवार हो कर अनेक रथियों, महारथियों और पैदल योद्धाओं का कबन्ध-नृत्य देखने के लिये संग्रामभूमि को नृत्यशाला बना कर, रणचण्डी को तृप्त करेगा, तब अपनी सेना का सर्वनाश होते देख कर, दुर्योधन को मालूम होगा कि, युद्ध करना टेढ़ी खीर है। जैसे तृणसमूह से युक्त ग्रामों को आग जला कर भस्म कर देती है, जैसे ओलों की वर्षा परिपक्व कृषि का सर्वनाश कर डालती है, वैसे ही जिस समय रण भयङ्कर भीम का प्रचण्ड शस्त्राग्नि कौरवदल में घुस कर सेना को धप धप कर के जला डालेगा, उस समय अपने भागे हुए योद्धाओं को देख कर दुर्योधन की आँखे खुलेंगी और वह पछतावेगा कि, हाय! मैंने व्यर्थ ही यह युद्ध छेड़ा। जिस समय रणकुशल महारथी नकुल समराङ्गण में चतुराई से शत्रुओं के मस्तकों की प्रदर्शिनी खोलेगा; उस समय दुर्योधन अपनी मूर्खता पर पछतावेगा। जिस नकुल ने सदा फूलों की सेज पर विश्राम किया है, वही नकुल जब वनवास की कटीली पर्णकुटी की याद कर के क्रुद्ध होगा और विषैले विषधर की नाईं विष उगलेगा, तब ही दुर्योधन को पश्चाताप होगा। धर्मराज युधिष्ठिर जब अपनी जान को हथेली पर रख कर रणभूमि में वीरता दिखलाने वाले राजाओं को आज्ञा देंगे; तब उनके आक्रमण से व्याकुल हो कर कौरवदल में एक विचित्र खलबली मच जावेगी और दुर्योधन हाथ मल मल कर पछतावेगा। जब पाण्डवों के शस्त्रविशारद प्रतिविन्ध्य आदि वीर राजकुमार अपने प्राणों का मोह छोड़ कर, कौरवदल पर शस्त्रों की वर्षा करेंगे, तब दुर्योधन को प्रतीत होगा

कि, मैंने इस सर्वनाशी संग्राम का आयोजन करके अपने हाथों अपने पैर में कुठाराघात किया है। महाबली एवं सत्यवादी सहदेव जिस समय क्रुद्ध होगा, उस समय रणभूमि कौरवों के रुण्डों मुण्डों से खचाखच भर जावेगी। इस दुष्ट शकुनि पर वह पहिले ही से खार खाये बैठा है। महा-धनुर्धारी शस्त्रविद्या में प्रवीण महारथी द्रौपदी के पुत्र जब भयङ्कर काले सर्पों की भाँति रणभूमि में कौरवों पर झपटेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध छेड़ने का आनन्द मालूम होगा। जब भगवान वासुदेव के सामन बली वीर अभिमन्यु शत्रुओं पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करेगा, तब दुर्योधन को निश्चय ही पछताना पड़ेगा। अभिमन्यु बालक हो कर भी तरुण वीरों जैसे कर्तव्य करने वाला है। शत्रुओं की सेनाओं के लिये तो वह बड़ा ही भयङ्कर है। देवराज इन्द्र भी बल, वीर्य एवं पराक्रम में उसकी बराबरी नहीं कर सकते। सञ्जय! जब वह वीर कौरवदल के संहार करने पर उतारू होगा, तब दुर्योधन उसे देख कर अत्यन्त पछतावेगा। रणाङ्गण में जिस समय वीरकेसरी एवं तरुण प्रभद्रक कौरवों और उनकी सेना पर घनघोर बाणवर्षा करेंगे, उस समय दुर्योधन लड़ाई ठानने की बात सोच कर, पछतावेगा। वीरशिरोमणि महाराज द्रुपद, जब क्रोधावेश में भर तथा सुन्दर रथ पर बैठ, संग्रामभूमि में अपने धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के सिर काटने लगेंगे, तब दुर्योधन अपने किये पर पछतावेगा। उस भयङ्कर मारकाट के समय शत्रुओं का संहार करने के लिये महाबली राजा विराट जब मत्स्यदेशीय राजाओं को साथ ले कर कौरवदल का तहस नहस करने लगेगा, तब दुर्योधन थूक के आँसू लगा लगा कर, रोवेगा और कहेगा कि, हाय! मैंने यह क्या किया। जिस समय राजा विराट का पुत्र पाण्डवों की सहायता करने के लिये रणभूमि में कवच और अस्त्र शस्त्रों से सज कर आवेगा, तब उसे देख कर दुर्योधन की और भी बुरी दशा हो जावेगी।

हे सञ्जय! याद रक्खो, कौरवों की सेना में केवल भीष्म ही भीष्म हैं। कौरव उन्हींके बल पर अकड़ रहे हैं; किन्तु जब शिखण्डी उन्हें भी

मृत्युशय्या पर सुला देगा, तब यह कौरवों की अकड़न धूल में मिल जावेगी और निश्चय ही भीष्म के स्वर्गधाम पहुँचते ही, मेरा एक भी शत्रु जीवित न रहेगा। जब शिखण्डी शत्रुओं का संहार करता हुआ भीष्म की खोज में संग्रामभूमि में भयङ्कर वेष धारण कर घूमेगा, तब दुर्योधन व्याकुल हो कर अपनी रक्षा के लिये स्थान ढूँढ़ता फिरेगा। गुरु द्रोणाचार्य से गुप्त विद्या सीखने वाले सञ्जयों के सेनापति धृष्टद्युम्न को देख कर, दुर्योधन भौचक सा रह जावेगा और अपनी मूर्खता पर आँसू बहावेगा। महाबली परमोदार सात्यकि जिस सेना का नायक हो भला उस सेना का विजय भी कोई कर सकता है? हे सञ्जय! देखो तुम दुर्योधन से साफ़ साफ़ कह देना कि, अब तू राज्यशासन करने की दुराशा को छोड़ दे। क्योंकि हमारा सहायक युद्ध-विद्या-विशारद अद्वितीय महाबली वीर सात्यकि है। वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला निर्भय महारथी है। जिस समय शिनियों का नेता एवं वीर सात्यकि मेरे सङ्केतमात्र से वीर-शिरोमणि प्रधान सेनानायकों पर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगेगा, उस समय दुर्योधन को चेत होगा। याद रखो, जब सेना में सात्यकि घुसेगा, तब कौरवदल के योद्धाओं की ऐसी भगदड़ मच जावेगी जैसी सिंह के आने पर गौओं में भगदड़ मच जाती है। उस वीर सात्यकि का प्रताप भगवान भास्कर की तरह जगत में प्रसिद्ध है। वह वीर पर्वतों को भी तोड़ फोड़ कर फेंक सकता है। वीर शिरोमणि भगवान् वासुदेव की रणकुशलता और शस्त्र-प्रयोग-दक्षता को देख कर, तो संसार चकित हो जाता है। श्रीकृष्ण शस्त्रविद्या की जैसी सूक्ष्मताएँ जानते हैं, वैसी तो हर एक मनुष्य समझ भी नहीं सकता। किन्तु सात्यकि में ये सब बातें विद्यमान हैं। ऐसे महावीर सात्यकि को श्वेत घोड़ों वाले सुनहले रथ पर सवार देख कर, दुर्योधन का मन डाँवाडोल हो जावेगा और वह लंबी लंबी साँसें लेता हुआ, अपने कर्मों पर रोवेगा। इधर जब मैं मणिखचित सोने के रथ पर बैठ कर, श्रीकृष्ण के साथ शत्रुओं का संहार करने के लिये, रणभूमि में आऊँगा, तब तो वह मुझे

देख कर तथा और भी अधिक व्याकुल हो कर, पश्चात्ताप की प्रचण्ड आग में जलने लगेगा। मेरी भयङ्कर धनुष्टंकार को सुन कर, जब कौरवी सेना, अपने अपने प्राण ले कर इधर उधर भागने लगेगी, तब दुर्योधन हाय हाय करने लगेगा। मर्मवेधी और हड्डियों को चकनाचूर कर डालने वाले तथा अनन्त वैरियों का नाश करने वाले मेरे तीक्ष्ण बाणों की जब कौरवदल पर वर्षा होना प्रारम्भ होगा, तब उस सर्वनाश का भयङ्कर दृश्य देख कर, दुर्योधन अपने किये पर पछतावेगा। दुर्मति दुर्योधन जब यह देखेगा, तब और भी पछतावेगा कि, अर्जुन के बाण शत्रुओं के बाणों से टकरा कर, उन्हें टेढ़ा मेढ़ा कर देते हैं और स्वयं अपने लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं होते। तब उसका पछतावा और भी बढ़ जावेगा। जैसे पक्षी वृक्षों के फल फूल तोड़ डालते हैं, वैसे ही मेरे विपाठ नामक बाण भी रणभूमि में शत्रुओं के सिरों को उतार लेते हैं। दुर्योधन जब हाथी और रथों पर चढ़े हुए योद्धाओं के कबन्धों को गिरते हुए देखेगा, तब पछतावेगा और कहेगा कि, हाय! मैंने यह बैठे बैठाये आफ़त क्यों मोल ली। जब दुर्योधन के लड़ाकू योद्धा वैरियों के भयङ्कर रणवेष को ही देख कर डर जाँयगे और समराङ्गण छोड़ कर भागने लगेंगे; तब दुर्योधन को बड़ा भारी पश्चात्ताप होगा। जब मैं निरन्तर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से पैदल और रथी महारथियों का संहार करने लगूँगा; तब उस भयङ्कर महाप्रलय को देख कर, दुर्योधन का आत्मा काँपने लगेगा।

हे सञ्जय! याद रखो, दुर्योधन उस समय व्याकुल हो जावेगा जिस समय गाण्डीव-धनुषधारी दिव्य देवदत्त नामक शङ्ख लिये हुए रथारूढ़ मुझे और पाञ्चजन्यधारी भगवान् वासुदेव को और मेरे अक्षय तूणीरों (भाथों) को देखेगा। जब मैं ठगी से पाण्डवों के राज्य को छीन लेने वाले कौरवों का संहार करूँगा और उन्हें आग की तरह जला कर भस्म कर डालने के बाद धार्मिक शासन और धार्मिक युग का प्रारम्भ करूँगा; तब मन्दमति दुर्योधन पछतावेगा। जब घमंडी दुर्योधन का घमंड धूल में मिल जावेगा

और वह अपनी सेनाओं, भाई बन्धुओं, सहायकों के साथ धूल में मिल जावेगा तथा ऐश्वर्यहीन हो कर, वैरियों के आक्रमणों से ! हाय हाय ! करेगा; तब उसे अपनी युद्धप्रियता पर पछताना होगा । हे सञ्जय ! एक दिन मैं संध्योपासन कर, घर लौट रहा था, तब एक वृद्ध ब्राह्मण ने अचानक मेरे पास आ कर कहा कि, हे अर्जुन ! तुझे अभी बड़े बड़े काम करने हैं । शत्रुओं का संहार कर, एक बड़ा भारी कार्य तुझे करना शेष है । देवराज इन्द्र तेरे सहायक बन कर अपने भयङ्कर वज्राघातों से शत्रुओं को चकना चूर करता हुआ तेरे आगे आगे चलेगा तथा भगवान् वासुदेव सुग्रीव आदि नामक अश्व वाले रथ पर सवार हो कर तेरे पीछे पीछे तेरी रक्षा करेंगे । बस यही मेरा आशीर्वाद है । मैंने वज्रपाणि इन्द्रदेव से इस युद्ध में सहायता करने के लिये श्रीकृष्ण जी को माँग लिया है तथा मैं स्वयं, श्रीकृष्ण जी की कृपा का पात्र भी बन चुका हूँ । मेरी सम्मति में देवताओं ने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है, जो मेरे सब काम ठीक ठीक होते चले जा रहे हैं । सञ्जय ! सम्भव है, तुम भगवान् वासुदेव के स्वरूप को न पहचानते हो; किन्तु मैं अच्छी तरह उनसे परिचित हूँ । वे जिस पर प्रसन्न हो जावें और जिसे हराना या जिताना चाहें, वे केवल मन ही से उसका जय पराजय करा सकते हैं । जो मनुष्य महावीर भगवान् वासुदेव को जीतना चाहता है वह मूर्ख अनन्त-जलराशि-युक्त अगाध महासागर को केवल बाहुओं से तैर जाने की अनधिकार चेष्टा करता है । जो मनुष्य श्वेत शिलागिरि को अपने हाथ पर उठा कर तोड़ना चाहता है, उसका हाथ ही टूट जाता है; किन्तु पर्वत का कुछ भी अनिष्ट नहीं होता । संग्रामभूमि में श्रीकृष्ण को पराजित करने की लालसा रखने वाला मनुष्य प्रचण्ड ज्वालाओं वाली आग को हाथों से बुझाना और सूर्य चंद्र को ढकना तथा देवताओं से अमृत छीन लेने का सा व्यर्थ प्रयास करता है । जिन्होंने अकेले ही भोजवंशी वीरों को हरा कर रुक्मिणीहरण किया और जिन्हें देवता भी अपना शिरोमणि समझ कर सिर पर धारण करते हैं, उन कृष्ण ने अपने

पराक्रम से गान्धारों को मार नग्नजित के पुत्रों पर विजय प्राप्त किया तथा क़ैद में पड़े हुए राजा सुदर्शन को छुड़ाया। इन्हीं श्रीकृष्ण के घूँसे से राजा पाण्ड्य यमधाम सिधारे तथा कलिङ्ग देश के राजा भी इन्हींसे पराजित हुए थे। जब श्रीकृष्ण ने कलिङ्ग देश के राजाओं को भस्म कर दिया, तब अनेक वर्षों तक काशी नगरी अनाथ पड़ी रही। जैसे जम्भासुर पर्वतों पर प्रहार कर के स्वयं नष्ट हो गया, वैसे ही जिससे कृष्ण सदा लड़ने को कहा करते थे, जो संसार में अजेय था, वह एकलव्य भील भी इनसे लड़ कर मारा गया।

हे सञ्जय! तुम महाबली कंस को तो जानते ही होवोगे। उसने बड़ा अत्याचार मचा रखा था। भगवान् वासुदेव बलराम को साथ ले कर मथुरा गये। उस समय वह सभा में बैठा था। उसे कृष्ण ने क्षण भर में यमालय भेज दिया और उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठा दिया। भला जिन वासुदेव ने मायावी आकाश में विहार करते हुए सौभराज से संग्राम किया और शाल्व की फेंकी हुई तोप को सौभ के द्वार पर ही अपने हाथों पर ले लिया उन वासुदेव को संग्राम में कौन जीत सकता है? प्राचीन काल में एक बड़ा भयानक प्रागज्योतिप नामक नगर था। उसीमें नरकासुर रहता था। वह देवी अदिति के मणिजटित सुवर्ण कुण्डल चुरा लाया था। सब देवता लोग देवराज इन्द्र के साथ उससे लड़ने आये। बड़ी भारी लड़ाई हुई; किन्तु वह दुष्ट राक्षस, जब देवताओं से पराजित न हो सका, तब सब देवताओं ने भगवान कृष्णचन्द्र से प्रार्थना की और कहा कि, हे महाराज! अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। कृपया इस महासङ्कट से छुड़ाइये। इस महाबली दुष्ट राक्षस का आप ही संहार कर सकते हैं। निदान, देवताओं का विनय सुन कर, वासुदेव ने उस दुष्ट राक्षस के मारने की प्रतिज्ञा कर ली। वासुदेव ने निर्मोचन नगर में छः हज़ार राक्षसों का संहार किया और तीक्ष्ण धार वाले छुरे की तरह लोहे के कटीले तारों को, क्षण भर में काट कर, वे नगर में घुस गये और नरकासुर को मार डाला।

वे अदिति के मणिजटित कुण्डल उससे छीन लाये। उस समय की विजयश्री से तथा इनके पराक्रम से प्रसन्न हो कर देवताओं ने इन्हें यह वरदान दिया कि, हे वासुदेव! आप कभी संग्राम में थकेंगे नहीं तथा जल स्थल सर्वत्र आपकी अव्याहत गति होगी। आप चाहें जहाँ आ जा सकेंगे। आपके शरीर में शत्रुओं के शस्त्रों का कुछ भी असर न होगा। बस फिर क्या था। श्रीकृष्ण, देवताओं से यह वरदान पा कर कृतार्थ हो गये। इसीलिये मैं कहता हूँ कि, महाबली श्रीकृष्णचन्द्र एक दिव्य महापुरुष हैं। इनमें दैवी महाशक्तियाँ सदा निवास करती हैं। सञ्जय! दुर्मति दुर्योधन इन दिव्य महापुरुष को भी जीतना चाहता है, किन्तु यह सब धृष्टता है; और इस धृष्टता को वासुदेव केवल मेरा सम्मान करने के लिये ही सहन कर रहे हैं। दुर्योधन यह समझता है कि, मैंने श्रीकृष्ण को ज़बर्दस्ती अपनी ओर कर लिया है तथा इनमें आपस में, मैं भेद भी करा दूँगा। साथ ही साथ वह यह भी चाहता है कि, किसी प्रकार मैं कृष्ण की पाण्डवों पर जो ममता है उसे भी दूर करा दूँ, किन्तु यह सब उसकी कोरी कल्पना है। वह क्या क्या कर सकता है यह सब बातें तो जब संग्राम छिड़ेगा तब रणभूमि में मालूम होगी। राजलक्ष्मी की प्राप्ति के लिये युद्ध करने से पूर्व मैं भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य जी को प्रणाम करूँगा। जो पापात्मा पाण्डवों के साथ लड़ने के लिये आवेंगे उनका निश्चय अन्त समय आ गया है। जिन कौरवों ने हम लोगों का राज्य कपट प्रपञ्च से जुए में जीत लिया और हमें वनवास दे दिया, वे कौरव अब हमारे जीवित रहते निःशङ्क हो कर राजसिंहासन पर मौज करें, यह बिल्कुल असम्भव है और यदि कहीं कौरवों ने देवताओं से सहायता ले कर या किसी और उपाय से संग्राम में हमें हरा भी दिया, तो बस हम समझ लेंगे कि, धर्म धर्म पुकारना या धर्माचरण करना व्यर्थ है। संसार में विजय अधर्म ही का होता है। यदि दुर्योधन मानव समुदाय को कर्म-बन्धन से जकड़ा हुआ नहीं मानता और हम लोगों को सम्मान दृष्टि से

नहीं देखता, सो निश्चय ही उसीका विजय हो ; किन्तु हमें तो यह पूरा विश्वास है कि, हम भगवान वासुदेव के साहाय्य से अवश्य ही शत्रुओं का संहार करेंगे। यदि किये हुए कर्मों का फल भोगना अटल और निश्चित सिद्धान्त है, यदि सत्कर्मानुष्ठान का कभी न कभी फल अवश्य होता है, तो निश्चय ही संग्राम में दुर्योधनादि कौरवों का पराजय होगा। हे कौरवो! याद रखो, मैं तुम्हारे सामने निःशङ्क हो कर, यह कह रहा हूँ कि, तुम्हारी रक्षा तभी हो सकती है, जब कि, तुम लोग संग्राम द्वारा अपना सर्वनाश न कर सीधी तरह से हमें हमारा राज्य लौटा दो अन्यथा रणभूमि में तुम्हारा जीवित रहना बिल्कुल असम्भव है। याद रखो, मैं संग्राम में कर्ण सहित कौरवों का संहार कर उनका राज्य जीत लूँगा। इस लिये तुम लोगों को मैं सचेत किये देता हूँ कि, तुम्हें जो कुछ करना धरना हो कर डालो अन्यथा पछताओगे। तुम्हारे लिये मृत्युशय्या तैयार है और वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। हमारे यहाँ जितने कुलीन वृद्ध शास्त्रज्ञ ज्योतिश्चक्रों के ज्ञाता, प्रश्नों के यथार्थ उत्तर देने वाले वृद्ध ब्राह्मण हैं, वे सब यही कहते हैं कि, इस जगद्व्यापी महासमर में कौरवों का और सृञ्जयों का सब से अधिक संहार होगा और पाण्डवों का विजय होगा ; इस लिये हे कौरवो! सावधान हो जाओ। शत्रुओं का निग्रह करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर तथा दिव्य-दृष्टि महात्मा श्रीकृष्ण जी भी हमारी विजयप्राप्ति में सन्दिग्ध नहीं है। यह दोनों महापुरुष भी अग्रशोची हैं। इनका निश्चय कभी टल नहीं सकता। हे सञ्जय! मैं भी अपनी बुद्धि से भविष्य की बात सोच सकता हूँ। मुझे तो यही दीखता है कि, कौरव संग्राम भूमि में बुरी तरह से मारे जावेंगे। मेरा धनुष बाण अलग रखा हुआ भी फड़का करता है। मेरे गाण्डीव धनुष की डोरी बिना खींचे ही हिला करती है। तूणीर के बाण बारंबार बाहर निकल पड़ते हैं। जैसे साँप केंचुली त्याग कर बाहर निकल आता है, वैसे ही मेरी तलवार भी म्यान से बाहर निकलना चाहती है। मेरे रथ की ध्वजा पताका एक विचित्र गम्भीरध्वनि से बारंबार यह पूछती रहती

है कि, हे अर्जुन ! बोल, तेरा रथ कब जुतेगा ? रात में गीदड़ रोते हैं, आकाश में राक्षस घूमते हैं। मेरे सफेद घोड़ों वाले रथ को देख कर हिरण सियार, गिद्ध, कौए, बगले, मोर, भेड़िये और गरुड़ आदि पीछे पीछे दौड़ते हैं। इससे तो यही प्रतीत होता है कि, मैं अकेला ही धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार कर, उन्हें यमालय पहुँचा दूँगा। जैसे गर्मियों में वनों काननों को भस्म कर डालने के लिये आग बढ़ती है, उसी प्रकार मैं भी अनेक दिव्य अस्त्र शस्त्रों द्वारा अपनी शक्ति को बढ़ा कर शत्रुरूपी जंगल को भस्म कर देने के लिये तैयार बैठा हूँ। सञ्जय ! तुम कौरवों से साफ साफ कह देना कि, बस अर्जुन के विचार दृढ़ और निश्चित हैं। वह अवश्य ही अपने प्रत्येक मनोरथ को पूरा करेगा। आप लोग इसे कोरी बकवाद या धमकी न समझें। सञ्जय ! देखो, जो पाण्डव युद्धार्थी इन्द्र को भी पराजित करना बाएँ हाथ का खेल समझते हैं, उन्हींसे मूर्ख दुर्योधन लड़ना चाहता है। इसकी यह वज्रमूर्खता तो देखो; पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, वीर अश्वत्थामा तथा महात्मा विदुर जैसा कहें, वैसा ही करो। इसीमें कौरवों का कल्याण है।

उनचासवाँ अध्याय

भीष्म और द्रोण का मत

उस विराट राजमण्डली में सञ्जय के द्वारा पाण्डवों का यह सन्देशा सुन कर, भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कहा—बेटा ! सुनो। एक बार ब्रह्म-लोक में शुक्राचार्य, बृहस्पति, पवन, इन्द्र, अग्नि, वसु, आदित्य, साध्य देवतागण श्रीब्रह्मा जी के दर्शनार्थ आये और सब लोग ब्रह्मा जी को प्रणाम करके उनके चारों ओर बैठ गये। उसी स्थान पर पूर्वदेव नाम से विख्यात नर नारायण दोनों ऋषि बैठे थे। इन दोनों का प्रताप और पराक्रम तथा अनुपम तेजस्वितादि गुण, ब्रह्मा जी के पास बैठे हुए सभी

देवताओं के तेज को फीका कर रहे थे। मालूम यह होता था, मानों कोई उनके तपश्चरण का सूक्ष्मांश खींच रहा हो। अस्तु, कुछ देर बैठने के बाद ये दोनों अपने आश्रम की ओर चले गये। तब उस समय बृहस्पति ने पूछा, —हे ब्रह्मदेव! यह दोनों तपस्वी कौन थे, जो कि आपकी बिना उपासना किये ही यहाँ से चले गये।

ब्रह्मा जी ने कहा—हे देवगुरो! यह दोनों महापुरुष नर नारायण नाम से प्रसिद्ध हैं। यह प्राचीन ऋषि अपने अतुल तेज और तपश्चरण द्वारा पृथिवी और आकाश को प्रकाशित करते हैं। इन दोनों महातपस्वियों के मनोयत्न बहुत विशाल हैं और ये प्रभावशाली हैं। ये दोनों मर्त्यलोक से लौट कर, ब्रह्मलोक में पधारे हैं। इन्होंने अपने उग्र तपश्चरणों से सब लोकों को स्वाधीन कर लिया है। यह शत्रुसंहारी हैं और देवताओं की रक्षा के लिये समस्त असुरों का नाश करने वाले हैं।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन्! इस बात को सुन कर, बृहस्पति ने इन्द्र आदि सब देवताओं को साथ लिया और वे उसी ओर चल दिये, जहाँ नर नारायण तपस्या करते थे। इधर देवताओं में और राक्षसों में संग्राम छिड़ने वाला था। इस कारण देवता भी भविष्यत के महासङ्कट से काँप रहे थे। बस फिर क्या था उन दोनों नर नारायण तपस्वियों के पास जा कर देवराज इन्द्र ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। दोनों तपस्वियों ने इन्द्र से कहा कि, जो आप चाहते हों वही माँगिये। इन्द्र ने नतमाथ हो कर कहा – आप हमारी युद्ध में सहायता कीजिये। इस पर, वे दोनों तथास्तु कह कर देवराज इन्द्र के साथ चल दिये और वहाँ जा कर दानवों को पराजित किया। परम तपस्वी नर ने इन्द्र के पौलोम कालखञ्ज आदि सैकड़ों शत्रुओं का नाश किया। इस समय वे ही नर नामक भगवान्, अर्जुन के स्वरूप में प्रकट हुए हैं। यह बड़े बली हैं। इन्होंने तो इन्द्र आदि देवताओं को हरा कर, खाण्डव वन में अग्निदेव को सन्तुष्ट किया था और नर स्वरूप अर्जुन की सहायता करने वाले नारायण श्रीकृष्ण जी हैं। देवताओं

में भी कोई ऐसा वीर नहीं है जो इन्हें जीत सके। यह तो साक्षात् नर नारायण हैं। ऐसा शास्त्रों में हमने देखा है। इस लिये बेटा दुर्योधन! इन सब बातों पर भली भाँति सोच विचार लो। तब संग्राम करना। सच बात तो यह है कि, कृष्ण और अर्जुन दो नहीं हैं, एक हैं, केवल योगमाया से इन्होंने दो शरीर धारण कर लिये हैं। ये समय समय पर सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का संहार करने के लिये, संग्रामभूमि में चले आते हैं; किन्तु इनका निवासस्थान केवल सत्यलोक ही में है। इसी कारण देवर्षि नारद ने इन दोनों को युद्ध करने के लिये सानुरोध विवश किया तथा यादवों से भी नारद ने सब बातें कही हैं। बेटा दुर्योधन! जब तुम शङ्ख-चक्र गदाधारी श्रीकृष्ण को और दिव्यास्त्रों से सज्जित धनुर्धारी अर्जुन को एक रथ पर सवार हो कर शत्रुओं का संहार करते हुए देखोगे, तब तुम्हें मेरी बातें याद आवेंगी। हे तात! यदि तुम मेरी बात को न मानोगे, तो मैं समझ लूँगा कि, अब कौरवों का सर्वनाश निकट है और तुम भी धर्म अर्थ से भ्रष्ट हो चुके हो। वत्स! तुम केवल परशुराम से अभिशप्त कर्ण तथा मायावी शकुनि और दुष्ट दुःशासन ही की उचित अनुचित सब बातें मानते हो।

अङ्गराज कर्ण अपना नाम सुन कर चौंक पड़ा और बोला—हे पितामह! आप जो कुछ कहते हैं ठीक है; किन्तु आप सरीखे विद्यावयोवृद्ध महानुभावों को यह कहना शोभा नहीं देता। मैं तो क्षात्रधर्म का बराबर पालन कर धर्म से कभी विचलित नहीं होता। आप ही कृपा कर बतलाइये कि, आपने मेरा ऐसा कौन सा दुराचार देखा जो आप मेरी निन्दा करते हैं। पूज्यवर! मैं दिन रात कौरवों के साथ रहता हूँ। आज तक इन्होंने भी मेरा कोई पापाचार नहीं देखा है। मैंने आज तक दुर्योधन का कोई अनिष्टचिन्तन नहीं किया है। हाँ, मैं संग्राम में अवश्य पाण्डवों का संहार करूँगा। भला आप ही बतलाइये कि, जो सज्जन होते हुए भी पहिले से अपने शत्रु हो रहे हैं, उनसे अब मेल कैसे हो सकता है? मेरा तो यही

कर्तव्य है कि, मैं धृतराष्ट्र और दुर्योधन इन दोनों का भला चीतूँ। आज कल राजसिंहासन पर दुर्योधन का अधिकार है। इस कारण मुझे उसका और सब से अधिक हितैषी होना चाहिये।

श्रीवैशम्पायन ने जनमेजय से कहा—जब भीष्म पितामह ने कर्ण की यह बातें सुनीं, तब उन्होंने धृतराष्ट्र से ललकार कर कहा—हे धृतराष्ट्र! याद रखो, जो कर्ण बारंबार पाण्डवों का संहार करने की व्यर्थ डींगें हाँका करता है, वह कर्ण पाण्डवों की सोलहवीं कला के समान भी तो नहीं है। तुम्हारे पुत्रों को उनके अन्यायों का अब जो फल मिलने वाला है, उनका एकमात्र कारण यही सूतपुत्र कर्ण है। दुष्ट दुर्योधन ने केवल इसी एक दुष्ट को संगति पा कर, वीर देवकुमारों का अपमान किया है। भला जो पराक्रम और वीरता अकेले पाण्डवों ने दिखलायी है, वह क्या कभी इस सूतपुत्र कर्ण ने भी दिखलायी है? जब वीर अर्जुन ने विराटनगर में कर्ण के भाई को मार डाला, तब कर्ण ने उसका क्या कर लिया? जिस समय सब के सब कौरव दल बाँध कर अकेले अर्जुन से लड़ने गये थे, उस समय उस अकेले वीर ने ही सब कौरवों को परास्त किया और उनके कपड़े तक उतार लिये। उस समय क्या यह वीर कर्ण कहीं चरने चला गया था? हे राजन्! जब घोषयात्रा में गन्धर्वों ने तुम्हारे पुत्र को पकड़ लिया था, तब यह कर्ण कहाँ गया था, जो अब बिजार की तरह ढींक रहा है। यदि सत्य बात पूछते हो तो उस समय तुम्हारे पुत्रों की रक्षा भीम, नकुल, सहदेव और अर्जुन ही ने की थी। हे राजन्! इस कर्ण का बड़बड़ाना तो व्यर्थ है। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो सुमति से काम लो। अन्यथा यह तो बिलकुल धर्म का लोप ही करना चाहता है। भीष्म पितामह की बात को सुन कर, गुरु द्रोणाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि, हे राजन्! तुम्हें भीष्म पितामह के कथनानुसार ही आचरण करना चाहिये। धन के लोभी और लालची मनुष्यों के कहने में आ कर धर्मपथ से भ्रष्ट हो जाना बुद्धिमानी नहीं है। इस लिये मेरी सम्मति में

संग्राम से पूर्व पाण्डवों से सन्धि कर लेना ही उपयोगी होगा। बात यह है कि, जैसा सन्देशा अर्जुन का ला कर सञ्जय ने सुनाया है, वह सब सत्य है। अर्जुन अपनी कही हुई बातें सब सच्ची कर दिखावेगा। संसार में उसके समान कोई योद्धा नहीं है। वह सब कुछ कर सकता है। भावी अनर्थ मनुष्य की बुद्धि पर पानी फेर देता है। उसे भली बुरी और बुरी बात भली लगने लगती है। अतएव धृतराष्ट्र ने भी इन दोनों महारथियों की बात भी सुनी अनसुनी कर दी और वे सञ्जय से बातचीत करने और पाण्डवों का कुशल पूछने लगे। यह देख कर सब कौरवों ने भी अपने जीवन की आशा को त्याग दिया।

पचासवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का सन्देश

महाराज धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये एकत्रित हुई सेना को सुन कर, धर्मराज युधिष्ठिर ने क्या कहा? धर्मराज युद्ध करने के लिये क्या क्या उद्योग कर रहे हैं? उनकी आज्ञा प्राप्त करने की इच्छा से वे कौन कौन मनुष्य हैं जो उनके मुँह की ओर देखा करते हैं। जिन धर्मराज को मूर्खों ने हमारे ऊपर कुपित कर दिया है, उन्हें युद्ध न कर के शान्त रहने के लिये कौन कौन से मनुष्य उपदेश दिया करते हैं।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! धर्मराज कब आज्ञा प्रदान करें, इस इच्छा से चारों पाण्डव और पाञ्चालदेश के राजा धर्मराज का मुँह निहारा करते हैं। साथ ही धर्मराज उन लोगों को उचित आज्ञा दे कर कृतार्थ भी करते हैं। पाण्डव और पाञ्चाल-देश के राजाओं के रथ पृथक पृथक विभक्त हैं। जिस समय धर्मराज आते हैं, उस समय वे लोग उनका अभिनन्दन करते हैं। जैसे प्रचण्ड तेजराशि से सूर्य का अभिनन्दन

आकाश किया करता है, वैसे ही महाओजस्वी धर्मराज का अभिनन्दन पाञ्चाल देश के राजा करते हैं। केकय, मत्स्य तथा पाञ्चाल देशों के राजे तो धर्मराज का अभिनन्दन करते ही हैं। साथ ही गायों, बैलों, बकरियों को चराने वाले गोपाल भी धर्मराज में बड़ी श्रद्धा रखते हैं। संग्राम की तैयारी करने वाले राजा युधिष्ठिर को देखने के लिये ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों की कन्यायें भी दौड़ कर आ जाती हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! तुम यह बतलाओ कि, पाण्डव लोग सोमकों की सहायता पा कर, हमसे लड़ेंगे या धृष्टद्युम्न की सेना से संग्राम करेंगे?

वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा—हे राजन्! जब सञ्जय ने धृतराष्ट्र का यह प्रश्न सुना, तब वह लंबी साँसें लेने लगा और विचारसागर में डूबने उछरने लगा। इस प्रकार सञ्जय को अकस्मात् मूर्छा आ गयी और वह भूमि पर गिर पड़ा।

विदुर ने सञ्जय का यह हाल देख कर कहा—हे राजन्! यह सञ्जय मूर्छित हो जाने के कारण नहीं बोलता। इसकी चेतना शक्ति मन्द पड़ गयी है; किन्तु धृतराष्ट्र ने यही कहा कि, इस सञ्जय की मूर्छा से मालूम होता है कि, सञ्जय को पाण्डवों ने अवश्य अधिक व्याकुल कर दिया है। कुछ काल बाद जब सञ्जय को चेत हुआ, तब उसने लंबी साँस भर कर उस कौरव समाज में धृतराष्ट्र से यह कहा कि, हे राजेन्द्र! कुन्ती के वीर महारथी पुत्र मत्स्यराज के यहाँ उसके अधीन रहने के कारण, दुर्बल हो गये हैं। पाण्डवों का सब से पहिला सहायक धृष्टद्युम्न है और वह उनकी सहायता करने के लिये तुम्हारे साथ संग्राम करेगा। क्रोध, भय, लोभ आदि के कारण कभी जिन्होंने अपने धर्म का परित्याग नहीं किया, उन धर्मराज सहित पाण्डव, कौरवों का सर्वनाश करने को तैयार हैं। जिसने संसार के बड़े बड़े योद्धाओं और पराक्रमी राजाओं पर विजय प्राप्त किया है, जिसने लाक्षागृह से पाण्डवों की रक्षा की थी, जो हिडिम्ब जैसे पराक्रमी राक्षसों

पर विजय प्राप्त कर चुका है, उसी भीम के बल का आश्रय ले कर, पाण्डव घमासान लड़ाई करेंगे। हे राजन्! महावीर भीमसेन बड़ा बली है। वारणावत के भस्म होने के समय महारथी भीम ही ने पाण्डवों की रक्षा की थी। उस भीम की बाहुओं में दस हज़ार हाथियों का बल है। उसी ने द्रौपदी पर कुदृष्टि रखने वाले राक्षसों का संहार किया था। वही भीमसेन पाण्डवों का सहायक है। इसलिये पाण्डव कौरवों का अवश्य संहार कर देंगे। देखिये महाराज जिस अर्जुन ने अग्निदेव को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्ण के साथ देवराज इन्द्र को परास्त कर दिया था, तथा जिसने त्रिशूलधारी देवादिदेव महादेव को भी शूलयुद्ध में जीत लिया था, उसी अर्जुन के साथ पाण्डव आपके ऊपर चढ़ाई करने के लिये आ रहे हैं। जो म्लेच्छों को मार कर पूर्व दिशा को अपने अधीन करने वाला अनेक शस्त्र-कला-विशारद और महाबलिष्ठ है, उसी माद्रीपुत्र को साथ ले कर पाण्डव तुम्हारे ऊपर चढ़े चले आ रहे हैं। संसार में सहदेव भी एक ही वीर है। इसकी समानता कौरवों में केवल अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी और प्रद्युम्न ही कर सकते हैं। इसीने काशी, अङ्ग, कलिङ्ग और मगध देशों के राजाओं को रण में परास्त किया था। पाण्डव लोग उसी सहदेव को ले कर तुम्हारा संहार करने के लिये शीघ्र ही आने वाले हैं। मर कर भी भीष्म का संहार करने की प्रबल लालसा से जिस काशिराज की कन्या ने भयङ्कर तपश्चर्या की थी, वही कन्या अब पुरुष स्वरूप धारण कर चुकी है। राजन्! वह पुरुष तथा स्त्री दोनों के गुणों से सम्पन्न है। अब वही शिखण्डी-रूप-धारिणी कन्या पाण्डवों का आश्रय ले कर संहार करना चाहती है। केकय-वंशी पाँचों भाई कैसे वीर हैं। यह तो आप जानते ही होंगे। वे वीर सदा संग्राम के लिये तैयार रहते हैं। वे सब भी पाण्डवों के साथ आपकी पूरी खबर लेंगे। धीर वीर सत्यपराक्रमी राजा युयुधान भी शस्त्रों से सज्जित इस घोर संग्राम में अपनी रणकुशलता दिखलाने के लिये तैयार बैठा है। जो आपत्ति के समय पाण्डवों को आश्रय दे कर सहायता करने वाले राजा

विराट हैं, वे भी संग्राम में आपके अवश्य ही दर्शन करेंगे। महारथी काशिराज भी कहीं पाण्डवों से अलहदा नहीं हैं। वे भी आपकी संग्राम में पूर्णतया अगसानी करने के लिये पधारेंगे। इनको छोड़ कर पाण्डवों के साथ आप पर चढ़ाई करने के लिये विषैले विषधरों के समान राजा द्रुपद के वीर पुत्र भी अवश्य आवेंगे। देखिये वह अभिमन्यु जो कि, वीरता में कृष्ण से कम नहीं है और मनःसंयम में धर्मराज से भी एक पग आगे है, पाण्डवों के साथ युद्ध में कौरवों का संहार करेगा। राजा धृष्टकेतु एक अक्षौहिणी सेना के साथ पाण्डवों से आ मिला है। इस कारण वह भी संग्राम में अवश्य आपका दर्शन करेगा। जैसे देवताओं का आश्रय इन्द्रदेव हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण पाण्डवों के आश्रयस्थल हैं। अतएव वे भी युद्ध में अवश्य उनका साथ देंगे। हे राजन्! जरासंध के पुत्र सहदेव और जयत्सेन तथा चेदिदेशाधिपति के भाई शरभ और कर्कश भी आपसे युद्ध करने के लिये पाण्डवों के साथ आवेंगे। महातेजस्वी राजा द्रुपद और अन्य अन्य देश के सैकड़ों राजा धर्मराज की सहायता के लिये अपनी अपनी सेनाओं को ले कर आये हैं। बस धर्मराज उन्हीं सब के सहारे आपके साथ लड़ेंगे।

इक्यावनवाँ अध्याय

भीमसेन का खटका

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! तुमने जिन जिन महावीरों का वर्णन किया है वे सब वीर एक ओर तथा अकेला भीम एक ओर पर्याप्त है। जैसे क्रोधी भयङ्कर सिंह से हिरन डरते हैं, वैसे ही मुझे ही सब से अधिक भय भीमसेन का है। मैं केवल भीमसेन के भय के मारे सिंह से पशु की तरह रात दिन लंबी और गर्म साँसें भरता रहता हूँ। मुझे घृणा

भर के लिये भी नींद नहीं आती, देवराज इन्द्र के समान अतुलित बलधाम भीम की बराबरी करने वाला मेरी सेना में कोई भी नहीं देख पड़ता। सत्य तो यह है कि, भीम का आक्रमण सहन करने वाला एक भी वीर हमारे पास नहीं है। वह भीम बड़ा क्रोधी और अट्टहास करने वाला है। वह जिससे बैर बाँध लेता है फिर उसका अन्त ही कर के छोड़ता है। जिस समय वह कौरवों को तिरछे नेत्रों से देख कर संग्राम में घनघोर गर्जन करेगा, उस समय कौरव अवश्य ही भयभीत हो जावेंगे। मुझे विश्वास है कि, भीम मेरे पुत्रों का अवश्य संहार करेगा। हठी कौरवों के दल में अपनी भयङ्कर गदा हाथ में ले कर आया हुआ भीम दण्डधारी यमराज के समान भयङ्कर युद्ध करेगा। हे सञ्जय! मैं तो भीम की उस सुवर्णभूषित गदा को साक्षात् कालदण्ड ही समझता हूँ। जैसे हिरनों में शेर निर्भय हो कर बलिष्ठता के साथ घूमता है, वैसे ही भीम भी हमारे कौरवदल में निर्भय विचरेगा। मेरे सब पुत्रों में बचपन ही से भीम सब से अधिक बली, क्रूर, पराक्रमी, अधिक भोजन करने वाला तथा दृढ़वैर है। मैं तो उसकी महाशक्ति का स्मरण करते करते काँपा जाता हूँ। क्योंकि वह बचपन में भी जब दुर्योधनादिकों से अप्रसन्न हो जाता था, तब उन्हें हाथी की तरह कुचल डालता था। दुर्योधन आदि बाल्यकाल ही से उसके पराक्रम से डरते हैं, कौरव पाण्डवों में भेद भाव डलवाने का एक मात्र कारण पराक्रमी भीम ही है। संग्राम में जब भीमसेन क्रोध करेगा तब हाथी, घोड़ा, पैदल आदि सभी को नष्ट कर देगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। वह अस्त्रविद्या में द्रोणाचार्य से और अर्जुन से कम नहीं है, तथा शिव के समान क्रोधी और वायु के समान वेग वाला है। सञ्जय! उसी क्रोधी महाशूर भीमसेन की बात सुनाओ। जिसने महाबली राक्षसों का संहार किया है तथा जिसने अब तक मेरे पुत्रों पर दया रखी है; भला जब वह बाल्यावस्था ही में कभी मेरे अधीन नहीं रहा; तब अब तो वह और बलवान हो गया होगा। मेरे पुत्रों ने उसे बड़े बड़े क्लेश दिये हैं। अब वह कभी उनको क्षमा नहीं

कर सकता। क्रोधी चाहे, अनेक हानियों को भले ही उठा ले; किन्तु जिस से वह वैर बाँध लेता है उससे अवश्य बदला लेता है। उसकी आँखें सदा क्रोध से चढ़ी रहती हैं। अतएव उसका शान्त होना बड़ा कठिन काम है। वह लंबा चौड़ा गोरा चिट्टा जवान अर्जुन से भी दश अंगुल ऊँचा है। राजा पाण्डु का मध्यम पुत्र भीम बड़ा बली है। घोड़े उससे अधिक नहीं दौड़ सकते। हाथियों में उससे अधिक बल नहीं है। व्यास जी तो पहिले ही से मुझे उसके बल, वीर्य और पराक्रम की सूचना दिये हुए हैं। वही क्रोधी भीम जब संग्राम में लोहे की गदा ले कर घूमेगा, तब हाथी, घोड़े, रथ आदि सभी को चकनाचूर कर डालेगा। हे सञ्जय! पहिले यह भीम मेरा कहना नहीं माना करता था। इस कारण मैंने इसका अपमान भी किया है। भला बतलाओ, उस वीर की महाभयङ्कर स्वर्ण-पत्र-खचित-शत्रु-संहार-कारिणी महागदा का प्रहार कौन सहन कर सकेगा? सञ्जय! यह भीमसेन रूपी महासागर बड़ा अगाध और अपार है। कोई इससे पार लगाने वाला जहाज़ भी मेरे पास नहीं है। भला तुम ही बतलाओ कि, मेरे दुर्बल पुत्र इससे कैसे पार पायेंगे? मैं बार बार इन अपने मूर्ख पुत्रों को समझाता हूँ; किन्तु यह लोग अपनी बुद्धिमानी के सामने मेरी एक बात भी नहीं सुनते। ऊँचे पर्वत पर शहद के लोभ में चढ़ जाने वाले लोग वहाँ से गिर कर चकनाचूर हो जाने का भय नहीं करते। ऐसी दशा में मैं भला कर ही क्या सकता हूँ? विधाता का विधान ही ऐसा जान पड़ता है। जैसे मृग जब शेर से लड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं, तब वे बेमौत मारे जाते हैं, वैसे ही मेरे यह मूर्ख पुत्र भी मनुष्य रूपधारी मौत से लड़ने के लिये तैयार हो रहे हैं। हे सञ्जय! भूमि पर गिर पड़ने के कारण पाताल तक को फोड़ डालने वाली, चार चक्र छः आरों वाली भीम की भयङ्कर गदा को मेरे पुत्र कैसे सहन करेंगे। जिस समय क्रोधी भीम संग्राम में अपनी गदा घुमा-वेगा और गजकुंभों को विदीर्ण करेगा, तथा भयङ्कर गर्जना के साथ रथियों महारथियों की ओर दौड़ेगा, तब उस समय के धधकते हुए उस

के भयङ्कर क्रोधानल से मेरे पुत्रों का कैसे उद्धार होगा? वह वीर निश्चय गदा हाथ ले कर जिस ओर जावेगा उस ओर काई सी फट जावेगी। उस समय कौरवीय योद्धा अपने अपने प्राण ले कर संग्रामभूमि से इधर उधर भाग जावेंगे औ' महाप्रलय की सी भयङ्करता छा जावेगा। मदमस्त हाथी की तरह भीम कौरवदल के महाकानन को उजाड़ता हुआ संग्राम में प्रवेश कर मेरा सर्वनाश कर डालेगा। भीम रथों, सारथियों, घोड़ों और घुड़सवारों का संहार कर डालेगा। हे सञ्जय! जैसे गङ्गा का प्रवाह तट के वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देता है, वैसे ही यह भीम भी मेरे पुत्रों की सेना को जड़ से उखाड़ कर फेंक देगा। मुझे निश्चय है कि, महाबली भीम के आगे से मेरे पुत्र, नौकर और अन्य सहायक राजा लोग भी इधर उधर भाग जावेंगे। भीमसेन ने महाप्रतापी मगधेश जरासन्ध को भी श्रीकृष्ण की सहायता से उसके अन्तःपुर में घुस कर मार डाला था। भला बतलाओ, जब ऐसे महाशूर जरासन्ध को भीम ने बिना हथियार ही के मार गिराया, तब उस महाबली के योग्य अब कौन सा उपाय हो सकता है। जैसे विषधर सर्प अपने एकत्रित किये हुए विष को वमन कर देता है, वैसे यह भीमसेन भी चिरकाल से सञ्चित किये हुए अपने महातेज को मेरे पुत्रों पर संग्रामभूमि में छोड़ देगा। जब क्रोधी भीम शत्रुसेना पर आक्रमण करेगा, तब उसे न तो कोई रोक ही सकेगा और न उसके प्रचण्ड प्रहारों को कोई सह सकेगा। वह वीर यदि निहत्था ही लड़ने पर कमर कसे तो भी उसका कोई कुछ नहीं कर सकता। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सभी भीम के बल पराक्रम से खूब परिचित हैं। ऐसी दशा में सदाचारी यह सब महानुभाव रणभूमि में मृत्यु पर्यन्त बराबर मेरी सेना की रक्षा करेंगे। विधाता का विधान अटल है। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि, संग्राम में पाण्डवों का विजय होगा, तथापि मैं अपने पुत्रों को नहीं रोक सकता। भीष्म आदि बड़े बड़े धनुषधारी प्राचीन वीर युद्धमार्ग का आश्रय ले कर बराबर मेरे पुत्रों की रक्षा करेंगे और अनन्त कीर्ति सञ्चित करेंगे। हे सञ्जय!

जैसे मेरे पुत्र भीष्म के पोते और द्रोणाचार्य के शिष्य हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं; किन्तु हम लोगों ने जो जो सेनाए इनकी इकट्ठी की हैं; हमें पूर्ण आशा कि, यह सब वृद्ध महानुभाव उनका ध्यान रखते हुए हमारे इस भयङ्कर सङ्कट में सहायक बनेंगे और जीते जी मेरे पुत्रों पर कोई आपत्ति न आने देंगे। क्षत्रियों का क्षात्र धर्म का पालन करते हुए युद्ध में मर जाना ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है; किन्तु शोक मुझे उन पर होता है जो पाण्डवों के साथ लड़ने के लिये तैयार हो रहे हैं। विदुर ने जिस भय की सूचना चिल्ला चिल्ला कर पहिले ही दे दी थी, वह भय अब सम्मुख उपस्थित है। सञ्जय! देखो, लोग कहते हैं कि, ज्ञान से क्लेशों का नाश होता है; किन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती। प्रत्युत मैं तो यही समझता हूँ कि दुःख ही ज्ञान का नाश कर देता है। संसार में धर्माचरण की मर्यादा स्थापित करने वाले ऋषि मुनियों को भी सुख और दुःख भोगने ही पड़ते हैं। जब ऐसे ऐसे ऋषि मुनियों को भी सुख दुःख का अनुभव होता है, तब इस संसार के झंझटों, पुत्र कलत्रों में फँसे हुए, मोहग्रस्त मनुष्यों को भला सुख दुःख का भान होना, क्या कोई आश्चर्य की बात है? जब मैं इस वर्त्तमान आपत्ति का प्रतीकार करने के लिये, एकान्त में बैठ कर विचार करने लगता हूँ, तब मुझे कुछ भी नहीं सूझता। केवल कौरवों के सर्वनाश का नंगा नृत्य ही नेत्रों के सम्मुख अंकित हो जाता है। इन सब आपत्तियों का कारण एक मात्र जुआ ही है। मैंने लालच में पड़ कर स्वयं ही इस भयङ्कर आपत्ति को बुलाया। महावेगशाली काल का चक्र बड़ा विचित्र है। अब मेरा उससे छुटकारा होना असम्भव है। मुझे काल चपेट रहा है और मैं उससे बुरी तरह चिपटा हुआ हूँ। हे सञ्जय! मैं शक्तिहीन हूँ। मुझे अब कोई उपाय नहीं सूझता, क्या करूँ? क्या न करूँ? कहाँ जाऊँ? किसको अपना दुःख सुनाऊँ? मन्दबुद्धि कौरवों को यमराज ने घेर लिया है। हाय! मेरे शत पुत्रों की विधवा स्त्रियाँ जब विलाप करेंगी; तब मैं विवश हो कर कैसे प्राण त्यागूँगा? भयङ्कर-वेग शाली भीम, अर्जुन की

सहायता पा कर, पवन की सहायता से जैसे आग घास फूँस को भस्म कर देती है, वैसे ही मेरे पुत्रों को भी भस्म कर देगा।

बावनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का परिताप

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! सच्ची बात तो यह है कि, जो धर्मराज आज तक अपने मुख से एक बार भी झूँठ नहीं बोले हैं तथा जिनकी सेना में अर्जुन जैसा वीर मौजूद है, वे यदि तीनों लोकों के सम्राट् हो जावें तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं बहुत कुछ सोचता हूँ; किन्तु मुझे ऐसा कोई भी वीर प्रतीत नहीं होता, जो संग्रामभूमि में रथ पर चढ़ कर वीर अर्जुन का सामना करे। यदि अस्त्र-विद्या के आचार्य अजेय वीर-शिरोमणि द्रोणाचार्य जी और कर्ण अर्जुन के सम्मुख जा कर संग्राम करें, तो भी मुझे अपने विजय पर सन्देह ही बना रहेगा। क्योंकि गुरु द्रोणाचार्य जी तो बुड्ढे हैं और कर्ण बेचारा असफलविद्य है अर्थात् वह शाप के कारण अपनी रण-कुशलता भूल जाता है। इधर जिन पर आशा थी उनकी तो यह दशा है और उधर अर्जुन बड़ा वीर बलवान् सङ्कटापहारी और शत्रुओं का विजेता है। यदि भयङ्कर युद्ध हुआ तो पाण्डवों का विजय तो निश्चित ही है। पाण्डव सब के सब शस्त्रास्त्रवेत्ता और बड़े बड़े संग्रामों को जीत चुके हैं। वे चाहे इन्द्रासन को भले ही त्याग दें; किन्तु कौरवों पर बिना विजय प्राप्त किये न मानेंगे। यदि द्रोण, कर्ण और अर्जुन मारे जाँय तो इधर लड़ने के लिये उतावला दुर्योधन शान्त हो जावे और उधर पाण्डव भी शान्त हो जावें; किन्तु अर्जुन को मारने वाला तो मुझे कोई दीखता ही नहीं। मेरे मूर्ख पुत्रों का विनाश करने के लिये तैयार हुए अर्जुन का क्रोध न मालूम किस उपाय से शान्त किया जा सकेगा। बड़े बड़े वीर अस्त्र-शस्त्र-धारी योद्धा दस जगह जीतते और चार जगह हारते

भी है; किन्तु आज तक अर्जुन का पराजय तो मैंने क्या, किसी ने भी कभी नहीं सुना। खाण्डवदाह के समय जब अर्जुन ने अग्निदेव को तृप्त किया था, तब देवताओं को भी लड़ाई में हरा दिया था। भला, जिस वीर का सारथ्य साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण करें, उसको परास्त करने वाला संसार में कौन है? सञ्जय! देखो, मुझे पूरा विश्वास है कि, अर्जुन का विजय होगा। क्योंकि श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही बड़ी सावधानी से रथ पर बैठते हैं। गाण्डीवधारी अर्जुन अपने धनुष को सदा तैयार रखता है। श्रीकृष्ण सा सारथि गाण्डीव सा धनुष और अर्जुन सा योद्धा जब हमारी ओर कोई हो, तब हमारा विजय हो सकता है अन्यथा हमें विजयश्री प्राप्ति के लिये, बिल्कुल निराश हो जाना चाहिये। मेरे सभी पुत्र दुष्ट दुर्योधन के वश में हो कर नष्ट भ्रष्ट होना चाहते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि, एक बार प्रचण्ड वज्रप्रहार से मनुष्य अपने को बचा सकता है; किन्तु अर्जुन के कब्ज़े में आ कर बचना बड़ा मुश्किल और असम्भव है। सञ्जय! मैं सच कहता हूँ अर्जुन के बाण बड़े तीक्ष्ण हैं। वे लगते ही शरीर के रोम रोम को छिन्न भिन्न कर देते हैं। मुझे तो इस समय भी ऐसा प्रतीत होता है कि, वीर अर्जुन भयङ्कर बाण वर्षा द्वारा मेरे पुत्रों का संहार कर रहा है। संग्रामभूमि में चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दृष्टि आता है। आह! यह सब तेज तो गाण्डीव धनुष ही से निकल रहा है। वीरों के मस्तक छिन्न भिन्न हो कर भूमि पर लुढ़क रहे हैं। अर्जुन के रथ की मेघसमान गम्भीर ध्वनि से कौरवी सेना भयभीत हो कर भाग रही है। प्रचण्ड पावक की ज्वालाओं के समान वीर अर्जुन की क्रोधाग्नि मेरे प्राणप्यारे पुत्रों को घास फूँस की तरह जलाये डालता है। अर्जुन महाबली है। उसका क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह जब क्रुद्ध हो कर संग्रामभूमि में बाण वर्षा करेगा, तब विधाता का विधान शेष न रह सकेगा। ऐसी कोई भी भयङ्कर परिस्थिति के समय मैं भी एकान्तगृह में बैठ कर कौरवों का संहार, पारस्परिक वैमनस्य तथा सर्वनाश के अनेक सन्देशे सुनूँगा। आह! संग्राम-

भूमि का यह विपुल जननाश, केवल कौरवों की ओर ही बढ़ा चला आ रहा है।

तिरपनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का पश्चात्ताप

हे सञ्जय! केवल पाण्डव ही वीर-विजयी और वीर-शिरोमणि हैं, यह बात नहीं है; बल्कि इनके जितने सहायक हैं; वे सब भी प्राणों को त्याग करने में निर्भय और शत्रुओं को जीतने वाले हैं। तुमने मत्स्य-केकय, पाञ्चाल आदि अनेक पराक्रमी योद्धाओं के नाम बतलाये हैं; किन्तु केवल श्रीकृष्ण ही एक ऐसे हैं कि, यदि चाहें तो देवराज इन्द्र को जीत कर स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त कर सकते हैं। जगन्नियन्ता भगवान् श्रीकृष्ण जी का पाण्डवों के साथ रहना और सारथ्य करना ही उनकी विजय का मुख्य और निश्चित लक्षण है। इधर सात्यकि ने अर्जुन ही से अस्त्रविद्या सीखी है। यह बड़ा भारी वीर है। यह तो बीजों की तरह बाणवपन करने में समर्थ है। अस्त्रास्त्र-विद्या में महापण्डित धृष्टद्युम्न भी मेरी सेना का संहार करेगा। हे सञ्जय! मैं धर्मराज के क्रोध से, पराक्रमी अर्जुन की वीरता से, तथा नकुल, सहदेव और भीम से सदा डरता रहता हूँ। वीर नरपालों की सेना के घने एवं कठिन शस्त्रजाल से मेरे योद्धाओं का निकलना कठिन ही नहीं; बल्कि असम्भव सा मालूम होता है। इस कारण मेरी आँखें सदा शोकाश्रुओं से भरी रहती हैं। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने अपने धर्माचरण द्वारा ही धर्मराज की पदवी प्राप्त की है। वे बड़े पुण्यात्मा, पावनचरित, यशस्वी और सुमति-सम्पन्न हैं। उनके पास मित्र मंत्री और युद्ध का प्रबन्ध करने वाले अनेक योद्धा हैं तथा उनके भाई और ससुर आदि सभी स्वजनवर्ग महारथी हैं। धर्मराज धीर, वीर, कृपालु, विवेकी, उदार, सत्य पराक्रमी, विद्वान्, आत्मज्ञानी, पूज्य-पूजक, जितेन्द्रिय और सब गुणों की खान हैं।

इस प्रकार महागुणी पाण्डवों के प्रचण्ड क्रोधाग्नि में पतङ्ग की तरह कूदने वाले मनुष्य से बढ़ कर मूर्ख और कौन होगा? राज्य के छिन जाने से यद्यपि इस समय धर्मराज की शक्ति प्रत्यक्ष में कम प्रतीत होती है; तथापि इनका क्रोध अब हमारा सर्वनाश अवश्य ही कर डालेगा। जैसे आग की छोटी सी भी चिनगारी कूड़े कर्कट, फूस आदि पर पड़ जाने के बाद विशाल शरीर धारण कर लेती है, वैसे ही यह धर्मराज भी भयङ्कर स्वरूप धारण कर हमारी चालबाज़ी का हमें फल चखावेंगे। हे कौरवो! देखो मैं तुम्हें फिर समझा रहा हूँ, मान जाओ। लड़ाई झगड़ा करने की बातें अपने मन से बिलकुल निकाल दो। याद रखो, इस विराट समर का आयोजन सम्पूर्ण वंश का उच्छेद कर डालेगा। इसलिये तुम्हारा कर्त्तव्य है कि, जैसे मुझे शान्ति सुख और निश्चिन्तता की प्राप्ति हो वही उपाय करो। यदि तुम लोग मान जाओ और संग्राम न करो तो हम सन्धि की बातचीत करें। यदि हमीं कलह करेंगे और क्लेश सहेंगे तो धर्मराज को यह कभी सह्य न होगा तथा वे इन सब झगड़ों का, मुझे कारण बतलाने वाले की सदा निन्दा करेंगे, यदि कलह करने वाला ही स्वयं सन्धि की याचना करे, तो फिर वह भला झगड़ा कैसे कर सकता है?

चौवनवाँ अध्याय

सञ्जय का कटाक्ष

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जैसा आप कहते हैं, वह सब ठीक है। इस भयङ्कर संग्राम में निश्चय गाण्डीव धनुष के द्वारा समस्त क्षत्रियों का सर्वनाश होता दीखता है। हाँ, और मुझे भी यह बात मालूम नहीं थी कि, आप अपने पुत्रों के मोह में पड़ कर इस प्रकार धैर्य धारण कर बैठे रहेंगे। महाराज! क्या आप अर्जुन के स्वरूप को नहीं जानते हैं? महाराज! आपने पाण्डवों को बड़े बड़े क्लेश दिये हैं, इसलिये अब आपको उनका

फ़ल भी तो भोगना पड़ेगा। याद रखिये, अब आपका भी वह सुख शान्ति का समय सदा के लिये जाता रहा। सच्चा पिता वही है जो कि, अपने पुत्रों के हित प्रेम के लिये सदा सावधान रहे। जो अपने छोटे पुत्रों से द्रोह करता है वह बड़ा नहीं माना जाता है। सुनिये, जिस समय पाण्डवों को शकुनि ने जुए में हरा दिया था, उस समय आप भी राज्य मिलने के लालच में खूब प्रसन्न हुए थे। आपको याद है कि, जब पाण्डवों को अपमानित किया जा रहा था, गालियाँ सुनायी जा रही थीं; तब आपने कौरवों को बिल्कुल नहीं रोका; किन्तु मन में यही विचार करते थे कि, अरे! इन मूर्खों ने इन पाण्डवों का राज्य ले लिया तो क्या हुआ, इनका समूल नाश तो किया ही नहीं। हे राजन्! सच तो यह है कि जांगल और कुरुदेश ही आपकी पैतृक सम्पत्ति है। इससे अधिक जो कुछ भी भूमि तुम्हारे अधिकार में है, वह सब वीर पाण्डवों की जीती हुई है। वीर पाण्डवों ने ही भूमिमण्डल को विजय कर उसे आपके समर्पण किया है; किन्तु आप समझते हैं कि, यह सब मेरी विजय की हुई है। शोक! राजन्! देखिये, संसार में कृतज्ञता जीवन और कृतघ्नता मौत है। पाण्डवों ने आपके साथ बड़े बड़े उपकार किये हैं। जिस समय दुर्योधन आदि आपके पुत्र गन्धर्वों के बन्दी हो गये थे और कोई सहायक न पा कर वे अगाध आपत्तिसागर में डूबे जा रहे थे, उस समय उनकी रक्षा, वीर अर्जुन ने ही की थी। प्रपञ्च से पाण्डवों का राज्य ले और उन्हें निर्वासित कर आप बालकों की तरह बड़ी प्रसन्नता और गर्व प्रकट करते थे; किन्तु याद रखिये, जब अर्जुन प्रलयकाल के समान भयङ्कर बाणवर्षा करेगा, तब सम्पूर्ण सागर सूख जावेंगे, जीवधारियों की तो बात ही क्या है। आप जानते हैं, धनुर्धारियों में अर्जुन सब से श्रेष्ठ है। धनुषों में गाण्डीव सब से श्रेष्ठ है। प्राणियों में श्रीकृष्ण सर्वोच्च हैं। आयुधों में सुदर्शन चक्र सब से उत्तम है और ध्वजाओं में अर्जुन के रथ की वानराङ्कित ध्वजा सब से श्रेष्ठ है। विकराल काल के समान रथ पर सवार हो कर, जब अर्जुन

हम लोगों पर आक्रमण कर संहार करेगा, तभी हमारे पापों का प्रायश्चित्त होगा। राजन्! जिसके पास भीम अर्जुन जैसे वीर योद्धा विद्यमान हैं, यह सब भूमण्डल निश्चय उसीकी थाती है। तुम्हारी इस निर्बल सेना को भीमसेन बात की बात में तहस नहस कर देगा। कौरवों के औसान बिल्कुल ढीले हो जावेंगे। महाराज! आपकी सेना में जितने राजे हैं और जो अपनी वीरता के गर्व में मूँछें मरोड़ रहे हैं, वे सब बस भयङ्कर भीम और महाबली अर्जुन को देखते ही नौ दो ग्यारह हो जावेंगे। इसलिये इनका भरोसा कर के संग्राम छेड़ देना, बूँदों के सहारे आकाश पर चढ़ने के समान है। मत्स्य, केकय, पाञ्चाल आदि किसी भी राजा को आपसे प्रेम नहीं है। वे सब आपके इस भयङ्कर पापकर्म से शत्रु बन गये हैं। कोई राजा आपको सन्मान की दृष्टि से नहीं देखता। महाराज! समस्त सामन्त-चक्र आपके अनर्थों से आरी आ कर, धर्मराज की सहायता के लिये तैयार हो गया है। पाण्डव धर्मात्मा हैं। इस कारण वे उन्हें आदर की दृष्टि से देखते और आपके पुत्रों से सदा विरोध करते हैं। धर्मात्मा पाण्डवों को आपके पापी पुरुष पुत्रों ने बड़े कड़े दुःख दिये हैं तथा अब भी उनसे वैमनस्य रखते हैं। इस लिये यदि आप उन पापी एवं नीचमना अपने पुत्रों को अपने वश में कर लोगे, तो आपका ही कल्याण होगा अन्यथा केवल इस शोक करने से कुछ लाभ नहीं है। मैंने और महात्मा विदुर जी ने तो उसी समय आप को सब समझा दिया था। अब आपका यह पाण्डवों के लिये विलाप करना बिल्कुल वृथा और निन्दनीय है।

पचपनवाँ अध्याय

दुर्योधन की गर्वोक्ति

दुर्योधन ने कहा—महाराज! आप भी इन कायरों की बातों में आ गये। यह क्या जाने कि, संग्राम किस चिड़िया का नाम है। पूज्यवर! आप

बिल्कुल न घबराइये। हम लोग निश्चय ही शत्रुओं का संहार करेंगे। हे राजन्! जिस समय पाण्डव मृगचर्म धारण कर वनवास करने को चल दिये, तब श्रीकृष्ण तथा केकय देश के राजा धृष्टकेतु, प्रद्युम्न आदि राजा सब लोग अपनी अपनी सेना साथ ले कर पाण्डवों से मिलने गये और इन्द्रप्रस्थ के समीप बैठ कर तपस्वी वेषधारी युधिष्ठिर की सेवा करते हुए उन सब लोगों ने आपकी बड़ी निन्दा की और कहा कि, आपको अपने शत्रुओं से जैसे भी हो, वैसे अपना राज्य लौटा लेना चाहिये। जब यह बात मेरे कान तक आयी, तब मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी। मैंने पितामह भीष्म तथा द्रोणाचार्य जी को बुला कर उनसे कहा कि, मुझे मालूम होता है कि, पाण्डव कभी न कभी अवसर आने पर अवश्य राजसिंहासन पर बैठेंगे और विशेष कर श्रीकृष्ण जी की यह इच्छा है कि, कौरवों का सर्वनाश कर दिया जावे। वे कहते हैं कि केवल महात्मा विदुर और धर्मज्ञ धृतराष्ट्र इन दोनों को छोड़ कर और जितने मेरे सम्बन्धी आप सब लोग हैं, सभी नाश कर देने के योग्य हैं। उनकी इच्छा है कि, इन कौरवों का मटिया मेट कर, इनका राज्य धर्मराज को सौंप देवें। इस लिये अब आप बतलाइये कि, हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है? उनसे सन्धि करें या यहाँ से भाग जावें अथवा प्राणों का मोह छोड़ कर शत्रुओं के साथ युद्ध करें। यह तो मानी हुई बात है कि, उनसे लड़ भिड़ कर हम जीवित नहीं रह सकते। क्योंकि सब राजमण्डल उनके अधीन है और हम लोगों की तो कुछ दशा ही निराली है। हमारे मित्र हमारे शत्रु हो रहे हैं। हमारी प्रजा हमसे रूठी हुई है। हमारे राजा और कुटुम्बी हम लोगों की निन्दा करते हैं। मेरी सम्मति में नम्र हो जाना कोई बुरी बात नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से कौरवों और पाण्डवों में सदा स्नेह बना रहेगा। मुझे तो केवल अपने वृद्ध पिता की चिन्ता है। क्योंकि उन्होंने मेरे पीछे अनेक कष्ट सहे हैं तथा मेरे भाइयों ने मेरी भलाई के विचार से, अन्य लोगों के साथ अनेक अपराध किये हैं। यह सब तो आप लोगों को भली भाँति मालूम ही होगा। महारथी वीर

पाण्डव अवश्य ही धृतराष्ट्र के प्रिय पुत्रों का संहार कर वैर का बदला लेंगे। जब मेरी व्याकुलता की ये बातें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा आदि महावीरों ने सुनीं, तब वे लोग भी घबड़ा कर यह कहने लगे—हे राजन्! आपके शत्रु यदि आपसे द्रोह रखते हैं तो आप ज़रा भी न घबड़ाइये। क्योंकि जब हम अपने बल पराक्रम से शत्रुओं का संहार करने के लिये रणभूमि में पहुँचेंगे, तब हमें कोई भी परास्त नहीं कर सकता। हम लोग दुश्मनों के घमण्ड को धूल में मिला कर, उन्हें अपने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर देंगे। हम लोगों में से प्रत्येक योद्धा शत्रुपक्षीय अनेक राजाओं को जीतने की सामर्थ्य रखता है। देखिये—केवल भीष्म ने अपने पिता के मरने के बाद क्रुद्ध हो कर, समस्त राजाओं को हरा दिया था। उस समय हे राजन्! इन महारथी वीर भीष्म जी ने अकेले केवल एक रथ की सहायता से अनेक महारथियों को जीत लिया था और वे सब इनके शरण में आ गये थे। ऐसे ऐसे महाबली धीर वीर योद्धा जब हमारी सहायता करने के लिये तैयार हैं; तब हे राजन्! आप क्यों भय से विकल हो रहे हैं। इसी प्रकार द्रोणाचार्य आदि सब सेनापतियों ने मुझे आश्वासन दिया था। इस लिये हे राजन्! आपको अब घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। पाण्डव आज कल निष्पक्ष हैं। उनकी सारी भूमि हमारे अधीन है। हमारे सहायक राजा हमारे पीछे प्राण तक देने को तैयार हैं। यह आप निश्चय ही समझें। आपने सञ्जय द्वारा शत्रुओं की प्रशंसा सुनी है, इसीलिये आप अत्यन्त घबड़ा गये हैं। इस समय आपकी इस व्याकुलता को देख कर, सब राजा लोग आपका उपहास कर रहे हैं। इसलिये आप निर्भय और शान्त हो जाइये। इतने सहायक राजाओं और वीर पुत्रों के होते हुए भी आपकी यह व्याकुलता व्यर्थ है। शत्रु हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। महाशक्ति-शालिनी मेरी सेना को देवराज इन्द्र और ब्रह्मा भी नहीं जीत सकते। हे महाराज! और तो और, मेरे बलवीर्य के प्रताप से भयभीत हो कर युधिष्ठिर राज्य माँगना भी भूल

जावेंगे और केवल पाँच ग्राम ले कर ही सन्तुष्ट हो जावेंगे। हे राजन्! आप अभी मेरे पराक्रम से परिचित नहीं हैं। इसी लिये अब भीम के पराक्रम पर मोहित हो, उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। महाराज! गदायुद्ध में तो मेरी बराबरी करने वाला न कोई हुआ न होगा और न अब कोई है ही। मैंने गुरुकुल में निवास किया है और अपने मन को वश में कर के युद्धविद्या सीखी है। इस कारण युद्ध में मेरी समानता रखने वाला, कोई नहीं है। यह बात श्रीबलराम जी को भी निश्चित हो गयी है। युद्धविद्या में मैं बलदेव जी के बराबर हूँ और बल में तो मेरे समान भूमि पर कोई है ही नहीं। भला बिचारा भीम मेरी भयङ्कर गदा का प्रहार कैसे सह सकेगा। महाराज! जिस भीम की आप प्रशंसा कर रहे हैं, वह तो मेरे एक ही गदाप्रहार से यमलोक पहुँचेगा। मेरी बहुत दिनों से यह इच्छा है कि, मैं भीमसेन को गदा हाथ में लिये संग्राम में देखूँ और उसे अपने भयङ्कर गदाप्रहार से बड़े भारी वृक्ष की तरह क्षण भर में धराशायी बना दूँ। महाराज! आप भीम के भय से पाताल में घुसे जा रहे हैं। मेरे सामने भीम है क्या चीज़? मैं यदि क्रुद्ध हो कर अपनी गदा हिमालय पर फेंक कर मारूँ, तो वह भी चूर हो कर बिखर जावेगा। इस लिये आप भीमसेन का भय बिल्कुल त्याग दीजिये। मैं निश्चय ही संग्राम में उसे मार डालूँगा। हे राजन्! जहाँ मैंने भीम को मारा कि, बस अर्जुन के ऊपर भी अनेक महारथी बाण वर्षा करने लगेंगे। न मालूम आप क्यों इतने डरते हैं। अरे साहब! हमारे अश्वत्थामा कर्ण, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, जयद्रथ आदि राजाओं में से यदि एक भी वीर बिगड़ कर खड़ा हो गया तो फिर पाण्डवों का कुशल नहीं और जब यह सब लोग मिल कर चढ़ाई करेंगे तब तो बस क्षण भर ही में शत्रुओं का मैदान साफ़ हुआ समझ लीजिये। आप घबराते क्यों हैं? चुपचाप बैठे बैठे तमाशा देखिये। भला यह कैसे माना जा सकता है कि, ऐसे ऐसे योद्धाओं की सेना भी एक साधारण अर्जुन और भीम को न मार सके। याद रखिये, पितामह भीष्म बाणों से

अर्जुन के शरीर को चलनी बना देंगे और कृपाचार्य उसे यमलोक पहुँचावेंगे। महाराज ! आपको यह तो मालूम ही नहीं है कि, पितामह भीष्म में क्या शक्ति है ? इस संसार में उनका संहार करने वाला तो कोई पैदा ही नहीं हुआ। देवता भी उनकी महान् शक्ति के सन्मुख माथा टेक जाते हैं। उन्हें उनके पिता जी ने प्रसन्न हो कर क्या वरदान दिया है, यह आपको मालूम है ? महाराज ! यदि आपको यह मालूम होता तो, आप इस प्रकार विकल न होते। देखिये, उनके पिता ने प्रसन्न हो कर उन्हें वरदान दिया है कि, तुम जब चाहोगे तभी मरोगे अर्थात् तुम्हारा मृत्यु पर अधिकार होगा और मृत्यु का तुम पर नहीं। हमारे दूसरे योद्धा भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य जी हैं। इनकी माता का नाम द्रोणी है। यह भी इतनी जल्दी किसी के हाथ से मारे नहीं जा सकते। इनका शस्त्रास्त्र-ज्ञान सब से चढ़ बढ़ कर है। अन्य अश्वत्थामा आदि अनेक महावीर हैं। उनकी ओर अर्जुन बेचारा आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। यह सब लोग अर्जुन की बोटी बोटी काट कर फेंक देंगे। और हाँ ! क्या कर्ण को आप द्रोणाचार्य आदि से कुछ कम समझते हैं ? स्वयं परशुराम ही ने उससे कहा था कि, तू मेरे बराबर ही पराक्रमी है। जब कर्ण के कुण्डल इन्द्राणी के लिये इन्द्र माँग ले गया, तब इन्द्र ने कर्ण को कुण्डलों के बदले एक महाभयङ्कर शक्ति प्रदान की, जो कभी खाली जा ही नहीं सकती। भला जिसके पास ऐसी अमोघ महाशक्ति मौजूद है, उससे क्या अर्जुन लड़ कर अपनी मौत अपने हाथों बुलावेगा ? इसलिये अब आप इस घबड़ाहट को त्याग दीजिये और मेरा विजय बिलकुल निश्चित ही समझिये। महाराज ! केवल भीष्म ही दस हज़ार शत्रुओं का प्रतिदिन संहार कर सकते हैं तथा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि भी इनके बराबर ही काम करने वाले हैं। हाँ और संसप्तक तो बस अर्जुन के पीछे हाथ धो कर ही पड़ गये हैं। वे तो कहते हैं कि, बस संग्राम में या तो हम नहीं या अर्जुन नहीं, भला अब आपको और क्या आशा दिलायी जा सकती है। मैंने उनका ऐसा उत्साह देख कर ही

उन्हें अर्जुन का वध कर देने को नियत कर दिया है। फिर आपके भय का अवसर ही कहाँ है? भला आप ही बतलावें कि भीमसेन के लुढ़क जाने पर फिर कौन सा वीर हमारे सामने आ कर लड़ेगा। हे राजन्! पाँच तो पाण्डव हैं ही। अब उनके सहायक धृष्टद्युम्न और सात्यकि दो और हैं। बस इन्हें ही उन लोगों की सेना की नाक समझिये। अथवा और कोई हो तो मुझे बतलाइये; किन्तु हमारे यहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण, कर्ण, सोमदत्त, वाल्हीक, शल्य, जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा आदि महारथी हैं और मेरी एकत्र की हुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना है; किन्तु शत्रुओं के पास थोड़ी और निर्बल केवल सात अक्षौहिणी सेना है। अब भला बतलाइये, मेरा पराजय कैसे हो सकता है? बृहस्पति का कथन है कि, अपनी सेना से तिहाई सेना के साथ लड़ना चाहिये। मेरी सेना भी शत्रुओं की सेना की अपेक्षा तिगुनी है। दूसरे मेरी सेना में सम्पूर्ण अपेक्षित गुण विद्यमान हैं और शत्रुओं की सेना नितान्त गुणहीन है। इस लिये अपनी सेना के पराक्रम पर विश्वास कर, आप घबड़ाहट को त्याग दीजिये। इस प्रकार दुर्योधन, धृतराष्ट्र से कह सुन कर चुप हो गया और शत्रुओं का हाल जानने की इच्छा से सञ्जय से बोला।

छप्पनवाँ अध्याय

सञ्जय द्वारा पाण्डव गौरव वर्णन

दुर्योधन सञ्जय से पूछने लगा—हे सञ्जय! यह तो बतलाओ लड़ने की लालसा रखने वाले युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना और सहायक राजाओं को पा कर, अब क्या करना चाहते हैं?

सञ्जय ने उत्तर दिया—हे राजन्! युद्धाभिलाषी युधिष्ठिर आज कल बड़े प्रसन्न रहते हैं तथा भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि भी अत्यन्त

निर्भय हो रहे हैं। एक बार अर्जुन अपने दिव्य अस्त्रों की परीक्षा करने के लिये तैयार हुआ। वह रथ पर बैठ कर जब चारों दिशाओं में घूमा; तब सर्वत्र एक विचित्र तेज फैल गया। उसी समय कवचधारी वीर अर्जुन ने मुझसे कहा कि, सञ्जय! देखो, यह तो मेरा पूर्वरूप है। इसीसे तुम अनुमान कर सकते हो कि, युद्ध में किसका विजय होगा। सो हे महाराज! मुझे तो सब यही दीखता है कि, निश्चय अर्जुन का विजय होगा।

यह सुन दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा—हे सञ्जय! तू तो मुझे बड़ा चापलूस जान पड़ता है। नहीं तो तू जुए हारे हुए एवं श्रीहीन पाण्डवों की हाँ में हाँ क्यों मिलाता? तुझे कुछ भी मालूम नहीं है। अच्छा, तू यही बतला कि, अर्जुन के रथ में कैसे घोड़े जुते हुए थे और ध्वजा कैसी थी?

सञ्जय बोला—हे राजन्! विश्वकर्मा प्रजापति तथा देवराज इन्द्र आदि देवताओं ने मिल कर अर्जुन के रथ को बड़ी कारीगरी के साथ बनाया है। रथ पर विचित्र पच्चीकारी का काम देखने ही लायक है तथा उन्हीं देवताओं ने दैवी माया के प्रभाव से अनेक छोटी बड़ी मूर्त्तियाँ अर्जुन की ध्वजा में बनायी हैं। भीमसेन की प्रार्थना से स्वयं पवनपुत्र हनुमान जी ने अर्जुन की ध्वजा में अपनी मूर्त्ति को स्थान दिया है। विश्वकर्मा ने अर्जुन की ध्वजा बनाने में बड़ी कारीगरी दिखलायी है। वह ध्वजा ऊपर तिरछी और चारों ओर दिशाओं में बराबर दो योजन तक फहराया करती है। वृक्षादि के समूह उसको नहीं रोक सकते। जैसे बरसात में अनेक रंगों के इन्द्रधनुष को देख कर हमें आश्चर्य होता है और कुछ समझ में नहीं आता कि, यह क्या बात है, वैसे ही इस ध्वजा को भी विश्वकर्मा ने अनेक रंगों वाली बनाया है। आकाश में पहुँच कर अनेक रूप धारण करने वाले धुएँ की तरह विश्वकर्मा ने उस ध्वजा की रचना की है। वह आकाशचुम्बिनी पताका कहीं कभी अटकती नहीं। अर्जुन के रथ में चित्ररथ गन्धर्व के दिये हुए दिव्य श्वेत घोड़े जुते हुए हैं, जो कि, आकाश पाताल आदि सब जगह

आ जा सकते हैं। युधिष्ठिर के रथ के घोड़े भी बड़े ऊँचे और श्वेत हैं। भीम के रथ के घोड़े सप्तर्षियों के समान तेजस्वी हैं और रथ में जुतते ही वायु के समान उड़ने लगते हैं। अर्जुन की प्रसन्नता से सहदेव को जो विचित्र अश्व प्राप्त हुए हैं वे सहदेव के रथ में हैं। वे अर्जुन के घोड़ों से भी बढ़ कर हैं। जैसे वे वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र को सवारी दिया करते थे वैसे ही इन्द्र के प्रदान किये हुए घोड़े नकुल की सवारी में हैं। इसी प्रकार सुभद्रा तथा द्रौपदी के वीर पुत्रों के पास भी वैसे ही वेगशाली घोड़े हैं जैसे कि इन कुमारों की सवारी में काम देते हैं।

सत्तावनवाँ अध्याय

पाण्डवों का सामरिक वैभव

धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा—हे सञ्जय! तुम यह तो बतलाओ कि, पाण्डवों के सहायक बन कर हम लोगों से संग्राम करने वाले कौन कौन से राजा लोग आये हैं?

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अन्धक और वृष्णियों के प्रमुख नेता श्रीकृष्ण जी तथा सात्यकि को वहाँ मैंने देखा। यह दोनों एक एक अक्षौहिणी सेना को साथ ले कर पाण्डवों की सहायता करने के लिये पधारे हैं। इन सब सेनाओं की रक्षा का प्रबन्ध शिखण्डी के अधीन है। राजा द्रुपद, सत्यजित धृष्टद्युम्न, आदि प्रमुख वीरों और अपने दश वीर पुत्रों के साथ एक अक्षौहिणी सेना ले कर पाण्डवों की सहायतार्थ आया है। उसकी सेना के सभी सैनिकों ने कवच धारण कर रखे हैं। राजा विराट, शङ्ख और उत्तर नामक पुत्रों के साथ तथा सूर्यदत्त, मदिराक्ष आदि अनेक वीर योद्धाओं के साथ एक अक्षौहिणी सेना ले कर पाण्डवों की सहायता के लिये आये हैं। केकय देशाधिपति पाँचों भाई अपनी लाल पताकाएँ फहराते

हुए एक अक्षौहिणी सेना ले कर आप लोगों से संग्राम करने के लिये पाण्डवों के यहाँ तैयार बैठे हैं। बस इतने तो मुख्य मुख्य योधाओं को मैंने वहाँ इस समय उपस्थित देखा है। जो सुर, असुर, नर, किन्नर आदि सभी की व्यूहरचना में परमप्रवीण हैं वही धृष्टद्युम्न पाण्डवों की समस्त सेना का मुख्य सेनापति बनाया गया है। हे राजन्! भीष्म के साथ संग्राम करने के लिये शिखण्डी की नियुक्ति हो चुकी है और उसकी पृष्ठरक्षा के लिये महावीरों की सेना समेत राजा विराट नियुक्त किये जा चुके हैं। मद्र-देशाधिपति का और युधिष्ठिर का जोड़ बाँधा गया था। जिस समय यह निश्चय हो रहा था उस समय कुछ लोगों ने कहा था कि, भाई! यह जोड़ ठीक नहीं रहा। तब दुर्योधन तथा उसके पुत्रों और कौरवों के साथ लड़ने के लिये भीमसेन नियत किया गया। कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण, और जयद्रथ को परास्त करने के लिये अर्जुन नियत किये गये तथा अर्जुन ने अन्य पराक्रमी अनन्त-सेना-सम्पन्न राजाओं के भी मानमर्दन करने का महान कार्यभार अपने ही ऊपर ले लिया। केकय देश के पाँचों राजकुमारों ने हमारी ओर से लड़ने वाले केकयों का संहार करना स्वीकार किया है। मालव शाल्वकों में श्रेष्ठ संसप्तकों के साथ भी केकय ही लड़ेंगे। दुर्योधन तथा दुःशासन के पुत्रों और बृहद्बल के साथ वीर अभिमन्यु ने लड़ना स्वीकार किया। सुनहली पताका वाले महावीर धृष्टद्युम्न को साथ ले कर द्रौपदी के वीर पुत्र द्रोणाचार्य पर चढ़ाई करेंगे। भोजवंशी कृतवर्मा से युयुधान और सोमदत्त से चेकितान लड़ना चाहता है। माद्री के पुत्र सहदेव और वीर संक्रन्दन को तुम्हारे साले शकुनि के साथ लड़ने का काम सौंपा गया है। महावीर नकुल ने उलूक, कैतव्य और सारस्वत नामक गणों से लड़ना निश्चय किया है। हे राजन्! इस प्रकार आपके यहाँ से जितने राजा लोग पाण्डवों पर चढ़ कर जाने वाले हैं, अर्जुन ने उन सब का नाम ले ले कर, अपने यहाँ के अनेक योद्धाओं का जोड़ मिला दिया है। राजन्! पाण्डवों ने तो अपनी सेना का बड़ी योग्यता के साथ विभाग कर

लिया है ; किन्तु अब आप लोगों को जो कुछ करना धरना हो वह शीघ्र ही करना चाहिये ।

धृतराष्ट्र ने कहा—यह दुर्मति महामूर्ख पुत्र अब मेरे पुत्र नहीं रहे । अब इनकी आशा छोड़ ही देनी पड़ेगी । क्योंकि इन्हें अब शीघ्र ही महाबली भीमसेन के साथ युद्ध करने के लिये जाना है । सम्पूर्ण नरपालों को पशु के समान प्रोक्षण कर, महाकाल ने यज्ञ प्रारम्भ किया है । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है । बस अब कुछ काल बाद ही यह सब प्रोक्षित पशु पतंगों की तरह प्रचण्ड पावक समान गाण्डीव धनुष की आग में गिर पड़ेंगे और भस्म हो जावेंगे । महात्मा पाण्डवों के साथ वैर बाँधने वाले मेरे पुत्र अवश्य अब नष्ट हो जावेंगे । यह मूर्ख जिस सेना के भरोसे फूल रहे हैं वह सब पाण्डवों का मुँह देखते ही इधर उधर भाग जावेगी । सब के सब पाण्डव महाशक्तिशाली, शूरवीर, महारथी और संग्राम में शत्रुओं को जीतने वाले हैं । जिनके नायक धर्मराज युधिष्ठिर, रक्षक श्रीकृष्ण और योद्धा महावीर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, धृष्टकेतु, उत्तमौजा, युधामन्यु, शिखण्डी, क्षत्रदेव, उत्तर काशी, मत्स्य तथा चेदि देशों के राजा समस्त सृन्जय, बभ्र, प्रभद्रक आदि महापराक्रमी हों ; उनको तो देवता भी नहीं जीत सकते । यह लोग चाहें तो बड़े बड़े विशाल-काय पहाड़ों को भी क्षण भर में तोड़ फोड़ कर फेंक सकते हैं । देखो सन्जय ! यह समस्त राजा दैवी शक्तियों से युक्त एवं महाबली हैं । मैं बार बार इस दुष्ट पु को समझाता हूँ ; किन्तु यह एक नहीं मानता, अपने हाथों अपनी मौत बुला रहा है ।

यह सुन कर दुर्योधन बोला—पूज्य पिता जी ! जब कि हम दोनों एक जातीय और एक ही स्थान पर रहने वाले समानधर्मी हैं तब फिर आप को यह विश्वास क्यों कर हो रहा है कि पाण्डवों का विजय और हमारा पराजय होगा ? पूज्यवर ! पाण्डवों की तो हस्ती ही क्या है । देवता भी यदि अपने अधिपति इन्द्रदेव को ले कर अश्वत्थामा, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य

आदि महारथियों पर चढ़ाई कर देवें, तो इन्हें नहीं जीत सकते। शूरवीर राजा लोग अपने प्राणों की कुछ भी पर्वाह न करते हुए मेरी सहायता के लिये तैयार हैं। आप कहते हैं पाण्डव हमारी सेना और सैनिकों का संहार कर के ही छोड़ेंगे। पूज्यवर! यह बात तो ख़ैर बहुत कठिन है। यदि पाण्डव संग्राम में मेरे आत्मीय राजाओं की ओर आँख भी उठा कर देख जायें, तो उनकी फ़ौरन् आँखें निकलवा डालूँ। महाराज! आप अभी मेरी महाशक्ति से परिचित नहीं हैं। केवल मैं ही इन सब पाण्डवों से तथा इनके पुत्रादि सभी से लड़ने को पर्याप्त हूँ। मेरे सहायक राजा रण में पाण्डवों को ऐसे घेर लेंगे जैसे व्याध (बहेलिया) हिरनों के बच्चों को घेर लेता है। मेरे भयङ्कर बाणों से क्षत विक्षत अतएव व्याकुल पाण्डव, पाञ्चालों के साथ भागते ही देख पड़ेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरा पुत्र निश्चय पागल हो गया है। इसकी यह गर्वोक्ति मुझे अच्छी नहीं मालूम होती। यह तो केवल बड़बड़ाना ही जानता है। भला कहीं धर्मराज को संग्राम में जीतने की इसमें सामर्थ्य हो सकती है। पितामह भीष्म जी महात्मा पाण्डवों की महाशक्ति से परिचित हैं। इसी कारण उन्हें उन महात्माओं से झगड़ना अच्छा नहीं मालूम हुआ था। हे सञ्जय! एक बार पाण्डवों के उद्योग का वर्णन करो। जैसे हविष्य (घृत आदि) डाल कर अग्नि को प्रज्वलित कर दिया जाता है; वैसे ही पाण्डवों को बार बार संग्राम के लिये प्रोत्साहित करने वाले कौन कौन मनुष्य हैं?

सञ्जय बोला—महाराज! एक तो धृष्टद्युम्न हर समय पाण्डवों को संग्राम करने के लिये उकसाया करता है और कहता है कि, तुम बस शत्रुओं के संहार की आज्ञा दे दो और फिर बैठे बैठे देखो। मैं दुर्योधन की सहायता के लिये आने वाले राजाओं को तो सपरिवार नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा। जैसे ह्वेल मछली बड़े बड़े मत्स्यों को निगल जाती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें निगल जाऊँगा। कर्ण, कृपाचार्य, गुरु द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा,

शल्य आदि आदि सभी महारथियों को मैं रोक सकता हूँ। आप निश्चिन्त रहें।

जब धृष्टद्युम्न यह कह रहा था तभी धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे महावीर! निश्चय ही हम सब लोग केवल तुम्हारे भरोसे ही पर संग्राम करने को तैयार हुए हैं। अब इससे पार लगाना तुम्हारा ही काम है। तुमने वास्तव में क्षात्रधर्म का पालन किया है। केवल तुम ही समस्त कौरवों के मान को मर्दन कर सकते हो। इसलिये जब कौरव आगे बढ़ कर संग्राम के लिये आवें तब तुम यह करना कि, जिस समय योद्धागण घबरा कर इधर उधर को भागने लगें, उस तुम समय धीरतापूर्वक व्यूहबद्ध हो खड़े रहना। इस प्रकार जो मनुष्य ऐसे समय अपने क्षात्रधर्म का परित्याग नहीं करता उसे तो हज़ारों सोने की मुहरें दे कर खरीद लेना चाहिये। हे महात्मन्! तुम शूरवीर और रण में घबराये हुए लोगों की रक्षा करने वाले हो। धर्मराज यह वक्तव्य अभी समाप्त भी न कर पाये थे कि, बीच ही में धृष्टद्युम्न ने बड़ी निर्भयता के साथ मुझसे कहा—हे सञ्जय! अब तुम विलम्ब मत करो और शीघ्र ही हस्तिनापुर जाओ और वहाँ देश के सब लोगों से तथा दुर्योधन के योद्धाओं बाल्हीकों, प्रतीप वंश के राजाओं, कौरवों और कर्ण, द्रोण, दुःशासन, अश्वत्थामा, जयद्रथ, विकर्ण, दुर्योधन तथा भीष्म आदिकों से कहना कि, जिस अर्जुन की रक्षार्थ सदा देवता प्रस्तुत रहते हैं, वह अर्जुन तुम्हारा संहार न करे। इस कारण उत्तम उत्तम उपायों द्वारा तुम धर्मराज को प्रसन्न करो और उनका राज्य उन्हें दे दो तथा अर्जुन के पास आ कर यह कहो कि, हे अर्जुन! हम युधिष्ठिर को उनका राज्य दे देते हैं। अब आप भी उसको स्वीकार कीजिये। देखो, सव्यसाची अर्जुन के बराबर कोई भी योद्धा नहीं है। अर्जुन के रथ की रक्षा सदा देवता किया करते हैं। भला बतलाइये तो सही ऐसे महापराक्रमी को क्या कोई मनुष्य जीत सकता है, कभी नहीं। इस लिये दुर्योधन से कहना कि, भाई! यह सब लड़ने लड़ाने का व्यर्थ

तोफान मत करो, सीधी तरह जो जिसका ले लिया है उसका उसे वापिस कर दो।

अट्ठावनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को समझाया जाना

बेटा! दुर्योधन! तुम्हें क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाले महातेजस्वी ब्रह्मचारी धर्मराज से संग्राम करने के लिये तैयार देख कर मैं बड़ा दुःखी हो रहा हूँ। देखो, लड़ाई झगड़ा करने में कोई लाभ नहीं है। बुद्धिमान् को उचित है कि, वह सदा इससे बचता रहे। तुम्हें और तुम्हारे सचिवों के निर्वाह के लिये आधा राज्य पर्याप्त है। इस कारण पाण्डवों को उनका राज्य लौटा दो। तुम पाण्डवों से प्रेम का वर्त्ताव करो। इसीमें तुम्हारा और समस्त कौरवों का कल्याण है। प्रिय पुत्र! तुम अभी नादान हो। देखो, तुम्हारी सेना ही तुम्हारे सर्वनाश की सूचना दे रही है। मैं तो संग्राम करना ही नहीं चाहता और भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, बाल्हीक तथा सञ्जय और अश्वत्थामा आदि भी संग्राम से अपनी अनिच्छा प्रकट करते हैं। सोमदत्त, शल, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, सत्यव्रत, पुरुमित्र आदि भी इस युद्ध के लिये अपना विरोध प्रकट करते हैं। हे बेटा! जिन लोगों के यहाँ जा कर हमारी आपत्ति से रक्षा हो सकती है, वे लोग भी सो इस युद्ध को बुरा समझते हैं; किन्तु तुम उसे अच्छा समझते हो। देखो बेटा! जिस कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि की सलाह से तुम इस बुरे कार्य में पैर रख रहे हो, वे सब बड़े अविवेकी और नीच प्रकृति के मनुष्य हैं। तुम्हें उनसे होशियार रहना चाहिये।

दुर्योधन बोला—मैंने समस्त संग्राम का आयोजन आपके, द्रोणाचार्य के, अश्वत्थामा के, सञ्जय के, भीष्म के, कृपाचार्य के तथा सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा आदि के भरोसे पर नहीं किया है। मैंने और कर्ण ने इस संग्राम-

यज्ञ में दीक्षा ले कर युधिष्ठिर को यज्ञीय पशु बनाया है। इस महासंग्राम रूपी यज्ञ की वेदी रथ, स्रुवा खड्ग, स्रुच कवच, बाण कुश, यश हवि और मेरे रथ के चारों घोड़े इसके होता हैं। मैं इस रणयज्ञ में अपने आत्मयाग द्वारा यमराज का यजन करूँगा और शत्रुओं को जीत कर राजलक्ष्मी से सुशोभित हो कर आनन्द करूँगा। पूज्य पिता! हम दुःशासन और कर्ण केवल यह तीन मनुष्य ही संग्राम में शत्रुओं का संहार करेंगे। या तो शत्रुओं का संहार कर हम ही भूमण्डल का राज्य करेंगे या शत्रु ही हमारा नाश कर आनन्द की वंशी बजावेंगे, इन दोनों बातों में से एक बात अवश्य ही होगी। आप बराबर यह कहते चले जाते हैं कि, मेल से रहो, पाण्डवों से सन्धि कर लो; किन्तु मैं यह कभी नहीं कर सकता। मैं अपना तन मन धन सब कुछ त्याग सकता हूँ; किन्तु पाण्डवों से मेल कर के मैं नहीं रह सकता। महाराज! आप तो आधे राज्य की कह रहे हैं, मैं तो पाण्डवों के लिये सुई की नोंक बराबर भी भूमि नहीं दे सकता।

धृतराष्ट्र ने कहा—अच्छी बात है, दुर्योधन से तो मैं हाथ धो बैठा; किन्तु अब तुम सब कौरव भी यमराज के पाहुने बनना चाहते हो इसका मुझे बड़ा शोक है। जैसे शेर हिरनों के झुंड में जा कर मोटी ताज़ी हिरनी को ले जा कर मार डालता है, वैसे ही वीर पाण्डव हमारे अच्छे अच्छे बलिष्ठ योद्धाओं को मार डालेंगे। यह सारी की सारी सेना बेमौत मरने पर उतारू हो गयी है। जैसे बलवान् और दीर्घ भुजाओं वाला मनुष्य कोमल कृश शरीर वाली स्त्री का मर्दन कर डालता है, वैसे ही आजानु बाहु महाबली सात्यकि कौरवों की सेना को पकड़ कर, मींज डालेगा। श्रीकृष्ण भी धर्मराज के बल पौरुष के बढ़ाने में सहायक होते हैं। रणकुशल महारथी सात्यकि तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने में बड़ा प्रवीण है। महाबली भीमसेन एक दृढ़ महादुर्ग के समान अपने मोर्चे पर खड़ा हुआ संग्राम से व्याकुल और थके हुए वीरों के लिये आश्रय प्रदान करेगा। जिस समय पर्वतों के समान लंबे चौड़े मस्त गजराजों को रणभूमि में भीमसेन की गदा से

छिन्न भिन्न हो कर गिरते देखोगे और उस महापराक्रमी की वीरता से डर कर इधर उधर भागोगे; तब तुम्हें मेरी इन बातों का स्मरण आवेगा। प्रचण्डपराक्रमी भीम के क्रोधानल में जब तेरी सारी सेना भस्म हो जावेगी; तब तू पछतावेगा। मैं तो अपने ऊपर भविष्य में बड़े भारी सङ्कट का आना निश्चय कर चुका हूँ। इस लिये पाण्डवों से लड़ना उचित नहीं समझना। तुम लोग तभी शान्त होवोगे जब कि, महारथी भीम की भयङ्कर गदा तुम्हारी हड्डियों को तोड़ फोड़ डालेगी। जब भीमसेन वन जङ्गल की तरह कौरवों का काँट छाँट करेगा, तब तुम्हें मेरी बातें याद आवेंगी।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र इस तरह सब राजाओं से कह कर फिर सञ्जय से पूँछने लगे।

उनसठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का संदेश

हे सञ्जय! मैं जानना चाहता हूँ कि, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने मेरे लिये क्या संदेश भेजा है?

सञ्जय बोला—महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने आपके लिये जो कहा है वह सुनिये। मैं जब आपका संदेश ले कर वहाँ गया, तब मुझे मालूम हुआ कि, श्रीकृष्ण, अर्जुन और द्रौपदी, सत्यभामा समेत, अपने आनन्दभवन में बैठे हुए हैं। उस भवन में अभिमन्यु, नकुल, सहदेव आदि कोई भी नहीं जाता था। मैं नतमाथ हो कर हाथ जोड़े अन्दर चला गया। श्रीकृष्ण अर्जुन दोनों ही सुन्दर सुगन्धित मालाएँ धारण कर चन्दन लगाये हुए आनन्दभवन को सुवासित कर रहे थे। उस भवन में अनेक प्रकार के रंग बिरंगे बिछौने बिछे हुए थे और वे दोनों वीर रत्नजटित

सिंहासन पर विराजमान थे। महात्मा श्रीकृष्ण के चरणों को अर्जुन और सत्यभामा दाब रही थीं तथा अर्जुन के चरण द्रौपदी दाब रही थीं। जिस समय मैं पहुँचा; उस समय अर्जुन ने मुझे, बैठने के लिये स्वर्ण पादपीठ दिया; किन्तु मैंने केवल उसे हाथ से छू कर ही स्वीकार कर लिया और भूमि पर बैठ गया। हे महाराज! जब अर्जुन ने उस पादपीठ पर से अपने चरण हटाये, तब मैंने देखा कि, अर्जुन के पैरों के तलवों में बड़ी बड़ी ऊर्ध्वरेखाएँ थीं। मैं तो उन दोनों विशालकाय महापराक्रमी वीरों को देख कर डर गया। महाराज! सच्ची बात तो यह है कि, कर्ण की बहकाने वाली बात से तथा भीष्म पितामह जैसे वीर के सहारे ही यह दुर्योधन फूल रहा है और इन्द्र के समान पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन के स्वरूप को नहीं पहिचानता। मुझे तो उनका दर्शन करते ही यह सब बातें मालूम हो गयीं कि, भला जिस धर्मराज के ऐसे ऐसे आज्ञाकारी सेवक हों उसका कभी पराभव नहीं हो सकता। अस्तु, सुन्दर भोजनों से सत्कार पा चुकने के बाद मैंने हाथ जोड़ कर आपका संदेश कहा। तब अर्जुन ने अपनी विशाल भुजाओं से श्रीकृष्ण जी के चरणों को छू कर, उनसे मेरे प्रश्न का उत्तर देने के लिये कहा। तब देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी श्रीकृष्ण जी अपने आसन पर उठ कर बैठ गये और बड़े चातुर्य के साथ सरल कोमल मधुर वाणी से मुझे सम्बोधन कर कहने लगे—हे सञ्जय! भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य जी के सम्मुख उन्हें सुना कर राजा धृतराष्ट्र से यह कहना; किन्तु सब से पहिले पूज्यों को प्रणाम और छोटों को आशीर्वाद कह कर, संदेश सुनाना। हाँ, सो देखो, धृतराष्ट्र से कह देना कि, अब तुम ख़ूब दान पुण्य यज्ञ, जप, तप आदि कर डालो। ब्राह्मणों को करारी दक्षिणाएँ दे डालो। स्त्रियों के साथ ख़ूब भोग विलास कर के भी ख़ूब अच्छी तरह तृप्त हो लो। क्योंकि अब केवल चार दिन की चाँदनी और बाक़ी है। तुम्हारे सिर पर बड़ा भारी सङ्कट आने वाला है। तुम अपने प्रिय बन्धुओं का उपकार और कृपापात्रों को उपहार देने में देर मत

करो। क्योंकि धर्मराज अब तुम पर चढ़ाई करने वाले हैं। मैं तो बड़ी दूर द्वारका में रहता था; किन्तु क्या करूँ। द्रौपदी ने तुम्हारे नीच पुत्रों के पाशविक अत्याचारों से भयभीत हो कर गोविन्द! गोविन्द! कह कह कर, मुझे यहाँ बुला लिया; मैंने अभी तक उसके ऋण से छुटकारा नहीं पाया है। बल्कि वह अब और भी अधिक बढ़ गया, जिसका बोझा मेरे हृदय पर शिला की तरह रखा है। याद रखो, महातेजस्वी दुर्धर्ष गाण्डीव-धनुष-धारी सव्यसाची अर्जुन से तुम्हारा बैर हुआ है। भला जिसकी सहायता के लिये मैं सदा तैयार रहता हूँ, उस अर्जुन को जीतने वाला संसार में कौन पुरुष है? औरों की तो बात ही क्या है, साक्षात् इन्द्रदेव भी उसे पराजित नहीं कर सकते। संग्राम में वीर अर्जुन को परास्त करने वाला वीर तो यदि चाहे तो ब्रह्माण्ड को उठा सकता है—सारी प्रजा को अपने क्रोधानल से भस्म कर सकता है तथा देवताओं को भी स्वर्ग से नीचे ढकेल सकता है। सुर, असुर, नर, नाग, किन्नर आदि में भी वीर अर्जुन के सम्मुख आ कर लड़ने वाला मुझे तो कोई नहीं दिखता। विराटनगर में अनेक वीरों में अकेले अनेक आश्चर्यकारी पराक्रम के कार्य करने वाले अर्जुन ने कौरवों को परास्त किया था और यह सब इधर उधर रणभूमि छोड़ कर भाग गये थे। बल, वीर, तेज, फुर्ती, हस्तकौशल, प्रसन्नता, धैर्य आदि सब गुण अर्जुन को छोड़ अन्य किसी में हैं ही नहीं। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने मेघ के समान गम्भीर शब्दार्थयुक्त वाणी कही। अर्जुन भी भगवान् कृष्ण की बातें सुन कर मुझसे बोला।

साठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का परिताप

सूरदास धृतराष्ट्र सञ्जय की बातें सुन कर, श्रीकृष्ण की बातों में गुण-दोष की विवेचना करने लगे। अपने पुत्रों का विजय चाहने वाले

राजा ने अपने तथा शत्रु के बलाबल, मन्त्र, प्रभाव, उत्साह का विचार भी बड़ी सूक्ष्म रीति से किया। अन्त में उसे यही पता चला कि, मेरे पुत्रों में शक्ति बहुत कम है और पाण्डवों में देवताओं मनुष्यों इन दोनों की ही शक्ति और तेज विद्यमान है।

यह सब कुछ सोच समझ कर उसने दुर्योधन से कहा—बेटा! मेरा हृदय किसी समय भी शान्त नहीं होता। मैंने जो कुछ भी विचार किया है वह अनुमान से नहीं; बल्कि मैं उसे सत्य और प्रत्यक्ष मानता हूँ। संसार में सभी को अपने अपने पुत्र प्राणों से बढ़ कर प्यारे होते हैं और वे यथाशक्ति अपने पुत्रों का हितसाधन भी करते हैं। इसी प्रकार भले आदमी उपकारी के उपकारों का बदला देने के लिये उसका जिसमें हित हो, ऐसे काम किया करते हैं। इस लिये इस कौरव और पाण्डवों के संग्राम में अर्जुन की सेवा से प्रसन्न हुए अग्निदेव भी उसकी सहायता अवश्य करेंगे। अर्जुन धर्मादि देवताओं का अंश होने के कारण अवश्य उन देवताओं की सहायता प्राप्त करेगा। मेरी सम्मति में अर्जुन की सहायतार्थ आये देवगण भी भीष्म द्रोण आदि के भय से भयङ्कर वज्र के समान क्रोध करेंगे। पहिले तो पाण्डव स्वयं ही अस्त्र विद्या में चतुर हैं और फिर जब उन्हें देवता सहायता देने के लिये आ जावेंगे, तब तो वे और भी अधिक अजेय हो जावेंगे। फिर तो उनकी ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। अर्जुन के दिव्य धनुष गाण्डीव की कोई भी निन्दा नहीं कर सकता, तथा उस धनुष के तीक्ष्ण बाणों को रखने के लिये अर्जुन के पास भाथा भी दिव्य ही है। वह कभी रीता ही नहीं होता। वीर अर्जुन के रथ का घनघोर गर्जन शत्रुओं के हृदय को दहला देता है। इस प्रकार जिस अर्जुन की आज संसार प्रशंसा कर रहा है, वह अर्जुन एक ही क्षण में पाँच सौ बाण छोड़ कर शत्रुओं का संहार कर सकता है। भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, शल्य तथा अन्य महारथियों का यही कहना है कि, अर्जुन जब संग्रामभूमि में अवतीर्ण हो कर, अपना

विचित्र पराक्रम दिखता है, तब उसका परास्त करना संसार में किसी भी वीर का काम नहीं है। इन्द्र उपेन्द्र के समान महापराक्रमी अर्जुन सहस्रबाहु के समान बली है। वह एक एक बार पाँच पाँच सौ बाणों की वर्षा कर के शत्रुसंहार करने के लिये भयङ्कर मूर्त्ति धारण कर मानों चला आ रहा हो। मेरी आँखों के सामने यही दृश्य खड़ा रहता है। बेटा! मैं दिन रात इसी विचार और चिन्ता में पड़ा रहता हूँ कि, कौरवों का कैसे कल्याण हो। मुझे क्षण भर भी सुख की नींद नहीं मिलती। कौरवों के इस सर्वनाश से रक्षा पाने का यदि कोई उपाय है तो वह केवल सन्धि ही है। बेटा दुर्योधन! मैं तो यही चाहता हूँ कि, कौरव और पाण्डवों में सदा प्रेमभाव बना रहे। उनसे वैमनस्य रखने में कौरवों का कभी भला नहीं हो सकता। क्योंकि वे लोग कौरवों से बल वीर्य पराक्रम आदि दिव्य शक्तियों में कहीं अधिक हैं।

इकसठवाँ अध्याय

दुर्योधन का दुराग्रह

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! दुर्योधन अपने पिता के इन वाक्यों को सुन कर, बड़ा लाल ताता हो कर बोला—हे राजन्! आपने तो पाण्डवों को हौआ समझ लिया है। न मालूम उनके कारण आपका अन्तरात्मा इतना भयभीत क्यों हो रहा है? मैं परमेश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि आपका वह भय दूर हो जावे। आप बार बार यह कह रहे हैं कि हैं! हैं! पाण्डवों से मत लड़ना। देखो उनकी सहायता करने वाले देवता हैं। महाराज! आपको मालूम है कि, ये देवता कैसे देवता कहलाये। सुनिये, यह कथा व्यास जी, देवर्षि नारद और परशुराम जी ने पहिले कही थी। इन लोगों का कहना है कि, जो लोग राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह

शून्य सांसारिक विषयों से सदा मुक्त रहते हैं वही देवता बन जाते हैं। अब आप ही बतलाइये कि ऐसे उदासीन महापुरुषों को क्या पड़ी है कि, वे अर्जुन के पीछे तीर कमान ले कर दौड़ते फिरें और व्यर्थ की आफ़त अपने सिर मोल लें। अस्तु, इस एक बार आपके मत के अनुसार ही मान लें कि, हाँ साहब देवता अवश्य अर्जुन की रक्षा करेंगे। तो क्यों साहब! अब तक जो पाण्डवों को अनेक क्लेश हुए उनसे उन्हें बचाने के लिये अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र, अश्विनीकुमार आदि क्यों नहीं आये? जो अब पाण्डवों के सिर पर स्तवन कर हमारा संहार करने के लिये इन्द्रासन और स्वर्ग छोड़ कर चले आवेंगे। महाराज! यह सब कहने की बातें हैं। देवता कहीं किसी के पीछे मारे मारे नहीं फिरते। अपना अपना बल पौरुष ही गाढ़े समय में काम आता है। थोड़ी देर को अगर यह भी मान लें कि, हाँ साहब! देवताओं में भी राग द्वेष पैदा हो कर दूसरों को हानि लाभ पहुँचाने की इच्छा हो जाती है, तो भले ही हो जावें; किन्तु क्या हमारा प्रबल प्रारब्ध उन देवताओं पर भी विजय प्राप्त न करेगा? यदि अग्निदेव मेरा सर्वनाश करने के लिये प्रचण्ड रूप धारण करेंगे, तो क्या मेरे मन्त्र उन्हें शान्त नहीं कर सकते। यदि आप यह कहें कि, देवताओं का तेज बड़ा प्रबल होता है, तो महाराज! मेरा तेज भी देवताओं से कुछ कम नहीं है। मैं तेजस्विता में देवताओं से भी चढ़ बढ़ कर हूँ। हे राजन्! मुझमें वह सामर्थ्य है कि, मैं फटती हुई भूमि और टूट कर गिरने वाले पहाड़ों की चोटियों को भी अपने मंत्रबल से जोड़ सकता हूँ। आप जानते हैं, मैं चराचर जगत का विनाश करने वाले भयङ्कर झंझावात को भी प्राणियों पर दया कर के अपनी मन्त्र-शक्ति के द्वारा रोक दिया करता हूँ। बड़ी सरिताओं और सागरों को क्षण भर में बर्फ़ की तरह जमा देता हूँ और अपनी सेना को पार उतार देता हूँ। महाराज! देवता क्या मेरे सम्मुख आ कर पौरुष दिखलावेंगे? मैं अनन्त अक्षौहिणी सेना को ले कर जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ। मुझे रोकने तक की तो किसी में सामर्थ्य है ही नहीं। मेरे राज्य में सर्प आदि हिंसक जीव, पहिले तो हैं ही नहीं;

और जो हैं भी वे सब मेरे मन्त्रों से किले हुए हैं। वे कभी किसी का अनिष्ट नहीं कर सकते। राजन्! मेरे देशवासियों के इच्छानुसार ही मेघ वर्षा करता है। मेरे देश में अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि के कारण कभी अकाल नहीं पड़ते। महाराज! मुझसे वैर रखने वालों की रक्षा कोई भी देवता नहीं कर सकता। यदि कोई कर सकता तो आज तक पाण्डवों की रक्षा किसी ने क्यों नहीं की? देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नर, किन्नर आदि कोई भी मेरे शत्रु को पनाह नहीं दे सकता। मेरे विचार शुभ हों या अशुभ वे सब के सब आज तक शत्रुओं और मित्रों में ठीक ही बैठे हैं। कभी विपरीत नहीं हुए। मेरी भविष्यद्वाणी सच्ची होने के कारण ही नहीं, लोग मुझे वैसे भी सत्यवक्ता कहते हैं। हे महाराज! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता; किन्तु केवल आपको धैर्य देने के लिये ही यह सब मुझे कहना पड़ा है। मेरा प्रबल प्रताप संसार में विख्यात है। कुछ दिनों बाद आप सुनेंगे कि, मेरे पुत्र ने पाण्डव, मत्स्य, केकय, पाञ्चाल, सात्यकि तथा वृष्ण आदि सब को जीत लिया। जैसे नदियाँ समुद्र में जा कर नष्ट हो जाती हैं, वैसे ही यह पाण्डव भी दलबल सहित मेरे पास आ कर जड़ से नष्ट हो जावेंगे। मेरा बल, बुद्धि, विद्या, यश, वीरता आदि सब कुछ पाण्डवों से श्रेष्ठ है। भीष्म, शल्य, शल, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य के समान मैं भी अस्त्र-विद्या में चतुर हूँ।

राजा धृतराष्ट्र को इस प्रकार अपनी वीरता और पराक्रम सुना कर दुर्योधन ने सान्त्वना दी और फिर संग्राम का निश्चय कर, समयोचित बातों को जानने के लिये सञ्जय से कहा।

बासठवाँ अध्याय

भीष्म और कर्ण का झगड़ा

वैशम्पायन कहने लगे—देखो राजन्! इधर तो धृतराष्ट्र अर्जुन का हाल चाल पूछ रहे थे, उधर कर्ण ने इस बात का कुछ भी विचार न कर

दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये अपनी शेखी बघारना आरम्भ कर दी। वह बोला—हे राजन्! पहिले मैंने ब्राह्मणकुमार बन कर श्रीपूज्य गुरुदेव परशुराम जी से विद्या सीखी। तदनन्तर जब यह बात उन्हें मालूम हुई कि, यह ब्राह्मण नहीं, बल्कि सूतपुत्र है, तब उन्हें क्रोध आया और यह शाप दिया कि जा तेरा ब्रह्मास्त्र अन्त समय में तुझे धोखा दे जावेगा। यदि वे चाहते तो मुझे अपने शाप से भस्म तक कर सकते थे, क्योंकि उन महातपस्वी गुरुदेव का क्रोधाग्नि तो सकल विश्व को भस्म कर सकता है; किन्तु उन्होंने मुझ पर कृपा की और मेरे पास अब तक ब्रह्मास्त्र विद्यमान है। अतएव मैं अर्जुन का संहार करने के लिये पर्याप्त हूँ। यह काम आप मुझ पर ही छोड़ दीजिये। मैं अपने गुरुदेव महर्षि परशुराम जी की कृपा से पाञ्चाल, करूषक, मत्स्य आदि सभी महारथियों का पल भर में संहार कर सकता हूँ। भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य आदि अपने प्रधान योद्धाओं को आप अपने पास ही रखिये। केवल मैं ही उस शूरताभिमानी अर्जुन को मार डालूँगा। इसके लिये आप कुछ भी चिन्ता न करें। यह सब काम मेरे भरोसे पर छोड़ दीजिये।

कर्ण की इन बातों को सुन कर, भीष्म पितामह बहुत हँसे और बोले—अरे कर्ण! तेरे सिर पर काल नाच रहा है इस कारण तेरी बुद्धि भी विपरीत हो गयी है। अरे पागल! यह तू क्या बक रहा है? तुझे यह पता नहीं कि, प्रधान पुरुषों के नष्ट होते ही कौरवों का भी नाश हो जावेगा। श्रीकृष्ण जी की सहायता से खाण्डव वन का दहन करते समय जो पराक्रम अर्जुन ने दिखलाया है, उसे देख कर ही तुम लोगों को अपने आप सँभलना चाहिये। तुझे देवराज इन्द्र की दी हुई शक्ति पर बड़ा गर्व है; किन्तु याद रखना, तब तेरी वे सब शक्तियाँ धरी ही रह जावेंगी; जब भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से शत्रुओं का संहार करने लगेंगे। यह तेरा सर्वमुखी बाण, जिसकी तू रोज़ पूजा किया करता है, वीर अर्जुन के बाणों से चकनाचूर हो जावेगा और साथ में तेरा भी कचूमर निकल

जावेगा। संग्राम में भौमासुर और बाणासुर का संहार करने वाले भगवान्, श्रीकृष्ण तुम सरीखे अनन्त योद्धाओं को बात की बात में मार डालेंगे।

भीष्म की इस स्पष्टवादिता को सुन कर, कर्ण ने कहा—पितामह भीष्म जी ने वृष्णिकुल-भूषण श्रीकृष्ण की जो प्रशंसा की वह सब ठीक है। वास्तव में वे महापुरुष ऐसे ही हैं; किन्तु दादा जी! आपने जो मेरे लिये कठोर वचन कहे हैं, अब ज़रा उनका भी फल सुन लीजिये। यह लीजिये मैं अपने सब अस्त्र शस्त्र धरे देता हूँ। मेरी और आपकी भेंट अब आज से संग्रामभूमि में कभी नहीं होगी। केवल सभा में आपके दर्शन कर जाया करूँगा। मेरे बलवीर्य और पराक्रम का परिचय तो अब आपके मरने के बाद ही लोगों को मिलेगा। मेरे बिना अन्य कोई आपकी रक्षा कर नहीं सकेगा। अतएव आप असहाय हो कर संग्रामभूमि में बेमौत मरिये। बस मेरी निन्दा करने का केवल यही फल है। यह कह कर कर्ण राजसभा से निकल गया। तब भीष्म ने प्रसन्नता से कौरवों की ओर देख कर, दुर्योधन से कहा—राजन्! कर्ण बड़ा दृढ़प्रतिज्ञ है। उसने पहिले अपने देश तथा कलिङ्गदेश के राजाओं से यह प्रतिज्ञा की है कि, मैं सदा संग्राम में दस हज़ार योद्धाओं को मारूँगा। अब देखें यह कैसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है। भीमसेन अपनी सेना की व्यूह रचनाओं से रक्षा करता हुआ शत्रुओं की काट छाँट करेगा। इस अधम कर्ण ने परशुराम जी के पास जा कर और ब्राह्मणकुमार बन, जब विद्या सीखी, तभी इसका सब तप नष्ट हो गया था।

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! जब भीष्म जी के उपहास करने पर कर्ण शस्त्रों को छोड़ कर, सभा से निकल गया और दुर्योधन ने जब भीष्म जी के मुख से कर्ण के लिये अनेक निन्द्य वचन सुने, तब वह मूर्ख भीष्म जी से यह कहने लगा।

तिरसठवाँ अध्याय

दुर्योधन का अहङ्कार और विदुर की उक्ति

दुर्योधन बोला—दादा जी ! मुझे आपकी बातें सुन कर बड़ा खेद होता है। संसार में सब ही मनुष्य समान हैं। उनका रूप रंग जन्म मरण आदि सब एक से हैं। फिर भी आप, पाण्डवों का ही विजय होगा, यह बात कैसे कह रहे हैं? हमारे और पाण्डवों के बल, वीर्य, विद्या, पराक्रम, अवस्था, जाति आदि सब एक हैं। तब आप यह बतलाइये कि, हमारा विजय क्यों न होगा और पाण्डवों का क्यों होगा? हे पितामह ! मैंने जो संग्राम करने की ठानी है, सो कुछ आपके भरोसे पर या गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि के भरोसे पर नहीं ठानी है। मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन यह तीन ही मिल कर शत्रुओं का मटियामेट कर देंगे। जब हमारे योद्धा शत्रुओं को पकड़ कर उनके हाथी घोड़े रथ आदि सब छीन लेंगे, तब अनेक बड़े बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया जावेगा। ब्राह्मण देवताओं को अनेक दक्षिणायें दी जावेंगी। महाराज ! यह सब मैं पहिले ही सोच समझ चुका हूँ।

यह सुन कर महात्मा विदुर से फिर चुप न रहा गया, वे बोले—संसार में किसी सिद्धान्त को निश्चय करने वाले वृद्ध महानुभावों तथा विशेषतः ब्राह्मणों के लिये दम अत्यन्त कल्याणकारी पदार्थ है। जो मनुष्य संयमी है, उसके सभी धार्मिक कार्य दान, तप, ब्रह्मचर्य, वेदपाठ, क्षमा आदि मोक्षमार्ग में सहायक बन जाते हैं। संयमी तेजस्वी होता है तथा वह अनेक अनर्थों और पापों से सदा बचता रहता है। उस पवित्रात्मा को शीघ्र ही परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। जैसे जीवजन्तु माँसभक्षक शिकारियों से डरा करते हैं, वैसे ही चञ्चल चित्त वाले मनुष्य से जनता भयभीत रहा करती है। विधाता ने ऐसे ही निर्दय क्रूर मनुष्यों का शासन करने को क्षत्रिय जाति की रचना की है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चारों ही आश्रमों के धर्मों में मनःसंयम को मुख्य स्थान दिया गया

है। इसके बाद मनःसंयम से जो अन्य गुणों की उत्पत्ति होती है, उन्हें भी सुनिये। क्षमाशक्ति होते हुए दूसरों के अपराधों को सहन करना, धैर्य अर्थात् विषय वासनाओं से चल विचल न होना; अहिंसा—मन, वाणी और कर्म से किसी को दुःख न देना; समता—मित्र, शत्रु सब से समान भाव रखना; सत्य—जो मन में हो वही वाणी से कहना; सरलता—इन्द्रियों पर विजय; कोमलता—बुरे कामों के करने में लजाना; उदारता—शान्ति और सन्तोष रखना तथा शास्त्रों और गुरुजनों में श्रद्धा भक्ति रखना—ये सब गुण जिसमें हों, वही मनुष्य दान्त कहलाता है। काम, क्रोध, लोभ, गर्व, निन्दा, प्रलाप, मान, ईर्ष्या, शोक यह अवगुण दान्त मनुष्य में कभी नहीं रह सकते। कुटिलता तथा शठता से शून्य हो कर पवित्र आचरणों से युक्त मनुष्य दान्त कहलाता है। जो स्त्री-लोलुप नहीं है, जो आशाओं के क़िले नहीं बाँधते तथा विषय-वासनाओं से दूर रह कर समुद्र की तरह गम्भीर हैं, वे ही दान्त मनुष्य हैं। सदाचारी, सुशील, प्रसन्नमना, आत्मज्ञानी पुरुषों को लोक में सम्मान और परलोक में देवयान प्राप्त होता है। जो स्वयं निर्भय हो कर दूसरों पर अपने प्रभाव से आतङ्क जमा सकता हो वही मनुष्य बुद्धिमान् तथा मानव जाति का शिरोमणि है। जो संसार का हितैषी, मित्रता के गुणों से युक्त हो कर प्राणियों का हित साधन करता है, उस मनुष्य से कोई भी असन्तुष्ट नहीं रहता। गम्भीर तथा सत्यज्ञान से तृप्त रहने वाले को परम शान्ति प्राप्त होती है। जो अपने प्राचीन सद्व्य-वहार और सदाचार आदि सत्कर्मों का आचरण करते हुए प्रारब्धानुकूल प्राप्त हुए पदार्थों का उपभोग कर आनन्द मनाते हैं, वे मनुष्य ही शान्त और दान्त कहलाते हैं। आत्मज्ञान से सन्तुष्ट हो कर, निष्काम कर्म करने वाला जितेन्द्रिय मनुष्य ही ब्रह्म सायुज्य मोक्ष का अधिकारी होता है। विज्ञानी मुनि की गतिविधि समझना वैसा ही कठिन है, जैसा कि आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति का विज्ञान जानना दुर्लभ है। जिन परिवारों में गेहिक ममता का बाहुल्य न हो कर, मुक्ति

कामना की बहुलता है, उनके लिये तेजस्वी नित्य लोकों में स्थान मिलता है।

चौंसठवाँ अध्याय

ऐक्य की महिमा

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! सुनो, मुझे एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। एक दिन एक शिकारी ने पक्षियों को पकड़ने के लिये जंगल में जाल बिछा रखा था। कुछ देर बाद उस जाल में दो पक्षी आ कर फँस गये; किन्तु वे दोनों पक्षी बड़े चतुर थे। इन्होंने आपस में प्रेम-भाव और एकता कर, शक्ति लगाना आरम्भ कर दिया और वे जाल को ले उड़े। उधर शिकारी ने देखा कि, यह तो बड़ा अनर्थ हुआ जाता है। मेरी जीविका का मुख्य साधन यह जाल है, उसीको ले कर वे दोनों पक्षी उड़े चले जा रहे हैं। वह भी उनके पीछे पीछे भूमि पर दौड़ने लगा। कोई ऋषि यह सब देख रहे थे। जब उन्होंने देखा कि, शिकारी दौड़ रहा है, तब उन्होंने उससे कहा—रे व्याध! मुझे तेरे इस व्यापार को देख कर, बड़ा आश्चर्य होता है। भला, यह पक्षी तो आकाश में उड़े चले जा रहे हैं। तू भूमि पर क्यों दौड़ रहा है?

शिकारी ने जवाब दिया—हे मुने! सुनो, यह पक्षी इस समय मेरे जाल को लिये चले जा रहे हैं; किन्तु जब कभी फिर भूमि पर आवेंगे; तब तो मेरे वश में आ जावेंगे। इतने ही में मौत के मुँह में जाने वाले वे दोनों पक्षी आपस में लड़ने लगे और लड़ते लड़ते भूमि पर आ गिरे। मृत्यु के पाश में बँधे हुए दोनों पक्षियों को शिकारी ने झट पकड़ लिया। इसी प्रकार धन के पीछे लड़ाई झगड़ा करने वाले कुटुम्बियों को भी शत्रु अपने वश में कर लेते हैं। साथ भोजन करना, आपस में प्रेमालाप करना, दुःख

सुख की बातें कहना सुनना, आपस में मिलते जुलते रहना, बस ये ही आपस-दारी की बातें हैं। जो सदाशय अपने पूज्य वृद्धों की सम्मति के अनुसार काम किया करते हैं; उनका शत्रु कुछ भी नहीं कर सकते। वे तो जिस वन में केसरी सिंह हो, उस वन की तरह सदा सुरक्षित रहते हैं। हे राजन्! धनी हो कर भी निर्धनों की तरह जो दिन रात धन, धन, पुकारा करते हैं और तृष्णा को बढ़ाते रहते हैं, वे लोग निश्चय अपने शत्रुओं के लिये उस धनराशि को एकत्रित करते हैं। देखो, राजन्! जैसे लकड़ियाँ इकट्ठी रहने पर तो जलती रहती हैं; किन्तु अलहदा रहने पर धुआँ देने लगती हैं, वैसे ही बिरादरी के लोग भी एकत्र रहते हुए तो शोभायमान रहते हैं और अलग हो जाने पर भीतर ही भीतर आग की तरह सुलगा करते हैं। हाँ, इस समय मुझे एक बात और याद आ गयी और वह यह है कि, एक दिन हम सब लोग मंत्र, तंत्र, रसायन आदि का साधन करने के लिये रसायनज्ञ मंत्रशास्त्री ब्राह्मणों के साथ उत्तर दिशा में गन्धमादन पर्वत पर गये। वह पर्वत उस समय भाँति भाँति की रंग बिरंगी लताओं के घिर जाने के कारण मनोरम कुञ्ज सा बन गया था। उस स्थान पर अनेक औषधियाँ चमक रही थीं। सिद्ध गन्धर्वों के विश्रामभवन भी बड़े सुन्दर मालूम होते थे। कुछ देर तक इधर उधर घूमने के बाद हम लोगों ने देखा कि, पर्वत के उच्च एवं अगम्य शिलाखण्ड पर, पूर्णकुम्भ के समान स्वर्णमाक्षिक सुनहली झिलमिलाहट कर रहा है और उसके चारों ओर भयङ्कर विषधर फण फैलाये हुए, उसकी रक्षा कर रहे हैं। मंत्रशास्त्री रसायनज्ञ ब्राह्मणों से जब पूछा कि, यह क्या चीज़ है, तब उन्होंने कहा कि यह पदार्थ सब से अधिक तो कुबेर को प्यारा है और इसमें गुण यह है कि, इसके सेवन से अन्धे को नेत्र, बुड्ढे को जवानी और मरणधर्मा मनुष्य को अमरजीवन प्राप्त होता है।

यह सुन कर, उन भीलों ने कहा—अच्छा, यह ऐसा अमूल्य पदार्थ है, तब तो हम लोग इसे अवश्य लेंगे। यह कह कर वे लोग उस भयङ्कर स्थान पर पहुँचे और विषम विषधरों की फूत्कार से भस्म हो गये। इसी

प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन भी समस्त भूमण्डल का शासक बनना तो चाहता है; किन्तु इस महालोभ का फल क्या होगा; यह बात अर्थात् अपने सर्वनाश को नहीं समझता। दुर्योधन अर्जुन से संग्राम करने की बात कहता तो अवश्य है; किन्तु मैं अर्जुन के बराबर उसमें बलवीर्य का कुछ भी सामान नहीं पाता। महाराज! जिस अर्जुन ने एकाकी ही समस्त भूमण्डल को जीत लिया और विराट् नगर के पास गौओं को छीनते समय भीष्म द्रोण आदि बड़े बड़े महारथियों को परास्त कर दिया और वे सब लोग इधर उधर भाग गये तो बतलाइये भला उस अर्जुन का सामना आपके यहाँ कौन योद्धा कर सकता है? जैसे थोड़ा सा भी अग्नि वायु का आश्रय ले कर संसार को भस्म कर सकता है, वैसे ही राजा द्रुपद, मत्स्यराज आदि महारथियों की सहायता पा कर, वीर अर्जुन भी आपको आपकी सेना समेत तहस नहस कर सकता है। इस लिये हे धृतराष्ट्र! तुम धर्मराज युधिष्ठिर को बुलाओ और उन्हें अपनी गोद में बिठाल कर, उनका आधा राज्य उन्हें लौटा दो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है, अन्यथा तुम पाण्डवों से संग्राम कर जीवित नहीं रह सकते। इस सन्दिग्ध विजय से तो पाण्डवों और कौरवों में सन्धि ही हो जावे तो अच्छा है।

पैंसठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का पुनः प्रयत्न

राजा धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर की बातें बड़े ध्यान से सुनीं और सुनने के बाद दुर्योधन से कहा—बेटा! सुन, मेरी बात ध्यान से सुन। तू जिस मार्ग पर चल रहा है, वह अच्छा नहीं है। केवल तूने इसे भला मान ही रखा है। भूले भटके मुसाफिर जैसे अपने ध्येय स्थान तक कठिनता से पहुँचते हैं, वैसे ही तू भी इस मार्ग पर चल कर महान् शोक उठावेगा। तभी तो संसार का पालन पोषण करने वाले पञ्चमहाभूतों के

समान दिव्य तेज़सम्पन्न पाँचों पाण्डवों के तेज को नष्ट करना चाहता है। याद रख, इस जीवन में तेरी यह सामर्थ्य नहीं है कि, जो तू साक्षात् धर्म स्वरूप कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को जीत सके। संसार में जिसके समान कोई बली नहीं और जो रण में काल के समान विकराल रूप धारण कर लेता है, उस भीमसेन को जीतने का साहस करना वैसा ही उपहासास्पद है, जैसा कि, वृक्षों का आँधी के सामने तर्जन करना। जैसे पर्वतों में मेरु पर्वत श्रेष्ठ है, वैसे ही वीरों में शिरोमणि गाण्डीवधारी अर्जुन भी योद्धाओं में अनुपमेय है। भला उससे कौन लड़ सकेगा? जैसे देवराज इन्द्र वज्रप्रहार से पर्वतों को तोड़ फोड़ डालते हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी आज बीन बीन कौरवों को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डालेगा। पाण्डवों की सहायता करने वाला वीर सात्यकि निश्चय तेरी सम्पूर्ण सेना का संहार कर डालेगा। और बेटा! यह तो सब जैसे हैं वैसे हैं ही, किन्तु त्रैलोक्यविलक्षण पद्म-लोचन भगवान् श्रीकृष्ण जी से तेरी सेना में लड़ने वाला कौन बुद्धिमान् है? श्रीकृष्ण अर्जुन को प्राणों से भी प्रिय समझते हैं। उन्हें अपने भाई बन्धु स्त्री पुत्र आदि से भी इतना स्नेह नहीं है, जितना कि अर्जुन से है। देखो बेटा! जहाँ अर्जुन है, वहाँ श्रीकृष्ण अवश्य होंगे और जिस सेना में श्रीकृष्ण होंगे, उस सेना का भार भूमि भी नहीं सहन कर सकती। इस लिये बेटा! अपने हितैषी बन्धु बान्धवों और पूज्य पितामह भीष्म की सम्मति से काम करो और उनका कहना मानो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण, आदि महारथियों का भी तुम्हें उतना ही सम्मान करना चाहिये, जितना कि तुम मेरा करते हो। यह सब लोग कौरवों के परम स्नेही और सच्चे हितैषी हैं। देखो, पाण्डवों का महाविजय तो तभी हो चुका है, जब कि, विराट् नगर में उन्होंने कौरवों को इधर उधर भगा दिया और गायों को अपने स्वाधीन कर लिया। जब अकेला अर्जुन ही महापराक्रमी और शत्रुओं का संहार करने में अद्वितीय है, तो भला जब सब पाण्डव एकत्रित हो कर चढ़ाई करेंगे, तब न मालूम क्या हाल

होगा ? इस कारण ऐसे बलवान बान्धवों से बिगाड़ मत करो। इन्हें अपना सहोदर समझ कर प्रेम का परिचय दो और उन्हें उनका आधा राज्य लौटा दो।

छियासठवाँ अध्याय

सञ्जय के मुख से अर्जुन का सँदेश

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार दुर्योधन को समझा बुझा कर धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूँछा—हे सञ्जय! अब और जो कुछ अर्जुन और श्रीकृष्ण ने कहा हो, वह सब पूरा पूरा मुझे सुना जाओ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! भगवान् वासुदेव की बातें सुन कर उनके सम्मुख ही वीर अर्जुन ने कहा—देखो सञ्जय! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, राजा बाल्हीक, अश्वत्थामा, सोमदत्त, शकुनि, दुःशासन शल, पुरुमित्र, विविंशति, विकर्ण, जयत्सेन, जरासन्ध, कौरव आदि जितने भी धृतराष्ट्र और दुर्योधन की सहायता के लिये बुलाये गये हैं या स्वयं आये हैं, वे सब पाण्डवों के क्रोधाग्नि के अपर्याप्त शाकल्य के समान होंगे। सञ्जय! उन सब राजाओं से भी मेरी ओर से प्रणामपूर्वक कुशल प्रश्न करना तथा जब इन बातों को दुर्योधन से कहो, तब इन सब राजाओं के सामने ही कहना। हे सञ्जय! महापापी, नीच और मत्सरी दुर्योधन के मन्त्रियों को मेरी यह सब बातें सुना देना। इस प्रकार क्रोध से लाल-ताता हो कर, अर्जुन फिर मुझे पुकार कर कहने लगा। हे सञ्जय! महात्मा श्रीकृष्ण जी की तथा मेरी यह सब बातें वहाँ आये हुए सब राजाओं से कह देना। देखो, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। बाणों के संघट्ट से उत्पन्न अग्नि के द्वारा रथों की घर घर ध्वनि ही, जिसमें वेदपाठ है ऐसे इस महासंग्राम रूपी यज्ञ में कहीं धनुषरूपी स्रुवों से होम न करना पड़े। बस हम भी यही चाहते हैं। इस लिये आप लोगों को इस महारणयज्ञ में बाधा देनी चाहिये। यदि आप

लोग धर्मराज का आधा राज्य नहीं लौटा देवेंगे, तो याद रखिये, आपके पैदलों, सवारों, हाथियों तथा अन्य सैनिकों को निश्चय ही यमपुरी पहुँचा दूँगा। यह सब बातें सुन कर, मैंने उन दोनों महापुरुषों को प्रणाम किया और आपसे उनका संदेशा कहने के लिये यहाँ चला आया।

सड़सठवाँ अध्याय

एकान्त में धृतराष्ट्र और सञ्जय की बातचीत

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! जब राजा दुर्योधन ने महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन की बात को यों ही उड़ा दिया और उसकी कुछ भी प्रशंसा न कर, उपेक्षा कर दी, तब अन्य राजा लोग, जो कि सभा में बैठे थे, चुपचाप उठ कर चल दिये। जब सब राजा लोग अपने अपने शिविर को चले गये, तब पुत्रवत्सल राजा धृतराष्ट्र ने एकान्त में सञ्जय से पाण्डवों का निश्चय जानने के लिये कहा कि, हे सञ्जय! तुम पाण्डवों के और हमारे दोनों ही के बलाबल को जानते हो। इस लिये यह बतलाओ कि, हमारे पक्ष में कमी क्या है और पाण्डवों में विशेषता क्या है? अपनी सेना और पाण्डवों की सेना की ओर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करो और यह बतलाओ कि, संग्राम में किस तरफ के योद्धा अधिक मारे जावेंगे?

सञ्जय ने उत्तर दिया—हे राजन्! क्षमा कीजिये, मैं आपसे एकान्त में कोई भी बात कहना नहीं चाहता। इस कारण आप अपने पिता व्यास जी तथा महारानी गान्धारी को यहाँ बुला लीजिये। क्योंकि यह दोनों ही महानुभाव चतुर धर्मज्ञ और परिणामदर्शी हैं। मेरी उन बातों के सुनने से जो कि, पाण्डवों ने मुझसे कहीं हैं, यदि कहीं आपको ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, तो उस ईर्ष्या को ये दोनों बुद्धिमान्, मध्यस्थ बन कर, दूर कर देंगे। बस, इन्हीं दो व्यक्तियों के सम्मुख श्रीकृष्ण और अर्जुन का निश्चयात्मक विचार मैं प्रगट करूँगा।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! सञ्जय की इस बात को सुन कर, राजा धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर के द्वारा व्यास जी तथा महारानी गान्धारी को बुला लिया। तब व्यास जी ने सञ्जय और धृतराष्ट्र दोनों की बातों को सुन कर कहा। सञ्जय! अभी धृतराष्ट्र ने मुझसे कहा है कि, सञ्जय अर्जुन और श्रीकृष्ण की सारी बातें जान कर आया है। इसलिये अब वे सब कह डालो। क्योंकि धृतराष्ट्र उन्हें सुनना चाहते हैं।

अड़सठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का विभव

सञ्जय ने कहा—राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनों ही बड़े बाँके वीर हैं। यह परम प्रतिष्ठित साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। इन दोनों ने अपनी इच्छा ही से जन्म लिया है। हे राजन्! भगवान् वासुदेव का सुदर्शन चक्र पाँच कोरिया भर लंबा चौड़ा है। वे उसे अपनी इच्छा के अनुसार चला सकते हैं। उसका प्रभाव वर्णनातीत है। हे राजन्! पाण्डवों का प्यारा और तेजःपुञ्ज से चमकने वाला वह सुदर्शन चक्र कौरवों का अवश्य संहार कर डालेगा। महाबली श्रीकृष्णचन्द्र जी ने शम्बर, नरक, शिशुपाल आदि दैत्यों को तो बात की बात में खेलते खिलाते मार डाला था। परमैश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जी अपने केवल सङ्कल्प ही से पृथ्वी, आकाश, पाताल आदि सब को अपने स्वाधीन कर सकते हैं। हे राजन्! तुम जो पाण्डवों का बलाबल जानने की इच्छा प्रकट कर रहे हो, उसके लिये तो मैं संक्षेप ही में तुम्हें बतलाये देता हूँ, सुनो, सारा संसार एक ओर और श्रीकृष्ण जी एक ओर। वे चाहें तो क्षण भर ही में अपनी मानसिक शक्ति के द्वारा सब जगत को भस्म कर सकते हैं; किन्तु संसार उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। जहाँ सत्य, धर्म, लज्जा और

सरलता होती है, वहाँ ही भगवान् वासुदेव का प्रेम से निवास होता है और जहाँ भगवान् मौजूद हैं, वहीं विजय प्राप्त होता है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण घटघट-व्यापी और अन्तर्यामी हैं। वे ही सचराचर जगत से क्रीड़ा करते हुए की तरह चेष्टाएँ कर रहे हैं। भगवान् वासुदेव ही सब कुछ करने धरने वाले हैं। उनकी माया बड़ी अगम्य है। पाण्डव तो केवल निमित्तमात्र हैं। तुम्हारे मूर्ख पुत्रों का संहार श्रीकृष्ण के थोड़े से सङ्केतमात्र ही से सहज में हो जावेगा। श्रीकृष्णदेव ही की प्रबल चेतना शक्ति के द्वारा कालचक्र, जगत्चक्र और युगचक्र चल रहा है। सच जानो, केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही स्थावर जङ्गम सचराचर जगत् के नियामक और अधिपति हैं। वे सब जगत् के नियामक होते हुए भी कृषिकारों की भाँति अथवा संहारकारी काल के समान कर्म किया करते हैं और लोक विलक्षण अपनी महामाया द्वारा संसार को मोहित कर लेते हैं; किन्तु जो मनुष्य भगवान् के शरण में पहुँच जाते हैं, वे मोहित नहीं होते।

उनहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का प्रभाव

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! तू यह कहता है कि, श्रीकृष्ण सब संसार के प्रभु हैं। यह बात तुझे कैसे मालूम हुई और मैं यह बात क्यों नहीं जानता?

सञ्जय ने कहा—महाराज! सुनो, आपके भीतर विद्या नहीं है और मेरी विद्या कभी क्षीण नहीं होती। ब्रह्मज्ञान से शून्य मनुष्यों को श्रीकृष्ण का वास्तविक रूप सदा अज्ञेय रहता है। हे राजन्! मैं ब्रह्मविद्या के प्रभाव से स्थूल, सूक्ष्म और सर्वत्र व्यापक पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति और प्रलय के स्थान आदि के कारण भगवान् श्रीकृष्ण जी को भली भाँति पहचानता हूँ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! श्रीवासुदेव में तेरी यह कौन सी शक्ति है कि, जिसके कारण तू जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के साक्षी भगवान् को जानता है ?

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! आपने बड़ा अच्छा प्रश्न किया। सुनिये। मैं मोहजाल में फँसने वाली माया से सदा दूर रहता हूँ और कोई भी व्यर्थ कार्य न कर जो कुछ भी करता हूँ वह भगवान् के समर्पण करता हूँ। मैं काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बिल्कुल शून्य हूँ। इस कारण मेरा मन निर्मल हो गया है। मैं निरन्तर ध्यानयोग से ब्रह्मतत्व का विचार करता हूँ। इसीसे मैं भगवान् को पहचानता और उनमें दृढ़ भक्ति रखता हूँ।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—हे पुत्र ! भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पास जा और उनसे क्षमा माँग। सञ्जय बड़ा सत्यवादी और भगवद्भक्त है। वह हमारा कल्याण ही चाहता है। इस लिये तू श्रीकृष्ण के शरण में जा कर, कौरवों की रक्षा कर।

दुर्योधन बोला सुनिये पिता जी ! श्रीकृष्ण भले ही आज सब संसार का नाश कर डालें; किन्तु मैं उनके शरण में कभी नहीं जा सकता। क्योंकि वे अर्जुन के मित्र हैं। उन्होंने शपथ खा कर अर्जुन से मित्रता की है।

धृतराष्ट्र ने सम्मुख बैठी हुई महारानी गान्धारी से कहा—देखो, यह तुम्हारा मूर्ख पुत्र हम लोगों की बात न मान कर अब गहरी आपत्ति में फँसने के लिये जा रहा है। इसे ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आदि दोषों ने घेर लिया है। अतएव अब इसका उद्धार होना कठिन है।

गान्धारी बोली—बेटा दुर्योधन ! देखो, गुरुजनों की आज्ञा का उल्लङ्घन मत करो। यह बड़ा भारी दोष है। तुम ऐश्वर्य की लालसा से जो यह भयङ्कर संग्राम ठानना चाहते हो, सो याद रखो, निश्चय यह महासंग्राम कौरवों का सर्वनाश कर, हम लोगों को इस वृद्धावस्था

में पुत्रशोक का असह्य क्लेश सहन करावेगा। बेटा ! जब महाबली भीम अपनी विशाल गदा से तेरे शरीर को अस्त व्यस्त कर देगा, तब तुझे हम लोगों की बात याद आवेगी।

यह सब बातें सुन कर व्यास जी ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! सुनो। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे स्नेह करते हैं। कुछ विशेष घबराने की बात नहीं है। दूसरे तुम्हारा दूत सञ्जय बड़ा योग्य और धर्मात्मा है। अवश्य, वह तुम्हें सीधे मार्ग से ले जावेगा। क्योंकि यह मायातीत अन्तर्यामी पुराण पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को जानता है। इसके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनो। यही तुम्हें इस भयङ्कर आपत्ति से छुड़ा सकता है। देखो, वे मनुष्य कभी स्वतन्त्रता का आनन्द और शान्तिलाभ नहीं कर सकते, जो असन्तोषी और चञ्चल प्रकृति के हैं तथा जिन्हें क्षण में प्रसन्नता और क्षण में उदासीनता का अभिनय करना पड़ता है। अन्धों के साथ चलने वाले अन्धों की तरह अनेक कामनाओं में फँसे रहने वाले, मनुष्य भी काल के गाल में चले जाते हैं। बस केवल यही ज्ञानमार्ग है। इसके द्वारा ही धीर मनुष्य परमपद को प्राप्त कर सकता है। विद्वान् लोग उस पर चलते और परमात्मा का दर्शन करते हैं।

यह सुन कर, धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—सञ्जय ! बस, अब तुम, मुझे उस मार्ग का उपदेश करो, जिसके द्वारा मैं भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँच कर मोक्ष प्राप्त करूँ।

सञ्जय बोला—राजन् ! सुनो, विषयी और इन्द्रियों के दास तथा चञ्चल-प्रकृति के मनुष्य भगवान् के दर्शन नहीं कर सकते, जिन मनुष्यों का मन एकाग्र नहीं, इन्द्रियाँ स्वाधीन नहीं, वे चाहे कितने ही यज्ञ, व्रत, तप, धर्मानुष्ठान आदि क्यों न करें; किन्तु वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। प्रमादरहित हो कर और इन्द्रियों को अपने वश में कर, जो विषय-वासनाओं को त्याग कर योगाभ्यास करता है, उसीका उद्धार होता है। क्योंकि ऐसा करने से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। राजन् ! अपनी बुद्धि को बाह्य और आन्तरिक

विषयों से रोक कर, तत्वविचार में लगाओ और पूर्ण जितेन्द्रिय बनो। मन और इन्द्रियों को स्वाधीन रखना ही ज्ञानप्राप्ति का साधन है। यही सच्चा मार्ग है। इसी मार्ग से सब महात्मा चलते चले आये हैं। देखिये, अजितेन्द्रिय अज्ञानी मनुष्य कभी भगवान् का दर्शन नहीं कर सकते। जितेन्द्रिय मनुष्य शास्त्रीय विधियों से अपनी चित्त वृत्तियों का निरोध कर, आत्मस्वरूप को पहिचानते हैं।

सत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के नाम की महिमा

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मैं जिज्ञासु हूँ। तुम मुझे पद्मलोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की और भी कथाएँ, सुनाओ; जिससे मैं उनके स्वरूप से परिचित हो जाऊँ।

सञ्जय बोला—हे राजन्! भगवान् तो अप्रमेय हैं। उनके चरितों का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। हाँ, जो कुछ भी मैं जान सकता हूँ, वह सब मैं आपको सुनाये देता हूँ। सुनिये। देखिये, पहिले मैं भगवान् के नामों का निर्वचन करता हूँ। सचराचर संसार को अपनी माया के द्वारा आवृत करने और तेजोमय होने के कारण भगवान् को वासुदेव कहा जाता है। वे सर्वव्यापक हैं, इस लिये उनका नाम विष्णु है। निरन्तर मौन-योग साधने और ध्यान करने के कारण, उन्हें माधव तथा सब तत्वों और मधु नामक दैत्य का संहार करने वाले होने के कारण, वे मधुसूधन कहलाते हैं। समस्त विश्वप्रपञ्च को अपने में लय कर लेने और मोक्षदाता होने के कारण श्रीविष्णु भगवान् को कृष्ण कहा जाता है। सदा निर्मल हृदय-कमल में निवास करने तथा नित्य निरञ्जन और अविनाशी होने के कारण उनका नाम पुण्डरीकाक्ष है। शत्रुओं तथा अधर्मियों का वे संहार कर

डालते हैं इस कारण उन्हें जनार्दन कहते हैं। सदा सत्व में रहने तथा सत्व (सतोगुण) से कभी भ्रष्ट न होने के कारण वे सात्वत और वैदिक ज्ञानगम्य तथा धर्मज्ञान कराने वाले होने से आर्षभ और वृषभेक्षण कहे जाते हैं। वे जन्म-मरण-रहित हैं। इस लिये अज तथा इन्द्रियों के प्रकाशक और दुष्टों का दमन करने वाले होने से दामोदर कहलाते हैं। श्रीकृष्ण हर्ष, सुख एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। इस कारण हृषीकेश तथा अपनी भुजाओं से आकाश और पाताल को धारण करने के कारण महाबाहु कहलाते हैं। जल में निवास करने के कारण नारायण और साँसारिक धर्मकर्मों से निर्लेप होने से अधोक्षज कहलाते हैं। वे समस्त संसार की उत्पत्ति और पालन करने वाले हैं। इस लिये भगवान को पुरुषोत्तम कहा गया है। सदसत् सृष्टि के कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता होने तथा सर्वज्ञ होने से वे सर्वनाम से पुकारे जाते हैं। भगवान्, वासुदेव सत्य के आधार आधेय दोनों ही हैं। इस लिये उनका नाम सत्य एवं व्यापक होने से विष्णु, सर्वविजयी होने के कारण जिष्णु तथा गद्य-पद्य-मय शब्द रचना को जानने वाले होने से गोविन्द है। वे ही इस मिथ्या संसार को अपनी मोहिनी माया से स्फूर्त्ति प्रदान कर, सत्य सा बना देते हैं और संसारी जनों को मोहित करते रहते हैं। हे राजन्! ऐसे धर्मज्ञ, परम कारुणिक महाबाहु भगवान् केवल कौरवों के इस भयङ्कर सर्वनाश को रोकने के लिये आपके यहाँ आने वाले हैं।

इकहत्तरवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण के शरण होना

राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सञ्जय! मैं तो उन नेत्रों वाले मनुष्यों को सौभाग्यशाली समझता हूँ, जो दिशाओं और विदिशाओं को अपने महातेजस्वी दिव्य शरीर के द्वारा प्रकाशित करने वाले श्रीकृष्ण जी का दर्शन

करते हैं। इन कौरवों का बड़ा ही सौभाग्य है, जो मङ्गलमूल कल्याणकारी शत्रुओं का संहार करने वाले यदुवंशावतंस महापराक्रमी पुरुषोत्तम श्री-भगवान् कृष्ण जी के दर्शन करेंगे और उनके सदुपदेश को अपने कानों से सुनेंगे, वे महापुरुष यहाँ आ कर अपनी अमृत-वर्षिणी वाणी से मेरे इन पुत्रों को मोहित करेंगे। मैं महाविद्वान्, सनातन ऋषि, आत्म-विज्ञानामृत-वर्षी, जगन्निवास, कारणों के भी कारण, अजन्मा, अनादि, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, पुराणपुरुष श्रीनारायण के शरण होता हूँ। देवासुर, यक्ष, राक्षस, नर, नाग, किन्नर आदि के उत्पादक, राजाओं में श्रेष्ठ और उपेन्द्र श्रीकृष्ण भगवान् का मैं शरण लेता हूँ।

बहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिर की श्रीकृष्ण से विनय

वैशम्पायन ने कहा—जब सञ्जय चला गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण जी से कहने लगे—हे माधव! मित्रों की मित्रता का परिचय प्राप्त करने का अब यह समय है। आपत्ति काल ही में मित्रों की परीक्षा होती है। मुझे तो आपको छोड़ और कोई भी इस आपत्ति से उबारने वाला प्रतीत नहीं होता। हे वासुदेव! हम लोग केवल आपकी सहायता ही से निर्भय हो कर, मन्त्रियों सहित मदोन्मत्त दुर्योधन से अपना आधा राज्य माँगना चाहते हैं। हे प्रभो! जैसे आप सब आपत्तियों में यादवों की रक्षा करते चले आये हैं, वैसे ही हम सब पाण्डवों की भी आप रक्षा कीजिये।

यह सुन कर, श्रीकृष्ण बोले—हे धर्मराज! आप घबड़ाइये नहीं। मैं आपके सम्मुख खड़ा हूँ। जो कुछ आप कहना चाहते हों, कहिये, मैं अवश्य आपकी सहायता करूँगा।

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! आपने कौरवों का मत तो जान ही लिया। सञ्जय जो कुछ भी कह गया वह सब धृतराष्ट्र ही का मत है। क्योंकि सञ्जय धृतराष्ट्र का अन्तरङ्ग मनुष्य है। उसने जो कुछ भी कहा होगा वह सब धृतराष्ट्र के मतानुसार ही कहा होगा। धृतराष्ट्र बड़ा लालची है। वह अपने मन में भेदभाव रखता है और यह चाहता है कि, इन लोगों को राज्य भी देना न पड़े और सन्धि भी हो जावे। हे यदुवंशमणे! हम लोगों ने तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। तेरह वर्ष वनवास भोग लिया; किन्तु इस समय सब बन्धनों के टूट जाने से धृतराष्ट्र हमारा राज्य हमें नहीं देना चाहते। धृतराष्ट्र बड़े लोभी हैं। उन्हें धर्माधर्म का कुछ भी विचार नहीं है। वे अपने पुत्र के पक्षपाती हैं। वे केवल उसीका कहना मानते हैं। वे केवल ऊपर ही से हम लोगों पर प्रेम दिखलाते हैं; किन्तु उनके भीतर स्वार्थ भरा हुआ है। इससे अधिक और शोक की क्या बात हो सकती है कि, मैं वहाँ रहने वाली अपनी माता और अपने अन्य बन्धु बान्धवों का भरण पोषण नहीं कर सकता। हे जनार्दन! यद्यपि मत्स्य, पाञ्चाल, चेदि आदि देशों के अनेक राजा तथा आप मेरी रक्षा और सहायता करने वाले हैं; तथापि मैंने केवल पाँच ही ग्राम कौरवों से मांगे हैं। मेरा तो कहना यह है कि, धृतराष्ट्र मुझे केवल अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और पाँचवाँ जो वे उचित समझें वह ग्राम या नगर हमें दे दें। जिससे हम पाँचों भाई अपना निर्वाह करें और व्यर्थ कौरवों का सर्वनाश न करें; किन्तु दुरात्मा दुर्योधन भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि किसी भी वृद्ध को कुछ नहीं गिनता तथा माँगे हुए पाँच ये ग्राम भी देना नहीं चाहता। क्योंकि वह अपने लिये सब राज्य का अधिपत्ति मानता है। भला बतलाइये, इससे बढ़ कर क्या दुःख की बात हो सकती है। महाराज! कुलीन और वृद्ध होने पर भी मनुष्य लोभ में पड़ कर, बुद्धिहीन हो जाता है। निर्बुद्ध मनुष्य निर्लज्ज हो कर, धर्म की उपेक्षा करने लगता है। धर्महीन की लक्ष्मी स्वयं नष्ट हो कर, उसका भी नाश कर देती है। क्योंकि

निर्धनता ही पुरुषों का मरण है। हे गोविन्द! जैसे फल फूल हीन वृक्षों को पक्षी त्याग देते हैं, वैसे ही निर्धन मनुष्य को मित्र और बन्धु बान्धव छोड़ जाते हैं। प्रभो! बुद्धिहीन निर्धनी को तो मैं केवल मुर्दा समझता हूँ। मैं भी जब निर्धन हो जाऊँगा, तब निश्चय मेरे कुटुम्बी भी मुझे त्याग जावेंगे। एक बार शम्बरासुर ने कहा था कि, जिस मनुष्य की ऐसी दुर्दशा हो कि, आज, कल के खाने के लिये भी वह चिन्तित रहे उसकी उससे बढ़ कर और कोई कष्टदायिनी दशा नहीं हो सकती। लोकव्यवहार का साधन केवल धन ही से होता है। उसीके सहारे सब कामों की सिद्धि होती है। संसार में धनी जीवित और निर्धनी मृतक कहलाते हैं। जो अपने बलवीर्य एवं पराक्रम से शत्रुओं का धन हर लेते हैं, वे मनुष्य सचमुच शत्रुओं के धर्म, कर्म, जीवन आदि सभी का सर्वनाश कर डालते हैं। कितने ही निर्धनी, मूँड़ मुड़ा, संन्यासी हो जाते हैं, कोई रामपुर (यमालय) जाने की प्रार्थना करते और कितने ही जंगलों में मारे मारे फिरते हैं। कुछ पागल हो जाते, कुछ शत्रुओं के शरण में जा गिरते और कुछ अपने शत्रुओं की चाकरी कर निन्दित जीवन तक व्यतीत करने लगते हैं। भगवन्! ऐसे आपत्तिग्रस्त मनुष्य के लिये तो मर जाना ही श्रेष्ठ है। मनुष्यों का मरने का तो स्वभाव ही है। इसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। निर्धनी की निर्धन सन्तान को ऐसा क्लेश नहीं होता, जैसा कि एक सम्राट् को दरदर का भिखारी बनने से प्राप्त होता है। ऐश्वर्यशाली मनुष्य जब अपने पाप कर्मों से ऐश्वर्यभ्रष्ट हो जाता है, तब वह अपने को नहीं धिक्कारता; बल्कि वह देवताओं की निन्दा किया करता है। उसकी सारी की सारी शक्तियाँ उस निर्धनता के महाक्लेश को दूर करने में असमर्थ हो जाती हैं और वह सम्बन्धियों से द्वेष और सेवकों पर क्रोध करने लगता है। वह विवेकभ्रष्ट हो कर, कर्म अकर्म सभी कुछ करने लगता है। वही पापी वर्णसङ्करता फैलाता और अन्त में नरकगामी होता है। यही बस पापियों की अन्तिम दशा है। हे जनार्दन! अज्ञान की निद्रा में पड़ा रहने वाला निश्चय ही नरक जाता है। अविद्या

की नींद में सोने वाले धनी लोगों को विद्या विवेक का चौकीदार नहीं जगा सकता। विवेकी ही संसार-सागर के पार जा सकता है। विवेकी मनुष्य शास्त्रों का अध्ययन करता है, वेदवाक्यों पर श्रद्धा रखता है और धर्मात्मा बन कर दुष्कर्मों से सदा अलग रहता है। पापों से विद्वेष रखने वाला लज्जाशील मनुष्य ही ऐश्वर्यवान् होता है और जब तक ऐश्वर्यवान् रहता है; तभी तक वह मनुष्य कहलाता है। धर्म में रति रखने द्वारा शान्तचेता परिश्रमी श्रद्धालु मनुष्य की बुद्धि कभी अधर्म की ओर नहीं जाती। देखो, निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन मनुष्य, न मनुष्य ही कहला सकता है और न स्त्री ही। उसे तो धर्माचरण करने का भी अधिकार नहीं है। वह चाण्डाल के समान कर्महीन रहता है। लज्जाशील पुरुष अपनी रक्षा के साथ साथ देवताओं और पितरों की भी रक्षा करता है तथा इन्हीं सदाचरणों से वह मुक्ति प्राप्त करता है। बस पुण्यकर्मों की यही चरम सीमा है। हे मुरारे! यह सब लज्जालुता आदि की बातें तो आपने मुझमें देख ही लीं। जैसा कि मैं आज कल राज्यभ्रष्ट हो कर इधर उधर घूम रहा हूँ; किन्तु राज्य-भ्रष्ट हो जाने पर भी हम लोग राजलक्ष्मी का परित्याग नहीं कर सकते। इसके लिये तो हमारे चाहें प्राण भी चले जावें; तब भी कुछ बुरी बात न होगी। अच्छा, अब हमारा इस विषय में जो सब से पहिला निश्चय है, उसे सुनिये। हम लोग यह नहीं चाहते कि, आपस के बैर विरोध से हमारी असंख्य सेना और प्रजा का संहार हो जावे। हम तो हृदय से यह चाहते हैं कि, कौरव और पाण्डव दोनों ही मिल कर राजलक्ष्मी का सुख लूटें और यदि ऐसा न हुआ तो हम लोग कौरवों का संहार कर, उनके सम्पूर्ण राज्य को अपने अधीन कर लेंगे; किन्तु यह उदय हिंसारहित न होगा। फिर भी विवश हो कर हमें यह सब करना ही पड़ेगा। हे माधव! जिनसे अपना कोई सम्बन्ध न हो, ऐसे दुराचारियों को भी मारना अच्छा नहीं है, फिर इन लोगों की तो बात ही क्या है? अपने पूज्य सम्बन्धी तथा वन्दनीय गुरुओं का वध करना तो बड़ा भारी पातक है। फिर बतलाइये, संग्राम करने

में भलाई ही क्या है ? सचमुच क्षत्रियों का धर्म ही एक कलुषित कर्त्तव्य है। क्या करें। हम लोगों को अन्य किसी प्रकार की जीविका ही नहीं बतलायी गयी। ब्राह्मणों ने भिक्षा द्वारा अपनी आजीविका स्वीकार की, वैश्य कृषि व्यापार आदि से अपना निर्वाह कर सकते हैं, शूद्र चारों वर्णों की सेवा से अपना पालन पोषण कर सकते हैं और क्षत्रियों की रचना तो विधाता ने केवल दुष्टों का शासन करने के लिये ही की है। हे कृष्णचन्द्र ! वंशपरम्परा से जिसके जो जो कर्त्तव्य चले आये हैं उन पर ज़रा दृष्टि डालिये तो आप को पता चलेगा कि, क्षत्रिय क्षत्रियों का संहार करते हैं। बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को मार कर, खा जाती हैं और कुत्ते कुत्तों को मारने के लिये तैयार रहते हैं। संग्राम में सिवाय कलह के और कुछ नहीं है। सर्वदा प्राणों का सङ्कट बना रहता है। अतएव मैं तो नीतिपूर्वक ही संग्राम करूँगा। क्योंकि जीना मरना, जय, पराजय, आदि सब परमेश्वराधीन है। बिना समय के तो दुःख सुख भी प्राप्त नहीं होते हैं; किन्तु जब समय आ जाता है, तब एक ही मनुष्य अनेक जनों का संहार कर डालता है। कायर मनुष्य भी शूर को पछाड़ देता तथा निन्दित मनुष्य भी यशस्वी का प्राण ले लेता है। कभी कहीं दोनों पक्षों का जय अथवा पराजय नहीं देखा गया। हाँ, अन्त में हानि दोनों ही को उठानी पड़ती है; किन्तु रण से कायर बन कर भाग जाने वाले के धन, जन, दोनों ही का नाश हो जाता है। इन सब बातों से तो यही मालूम होता है कि, संग्राम भी पाप स्वरूप है। युद्ध में बड़े बड़े वीर भी शत्रुओं की तलवारों से मारे जाते हैं और जो मारे जाते हैं उनके लिये हार जीत दोनों ही बराबर हैं। हे कृष्ण ! यद्यपि मैं मरण में और पराजय में कुछ भेद नहीं मानता, तथापि विजय पाने वाले को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। शत्रु भले ही मुख्य मुख्य महारथियों का संहार न कर सके; किन्तु युद्ध की समाप्ति पर्यन्त योद्धा लोग प्रतिपक्षी के अनेक प्रिय मनुष्यों का वध कर डालते हैं। इस प्रकार पराजित पक्ष जब जाति के बल से हीन तथा पुत्रों और पौत्रादिकों से शून्य हो जाता है, तब

वह अपने जीवन पर भी उदासीन हो जाता है। धीर वीर लज्जालु गुणी मनुष्यों ही की संग्राम में मृत्यु होती है। अधीर और कायरों में तो लड़ाई और वीरता का नाम सुन कर भगदड़ मच जाती है, शत्रुओं का संहार कर देने पर भी कुछ न कुछ पश्चात्ताप शेष रह जाता है और मृत शत्रुओं में से यदि कोई जीवित रह जावे तो फिर वह अपने वैर का बदला लेने का प्रयत्न करता है। इस लिये शेष बचे हुए शत्रुओं का भी संहार कर डालना ही उचित है। किसी से भी वैर विवाद न करने वाले ही लंबी तान कर सुख की नींद सोते हैं। शत्रुता रखने वालों को तो कभी चैन ही नहीं मिलता। जैसे सर्पयुक्त घर में रहने वालों को चैन नहीं पड़ता, वैसे ही जिसकी चारों ओर दुश्मनी हो उसे भी शान्ति नहीं मिलती तथा संसार को दुःख देने वाले मनुष्य का अपयश होता है। विद्वेषाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाएँ बहुत समय तक जलती ही रहती हैं; किन्तु दुःखदायी मनुष्य की अपकीर्ति आचन्द्रतारक बनी रहती है। यदि एक भी शत्रुकुल का बच्चा जीवित है, तो उसे उसके पूर्वजों के साथ द्वेष करने वाले लोगों का परिचय करा देने वाले सैकड़ों मिल जाते हैं। अतएव हे कृष्ण! विद्वेष की आग विद्वेष से शान्त नहीं हो सकती। जैसे घी पड़ने से आग और भी जल उठती है; वैसे ही विद्वेष से विद्वेष और भी बढ़ जाता है। इस लिये जब तक दो पक्षों में से किसी एक का बिल्कुल सर्वनाश न हो जावे, तब तक वैरभाव समूल नष्ट नहीं हो सकता। प्रायः छिद्रान्वेषी अपने बल पर अभिमान किया करते हैं और वह अभिमान उन्हें आन्तरिक व्याधि की भाँति खोखला कर डालता है। अतएव वैरभाव का नाश करने पर अथवा हृदय से बिल्कुल दुर्भावनाओं के शान्त हो जाने पर ही अथवा हे वासुदेव! शत्रुओं का अत्यन्ताभाव हो जाने पर परम शान्ति प्राप्त हो सकती है; किन्तु क्या यह सर्वसंहारकर कर्म न कहलावेगा। महाराज! त्याग से प्राप्त होने वाली शान्ति तो मरण ही के तुल्य है। क्योंकि राज्यभ्रष्ट हो कर शान्ति की आशा दुराशा मात्र है।

हे मधुसूदन ! हम राज्य भी तो त्यागना नहीं चाहते और कुल की भी रक्षा करना चाहते हैं। जहाँ तक हो हम उपायत्रय अर्थात् साम, दान, भेद ही से कार्य करना चाहते हैं। यदि कौरवों को समझाने बुझाने से यह भावी संग्राम न हो कर सन्धि हो जावे तो यह सब से अच्छी बात है; किन्तु इतने पर भी सन्धि न हुई, तो अवश्य संग्राम करना पड़ेगा। फिर क्या है? फिर तो अपना पराक्रम दिखलाना ही पड़ेगा। उस समय कायर बन जाना भी ठीक नहीं। सन्धि का प्रस्ताव पेश होने पर भी सन्धि न होने के कारण जो भयङ्कर युद्ध होता है, वह बस ठीक कुत्तों का सा ही संग्राम होता है और उसमें होता है क्या, सो भी सुन लीजिये। जैसे श्वान पूँछ हिला कर, खुशामद कर गुर्राते हुए एक दूसरे का छिद्र (दोष, गुह्येन्द्रिय) देखते और निन्दा करते हुए मे भूँकने लगते हैं; वैसे ही उस संग्राम की भी वही दशा होती है, जो संग्राम सन्धि की अस्वीकृति के पश्चात् आरम्भ किया जाता है। हे प्रभो ! जैसे बलवान कुत्ता निर्बल कुत्तों को फाड़ खाता है, वैसे बलवान् सब निर्बलों को जीत लेते और उनकी सम्पत्ति छीन लेते हैं। सब लोगों को निर्बलों पर सदा दया रखनी चाहिये; किन्तु हम बड़े असमञ्जस में पड़े हुए हैं। क्योंकि यदि हम इसी प्रकार चुपचाप बैठे रहें, तो हम राज्य से हाथ धो बैठेंगे और यदि संग्राम करें तो अपने कुल का संहार होगा तथा बच जाने पर दुर्बल और कायर कहलावेंगे। हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र हमारे पितामह के समान पूज्य हैं; किन्तु वे पुत्र के मोह में फँसे हुए हैं। वे पुत्रप्रेम के सन्मुख प्रणिपात को कुछ भी आदर न देंगे। इस लिये हे पुरुषोत्तम ! अब आप ही बतलावें कि, हमें कौन से उपाय से काम लेना चाहिये, जिससे हम लोग धर्मार्थ से भ्रष्ट न होने पावें। हमें तो इस आपदा में आपके सिवाय किसी और का सहारा ही नहीं है। क्योंकि, आपके समान हमारा हितैषी तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णायक दूसरा कोई भी नहीं देख पड़ता।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! धर्मराज की इन बातों को सुन

कर, श्रीकृष्ण ने कहा—अच्छा देखिये, मैं कौरवों में सन्धि करा देने के लिये कौरवों की सभा में जाता हूँ। वहाँ जा कर, यदि मैं आप लोगों की हानि न करा सन्धि करवा सका तो यह समझूँगा कि, मैंने कोई बड़ा भारी पुण्यकर्म कर डाला। यदि कौरवों ने सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो निश्चय ही मैं सब राजाओं और पृथ्वीमण्डल को काल की फाँसी से बचा सकूँगा।

धर्मराज ने कहा—हे कृष्ण! सन्धि के लिये मैं वहाँ तुम्हारा जाना उचित नहीं समझता। क्योंकि तुम समझाने की बातें कहोगे, किन्तु दुर्योधन उन सब बातों को कभी न मानेगा। वैसे भी दुर्मति दुर्योधन के अधीन रहने वाले नीच राजाओं के संघ में तुम्हारा जाना मुझे अभीष्ट नहीं है। हे माधव! आपको कष्ट दे कर, हम राजपाट तथा देवताओं के अधिपति इन्द्र का भी आसन लेना नहीं चाहते। ऐसी दशा में तो हमें इसी परिस्थित में महान् सुख है।

श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा—महाराज! मैं दुर्योधन की नीचता आदि से खूब परिचित हूँ; किन्तु वहाँ जा कर स्पष्ट कह देने से आप लोग अन्य राजाओं की दृष्टि में निर्दोष हो जायँगे और यह आप निश्चय समझें कि, जैसे क्रोधी शेर के सम्मुख और मृग नहीं पड़ते हैं, वैसे ही संग्राम के समय महाकाल का रूप धारण करने वाले मेरे सामने कोई भी अन्य राजे नहीं ठहर सकते। मूर्ख कौरव यह समझ कर कि, मैं तुम्हारे यहाँ से आया हूँ, यदि मेरा थोड़ा सा भी अपमान करेंगे, तो मैं उन्हें क्षण भर में भस्म कर डालूँगा। यह सब तो मैं पहिले ही निश्चय कर चुका हूँ। हे कौन्तेय! मेरा वहाँ जाना निष्फल किसी तरह भी नहीं हो सकता। कदाचित् सन्धि का प्रस्ताव न भी स्वीकार हो तो भी आप लोगों की निर्दोषता तो सब को प्रकट हो जावेगी।

धर्मराज ने कहा—अच्छी बात है जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये। मैं कुशलपूर्वक कौरवों के यहाँ से लौट कर आया हुआ आपको

देखना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप अर्जुन के मित्र हमारे स्नेही और हितकारी बन्धु हैं। आप कौरवों को ऐसी सम्मति देवें और समझावें कि, जिससे भावी महासमर शान्त हो जावे। आप कौरव और पाण्डव इन दोनों ही के स्वरूप को जानते हैं। इस कारण हमारे हित की बात जो कुछ भी हो, सब दुर्योधन से कह देना। हे केशव! वास्तव में हम आधे राज्य के अधिकारी हैं; किन्तु यदि वह पाँच ही ग्राम हमें देवें या फिर जुए से हार जीत की बात ठहरे और वह मेरा राज्य लौटाना चाहे, तो भी आप स्वीकार कर लेना; किन्तु यदि यह मेरी बातें उचित समझें तो वहाँ कहें, अन्यथा कोई आवश्यकता नहीं है।

तिहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन के अपराधों का उल्लेख

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन्! मैंने सञ्जय के द्वारा कौरवों की इच्छा और तुम्हारे कथन से तुम्हारी इच्छा अच्छी तरह समझ ली है। तुम धर्मबुद्धि और कौरव पापबुद्धि हैं। इस लिये तुम्हें बिना संग्राम के जो कुछ भी मिल जावे, वही अच्छा है। देखिये वर्णाश्रम-धर्म-निर्णेताओं का कहना है कि, क्षत्रिय को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत नहीं रखना चाहिये तथा मिथ्या वृत्ति भी उसके लिये निन्दनीय है। विधाता ने क्षत्रियों के लिये विजय और संग्राम में सम्मुख प्राण-विसर्जन करना, ये ही दो धर्म मुख्य और सनातन बतलाये हैं। इस कारण क्षत्रिय प्राणों का मोह नहीं करते। राजन्! नपुँसक और कायर बन कर क्षत्रियों का कभी निर्वाह नहीं हो सकता। अतएव उठो और शत्रुओं का संहार करो। देखो, दुर्योधन आदि कौरव बड़े लोभी हैं। वे बहुत दिनों से राजाओं में रहते सहते चले आ रहे हैं। इस कारण उनका प्रेम उनके साथ अत्यन्त दृढ़ हो गया है और वे बलवान भी हो गये हैं। फिर भीष्म द्रोण आदि महारथियों की सहायता पाने से भी वे

अपने को अजेय समझ रहे हैं। इस कारण वे सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे, इस विषय में कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। जब तक आप कोमल बने रहेंगे, तब तक कौरव आपका राज्य कभी न लौटावेंगे। क्या आप यह भी समझ रहे हैं कि, दुर्योधनादि कौरव हमारी कोमलता, दयालुता तथा धर्मपरायणता आदि से प्रसन्न हो कर, हमारा भाग हमें स्वयं दे देंगे? यदि आपका ऐसा विचार है तो यह असम्भव है और आपकी भारी भूल है। जिस दुर्योधन ने आप लोगों को कठिन वनवास दे कर भी कभी पश्चात्ताप नहीं किया, उस दुर्योधन से यह आशा करना कि, वह तुम्हारे धर्माचरण से दुःखित हो जावेगा, भारी भ्रम है। आप धर्मात्मा, सत्यवादी, धीर, वीर, दयालु और ईर्ष्या द्वेष शून्य हैं। यह सब गुण होते हुए भी आपको भीष्म द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, महात्मा विदुर तथा अन्य ब्राह्मणों के सम्मुख उसने जुआ रूपी भयङ्कर पातक में फँसा कर, राजपाट स्त्री आदि सब कुछ छीन लिया और फिर भी वह पश्चात्ताप न कर, निर्लज्ज बना बैठा है। भला ऐसे मनुष्य से क्या आशा की जा सकती है, मैं तो यही कहूँगा कि, आप ऐसे दुराचारियों के साथ कभी सन्धि न करें। उलटा इन सब का संहार ही कर डालें। क्या आपको यह नहीं मालूम कि, एक बार दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने भाइयों में बैठा हुआ यह कह रहा था कि, देखो इस पृथ्वी भर में अब पाण्डवों की कोई अपनी वस्तु नहीं रही। कुछ दिन बाद इनका नाम गोत्र भी समाप्त हो जावेगा और यह हमारे तिरस्कार से बल, वीर्य और पराक्रमहीन हो कर मर जावेंगे। दुष्ट दुःशासन ने सभा में भीष्म द्रोण आदि प्रमुख कौरव नेताओं के सम्मुख देवी द्रौपदी के केश पकड़ कर खींचे वह बेचारी गौ गौ कर के चिल्लाती रही। इधर आपने धर्मबन्धन में बँध कर स्वयं भी कुछ न कर अपने पराक्रमी वीर भाइयों को भी सहन कर लेने की आज्ञा दे दी। उस समय उस दुष्ट ने द्रौपदी को घसीटते हुए कहा हाँ हाँ तू हम सब लोगों की गौ है अर्थात् भोगने योग्य है। इस प्रकार असह्य उपहास भी किया था। उस समय केवल आपकी आज्ञा में बँधे होने

के कारण ही आपके वीर भाइयों ने शत्रुओं के इस असह्य अपमान का बदला नहीं लिया था। आपके वन चले जाने के बाद तो दुर्योधन ने बड़े निर्भीक भाव से आपकी बुराई और अपनी बड़ाई के पुल बाँध दिये थे। तब जो भी सभा में थे, उन सब ने दुर्योधन की बड़ी भारी निन्दा की थी और विवशता के कारण मुँह से कुछ न कह वे केवल बैठे बैठे आँसू बहाने लगे थे। महाराज! कुलीन पुरुष को निन्दित हो कर संसार में रहना उचित नहीं। इससे तो उसका मरना ही अच्छा है। अपकीर्त्ति सम्पूर्ण जीवन के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है। संसार के राजाओं ने जब से उस निर्लज्ज दुर्योधन की निन्दा करना प्रारम्भ किया है, तभी से उसे मरा समझ लीजिये। जैसे छिन्नमूल पेड़ को काट डालना सहज है, वैसे ही निन्दित दुराचारी मनुष्य को भी मार डालना सहज है। जैसे साँप को देखते ही लोग उसे मार डालते हैं, वैसे ही दुर्बुद्धि मनुष्य का भी तुरन्त नाश कर देना चाहिये। इस लिये हे राजन्! अब आपको भी चुपचाप नहीं बैठना चाहिये। बन्धुता आदि का ख़्याल छोड़ कर इस महापिशाच का संहार कर ही डालिये। पितामह भीष्म और धृतराष्ट्र पर जो आपकी श्रद्धा है, वह ठीक है। उनके सम्मुख आपको विनम्र होना ही चाहिये इसमें मैं भी सम्मत हूँ। अब रही दुर्योधन की बात, सो मैं वहाँ जा कर, जिन लोगों को दुर्योधन के बुरे भले होने में सन्देह है; उनका सन्देह शीघ्र ही नष्ट कर दूँगा। हे राजन्! जब मैं वहाँ पहुँच कर, सब राजाओं में बैठ दुर्योधन की स्पष्ट समालोचना कर तुम्हारी धीरता और धर्मपरायणता का बखान करूँगा, तब सब राजाओं को यह बात भली भाँति मालूम हो जावेगी कि, वास्तव में दुर्योधन लालची है और वह लोभ से अधर्म करने पर उतारू हो गया है। पाण्डव सत्यवादी हैं। वे धीरवीर होते हुए भी धर्म पर श्रद्धा रखने के कारण कौरवों की उचित और अनुचित बातों को सहते रहते हैं। यहीं तक नहीं, मैं प्रत्येक नगर ग्राम के रहने वाले वृद्ध, तरुण, बालक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी के सम्मुख दुर्योधन की दुष्टता का बखान करूँगा।

महाराज ! आप तो सन्धि और मेल की प्रार्थना कर रहे हैं। आपकी तो किसी प्रकार भी निन्दा नहीं हो सकती, बल्कि प्रशंसा ही होगी। ऐसी परिस्थित में दुर्योधन का कम से कम समझदार मनुष्य तो अवश्य ही पक्ष त्याग देवेंगे। तब भला बतलाइये अब आपको और क्या काम शेष रह गया ? बस अब मैं यहीं से कौरवों के यहाँ जा कर आपके कार्य का सम्पादन करता हूँ। कौरवों का कार्यक्रम और उनकी क्या क्या तैयारियाँ हैं यह सब जान कर मैं आपकी विजयकामना से शीघ्र ही लौट आऊँगा ; किन्तु जहाँ तक मेरा विचार है, शत्रुओं से अवश्य युद्ध करना पड़ेगा। क्योंकि कुछ अशकुन ऐसे हो रहे हैं, जो सर्वनाशक संग्राम की सूचना देते हैं। देखिये, सायंकाल के समय पशु पक्षियों की वाणी एक प्रकार की भयङ्करता से भरी हुई प्रतीत होती है। हाथी घोड़े आदि जानवरों के स्वरूप भी शाम के समय विकृत प्रतीत होते हैं। अग्निज्वालाओं में एक विचित्र प्रकार की भयङ्कर चित्रावली प्रकट होती है। यदि विकराल काल के समान प्रजाओं का नाश करने वाले समय का भविष्य में आगमन न होता, तो यह सब अपशकुन क्यों होते ? इस लिये आप अपने योद्धाओं, अस्त्रों, शस्त्रों, कवचों, हाथियों, घोड़ों, रथों, रथियों और महारथियों को युद्ध के लिये बिलकुल सावधान रखिये। जो कुछ भी युद्ध की सामग्री एकत्रित करनी हो, वह सब आप शीघ्र ही एकत्रित कर लीजिये।

हे धर्मराज ! आपके जुए में जीते हुए राज्य को अब यह दुष्ट दुर्योधन कभी लौटाने को तैयार न होगा। यह आप निश्चय समझ लें।

चौहत्तरवाँ अध्याय

भीम की सिधाई

भीमसेन बोले—कृष्ण जी ! सुनिये आप वहाँ जाते तो हैं ; किन्तु एक काम करना। वहाँ जा कर संग्राम चर्चा से कौरवों को डरा मत देना।

केवल सन्धि ही की बातें करना। दुर्योधन बड़ा क्रोधी, असहनशील और अभिमानी है। इस लिये उसके साथ कठोर वार्त्तालाप न कर मीठी मीठी बातों ही से उसे समझाना। वह बड़ा अदूरदर्शी, क्रूर, पराक्रमी, निन्दक तथा पापी है, उस पर उपदेश का असर होना भी असम्भव है। उसने पाण्डवों से वैर बाँध रखा है। मर जाने पर भी वह अपना हठ नहीं छोड़ सकता। मेरी समझ में तो वह आपकी बातों को योंही उड़ा देगा और सन्धि की ओर ध्यान भी न देगा। हे कृष्ण! वह तो अपने सम्बन्धियों से भी अकड़ जाता है। उनके उपदेशों को हेच और पोच समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखता है तथा उस पापात्मा ने पापियों से प्रेम और पुण्यात्माओं से वैर बाँध रखा है।

हे मधुसूदन! तिनकों में छिपे हुए साँप की तरह अपने दुष्ट स्वभाव ही से पापकर्म कर वह अपनी मौत बुला रहा है। दुर्योधन की जितनी भी सेना है, उसके तो बलवीर्य पराक्रम और शील स्वभाव से आप भली भाँति परिचित ही होंगे। देखिये, पहिले पाण्डव और कौरव सपरिवार बन्धु बान्धवों में मिल कर देवराज इन्द्र के समान मौज से दिन बिताते थे। किन्तु अब कुछ मामला ही और है। जैसे ग्रीष्मकाल में तीक्ष्ण आतप से वृक्ष समूह जल कर सूख जाते हैं; वैसे दुर्योधन के क्रोधाग्नि में भरतवंशी नरेश अब भस्म हो जावेंगे। हे मधुसूदन! अपने भाई बन्धु स्वजन परिवार के संहार कर डालने में निम्न लिखित यह अठारह योद्धा प्रसिद्ध हैं। अपने प्रबल तेज से दमकने वाले दैत्यों में धार्मिक महाह्रास के समय राजा बलि पैदा हुआ। हैहय वंश में मुदावर्त्त, नीप वंश में जनमेजय, तालजंघों में वहुल, और कृमियों के वंश में वसु, सुवीर वंश में अजविन्दु, सुराष्ट्र में रुषर्द्धिक, बलीहाओं में अर्कज, चीनों में धौतमूलक, विदेहों में हयग्रीव, महौजसों में वरयू, सुन्दर वंशियों में बाहु, दीप्तों में पुरूरवा, चेदी तथा मत्स्यराज-वंश में सहज, प्रवीर वंश में वृषध्वज, चन्द्रवत्स-राज-वंश में धारण, मुकुट राजवंश में विगाहन, नन्दिवेग वंशियों में शम। जैसे ये सब लोग अपने अपने

कुलों में कलङ्क लगाने वाले महानीच पैदा हुए हैं वैसे ही कुरुकुल में भी यह दुष्ट महानीच दुर्योधन अपने कुल में कलङ्क लगाने वाला कुलाङ्गार पैदा हुआ है। यह महापातकों का साक्षात् अवतार है। इस लिये हे पुरुषोत्तम! कौरवों की सभा में जा कर, आप जो कुछ भी कहें वह ठीक ठीक धर्मनीति के अनुकूल वचन होता हुआ भी कठोरता से शून्य और प्रायः कौरवों के अनुकूल होना चाहिये। हे वासुदेव! हम अपने वंश का संहार करना नहीं चाहते हैं। इस लिये हमें दुर्योधन के अधीन रहने में भी कोई आपत्ति नहीं है। प्रभो! आपको वह काम करना चाहिये, जिससे हम लोग कौरवों से उदासीन रह कर अपना निर्वाह कर सकें और यह सर्वनाशी युद्ध का महापातक कौरवों के सिर पर न पड़े। सभा में जा कर वृद्ध पितामह आदि सभासदों से यही विनय करना कि, जिसमें बन्धु बन्धु परस्पर के विद्वेषाग्नि में भस्म न हो जावें। मेरा तथा धर्मराज का और अर्जुन आदि सब ही का यह मत है। इस लिये आप यथाशक्ति आपस में मेल कराने ही का प्रयत्न करें।

पचहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का भीम की भोली बातों पर आक्षेप

वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण ने भीमसेन की ऐसी शीतल और नम्रता से पूर्ण वाणी सुन कर, बड़ा आश्चर्य किया। क्योंकि उन्होंने भीमसेन के ऐसे दीनता और दया से भरे हुए वचन कभी सुने ही नहीं थे और न सुनने की आशा ही थी। अस्तु, भगवान् ने सोचा कि, जब यह महाक्रोधी वीर भी मट्टी की तरह कोमल हो रहा है, तब भला कैसे काम चलेगा। मालूम होता है कौरवों के दिन अभी अच्छे हैं। यह सोच कर उन्होंने बड़े उत्तेजक वाक्यों से भीमसेन को पुकार कर कहा—क्यों भीम! यह क्या? पहिले तो तुम कौरवों का संहार करने के लिये

उतावले हो रहे थे और युद्ध युद्ध पुकारते थे, किन्तु अब ऐसी दीनता की बातें करते हो। शोक! कहाँ पहिले तुम्हें नींद भी न आती थी। औंधे मुँह पड़े पड़े अपने बड़े भाई की शान्ति और क्षमा पर झींका करते थे और अब तुम भी वैसे ही कायर बन गये। तुम्हारी युद्ध के लिये व्याकुलता को न जानने वाले लोग तुम्हारी आहों और क्रोध से विपरीत बातों को देख और सुन कर तुम्हें पागल समझते थे। जैसे हाथी जड़ से वृक्षों को उखाड़ कर पैरों से कुचल डालता है, वैसे ही तुम भी पहिले पैरों से भूमि को कुचलते हुए भयङ्कर गर्जना करते हुए चारों ओर दौड़ा करते थे। सो आज तुम्हारा यह ऐसा अनाशङ्कित परिवर्त्तन कैसे हो गया? पहिले तुम्हारी दशा ही कुछ और थी। किसी से भी न हँस बोल कर तुम एकान्त में बैठे रहा करते थे। रोनी सी सूरत बनाये घुटनों में सिर घुसेड़ आँसू बहाया करते थे। कभी लाल ताते हो कर अपने होंठ चबाया करते थे। यह सब क्रोध ही के लक्षण हैं। भीम! क्या तुम्हें अपनी उस प्रतिज्ञा का ध्यान नहीं जो तुमने अपने भाइयों में खड़े हो कर की थी? जैसे सूर्य पूर्व में उदय हो कर पश्चिम में अस्त हो जाता है, उसके इस नियम में कभी हेर फेर नहीं होता, वैसे ही मैं भी आज यह सत्य और दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ कि, जब कभी मुझसे और दुर्योधन से भेंट हो जावेगी तभी मैं उसे अपनी भयङ्कर गदा से मार डालूँगा; किन्तु आज उसी दृढ़प्रतिज्ञ वीर के मुख से यह अनुचित मेल मुलाकात की बातें कैसे निकल रही हैं? बस यही मुझे आश्चर्य है। हे भीम! कभी कभी बड़े बड़े रणकुशल युद्धप्रिय योद्धाओं का भी मन ऐन संग्राम के समय संग्राम से फिर जाता है। कहीं तुम्हारी वही दशा तो नहीं हो गयी? मालूम होता है भीम! तुम युद्ध से डर गये। सम्भव है तुम्हें रात को भयङ्कर स्वप्न दिखायी भी देते हों। इसी कारण तुम कायर बन गये हो; परन्तु शोक इस बात का है कि, जैसे नपुंसक में पुरुषार्थ नहीं होता, वैसे ही तुम भी अब पुरुषार्थहीन, कायर और नपुंसक बन गये हो; किन्तु तुमने इस अपनी कमी के कारण ही पहिले ही से क्लेश

सहे घोर कष्ट भोगे हैं। तुम्हारा हृदय थरथर काँप रहा है। मन मलीन और शरीर उदासीन हो रहा है। शोक से उत्पन्न निर्बलता से जाँघे सुन्न पड़ गयी हैं। इस कारण तुम पराधीन से हो गये हैं। अतएव तुम्हें संग्राम से महाभय हो रहा है। देख, भीम! मनुष्य का मन साँसारिक घटनाओं को देखते देखते क्षण क्षण के बाद अनेक रङ्ग बदलता और सेमर के धुएँ की तरह चञ्चल हो जाता है। जैसे गौ की मनुष्य जैसी वाणी विकृत मानी जाती है, वैसे ही तुम्हारी भी बुद्धि मुझे विकृत प्रतीत होती है। यह समुद्रमग्न निराधार मनुष्य की भाँति पाण्डवों को दुःखसागर में डुबो देगी। हे भीम! तुम्हारे यह अनुचित और कायरता पूर्ण वचन मुझे बड़े आश्चर्य में डाल रहे हैं। इससे तो यही प्रतीत होता है कि, पर्वत भी चल विचल हो सकते हैं। हे वीर-शिरोमणे! तुम अपने स्वरूप, अपने जन्म और अपने क्षत्रियत्व का स्मरण करो और इस प्रकार की खिन्नता को दूर कर, धीरता और वीरता के साथ संग्राम करने के लिये तैयार हो जाओ। तुम्हारा स्वरूप संग्राम से स्वाभाविक प्रेम रखने वाला है। तुम्हारी यह ग्लानि तुम्हारी विशुद्ध क्षत्रियता पर कलङ्क लगाने वाली होगी। देखो, क्षत्रिय सदा अपने बल-पराक्रम से प्राप्त की हुई वस्तुओं ही का उपभोग करते हैं, वे कभी किसी के सामने भिखारी बन कर नहीं जाते।

छिहत्तरवाँ अध्याय

भीम भोंदू नहीं है

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! भगवान् वासुदेव की इन बातों को सुन कर, महाक्रोधी भीम चपल तुरङ्ग की तरह उछलता हुआ श्रीकृष्ण से कहने लगा—हे वासुदेव! मैं कुछ और ही करने की धुन में था और आप कुछ और ही समझ बैठे। क्या आपको यह नहीं मालूम है कि, मैं युद्ध का कैसा प्रेमी और सत्यपराक्रमी हूँ। हे कृष्ण! आप तो बहुत दिनों तक मेरे

साथ रह चुके हैं। आपको तो मेरे हृदय का परिचय होना ही चाहिये। अथवा जैसे अथाह जलराशि में तैरने वाला नौका को छोड़ पार नहीं जा सकता, वैसे ही आप भी मालूम होते हैं, मुझे नहीं पहिचानते हैं। यही कारण है कि, आज आप मेरी निन्दा कर रहे हैं। यदि आपको मेरे स्वरूप का ज्ञान होता, तो आप अभी ऐसी बातें न करते। इस लिये आत्मश्लाघा करना यद्यपि महादोष है; तथापि मैं आपको अपना प्रभाव सुनाता हूँ, सुनिये। हे वासुदेव! आप जो इस असीम और अनन्त भूमण्डल तथा आकाश को देख रहे हैं, यदि यह क्रोध में आ कर परस्पर जकड़ जावे; तो भी मैं इन्हें अपने विशाल बाहुओं से अलग कर सकता हूँ। जरा आप इन मेरे लोहदण्ड समान कठोर भुजदण्डों को देखिये तो सही। आज संसार में मुझे कोई भी ऐसा नहीं दीखता, जो मेरे इन भुजदण्डों के बीच में आ कर सकुशल छूट कर चला जावे। आज यदि पाण्डवों पर चढ़ाई करने वाले की रक्षा के लिये हिमालय, समुद्र और देवराज इन्द्र भी आ जावें, तो भी वे लज्जित और पराजित हो चुपचाप नीची आँखे किये लौट जावेंगे। यादवेन्द्र! याद रखो। हम अपने शत्रु के संग्राम-भूमि में खण्ड खण्ड कर उनकी छाती पर लात जमा कर बैठ जावेंगे। क्या आप मेरे इस पराक्रम को नहीं जानते हैं? क्या आपने यह नहीं देखा कि, मैंने अब तक अनेक राजाओं को जीत लिया है? यह सब जानते हुए भी आप अजान क्यों बन रहे हैं अथवा ठीक है, सूर्योदय होने पर ही लोगों को उसके प्रकाश का ज्ञान होता है। अब जब संग्राम में मेरी यह सब बातें कार्य रूप में आप देख लोगे, तभी आपको विश्वास हो जावेगा। जैसे पकने वाले व्रण में बड़ी भारी पीड़ा होती है, वैसे ही आप भी तीक्ष्ण वचनों से मेरा तिरस्कार कर रहे हैं।

यह मैंने अपना पराक्रम संक्षेप में आपसे कहा है, किन्तु जब भीषण संग्राम छिड़ जावेगा, तब देखना, इससे कहीं चौगुने कर्त्तव्य कर के मैं दिखाऊँगा। तब तो मैं हाथियों, घोड़ों, रथों, रथियों और महारथियों,

का सर्वनाश करूँगा। बड़े बड़े पराक्रमी योद्धाओं को मैं टाँगें पकड़, दे पटकूँगा और उन्हें खूब घसीटूँगा। हे कृष्ण! मेरी हड्डियाँ कभी दुखती ही नहीं हैं और मन भी कभी नहीं हिराँसा होता है।

यदि समस्त संसार मुझ पर क्रुद्ध हो कर चढ़ आवे, तब भी मैं उससे डरने वाला नहीं हूँ। हाँ, यह बात है और इसीसे मैं सन्धि करने की चर्चा कर रहा था कि, कहीं इस महासमर से भरतवंशियों का सर्वनाश न हो जावे। पूर्वोक्त जिन बातों को आप कायरतापूर्ण बतला रहे हैं, वे सब सहृदयता के कारण ही कही गयी हैं।

सतहत्तरवाँ अध्याय

भीम को सान्त्वना प्रदान

भगवान् वासुदेव जी बोले—हे भीम! सुनो, मैंने स्नेहवश तुम्हारे भाव को जानने के लिये ही ऐसा कहा था। कुछ क्रुद्ध हो तुम्हारा तिरस्कार करने को और अपना पाण्डित्य दिखलाने के लिये नहीं। मैं तुम्हारे बल वीर्य पराक्रम के माहात्म्य तथा विचित्र वीर चरितों को खूब जानता हूँ। तुम अपने में जितना भरोसा करते हो, उससे कहीं अधिक आत्मकल्याण का मुझे तुम्हारा भरोसा है। सब राजाओं से पूजित उच्चवंश में जैसा तुम्हारा जन्म हुआ है तथा जैसे जैसे तुम्हारे मित्र बन्धु बान्धव हैं, वैसे ही तुम भी हो। देखो, भीम! पहिले तो कर्म ही का जानना कठिन है। उस पर भी दैव तथा मानवों के सन्दिग्ध कर्म का यथार्थ ज्ञान हो जाना बड़ा ही दुर्लभ काम है। वही मनुष्यों की सफलता और असफलता का कारण है। कर्मों के विषय में तो कोई विचार निश्चय किया ही नहीं जा सकता कि, अब हमें इस कार्य से सफलता निश्चय प्राप्त ही होगी। गुण दोषों के जानने वाले विद्वान् कर्मों के विषय में जो निश्चय करते हैं, वह निश्चय, चञ्चल वायु के झोंको के समान कुछ और ही हो जाता है। नीतिपूर्वक सद्विचारों

द्वारा न्याय समझ कर किये गये कर्मों का भी प्रारब्धवश नष्ट हो जाना देखा गया है। शीतोष्ण, वर्षा, भूख, प्यास आदि कर्म मनुष्यकृत कर्म नहीं हैं। तो भी इनका प्रतीकार उन उन योग्य साधनों से हो ही जाता है। संसार में केवल प्रारब्ध कर्मों का विनाश मनुष्य नहीं कर सकता; किन्तु स्वयं कृत कर्मों का प्रतीकार अवश्य कर सकता है। हे भीम! सुनो। संसार में निष्कर्म रह कर कोई भी जीवित नहीं रह सकता। भाग्य तथा पुरुषार्थ इन दोनों के सम्बन्ध ही से काम चलता है। केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहना भारी भूल है। इस लिये कर्त्तव्य कर्मों को करने के लिये सर्वदा तैयार रहना चाहिये। अतएव विचारशील लोग सदा कर्म किया करते और असफल होने पर भी खिन्न नहीं होते हैं। वे स्वयं जो कुछ भी करते हैं उचित ही करते हैं, चाहे सफलता हो या न हो। देखो, भीम! कर्त्तव्य पालन के विषय में तो यही मेरा निश्चय है; किन्तु शत्रुओं के साथ संग्राम छिड़ जाने पर, अपना ही विजय होगा, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अतएव दैवयोग से यदि कार्य में असफलता हो जावे, तो मनुष्य को निस्तेज हो कर उदासीन हो जाना उचित नहीं। बस इसी लिये मैंने तुम्हें यह उपदेश दिया है। देखो, कल मैं धृतराष्ट्र के पास जाऊँगा और तुम्हारे कार्य की सिद्धि का प्रयत्न करता हुआ सन्धि की चर्चा करूँगा। यदि उन्होंने सन्धि स्वीकार कर ली तो निश्चय मुझे महान् यश मिलेगा और तुम लोगों की कामनाएँ सिद्ध हो जावेंगी तथा कौरव-समूह भी भावी सर्वनाश से बच जावेगा; किन्तु यदि उन्होंने हठ किया और मेल करना नहीं चाहा तो निश्चय ही भीषण संग्राम होगा। देखो भीमसेन! तुम्हें खूब सावधान हो जानाँ चाहिये। क्योंकि संग्राम का सब कार्यभार तुम्हें ही सौंपा जावेगा। तुम्हारे भाई अर्जुन पर सब का उत्तरदायित्व रहेगा। सभी लोगों को तुम्हारी आज्ञा में चलना पड़ेगा। संग्राम होने पर मैं अर्जुन का सारथि बनूँगा। क्योंकि वह स्वयं इस बात को चाहता है। अरे भाई! संग्राम तो मैं भी चाहता हूँ; किन्तु तुम्हारी

कायरों जैसी बातें सुन कर, मुझे सन्देह हुआ। इस कारण मैंने, यह सब कह सुन कर, तुम्हें तुम्हारे स्वरूप का स्मरण दिलाया है।

अठत्तरवाँ अध्याय

अर्जुन का उत्साह

अर्जुन ने कहा—हे प्रभो! आपसे जो कुछ हम लोगों को कहना सुनना था वह सब तो धर्मराज स्वयं कह चुके; किन्तु आपकी इन बातों को सुन कर तो मुझे यही प्रतीत होता है कि, आप कौरवों और पाण्डवों के मेल को असम्भव समझते हैं। आप कह रहे हैं कि, धृतराष्ट्र के लोभी होने के कारण अथवा हमारी विपत्ति के कारण मेल नहीं होगा। यह बात मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ती। आपका यह कथन कि, बिना कर्म के किये फल का उदय नहीं होता; बल्कि मनुष्य का सारा का सारा उद्योग निष्फल हो जाता है, ठीक तो अवश्य है। किन्तु सदा के लिये यह नियमित हो यह कोई बात नहीं। देखिये उद्योग से कठिन से कठिन कार्य भी हो जाता है। कौरव सदा अन्याय और अधर्म के कार्य करते हैं। वे कभी शान्तिस्थापन का कार्य नहीं करते। अतएव पाण्डवों की और उनकी यदि किसी प्रकार सन्धि हो भी गयी तो भी वह क्षणिक ही होगी। इसका विचार कर यदि आप युद्ध ही को अच्छा समझते हैं, तो इस विषय में मैं यह विनय करूँगा कि, चाहे कोई भी कार्य क्यों न हो, यदि उसे सम्भाल कर सच्चे और अच्छे साधनों द्वारा परिश्रम से किया जावे, तो वह अवश्य ही सिद्ध होगा। इस लिये आप भी ऐसे ढंग से वहाँ जा कर बातचीत करें, जिससे सन्धि हो ही जावे। जैसे देव और दानव के प्रजापति बन्धु हैं, वैसे ही आप भी कौरव और पाण्डवों के समान सम्बन्धी हैं; किन्तु हमारा सम्बन्ध कौरवों से कहीं अधिक प्राचीन है। इसी लिये आपको वही काम करना चाहिये जिससे हमारा और कौरवों का कल्याण हो। देखिये, यह तो हमें सदा से निश्चय है

कि, आपके लिये कोई भी कार्य कठिन नहीं है। हे जनार्दन ! जब आप अपने कार्यक्रम को ऐसा बना लेंगे, तभी आप कृतकार्य हो कर कौरवों और पाण्डवों का कल्याण कर सकेंगे। दुर्मति दुर्योधन के लिये जो कुछ भी करना चाहिये वह आप अनायास ही कर डालेंगे। जैसे भी हो सके कौरवों से सन्धि कराने ही का प्रयत्न करना; नहीं तो आपकी जो इच्छा हो वही करना। हे मधुसूदन ! वैसे तो आपने अपने मन में जो सोचा हो वह सब हम लोगों के लिये मान्य ही है; किन्तु आप ही बतलावें कि, जिस दुष्ट दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी को छीनने को जुए सरीखे जैसे निन्द्य उपाय से काम लिया क्या वह दुर्योधन मारने योग्य नहीं है ? उसे तो सपरिवार नष्ट कर देना ही उचित है। भला आप ही बतलाइये कि, क्षत्रिय हो कर किसी का युद्ध के लिये आह्वान पा कर, रणपराङ्मुख हो जाना, कितनी बुरी बात है ? क्षत्रिय का धर्म है कि, वह उस आह्वान को अवश्य स्वीकार करे। चाहे उसे वहाँ जा कर अपने प्राणों ही की बलि क्यों न चढ़ा देनी पड़े। इसी दुष्ट दुर्योधन ने मेरे भाइयों को और मुझे वनवास दिया है। इस कारण मैं इसे अपना वध्य समझता हूँ। हे कृष्ण ! तुम मित्र के लिये जो कुछ भी करना चाहो वह आश्चर्यजनक नहीं है; किन्तु इस विषय में विचारणीय केवल यही बात है कि, हमारा कार्य संग्राम से सिद्ध होगा या सान्त्वना (सन्धि) से सिद्ध होगा। यदि आप कौरवों का सर्वनाश ही करना चाहते हैं तो बस अब विलम्ब करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। जो कुछ भी करना हो शीघ्र ही कर डालिये। देखिये, आपको मालूम है, दुराचारी दुर्योधन ने जब देवी द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया था; तब भी हम लोग चुपचाप थे। इसलिये मैं तो यही समझता हूँ कि, वह पाण्डवों के साथ कभी अच्छा व्यवहार नहीं कर सकता। क्या कहीं ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज भी जमा करता है। इस लिये अब आप जो कुछ भी पाण्डवों का हितसाधन करना चाहते हों, वह शीघ्र ही करिये और हमें बतलाइये कि, हम लोगों को अब क्या करना चाहिये ?

उनासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर गमन का उद्देश्य

भगवान् वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन ! तुम जैसा कह रहे हो वैसा ही होगा । मैं पाण्डवों और कौरवों के कल्याण ही का उपाय करूँगा । सन्धि और विग्रह (लड़ाई) इन दोनों में श्रेष्ठ जो सन्धि है, उसे करा देने का भार मेरे ही अधीन है; किन्तु इसमें भी एक बात है । जैसे अच्छी तरह जोता हुआ और अच्छी भूमि वाला भी क्षेत्र, जब तक वर्षा नहीं होती, तब तक उसमें बोया हुआ बीज उग कर फल देने वाला नहीं होता ; यह बात बड़े बड़े बुद्धिमान भी कह रहे हैं, वैसे ही पुरुषार्थ के जल का सिञ्चन करने पर भी, भाग्य के विपरीत होने से, वह फिर उग आने के बाद सूख भी जाता है । इस प्रकार मानवी और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियों के एकत्रित होने पर ही मनुष्य कृतकार्य हो सकता है । अर्जुन ! मैं जहाँ तक हो सकेगा सन्धि कराने ही का प्रयत्न करूँगा । हाँ, प्रारब्ध पर मेरा भी कोई अधिकार नहीं है । दुष्ट दुर्योधन को न तो लोकापवाद का ही भय है और न अधर्म ही से घृणा है, इस कारण वह जो चाहे सो करने को तैयार हो जाता है । आज तक कभी दुर्योधन ने अपने इन सब अनुचित कामों पर पश्चात्ताप नहीं किया । इधर उसके कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि नीच और दुर्बुद्धि मन्त्री लोग भी उसकी बुद्धि को फेरे रहते हैं । वे ऐसी ऐसी कुमन्त्रणाओं और पापों की ओर उसको खींच ले जाते हैं कि, जिससे मूढ़ दुर्योधन का उद्धार मरने के पूर्व नहीं हो सकता । धर्मराज की भी सम्मति ऐसी ही है । वे यह नहीं चाहते कि, नम्र बन कर अपना राज्य छोड़ दिया जावे । किन्तु दुर्योधन जब तक सपरिवार नष्ट नहीं हो जावेगा, तब तक वह कभी इस झगड़े को शान्त करने की इच्छा प्रगट न करेगा । चाहे आप कितना ही अनुनय विनय क्यों न करें, मेरी सम्मति में जो धर्मराज ने पाँच ग्रामों की और सन्धि की याचना की है, वह भी ठीक

नहीं है। क्योंकि दुर्योधन बड़ा लालची और नीच प्रकृति का मनुष्य है। वह इन सब बातों के मान नहीं सकता और इन बातों के अस्वीकार करने पर सर्वथा वध करने ही के योग्य हो जावेगा। तुम्हारी बालदशा में जो क्लेश उस दुष्ट ने तुम्हें दिये हैं, वे सब संसार से छिपे नहीं है। इस कारण वह मेरा और तुम्हारा ही वध्य नहीं हैं; वल्कि संसार को भी उसके यह नीच कर्म अखर रहे हैं। उस महानीच ने धर्मराज की राजलक्ष्मी से द्वेष होने के कारण ही उनका राजपाट सब अपने अधीन कर लिया है। हे अर्जुन! तुम दुर्योधन की सचाई से भली भाँति परिचित हो और यह भी जानते हो कि, मैं तुम्हारा कैसा हितैषी हूँ।

दुर्योधन की मानसिक दशा और मेरे परम विचारों को जानते हुए भी, हे अर्जुन! तुम ऐसे ऐसे प्रश्न क्यों करते हो? क्या तुम्हें यह मालूम है कि, इस पृथ्वी का भार उतारने के लिये कुछ देवताओं का भी अवतार हुआ है। फिर तुम्हीं सोच देखो कि, सन्धि कैसे हो सकती है? अस्तु, जो कुछ भी हो, अपनी जान में तो मैं यही प्रयत्न करूँगा कि, सन्धि हो जावे; किन्तु मुझे आशा बिलकुल नहीं है। देखो, गत वर्ष ही राजा विराट की गौओं को हरते समय भीष्म ने दुर्योधन को कितना समझाया था; किन्तु वह सब समझाना बुझाना चिकने घड़े पर पानी डालने की तरही यों ही बह गया। इधर जब से तुमने दुर्योधन के मारने का विचार किया है, तब से तो वह बिलकुल हार ही मान गया है और तुम्हें क्षण भर के लिये भी राज्य-शासन का अधिकार देना नहीं चाहता; किन्तु मुझे धर्मराज की आज्ञा का पालन तो करना ही चाहिये तथा दुर्योधन के पापकर्मों की ओर भी दृष्टि फेरनी चाहिये।

अस्सीवाँ अध्याय

नकुल का मत

नकुल ने कहा—हे केशव! आपसे जो धर्मराज ने अनेक बातें कही हैं, वे सब आपने सोच और समझ ली होंगी। इसके बाद महारथी भीम की बातें और उन्होंने जो अपने स्वरूप का वर्णन किया, वह तथा अर्जुन की सन्धि-विषयक सब बातें सुन समझ कर आपने अपना मत भी प्रकट कर दिया है; किन्तु हे पुरुषोत्तम! इन सब बातों पर ध्यान न दे कर शत्रु के यहाँ पहुँचने पर उनके जो विचार मालूम होवें, तदनुसार तथा अपनी बुद्धि से जो कुछ भी आप उचित समझें वही करें। क्योंकि जैसे जैसे कारण एकत्र हो जाते हैं वैसे वैसे ही मनुष्यों के विचारों में भी अन्तर पड़ जाया करता है। देखिये, धर्मराज तो यह चाहते हैं कि, कुल का नाश न होवे, आपस में सब स्नेह शान्ति से रहें; किन्तु सभा में अपमानित की गयी देवी द्रौपदी यह चाहती है कि, बैरियों का बिलकुल जड़ ही से नाश कर दिया जावे; किन्तु यह सब होते हुए भी मनुष्य का धर्म है कि, वह सदा अवसरोचित कार्य करे। हे केशव! मनुष्यों की मति सदा एक सी नहीं रहा करती। वह क्षण क्षण में रूप बदला करती है। आज हम कुछ सोच रहे हैं और कल हो हमें ठीक उसके विपरीत घटनाएँ होती हुई दिखलायी देती हैं। दूर न जा कर हमारी ही गति को देख लीजिये। जब हम वनवास में थे तब हमारे विचार और थे। उसके बाद जब हम अज्ञातवास में रहे, तब हमारे और ही विचार थे और अब जब कि, हम सब प्रकट हो गये हैं, तब हमारे और ही विचार हैं। हे माधव! वन में हमें कुछ भी अपने राज्य का मोह नहीं था और न हम प्रतिहिंसा की आँच ही से जला करते थे। अब जब कि हम वनवास से लौट कर आये हैं, तब हमारे पास यह सात अक्षौहिणी सेना आपकी कृपा से आ गयी है। अब आप ही इन महारथियों को और इस बलशालिनी सेना को

देख कर कहिये कि, इन वीरों को देख कर किसका हृदय न दहल जावेगा। इस लिये आपको उचित है कि, आप पहिले तो कौरवों के पास जा कर उन्हें सान्त्वना देवें और उनके सामने सन्धि का प्रस्ताव रखें तथा अन्त में उन्हें भय भी दिखलाते जावें, जिससे दुष्ट दुर्योधन भी भयभीत हो जावे। हे मुकुन्द! युधिष्ठिर, भीमसेन, महापराक्रमी एवं अजेय अर्जुन, सहदेव, मैं, तुम, राजा विराट्, सात्यकि, उत्तर, सामात्य राजा द्रुपद, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, चेदीश्वर आदि सब महापराक्रमी राजा लोग जब संग्राम में लड़ने को खड़े होंगे तब इनके सामने माँस रुधिर के शरीर वाला कौन वीर खड़ा हो सकेगा। हे भगवन्! विदुर, भीष्म, द्रोण, बाल्हीक आदि तुम्हारे कथनानुसार पाण्डवों का हित अनहित भली भाँति समझ और समझा सकेंगे तथा आप वहाँ जा कर पाण्डवों के अभीष्ट कार्य को अवश्य सिद्ध करेंगे। भला जहाँ पर आप सरीखे वक्ता और महात्मा विदुर सरीखे श्रोता होंगे; वहाँ क्या कार्यसिद्धि में कुछ संशय भी हो सकता है? मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि, आप लोग बिगड़ी हुई बात को भी अवश्य बना लेंगे।

इक्यासीवाँ अध्याय

सहदेव और सात्यकि का कथन

सहदेव ने कहा—हे जनार्दन! धर्मराज युधिष्ठिर ने जो कुछ भी आपसे कहा है, वह सब धर्मार्थयुक्त है; तथापि आपको वही कार्य करना चाहिये, जिससे कि सन्धि न हो कर, भीषण संग्राम छिड़ जावे। हे यादवेन्द्र! कौरवों की इच्छा होते हुए भी सन्धि करना ठीक नहीं। हे कृष्ण! अपमानिता द्रौपदी को देख कर, उस अधर्मसभा में जैसे मुझे क्रोध हुआ था, उस क्रोध की शान्ति कभी खून खच्चर हुए बिना नहीं हो सकती। यदि इस विषय में धर्मराज, भीम, अर्जुन आदि भाई

बाधक होंगे, तो मैं उनकी भी आज्ञा न मान कर संग्राम करने के लिये तैयार रहूँगा।

सात्यकि ने कहा—हे कृष्ण! इस महावीर सहदेव ने बिलकुल ठीक कहा है। क्योंकि मेरी और इसके क्रोध की शान्ति तो दुर्योधन का संहार कर चुकने पर ही हो सकेगी। आपने जब वन में पाण्डवों को मृगचर्म पहिने हुए देखा था, तब आपको भी तो क्रोध आ गया था। इस लिये वीर सहदेव का जो मत है वही सब योद्धाओं का मत है।

वैशम्पायन ने राजा जनमेजय से कहा कि, सात्यकि की इस बात को सुन कर वहाँ जितने योद्धा बैठे हुए थे, सब के सब सिंह के समान गर्जने लगे तथा युद्ध के लिये उतावले हुए उन राजाओं ने वीर सात्यकि की बात का बड़ी प्रसन्नता के साथ बार बार अनुमोदन किया।

बयासीवाँ अध्याय

द्रौपदी का क्रुद्ध होना और श्रीकृष्ण का समझाना

वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा—इस प्रकार धर्मराज की धर्मार्थ-संयुक्त बातों को सुन कर शोक और दुःखों से दुर्बल कृष्णाकेशी द्रौपदी, भीम की इस शान्ति को देख कर अत्यन्त खिन्न हुई और सहदेव की तथा महारथी सात्यकि की प्रशंसा कर, कृष्ण से रोते रोते कहने लगी—हे महा-पराक्रमी वीर कृष्ण! दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जैसे पाण्डवों का छल से सर्वस्व छीन कर इन्हें जो अनन्त दुःख दिये हैं वे और धृतराष्ट्र और सञ्जय की गुप्तमन्त्रणा को तथा सञ्जय ने जो जो बातें वहाँ जा कर कही हैं, उन सब को आप जानते ही हैं। हे केशव! धर्मराज ने कौरवों के यहाँ यह सँदेशा भेजा है कि, आप अविस्थल, वृकस्थल, वारणावत, माकन्दी यह चार और पाँचवाँ जो तुम उचित समझो वह इस प्रकार हमें केवल पाँच ग्राम दे दो; किन्तु मुझे तो यह पूरा विश्वास है कि, दुर्योधन इस सँदेशा

को सुन कर भी सन्धि न करेगा। वह यदि चाहे कि, बिना कुछ दिये लिये सन्धि कर लूँ तो उस सन्धि को आप कभी भी स्वीकार न करें। देखिये, पाण्डव सृञ्जयों की सेना के साथ मिल सम्पूर्ण कौरवों का संहार कर सकते हैं। देखो कृष्ण! साम, दाम द्वारा तो दुर्योधन से राज्य पाना कठिन है। अतएव विवश हो कर उसे दण्ड द्वारा ही अपने अधीन करना उचित है। क्योंकि साम, दाम द्वारा जो शत्रु शान्त नहीं होते उन्हें केवल दण्ड ही से शान्त किया जा सकता है। हे माधव! आप यह क्या सन्धि सन्धि पुकार रहे हैं? आपको तो सृञ्जयों की सहायता से शीघ्र ही शत्रुओं का संहार करना चाहिये। आपने यदि यह महान् कार्य कर लिया तो निश्चय आपकी और पाण्डवों की बड़ी कीर्ति होगी और समस्त क्षत्रिय जाति सुख की नींद सोवेगी। क्षत्रियों का तो यह धर्म है कि, ब्राह्मणों को छोड़ अनुचित लोभी क्षत्रियों, वैश्यों, और शूद्रों का संहार कर डालें। ब्राह्मण इस कारण छोड़ दिये कि वे समस्त वर्णों के गुरु माने गये हैं। जिस प्रकार अवध्यों का वध करने से पातक होता है, उसी प्रकार वध्य (मारने योग्य) पापियों का वध न करने से भी पातक होता है। यही धर्मशास्त्र की आज्ञा है। इस लिये हे कृष्ण! आपको पाण्डवों, सृञ्जयों और दाशार्हों के साथ मिल कर कार्य नहीं करना चाहिये; जिससे आप पूर्वोक्त दोष से सदा बचे रहें। हे केशव! सच कहना क्या इस भूमण्डल में कोई सधवा मुझ सरीखी भी स्त्री होगी? मैं यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई राजा द्रुपद की पुत्री, धृष्टद्युम्न की सोदरा भगिनी तथा आपकी धर्मबहिन हूँ। मैं अजमीढ वंश में राजा पाण्डु की पुत्रवधू बनी और इन्द्रतुल्य पाँच पाण्डवों की राजमहिषी हूँ। इन पाँचों वीरों से उत्पन्न हुए पाँच ही मेरे महारथी पुत्र हैं; जो कि आपको धर्मानुसार अभिमन्यु की तरह प्यारे हैं; किन्तु मुझे शोक तो इस बात का है कि, मैं इतने बड़े और ऐसे वीर पराक्रमियों की पुत्र-वधू, भगिनी और पत्नी होती हुई भी अनाथा की भाँति कौरवों की सभा में अपमानित की गयी। यह क्या कोई साधारण बात है? हे जनार्दन! क्या

आपको यह नहीं मालूम है कि, पाञ्चाल देश के राजा और पाण्डव तथा वृष्णियों के जीवित रहते हुए भी पापात्मा कौरवों ने उस अधर्मसभा में मेरा अपमान किया था और यह सब लोग बैठे बैठे देखते रहे। इन्होंने चूँ तक न की। ऐसी परिस्थिति में मुझ अनाथा ने केवल आपके ही चरणों का ध्यान कर, उस महासङ्कट से मुक्ति पायी थी। हे गोविन्द! उसी समय तो मेरे ससुर ने मुझसे कहा था कि, हे देवि! तू जो कुछ वर माँगना चाहे मुझसे माँग ले। उस समय मैंने यह वर माँगा था कि, मेरे पति पाँचो पाण्डव रथ और अस्त्र शस्त्र सहित बिलकुल छोड़ दिये जावें और स्वतन्त्र कर दिये जावें। हे केशव! इस वर के अनुसार ही पाण्डवों को वनवास की आज्ञा दे कर छोड़ दिया गया। हे भगवन्! आप इन सब मेरे क्लेशों को भली भाँति जानते हैं। अतएव आप ही इन बन्धुओं की तथा मेरे पतियों की रक्षा कीजिये। हे जनार्दन! यद्यपि यह ठीक है कि, मैं धृतराष्ट्र की पुत्र-वधू हूँ; मुझे उनके सर्वनाश की अभिलाषा नहीं करनी चाहिये; तथापि आपको विदित है कि, कौरवों ने मुझे बलात्कार से दासी बनाया था। मैं तो यही कहूँगी कि, भीम की गदा को तथा अर्जुन के गाण्डीव धनुष को बारंबार धिक्कार है; जो इनके होते हुए भी दुर्योधन अब तक जीवित है। बस, अब प्रभो! अन्त में फिर भी मैं यही कहूँगी कि, यदि आप मुझ पर दया करना चाहते हों और मुझे अपनी दया की पात्री तथा सेविका समझते हों तो आप अवश्य ही कौरवों पर पूरा क्रोध करें। इस प्रकार परम सुन्दरी देवी द्रौपदी ने रोते हुए भगवान् श्रीकृष्ण से कहा तथा उनके पास जा कर और भी अधिक विलाप करती हुई वह यह कहने लगी—हे जनार्दन! आप वैरियों से सन्धि करना चाहते हों तो अवश्य कीजिये। मैं इसके लिये आपको नहीं रोक सकती; किन्तु आप मेरा यह विनय अवश्य ध्यान दे कर सुन लें कि, जब आप कौरवसमाज में जा कर सन्धि की चर्चा करें, तब इन मेरे खुले हुए केशों का अवश्य ही स्मरण रखना। प्रभो! भीम और अर्जुन भले ही कायर बन कर कौरवों से सन्धि कर लेवें; किन्तु मेरे पिता अवश्य मेरे

महारथी भाइयों सहित कौरवों का संहार करेंगे। मेरे महावीर पाँचो पुत्र महारथी अभिमन्यु को अपना मुखिया बना कर, निश्चय कौरवों को मटिया मेंट कर देंगे। हे मधुसूदन! जब तक मैं उस दुष्ट दुःशासन के कलङ्कित हाथों को, जिसने कि मेरे केशों को खींचा था, भूमि पर कट कर गिरे हुए न देखूँगी, तब तक मेरे हृदय की ज्वाला कभी शान्त न हो सकेगी। आज मुझे इसी प्रकार अपने मन में घुटते घुटते तेरह वर्ष बीत गये; किन्तु आज वह मेरा क्रोध प्रचण्ड पावक के समान भभक उठा है। ओहो! महाबली भीम की बातों को सुन कर तो मेरा हृदय टूँक टूँक हुआ जाता है। इन्हें अब भी धर्म-चर्चा ही सूझ रही है।

यह कहती हुई आँखों से अश्रुधारा वर्षाने वाली द्रौपदी हिचकियाँ ले कर बड़े ज़ोर से रोने लगी। द्रौपदी की यह दशा देख कर, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा—हे कृष्णे! घबरावो मत, अब वह समय शीघ्र ही आने वाला है, जब तुम कौरवों की स्त्रियों को विधवा वेष में विलाप करते हुए देखोगी। अपने बन्धु बान्धवों, पति पुत्रों आदि की मृत्यु का समाचार पा कर, वे वैसा ही करुणक्रन्दन करेंगीं जैसा कि, तुम चाहती हो। मैं अब भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि के साथ धर्मराज की तथा विधि विधान की आज्ञा से शीघ्र ही शत्रुओं का संहार करूँगा। अब कौरवों का अन्त समय आ चुका है। यदि वे मेरी बातों को न सुनेंगे तो निश्चय ही वे संग्रामभूमि में सदा के लिये सो जावेंगे और उनके महाकाय शवों के द्वारा शृगाल और कुत्तों का भोजन होगा। हे द्रौपदी! निश्चय रखो, एक बार हिमालय भले ही चल विचल हो जावे, चाहे इस पृथिवी के हज़ारों टुकड़े हो जावें और नक्षत्रमण्डल सहित गगनमण्डल भी भले ही भूमि पर आ गिरे; किन्तु मेरे यह वाक्य कभी झूँठे नहीं हो सकते। इस लिये बस अब मत घबड़ाओ। अपने आँसुओं को पोंछ डालो। मैं आज तुम्हारे सम्मुख यह निश्चित और दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ कि, अब तुम्हारे शत्रुओं का शीघ्र ही नाश हो जावेगा तथा तुम्हारे पतियों को विजयलक्ष्मी प्राप्त होगी।

तिरासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का हस्तिनापुरगमन

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहा—हे भगवन्! आप कौरव और पाण्डव इन दोनों ही के समान सम्बन्धी और प्रिय सुहृद हैं। अतएव आपके लिये दोनों पक्ष समान हैं। आपको ऐसा करना चाहिये जिससे दोनों पक्ष का भला हो। जैसे भी हो सके वैसे आपको इस विद्वेष की आग को बुझाने का यत्न करना चाहिये। आप यहाँ से कौरवों के पास जाइये और दुष्ट एवं क्रोधी दुर्योधन को सन्धि कर लेने के लिये समझाइये। यदि वह मृत्यु के अधीन हो कर आपकी धर्मार्थपूर्ण हितकारी बातों को न मानेगा तो वह निश्चय ही अपने किये का फल पावेगा।

भगवान् वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन! मैं अब राजा धृतराष्ट्र से मिलने के लिये जाता हूँ और वहाँ जा कर आपकी और कौरवों की भलाई करूँगा।

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय! हेमन्त ऋतु के प्रारम्भ में कार्तिक मास में जब कि, धान पकने के लिये होते हैं. तब रेवती नक्षत्र था और प्रातःकाल का सुहावना समय था। मित्र मुहूर्त्त में महाबलवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र ऋषि मुनियों की स्तुति और आशीर्वादों को सुनते हुए जागे। फिर प्रातःकाल के नित्य कर्म को समाप्त कर, अनेक माङ्गलिक वस्तुओं का दर्शन स्पर्शन करते हुए, वे अग्निदेव की प्रदक्षिणा कर, धर्मराज की बातों को सोच कर, सात्यकि से बोले। हे सात्यकि! मेरे रथ में शङ्ख, चक्र, गदा आदि सब अस्त्र शस्त्र रख दो। दुर्योधन दुराचारी है; कर्ण आदि सभी दुष्टप्रकृति के मनुष्य हैं। अतः शत्रु दुर्बल ही क्यों न हो, उसकी कभी उपेक्षा न करनी चाहिये।

भगवान् की आज्ञा को पा कर, सेवक रथ जोतने के लिये तुरन्त ही दौड़ पड़े। कालाग्नि के समान प्रदीप्त, सूर्यचन्द्र के समान तेजोमय पृथ्वी और आकाश में समान रूप से चलने वाले, पहियों से शोभित तथा चन्द्र, अर्ध-

चन्द्र, पशु, पक्षी आदि के चित्रों से मनोहर, अनेक अमूल्य मणि माणिक्यों से खचित, सुन्दर पुष्पों से सज्जित, शत्रुओं से अजेय सुघोष नामक रथ पर, जिसकी ध्वजा में श्रीगरुड़ जी विराजमान हैं, श्रीकृष्ण जी बैठ गये और अपने रथचक्रों की गम्भीर गर्जना से पृथिवी और आकाश के प्रतिध्वनित करते हुए हस्तिनापुर के विदा हुए। सुन्दर माङ्गलिक पक्षियों ने श्रीकृष्ण की यात्रा के समय उनकी दहिनी ओर आ कर यात्रा की निर्विघ्न समाप्ति और उनके विजय की सूचना दी। सारस तथा हंस आदि पक्षियों ने अपनी प्रिय मधुर बोलियों से भगवान् की यात्रा की सफलता प्रकट की। विविध पवित्र हविष्यान्नों द्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रसन्न किये हुए अग्निदेव की भी निर्धूम ज्वालाएँ दहिनी ओर को दौड़ने लगीं। वसिष्ठ, वामदेव, भृगु, कुशिक, गय, क्रथ, शुक्र, नारदादि ब्रह्मर्षि भी भगवान् की दहिनी ओर आ कर खड़े हो गये तथा श्रीकृष्ण की पूजा कर, उन्हें हस्तिनापुर के लिये बिदा किया। कुछ दूर तक उन्हें पहुँचाने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर भीम, नकुल, सहदेव, चेकितान, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, महाराज द्रुपद, शिखण्डी आदि सभी महारथी वीर गये। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह से शून्य तथा निर्मलमति हैं। और कभी अन्याय मार्ग पर नहीं जाते हैं, धैर्य वीर्य और बुद्धि में सब से श्रेष्ठ, देवों के भी आदिदेव और सर्व-गुण-सम्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र हैं; उनको गले लगा कर धर्मराज युधिष्ठिर ने उन सब राजाओं के सम्मुख यह कहा—

हे कृष्ण! बाल्यावस्था से ले कर आज तक हमारा पालन पोषण करने हारी निरन्तर उपवास तपश्चर्या और स्वस्ति-शान्ति-पाठ में लगी रहने वाली तथा देवताओं, अतिथियों और गुरुजनों की शुश्रूषा द्वारा निरन्तर हम लोगों का मङ्गल चाहने वाली हमारी माता कुन्ती वहीं हैं। वे हमें बड़ी प्यारी हैं। इस लिये आप सब से पहिले उनका कुशल क्षेम पूछना। हे वासुदेव! जैसे नाव समुद्र से पार लगा देती है, वैसे ही हमें दुर्योधन से होने वाले क्लेशों से उस माता ने बचाया था। हे कृष्ण! उसने कभी दुःख नहीं भोगे; किन्तु आज कल वह हम लोगों के वियोग से असह्य पुत्रों की वियोग जन्य

व्यथा को सहन कर रही है। इस लिये आप उसको धैर्य देवें और हमारा नाम ले कर उसके चरणों में प्रणाम कहें। प्रभो ! बतलाओ तो सही क्या कभी हमारे क्लेशों का भी अन्त होगा जब कि हम अपनी वन्दनीया माता को सुखी कर सकेंगे ? देखिये, जब हम लोग वनवास के लिये जा रहे थे, तब वह हमारे पीछे रोती हुई दौड़ी दौड़ी फिरती थी; किन्तु हम लोग उसे उसी हालत में छोड़ कर, वन को चले आये थे। पहिले तो प्रभो ! मुझे यह विश्वास नहीं कि, वह जीवित होगी और यदि जीवित हुई तो वह निश्चय पुत्र-वियोग से बड़ी कातर होगी। इस लिये आप उसे बड़ी भक्ति से हम लोगों की ओर से प्रणाम कहना और जो हमसे बड़े धृतराष्ट्र आदि वहाँ हों, उनको भी प्रणाम कहना। भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, बाल्हीक तथा महात्मा विदुर जी को प्रणाम कहना। इस प्रकार उन सब राजाओं के मध्य में युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी की प्रदक्षिणा कर, उन्हें विदा किया। इसके उपरान्त जब भगवान् कृष्ण चल दिये, तब चलते समय अर्जुन ने उनसे कहा, हे पुरुषोत्तम ! देखिये, वहाँ कौरवों के यहाँ जा कर पहिले हमें आधा राज्य देने वाली सन्धि की शर्त को कौरवों के सन्मुख रखना। क्योंकि यह बात तो समस्त राजाओं को अच्छी तरह मालूम है। यदि अब दुर्योधन ने बिना किसी प्रकार का तिरस्कार किये ही हमें आधा राज्य दे दिया, तो निश्चय ही हमें अत्यन्त आनन्द होगा और वह भी क्लेशों से छूट जावेगा और कौरवकुल के सर्वनाश का कारण वह न बनेगा ; किन्तु यदि इसके विपरीत उसने हमें राज्य नहीं दिया, तो बस एक दुर्योधन ही के दुराचार से मैं अन्य क्षत्रिय राजाओं का भी सर्वनाश कर डालूँगा।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! जिस समय अर्जुन कृष्ण से यह सब कह रहे थे, उस समय भीम अपने मन में बड़ा ही प्रसन्न हो रहा था। उस समय उसका शरीर थर थर काँप रहा था। भुजदण्ड फड़क रहे थे। उसी समय उस वीर भीम ने बड़ी भयङ्कर गर्जना की, जिससे हाथी घोड़े भी भयभीत हो कर, हगने और मूतने लगे तथा समुपस्थित राजमण्डली के

हृदय भी काँपने लगे। बस, यह सब अपना निश्चय कह कर, अर्जुन कृष्ण की आज्ञा से पीछे लौट आये और भगवान् कृष्ण अपने वेगशाली घोड़ों वाले रथ को हस्तिनापुर की ओर ले कर चल दिये। भगवान् के घोड़े उस समय इस तेज़ी के साथ चले जा रहे थे, मानों वे पवन ही हों अथवा मार्ग का आचमन ही किये लेते हों। राह में भगवान् ने देखा कि, उनके रथ के दोनों ओर अनेक ऋषिगण खड़े हुए हैं। फिर क्या था! भगवान् तुरन्त रथ से उतर पड़े और उनका आतिथ्य स्वीकार करने लगे तथा तनमय हो प्रणाम करते हुए यह कहने लगे कि, हे महानुभावो! आप सब लोगों का धर्मानुष्ठान निर्विघ्न समाप्त होता जाता है या नहीं? क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि आप सब ब्राह्मणों की आज्ञाओं का पालन तो करते हैं? इसके बाद भगवान् ने पूँछा कि, हे ऋषियो! आप लोगों का गन्तव्य मार्ग क्या है? हे भगवन्! बतलाइये मैं आप लोगों की क्या सेवा करूँ? आप लोग धराधाम पर क्यों पधारे हैं?

भगवान् वासुदेव के इस प्रश्न को सुन कर, देवदानवाधीश्वर के मित्र श्रीपरशुराम जी ने आ कर श्रीकृष्ण जी को छाती से लगाया और कहा—हे पुरुषोत्तम! यह सब प्राचीन इतिहास के ज्ञाता महातपस्वी विद्वान् ब्राह्मण तथा देवर्षि हैं और हस्तिनापुर में एकत्र होने वाले राजमण्डल को देखने के लिये आये हैं। यहाँ अन्य जो कोई भी सभासद तथा आप सरीखे सत्यमूर्ति महानुभाव हैं वे सब दर्शनीय ही कहे जाते हैं। हे भगवन्! आप कौरवों की सभा में जा कर जो धर्मार्थपूर्ण उपदेश देने वाले हैं, उसे हम लोग सुनना चाहते हैं। द्रोणाचार्य महात्मा विदुर तथा आप जिस सभा में एकत्र हो कर सत्य, प्रिय एवं हितकारी उपदेश देंगे उसे हम लोग भी देखना और सुनना चाहते हैं। हे प्रभो! बस अब आप पधारिये। हम लोग भी सभा में आ कर आपका दर्शन करेंगे।

चौरासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण की यात्रा

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! हस्तिनापुर को जाते हुए श्रीकृष्ण जी के साथ शत्रुओं का संहार करने वाले दश महारथी एक सहस्र पैदल, एक सहस्र अश्वारोही, विविध भोजन सामग्री तथा असंख्य सेवक भी गये थे।

जनमेजय ने कहा—हे प्रभो ! कृपया यह बतलाइये कि, जिस समय महात्मा श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये उस समय क्या क्या शकुन हुए थे ? वह बोले—राजन् ! सुनो, जिस समय वासुदेव हस्तिनापुर को चले, उस समय बिना बादलों ही के घनघोर वज्र गर्जन होने लगा तथा बिना बादल के ही वृष्टि होने लगी। पूर्व दिशा की ओर बहने वाली सिन्धु आदि नदियाँ पश्चिम को बहने लगी थीं। दिशाएँ ऐसे भयङ्कर अन्धकार से भर गयी थीं कि, कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था। हे राजन् ! जलाशय उबल पड़े। आग धधकने लगी तथा वसुन्धरा भी काँपने लगी। संसार अन्धकार तथा धूल से व्याप्त हो गया। वस्तु परिस्थिति का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था। आकाश में अनेक भयङ्कर शब्दों की वर्षा होने लगी, किन्तु कहीं कोई शब्द-कारी प्रतीत नहीं होता था। अतएव वह समय अत्यन्त आश्चर्यजनक था। नैऋत्य दिशा में बहने वाले प्रचण्ड पवन से हस्तिनापुर की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बड़े बड़े वृक्ष उखड़ कर, चकनाचूर हो गये थे; किन्तु भगवान् वासुदेव जिस जिस मार्ग से जाते थे वहाँ वहाँ अत्यन्त मनोहर शीतल मन्द सुगन्ध समीर बहता था तथा सभी शकुन अच्छे होते थे। उनका मार्ग कुश काँटों से रहित साफ़ सुथरा था तथा आकाश से पुष्पवर्षा होती थी। सरोवरों में खिले हुए असंख्य कमल उनकी यात्रा का अनुमोदन करते थे। मार्ग में अनेक विद्वान् ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते जाते थे तथा मधुपर्क आदि द्वारा उनका आतिथ्य किया

जाता था। सब प्राणियों का कल्याण चाहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर स्त्रियों ने विविध वन्य कुसुमों की वर्षा की। इस प्रकार भगवान् वासुदेव अनेक वन उपवन ग्राम नगर देश और धर्मात्माओं के निवास स्थानों को देखते हुए शालीभवन नामक स्थान में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सभी मनुष्यों को प्रसन्नचित्त तथा आनन्दमग्न पाया। शालीभवन में रहने वाले लोग निरन्तर भरतवंशीय नरपाल की रक्षा में रहा करते थे। इस कारण उन्हें दूसरे राजाओं के दुःख अथवा सुख का कुछ भी ज्ञान नहीं था। इन लोगों ने जब भगवान का आगमन सुना तब ये सब ग्राम के बाहर निकल आये और कृष्णदर्शन की लालसा से मार्ग के निकट पंक्ति बाँध कर, खड़े हो गये। प्रचण्ड पावक के समान तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र जी आज हमारे भाग्य से अतिथि बन कर आये हैं। इस विचार से उन्होंने वासुदेव की पूजा की। जिस समय ऊषाकाल हुआ तब भगवान् वासुदेव वृकस्थल नामक ग्राम में पहुँचे और सारथि से रथ छोड़ देने के लिये आज्ञा दे कर स्वयं शौचकर्म से निबट सन्ध्यावन्दन करने लगे। सारथि दारुक ने भी उन घोड़ों के साज को उतारा और उन्हें मलमला कर ताज़ा कर चुकने के बाद चुगने को छोड़ दिया। इधर वृकस्थल ग्रामनिवासी कृष्णदर्शन के लिये आये हुए थे। भगवान् जब सन्ध्योपासन से निवृत्त हुए, तब उन्होंने उन वृकस्थलवासी मनुष्यों से कहा कि, देखिये, हम धर्मराज युधिष्ठिर के काम के लिये हस्तिनापुर जा रहे हैं। इस कारण यहाँ रात भर ठहरेंगे। इतना सुनते ही वृकस्थल-निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ भगवान् के निवास का प्रबन्ध कर दिया और अनेक भोजन सामग्रियाँ भी ला कर एकत्र कर दीं तथा उस ग्राम में रहने वाले कुलीन विद्वान् ब्राह्मणों ने भगवान् श्रीकृष्ण की अनेक स्वस्तिवाचनों से यथाविधि पूजा की। पूजन अर्चन के बाद उन सब लोगों ने भगवान् से प्रार्थना की कि, हे भगवन्! आज हमारा बड़ा सौभाग्य है जो आप यहाँ पधारे हैं। अब कृपया चल कर हमारे घरों को भी पवित्र कीजिये। भगवान् ने उनका कहना मान लिया

और उनके घरों को देखने के लिये गये और लौट कर अपने स्थान में आ कर उन सब विद्वान् ब्राह्मणों को सुन्दर स्वादिष्ट भोजनों से सन्तुष्ट किया तथा वह रात्रि वहाँ उन्होंने बड़े सुख से बितायी।

पचासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के लिये विश्रामभवन का निर्माण

इधर धृतराष्ट्र ने जब दूतों द्वारा भगवान् वासुदेव का आगमन सुना, तब तो उनके रोंगटे खड़े हो गये और भीष्म, द्रोण, सञ्जय, महात्मा विदुर और दुर्योधन आदि मन्त्रियों को बुला कर कहने लगे—देखिये, आज कल इधर उधर चारों ओर स्त्री बालवृद्ध तथा अन्यान्य अतिथियों द्वारा भी एक बड़े आश्चर्य की बात सुनायी देती है और वह यह है कि, पाण्डवों की ओर से भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण यहाँ आवेंगे। यदि यह बात सच है, तब तो ठीक है। क्योंकि वासुदेव तो सब प्राणियों के अधिपति और हम सब लोगों के परम पूजनीय हैं। वे बड़े धीर वीर ओजस्वी और बुद्धिमान हैं। वे सचमुच साक्षात् सनातन धर्म रूप हैं। उनके उपासक सदा प्रसन्न और द्रोही सदा अप्रसन्न रहते हैं। यदि आज वे हमारे सत्कार और सेवा से प्रसन्न हो गये तो निश्चय हम लोगों के सब मनोरथ पूर्ण हो जावेंगे। अतएव बेटा दुर्योधन! उनकी प्रसन्नता के लिये अभी से सब समान जुटाओ। उनको मार्ग में कोई कष्ट न हो इसलिये ठहरने और आदर सत्कार आदि की सामग्रियों का प्रबन्ध करो, जिससे तुम पर वे अत्यन्त प्रसन्न हो जावें। अथवा हे भीष्म जी! आप ही इस विषय में सम्मति दीजिये कि, क्या करना चाहिये?

भीष्म आदि सभी महारथियों ने राजा धृतराष्ट्र की इस बात का अनुमोदन करते हुए कहा कि, आपका यह विचार बड़ा अच्छा है। अवश्य भगवान् वासुदेव के सत्कार का उचित और अनूठा

प्रबन्ध करना चाहिये। इस प्रकार सब की अनुमति पा कर दुर्योधन ने भी सभा (ठहरने के स्थानों) को रचने और भगवान् का यथोचित स्वागत करने का प्रबन्ध करना प्रारम्भ किया। फिर क्या था आज्ञा पाते ही सब सेवकों ने अनेक स्थानों पर कृष्ण जी के ठहरने और स्वागत करने का उचित प्रबन्ध कर दिया। अनेक रत्नजटित सभामन्दिर बनवाये गये। अनेक उत्तमोत्तम आसन, सुन्दर स्वच्छ वस्त्राभूषण, स्वादिष्ट भोजन, सुगन्धित मालाओं का भी प्रबन्ध किया गया। वैसे तो भगवान् के ठहरने के लिये अनेक स्थानों पर सभाभवन बनाये गये; किन्तु सब से उत्तम सभाभवन और आदर सत्कार का प्रबन्ध वृकस्थल नामक नगर में किया गया। इन सब अलौकिक और दिव्य कार्यों का उचित प्रबन्ध करने के बाद राजा दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के लिये इन सब प्रबन्धों की सूचना भी दे दी; किन्तु मधुसूदन श्रीकृष्ण इन सब की ओर आँखें उठा कर भी न देखते हुए सीधे धृतराष्ट्र के महल की ओर ही चले गये।

छियासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण की महमानदारी की तैयारियाँ

राजा धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के शुभागमन की सूचना पा कर महात्मा विदुर से कहा—हे विदुर जी! उपप्लव्य से आ कर श्रीकृष्ण आज वृकस्थल में ठहरे हैं और प्रातःकाल ही यहाँ आ जावेंगे। वे सात्वतों के अग्रगण्य और द्वारकाधीश हैं तथा वे उदारचेता, महापराक्रमी, यादवों के पालक पोषक, विश्वम्भर तथा सकल ब्रह्माण्ड के नायक हैं। जैसे देवगुरु बृहस्पति की आज्ञा में आदित्य, रुद्र, वसु आदि चलते हैं, वैसे ही वृष्णि और अन्धक भगवान् की सम्मति से काम करते हैं। हे विदुर जी! पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणों से युक्त श्रीकृष्ण जी का मैं जिस रीति और धूमधाम के साथ स्वागत करना चाहता हूँ, वह सब तुम्हें बतलाता हूँ। सुनो!

सब से पहिले मैं श्रीकृष्ण जी से जब भेंट करूँगा, तब मैं उन्हें सोलह सोने के रथ प्रदान करूँगा, जिनमें चार चार एक रंग के वाल्हीक घोड़े जुते होंगे तथा आठ मतवाले हाथी जिनके साथ आठ अनुचर होंगे, इन हाथियों के गण्डस्थलों से मद चू रहा होगा और सौ दासियाँ दासों सहित ऐसी दूँगा कि जो अत्यन्त स्वच्छ सुन्दर और कुन्दन के समान निर्मल होंगी । हे महात्मन् ! श्रीकृष्ण जी को मैं १८ हज़ार भेड़ें भी दूँगा जो मुझे पर्वती राजाओं से भेट में मिले हैं । चीनदेशी हिरनों की सुन्दर मृगछालाएँ श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय हैं । अतएव वे सब भी इन्हें प्रदान करूँगा ।

अन्धेरी रात में चन्द्रमा के समान चमकने वाला यह विमल मणि भी मैं उन्हें भेंट कर दूँगा । अपना रथ भी उन्हींको समर्पित करूँगा । उनके भोजन के द्रव्य उनके खर्च से अठगुने अधिक प्रतिदिन भेजा करूँगा । अपने सब पुत्रों को साथ ले कर सुन्दर स्यन्दन पर सवार हो कर मैं श्रीकृष्ण की अगवानी करने के लिये जाऊँगा । हाँ, दुर्योधन अवश्य नहीं जावेगा । वेश्यायें तो हज़ारों की संख्या में अपना माङ्गलिक स्वरूप बना कर भगवान् के दर्शनार्थ पैदल जावेगीं ही, किन्तु जो कन्यायें भी भगवान् के दर्शनार्थ इस नगर से जावेंगी, वे सब पैदल और निःसंकोच भाव से ही जावेंगी । आबाल वृद्ध युवा नर नारी उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगी, जिस प्रकार कि भगवान् भास्कर श्रीसूर्य देव का किया जाता है ।

अतएव अब सेवकों को ऐसी आज्ञा देनी चाहिये कि, वे लोग शीघ्र ही ध्वजा पताकाओं द्वारा नगर को तथा जिस मार्ग से श्रीकृष्ण भगवान् पधारें उस मार्ग को झाड़ बुहार कर साफ़ और खूब अच्छी तरह से सजा देवें ।

हे विदुर ! अब देर करना व्यर्थ है । शीघ्र ही दुश्शासन के भवन को लिपवा पुतवा कर साफ़ करवा दो । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के पधारने

योग्य यही मुझे उत्तम जान पड़ता है। क्योंकि यह अत्यन्त मनोहर विश्राम-भवन है। इसमें सदा छहों ऋतु एक समय में विद्यमान रहते हैं। अच्छा एक बात यह भी है कि मेरे और दुर्योधन के जो उत्तम और बहुमूल्य पदार्थ हैं, वे भी इसीमें ला कर रखवा दीजिये। उन सब को भी मैं श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पण करूँगा।

सतासीवाँ अध्याय

विदुर के विचार

महात्मा विदुर ने कहा—हे राजन्! आप त्रैलोक्यपावन और सम्मानपात्र हैं। आपके यह वचन ही संसार में आपकी प्रतिष्ठा करा रहे हैं। आप वयोवृद्ध हैं। इसी कारण आपका तर्क और शास्त्रीय ज्ञान दृढ़ और निश्चल है। जैसे सूर्य में प्रकाश, चन्द्र में कला, सागर में लहरें सदा रहती हैं वैसे ही आपके भीतर सदा धर्म का निवास रहता है। इसमें आपको भी सन्देह नहीं है।

संसार आपके गुणों पर मुग्ध है और इन्हींके कारण सदा आपमें अनुराग रखता है। इससे आपका मुख्य कर्त्तव्य यही है कि, आप अपने बन्धु बान्धवों सहित गुणों की रक्षा कीजिये। कोमल और विनम्र बन कर अपने वंश की रक्षा कीजिये। मूर्खता में पड़ कर कहीं ऐसा न हो कि आपके पुत्र पौत्र बन्धु बान्धव सब के सब नष्ट हो जावें और आप जो श्रीकृष्ण के लिये पूर्वोक्त सब वस्तुयें देना चाहते हैं सो तो ठीक ही है। क्योंकि यह तो वस्तुएँ कुछ असाधारण नहीं हैं। भगवान् तो समस्त पृथ्वी के भी ग्रहण कर लेने के अधिकारी हैं। हाँ, यह बात मैं अवश्य अपनी शपथ खा कर कह रहा हूँ कि, तुम यह जो कुछ भी कर रहे हो, वह अपना धर्म समझ कर और भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये नहीं कर रहे हो। यह सब तुम्हारा छल है, कपट है और जनवञ्चिका

माया है। हे राजन्! याद रखिये, मैं आपकी ऊपरी करतूतों से आपकी नस नस का हाल जानता हूँ। यह आप निश्चय समझ लें कि, यदि पाण्डवों की प्रार्थना के अनुसार उन्हें आपने पाँच ग्राम नहीं दिये, तो भगवान् कृष्ण कभी भी सन्धि न करेंगे।

मुझे आपकी बातों पर बड़ी हँसी आती है। आप चाहते हैं कि, कृष्ण को धनलोभ से अपनी ओर खींच लें और पाण्डवों के विरुद्ध उभाड़ कर अपना काम बना लें। सो महाराज! इस विचार को तो आप किसी पुराने तहख़ाने में बाँध कर डाल दीजिये। श्रीकृष्ण धनलोभ से अथवा पाण्डवों की निन्दा से कभी अप्रसन्न हो कर पाण्डवों का साथ न छोड़ेंगे। वे अर्जुन को अपना प्राण ही समझते हैं। अर्जुन को वे कभी नहीं छोड़ सकते। देखो मैं भगवान् की महिमा और प्रेम से पूर्णतया परिचित हूँ। आपके जलपूर्ण कुम्भ और कुशल प्रश्न को छोड़ कर, अन्य चीज़ों की ओर वे आँख उठा कर भी नहीं देखेंगे। हाँ, वे आत्माभिमानी सम्मान के पात्र हैं। उनका अतिथि-सत्कार अवश्य ही करना चाहिये। भगवान् वासुदेव कौरवों की भलाई के लिये ही यहाँ आ रहे हैं। इस कारण जिस मतलब और जिस बात से वे प्रसन्न हों और उनकी इच्छा पूरी हो, वही आप उनके समर्पण कीजिये। भगवान् तुम्हारी, तुम्हारे वंश की, दुर्योधन की और पाण्डवों की सब की भलाई चाहते हैं। अतएव जैसा वे कहें वैसा ही करना।

हे राजन्! तुम पाण्डवों के पिता हो वे आपके प्यारे पुत्र हैं। आप पूज्य और वृद्ध हैं। वे खिलाड़ो बच्चे हैं। इस लिये आप उन पर पुत्र के समान स्नेह पूर्ण व्यवहार कीजिये।

अठासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण को बंदी बनाने का परामर्श

दुर्योधन बोला—हे पूज्य पितृवर ! महात्मा विदुर जी का कथन बिल्कुल सत्य है। वासुदेव पाण्डवों पर बड़ा ही स्नेह करते हैं। पाण्डवों को उनके स्नेह से वञ्चित कर देना अथवा भगवान् वासुदेव को इधर अपने पक्ष में कर लेना असम्भव है। अतएव ऐसी परिस्थिति में कृष्ण के लिये इतना धन व्यय करना और भेंट देना सर्वथा व्यर्थ है। मेरा आशय यह नहीं है कि, श्रीकृष्ण आदरणीय पुरुष नहीं हैं ; किन्तु इस समय उनका ऐसे समारोह के साथ आदर सत्कार करने से उन्हें यही ज्ञात होगा कि, ये सब भयभीत हो कर हमारी खुशामद कर रहे हैं। मेरी सम्मति में तो वह काम कभी भी नहीं करना चाहिये, जिससे वीर क्षत्रियों को अपमानित होना पड़े। यह मैं जानता हूँ कि, श्रीकृष्ण तीनों लोकों में पूजनीय हैं; किन्तु वर्त्तमान स्थिति हमें यही बतलाती है कि, कृष्ण का कुछ भी सत्कार और भेंट न की जाय। क्योंकि अब संग्राम तो प्रारम्भ हो ही चुका है। वह तो इनके सत्कार से बंद हो ही न जावेगा। अतएव यह सब सत्कार व्यर्थ है।

इन सब बातों को सुन कर, भीष्म पितामह ने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन् ! चाहे आप कृष्ण को भेंट देवें या न देवें। इससे वे कभी अप्रसन्न न होंगे; किन्तु आप लोग उनका तिरस्कार करने के योग्य नहीं हैं। अतः उन्हें अपमानित करने में आपकी भलाई नहीं है। हे राजन् ! यह आप निश्चय समझें कि, उनके निश्चय को संसार में कोई भी मनुष्य पलट सकने की सामर्थ्य नहीं रखता है। अतः आपसे वे जो कुछ कहें उसीको आप आँख मींच कर, कर डालना। हे दुर्योधन ! तुम्हें श्रीकृष्ण के आज्ञानुसार पाण्डवों से अवश्य सन्धि कर लेनी चाहिये। देखो श्रीकृष्ण बड़े धर्मज्ञ हैं। अतः उनकी बातें भी धर्म की और कौरव तथा पाण्डव दोनों को हितकारी होंगीं। तुम्हें और तुम्हारे प्रिय बन्धुओं को उनके साथ खूब प्रेम का व्यवहार करना चाहिये।

दुर्योधन बोला—पूज्य दादा जी ! क्षमा कीजिये । जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं कभी राजसम्पदा को बाँट कर पाण्डवों के साथ कभी न भोगूँगा । अब मैंने जो महत्कार्य सोचा है वह यह है कि, इन कृष्ण को जो पाण्डवों पर स्नेह रखते हैं; क़ैद कर लिया जावे । देखिये इनके क़ैद होते ही सब यादव तथा पाण्डव और यह ब्रह्माण्ड भी मेरे वश में हो जावेगा । वे कल ही यहाँ आने वाले हैं । अतएव आप लोग इस महा मंत्र को गुप्त रखते हुए पूर्ण विचार के साथ मुझे सम्मति प्रदान कीजिये ।

वैशम्पायन बोले—देखो राजन् ! दुर्योधन के इस नीच विचार को सुन कर धृतराष्ट्र तथा उनके मन्त्रियों को बड़ा ही हार्दिक क्लेश हुआ और धृतराष्ट्र दुर्योधन से कहने लगे—अरे दुर्योधन ! तू यह क्या बक रहा है । तुझे तो ऐसी बात मुख से भी नहीं निकालनी चाहिये । क्योंकि यह सत्य धर्म नहीं है । प्रथम तो वे पाण्डवों के दूत बन कर आ रहे हैं । दूसरे वे हमारे प्रिय और निःस्वार्थ निष्कपट बन्धु हैं । फिर भला तू ही बतला कि, ऐसे मनुष्य को क़ैद कर लेने में क्या अधर्म नहीं है ?

भीष्म पितामह ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह बेटा अब शीघ्र ही मौत के मुँह में जाना चाहता है । इसी कारण हितैषी बन्धुओं की बात न मान कर, अनर्थ करने पर उतारू हो रहा है और तुम्हारा भी यही हाल है । तुम इस पापी के पृष्ठपोषक बन कर अपने हितैषियों के उपदेशों की उपेक्षा कर रहे हो । याद रखो, दुष्टात्मा दुर्योधन और उसके सहकारी मन्त्री, यदि सर्वशक्ति-सम्पन्न श्रीकृष्ण के हाथ पड़ गये, तो बस एक क्षण भर में ही परलोक की हवा खाते देख पड़ेंगे । इस लिये इस नीच दुरात्मा अत्याचारी पापी दुर्योधन की बातें, मैं अब नहीं सुनना चाहता । यह कह कर प्रबल पराक्रमी भीष्म पितामह क्रुद्ध हो कर, सभाभवन के बाहर चले गये ।

नवासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का विदुरभवन में गमन

वैशम्पायन बोले—इधर श्रीकृष्ण जी ने प्रातःकाल होने पर सन्ध्योपासनादि कर्म किये और ब्राह्मणों से आज्ञा ले कर वे हस्तिनापुर की ओर चल दिये। वृकस्थल निवासियों ने उन्हें कुछ दूर पहुँचाया और अन्त में वासुदेव श्रीकृष्ण से आज्ञा ले कर वे सब अपने अपने घरों को लौट गये। दुर्योधन को छोड़ कर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा अन्य पुरवासी लोग अनेक सवारियों पर तथा पैदल श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ गये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा धृतराष्ट्र के सब पुत्र आ कर मार्ग ही में श्रीकृष्ण से मिले और भगवान् वासुदेव इन सब के साथ बड़ी प्रसन्नता से हस्तिनापुर में पहुँचे। श्रीकृष्ण के सम्मान के लिये नगर सजाया गया। मुख्य मुख्य राजमार्गों (सड़कों) पर विविध रत्न लगाये गये थे। हे राजन्! उस समय बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष आदि कोई भी अपने घर पर नहीं थे; बल्कि भगवान् के दर्शनार्थ बाहर निकल आये थे। जिस समय श्रीकृष्ण चौराहे पर आये, उस समय भूमि पर खड़े हुए मनुष्य उनकी स्तुति कर रहे थे। उस समय कृष्णदर्शनार्थ आयीं हुईं सुन्दरियों से भरे हुए बड़े बड़े महल भी भार से हिलते डुलते से प्रतीत हो रहे थे। मनुष्यों से खचाखच भरे हुए राजमार्ग पर चलने के लिये बड़े वेगशाली भगवान् के घोड़े असमर्थ हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी धृतराष्ट्र के सुन्दर शुभ्र महल में प्रविष्ट हुए जो कि बड़े उन्नत प्रासादों से शोभित हो रहा था। श्रीकृष्ण भगवान् जब तीन ड्योढ़ियाँ पार कर चुके, तब उन्हें धृतराष्ट्र के दर्शन हुए। भगवान् वासुदेव के आते ही राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोण के साथ ही साथ उठ कर खड़े हो गये तथा कृपाचार्य, सोमदत्त, राजा बाल्हीक आदि सभी श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना के लिये अपने अपने आसनों से उठ खड़े हुए। इसके उपरान्त राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँच कर, वासुदेव ने शीघ्र ही भीष्म जी की स्तुति की तथा सब का यथो-

चित सत्कार कर चुकने के बाद उन्होंने अन्य राजाओं का भी यथायोग्य अभिनन्दन किया। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, वाल्हीक और सोमदत्त से मिलने के बाद श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की आज्ञा से समीप में रक्खे पड़े हुए सोने के ऊँचे सिंहासन पर जा कर बैठ गये। भगवान् जब सिंहासन पर विराज गये तब पुरोहितों ने शास्त्रीय विधि से श्रीकृष्ण के लिये गौ तथा मधुपर्क समर्पण किया। इस प्रकार सम्मानित श्रीकृष्ण अपने स्वजन बन्धुओं की भाँति कौरवों से घिर कर बैठ गये और हास्य विनोद करने लगे। थोड़ी देर बाद राजा धृतराष्ट्र के आतिथ्य को स्वीकार कर लेने पर सब से आज्ञा ले श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के निवास भवन में चले गये। वहाँ पहुँचने पर महात्मा विदुर ने अनेक माङ्गलिक सामग्रियों से सब कामनाओं के अधिपति श्रीकृष्ण का पूजन किया और यह कहने लगे—हे पद्मलोचन! मुझे आपके दर्शनों से जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन मैं अपनी जिह्वा से नहीं कर सकता। आप स्वयं अन्तर्यामी हैं। इस प्रकार धर्मज्ञ विदुर ने श्रीकृष्ण का आतिथ्य सत्कार कर पाण्डवों का कुशल क्षेम पूँछा। श्रीकृष्ण जी ने भी पाण्डवों का सारा हाल विदुर जी को कह सुनाया। क्योंकि वे जानते थे कि, विदुर बड़े धर्मात्मा और पाण्डवों के स्नेही हैं। अतएव उनसे पाण्डवों के उचित और यथार्थ समाचार कह देने में कोई सन्देह की बात नहीं है।

नब्बे का अध्याय

श्रीकृष्ण-कुन्ती संवाद

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस प्रकार शत्रुओं का नाश करने वाले श्रीकृष्ण जी विदुर से मिल कर अपनी बुआ कुन्ती से तीसरे पहर के समय मिलने को गये। वह कृष्ण को देखते ही दौड़ कर गले से चिपक गयी और अपने पुत्र पाण्डवों की याद कर के रोने लगी। श्रीकृष्ण सदा से पाण्डवों के सहचर रहे थे। इधर इनका भी चिरकाल से दर्शन नहीं हुआ

था, इस कारण कुन्ती को और भी अधिक रोना आ गया। यथोचित अतिथि सत्कार पा कर, प्रसन्नता से विराजमान श्रीकृष्ण जी से कुन्ती ने गद्गद हो कर कहा; हे कृष्ण! देखो, मेरे पुत्र पाण्डव सभी निरन्तर गुरुजनों के आज्ञाकारी सेवक बने रहे, आपस में भी कभी उनमें आज तक अनबन नहीं हुई, वे सब से समान भाव रखने के कारण मान्य समझे जाते थे; किन्तु शोक है कि, ऐसे मेरे योग्य पुत्रों का भी राज्य छल प्रपञ्चों से हर लिया गया। जो सदा मिल कर एकत्र रहना पसंद करते थे, वे भी एकान्त निर्जन महारण्य में भेज दिये गये। हे मधुसूदन! जब से मेरे सत्यवादी जितेन्द्रिय वीर पुत्र मुझे रोती बिलखती छोड़ कर, वन को चले गये, तब से मैं बिल्कुल पागल और हृदयहीन हो गयी हूँ। भला यह तो कहो, मेरी सुन्दर कोमल गोद में खेलने वाले वे मेरे लाल भयङ्कर जीवों से युक्त महाकानन में कैसे रहते होंगे? हाय! इन आँखों के तारे और प्राणप्यारे बच्चों को मैंने उनके पिता के परलोकवासी हो जाने पर बड़े प्रेम से पाला था। हे केशव! मेरे दुलारे राजकुमार उच्च अट्टालिकाओं में सुन्दर कोमल सेजों पर सोया करते थे और शङ्ख, दुन्दुभि, वेणु, वीणाओं आदि की मधुर झँकार के साथ जगाये जाते थे। विद्वान् ब्राह्मणों की वैदिक ऋचाओं तथा स्वरितमन्त्रों द्वारा जिनका प्रातःस्तवन हुआ करता था, जो पुष्कल द्रव्य दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों का पूजन करते थे, आज उन्हीं राजकुमारों को उस कण्टकाकीर्ण भयङ्कर कानन में कंकरों, पत्थरों पर कैसे नींद आती होगी? वन्य पशुओं की भयङ्कर चीत्कारों को वे कैसे सहन करते होंगे? हे कृष्ण! क्या मेरे वे लाल इन्हीं अनुपम क्लेशों को भोगने के लिये पैदा हुए थे? हे गोविन्द! यहाँ जितेन्द्रिय, सत्यप्रतिज्ञ, सौम्य, शीलवान्, धर्मज्ञ, सर्वगुण-सम्पन्न जो धर्मराज युधिष्ठिर प्राचीन राजाओं के लिये भी दुर्वह राज्यभार को वहन करने में समर्थ होने के कारण त्रैलोक्य के पति होने योग्य हैं; वे कुशल से तो हैं? हे कृष्ण! एक हज़ार योद्धाओं का बल रखने वाला वायु के समान वेगशाली अपने भ्राताओं को प्राणों से भी बढ़ कर, प्यारा महा-

बली भीम अच्छी तरह से तो है ? हे माधव ! उस पराक्रमी महारथी भीम ने बकासुर, हिडिम्ब, कीचक आदि बड़े बड़े बलवान् बैरियों का संहार करने में बड़ी भारी शूरता दिखलायी थी। देखो, यद्यपि वह इतना बड़ा वीर है; तथापि वह अपनी इन्द्रियों के संयम के साथ साथ अपने प्रचण्ड क्रोध को भी रोके रहता है। हे केशव ! मेरा प्राणप्यारा पुत्र वह अर्जुन जो कि, दो भुजाओं वाला होता हुआ भी, बलवीर्य पराक्रम द्वारा सहस्रबाहु अर्जुन के साथ समानता कर सकता है तथा जो एक ही साथ पाँच सौ बाणों को छोड़ कर शत्रुओं का नाश करने वाला, बाणविद्या में कार्त्तवीर्य के समान है, प्रसन्नता से तो है ? देखो, वह अर्जुन बड़ा तेजस्वी मनःसंयमी तथा इन्द्र के समान पराक्रमी है। क्षमा गुण में तो वह साक्षात् भगवती वसुन्धरा ही का अवतार है। यह जो तुम आज कौरवों की श्री, संपत्ति और महान् ऐश्वर्य देख रहे हो, यह सब उसी एक पराक्रमी अर्जुन के विजय का फल है। मेरे अन्य पुत्र केवल वीर अर्जुन ही के बल पराक्रम पर गर्व करते हैं। जैसे देवता सदा इन्द्र का भरोसा किये रहते हैं, वैसे ही अन्य पाण्डव भी शत्रुविजेता महापराक्रमी अजेय वीर अर्जुन का भरोसा किया करते हैं। हे यादवेश ! महापराक्रमी, कारुणिक, शस्त्रविद्या-विशारद, सौम्य, शालीन और भाइयों की आज्ञा का पालन करने वाले मेरे महारथी वीर सहदेव का तो कुशल कहो ? संग्राम की अनेक कलाओं का ज्ञाता महाशूर मेरा प्रिय पुत्र नकुल आनन्द से तो है ? हे मुकुन्द ! मैं अपने प्यारे पुत्र नकुल के एक क्षण भर के लिये अलहदा हो जाने पर अधीर हो जाती थी, सो आज मुझे बरसों से उसका दर्शन नहीं हुआ है। हे गोविन्द ! क्या फिर भी कभी मैं इस जीवन में नकुल सहित उन प्यारे पुत्रों को देख पाऊँगी ? हे कृष्ण ! मुझे मेरी बहू द्रौपदी अपने पुत्रों से भी अधिक प्यारी है। वह सुकुमार राजकुमारी अपने पुत्रों को छोड़ कर भी अपने पतियों की सेवा शुश्रूषा कर रही है। वह महापतिव्रता देवी बड़ी सत्यवादिनी और धर्मशीला है। हे कृष्ण ! महाकुलीना एवं सौभाग्यवती देवी द्रौपदी कुशल से तो है ? आहा ! बड़े आश्चर्य

की बात है कि, वह अग्नि समान तेजस्वी पाँच वीर पतियों को पा कर भी क्लेश भोग रही है अथवा विधाता का विधान अमिट है। आह! वह पुत्र-वियोग से कैसी दुःखित होगी? मुझ मन्दभागिनी को तो आज चौदह वर्षों से उसका मुँह भी देखने को नहीं मिला। हे माधव! इन सब विपरीत बातों को देख कर तो बस यही मालूम होता है कि, मनुष्य को भले कर्मों से कभी सुख नहीं मिलता अन्यथा ऐसी देवी को कभी इन महाआपदाओं का सामना न करना पड़ता। आह! जिस समय मैं कौरवसभा में अपमानित हो कर फूट फूट कर रोने वाली द्रौपदी का ध्यान करती हूँ, उस समय मुझे अपने भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और धर्मराज किसी भी पुत्र पर अनुराग नहीं रहता। हे कृष्ण! मुझे अपने जीवन भर में ऐसा दुःख कभी नहीं हुआ जैसा कि, दुष्ट नीच दुःशासन के द्वारा कौरवसभा में लायी गयी एकवस्त्रा द्रौपदी को देख कर हुआ था। इस अत्याचार को देख कर, सभा के सभी सभासद धृतराष्ट्र, सोमदत्त, बाल्हीक आदि उदास हो रहे थे; किन्तु मैं तो केवल इन सब सभासदों में महात्मा विदुर ही की प्रशंसा करूँगी। सच है, मनुष्य सदाचार ही से सम्मानपात्र और उच्च कहलाता है, धनी या अधिक पढ़ा लिखा होने से नहीं। हे गोविन्द! उस महात्मा विदुर का शीलरूपी महाभूषण सब संसार पर अपना अधिकार जमाये हुए है।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार देवी कुन्ती श्रीकृष्ण के दर्शन पा कर प्रसन्न और पुत्र-वियोग से दुःखिता हो कर अपने सभी हार्दिक क्लेशों का वर्णन करने लगी। उसने फिर कहा—हे कृष्ण! तुम्हीं बतलाओ पहिले जिन नीच राजाओं ने मृगया और द्यूत आदि नीच कर्मों का आदर किया था, उन्हें क्या भला दुःख नहीं हुआ था? देखो, नीच सभा में जो उन दुष्ट कौरवों ने द्रौपदी का अपमान किया है, वह मेरे हृदय को जलाये डालता है। हे जनार्दन! मेरे क्लेशों का तो अन्त ही नहीं है। मेरे प्यारे पुत्रों को नगर से निकाल कर, वन वन भटकाया गया और उन्हें एक वर्ष

तक गुप्त रूप से रहने की आज्ञा दी गयी। यह सब इसी लिये किया गया कि, इन्हें राज्य न दिया जावे। हे केशव! मैंने और मेरे पुत्रों ने ऐसा महादुःख कभी भी नहीं सहा था। देखिये, आज मेरे पुत्रों को आपत्तियाँ भोगते भोगते चौदह वर्ष हो गये, यदि क्लेशों को सहन करने से पाप कर्मों का विनाश हो कर पुण्य कर्मों का उदय हो जाता है, तो अब हमें भी सुख ही मिलना चाहिये। आज तक मैंने पाण्डवों और कौरवों में भेदभाव नहीं रक्खा। मैं बराबर उन्हें अपना प्रिय पुत्र ही समझती थी। यदि मेरा यह साम्य विचार सदा बना रहा होगा, तो निश्चय मैं संग्राम में शत्रुओं का संहार कर पाण्डवों सहित राजलक्ष्मी को भोगते हुए तुम्हें देखूँगी। सदाचारी पाण्डवों को पराजित करने वाला संसार में कोई नहीं है। इसका मुझे पूरा विश्वास है; किन्तु अपनी वर्त्तमान दुर्दशा के लिये मैं न तो अपने को दोषी समझती हूँ और न दुर्योधन ही को दोष देना चाहती हूँ। इस विषय में तो मैं केवल अपने पिता ही को दोष दूँगी। हे कृष्ण! जैसे दाता याचकों को अपना धन यों ही बिना सोचे समझे दे डालता है, वैसे ही उन्होंने मुझे कुन्तिभोज के समर्पण कर दिया। जब मैं गेंद ले कर इधर उधर बालक्रीड़ाएँ करती फिरती थी, उसी समय तुम्हारे दादा ने मुझे अपने निष्पुत्र मित्र महात्मा राजा कुन्तिभोज के समर्पण कर दिया था। इस प्रकार मेरे पिता तथा भीष्म, धृतराष्ट्र आदि ने मेरा परित्याग कर दिया। उसीका फल है कि, आज मैं असीम क्लेशों को भोग रही हूँ। हे केशव! तुम्हीं बतलाओ, मेरे इस दुःखी जीवन से क्या लाभ है? हे जनार्दन! जिस समय वीर अर्जुन का जन्म हुआ था, उसी समय रात में आकाशवाणी ने मुझसे कहा था—हे देवि! तेरा यह पुत्र संसार का विजेता होगा और इसका यश स्वर्ग तक शोभित होगा। यह धनञ्जय अर्जुन संग्राम में कौरवों का संहार कर राज्यग्रहण करेगा और अपने भाइयों के साथ तीन महायज्ञ करेगा। हे प्रभो! मैं इस आकाशवाणी को दोष नहीं देती हूँ, बल्कि मैं उस ब्रह्मस्वरूप धर्म को बार बार नतमाथ

प्रणाम करती हूँ कि, जो पापकर्मों से बचा कर सारी प्रजा का पालन पोषण करता है। हे कृष्ण! सच कहती हूँ जितना मुझे इस पुत्र-वियोग से क्लेश हो रहा है उतना उस वैधव्य से और निर्धनता से नहीं हुआ और न रात दिन के बैर भाव से मुझे इतनी आपत्ति सहनी पड़ी। तुम्हीं बतलाओ, बिना वीर अर्जुन को देखे मेरे हृदय की शोकाग्नि कैसे शान्त हो सकती है? पुत्रों के आगमन की प्रतीक्षा में दिन गिनते गिनते यह चौदह वर्ष बीत गये; किन्तु कहीं कुछ नहीं। हे माधव! मृतकों का तो श्राद्ध कर के भी उनके बन्धुओं को कुछ थोड़ा बहुत सन्तोष हो जाता है; किन्तु यह वेदना तो बड़ी असह्य है। मैं अपने जीवित पुत्रों को देख भी नहीं पाती। मेरी जान में तो मैं उनके लिये और वे मेरे लिये मृतक समान ही हैं। हे जनार्दन! आप जा कर युधिष्ठिर से कहना कि देखो, अब तुम्हारे धर्म की बड़ी हानि हो रही है। तुम्हें उचित उपायों द्वारा अवश्य इस हानि का प्रतीकार करना चाहिये। जो स्त्री अपने पति को छोड़ अन्य किसी के आश्रय में रह कर जीवन बितावे उसको कोटि कोटि धिक्कार है? संसार में हाँ जी, हाँ जी कर के जीने वाले हीन मनुष्यों को यदि प्रतिष्ठा भी प्राप्त हो जावे, तो उन्हें उससे कुछ लाभ नहीं समझना चाहिये। बल्कि यह समझना चाहिये कि, इससे तो यदि मर जाते तो बड़ा अच्छा होता। हे माधव! गाण्डीवधारी अर्जुन और महाबली भीम से भी जा कर कहना कि, देखो जिस समय के लिये वीर क्षत्रियाणियाँ पराक्रमी शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न करती हैं अब वह समय आ गया है। इस लिये तुम दोनों को सावधान हो जाना चाहिये। इस उचित अवसर पर यदि तुम दोनों ने अपने क्षात्रधर्म का पालन नहीं किया, तो याद रखो, मैं तुम दोनों का इस जीवन में कभी मुख नहीं देखूँगी और जब अधिक दुःखी हो जाऊँगी, तब अपने प्राणों को भी तुम्हारी इस कायरता के पीछे त्याग दूँगी। हे मधुसूदन! जब आप इन दोनों को मेरा पूर्वोक्त सँदेश सुना चुकें, तब माद्री के उन दोनों वीर पुत्रों से भी यही कहना कि, समय आने

पर प्राणों को भी त्याग देने के लिये तैयार रहना ; किन्तु दीनता से ऐश्वर्य भोगने की इच्छा मत करना। वीर क्षत्रियों का यही धर्म है कि, वे अपने बलवीर्य पराक्रम से शत्रुओं का संहार करने के बाद ही अक्षय ऐश्वर्य का उपभोग करें। पराक्रमी वीरों की वीरता के उपहार में जो ऐश्वर्य प्राप्त होता है, वही वास्तव में सच्चा ऐश्वर्य है। हे गोविन्द ! हाँ, अर्जुन से एक बात यह और भी कह देना कि, वह द्रौपदी की इच्छा के अनुसार ही काम करें। हे कृष्ण ! आपको मालूम है कि, द्रौपदी कौरवों से अपमानित की गयी है। यह बात भी पाण्डवों के लिये कुछ कम असह्य नहीं है। क्योंकि वे वीर धर्म शृंखला में बँधे होने के कारण ही उस समय से इस समय तक चुप रहे हैं। इस कारण द्रौपदी के इच्छानुसार कार्य हो जाना ही मानों कौरवों का सर्वनाश हो जाना है। उधर भीमसेन का भी दुःशासन ने बड़ा भारी अपमान किया था, उसका बदला चुकाने का भी यही अवसर है। महाबली भीम निश्चय ही कौरवों पर भीषण क्रोध कर रहा होगा। उसका तो यह स्वभाव है कि, वह जब तक शत्रुओं का सर्वनाश न कर डाले, तब तक शत्रुता को भूलता ही नहीं है। हे पुरुषोत्तम ! आप विश्वास रखें, मुझे राज्य चले जाने का बिलकुल शोक और क्लेश नहीं है। पाण्डवों को वनवासी होना पड़ा इस बात का भी मुझे रंज नहीं है तथा यह जुए की हार भी मेरे हृदय में घबराहट पैदा नहीं करती ; किन्तु यदि कोई बात मेरे हृदय में कसकती और मुझे दुःख देती है, तो बस वह यही है कि, मेरी एकवस्त्रा पुत्रवधू का भरी सभा में अपमान किया गया। हाँ, उस समय वह क्षात्र धर्म-परायणा वीर क्षत्राणी सधवा होती हुई भी विधवा के समान एक अनाथा अबला सी चिल्लाती रही। आह ! आज मैं आपके और वीरश्रेष्ठ बलराम, महारथी प्रद्युम्न, अर्जुन और भीम सरीखे योद्धाओं के होते हुए भी, इन असह्य क्लेशों को सह रही हूँ; इन अत्याचारों को अपनी आँखों से देख रही हूँ। हे कृष्ण ! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।

पुत्र-शोक-विह्वला दुःखिनी अपनी बुआ कुन्ती की इन बातों को

सुन कर, श्रीकृष्ण को भी बड़ा दुःख हुआ और वे अपनी बुआ को सान्त्वना देते हुए यह कहने लगे—बुआ जी! तुम इतना शोक क्यों करती हो। इस प्रकार तुमको दुखियारी नहीं बनना चाहिये। देखो, तुम्हारे समान तो शायद ही कोई स्त्री सौभाग्यवती होगी। क्योंकि तुम महाराज शूरसेन की पुत्री हो तथा अजमीढ़ वंश की राजमहिषी हो। तुम शक्ति-शालिनी कुलीना और सुख शान्ति का धाम हो। एक तालाब में से जैसे दूसरे तालाब में कमलिनी पहुँच जाती है, वैसे ही तुम भी एक महाकुल से दूसरे उच्च प्रतिष्ठित कुल में पहुँची हो। तुम सर्वगुणसम्पन्ना वीराङ्गना हो। तुम्हारी ही सी वीराङ्गनाएँ दुःख सुख को सहन कर सकती हैं। बुआ जी! पाण्डव बड़े बलवान् और उत्साही हैं। उनकी छोटी मोटी आकाँक्षाएं नहीं हैं। वे आज कल सर्दी गर्मी, भूख प्यास, निन्द्रा आलस, हर्ष क्रोध आदि सब का परित्याग कर वीरता का आनन्द लूट रहे हैं। उन्हें वीर सुखों ही से अधिक स्नेह है। उन्होंने ग्राम्यसुखों का बिलकुल परित्याग कर दिया है। वे अवश्य ही अवसर पर पराक्रम दिखलावेंगे—वे थोड़ी सी चीज़ ले कर बहलावे में नहीं आ सकते। धीर वीरों को तो निर्भयादि असीम और अक्षय सुखों ही से प्रेम होता है। वे साधारण मनुष्यों की भाँति सुख दुःख के शामिल बाजे की कन्सुरी आवाज़ को पसंद नहीं करते। या तो वे असीम दुःख ही भोगते हैं या असीम सुख ही। पाण्डव बड़े से बड़े दुःख और बड़े से बड़े सुख ही को भोगना चाहते हैं। सुख और दुःख की मध्य दशा बड़ी दुःखदायिनी होती है। क्योंकि इसको न दुःख ही कह सकते हैं और न सुख ही। अतएव पाण्डव या तो राजश्री ही का उपभोग करेंगे या यों ही तपस्वी बन कर अपना जीवन बिता देंगे। पाण्डवों ने और द्रौपदी ने आपके चरणों की वन्दना कर, आपका कुशल समाचार पूछते हुए यह कहा है कि, माता! घबड़ाओ मत। अब वह समय शीघ्र आने वाला है, जब आप अपने पुत्रों को राजलक्ष्मी का उपभोग करते हुए प्रसन्न हो देखेंगीं।

जब इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कुन्ती को सान्त्वना प्रदान की और जब कुन्ती की इन बातों से कुछ वेदना शान्त हुई, तब वह बोली—हे कृष्ण ! जिन कामों से पाण्डवों का भला हो और धर्म की हानि न हो, तुमको वे ही काम करने चाहिये । मैं धार्मिक श्रद्धा से पूर्णतया परिचित हूँ तथा यह मैं जानती हूँ कि, तुम मित्रों का कार्य कैसी प्रवीणता और प्रयत्नशीलता के साथ करते हो । हे कृष्ण ! हमारे कुल में केवल तुम्हीं धर्मज्ञ और सत्यनिष्ठ हो। तुम्हीं पाण्डवों के रक्षक और सकल ब्रह्माण्डनायक ब्रह्म हो। तुम्हारे वाक्य सदा सत्य होते हैं। इस कारण मैं तुम्हारे इन वचनों पर पूरी श्रद्धा और विश्वास रखती हूँ। बस इसके बाद महावीर, भगवान्, कृष्ण अपनी बुआ कुन्ती से विदा हो कर, दुर्योधन के राजमहलों में चले गये।

इक्यानवे का अध्याय

श्रीकृष्ण का दुर्योधन के यहाँ भोजन करना

इस प्रकार अपनी बुआ को प्रणाम कर भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण, देवराज इन्द्र के स्वर्गीय भवन के समान विचित्र महामूल्य सिंहासनों से शोभित दुर्योधन के राजमहल में पहुँचे। उस राजमहल की तीन ड्योढ़ियों के आगे जब श्रीकृष्ण पहुँचे तो उन्होंने देखा कि, पर्वतश्रृङ्ग के समान ऊँचे सुन्दर देदीप्यमान एक राजप्रासाद में अनेक राजाओं से परिवेष्टित महाबाहु राजा धृतराष्ट्र राजसिंहासन पर विराजमान हैं और दुःशासन, कर्ण भी दुर्योधन के समीप ही बैठे हुए हैं। श्रीकृष्ण को आते देख कर, धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों सहित उठ कर खड़े हो गये। श्रीकृष्ण भी धृतराष्ट्र के पास आ कर उनके मन्त्रियों सहित उनसे मिले तथा जो और राजा लोग वहाँ मौजूद थे उनसे भी यथायोग्य अवस्थानुसार मिला भेंटी करने लगे। इसके बाद अनेक स्वच्छ सुन्दर आस्तरणों

(बिछौनों) से शोभित सोने की शैया पर वे जा बैठे। राजा धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के अतिथि-सत्कार में गौ, मधुपर्क, जल, अपना राजभवन तथा राज्य आदि सब समर्पण किया। उस समय सूर्य समान तेजस्वी श्रीकृष्ण जी की उपस्थित राजमण्डली भी सेवा करने लगी। कुछ देर बाद दुर्योधन ने वासुदेव को भोजनार्थ आमन्त्रित किया; किन्तु भगवान ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब कौरवेश्वर दुर्योधन ने कर्ण को अपनी ओर आकर्षित करते हुए कौरव समाज में श्रीकृष्ण से ऐसा वचन कहा जो ऊपर से कोमल और मधुर था किन्तु भीतर उसमें ज़हर भरा हुआ था। वह बोला—हे जनार्दन! आपके लिये अनेक प्रकार के स्वच्छ स्वादिष्ट भोजन तथा उत्तम बहुमूल्य वस्त्र आदि तैयार किये रखे थे; किन्तु आपने वे सब चीज़ें अस्वीकार कीं, इसका कारण क्या है? हे केशव! आप तो हमारे पिता के प्रिय सम्बन्धी हैं और कौरव पाण्डवों का समान हित करने वाले हैं। इस कारण ही; दोनों पक्षों को सहायता भी प्रदान की है। आप धर्म तथा लोकाचार के तत्व को भली भाँति जानते हैं इस कारण हे वासुदेव! इस अस्वीकृति का मैं कारण सुनना चाहता हूँ।

दुर्योधन की इस बात को सुन कर, श्रीवासुदेव जी भी अपनी दाहिनी भुजा उठा कर स्पष्ट मधुर सुन्दर पदावली द्वारा गम्भीर गर्जना के साथ यह कहने लगे—हे राजन्! आपको विदित होगा कि, दूत सदा अपना कार्य कर चुकने के बाद ही भोजन आदि आतिथ्य स्वीकार किया करते हैं। अतएव मैं भी जिस काम के लिये आया हूँ उसे किये बिना यह सब कुछ स्वीकार नहीं कर सकता। आप लोग कार्यसिद्धि के बाद ही मेरा और मेरे मन्त्रियों का आदर सत्कार करें।

यह सुन कर दुर्योधन बोला—हे मधुसूदन! आपको कम से कम हमारे साथ तो ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये क्योंकि कार्यसिद्धि तो सन्देहयुक्त हुआ करती है। आप चाहे सफल हों या असफल, हमसे इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। हम तो केवल आपको अपना सम्बन्धी समझ कर ही,

सेवा में प्रस्तुत हुए हैं। दूत समझ कर नहीं। अतः हमें ऐसा कोई भी कारण प्रतीत नहीं होता जिससे कि आप हमारा आतिथ्य स्वीकार न करें। हे गोविन्द! आपके साथ न हमारी लड़ाई है न वैर है। इन सब बातों को विचार कर आपको हमारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये।

यह सुन कर श्रीकृष्ण हँसे और हँस कर दुर्योधन से कहने लगे, हे राजन्! सुनो, काम क्रोध के आवेश अथवा लोभ लालच और द्वेष से मैं अपने धर्म का परित्याग नहीं कर सकता; किन्तु असल बात यह है कि, भोजन प्रेमियों के यहाँ किया जाता है अथवा किसी आपत्ति के समय भोजन किया जाता है। अब इन बातों में से एक बात भी यहाँ दिखलायी नहीं देती। हम आपद्ग्रस्त तो हैं नहीं जो भोजन करें और रही प्रीति की बात सो आपको हमसे प्रीति बिल्कुल है नहीं, फिर भला बतलाइये हम आपके यहाँ भोजन कैसे करें? हे राजन्! पाण्डव सदा अपने हितैषी बन्धुओं के अनुकूल रह कर उनका सम्मान किया करते हैं और आप लोगों के वे भाई हैं; किन्तु आप जन्म ही से उनसे वैर रखते हैं। जब कि पाण्डव अपने सत्य-धर्म-मार्ग पर अटल विश्वास और श्रद्धा से डटे हुए हैं तब भला उन को दोषी ठहराना कहाँ तक ठीक है। यह आप स्वयं सोच लीजिये। आपको कभी उनसे द्वेष नहीं करना चाहिये। देखिये, मेरा शत्रु उनका शत्रु है। मेरा मित्र उनका मित्र है तथा उनका शत्रु मेरा शत्रु और उनका मित्र मेरा भी मित्र है। याद रखिये, मैं धर्मात्मा लोगों का आत्मा हूँ। संसार में वह मनुष्य महानीच कहलाता है जो काम क्रोध के वशीभूत हो कर गुणी धर्मात्माओं से विरोध करने लगता है। हे राजन्! जो लालची मोह में फँस कर योग्य सम्बन्धियों पर क्रूर दृष्टि रखता है, वह कभी चिरकाल तक अक्षय राज्यसुख को नहीं भोग सकता। इसके विपरीत मन को बुरे प्रतीत होने वाले भी सम्बन्धियों को जो अपने प्रेमपूर्ण सद्व्यवहार से स्वाधीन कर लेता है वही संसार में प्रशंसनीय होता है। तुम्हारे यह सारे पदार्थ दुर्जनों से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इस कारण मेरे ग्रहण करने योग्य नहीं। मैं तो

केवल एक विदुर ही के अन्न को ग्राह्य समझता हूँ। महाबाहु श्रीकृष्ण जी दुष्ट एवं मत्सरी दुर्योधन से यह कह कर और उसके राजमहल से निकल, महात्मा विदुर के घर चले गये।

इसके बाद द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, राजा-बाल्हीक तथा अन्य कौरव, श्रीकृष्ण जी से मिलने को गये और वहाँ जा कर बोले, हे मधुसूदन! हम आपके निवास के लिये उत्तम रत्नजटित महल प्रदान करते हैं। चलिये वहीं चल कर रहिये।

वासुदेव ने कहा—आप लोग मुझे क्षमा कीजिये और अपने अपने घरों को जाइये। आपने मेरी सब प्रकार से अच्छी तरह पूजा कर ली। अन्त में जब वे सब कौरव चले गये तब महात्मा विदुर ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की और मधुर स्वादिष्ट भोजन करवाये। भगवान् ने भी सब से प्रथम विद्वान ब्राह्मणों को बुलाया और अनेक प्रकार के अमूल्य रत्नादिकों से उनका पूजन किया। तदनन्तर देवराज इन्द्र जैसे देवताओं के साथ बैठ कर भोजन करता है, वैसे ही भगवान ने भी अपने सब अनुयायियों के साथ बैठ कर महात्मा विदुर के यहाँ भोजन किये।

बानबे का अध्याय

श्रीकृष्ण और विदुर

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! भगवान् के भोजन करने के बाद विश्राम-समय में महात्मा विदुर ने श्रीकृष्ण से कहा हे भगवन्! आपने यहाँ आ कर अनुचित कार्य किया है। क्योंकि हे जनार्दन! यह दुर्योधन बड़ा अभिमानी, मूर्ख, लोभी, धर्म की मर्यादा और लोकाचार को तोड़ने वाला तथा धर्मात्माओं और गुणियों का अपमान करने वाला है। यह दुष्ट बड़ा हठी है। इसके सम्मुख धर्मचर्चा करना मानों धर्मशास्त्र का अपमान करना है। इस कारण इसे सन्मार्ग पर लाना बड़ा कठिन कार्य है। यह विषय-कीट

अपने समान किसी को भी नहीं मानता। मित्रों से द्वेष रखता और सब काम दूसरों ही से करवाता है। यह महानीच, कृतघ्नी और असत्यप्रेमी है। इस अपरिणामदर्शी क्रोधी और विषयी दुर्योधन से यदि कुछ आप इसकी भलाई की बातें कहेंगे तो यह कभी भी न मानेगा। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीरों के लिये इसने यह समझ रखा है कि, यह सब शत्रुओं का संहार कर अकण्टक राज्य मुझे जीत कर दे देंगे। अतएव आप निश्चय समझें कि, यह सन्धि की बात कभी न मानेगा। हे मधुसूदन! कर्ण सहित दुर्योधनादि कौरवों का यह पूर्ण निश्चय है कि, पाण्डव भीष्म द्रोण आदि की ओर कभी आँख उठा कर भी न देखेंगे। मूर्ख दुर्योधन ने तो यह समझ लिया है कि, मेरी इतनी सेना को कौन जीत सकता है। वह मूर्ख कहता है कि, आहा! मुझे सन्धि कर लेने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि केवल कर्ण ही समस्त शत्रुओं का संहार कर सकता है। हे जनार्दन! आप तो भाई भाइयों में प्रेम और सन्धि कराने की लालसा से यहाँ पधारे हैं, किन्तु यहाँ कुछ मामला ही और है। सुनिये, इन सब के सब धृतराष्ट्र के पुत्रों ने यह प्रतिज्ञा की है कि, हम अपने जीते जी कभी पाण्डवों का भाग नहीं देंगे। ऐसी परिस्थिति में आपका कहना सुनना सभी व्यर्थ होगा। देखिये, जहाँ भलाई और बुराई में कुछ भेद न समझा जाता हो, वहाँ बुद्धिमान् का धर्म है कि, वह कुछ न कहे। क्योंकि यहाँ तो वही हाल होता है जैसा कि बहरे के सम्मुख गाने वाले का हुआ करता है। हे प्रभो! जैसे ब्राह्मणों का चाण्डालों के साथ बातचीत करना निन्दनीय है, वैसे ही आपका भी इन लोगों से वार्त्तालाप करना महान् अयोग्य है। मूर्ख बलवान् को उपदेश देना बुद्धिमानी नहीं है। दुर्योधन वज्र मूर्ख और बलगर्वी है। अतः वह आपकी बात कभी न मानेगा और तो और इनकी अन्तरङ्ग सभा या समूह में यदि आप चले जावें तो भी तो यह उसे बुरा समझेंगे। दुर्योधन वृद्धों का अपमानकारी, प्रभुता का गर्व करने वाला, असहनशील भयङ्कर युवा है। वह आपकी किसी बात को नहीं सुना चाहता। एक बात यह भी है कि,

वह आप पर सन्देह भी करता है तथा बलवती सेना को पा कर वह सन्धि की बात नहीं सुनना चाहता। हे कृष्ण! कौरवों का निश्चय है कि, यदि देवताओं के सहित इन्द्रदेव भी आ जावें, तो हमसे राज्य नहीं छीन सकते। इस प्रकार इन दुष्टों के निश्चय को आप कभी नहीं हटा सकते। मूर्ख दुर्योधन जब अपनी विशाल सेना के बीच जा कर खड़ा होता है तो, बस यही समझता है कि, मैंने समस्त विश्व का विजय कर लिया। यद्यपि दुर्योधन की यह इच्छा है कि मेरा राज्य निष्कण्टक हो जावे तथापि पूर्ण होने में आपने बाधा डाल दी है। वह यही समझता है कि, मैं अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा। इस कारण अब दुर्योधन से दण्डनीति का व्यवहार कीजिये तभी काम चल सकता है अन्यथा नहीं। दुर्योधन के पीछे पृथ्वी भर के राजा लोग मरने के लिये एकत्रित हुए हैं। इस कारण इस पृथ्वी का भी समय आ गया है। यह भी काल के मुँह में जाने के लिये परिपक्व हो रही है। अतः इसका भी सर्वनाश कीजिये। पहिले तो राजाओं ने आपके साथ वैर किया था, किन्तु कर्ण से मिल कर वे अब दुर्योधन के आश्रित हो गये हैं। यही नहीं, बल्कि सभी योद्धा प्राणपण से दुर्योधन की सहायता करने को तैयार हैं। अतएव मैं कौरवों की सभा में आपका जाना उचित नहीं समझता। वे सब दुष्टात्मा एकत्रित हो रहे हैं। आप अकेले उस दुर्जन समूह में न जाइयेगा। हे प्रभो! आपके प्रभाव और बल को मैं खूब जानता हूँ। आपके तेज को तो देवगण भी सहन नहीं कर सकते; किन्तु क्या करूँ, प्रेम अनिष्ट की आशङ्का करता है। इस कारण ही यह कह रहा हूँ। मुझे जैसे पाण्डव प्यारे हैं वैसे ही आप भी प्यारे हैं। केवल सम्मान दृष्टि और मित्र भाव ही से इन सब बातों को मैं कह रहा हूँ। हे पद्मलोचन! आपके दर्शनों से जो मुझे आनन्द प्राप्त हुआ है वह अवर्णनीय है। आप अन्तरात्मा हैं। आपसे छिप क्या सकता है। अतः आप स्वयं ही सब जानते हैं।

तिरानबे का अध्याय

श्रीकृष्ण का विदुर को उत्तर

श्रीभगवान् वासुदेव जी ने विदुर से कहा—हे महात्मन्! मुझ सरीखे स्नेहपात्र के लिये जैसी एक विद्वान्, बुद्धिमान् एवं हितैषी बन्धु को शिक्षा देनी उचित है वैसी आपने मुझे शिक्षा दी। आपने जो कुछ भी सत्य और स्पष्ट बात मुझसे कही है वह सब ठीक है। अब आप मेरे आने का कारण भी सुन लीजिये। मैं दुर्योधन की नीचता से तथा क्षत्रियों के प्रवृद्ध वैर आदि से यद्यपि अच्छी तरह से परिचित हूँ, तो भी आज कौरवों के यहाँ आया हूँ और यही चाहता हूँ कि, दोनों में सन्धि हो जावे। हे महात्मन्! रथ, घोड़े, हाथी, पैदल आदि के सहित मृत्युपाश में बँधी हुई भूमि की रक्षा करने वाला अक्षय पुण्य को प्राप्त होता है। यद्यपि आपका यह कहना मैं बिलकुल समझता हूँ कि, कौरव सन्धि करने को कभी नहीं राज़ी होंगे, तो भी मुझे उद्योग तो अवश्य करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य का धर्म है कि, वह उद्योग करे। उद्योग करने पर भी असफल मनुष्य को पुण्य लाभ होता है। धर्मात्माओं का कथन है कि, मन में दुर्भावनाएँ रखता हुआ भी मनुष्य उनके अनुसार यदि आचरण न करे तो उसे पाप नहीं लगता। हे विदुर! मैं कौरवों और सृञ्जयों को सर्वनाश से बचाना चाहता हूँ। इस लिये इन सब को सन्धि द्वारा प्रेमसूत्र में बाँधने आया हूँ। यह भयानक विद्वेषाग्नि कौरवों के यहाँ ही से भड़की है और इसके जन्मदाता कर्ण और शकुनि हैं। समस्त कौरव दुर्योधन और कर्ण के अनुचर हैं। मित्र का धर्म है कि, अनर्थों से अपने मित्र की बलपूर्वक भी रक्षा करे। जिसने अपने मित्र की यथाशक्ति आपत्ति अथवा पाप कर्म से रक्षा नहीं की, वह वास्तव में कपटी और संसार में महानीच मनुष्य है। हे महात्मन्! मेरी सम्मति में तो दुर्योधन और उसके मन्त्रियों को मेरी बातें अवश्य माननी चाहिये। मैं अपनी शक्ति के अनुसार तो कौरवों, पाण्डवों और समस्त क्षत्रियों का कल्याण

साधन करूँगा और इसी लिये आया भी हूँ। इतने पर भी यदि दुर्योधन मुझ पर सन्देह करे तो यह उसका दुर्भाग्य है। साथ ही मुझे उसके सन्देह से और भी अधिक प्रसन्नता होगी। क्योंकि मेरा ऋणभार (कर्ज़े का बोझा) हलका हो जावेगा। जो मनुष्य बन्धु बान्धवों के विद्वेष को अपने अथक प्रयत्न द्वारा शान्त करने और मित्र की सहायता करने का उद्योग नहीं करता वह मनुष्य मित्रता के योग्य नहीं होता। मेरे शत्रु मुझ पर कहीं यह लाञ्छन न लगा बैठें कि, देखो, कृष्ण बड़ा होशियार है। वह चाहता तो दोनों पक्षों में सन्धि करा सकता था; किन्तु उसने किसी एक पक्ष को भी नहीं रोका। अतएव उभय पक्ष में सन्धि कराने का उद्योग मैं अवश्य करूँगा, जिससे मुझे कोई दोषी न ठहरावे। मूर्ख दुर्योधन मेरी धर्मयुक्त बात को न मान कर, प्रतिकूल आचरण करेगा तो पछतावेगा। हे विदुर जी! मैं यदि पाण्डवों के लाभ की हानि न करता हुआ, इन दोनों पक्षों में सन्धि करा सका तो मैं पुण्यात्मा होऊँगा और कौरव काल की फाँसी से छूट जावेंगे। धर्मार्थ और न्याय नीति से भरी हुई मेरी बातों को सुन कर कौरव मेरी ओर निहारेंगे तथा शान्ति की अभिलाषा से आने वाले मेरा खूब आदर सत्कार करेंगे। जैसे क्रोधी सिंह के सम्मुख अन्य पशु खड़े नहीं हो सकते, वैसे ही मेरी भ्रकुटि टेढ़ी होने पर यह कौरवों का दल भी मेरे सामने नहीं ठहर सकता। इस प्रकार महात्मा विदुर को समझा बुझा कर, श्रीकृष्ण जी महाराज सुखस्पर्शी, कोमल एवं स्वच्छ शैया पर जा कर सो रहे।

चौरानबे का अध्याय

श्रीकृष्ण का कौरव-सभा में गमन

वैशम्पायन जी ने कहा, हे राजन्! इस प्रकार अनेक धर्मार्थपूर्ण विचित्र सुन्दर पदावली शोभित वार्त्तालाप करते हुए महात्मा विदुर और

श्रीकृष्ण जी के लिये वह रात थोड़े ही काल के मनोरञ्जन में बीत गयी। प्रातःकाल होते ही मागध सूत बन्दियों ने अनेक प्रकार की स्तुतियाँ तथा शङ्ख दुन्दुभि आदि की मङ्गलध्वनि द्वारा श्रीकृष्ण भगवान को जगा दिया। वासुदेव उठे और शौचादि नित्य कर्मों से निपट कर, स्नान किया। फिर वे सन्ध्या वन्दन, सूर्योपस्थान एवं अग्निहोत्र की क्रिया समाप्त कर चन्दन लगा, वस्त्राभूषणों से सज कर, तैयार ही हो रहे थे कि, इतने में भगवान् श्रीकृष्ण के पास आ कर दुर्योधन और शकुनि ने कहा; हे गोविन्द! धृतराष्ट्र, भीष्म आदि सब राजा सभा में उपस्थित हो कर, जैसे देवगण इन्द्र की प्रतीक्षा किया करते हैं, वैसे ही वे लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन सब ने प्रार्थना की है कि, आप सभा में पधारें। श्रीकृष्ण ने अत्यन्त मधुर शब्दों द्वारा उन्हें उत्तर दिया—बहुत अच्छी बात है। मैं अभी चलता हूँ।

इतने में भगवान् भास्कर पूर्णतया उदित हो गये। श्रीकृष्ण ने विद्वान् ब्राह्मणों को अनेक वस्त्राभूषण, गौ, घोड़े आदि दान दिये और उन्हें प्रणाम किया। श्रीकृष्ण के सारथि दारुक ने सुन्दर रथ ला कर खड़ा किया। भगवान् भी इष्टदेव का ध्यान, अग्नि की प्रदक्षिणा और द्विजों का सन्मान करते हुए कौरवों से परिवेष्ठित उस दिव्य रथ के समीप आये और रथ में बैठ गये। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के साथ विदुर जी भी उस रथ में बैठ गये तथा दुर्योधन, शकुनि, कृतवर्मा आदि अन्य कौरव नरपाल अपने अपने रथों, घोड़ों और हाथियों पर सवार हो, श्रीकृष्ण के पीछे पीछे चलने लगे। चारों ओर मणि माणिक्यों से मण्डित उन स्वर्णरथों का मेघ समान गम्भीर गर्जन मयूरों को आनन्द देने लगा। सुन्दर स्वच्छ राजमार्ग में वे रथ अत्यन्त ही मनोहर प्रतीत होते थे। अनेक शङ्ख, दुन्दुभि, झाँझ आदि बाजे बजने लगे। कुछ वीर सशस्त्र योद्धा श्रीकृष्ण के आगे और कुछ पीछे चल रहे थे। भगवान् के दर्शन से अपने को कृतार्थ करने के हेतु आबाल वृद्ध सभी नर, अपने अपने घरों से बहार निकल कर

गलियों में आ गये थे। स्त्रियाँ छतों पर भगवान् के दर्शनार्थ खड़ी हुई थीं। उनके बोझे से सुन्दर प्रासाद डगमगा रहे थे। भगवान् भी कौरवों का सम्मान स्वीकार करते हुए तथा इधर उधर की सुन्दरता का अवलोकन करते हुए आगे बढ़ने लगे। जभी भगवान् कौरवों की सभा के निकट पहुँचे तभी अनेक प्रकार के वाद्य बाँसुरी शङ्ख आदि बजने लगे। भगवान् के रथ की घरघराहट सुन कर प्रतीक्षा करने वाले राजागण भगवान् के शुभागमन-जनित हर्ष से विचलित हो गये। भगवान् का रथ द्वार पर आ कर खड़ा हो गया और कैलासशिखर के समान भगवान अपने दिव्य रथ से नीचे उतर पड़े। देवराज इन्द्र की सभा के समान उस कौरवसभा में भगवान् ने विदुर और सात्यकि का हाथ पकड़ कर प्रवेश किया। जैसे भगवान् सूर्य के उदित होने पर अन्य तेजस्वी पदार्थों का तेज क्षीण हो जाता है वैसे ही भगवान् के प्रवेश करते ही अन्य सब राजा गण फीके पड़ गये। सभा-प्रवेश के समय भगवान् के आगे कर्ण और दुर्योधन थे और पीछे कृतवर्मा और वृष्णि थे। भगवान् के सभा-भवन में पहुँचते ही, उनका आगत स्वागत करने के लिये धृतराष्ट्र और भीष्म आदि महाकीर्त्तिशाली राजा लोग खड़े हो गये और उनके खड़े होते ही अन्य सब राजा लोग भी खड़े हो गये। महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से, विशेष कर भगवान् वासुदेव के लिये महामूल्यवान् सर्वतोभद्र नामक सिंहासन लगाया गया था; किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस पर बिना बैठे ही मन्द मन्द मुसक्यान के साथ भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र आदि राजाओं से खड़े खड़े ही बातें कीं। सभी राजाओं ने श्रीकृष्ण का यथायोग्य पूजन किया।

उस समय भगवान् ने आकाश में नारदादि ऋषियों को देख कर, धीमे स्वर में भीष्म जी से कहा—हे राजन्! मर्त्यलोक की इस राजसभा का मनोहर दृश्य देखने के लिये, ऋषिगण अन्तरिक्ष में खड़े हैं। अतः उनका यथोचित सत्कार कर के उनका आह्वान कीजिये और बैठाइये अन्यथा उनके बिना बैठे कोई भी नहीं बैठेगा। भगवान् की बात सुन कर, भीष्म जी ने

जब आकाश की ओर देखा, तब विदित हुआ कि, सब ऋषिगण सभाद्वार पर खड़े हुए हैं। फिर क्या था उन्हें देखते ही सब सेवक दौड़े दौड़े गये और बहुमूल्य आसन उठा लाये। सत्कार पूर्वक ऋषियों को आसनों पर बिठाया गया और अर्घ्यादि षोड़शोपचार से उनका पूजन हुआ। ऋषियों के सुखासीन होने पर भगवान् भी आसन पर बैठ गये तथा अन्य नृपाल भी अपने अपने आसनों पर सुशोभित हो गये। दुःशासन ने स्वयं महारथी सात्यकि को बहुमूल्य आसन पर बिठाया। विविंशति ने कृतवर्मा को सुखासन पर बिठाया। भगवान् के कुछ ही दूर पर उनसे द्वेष रखने वाले कर्ण और दुर्योधन बैठ गये। गान्धारपति शकुनि अन्य अपने परिजनों सहित दूसरे सिंहासन पर बैठा हुआ था। महात्मा विदुर श्रीकृष्ण के समीप सुन्दर मृगचर्माच्छादित सिंहासन पर विराजमान थे। नवनीरदश्याम पीताम्बरधारी भगवान् के दर्शनों से राजाओं की तृप्ति नहीं होती थी। सब राजमण्डली में पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्णमण्डित नीलमणि के समान शोभा पा रहे थे। सभासदों के मन भगवान् में लीन हो रहे थे। अतः सभा में एकदम सन्नाटा छाया हुआ था।

पंचानबे का अध्याय

श्रीकृष्ण की उक्ति

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! सभामण्डप की उस एकाग्रता और निःशब्दता को भङ्ग करते हुए तथा महाराज धृतराष्ट्र की ओर एक तीव्र दृष्टि डाल कर, भगवान् कृष्ण मेघ समान गम्भीर स्वर से बोले—हे राजन्! आज मैं आपके यहाँ केवल यह प्रार्थना करने आया हूँ कि, कौरवों में और पाण्डवों में ऐसी रीति से मेल हो जावे कि, जिसमें प्रजा का संहार न होने पावे। इस विषय में मैं अपनी ओर से कोई दूसरी बात कहना नहीं चाहता। क्योंकि विशेष जो कुछ है, वह सब लोगों से छिपा

नहीं है। सब लोग इसके हानि लाभ से पूर्णतया परिचित हैं। आज वर्त्तमान राजवंशों में यह कुरुवंश सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके गुणों ने इसे परम प्रतिष्ठा प्राप्त करायी है। यह दूसरों को सुख देने तथा दूसरों के दुःख दूर करने और पराये दुःख से दुःखी होने में अद्वितीय है। सत्य और क्षमाशीलता तो इस वंश में मानों जन्म ही पाते हों ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु अब कुछ कुछ विपरीत लक्षण प्रतीत होते हैं। इन सद्गुणों का आसन दुर्गुणों ने आ कर घेर लिया है। हे राजन्! आपके जीवनकाल में आज यह परम प्रतिष्ठित वंश अपनी मान मर्यादा और विशद कीर्त्ति पर कालौंच थौपे दे रहा है। मुझे इसका यह विचित्र परिवर्तन देख कर अत्यन्त क्षोभ और आश्चर्य है। हे राजन्! आपने ही जुए को रोकने का प्रयत्न किया था तथा लाक्षाभवन निर्माण के लिये भी कौरवों को बहुत कुछ रोका था; किन्तु काकमण्डली में फँसी हुई बेचारी कोकिल क्या कर सकती है। आपका कहना सुनना सब बेकार गया। निःशङ्क हो कर प्रपञ्च रचनायें की जाने लगीं। हे कौरवेश्वर! आपके पुत्र मदान्ध हो रहे हैं। उन्हें भलाई बुराई से कोई सरोकार नहीं है। वे तो घरजानी मनमानी करने ही में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। उन्हें आपके धर्म और व्यवहार की कोई पर्वाह नहीं है। इन दुराचारियों ने कुल की मर्यादा को तोड़ दिया है। और तो और, यह अपने निज भाइयों को भी अनुचित व्यवहारों से सताया करते हैं। ये लालची ऐसे मूर्ख हैं कि, इन्हें कुछ भी उचित और अनुचित का ध्यान नहीं। हे राजन्! आप इन सब बातों को जानते ही हैं। अतः विशेष व्याख्या करना व्यर्थ है; किन्तु परिस्थिति को देख कर मैं यह अवश्य कहूँगा कि, यह जो कुछ भी आज कल कौरवों पर आपत्ति आ रही है, वह सब आप ही के कारण है। यदि आप चाहें तो इसका अवश्य बड़ी सरलता से प्रतीकार कर सकते हैं। क्योंकि दोनों पक्षों में समान शान्ति बनाये रखना मेरी सम्मति में आपके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। यह काम आपके और मेरे दोनों ही के अधीन है। आप तो अपने पुत्रों को

मार कूट कर सीधा करें और मैं पाण्डवों को समझा बुझा दूँ। बस काम बना बनाया है। इसमें कौरव और पाण्डव दोनों ही का भला है। हे राजन्! पाण्डवों से बैर बाँधने में कुछ लाभ नहीं है। व्यर्थ ही का सब तूफान बँध रहा है। इसके भविष्य को अशुभ समझ कर सन्धि कर लीजिये और फिर भरतवंशी सभी राजाओं को अपना सहायक समझ लीजिये। हे राजन्! आप पाण्डवों की रक्षा ही में रहते हुए, धर्मार्थ साधन कीजिये। क्योंकि ऐसे परिश्रमी सहायकों और रक्षकों का भी मिलना बड़ा कठिन तथा सौभाग्य की बात है। राजाओं की तो बिसात ही क्या, पाण्डवों की रक्षा में तो, देवराज आपकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देख सकते। हे राजन्! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बाल्हीक, विविंशति, काम्बोज, सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन, सोमदत्त, महारथी सात्यकि, युयुत्सु आदि जब बड़े बड़े योद्धा आपकी ओर से लड़ने के लिये संग्रामभूमि में खड़े होंगे, तब ऐसा कौन पुरुष है, जो इनके सम्मुख आवेगा? हे राजन्! आप पाण्डवों ही की सहायता से सर्वविजयी बन सकते हैं। आपके साथ अनेक बड़े बड़े राजे सन्धि करने की लालसा प्रकट करेंगे और आप अपने स्वजन बन्धु बान्धव पुत्र पौत्र आदि सहित आनन्द में रहेंगे। हे राजन्! पहिले की तरह अब भी आप पाण्डवों का सत्कार कीजिये; तभी आपका कल्याण होगा। आपके सभी स्वार्थ पाण्डवों के सहयोग से सिद्ध हो सकते हैं। यह सब बातें आपको अच्छी तरह सोच समझ लेनी चाहिये। हे राजन्! यदि आप अपने मन्त्रियों और पुत्र पाण्डवों की सम्मति से काम करेंगे, तो आप अवश्य पाण्डवों द्वारा विजय की गयी भूमि का उपभोग कर सकेंगे। अन्यथा यदि लड़ाई हुई तो दोनों ओर बड़ा ही अनर्थ होगा और दोनों पक्षों का सर्वनाश हो जावेगा। मेरी सम्मति में यह धर्म नहीं है। भला जब संग्राम में कौरव और पाण्डव दोनों ही का सर्वनाश हो जावेगा, तब आपको फिर क्या सुख शेष रहेगा? ज़रा मुझे यह तो बता दीजिये। हे राजन्! आपके पुत्र और पाण्डव दोनों ही

बड़े कुशल और बाँके वीर हैं। अतः आप, इस भयङ्कर भावी सङ्कट से इनकी रक्षा कीजिये। जब कभी मैं संग्राम की बात सोचता हूँ, तब मुझे केवल कौरवों, पाण्डवों और प्रजाजनों के सर्वनाश को छोड़ और कुछ नहीं सूझता। मत्सरी राजसमूह क्रुद्ध हो कर असंख्य प्रजा का संहार करेगा। अतएव आपका परम कर्त्तव्य है कि, आप इस भयङ्कर जनसंहार को रोकने का भगीरथ प्रयत्न करें। आपके सदुद्योग से लोगों का इस सर्वनाश से बच जाना असम्भव बात नहीं है। अतएव हे नरनाथ! अब प्रजा की रक्षा आप ही के हाथ है। ये जितने राजा लोग यहाँ मौजूद हैं, ये सब बड़े वीर और कुलीन हैं। इन्हें बचा कर आप अक्षय पुण्य लाभ करें तथा आनन्द से बन्धुभोज कर अपने अपने घरों को लौट जावें। इन्हें वस्त्र भूषण और पुष्पमालाओं से सम्मानित कर, और वैरभाव त्याग कर, अपने अपने देशों को लौट जाने के लिये आप इन सब से कह दीजिये। आप जैसा स्नेह पाण्डवों पर बाल्यदशा में रखते थे; वैसा ही अब भी रखें और उनसे सन्धि कर लें। जैसे पिता के मर जाने के बाद, बालक पाण्डवों की आपने रक्षा की थी, वैसे ही उनकी रक्षा आप अब भी करें। विपत्ति के समय पाण्डवों की आपको ही रक्षा करनी चाहिये। इसीमें आपके धर्म की रक्षा है। पाण्डव आपका सदा कल्याण ही चाहते हैं। अब भी पाण्डवों ने आपको प्रणाम कर निवेदन किया है कि, हे पिता! हम लोग आपकी आज्ञा के अनुसार ही बारह वर्ष तक वन में रहे हैं और तेरहवाँ वर्ष मनुष्यों में भी गुप्त रीति से निवास करते हुए बिताया है। अब हम लोगों की अभिलाषा यह है कि, जैसे आप हमारे पहिले शासक और पालक थे, वैसे ही अब भी बने रहें। हमने अपनी प्रतिज्ञा के अनुकूल आचरण किया है या प्रतिकूल—इस बात के साक्षी हमारे साथ रहने वाले विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं। जैसे हम लोग अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे हैं, वैसे ही आपको भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। हे राजन्! हम लोगों ने आवश्यकता से अधिक बहुत दिनों से क्लेशों को सहा है। अतः अब हमें हमारा राज्य

मिलना चाहिये। आप धर्म और सद्व्यवहार के वास्तविक रूप के ज्ञाता हैं। अतः आपको हमारा ध्यान होना चाहिये। केवल आपके बड़प्पन ही की दृष्टि से हमने अनेक क्लेश सहन किये हैं। जैसे हम लोग पूज्य भाव से आपकी सेवा और आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हैं, वैसे ही आपको भी हम पर पुत्र के तुल्य स्नेह करना चाहिये। हम राज्यभ्रष्ट होने के साथ ही साथ मार्गभ्रष्ट भी हो गये हैं। अतः आपको पिता की तरह हमें मार्ग पर लाना चाहिये। बस यही पाण्डवों ने आपसे प्रार्थना की है और यही संदेसा सभा के सभासदों के लिये भी उन लोगों ने कहला भेजा है। उन्होंने कहा है कि, हे सभासदों! जिस सभा में सभासदों के देखते देखते धर्म पर अधर्म का विजय होता है तथा असत्य से सत्य का विनाश किया जाता है और उस अरक्षित धर्म की रक्षा सभासद नहीं करते, वे सब सभासद अधर्मी होते हैं। जैसे नदी का प्रवाह तट के वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देता है, वैसे ही वह बिना रक्षा किया हुआ धर्म भी सभासदों का सर्वनाश कर डालता है। हे राजन्! इस समय पाण्डव टकटकी लगाये धर्म का मुँह निहार रहे हैं। उनकी यह प्रार्थना सर्वथा न्यायसंगत और धर्मानुकूल है। इस लिये अब आप पाण्डवों को उनका राज्य दे दीजिये। बस यही आपसे कहना है। इसके प्रतिकूल या अनुकूल जिस किसी को जो कुछ भी कहना हो, वह भी कह डाले। हे राजन्! यदि मेरा यह विनय धर्मानुकूल न्यायसङ्गत हो, तो आप अवश्य इन मरणोन्मुख राजाओं को मृत्यु से बचाइये। हे राजन्! आप क्रोध न कीजिये, बल्कि शान्ति पूर्वक उचित विधि से पाण्डवों का राज्य पाण्डवों को दे दीजिये। देखिये, धर्मराज युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा हैं। आपके पुत्रों ने उन्हें अनेक कष्ट प्रदान किये हैं; किन्तु वे अब भी उन पर वैसा ही स्नेह रखते हैं और अब आपके शरण आये हुए हैं। जब आपने उन्हें इन्द्रप्रस्थ में रहने के लिये भेज दिया था, तब भी उन्होंने वहाँ के लोगों को अपने धर्माचरण से स्वाधीन कर लिया था और स्वयं आपकी आज्ञा में रहते हुए उन लोगों को आपका आज्ञाकारी बना दिया था। ऐसा सच्चा

व्यवहार करने पर भी शकुनि ने उनका राज्य छीनने के लिये महाप्रपञ्च रच डाला और इसका फल यह हुआ कि, वे सब राजपाट हार गये। फिर द्रौपदी का भरी सभा में अपमान देखते हुए भी, वे अपने धर्म से नहीं डिगे। मैं कौरवों और पाण्डवों दोनों ही का हितैषी हूँ। इस लिये निवेदन करता हूँ कि; आप अपने धर्मार्थ का नाश न कीजिये। अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ न समझिये। अपने लोभी नीच पुत्रों को अपना आज्ञाकारी बनाइये और इस महान् आपत्ति का प्रतीकार कीजिये। आपके पुत्र पाण्डव आपकी सेवा करते हुए आज्ञा पालन करने के लिये भी तैयार हैं और लड़ने के लिये भी। अब इन दोनों बातों में से जो आपको स्वीकार हो, विचार कर कहिये। हे राजन्! भगवान् की इन सब बातों की सराहना सभी राजाओं ने अपने अपने मन में की; किन्तु कोई भी आगे बढ़ कर कुछ कहने के लिये खड़ा न हुआ।

छियानबे का अध्याय

दम्भोद्भव की कथा

भगवान् की इन बातों को सुन कर सब के सब सभासदों के रोमाञ्च खड़े हो गये और किसी को कुछ कहने की हिम्मत न हुई। इस प्रकार सभासदों को मौन धारण किये हुए देख कर सभा में बैठे हुए परशुराम जी ने कहा—हे धृतराष्ट्र! मैं तुझसे एक बात कहता हूँ। यदि वह तुझे अच्छी लगे तो तू निःशङ्क हो कर उसके अनुसार काम कर। सुना जाता है, प्राचीन समय में दम्भोद्भव नाम का एक चक्रवर्ती राजा था। वह महावीर एवं पराक्रमी राजा प्रातःकाल उठते ही विद्वान् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यादिकों से नित्य यह पूँछा करता था कि, संसार में क्या कोई ऐसा भी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य है, जो मेरे बराबर या मुझसे बढ़ कर हो। वह महाघमण्डी राजा, अपने समान या अपने से बड़ा किसी को भी नहीं

समझता था। सब को तुच्छ और नीच समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा करता था। विद्वान् ब्राह्मणों ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया और कहा कि, देखो राजन्! यह तुम्हारा गर्व वृथा और अनुचित है; किन्तु बहुत कुछ रोक थाम करने पर भी वह नहीं माना और यही प्रश्न बराबर करता रहा।

एक बार महातपस्वी, तत्वज्ञ एवं योगी ब्राह्मणों ने उससे अप्रसन्न हो कर कहा—हे राजा! संसार में केवल दो वीर महारथी ऐसे हैं, जिन्हें किसी ने आज तक नहीं हरा पाया है। उनके नाम नर और नारायण हैं। उन्होंने मर्त्यलोक में जन्म लिया है। विश्वविजयी उन्हीं महावीर से जा कर तू युद्ध कर। वे दोनों इस समय गन्धमादन पर्वत पर कठिन तपश्चर्या कर रहे हैं। बस फिर क्या था; राजा के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह तुरन्त अपनी चतुरङ्ग सेना को ले कर गन्धमादन पर पहुँचा और उन दोनों महावीरों को खोजने लगा। कुछ काल ढूँढ़ने के बाद उन्हें उसने देखा कि, वे दोनों वीर तपश्चरण करते करते अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उनके शरीर की नसें और नाड़ियाँ वैसी की वैसी ही चमक रही हैं। राजा उनके समीप पहुँचा और चरणों में सिर रख कर प्रणाम करने लगा। नर और नारायण ने फलों फूलों के द्वारा उसका आतिथ्य सत्कार कर, उससे कहा कि, हे राजन्! बोलो हम आपका कौन सा प्रिय कार्य करें।

यह सुन कर राजा ने भी आदि से अन्त तक की सब बातें सुना दीं। वह बोला मैंने अपने अतुल बल, वीर्य और पराक्रम द्वारा समस्त भूमण्डल जीत रखा है। अब आज आपकी वीरता की प्रशंसा सुन कर, यहाँ आपसे लड़ने के लिये मैं आया हूँ। अतः आप मेरी इस उत्कट लालसा को पूर्ण कर, मेरा आतिथ्य कीजिये।

नर और नारायण ने कहा—हे राजन्! इस शान्त तपोवन में काम, क्रोध, लोभ आदि के लिये स्थान नहीं है। यहाँ संग्राम की कोई आवश्यकता

ही नहीं है। यहाँ पर कोई कुटिल जीव भी नहीं हैं जिसके लिये निग्रह करने की आवश्यकता पड़े। अतएव कहीं और जाओ और युद्ध की याचना करो। भूमण्डल पर भी बड़े बड़े योद्धा विद्यमान हैं। इस प्रकार दोनों महात्माओं ने उसे बार बार समझाया; किन्तु उसने एक न मानी और बिना युद्ध किये वहाँ से हटने के लिये इनकार किया। तब तो वे दोनों नर और नारायण बड़े ही अप्रसन्न हुए और उन्होंने एक सींकों की मूठ ले कर उस दम्भोद्भव से कहा—ले तू और तेरी सेना सम्पूर्ण अस्त्रों शस्त्रों से सज्जित हो कर लड़ने के लिये आ जाय। अब हम संग्राम द्वारा ही तेरा आतिथ्य सत्कार करेंगे।

दम्भपुत्र ने कहा—हे तपस्विन्! यदि यही शस्त्र तुमने मेरे योग्य समझा है तो मैं इससे भी लड़ने को तैयार हूँ। क्योंकि मैं तो लड़ने के लिये आया ही हूँ। यह कह कर दम्भोद्भव और उसके योद्धाओं ने एक साथ उन दोनों वीर तपस्वियों के ऊपर अनन्त बाणवर्षा करना प्रारम्भ की। भगवान् नर ने भी शत्रुओं के संहारार्थ अनेक बाण बर्षाये और उसके सब शरीर को सींकों से ढाँक दिया। जिस समय विश्व-विजेता नर ने महाभयङ्कर एक इषीकास्त्र (सींक का अस्त्र) दम्भोद्भव पर छोड़ा, उस समय उसकी आँखें सींक के ज़ीरे से भर गयीं तथा आकाश भी सींकों से आच्छादित हो गया।

यह देख कर वह दम्भोद्भव भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और बोला—हे भगवन्! हमारी रक्षा कीजिये। हम लोग आपके शरण में आये हैं। दीनबन्धु, अशरण-शरण भगवान् ने फिर उसे क्षमा कर के कहा—हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम धर्मात्मा और गो ब्राह्मणों के प्रतिपालक बनो। अब कभी भी ऐसा साहस मत करना। क्षत्रियों को कभी ऐसा घमंड नहीं करना चाहिये। देखो, तुम आज से यह प्रतिज्ञा कर लो कि, मैं कभी भी छोटे या बड़े किसी मनुष्य का अपमान न करूँगा। विवेकिता, निर्लोभ, निरहङ्कारिता, इन्द्रियसंयम, मन की स्वाधीनता तथा शान्ति और कोमलता से अपने अधीन राजाओं की तथा प्रजा की रक्षा करना।

कभी किसी प्रत्यक्ष में निर्बल दीखने वाले अन्तःसार मनुष्य का अपने बल के गर्व से अपमान न करना। बस जाओ, हमारे पूर्वोक्त आज्ञानुसार काम करो। जब कभी कहीं कोई ब्राह्मण मिल जावे तब उसका बड़े आदर सत्कार से कुशल क्षेम पूछना। इस प्रकार भगवान् के चरणों में नतमाथ प्रणाम कर वह दम्भपुत्र अपने नगर को लौट आया और अपनी पहिली मूर्खता का परित्याग कर पूर्णतया धर्माचरण करने लगा। हे राजन्! प्राचीन नर के कार्यों से कहीं अधिक भगवान् के विचित्र वीर कर्म हैं। इस कारण जब तक गाण्डीव धनुष पर बाण नहीं चढ़ाया जाता, तभी तक आपको अपनी बलवती सेना और बलवान् पुत्रों पर गर्व है। गाण्डीव धनुष की टंकार सुनते ही आपकी सेना के और आपके सारे हौसले पस्त हो जावेंगे। इस लिये मेरी सम्मति में इन सब बातों से पहिले ही आपको अर्जुन का शरण लेना चाहिये। याद रखिये, यदि आप ऐसा न करेंगे, तो निश्चय प्रलयकारी सर्वनाश उपस्तिथ हो जावेगा। अनेक अस्त्रों शस्त्रों के प्रबल प्रहारों द्वारा जनता का समूलोच्छेदन हो जावेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, मत्सर, अहङ्कार इन आठ दोषों में फँस कर मनुष्य अनेक अनर्थ कर डालता है। विवेक और विचार से उसे द्वेष हो जाता है। वे अन्धे अचेत पड़े सोते, हँसते, रोते और झींकते रहते हैं। विश्व-ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् जिसके सहायक हैं, उस अर्जुन को भला कौन परास्त कर सकता है? विश्वविजेता कपिध्वज अर्जुन का सामना त्रैलोक्य में कोई भी नहीं कर सकता है। अर्जुन में असंख्य और श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं। आपको भी इन बातों से पूर्ण परिचय है। जो पहिले नर नारायण थे वे ही अब कृष्णार्जुन हैं। इस कारण इनको महावीर समझ, इनका आदर सत्कार कीजिये। आपका कल्याण है। यदि आप मेरी बातों को अनुचित नहीं समझते तो निष्कपट हो कर शीघ्र ही पाण्डवों से सन्धि कर लीजिये। यदि आपने सन्धि में कल्याण समझा हो तो निश्चय सन्धि कर लीजिये। आप अपने इस प्रतिष्ठित कुल की रक्षा और धर्मार्थ का साधन कीजिये।

सत्तानवे का अध्याय

मातलिसुत के विवाह का वृत्तान्त

इस प्रकार श्री परशुराम जी की बातें सुन कर, महर्षि कण्व ने कौरव-समाज में यह कहा—संसार में विधाता और नर नारायण नामक ऋषि तीनों विनाशरहित नित्य हैं। विष्णु भगवान् ही सनातन अजेय अविनाशी तथा परमेश्वर की मूर्ति हैं। चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह, नक्षत्र आदि सभी नश्वर पदार्थ हैं। महाप्रलय के समय सभी पदार्थ नष्ट हो कर सृष्टि के आरम्भ में फिर उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु मनुष्य पशु पक्षी आदि जीव तो क्षण भर ही में नष्ट हो जाते हैं। हाँ, राजा लोग प्रायः राजलक्ष्मी का उपभोग कर, आयु के क्षीण होने पर फिर स्वकृत पापों पुण्यों का फल भोगने के लिये तरुण हो जाते हैं। अतः इन सब बातों को भली भाँति सोच समझ कर, धर्मराज युधिष्ठिर से आप अवश्य ही सन्धि कर लीजिये। कौरव पाण्डव दोनों मिल कर पृथिवी का राज्य करें। हे दुर्योधन! तुम अपने को बली समझ कर गर्व मत करो। संसार में अनेक बलियों से भी बली मौजूद हैं। देखो, शूर वीरों के सम्मुख सेनाबल की बलों में गिनती नहीं होती। पाण्डव तो देवताओं से भी कहीं अधिक बलवान हैं। इस विषय में, मैं आपको एक बड़ा रोचक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। सुनिये। इन्द्र के सारथि मातलि के एक बड़ी रूपवती एवं सर्वगुण-सम्पन्ना गुणकेशी नाम्नी कन्या थी। वह जब विवाह के योग्य हुई, तब मातलि अपनी धर्मपत्नी से सम्मति ले कर उसके योग्य वर ढूँढ़ने के लिये बाहर निकला। गुणकेशी के गुणों की और स्वरूप की बड़ी प्रशंसा हो रही थी और वास्तव में वह विधाता की अनुपम सृष्टि थी। उसके योग्य वर भी वैसा ही अनूठा और कुशल होना चाहिये। अतः वर की खोज में मातलि चारों ओर घूमने लगा; किन्तु उसे नर, किन्नर, गन्धर्व, देवता आदि कोई भी जाति का वर अपनी पुत्री के योग्य न जँचा।

सच है, यशस्वी ऐश्वर्यशाली और कुलीन पुरुषों के यहाँ कन्याएँ जन्म ले कर उनके लिये बड़ी दुःखदायिनी हो जाया करती हैं। कन्या मातृकुल, पितृकुल तथा पतिकुल इन तीनों ही कुलों को संशय में डाल देती हैं।

अन्त में मन चाहा वर न पाने पर मातलि वापिस आया और उसने अपनी पत्नी सुधर्मा से कहा—प्रिये! क्या करूँ। सर्वत्र ही मैं घूम आया; किन्तु मुझे योग्य वर कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ। मुझे देव, मनुष्य, गन्धर्व, दैत्यादि में कोई भी वर कन्या के योग्य न जँचा। मातलि ने अपनी स्त्री से नागलोक में जाने की सलाह कर कहा कि, जब देवताओं, मनुष्यों और दैत्यों में मेरी कन्या के योग्य मुझे कोई वर न मिला, तब निश्चय ही नागलोक में कोई न कोई वर अवश्य मिल जावेगा। निदान, सुधर्मा से कह कर वह अपनी प्यारी पुत्री गुणकेशी को प्यार कर, नागलोक को चला गया।

अट्ठानवे का अध्याय

वर खोजते खोजते मातलि का पाताल में प्रवेश

इधर देवर्षि नारद वरुणदेव से मिलने को जा रहे थे। मार्ग में मातलि की नारद से भेंट हो गयी। देवर्षि नारद ने मातलि को देख कर उससे पूछा कि, कहो इन्द्र-सारथे! इधर कहाँ को चल दिये? अपने किसी कार्य के लिये जा रहे हो या देवकार्य के लिये?

मातलि ने जो कुछ भी असली बात थी देवर्षि को कह सुनायी। देवर्षि ने कहा—बहुत अच्छी बात है। चलो हम भी वरुण के दर्शनार्थ नागलोक को चल रहे हैं। हमारा तुम्हारा खूब साथ हुआ। हम तुम्हें पाताल की सैर कराते हुए वहाँ की सब बातें बतलावेंगे और हम दोनों जने योग्य वर भी पसंद कर लेंगे। इस प्रकार बातचीत करते हुए, वे दोनों पाताललोक में जा कर वरुणदेव के अतिथि हुए। वहाँ देवर्षि का यथोचित आदर सत्कार तो हुआ ही; किन्तु मातलि का भी इन्द्र के समान ही सम्मान

हुआ। अस्तु, इसके बाद उन्होंने अपने आगमन का कारण बतला कर, वर ढूँढने के लिये नागलोक में घूमने की वरुण से आज्ञा प्राप्त की और वर की खोज में वे घूमने लगे। देवर्षि नारद तो सब जगह घूमते फिरते रहते ही हैं। आज मर्त्यलोक, तो कल स्वर्गलोक, कल स्वर्गलोक तो परसों पाताल-लोक—इस प्रकार उनके परिभ्रमण की सीमा नहीं है। यही कारण था कि, उन्हें सब स्थानों की जनता का परिचय था; वहाँ के लोगों के आचारों विचारों की जानकारी प्राप्त थी।

देवर्षि नारद ने मातलि से कहा—तुमने सपरिवार वरुण के तो दर्शन कर ही लिये। अब देखो, हम तुम्हें वरुणदेव के सर्वश्रेष्ठ रमणीक स्थान सर्वतो-भद्र के दर्शन कराते हैं। यह कह कर उन्होंने उस बहुमूल्यवान् राजभवन को दिखला कर मातलि के लिये वरुण-पुत्र के दर्शन कराये, जो शील सदा-चार और विद्वत्ता में अद्वितीय था। उसका नाम पुष्कर था और चन्द्रपुत्री से उसका विवाह हुआ था। ज्योत्स्ना काली नाम्नी चन्द्रमा के एक पुत्री और थी, जिसका विवाह अदिति के पुत्र सूर्य के साथ हुआ था। यह सब परि-चय देने के बाद देवर्षि नारद ने मातलि को अत्यन्त मनोहर अनेक मणि मुक्ताओं से शोभित एक स्वर्णभवन और भी दिखलाया जिसका नाम वारुणी था। देवताओं को इसी वारुणीभवन में सुरा प्राप्त हुई थी और तभी से यह लोग सुर कहलाये। इस वारुणीभवन के पास ही एक बड़ा शस्त्रागार था जिसमें असंख्य विचित्र शस्त्र चमचमा रहे थे। यह सभी शस्त्र दैत्यों के थे। यह अपने लक्ष्य का विनाश कर फिर लौट कर उनके पास चले आया करते थे; किन्तु महाबली वरुणदेव ने जिस समय दैत्यों को पराजित किया उस समय न मालूम इनकी यह शक्ति कहाँ चली गयी थी। वरुण ने उन दैत्यों का संहार करने के साथ साथ उनके अस्त्रों शस्त्रों को भी छीन लिया था। वे सब इस शस्त्रागार की शोभा बढ़ा रहे थे। इन शस्त्रों का प्रयोग भी बड़े बड़े बलवान् देवता ही कर सकते हैं और कोई नहीं। पहिले यह दैत्य दानवों ही की भूमि थी; किन्तु अब देवताओं के अधिकार में है।

देखो, यह सम्मुख वरुण के भवन में प्रचण्ड ज्वाल पावक जल रहा है और निर्धूम अग्नि में श्री विष्णु का सुदर्शन चक्र बँधा हुआ है। दूसरी तरफ देखो यह वज्र ग्रन्थि वाला गाण्डीव लटका है। देवता ही इसके रक्षक हैं। यों तो इसमें दस लाख धनुषों की बराबर बल सदा ही बना रहता है; किन्तु जब अधिक काम पड़ जावे तब इसकी शक्ति बढ़ भी जाती है। इसका दूसरा नाम महाचक्र भी है। ब्रह्मा जी ने इसके बनाने में बड़ी चतुराई की है। जो महाबली राक्षस ऐसे होते थे जिन्हें किसी दूसरे शस्त्र से परास्त करना कठिन होता था, बस उनको इस महाचक्र से दण्ड दिया जाता था। अब इस महाचक्र को वरुणदेव के ज्येष्ठ पुत्र धारण करते हैं। वह देखो, सामने वरुणदेव का छत्र है जो उनके छत्रभवन में रखा है। यह मेघों ही की तरह शीतल जल की वृष्टि करता है और चन्द्रमा के समान इससे भी अमृत टपका करता है, किन्तु यहाँ अन्धकार अधिक है। इसलिये इसको किसी ने देख नहीं पाया है।

देवर्षि नारद ने कहा—हे मातले! यहाँ बड़े बड़े आश्चर्य-जनक दृश्य हैं; किन्तु अब समय कम है, तुम्हारा कार्य भी करना है। इस कारण चलो अब सीधे मार्ग से पाताल ही को चलें।

निन्यानवे का अध्याय

वर की खोज में मातलि

हे मातले! इस लोक का नाम पाताललोक है और इसके चारों ओर नागलोक है। यदि कोई प्राणी जल के आश्रय से यहाँ आ भी जाता है तो वह यहाँ बड़े ज़ोर से चीखें मारने लगता है। यहाँ ही बड़वानल निरन्तर धक् धक् कर जलता रहता है और जल को सोखा करता है। उसे यह बात मालूम है कि, देवताओं ने मेरा भली भाँति निग्रह कर लिया है अन्यथा वह अब तक सब समुद्रों सहित संसार को भस्म कर डालता। देवताओं ने

अपने शत्रु राक्षसों का संहार करने के बाद अमृत रखने के लिये यही स्थान उचित और सुरक्षित समझा है। इस कारण यहाँ अमृतकुण्ड है। जैसे मर्त्यलोकादि में चन्द्रदेव घटते बढ़ते हैं वैसे यहाँ नहीं। क्योंकि यहाँ अमृत है। इस कारण यहाँ चन्द्रदेव सदा पूर्ण ही बने रहते हैं। यहीं पर अदितिपुत्र हयग्रीव वेदपाठियों की ध्वनि को बढ़ाने के हेतु सुवर्ण जगत को पूर्ण करते हुए प्रत्येक पर्व में उदित होते हैं। यहाँ पर चन्द्रमा आदि जल की मूर्त्तियाँ निरन्तर जलवृष्टि किया करती हैं। इस कारण इस लोक को पाताललोक के नाम से पुकारा जाता है। यहीं से मेघों को ऐरावत जल देता और इन्द्र की आज्ञा से वे मेघ फिर वृष्टि किया करते हैं। यहाँ रंग-बिरंगी अनेक जाति की मछलियाँ हैं जो केवल चन्द्रमा की चाँदनी को पी कर जीवन धारण कर रही हैं। यहाँ के जलचर जन्तु दिन में तो सूर्य-किरणों की तीक्ष्णता से मर जाते हैं और रात में फिर जीवित हो जाते हैं। चन्द्रदेव अपनी अमृत-स्पन्दिनी किरणों से जब रात को उनका स्पर्श करते हैं तभी जीवित हो जाते हैं। यह उन दैत्यों का कारागार है जिन्हें इन्द्रदेव ने जीत लिया है और उनकी राज्यश्री का हरण कर लिया है। त्रैलोक्य-पावन भगवान् शङ्कर भी प्राणियों का कल्याण करने के लिये यहीं आ कर तपस्या किया करते हैं। गोव्रत धारण करने वाले महर्षि निरन्तर वेदपाठ और शास्त्राभ्यास द्वारा यहाँ पर ही प्राणवायु का संयम करते हुए निवास करते हैं। गोव्रत बड़ा कठिन व्रत है। उसका नियम है कि, कहीं भी पड़े रहना जो कोई जो कुछ खिलावे उसीको खा लेना। वस्त्रादि यदि कोई दे देवे तो लेना अन्यथा उसकी इच्छा से उसके लिये उद्योग न करना। हे मातले! यहीं पर सुप्रतीक नामक हाथियों का वंश है और उसी वंश में उत्पन्न होने वाले ऐरावत, वामन, कुमुद और अंजन नामक हाथियों की भी यहीं जन्मभूमि है। इस कारण हे मातले! तुम यहाँ देखो, यदि कोई उत्तम कुलीन, सुन्दर वर तुम्हें पसन्द हो तो मुझसे कहो। मैं फिर उद्योग करूँगा। यह सुवर्णाण्ड जो जल में पड़ा है वह अब तक वैसा ही पड़ा है, जैसा कि

सृष्टि के आदि में छोड़ा गया था। यह न अपनी प्राचीन स्थिति से तिल भर इधर हुआ है न उधर। इसकी उत्पत्ति, इसके माता पिता का परिचय तथा स्वभाव का ज्ञान अब तक मैंने प्राप्त नहीं कर पाया और न किसी को इसकी इन बातों का वर्णन करते ही सुना है। हाँ, इतना अवश्य सुना है कि, प्रलय-काल में एक बड़ा भारी प्रचण्ड पावक यहाँ से उठ कर संसार को भस्म कर डालता है। मातलि नारद की इन बातों को सुनते और दृश्य देखते देखते घबड़ा गया था। उसने देवर्षि से कहा कि, मुझे तो यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता। इस कारण अब आप दूसरी ओर चलिये और देर न कीजिये।

एक सौ का अध्याय

मातलि का हिरण्यपुर में गमन

महर्षि नारद ने कहा—हे मातले! देखो, यह जो सामने बड़ा मनोहर नगर दीख रहा है यह महामायावी दानवों का हिरण्यपुर नामक नगर है। इसे विश्वकर्मा तथा मय ने मिल कर बड़े प्रयत्न से पाताल में बनाया है। प्राचीन समय में अनेक मायाओं का विस्तार करने वाले और बड़े बड़े वरदान पाये हुए, दानव यहाँ रहा करते थे। ये इतने बड़े पराक्रमी थे कि, इन्हें इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि कोई भी अपने स्वाधीन न कर सका था। कालखंज नामक असुर तथा श्रीविष्णु-चरण से उत्पन्न होने वाले नैर्ऋत और ब्रह्म-चरण से उत्पन्न यातुधान यहीं रहा करते हैं। ये बड़ी बड़ी दंष्ट्राओं वाले वीर बली और मायावी हैं। इनका वेग वायुवेग से भी बढ़ कर है। निवात कवच नामक रण बाँकुरे दैत्यों को तो तुम भी जानते हो कि, देवराज इन्द्र भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। तुम और तुम्हारा स्वामी इन्द्र तथा तुम्हारा पुत्र गोमुख अनेक बार यहाँ से परास्त हो कर भाग चुके हैं। हे मातले! दानवों के इन सोने, चाँदी और पुखराज से निर्मित

और अनेक चित्रों से चित्रित इन मनोहर महलों को देखो। यह सब वैदूर्य, मूँगा आदि रत्नों से शोभायमान हो रहे हैं। सफेद बिल्लौर के समान श्वेत और हीरे की तरह चमक रहे हैं। इनमें कुछ मिट्टी से, कुछ पद्मराग से, कुछ पत्थरों से और कुछ काठ से बने हुए मालूम होते हैं। मणिखचित यह महल सूर्य के समान चमक रहे हैं। यह किन किन रंगों और किन किन मसालों से बनाये गये हैं, यह बात कोई नहीं जानता। इन दैत्यों के विश्रामभवन तथा शयनागार आदि सभी भवन मणिमुक्तादि रत्नों से बने हुए हैं। यह देखो, कैसे कैसे सुन्दर नीलमणि के चौतरे, झरने और आसन बने हुए हैं। वाटिका के सभी वृक्ष बेल, बूटे इनकी इच्छानुसार फल, फूल प्रसव करते हैं। इस जगह यदि तुम्हें कोई योग्य वर मिले तो बतलाओ अन्यथा कहीं और चला जावे।

देवर्षि नारद की बात सुन मातलि ने कहा—हे देवर्षे! सुनो, मैं देवताओं के प्रतिकूल और उनको अप्रसन्न करने वाला कोई भी काम नहीं करूँगा। यद्यपि देव और दानव दोनों ही भाई भाई हैं, तो भी उनमें सदा ठनी ही रहती है। अतः मैं विपक्ष में कभी सम्बन्ध नहीं कर सकता। महाराज! सम्बन्ध करना तो दूर रहा, मैं तो इनके दर्शन भी करना नहीं चाहता। इस लिये चलिये कहीं और चलें। यद्यपि हिंसक दैत्यों से आपका प्रेम है; तथापि आप सदा अहिंसा में मग्न रहते हैं।

एक सौ एक का अध्याय

मातलि का गरुड़-कुल में गमन

देवर्षि नारद ने कहा—हे मातले! देखो, यह नगर सर्प-शत्रु गरुड़ जी का है। इनका वेग अवर्णनीय है। विनतापुत्र गरुड़ जी के सुमुख, सुनाम, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरूप और सुबल नामक छः पुत्र हैं। इन पुत्रों से गरुड़ जी की वंशवृद्धि हो रही है। यह सभी सुन्दर श्रीवत्सलाञ्छित

और बली हैं। यह सब कर्म से क्षत्रिय और निर्दय हैं। यह सर्पों का भोजन करते हैं। सर्पों का संहार करने के कारण ही इनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता। यह कुल बड़ा ऊँचा है। इसको श्रीविष्णु भगवान ने भी स्वीकार किया है। यह भी विष्णु के परम भक्त हैं। अतः मैं इस वंश की नामावली तुझे सुनाता हूँ। अनलवेग, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित, वज्रनिष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, सुवर्णचूड़, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमेष, त्रिराव, सप्तराव, वाल्मीकि, द्वीपक, चित्रवर्ह, मेपहृव, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सपन्ति, सोमभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा, कुमार, हरि, परिवर्ह, सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मलय, मातरिश्वा, निशाकर तथा दिवाकर। बस ये ही गरुड़ के मुख्य और कीर्त्तिमान पुत्र हैं। यदि इनमें भी कोई तुम्हें पसन्द न हो, तो चलो और जगह चलें। अब की बार अवश्य वर मिल जावेगा।

एक सौ दो का अध्याय

मातलि का रसातल में गमन

आगे चल कर नारद ने कहा—हे मातले! देखो, यह सातवाँ रसातल नामक पाताल है। यहीं अमृत से उत्पन्न हुई सुरभी गौ रहती है। यह षड्रसों का सर्वोत्कृष्टसार है। इसके स्तनों से प्रतिक्षण दूध टपकता रहता है। ब्रह्मा जी ने खूब अमृत पिया। यहाँ तक कि जब उन्होंने अमृत पी कर डकार ली, तब बस यह सुरभी उस डकार के साथ बाहर निकल पड़ी। भूमण्डल पर इसीकी दुग्धधारा से एक कुण्ड हो गया है। उसको क्षीरसागर के नाम से पुकारा जाता है। उस क्षीरसागर का किनारा सदा झागों से सना रहता है। इस कारण यह मालूम होता है कि, अनेक श्वेत पुष्प खिले हुए हैं। इन झागों को पी कर जो तपश्चर्या करते हैं, वे लोग फेनपा कहलाते हैं। वे बड़े तपस्वी सभी के पूज्य होते

हैं। देवदानव भी उनका सम्मान करते हैं। हे मातले! इस कामधेनु के चार सन्तान हैं; जो प्रत्येक दिशाओं को धारण करते हैं। सुरभी की सुरूपा नामक पुत्री पूर्व दिशा को, हंसिका नामक पुत्री दक्षिण दिशा को, विश्वरूपा पश्चिम दिशा को और सर्वदुधा नाम्नी पुत्री उत्तर दिशा को धारण करती है। हे मातले! पहिले देवदानवों ने मिल कर इन्हीं गौओं के दुग्ध से युक्त समुद्र को मन्दराचल को रई बना कर मथा था। इससे वारुणी, लक्ष्मी, अमृत, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभमणि आदि अनेक उत्तम अमूल्य वस्तुओं को प्राप्त किया था। यह सुरभी अमृत पीने वालों को अमृत, स्वधा भोजन करने वालों को स्वधा और सुधा प्रेमियों को सुधा देती है। यह सब कथा हमने रसातल में रहने वालों से पहिले सुनी थी। उनका कहना है कि, जैसा सुख रसातल में है, वैसा न स्वर्ग में है न नागलोक में है।

एक सौ तीन का अध्याय

मातलि का भोगवती नगरी में प्रवेश

कुछ दूर जाकर नारद ने कहा—देखो मातले! वह सामने राजा वासुकि की भोगवती नाम्नी पुरी है। यह उतनी ही सुन्दर है जितनी कि, देवराज इन्द्र की अमरावती है। यह भूमण्डल को अपने प्रबल तपः-प्रभाव से धारण करने वाले शेषनाग की निवासभूमि है। वह देखो, शेष-नाग जी श्वेत शिलोच्चय के समान श्वेत दिव्य आभूषणों से शोभित हो रहे हैं। इनके सहस्रफण हैं और जिह्वा अग्नि के समान है। यहाँ अनेक आकार वाले अमूल्य आभूषणों से भूषित सर्प रहा करते हैं। यहाँ के सभी नाग मणि, स्वस्तिकादि चिन्हों से अङ्कित हैं तथा उनके बड़े उग्र स्वभाव हैं। इन सर्पों में से कुछ सहस्र मस्तकों वाले, कुछ पाँच सौ मस्तकों वाले, कुछ सौ और कुछ तीन शिरों वाले हैं। यहाँ पर ऐसे ही तथा इनसे भी

चढ़ चढ़ कर भयङ्कर अर्बों करोड़ों नाग रहते हैं। देखो, मैं तुम्हें कतिपय के नाम सुनाता हूँ। तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालीयचक्र, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाणकुण्ड, मणि, नाग, अपूरण, खग, वामन, कुकुण, आर्यक। नन्दक, कलश, पोतक कैलासक, पिञ्जर, ऐलपत्र, कुकुर, ऐरावत, नागपिञ्जरक, माल्यपिण्डक, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गर, पर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीपक, दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहर, कृशक, अन्धक, विरज, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि, सुरस। और भी कश्यप के बहुत से सन्तान यहाँ रहते हैं। कहो इनमें से कोई तुम्हारी कन्या के योग्य वर है या नहीं।

महर्षि कण्व ने कहा—हे राजन्! नारद की यह बात सुन कर मातलि उन सब को बड़े ध्यान से देखने लगा। मानों उसे वे कुछ पसन्द आ गये हों।

अस्तु कुछ देर बाद मातलि ने नारद से पूँछा—हे देवर्षे! यह जो कौरव्य और आर्यक के सामने दिव्य-सौन्दर्य-सम्पन्न नाग खड़े हुए हैं इनके पिता का क्या नाम है? इनकी माता कौन है? तथा यह कौन से नागवंश के प्रकाशक हैं। हे देवर्षे! यह कुमार मुझे सर्व-गुण-सम्पन्न प्रतीत होता है। अतः मैं अपनी पुत्री गुणकेशी का विवाह इसीके साथ कर दूँगा। हे राजा दुर्योधन! सुमुख को मातलि ने पसन्द किया था। अतएव नारद ने उसके वंश और गुणों का माहात्म्य मातलि को सुनाया।

नारद जी ने कहा—हे मातले! यह सुमुख, ऐरावत कुल में उत्पन्न हुआ है और आर्यक का पोता और वामन का धेवता है। गरुड़ जी ने इसके पिता चिकुर को मार डाला है।

यह सुन कर मातलि अत्यन्त प्रसन्न हो कर बोला—हे देवर्षे! मैं इसको ही अपना जाया तो बनाना चाहता हूँ। अतः आप अब इसीके साथ विवाह की योजना कीजिये।

एक सौ चार का अध्याय

सुमुख को वरप्राप्ति

देवर्षि नारद ने इन्द्र के सारथि मातलि के इस निश्चय को जान कर, आर्यक के समीप जा कर कहा—देखिये, यह इन्द्र के प्रिय सारथि मातलि हैं। यह बड़े सौम्यशील, महापराक्रमी और इन्द्र के प्रेमपात्र हैं। यह सदा इन्द्र के साथ देवासुर संग्राम में अपनी वीरता दिखलाया करते हैं। जब यह अपने अस्त्रों द्वारा शत्रुओं को जीत लेते तथा स्वयं पहिले प्रहार करते हैं, तब पीछे इन्द्र अपने पराक्रम से उनका संहार करते हैं। इन्हीं मातलि की गुणकेशी नाम्नी एक कन्या है। वह सुन्दरियों में सर्व-श्रेष्ठा, सत्यभाषिणी तथा सर्व-गुण-सम्पन्ना है, हे नागराज ! यह उस अपनी पुत्री के लिये वर ढूँढ़ने को तीनों लोकों में घूम आये ; किन्तु कहीं इनका अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ। सौभाग्य से आज इनके मनोनुकूल वर आपका पोता सुमुख प्राप्त हुआ है। अतः हे आर्यक ! आपको यदि यह सम्बन्ध स्वीकार हो, तो आप इनकी कन्या के साथ अपने पौत्र का विवाह कर दीजिये। जैसे विष्णु-कुल में लक्ष्मी और अग्नि-कुल में स्वाहा शोभामयी हो रही हैं, वैसे ही यह सर्व-श्रेष्ठ रमणी-रत्न भी आपके कुल में सुशोभित हो, यही हमारी इच्छा है। जिस प्रकार देवराज इन्द्र के लिये इन्द्राणी प्यारी है, उसी प्रकार यह मातलि की सुन्दरी कन्या भी इस योग्य वर को प्रिय होवे। यद्यपि आपका यह पोता पितृहीन है ; तथापि हम लोग इसके गुणों से तथा आपकी और ऐरावत की मान मर्यादा से इसको वररूप से चाहते हैं। सुमुख, गुणी, सौम्य, शीलवान्, पवित्र तथा शम, दम आदि गुणों से परिपूर्ण है। इसी कारण मातलि ने स्वयं यहाँ आ कर उसे कन्यारत्न प्रदान करने का विचार किया है। आशा है आप भी इस सम्बन्ध को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

महर्षि कण्व ने कहा—हे दुर्योधन ! देवर्षि की बात को सुन कर, कुछ उदास और कुछ प्रसन्न होते हुए आर्यक ने नारद से कहा—हे देवर्षे ! आप मेरे पोते की भिक्षा माँगते हैं; किन्तु मेरा प्राणप्रिय पुत्र अभी हाल ही में मारा गया है। इस कारण ऐसी परिस्थिति में, मैं गुणकेशी को अपनी वधू के रूप में कैसे स्वीकार कर सकता हूँ तथा मैं आपके वचनों को भी टालना नहीं चाहता। भला आप ही बतलाइये, इन्द्रसारथि जैसे श्रेष्ठ मनुष्य को कौन अपना सम्बन्धी बनाना नहीं चाहता; किन्तु क्या करूँ जिन बातों से सम्बन्ध दृढ़ होता है, उन्हीं बातों का यहाँ अभाव है। देखिये, सुमुख के पिता को खा जाने वाले गरुड़ ने चलते समय हम लोगों को भली भाँति समझा बुझा दिया था कि, अब तो मैंने इसीको खाया है; किन्तु अब मैं इसके पुत्र सुमुख को भी शीघ्र ही आ कर खा जाऊँगा। इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं है, क्योंकि गरुड़ का निश्चय अटल है। वह अवश्य एक मास बाद यहाँ आ कर सुमुख को खा जावेगा। इसी कारण मेरे मन में जो कुछ भी प्रसन्नता इस बात को सुन कर हुई थी, एक बार ही नष्ट हो गयी।

इस हृदयवेधी संवाद को सुन कर आर्यक से मातलि ने कहा—हे नागेश ! सुनिये, मेरी सम्मति में इस आपके पुत्र को मैं अपने साथ ले जाऊँगा और उसे इन्द्रदेव का दर्शन कराऊँगा। मैं इसके अन्तिम कार्य द्वारा इसका शेष आयु जान जाऊँगा तथा जैसे भी हो सकेगा वैसे गरुड़ के उस विचार को निष्फल करने का प्रयत्न करूँगा। अतः सुमुख को मेरे साथ चलना चाहिये। यह सुनने के बाद आर्यक ने सुमुख को आज्ञाप्रदान कर दी। मातलि और देवर्षि नारद के साथ सुमुख स्वर्ग में गया। उसने वहाँ देखा कि, देवराज इन्द्र उच्च सिंहासन पर विराजमान हैं। पास ही चतुर्भुज विष्णु भी बैठे हुए हैं। वहाँ जा कर देवर्षि नारद ने मातलि की सब बातें देवराज के सन्मुख प्रकट कीं।

विष्णु भगवान् ने उन सब बातों को सुन कर, इन्द्रदेव से कहा—हे

देवराज आप इस सुमुख को अमृत पिलाइये और देवताओं के समान कर दीजिये। आप मातलि, नारद और सुमुख इन सब की इस कामना को अवश्य पूरी कीजिये।

इधर इन्द्रदेव गरुड़ के पराक्रम पर विचार करते हुए बोले—हे चतुर्भुज विष्णु भगवन्! कृपया आप ही इस काम को करें तो अच्छा हो।

यह सुन कर विष्णु भगवान् ने कहा—हे देवराज! आप चराचर जगत् के स्वामी हैं। आपके दिये हुए को कौन अदेय ठहरा सकता है? फिर देवराज इन्द्र ने उस सुमुख को दीर्घ आयुष्य तो प्रदान कर दिया; किन्तु अमृत नहीं पिलाया। तो भी यह वरदान पा कर सुमुख बड़ा प्रसन्न हो गया और गुणकेशी के साथ विवाह कर अपने घर चला गया। नारद और आर्यक भी इस प्रकार अपने कार्य को सफल कर और देवराज इन्द्र का पूजन कर, अपने अपने निवासस्थानों को चले गये।

एक सौ पाँच का अध्याय

गरुड़ के गर्व का खर्व होना

इधर जब गरुड़ ने यह बात सुनी कि, सुमुख को देवराज इन्द्र ने आयुष्य प्रदान किया है, तब अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपने बलवान् वेग-शाली पङ्खों से त्रिभुवन को रौंदते हुए इन्द्र के पास आये और कहने लगे—हे देवराज! यह क्या आप मेरा तिरस्कार कर मेरी आजीविका-हरण करते हैं? आपने ही मुझे यह आजीविका दी है और आप ही उसे अपहृत करते हैं। शोक! जो विधाता सब प्राणियों की आजीविका रचा करते हैं, उन्होंने मेरी यह स्वाभाविक आजीविका बनायी है। इस लिये आप इसे क्यों अपहृत करते हैं? मैंने उस नाग के खाने का निश्चित सङ्कल्प कर लिया है और समय भी निर्दिष्ट कर दिया है। क्योंकि इस महानाग द्वारा मेरे कुटुम्ब का पालन होगा; किन्तु जब आपने उसे अमर कर दिया

हैं, तब मैं अब क्या कर सकता हूँ। किसी दूसरे को अब मैं अपने काम में नहीं जा सकता। वाह! महाराज! आप ख़ूब घरजानी मनमानी करते हैं। एक बात पर आपको अटल रहना चाहिये। हे भगवन्! ऐसा होने पर मैं और मेरा परिवार परिजन आदि सब भूखों मर जावेंगे। अतः आपको अब मुझ पर कृपा करनी चाहिये। महाराज! यों तो मैं दुःखों ही को सहन करने का अभ्यासी हूँ। क्योंकि एक समय मैं त्रैलोक्य का अधिपति था और आज मैं दूसरों का सेवक बन रहा हूँ। हे देवराज! त्रैलोक्याधिपति आपके रहते हुए मैं विष्णु भगवान् के पास जा कर प्रार्थना करना नहीं चाहता। मैं त्रैलोक्य का शासन कर सकता हूँ। क्योंकि मेरी माता दक्षपुत्री और पिता कश्यप हैं। मैंने दैत्यों के बड़े बड़े संग्रामों को जीता है। श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचमुख, कालकाक्ष आदि दैत्यों का मैंने ही तो संहार किया है। भला इससे अधिक मुझमें बल होने का प्रमाण और क्या हो सकता है कि, मैं विष्णु भगवान को अपने परों पर लिये लिये फिरता हूँ। इतने पर भी आपने मेरे गौरव को नष्ट कर दिया और मेरी आजीविका से मुझे वञ्चित कर दिया। अदिति से पैदा हुए यह जितने बली वीर दैत्य हैं, आप उन सब से भी शतगुण अधिक बलवान् हैं; किन्तु मैं आपको भी अपने पङ्खों पर बिठा कर, जहाँ चाहूँ वहाँ ले जा सकता हूँ। अतः हे भगवन्! आपको इन सब बातों का विचार कर मेरा उचित प्रबन्ध करना चाहिये।

महर्षि कण्व ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार गरुड़ की बातें सुन कर श्रीविष्णु भगवान् महाबली गरुड़ को फटकारते हुए बोले—हे गरुड़! क्या तू अपने बल पराक्रम की डींग मार रहा है। तू महाकायर और निर्बल है और फिर भी मेरे आगे अपनी प्रशंसा करता है। मेरे भार को तो त्रिलोकी सहन नहीं कर सकता तेरी तो बात ही क्या है? मूर्ख! तू यह नहीं समझता कि, मैं ही तुझे धारण करता हूँ। तुझमें तो इतनी भी शक्ति नहीं है कि तू मेरी एक भुजा को भी धारण कर सके। ले अब तू मेरी

इस भुजा ही का बोझ धारण कर तभी मैं समझूँगा कि, तेरी प्रशंसा ठीक है। यह कह कर विष्णु भगवान ने अपनी भुजा गरुड़ के परों पर रख दी। बस फिर क्या था? गरुड़ बोझ से व्याकुल हो मूर्छित हो गया। गरुड़ को उस समय यह जान पड़ा कि, मानों उसके ऊपर पर्वतों सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भार लाद दिया गया है। भगवान के बाहुभार से गरुड़ का मुँह फैल गया। शरीर शिथिल और मन व्याकुल हो गया। भगवान् ने गरुड़ के प्राणों को तो अपहृत नहीं किया; किन्तु हाँ, उनका कचूमर अवश्य निकाल दिया।

अपनी यह दशा देख कर गरुड़ जी जब कुछ होश में आये तो वह विनीत वचनों से श्रीविष्णु भगवान से बोले—हे भगवन्! आपकी इस भुजा में ब्रह्माण्ड का भार भरा हुआ है और आपने यह मेरे ऊपर रख दी। इस कारण मैं पिचा जा रहा हूँ। अब मेरी रक्षा कीजिये। हे प्रभो! मैं आपका सेवक एक क्षुद्र पक्षी हूँ। आपकी ध्वजा में मेरा वास है। इस समय मैं भार से विकल और निश्चेष्ट हो रहा हूँ। इस कारण मेरी आप रक्षा कीजिये। हे सर्वशक्तिमान्! मैं आपके सामर्थ्य को न जान कर ही अपनी बड़ाई करने लगा था; किन्तु अब कभी ऐसा न होगा। अतः इस अपराध को क्षमा कीजिये। यह विनय सुन, भगवान ने गरुड़ को क्षमा किया और अपनी भुजा को उसके कन्धे से हटा कर कहा कि, देख, फिर ऐसा कभी मत कहना तथा सुमुख नाग को पैरों के अँगूठे से उठा कर गरुड़ की छाती पर डाल दिया और कहा कि, बस आज से तुम्हारी और इसकी प्रीति हो जानी चाहिये। बस उसी दिन से गरुड़ उस महानाग से प्रेम करने लगे।

महर्षि कण्व ने कहा—हे दुर्योधन! बस इसी प्रकार तुम भी जब तक रणभूमि में उन वीर पाण्डवों के सम्मुख नहीं जाते हो तभी तक जीवित हो। वायुपुत्र भीम और इन्द्रपुत्र अर्जुन से भला कौन बच सकता है? विष्णु, वायु, इन्द्र, धर्म, अश्विनीकुमार आदि से युद्ध करना तो दूर रहा इनकी ओर निहारना भी बड़ा कठिन है। इस कारण बेटा दुर्योधन!

अब इन लोगों से वैर विरोध त्यागो और श्रीकृष्ण को अपना तीर्थ समझ कर इनके द्वारा अपने कुल की रक्षा करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। जिन विष्णु भगवान के इस माहात्म्य को देवर्षि नारद ने अपनी आँखों देखा था, यह वही विष्णु भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इस बात को सुन कर दुर्योधन ने कृष्ण की ओर देखा और कुछ हँस कर अपनी भौंहें चढ़ा लीं तथा महर्षि कण्व की इस बात का निरादर करते हुए अपनी जाँघ को ठोंक कर यह बोला—सुनो ऋषि जी! मुझे परमेश्वर ने बनाया है मेरी गति विधि उसीके अधीन है। आपका यह सब कहना व्यर्थ का प्रलाप है।

एक सौ छः का अध्याय

विश्वामित्र की परीक्षा

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—महाराज! यह तो बतलाइये कि, जब लोभ मोह से ग्रस्त अनर्थकारी शत्रुओं की प्रसन्नता और मित्रों के सर्वनाश कर डालने वाले काम को करने के लिये दुर्योधन आग्रह कर रहा था, तब उसके सम्बन्धी, मित्र, बन्धु, बान्धवों ने तथा भीष्म पितामह ने उसे इस भयङ्कर कर्म से क्यों नहीं रोका?

यह सुन कर वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! यह बात नहीं है। भगवान वेदव्यास भीष्म पितामह आदि सभी ने उसे बड़े बड़े उपदेश दिये थे; किन्तु उस नीच को तो वे सब भली बातें उस समय ज़हर सी मालूम पड़ती थीं। देखो उस समय जो उपदेश नारद जी ने दिया था वही उपदेश मैं आपको सुनाता हूँ।

देवर्षि नारद ने दुर्योधन से कहा था कि, हे दुर्योधन! देखो, मनुष्य को हितैषी मित्र बड़े सौभाग्य से प्राप्त होते हैं तथा उन सच्चे मित्रों को उनके उपदेशों को मानने और सुनने वाले पात्र भी सौभाग्य

से ही प्राप्त होते हैं। आपत्ति पड़ने पर वह सच्चे ही मित्र काम देते हैं। उस समय सभी बन्धु बान्धव कन्नी काट जाते हैं। इस कारण मेरी सम्मति में तुम्हें अवश्य ही अपने बन्धुओं का कहना मानना चाहिये। हठ करने से अनेक भयङ्कर अनर्थों का जन्म होता है। देखो, मैं तुम्हें इस विषय में एक प्राचीन कहानी सुनाता हूँ।

एक समय ऋषि विश्वामित्र तपोवन में बड़ा कठिन तप करने लगे। उनके तपः प्रभाव से सर्वत्र देवों दानवों में घबड़ाहट पड़ गयी। सम्पूर्ण लोक की इस उद्विग्नता को देख कर धर्म ने विश्वामित्र की परीक्षा करने के लिये एक स्वाँग रचा और वह यह कि, उसने अपना स्वरूप बिल्कुल ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का सा बना लिया और क्षुधार्त्त बन कर विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचा। गाधिसुत विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को अपने यहाँ अतिथि रूप से आया हुआ देख कर, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उनके आतिथ्य के लिये अनेक उत्तमोत्तम सामग्रियाँ तथा स्वादिष्ट भोजनों का प्रबन्ध किया; किन्तु कपटी ब्रह्मर्षि का रूप धरने वाले धर्म ने उस समस्त आतिथ्य की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं की और अन्य ऋषियों के अन्न को स्वीकार कर लिया। इतने में विश्वामित्र भी स्वादिष्ट गर्मागर्म भोजन ले कर उसका सत्कार करने के लिये उपस्थित हुए। उन्हें देख कर बनावटी वसिष्ठ ने कहा कि, मैंने भोजन तो कर लिया; किन्तु आप थोड़ी देर खड़े रहिये मैं अभी आता हूँ। यह कह कर वह वहाँ से उठ कर चला गया। विश्वामित्र जी उसके आज्ञानुसार वहीं सब भोजन का सामान लिये खड़े रहे और केवल वायु पान करते हुए समय को बिताने लगे। महर्षि गालव विश्वामित्र का गुरु के समान आदर किया करते थे। अतएव वे ही विश्वामित्र की उस समय सेवा करने लगे। जब इसी प्रकार खड़े खड़े विश्वामित्र को सौ वर्ष बीत गये; तब फिर उसी ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के रूप में धर्म भोजन करने की इच्छा से विश्वामित्र के पास आया। जब उसने देखा कि, अब तक विश्वामित्र वैसे ही भोजन का थाल लिये खड़े हैं, तब तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनके हाथ से भोजन का थाल ले कर; वह सब

गर्मागर्म मसाला सफा कर गये। बस वहाँ वसिष्ठ आदि कोई भी न रहा— धर्म ने अपना स्वरूप धारण कर लिया और विश्वामित्र से कहा कि, हे महातपस्विन्! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इस प्रकार विश्वामित्र ने धर्म की प्रसन्नता से क्षत्रियत्व को त्याग ब्रह्मत्व प्राप्त किया।

उस समय विश्वामित्र ने भी मुनि गालव की सेवा से प्रसन्न हो कर उन से कहा—हे गालव! मैं तुमसे अब प्रसन्न हूँ। तुम अब जहाँ कहीं भी जाना चाहो जा सकते हो। यह सुन कर मुनि गालव ने विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा, हे परमगुरो! आपको मैं क्या गुरु-दक्षिणा दूँ? बतलाइये। क्योंकि सभी काम दक्षिणा देने से सफल होते हैं। दक्षिणा देने वाला ही मुक्त होता है। यज्ञों का फल स्वर्ग भी दक्षिणा दान ही का फल स्वरूप है। बिना दक्षिणा के सब यज्ञ भी निष्फल हो जाते हैं। धर्मशास्त्रों की ऐसी आज्ञा है। इस लिये मुझे भी बतलाइये कि, आपको क्या गुरुदक्षिणा मुझे देनी चाहिये? महर्षि विश्वामित्र गालव की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न थे। अतएव उन्होंने कहा—जाओ जाओ हम तुमसे वैसे ही प्रसन्न हैं। हे राजन्! किन्तु गालव ने नहीं माना और फिर भी दक्षिणा के लिये वह पूँछता ही रहा। विश्वामित्र को गालव मुनि के ऐसा हठ करने से अत्यन्त क्रोध आया और उन्होंने कहा—अच्छा यदि तुम दक्षिणा ही देना चाहते हो तो सुनो—जिनके कान एक ओर काले हों और शेष शरीर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हों ऐसे आठ सौ घोड़े ला कर मुझे गुरुदक्षिणा में शीघ्र ही दो। जाओ अब इस कार्य में देर करना ठीक न होगा।

एक सौ सात का अध्याय

गालव को गरुड़ द्वारा धीरज बँधाया जाना

जब विश्वामित्र ने क्रुद्ध हो कर ऐसी करारी दक्षिणा माँगी, तब तो मुनि गालव के होश बिगड़ गये। खाना पीना उठना बैठना सब भूल गये।

शोक और चिन्ता के मारे शरीर में चमड़ा और हड्डियाँ ही शेष रह गयीं—दिन रात दक्षिणा के चुकाने की चिन्ता में मुनि जलने और विलाप करने लगे। वे बार-बार यही सोचते थे कि, आहा! मैं इस गुरुदक्षिणा से कैसे उऋण हो सकता हूँ। मेरे पास इतना धन कहाँ है? मेरा तो कोई ऐसा धनी मित्र भी नहीं है कि, जिससे याचना कर गुरुदेव के लिये आठ सौ श्याम कर्ण घोड़े ला कर दे सकूँ। जब तक मैं इस गुरु-ऋण से उऋण न हो जाऊँगा, तब तक मुझे सुख की नींद कहाँ? मेरा तो जीवन भी मुझे आज कल भार हो रहा है अथवा इस व्यर्थ जीवन ही को ले कर मुझे क्या करना है? मैं समुद्र पार अथवा पृथ्वी के परले सिरे पर जा कर अपने प्राणों का विसर्जन कर दूँगा। क्योंकि अब मुझे इन प्राणों से भी वैराग्य हो गया है। निर्धन के सभी काम असफल होते हैं। उसे विविध फलों की प्राप्ति आकाश-कुसुम के समान है। उस पर भी ऋणी मनुष्य का तो जीना केवल विडम्बना मात्र है। जो मित्रों से खूब प्रेम उत्पन्न कर उनके धन का उपभोग कर चुकने के बाद उसकी मैत्री का बदला नहीं चुका सकता उसका इस संसार में जीना बेकार है। बल्कि इससे तो मर जाना ही अच्छा है। जो प्रतिज्ञा कर लेने पर भी पूरा करना नहीं चाहता और नहीं करता, उसके इष्टापूर्त (कूप आदि खुदाना) सब पुण्यकर्म नष्ट हो जाते हैं। झूठा आदमी सदा निस्तेज, सन्तान रहित और प्रभुताहीन रहता है। फिर भला ऐसे हीन मनुष्य को सुन्दर गति कैसे प्राप्त हो सकती है? कृतघ्नी सदा स्थानभ्रष्ट और अपकीर्ति कमाता है। उसे कभी कहीं सुख नहीं मिलता न कोई उसका विश्वास ही करता है। सच है कृतघ्नता का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। निर्धन पापी स्वयं भूखों मरता और अपने कुटुम्ब को भी भूखों मार डालता है और यदि कहीं उसमें कृतघ्नता आ गयी तो बस फिर तो उसका सर्वनाश हो ही जाता है। सो आज मुझमें यह सब लक्षण मौजूद हैं। मैं कृतघ्न भी हूँ, पापी भी हूँ और निर्धन तथा कृतघ्नी भी हूँ। मैंने गुरुदेव से विद्या पढ़ कर सफलता प्राप्त की और अब उनकी आज्ञा का

पालन नहीं करता। बस अब मुझे यही प्रायश्चित्त करना चाहिये कि, मैं अपने प्राणों का परित्याग कर इस अधम शरीर से मुक्त हो जाऊँ। हाँ, आज तक मैंने कभी कोई प्रार्थना देवताओं से नहीं की है, वे लोग मुझे यज्ञ के समय आदर की दृष्टि से देखते और मुझमें श्रद्धा रखते हैं। अतएव अब मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाता हूँ, जो अशरण शरण हैं। क्योंकि देव दानव सभी ने उन महायोगिराज की सेवा ही से अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त किया है।

यह सोच कर गालव मुनि श्रीगरुड़ जी के पास जा प्रणाम कर बोले—हे पक्षिराज! मैं भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहता हूँ। गरुड़ जी ने अपने मित्र गालव का सम्मान करते हुए कहा कि, हे महामुने! आप हमारे परम मित्र हैं। मित्रों का सम्मान तन मन धन से करना चाहिये। मेरे पास केवल वैष्णवी ऐश्वर्य है। मैं आपकी सेवा करने के लिये हर तरह से तैयार हूँ। मैंने श्रीविष्णु भगवान् से भी आपके विषय में निवेदन किया था और उन्होंने मेरे विनय को पूर्ण करने का वचन भी दे दिया है। इस लिये तुम मेरे साथ श्रीविष्णु भगवान् के पास चलो। मैं तुम्हें वहाँ बड़े आराम से पहुँचा दूँगा। आकाश, पाताल, समुद्रतट आदि जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ चलो। अब देर करना व्यर्थ है।

एक सौ आठ का अध्याय

गरुड़ के मुख से पूर्व दिशा का वर्णन

इसके बाद गरुड़ जी ने कहा—हे मुनि गालव! विष्णु भगवान् की आज्ञा से मैं तुमसे पूँछता हूँ कि, आप सब से पूर्व किस दिशा को जाना चाहते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इनमें से किस दिशा को आप देखना चाहते हैं। बतलाइये उधर ही हम चलें। जिस दिशा में सूर्य भगवान् उदित होते और सन्ध्या समय साध्य देवताओं का तपश्चरण होता है, वह दिशा पूर्व

दिशा कहलाती है। इसी दिशा में गायत्री देवी का निवास है। जो अपने उपासकों को निर्मल बुद्धि प्रदान करती हैं। सूर्य, चन्द्र और धर्म आदि का भी इसी दिशा में निवास है और इसी दिशा में अनेक यज्ञ हुआ करते हैं। हे महामुने! यही दिशा दिन और काल का द्वार है। दक्षपुत्री की प्रजा इसी दिशा में उत्पन्न हुई तथा कश्यप के पुत्रों का भी इसी दिशा में लालन पालन हो कर उनकी वृद्धि हुई थी। हे मुने! यह दिशा देवताओं की प्राचीन तपोभूमि है। यहीं देवराज इन्द्र का राज्याभिषेक हुआ था और प्राचीन काल में देवताओं की यही मुख्य प्राचीन निवासभूमि थी। इसी कारण इसे पूर्व दिशा कहते हैं। सुख की आकांक्षा करने वाले देवताओं ने प्रथम प्रथम यहीं सब शुभ कर्मों का प्रारम्भ किया था। विश्व, ब्रह्माण्ड के निर्माता श्रीब्रह्मा जी ने भी यहीं वेदगान किया था तथा श्रीसूर्यदेव ने भी ब्रह्मज्ञानियों को इसी दिशा में गायत्री का उपदेश दिया था। महर्षि याज्ञवल्क्य को भी सूर्यदेव ने इसी दिशा में यजुर्वेद के मंत्रों का उपदेश दिया था और वरदान पा कर देवताओं ने सोमरस भी यहीं पिया था। अग्नि और वरुण ने भी इसी दिशा से ऐश्वर्य और जीवन प्राप्त किया है। मैत्रावरुण यज्ञ के समय पुरातन वसिष्ठ का जन्म, पालन और विनाश भी इसी दिशा में हुआ था। प्रणव शब्द ओंकार के भेदों का भी यही निर्गम स्थान है। धूमपा ऋषि भी यहीं पर हविष्य के धूम को पिया करते हैं। देवराज इन्द्र ने इसी दिशा में देवताओं के यज्ञीय भागों की कल्पना कर अनेक वन्य पशुओं का प्रोक्षण किया था। कृतघ्नियों और शत्रु असुरों का विनाश करने के लिये सूर्यदेव भी इसी दिशा से उदित होते हैं। यह दिशा तीनों लोकों का द्वार है। यदि आपकी इच्छा हो तो उसी दिशा में चलें। हे गालव! सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। अतएव यदि आपकी इच्छा इस दिशा में घूमने की न हो, तो मैं अन्य दिशा का वर्णन करता हूँ। सुनिये, फिर जिधर जाने की इच्छा हो, उधर ही चलियेगा।

एक सौ नौ का अध्याय

गरुड़ द्वारा दक्षिण दिशा का वर्णन

गरुड़ जी ने कहा—हे मुने! पहिले सूर्यदेव ने वैदिक विधि से यह दिशा अपने गुरुदेव को दक्षिणा में दे दी थी। अतएव इसका दक्षिण नाम पड़ा है। इस दिशा में तीनों लोकों के देवगण निवास करते हैं तथा यह भी सुना जाता है कि, यहाँ पर गर्म जलपान करने वाले देवताओं का भी निवास है। जो विश्वेदेव यज्ञ करने से पितरों की समानता को प्राप्त हुए हैं, वे भी यहीं निवास करते हैं। यह दूसरे कालधर्म का द्वार है। जिसकी गणना त्रुटि और लवों द्वारा भी की जा सकती है। इस दिशा में देवर्षि राजर्षि तथा पितृलोक के ऋषिगण बड़े आनन्द से निवास करते हैं। हे गालव! इसी दिशा में पाप पुण्य का लेखा प्रकट होता है। कर्मबन्धन में रहने वालों का तो यहाँ निश्चय ही आगमन होता है। यहाँ पर बड़े बड़े भयङ्कर राक्षस भी रहा करते हैं; किन्तु उनका दर्शन उन्हींको होता है, जो अजितेन्द्रिय पापी जीव हैं। यहाँ विद्वान् ब्राह्मण और महर्षियों के घरों में तथा मन्दिरों और निकुञ्जों में गन्धर्व लोग अति मनोहर गान किया करते हैं। हे महामुने! एक समय रैवतक नाम का राजा यहाँ उन गाथाओं और सामवेद के गायनों को सुनने के कारण यहाँ रुक गया था। जब वह यह सब सुन कर मृत्युलोक में पहुँचा तब क्या देखता है कि, उसके मन्त्री आदि सब मर गये हैं और राज्य भी शत्रुओं के अधीन हो गया है। यह देख कर, उसे बड़ा ही उद्वेग हुआ और वह फिर क्लेश को न सहन कर सकने के कारण जंगल में तपश्चर्या, करने के हेतु निकल गया। इसी दिशा में सावर्णि मुनि और यवक्रीतपुत्र की बाँधी हुई मर्यादा है। उसका उल्लंघन सूर्यदेव भी नहीं करते हैं। देखिये, इसी दिशा में राक्षसराज रावण ने बड़ा कठिन तपश्चरण किया था और उसके प्रभाव से देवताओं ने प्रसन्न हो कर उसे अमरत्व प्रदान किया था। इसी स्थान पर वृत्र और इन्द्र के साथ बैर हुआ

था। प्राणों के पाँच अपान उदान समान आदि विभाग यहीं किये जाते हैं। यहाँ पर सूर्यदेव कर्कराशिस्थ हो कर मीठे जल की वृष्टि करते हैं। भले बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये प्राणी भी यहीं आ कर स्वर्ग या नरक भोगा करते हैं। वह देखो, सामने पापियों से भरी हुई वैतरणी नदी बह रही है। सूर्यदेव के उत्तरायण होने पर यहाँ खूब शीत पड़ता है। हे महामुने! एक बार इसी स्थान पर आ कर मुझे बड़ी भारी भूख लगी। मैं सोच ही रहा था कि, अब क्या करना चाहिये, किन्तु इतने ही में एक हाथी और कछुआ लड़ते लड़ते मेरे पास आये। बस मैंने उनसे अपनी क्षुधा शान्त की। यहाँ पर सूर्यदेव से एक चक्रधनु नाम के ऋषि उत्पन्न हुए, जिन्हें कपिल देव के नाम से भी पुकारा जाता है। उन्होंने एक समय सगर के पुत्रों को भस्म कर दिया था। वेदान्त-वेद्य ब्रह्म को प्राप्त हो कर मुक्त हो जाने वाले विद्वान् शिव नामक ब्राह्मणों का यही निवास स्थान है। यही भोगवती नाम्नी एक नगरी है और उसकी रक्षा वासुकि, तक्षक तथा ऐरावत नामक नागों के अधीन है। मरणोपरान्त जो प्राणी यहाँ आते हैं, उन्हें बड़े भारी अन्धकार में फँसना पड़ता है। वह अन्धकार सूर्यदेव से भी नहीं हटाया जा सकता। हे महामुने! अब कहिये, आप इस दिशा में जाना चाहते हैं या नहीं? यह दिशा भी आपके देखने योग्य है। अब पश्चिम दिशा का भी हाल सुनिये।

एक सौ दस का अध्याय

गरुड़ द्वारा पश्चिम दिशा का वर्णन

इस प्रकार दक्षिण दिशा का हाल सुना कर गरुड़ जी ने पश्चिम दिशा का वर्णन करना आरम्भ किया। हे मुने! यह दिशा वरुण दिशा कहलाती है। वरुणदेव का जन्मस्थान और उनकी राजधानी भी यही है। दिन भर के परिश्रम से विश्राम लेने की लालसा से भगवान् सूर्यदेव भी इसी दिशा

में आ कर विश्राम करते हैं। भगवान् कश्यप ने वरुणदेव का इसी दिशा में अभिषेक किया है। वे जलचरों की रक्षा करते हैं। शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में चन्द्रदेव यहीं से रस जल को पी कर पुनः तरुण होते हैं। प्राचीन समय में दैत्यों ने प्रचण्ड वातवेग से दुःखी हो कर यहीं अपने प्रिय प्राणों का परित्याग किया था। अस्ताचल पर्वत जिससे पश्चिम सन्ध्या का उदय होता है, इसी दिशा में है और अपने प्रिय सूर्य को आश्रय देता है। साँसारिक जनों की आधी आयु का अपहरण करने वाली रात्रि और निद्रादेवी का भी विकास इसी दिशा से होता है। इसी दिशा में वायु पान कर सोई हुई दिति देवी के गर्भ को इन्द्र ने वज्र से भ्रष्ट कर दिया था। उसीसे मरुद्गणों की उत्पत्ति हुई। पर्वतराज हिमालय और मन्दराचल की जड़ें भी यहीं आ कर मिली हैं जिनका अनन्त वर्षों के अन्वेषण से भी पता चलना मुश्किल है। यहाँ स्वर्ण शैल तथा स्वर्ण कमलों वाले सरोवर के निकट खड़ी हो कर सुरभी गौ दुग्धधार की वर्षा किया करती है। चन्द्र तथा सूर्यदेव के शत्रु राहु का धड़ भी इसी दिशा के सामने दिखलायी दिया करता है। सदा तरुण रहने वाले महामुनि सुवर्णशिरा भी यहाँ पर अदृश्य रहते हुए वेदों का पाठ किया करते हैं। हरिमेधस मुनि की ध्वजवती नाम्नी पुत्री भी सूर्यदेव की आज्ञा से यहीं खड़ी रहती है। हे मुने! इस दिशा में सदा सुख ही सुख है। इस दिशा में सूर्य की गति भी तिरछी हो जाती है और समस्त ग्रहमण्डल सूर्यमण्डल में इसी स्थान पर प्रविष्ट हो जाता है। वे नक्षत्र सूर्य के साथ चक्कर काट कर फिर चन्द्रदेव के संयोग की लालसा से सूर्य-मण्डल से पृथक् हो जाते हैं। नदियों का जन्मस्थान जिससे समुद्रों का स्वरूप प्रकट हुआ करता है, वह भी यहीं है और यह भी सुना गया है कि, यहाँ सदा इतना जल भरा रहता है, जितना कि तीनों लोकों में है। आदि-मध्यान्त-शून्य भगवान् विष्णु तथा सर्पराज अनन्त का भी निवास-स्थान इसी दिशा में है। महर्षि कश्यप और मारीच भी यहीं रहते हैं। यह पश्चिम दिशा का वर्णन संक्षेपतः आपको कह सुनाया, यदि इच्छा हो तो कहिये, इसी दिशा को चलें।

एक सौ ग्यारह का अध्याय

गरुड़ द्वारा उत्तर दिशा का वर्णन

इसके बाद गरुड़ जी ने मुनि गालव से कहा—हे मुने! यह उत्तर दिशा है। यह पापों का विनाश कर मनुष्य को भवसागर से पार कर देती है। इस कारण इसका नाम उत्तर है। "उत्तरयति या सोत्तरा।" इस दिशा की परिधि पूर्व और पश्चिम को जाती है। इसी कारण इसे मध्य देश भी कहते हैं। यहीं पर सुवर्ण की खान है। इस दिशा में अधर्मात्मा, दुराचारी, पापियों की गुज़र नहीं है; किन्तु इस दिशा ही में बदरिकाश्रम है। वहाँ नर और नारायण तथा सनातन ब्रह्मा जी निवास करते हैं। प्रलयाग्नि के समान देदीप्यमान श्रीशङ्कर जी भी यहीं हिमालय पर श्रीपार्वती जी के साथ रहा करते हैं; किन्तु उनके दर्शन केवल नारायण ही को होते हैं। मुनि, देवता, इन्द्र, गन्धर्व, यक्ष और सिद्ध उन्हें नहीं देख सकते। सहस्र शिर, चरण और नेत्रों वाले केवल श्रीविष्णु भगवान् ही अपनी माया से उस दिव्यमूर्त्ति महादेव का दर्शन कर पाते हैं। यह वही दिशा है जहाँ चन्द्रदेव को द्विजों का राजा बनाया गया था और आकाश से गिरने वाली गङ्गा को शिव जी ने अपने मस्तक पर धारण किया था तथा मर्त्यलोक को प्रदान किया था। भगवान् शङ्कर के पाने के लिये श्रीपार्वती जी ने भी यहाँ ही तपश्चरण किया था। हे मुने! किसी समय कामदेव, शङ्कर का क्रोध, पार्वती जी तथा पर्वत यहाँ आ कर एकत्रित हो गये थे। इसी दिशा में समस्त यक्षमण्डली पर शासन करने के लिये, श्रीकुबेर जी का राज्याभिषेक किया गया था यहीं। चित्ररथ नामक रमणीय उपवन, मन्दाकिनी गङ्गा, वैखानसाश्रम, मन्दराचल पर्वत और सौगन्धिक वन हैं। इसकी देखभाल करने के लिये दिनरात राक्षस वहाँ बने रहते हैं। यहीं पर हरित तृण मनोहर कदलीवन, कल्पतरु वृक्ष आदि बड़े अनुपम और अलभ्य पदार्थ हैं। जितेन्द्रिय के रक्षक, सिद्धों के भोगने योग्य और इच्छानुसार विहार करने वाले अनेक विमान इसी दिशा में विद्यमान हैं और

अरुन्धती तथा सप्तर्षियों की वासभूमि भी यही दिशा है। स्वातिनक्षत्र का उदय और निवास भी यहीं है तथा पितामह ब्रह्मा भी अनेक यज्ञों का विस्तार करते हुए यहीं निवास करते हैं। चन्द्रसूर्य और नक्षत्र भी इसी दिशा की परिक्रमा करते रहते हैं। हे मुने! गङ्गाद्वार की रक्षा करने हारे सत्यधामा नाम के द्विजर्षियों का भी यहीं निवास होता है। किन्तु उनका स्वरूप अथवा तपश्चरण किसी को दिखलायी नहीं देता। वहाँ पर यथेच्छ भोजनों के पात्र निरन्तर आया जाया करते हैं। किन्तु इन सब आश्चर्य चरितों को साधारण मनुष्य नहीं देख सकते। केवल दिव्यदृष्टि महर्षियों ही को इन सब बातों का भान हो सकता है। जैसे जैसे हिमालय के समीप मनुष्य बढ़ता जाता है, वैसे वैसे ही उसके प्राणों पर सङ्कट आता जाता है। क्योंकि बर्फ़ के कारण वहाँ निर्वाह होना असम्भव है। नर नारायण के सिवाय कोई भी उस स्थान पर नहीं पहुँच सकता; जहाँ पर श्रीकुबेर जी का मुख्य निवासस्थान कैलास है। यहीं पर विद्युत्प्रभा नाम की दस अप्सरायें उत्पन्न हुई थीं। यहीं पर विष्णुपद तीर्थ है। वामनावतार में वटु रूपधारी भगवान् ने इस दिशा को चरण से नाप कर यह तीर्थ बनाया है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इसी उत्तर दिशा में राजा मरुत्त ने जाम्बूनद सरोवर के समीप उशीरबीज नामक स्थान में बड़ा भारी यज्ञ किया था। इसी ओर जीमूत नामक एक ब्राह्मण को बड़ी भारी सोने की खान मिल गयी थी; किन्तु उस त्यागी महात्मा ने वह सब धनराशि विद्वान ब्राह्मणों के समर्पण कर, उनसे कहा कि, इस धनराशि को मेरे नाम ही से प्रसिद्ध करना। अतएव उस धन का नाम जैमूत विख्यात हुआ। यहाँ सभी लोग परोपकार करने के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। यहाँ तक कि, सायं प्रातः दोनों समय दिक्पाल पुकार पुकार कर सब से यह कहा करते हैं कि, बोलो किसका क्या काम है, वह सब किया जावे। हे महामुने! आपने इस दिशा से परिचय प्राप्त कर लिया। देखिये, यह कैसी अच्छी दिशा है। मैंने आपको चारों दिशाओं का परिचय करा दिया। अब बोलिये, आप किस दिशा को चलना

चाहते हैं। मैं आपको प्रत्येक दिशा और भूभाग दिखाने को प्रस्तुत हूँ। अतः आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये।

एक सौ बारह का अध्याय

गरुड़ के ऐश्वर्य का वर्णन

हे विनतात्मज ! आप मुझे उसी दिशा को ले चलिये जिस दिशा का आपने पहिले वर्णन किया था। आपने कहा था कि, पूर्व दिशा में देवता रहते हैं अतएव आप मुझे पूर्व दिशा ही को ले चलिये। हे गरुड़ जी ! आपने यह भी बतलाया है कि, इस पूर्व दिशा में धर्म तथा सत्य का भी निवास है।

अतः आप इसी दिशा में चल कर देवताओं का मुझे दर्शन कराइये। मुनि गालव की ये बातें सुन कर गरुड़ जी ने उन्हें अपनी पीठ पर बिठा लिया। तदनन्तर मुनि गालव श्रीगरुड़ जी के वेग को देख कर कहने लगे कि, हे गरुत्मन् ! आप जब वेग से चलते हैं, तब यह प्रतीत होता है कि, मानों सूर्य देव चले आ रहे हैं तथा आपके पङ्खों के पवन के वेग से चञ्चल हुए वृक्ष भी आपके पीछे पीछे चलते से प्रतीत होते हैं। आपके चलते समय, परों के प्रचण्ड वाताघात से वस्तुएँ खिची सीं चलीं आ रहीं हों, ऐसा प्रतीत होता है। वह देखो, समुद्र का जल तो बिल्कुल आकाश की ओर उड़ा सा चला आ रहा है। हे पक्षिराज ! वनों और पर्वतों सहित सागराम्बरा पृथिवी को तो आप अपने परों के वेग से खींचें ही लेते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। देखिये, एक सी आकृति की मछलियाँ छोटे बड़े मगर मच्छ, सर्प आदि सभी इस समय आपके पङ्खों की वायु से मथे से जा रहे हैं। आह ! यह क्या मुझे तो कुछ सूझता बूझता ही नहीं। मेरे कान समुद्र के घनघोर गर्जन से बहिरे हो गये हैं। अतएव हे महावेगशालिन् ! हे पक्षिराज ! ज़रा धीरे धीरे चलो। कहीं ब्रह्महत्या न हो जावे। इस बात का भी ध्यान रखना। मुझे न तो सूर्य दिखलायी देता है और न दिशाएँ

ही देख पड़ती हैं। आकाश भी मुझे किसी ओर मालूम नहीं पड़ता। केवल अन्धकार ही अन्धकार है और तो और मणि के समान चमकने वाली आपकी आँखों के सिवाय मुझे और कुछ भी नहीं सूझता। आपका और अपना शरीर भी मुझे नहीं देख पड़ते। हाँ, पग पग पर आपके शरीर से निकलने वाली आग की चिनगारियाँ अवश्य ही दीखती हैं और वे मेरी आँखों में चकाचौंध कर के फिर शान्त हो जाती हैं। बस महाराज! क्षमा कीजिये, अब मुझे आगे जाने की इच्छा नहीं है। कृपा कर पीछे को लौटिये। हे पक्षिराज! मैंने अपने गुरुदेव की गुरु-दक्षिणा में आठ सौ श्याम-कर्ण घोड़े देने की प्रतिज्ञा की थी। सो अब उसकी पूर्ति होना मुझे तो असम्भव मालूम होता है और यह प्रतीत होता है कि, अब मेरे प्राणों की ही पूर्ति हो जावेगी। मैं कोरा बाबाजी हूँ और मेरा कोई ऐसा सम्पन्न मित्र भी नहीं है, जिसके द्वारा यह मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जावे। गालव की इस दीन वार्त्ता को सुन, गरुड़ जी उड़ते ही उड़ते बड़े ज़ोर से हँसे और गालव से बोले। हे मुने! तुम कुछ अधिक बुद्धिमान् नहीं जान पड़ते। तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी किये बिना प्राण त्यागना चाहते हो। देखो, काल कोई दूसरी वस्तु नहीं है। वह तो साक्षात् परमेश्वर का स्वरूप है। यदि तुम ऐसे कायर थे, तो तुमने मुझसे पहिले ही क्यों न कह दिया। अच्छा अब एक उपाय तुम्हें बतलाता हूँ जिससे तुम्हारा काम सिद्ध हो जावेगा। यह देखो—सागर के किनारे ऋषभ नाम का एक पर्वत है। यहाँ कुछ देर खा पी कर हम विश्राम करें और फिर लौट चलें।

एक सौ तेरह का अध्याय

शाण्डिली का प्रभाव

जब गालव मुनि ऋषभ पर्वत के शिखर पर उतरे, तब उन्होंने वहाँ एक शाण्डिली नाम्नी तपस्विनी को देखा। पन्नगारि गरुड़ जी ने उसे बड़े

विनीत भाव से प्रणाम किया तथा मुनि गालव ने उसका पूजन किया। उस तपस्विनी ने भी इनका यथोचित अतिथि सत्कार कर इन्हें भोजन कराये और भोजनादि से निवट कर वे दोनों पर्णशाला में जा कर सो गये। कुछ देर बाद श्रीगरुड़ जी आगे चलने की इच्छा से उठे और उठ कर ज्यों ही अपने शरीर को देखते हैं त्यों हीं उन्हें बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ। उन्होंने देखा कि, उनका शरीर केवल माँस का लोथड़ा ही रह गया है और पर आदि सब झड़ झड़ा गये हैं। जब यह दशा मुनि गालव ने देखी; तब वे ब्राह्मण देवता उनसे भी अधिक घबरा गये और गरुड़ जी से पूँछने लगे कि, हे पक्षिराज! यह क्या? आपको यहाँ आने का यह कैसा फल प्राप्त हुआ? बतलाइये अब यहाँ और कितनी देर तक ठहरना पड़ेगा? बतलाइये तो सही, यह आपके कौन महापातक का प्रायश्चित्त हो रहा है? वह कर्म जिसका कि यह ऐसा हृदय-विदारक आपको फल मिला है, कोई साधारण कर्म न होगा?

पक्षिराज गरुड़ ने कहा—गालव! देखो आपको मैं अपने मन की बात बतलाता हूँ। मैंने अभी अभी मन में यह विचार किया था कि, यह सिद्धा तापसी है। इसको मैं धर्मयज्ञ सनातन विष्णु भगवान् का जहाँ निवास है, वहीं उठा कर ले चलूँ। यह उसी पवित्र स्थान के योग्य है। बस मेरे इसी मानसिक ध्यान का फल है। इसे अब आप चाहे पाप समझें या पुण्य। अब मैं अभी सिद्धेश्वरी माता शाण्डिली से अपने अपराध की क्षमा माँगता हूँ।

यह कह कर श्रीगरुड़ जी उस तपस्विनी के पास जा कर प्रणाम पूर्वक कहने लगे—हे माता! मुझे क्षमा करो। मैंने तो पवित्र स्थान में ले जाने के विचार ही से यह पूर्वोक्त मानसिक विचार किया था। आप इसे चाहे पाप समझें या पुण्य। अतः मैं निरपराधी हूँ। आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये।

यह सुन कर तापसी ने बड़ी प्रसन्नता से गरुड़ से कहा—हे गरुड़! डरो मत, तुम बड़े सुन्दर और वेगशाली परों वाले पक्षिराज हो। भला तुम्हें भय किस बात का? हे पुत्र! तुमने मेरी निन्दा की थी। इस कारण तुम्हें यह फल भोगना पड़ा। याद रखो, मैं अपनी निन्दा करने वाले को क्षमा नहीं करती। मेरी निन्दा करने वाला पापी स्वर्ग से भी भ्रष्ट हो जाता है। मैं समस्त कुलक्षणों से हीन, पापरहित, धर्मपरायणा और सदा-चारिणी हूँ। इसी कारण मुझे यह सिद्धि प्राप्त हुई है। बेटा! आचार ही से धन, धर्म और ऐश्वर्य की प्राप्ति और कुलक्षणों का नाश होता है। अतएव हे पक्षिराज! भविष्य के लिये सावधान हो जाओ। कभी मेरी निन्दा मत करना। देखो, स्त्रियाँ कभी निन्दा को सहन नहीं करतीं और उनकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये। अब तुम जहाँ जाना चाहो वहाँ जा सकते हो। तुम्हारे पर वैसे ही वेगशाली हो जावेंगे। अन्त में गरुड़ जी ने देखा कि, उनका जैसा पहिले शरीर था वैसा ही हो गया है। तब उन्होंने माता शाण्डिली को प्रणाम किया और उससे आज्ञा पा कर, पहिले जैसे ही वेग के साथ आकाश में जाने लगे। हाँ, यह सब आश्चर्य-जनक घटनाएँ तो हुईं; किन्तु बेचारे मुनि गालव का कोई काम सिद्ध न हुआ। उन्हें गुरुदक्षिणा के लिये जैसे गुरुदेव विश्वामित्र ने श्यामकर्ण घोड़े बतला दिये थे वैसे कहीं नहीं मिले। पक्षिराज बड़े वेग से चले जा रहे थे। मार्ग ही में विश्वामित्र का उन्हें दर्शन हुआ।

विश्वामित्र जी ने पक्षिराज गरुड़ के सम्मुख ही मुनि गालव से कहा—हे ब्रह्मदेव! सुनो, तुमने जो अपने आप ही प्रतिज्ञा की थी कि, मैं आपको गुरुदक्षिणा में श्यामकर्ण घोड़े जैसे कि, आपने बतलाये हैं, ला कर दूँगा। सो अब उस प्रतिज्ञा के पूर्ण करने का समय आ गया है। मैंने अब तक प्रतीक्षा की वैसे ही और भी प्रतीक्षा करता रहूँगा। इस कारण जैसे भी हो सके, तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने का प्रयत्न करो। यह सुन कर, गालव बड़े दुःखी और दीन हो गये।

यह सब दशा देख कर श्रीगरुड़ जी ने मुनि गालव से कहा—हे ब्रह्मदेव ! जैसे आपसे पहिले विश्वामित्र जी ने यह बात कही थी वैसे ही अब मेरे सामने उन्होंने आपसे कही है। अतएव अब आपको बिना गुरु-दक्षिणा चुकाये बैठना उचित नहीं है। आओ चलो, आप और मैं दोनों ही श्यामकर्ण घोड़ों की प्राप्ति का उपाय सोचें।

एक सौ चौदह का अध्याय

राजा ययाति के निकट गमन

इसके उपरान्त बड़े भारी असमञ्जस में पड़े हुए दीन गालव मुनि से श्रीगरुड़ जी ने कहा—हे महामुने ! सुनो, सारा संसार हिरण्यमय है। सुवर्ण की उत्पत्ति अग्निदेव से होती तथा वायु उसका संशोधन करता है। यह धन संसार का पालन करता है और अनादि काल से चला आया है। पूर्वभाद्रपद और उतरभाद्रपद नक्षत्र और शुक्रवार के योग होने पर यह धन कुबेर के कोष की वृद्धि के लिये मनुष्यों से ग्रहण किया जाता है। कुबेर जी उसकी रक्षा करते हैं। अतएव यह धन अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है। इसका प्राप्त होना कोई सरल काम नहीं है, अतएव अब तुम्हें उचित है कि, तुम किसी धनाढ्य राजा के यहाँ जा कर याचना करो, जिससे वह बिना प्रजा को कष्ट दिये ही तुम्हें कृतार्थ कर देवे। चन्द्रवंशी राजा ययाति मेरा परम मित्र है। वह सत्यपराक्रमी और अतुल-संपत्तिशाली है। तुम उसके पास जा कर घोड़ों की याचना करना और मैं उससे तुम्हारी शिफारिश कर दूँगा। हे मुने ! उस राजा का कोष कुबेर के भाण्डार से कम नहीं है। तुम उसके पास गुरुदक्षिणार्थ धन पा कर गुरु के ऋण से छूट सकते हो। निदान, वे दोनों सम्मति कर प्रतिष्ठाननगर में राजा ययाति के पास पहुँचे। राजा ययाति ने उन दोनों की अर्घ्य आदि द्वारा पूजा की और उत्तम आसन पर बैठा कर उनके आगमन का कारण पूछा।

तब गरुड़ जी ने कहा—हे राजन्! यह गालव मुनि मेरे बड़े मित्र और महातपस्वी ब्राह्मण हैं तथा अनन्त वर्षों से विश्वामित्र जी के शिष्य हैं। इन्होंने जब विद्या समाप्त कर गुरु की आज्ञा प्राप्त कर गुरुकुल से आने का विचार किया, तब गुरुदेव ने इन्हें सहर्ष आज्ञा दे दी। चलते समय इन्होंने गुरुदेव को गुरुदक्षिणा के लिये कहा, तब उन्होंने कहा जब तुम्हारी खुशी हो तब कुछ दे देना; किन्तु इन्होंने उनसे वार बार आग्रह किया, तब तो कुछ उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने इनसे आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे हैं। इन बेचारे महर्षि के पास धन थोड़ा ही है? आप स्वयं जानते हैं कि, मुनियों के पास तो केवल कुटी, कुशासन, कम्बल, कमण्डल आदि के सिवा और कुछ होता ही नहीं है? अतएव अब यह महर्षि इसी चिन्ता से निरन्तर दुःखी रहा करते हैं। अन्त में आपके पास इसी इच्छा से आये हैं कि, आप इन्हें धन दे कर इन्हें कृतार्थ करें और यह गुरुदक्षिणा से उऋण हो जावें। उसके बाद यह बड़ा भारी तपश्चरण करेंगे, जिसमें से आपको भी उचित भाग दिया करेंगे। हे राजन्! यह मुनि सर्वथा प्रतिग्रह के पात्र हैं और आप दानवीर हैं। इन्हें आपके समान दानी और आपको ऐसा पात्र मिलना कठिन है। एक तो शङ्ख और तिस पर वह दूध से भरा, भला बतलाइये उसका परित्याग कौन करेगा?

एक सौ पन्द्रह का अध्याय

ययाति और माधवी

श्री गरुड़ जी की इस सत्य हितकारी बात को सुन कर तथा उस पर वार बार विचार करते हुए राजा ययाति ने सावधानी के साथ उन अतिथियों की ओर देख कर कहा—हे पक्षिराज! आज मेरा कुल, जन्म, देश आदि सभी धन्यवाद के योग्य हैं। सचमुच आपने मेरा और मेरे वंश का आज उद्धार कर दिया; किन्तु एक बात है। आप जैसा मुझे धनी अब

समझ रहे हैं वैसा मैं धनी नहीं हूँ। मेरा धन नष्ट हो गया है; परन्तु आपकी आज्ञा तथा अतिथिदेव ब्राह्मण की आशा पर मैं पानी नहीं फेरूँगा। अवश्य आपके मनोरथ को पूर्ण करूँगा। क्योंकि धन की आशा से पधारे हुए अतिथिदेव यदि विमुख हो कर लौट जाते हैं, तो सारे कुल को भस्म कर डालते हैं। हे गरुड़! संसार में याचना करने वाले के सम्मुख नकार करने वाले मनुष्य से बढ़ कर और कोई दूसरा पातकी नहीं है। प्रतिष्ठित पुरुषों की आशाओं और इच्छाओं के भंग करने वालों का कभी कल्याण नहीं होता। मेरे एक कन्या है जो भविष्य में चार कुलों को स्थापित करेगी। यह देवकन्या बड़ी धर्मज्ञा और धर्म को बढ़ाने वाली है। इस कारण हे महामुने गालव! आप उसे ग्रहण कीजिये। निश्चय ही अन्य राजा गण इस कन्या के साथ विवाह करने के उपलक्ष्य में राजपाट तक दे देने के लिये तैयार हो जावेंगे। फिर भला इन आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों का मिल जाना कौन बड़ी बात है? अतः इस माधवी नामक मेरी पुत्री को आप ले जाइये और मुझे यह वरदान दीजिये कि, इसके द्वारा मुझे एक धेवते की प्राप्ति होवे। मुनि गालव और गरुड़ जी दोनों उस माधवी को साथ ले कर राजा की आज्ञा से चल दिये।

इसके उपरान्त गरुड़ जी ने कहा—हे मुने! अब आपको घोड़े मिलने का द्वार कन्या-रत्न प्राप्त हो गया। इस लिये मैं अब अपने घर को जाता हूँ। यह कह कर वे तो चले गये। अब गालव ने सोचा कि, कौन राजा ऐसा ऐश्वर्यशाली है कि, जो इस कन्या के बदले में मुझे आठ सौ घोड़े प्रदान करने को ग्रहण कर सकेगा। बहुत सोच विचार करने के बाद वे अयोध्यानिवासी राजा हर्यश्व के पास गये। वह राजा वीर धीर ब्राह्मणभक्त एवं ऐश्वर्यशाली था। मुनि वहाँ पहुँचे और राजा से जा कर कहा कि, हे राजन्! यह मेरी कन्या उत्तम सन्तान-रत्नों द्वारा कुल की वृद्धि करने वाली है। अतः इसे तुम अपनी धर्मपत्नी बनाओ और मुझे इसका मूल्य दे दो, मूल्य क्या है यह भी सुनो।

एक सौ सोलह का अध्याय

माधवी और हर्यश्व

महाराज हर्यश्व ने गालव मुनि की इस बात पर बहुत कुछ विचार किया और एक लंबी साँस ले कर मुनि गालव से कहा—हे मुने! यह तुम्हारी कन्या वास्तव में बड़ी सौभाग्यवती देवताओं के भी दर्शन योग्य परम सुन्दरी है। इसका उरःस्थल, उदर, केशकलाप, स्कंध और हाथ यह ऊँचे और भरे हुए हैं। शरीर का चमड़ा, दाँत, अँगुलियाँ और पैरों की अँगुलियों के पर्वस्थान अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इसका सत्व, स्वर, नाभि आदि तीन स्थान गम्भीर हैं। हथेली, चरण, तल, नेत्र, प्रान्त, जीभ, ओष्ठ, सुन्दर और लाल हैं। यह सर्व-लक्षण-सम्पन्ना वीर पुत्र को उत्पन्न करने के योग्य है। इस कारण इस कन्या के योग्य जो कुछ भी मूल्य हो, वह मुझे बतलाइये।

मुनि गालव ने कहा—हे राजन्! इस कन्या का मूल्य वे आठ सौ घोड़े हैं, जिनके कान एक ओर काले हों और सब शरीर चन्द्रमा के समान श्वेत हो। अतः यह मूल्य प्रदान कर आप इस कन्या से पुत्ररत्न उत्पन्न कीजिये। जिस प्रकार अरणीकाष्ठ से अग्नि उत्पन्न होता है, उसी प्रकार आप भी इससे पुत्र प्राप्त करेंगे।

यह सुन कर काममोहित राजा हर्यश्व ने बड़ी दीनता के साथ गालव मुनि से कहा—हे मुने! मेरे पास केवल इस समय तुम्हारे बतलाये हुए लक्षणों वाले २०० घोड़े हैं। शेष अन्य जाति के बड़े बड़े उत्तम घोड़े हैं। आप उन्हें ले सकते हैं; किन्तु हे मुने! मैं इस कन्या से पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। आप मेरी इस कामना को अवश्य ही स्वीकार करें।

राजा यह कह ही रहा था कि, इतने में उस माधवी कन्या ने गालव मुनि से कहा—हे मुने! मुझे एक बार किसी ऋषि ने यह वरदान दिया

था कि, तू सन्तान उत्पन्न कर चुकने के बाद फिर कन्या हो जाया करेगी। अतः आप इन दो सौ घोड़ों को ले लीजिये और मुझे राजा के पास छोड़ दीजिये। ऐसे तुम्हें चार राजाओं द्वारा आठ सौ घोड़े मिल जावेंगे, अन्त में मुझे चारों राजाओं से विवाह सम्बन्ध में बाँध देना। मेरी सम्मति तो यही है, वैसे जो आपकी इच्छा हो वह करें।

यह सुन कर गालव ने हर्यश्व से कहा—हे राजन्! आप इस कन्या का चौथाई मूल्य दो सौ घोड़े मुझे दे कर केवल एक पुत्र उत्पन्न कर लो। राजा की कामना पूर्ण हुई। महर्षि गालव की आज्ञा से उन्होंने एक पुत्ररत्न योग्य समय पर प्राप्त किया। उसका नाम वसुमना रखा गया, वह ऐश्वर्य में अष्ट वसुओं से भी चढ़ बढ़ कर था और बड़ा दानी हुआ। जब यह सब कुछ हो गया, तब मुनि गालव ने उस राजा हर्यश्व के पास जा कर कहा—हे राजन्! आपके सौभाग्य से आपको पुत्ररत्न प्राप्त हो गया। अब मुझे इस कन्या को लौटा दीजिये। मैं अन्य राजा के पास जा कर अपनी भिक्षा पूरी करूँगा। राजा हर्यश्व ने भी उस कन्या को लौटा दिया। माधवी, उस राज-सम्पदा को त्याग कर एक दम अपने योगबल से कन्या हो गयी और ऋषि के पीछे चल दी।

मुनि गालव ने राजा हर्यश्व से कहा—हे राजन्! इन घोड़ों को अभी आप अपने यहाँ ही रहने दीजिये, फिर मैं ले जाऊँगा। इतना कह कर, कन्या को ले मुनि गालव राजा दिवोदास के पास गये।

एक सौ सत्रह का अध्याय

माधवी और दिवोदास

महामुनि गालव ने कन्या माधवी से कहा—हे कन्ये! काशीपति दिवोदास बड़ा ही पराक्रमी विद्वान् और सत्यवादी राजा है। तू निश्चित हो कर धीरे धीरे मेरे साथ चली आ। मुनि गालव और वह कन्या दोनों ही

राजा दिवोदास के पास पहुँचे। राजा के आतिथ्य को स्वीकार करने के बाद गालव ने राजा से अपनी इच्छा प्रकट की।

राजा दिवोदास ने गालव मुनि से कहा—हे महामुने! मैं सब बातें पहले ही से जान चुका हूँ। इस लिये अब विस्तार करने की कोई आवश्यकता नहीं है; किन्तु एक बात है, श्यामकर्ण घोड़े मेरे पास भी उतने ही हैं जितने कि आपको अवधेश हर्यश्व से प्राप्त हो चुके हैं। इस कारण मैं भी आपकी कामना एक ही पुत्र द्वारा पूर्ण कर सकूँगा। मैंने जब आपका हाल सुना था, तब ही से मुझे बड़ी लालसा थी। आप अन्य राजाओं को छोड़ कर जो मेरे समीप आ कर अपनी अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं; इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

मुनि गालव ने राजा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कन्या राजा को प्रदान की। उस राजा ने भी उस कन्या को ग्रहण कर जैसे सूर्य प्रभावती के साथ, जैसे इन्द्र शची के साथ, जैसे अग्नि स्वाहा के साथ, जैसे यम धूमोर्णा के साथ, जैसे चन्द्र रोहिणी के साथ, जैसे नारायण लक्ष्मी के साथ, जैसे ब्रह्मा वेदी के साथ, जैसे पुलस्त्य सन्ध्या के साथ, जैसे वसिष्ठ अक्षमाला के साथ, जैसे अगस्त्य वैदर्भी के साथ, जैसे सत्यवान् सावित्री के साथ, जैसे भृगु पुलोमा के साथ, जैसे कश्यप अदिति के साथ, जैसे जमदग्नि रेणुका के साथ, जैसे विश्वामित्र हेमवती के साथ, जैसे बृहस्पति तारा के साथ, जैसे शुक्र शतपर्वा के साथ और जैसे भूपति भूमि के साथ, जैसे ऋचीक सत्यवती के साथ, जैसे मनु सरस्वती के साथ, जैसे दुष्यन्त शकुन्तला के साथ, जैसे नारद सत्यवती के साथ, जैसे नल दमयन्ती के साथ, जैसे धर्म धृति के साथ, जैसे अर्णायु मेनका के साथ, जैसे तुम्बुरु रम्भा के साथ, जैसे वासुकि शतशीर्षा के साथ, जैसे धनञ्जय कुमारी के साथ और जैसे श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ विहार करते हैं, वैसे ही राजा दिवोदास ने भी माधवी के साथ विहार कर, प्रतर्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

नियमित समय के समाप्त होते ही राजा के समीप जा कर मुनि गालव ने कहा कि, हे राजन्! अब इस कन्या को लौटा दो और इसका मूल्य जबतक मैं लौट कर न आऊँ, अपने ही यहाँ रहने दो। सत्यप्रतिज्ञ राजा दिवोदास ने प्रतिज्ञानुसार कन्या, मुनि को समर्पित कर दी।

एक सौ अठारह का अध्याय

शिवि की उत्पत्ति

यशस्विनी माधवी ने फिर राजलक्ष्मी का परित्याग कर और कन्या रूप धारण कर मुनि गालव का अनुसरण किया। मुनि अपने काम को सिद्ध करने के लिये वहाँ से भोजनागार की ओर राजा उशीनर से मिलने के लिये, चल दिये।

वहाँ जा कर उन्होंने राजा से कहा—हे राजन्! आप अनपत्य (निःसन्तान) हैं। इस कारण इस कन्या से दो पुत्र ऐसे तेजस्वी उत्पन्न कीजिये जैसे सूर्य और चन्द्रमा हैं और इस कन्या के मूल्य स्वरूप केवल चार सौ श्यामकर्ण घोड़े मुझे दीजिये। देखो राजन्! इसमें आपको कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है; आपको चाहिये कि, आप पुत्ररूप नौका से अपने पितरों का उद्धार करें। संसार में निष्पुत्र मनुष्य को कभी सुख नहीं होता। वह बेचारा स्वर्ग से ढकेल दिया जाता है, उसके लोक परलोक सब बिगड़े हुए ही समझो।

राजा ने कहा—हे मुने! मुझे आपका यह हाल पूर्व ही से मालूम है तथा मेरी भी बड़ी प्रबल इच्छा आपकी आज्ञा पालन करने की हो रही है, किन्तु शोक इस बात का है कि, मेरे पास वैसे तो असंख्य अश्व (घोड़े) हैं; परन्तु श्यामकर्ण घोड़े केवल दो सौ ही हैं। अतएव मैं केवल एक ही पुत्र

उत्पन्न कर सकता हूँ। जैसे औरों ने इस कन्या से काम ले कर उचित मूल्य प्रदान किया है, वैसे ही मैं भी कार्य के अनुकूल आपको मूल्य प्रदान करूँगा। मेरा धनकोष केवल प्रजा और देश की रक्षा के लिये है, अपने स्वार्थ के लिये नहीं। जो राजा प्रजा के धन का अपने सुख के लिये उपभोग करता है, वह राजा अपकीर्त्ति कमा कर संसार में दुराचारी कहलाता है। मैं आपसे इस कन्या को चाहता हूँ, आप देवाङ्गना के समान इस कन्या को पुत्रोत्पत्ति के अर्थ मुझे प्रदान कर दीजिये। जब इस प्रकार उशीनर ने कन्या के हेतु अत्यन्त आग्रह किया, तब गालव मुनि ने उसे कन्या प्रदान कर दी। गालव मुनि ने राजा को कन्या प्रदान कर स्वयं वन की ओर प्रस्थान किया। राजा ने उस कन्या के साथ पर्वतीय गुफाओं, सरिताओं, वाटिकाओं, अटारियों, सुन्दर राजभवनों और विमान आदि में खूब विहार किया। इसके बाद राजा उशीनर को सूर्य समान तेजस्वी शिवि नामक एक पुत्र हुआ। तदनन्तर मुनि भी आये और कन्या को ले कर पक्षिराज गरुड़ जी के यहाँ चले गये।

एक सौ उन्नीस का अध्याय

माधवी और विश्वामित्र

जब पक्षिराज ने गालव मुनि को देखा; तब वे बड़े प्रसन्न हो कर हँसते हुए मुनि से बोले—हे मुने! आज आपको निज कार्य में सफलता प्राप्त हुई देख कर, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

यह सुन मुनि गालव बोले! हे विनतात्मज! अभी मेरा कार्य पूरा सफल नहीं हुआ है, बल्कि एक चौथाई काम शेष रहा है।

पक्षिराज ने कहा—तो बस आपको आगे अपने काम करने का उद्योग भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि पहिले कान्यकुब्ज नगर में ऋचीक ने गाधि

राजा के पास जा कर कहा कि, आप अपनी सत्यवती नाम्नी पुत्री का विवाह मेरे साथ कर दीजिये।

राजा ने उत्तर में ऋचीक से कहा—मुझे स्वीकार है, किन्तु आप एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े मुझे ला कर दीजिये, तब यह सम्बन्ध स्वीकार किया जावेगा।

अस्तु, ऋचीक ने कहा—बहुत ठीक। तदनन्तर उन्होंने वरुण की अश्वशाला में से एक हज़ार श्यामकर्ण घोड़े ला कर राजा गाधि को दे दिये। राजा ने भी उन घोड़ों को पा कर पुण्डरीक नामक यज्ञ किया और वे सब के सब घोड़े ब्राह्मणों को दान कर दिये। ब्राह्मणों से उशीनर, हर्यश्व और दिवोदास नामक राजाओं ने दो दो सौ घोड़े ख़रीद लिये। शेष घोड़े वितस्ता नामक नदी में बह गये। इस लिये अब आपका प्रयत्न करना व्यर्थ है। क्योंकि दुर्लभ वस्तु कभी मिल ही नहीं सकती। अतः मेरी सम्मति में ऐसा करो कि, यह छः सौ घोड़े और दो सौ घोड़ों के बदले में यह कन्या ले जा कर महामुनि विश्वामित्र के समर्पण कर दो। बस यही उपाय करने से तुम्हारी चिन्ता शान्त होगी और तुम सिद्धकाम हो जावोगे। बस फिर क्या था इस उपाय को सुन कर मुनि को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे गरुड़ के साथ ही कन्या और घोड़ों को ले कर विश्वामित्र के पास गये और बोले—हे गुरुदेव! लीजिये। आपके आज्ञानुसार यह छः सौ श्यामकर्ण घोड़े और २०० घोड़ों के बदले में यह एक कन्या है। इसे प्रसन्न हो कर आप स्वीकार कीजिये। राजाओं ने इससे तीन पुत्र उत्पन्न किये हैं, अब आप भी इससे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न कीजिये। ऐसा करने से आपके ऋण से मैं उऋण हो जाऊँगा।

इस प्रकार विश्वामित्र अपनी दक्षिणा के साथ सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या को देख कर बोले—हे गालव! यदि ऐसी बात थी तो तूने मुझे पहिले ही यह कन्या ला कर क्यों नहीं दे दी? अस्तु अब मैं इस कन्या और इन घोड़ों को सहर्ष ग्रहण करता हूँ। कन्या से धार्मिक पुत्र उत्पन्न करूँगा और घोड़े

आश्रम में चरते रहेंगे। कुछ काल बाद विश्वामित्र के द्वारा माधवी से एक अष्टक नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के पैदा होते ही विश्वामित्र ने उसे पूर्ण धार्मिक शिक्षा द्वारा धर्मनिष्ठ बना कर और वे घोड़े उसे दे कर, एक विशाल नगर का राजा बनाया। वे कन्या को अपने शिष्य गालव को सौंप स्वयं वन को चले गये।

गालव ने गुरु के ऋण से मुक्त हो कर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की और उस कन्या से कहा—हे कन्ये! तेरे चारों पुत्र एक एक बात में अद्वितीय हुए हैं। एक शूर, दूसरा धर्मात्मा, सत्यवादी और तीसरा दानी तथा चौथा अनेक यज्ञ करने वाला है। इस लिये इन चारों ने तेरे पिता को और इन चार राजाओं को तथा मुझे भी तार दिया है। यह कह कर और कन्या को उसके पिता के यहाँ पहुँचा, गालव मुनि गरुड़ जी की आज्ञा से वन को चले गये।

एक सौ बीस का अध्याय

राजा ययाति को शाप

राजा ययाति ने अपनी कन्या को आया हुआ देख कर, अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और वह उसके स्वयंवर की तैयारी करने लगा। चारों ओर स्वयंवर की सूचना के लिये दूत भेजे गये तथा गङ्गा यमुना के सङ्गम-स्थान में स्वयम्वर महोत्सव मनाने का निश्चय किया गया। निदान, स्वयम्वर की सूचना पा कर चारों ओर के राजकुमार एकत्रित हुए। यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर, ऋषि, मुनि, महर्षि आदि सभी से स्वयम्वर-भवन खचाखच भर गया। सब के आ चुकने के बाद पुरु और यदु भी अपनी बहिन के हाथ में जयमाल दे और उसे रथ में बिठाल कर, स्वयंवर-भवन में आ पहुँचे। कन्या माधवी को सब राजाओं का परिचय दिया गया। अन्त में उस कन्या ने बड़े बड़े

शूरवीर धर्मात्मा और सुन्दर राजाओं को परित्याग कर, केवल वनवास ही स्वीकार किया। वह रथ से उतर, अपने पूज्य प्रिय परिजनों आदि को प्रणाम कर, वन में जा कर कठिन तपस्या करने लगी। अनेक व्रत उपवास नियमादि द्वारा अपनी शुद्धि करने लगी और मन के राग द्वेष को दूर कर मृगियों के साथ विचरने लगी। जैसे मृग कोमल हरित घास को खा कर प्रसन्न रहते हैं, वैसे ही वह भी तृणों को खाती हुई, काल बिताने लगी। वह ब्रह्मचर्य के साथ रह कर वन के हिंसक पशुओं में तथा गिरि नदियों के स्रोतों में विचरने लगी।

इधर राजा ययाति ने भी धार्मिक राज्य-शासन के प्रभाव से लक्ष वर्ष की अवस्था प्राप्त की थी और अब वह भी स्वर्ग सिधार गया। पुरु और यदु ने अन्त में ययाति के वंश की प्रतिष्ठा बढ़ायी। वह ययाति राजा बड़ा धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ था। अतएव स्वर्ग में भी उसने अनन्त वर्षों तक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव किया। एक समय की बात है कि, स्वर्ग में अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न राजर्षि अपने अपने आसनों पर बैठे हुए थे। राजा ययाति ने वहाँ जा कर उनका अपमान करना प्रारम्भ किया। देवराज इन्द्र ने भी उसके मानसिक विचार को जान लिया। स्वर्ग में बैठे हुए सब राजर्षियों के मुख से धिक्कार है, धिक्कार है— ये ही शब्द सुनायी पड़ने लगे। स्वर्गवासियों ने राजा ययाति को देख कहा कि, यह कौन और कहाँ से आया है? इसे स्वर्ग में आने का क्या अधिकार है? यह कहाँ का सिद्ध है? इसने कहाँ तप किया है तथा स्वर्ग में इसको पहिचानने वाला कौन है? अन्त में इन्होंने राजा ययाति के विषय में सम्भवतः सभी स्वर्गीय द्वारपाल आदि कर्मचारियों से पूछा; किन्तु सभी ने यह उत्तर दिया कि, हम उसे नहीं जानते हैं। इस प्रकार सब का ज्ञान मोह से आच्छन्न हो गया। अतएव राजा ययाति को किसी ने भी नहीं पहिचाना। कुछ देर बाद राजा ययाति भी एक बार निस्तेज और कर्महीन हो गया।

एक सौ इक्कीस का अध्याय

ययाति का स्वर्ग से भ्रष्ट होना

मानसिक उद्वेग ने भयङ्कर रूप धारण किया। शरीर थरथर काँपने लगा और शोकाग्नि में जलते हुए की तरह राजा ययाति अपने स्थान से भ्रष्ट हो गया। गले में पड़ी हुई मन्दारमाला कुम्हिला गयी, ज्ञान विज्ञान का सर्वनाश हो गया, शिरस्त्राण (किरीट मुकुट) और मणिबन्ध खसक गया। चक्कर आने लगे शरीर ढीला और वस्त्राभूषण सब के सब अस्त-व्यस्त हो गये। वह बार बार देवताओं का दर्शन करना चाहता था; किन्तु उसे देवताओं के दर्शन तो दूर रहे अन्य दृश्य भी दृष्टिगोचर नहीं होते थे। वह स्वर्ग से भ्रष्ट हो कर भूमि पर गिरने वाला था। अतएव ये सब विपरीत लक्षण उसमें प्रकट होने लगे।

ऐसी अपनी दुर्दशा देख कर, राजा ययाति ने अपने मन में विचार किया कि, आह! आज यह मेरी क्या दशा हो रही है? मैंने ऐसा कौन सा दुष्कर्म किया है, जिसके कारण मुझे स्वर्ग से भ्रष्ट होने के ये लक्षण दिखलायी पड़ रहे हैं। राजा ययाति यह सोच ही रहा था कि, इतने में सिद्ध तथा अप्सराओं ने राजा ययाति को स्वर्ग से भ्रष्ट होते देखा। जिस समय राजा ययाति स्वर्ग से भूमि पर गिरने को हुए, उस समय देवदूतों ने आ कर उसे बड़ी बड़ी धिक्कारें दीं और कहा कि, रे मूर्ख! तू बड़ा अभिमानी और मदोन्मत्त है। तू सब का अपमान किया करता था। इसी कारण आज स्वर्ग से गिराया जा रहा है। तेरे जैसे पामरों को तो स्वर्ग में क्षण भर के लिये भी स्थान नहीं है।

यह सुन कर राजा को अब की बार बिलकुल निश्चय हो गया कि, अब मैं स्वर्ग से गिराया जाऊँगा। अतः उसने सोचा कि, पृथ्वी पर भी मैं गिराया जाऊँ तो धर्मात्माओं ही में मेरा पतन हो। इतने में उसे चार ऋषि भूमण्डल पर नैमिषारण्य में यज्ञ करते हुए दिखलायी दिये। वे ऋषिगण

वाजपेय यज्ञ द्वारा देवराज का स्तवन कर रहे थे। उनके यज्ञमण्डप से निकल कर यज्ञीय धूम आकाश से अवतीर्ण होने वाली मन्दाकिनी के समान भूमण्डल से स्वर्ग तक नदी की सी मूर्त्ति धारण कर रहा था। राजा ययाति ने भी यज्ञ के धुए को पहिचान कर, उसीके सहारे स्वर्ग से भूमण्डल की यात्रा की। क्षीणपुण्य राजा ययाति उन चार विशुद्ध यज्ञकर्त्ता महर्षियों के बीच में आ कर गिरा।

हे राजन्! वे महर्षि और कोई नहीं थे। वह माधवी से उत्पन्न चारों पुत्र राजा ययाति के धेवते थे। ज्योंही राजा ययाति उन चारों के बीच जा कर गिरा, त्योंही उन ऋषियों ने उसके तेजस्वी शरीर को देख कर कहा—महानुभाव! आप कौन और किसके सम्बन्धी हैं? आपको कौन कौन यहाँ पहिचानता है? आप यक्ष हैं या गन्धर्व! देव हैं या दानव?

इस प्रकार उन ऋषियों के पूँछने पर राजा बोला—मेरा नाम ययाति है और मैं अब तक स्वर्ग में था; किन्तु मेरे पुण्य क्षीण हो गये। अतः वहाँ से मैं गिर गया हूँ। गिरते समय मैंने यह सोचा कि, स्वर्ग से भ्रष्ट हो कर भी धर्मात्माओं ही में मेरा पतन हो इस कारण मैं आप चारों के बीच में गिर पड़ा हूँ।

वे चारों राजर्षि बोले—हे राजन्! ठीक है आपकी इच्छा पूरी हो और आप हमारे यज्ञ के आधे फल को प्राप्त करें।

राजा ययाति ने कहा—मैं प्रतिग्रह स्वीकार करना नहीं चाहता क्योंकि मैं क्षत्रिय हूँ। मैं दूसरों के पुण्य में बाधक नहीं होना चाहता। हे राजन्! राजा ययाति और ऋषियों में बातें हो ही रही थीं कि, माधवी भी मृगी के समान विचरती हुई उस ओर आ निकली। उसे देख कर वे चारों राजर्षि आ कर खड़े हो गये और उसे प्रणाम कर कहने लगे—हे माता! आप यहाँ कैसे पधारी हैं? हमारे लिये क्या आज्ञा है? कहिये आपका कौन सा प्रिय कार्य हम आपके सेवक करें?

पुत्रों की यह बात सुन कर माधवी बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने पुत्रों के सिर पर हाथ रख कर अपने पिता ययाति को प्रणाम कर के बोली—हे पिता जी ! यह चारों राजर्षि आपके धेवते अर्थात् मेरे पुत्र हैं। यही आपका उद्धार करेंगे। ऐसा शास्त्रों का कथन है। मैं आपकी माधवी नाम्नी कन्या हूँ। इसी वन में निरन्तर मृगों के समान विचरती हुई धर्मसंग्रह करती रहती हूँ। मैंने जितना भी धर्म-संग्रह किया है उसमें से भी आप आधा ले लीजिये इसमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि सभी मनुष्य अपने सन्तान के पुण्यफल का भाग ग्रहण कर सकते हैं और इसी हेतु धेवतों के होने की इच्छा करते हैं। आपके इच्छानुसार आपके धेवते आपका उद्धार करने के लिये प्रस्तुत हैं। अतएव आप इनकी इच्छा को अवश्य पूरा कीजिये। इसके उपरान्त उन राजर्षियों ने अपनी माता को प्रणाम कर नाना का भी अभिवादन किया और उनसे फिर वही बात बड़े आग्रह के साथ ज़ोर से कही। इधर गालव मुनि भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजा ययाति से कहा कि, लो मैं तुम्हें अपने तप का आठवाँ हिस्सा देता हूँ। इससे तुम स्वर्ग चले जाओ।

एक सौ बाईस का अध्याय

ययाति का पुनः स्वर्गगमन

राजा ययाति के उन चारों धेवतों ने जब उन्हें पहिचान लिया तभी राजा ययाति का दिव्य शरीर धीरे धीरे स्वर्ग जाने के लिये तैयार होने लगा। उनकी मालाएँ फिर से प्रफुल्लित और नवीन ताज़े फूलों की सी हो गयीं। जो पैर भूमि पर लगे हुए थे, वे भी धीरे धीरे ऊपर को उठने लगे। दिव्य वस्त्राभूषणों से राजा का तेज और भी अधिक बढ़ गया। शरीर से दिव्य गन्ध आने लगा। संसार के मुख्य दानवीर वसुमना नामक राजा ययाति के धेवते ने जब देखा कि, मेरे नाना जी अब नहीं रुकेंगे और स्वर्ग

को चले ही जावेंगे, तब उसने उच्चस्वर से चिल्ला कर कहा कि, मैं आपको अपने सम्पूर्ण सदाचारों का पुण्य फल प्रदान करता हूँ। आप उसके भागी हों। दानी, सदाचारी, अग्निहोत्र और क्षमाशील बन कर जो मुझे फल प्राप्त होने वाला होगा, वह सब आपको मिलेगा। इसके बाद प्रतर्दन ने भी तार स्वर से कहा कि, जैसे मैं सदा धर्म में निष्ठा रखता हूँ और युद्ध के लिये तैयार रहता हूँ और क्षत्रियवंश की कीर्ति को बढ़ाता हूँ वैसे ही आप भी मेरे समान पुण्यफल के भागी हों।

इसके बाद शिवि ने कहा—मैंने कभी हास्य में तथा स्त्रीप्रसंग में जुए में तथा खेलते समय अपने सहाध्यायियों से झूँठ नहीं बोला और संग्राम आदि अनेक आपत्तियों के आ पड़ने पर भी मैं सत्यमार्ग पर स्थित रहा हूँ। अतः आप इस मेरे सत्य बल के प्रभाव से स्वर्ग में आनन्द भोगिये। यदि मेरे सत्य से धर्म अग्नि और देवराज इन्द्र प्रसन्न हों, तो आप उसी सत्यबल से स्वर्ग पधारिये। मैंने सैकड़ों वाजपेय, पुण्डरीक, गोमेध आदि यज्ञ किये हैं। आपको उन सब का फल प्राप्त हो। सत्य के पीछे मैंने सर्वस्व समर्पण कर दिया है। आप उसी समर्पण के बल पर स्वर्ग भोगिये। इस प्रकार जैसे ही धेवतों ने राजा ययाति को अपना अपना पुण्य प्रदान किया वैसे ही वैसे वह स्वर्ग की ओर चढ़ने लगा। हे राजन्! उन चारों राजर्षियों ने स्वर्गभ्रष्ट राजा ययाति को पुनः स्वर्गधाम पहुँचा दिया। अपने कुल को बढ़ाने वाले क्षत्रिय वीर राजर्षियों ने अपने पुण्य-प्रभाव से नाना जी को स्वर्ग भेज दिया। इसके बाद उन सब ने कहा—हे राजन्! आपके हम लोग धेवते हैं तथा सम्पूर्ण राजधर्मों से युक्त हैं। अतः हमारे पुण्य-प्रताप से आप स्वर्गीय ऐश्वर्य भोगिये।

एक सौ तेईस का अध्याय

ययाति के स्वर्गच्युत होने का हेतु

अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले उन राजर्षियों के पुण्य प्रभाव से स्वर्ग जाने वाले राजा ययाति के ऊपर दिव्य सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन उनकी सेवा करने लगा। अपने धेवतों के पुण्य से स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर, राजा ययाति उस पुण्यफल से स्वर्ग में शोभित होने लगा। स्वर्ग की अप्सराओं और गन्धर्वों ने उसका नाच गा कर स्वागत किया। शङ्ख और दुन्दुभियों की ध्वनि गूँजने लगी. अनेक चारणों तथा राजर्षियों और देवर्षियों ने उसका षोडशोपचारों से पूजन किया। देवताओं ने प्रशंसा करते हुए ययाति के शुभागमन का अभिनन्दन किया।

इसके उपरान्त परम शान्त राजा ययाति से ब्रह्मा जी ने कहा—हे राजन्! वास्तव में तुमने अहिंसा सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि के अनुष्ठान से तथा अनेक यज्ञों और धर्माचरणों के पुण्यफल से स्वर्ग में अक्षय सुख प्राप्त कर लिया था; किन्तु तुम्हें ऐसा अभिमान हो गया था कि, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। तुम यह समझने लगे थे कि, बस हमारे बराबर संसार में कोई पुण्यात्मा है ही नहीं। इसी कारण स्वर्ग-वासियों के मन में क्रोध हुआ था। केवल इस मदोन्मत्तता के कारण ही तुमने स्वर्गीय सुखों पर पानी फेर दिया, किन्तु कुछ नहीं, अब तुम्हारे पुण्यात्मा धेवतों ने तुम्हारा फिर उद्धार किया है और तुम इस अक्षय, पवित्र एवं सनातन शुभ स्थान स्वर्ग में फिर से आये हो।

यह सुन कर राजा ययाति ने फिर हाथ जोड़ कर कहा—हे ब्रह्मन्! आज मुझे एक बड़ा भारी सन्देह हो गया है और वह सिवाय आपके और किसी के हटाये हट नहीं सकेगा। अतएव मैं आपसे पूँछता हूँ कि, मैंने

अनन्त वर्षों तक प्रजाजनों का पुत्र के समान लालन पालन करते हुए क्षात्र धर्म का पालन किया तथा अनेक यज्ञ, दान, दक्षिणा आदि के द्वारा धर्म का सञ्चय कर, अनन्त पुण्य-पुञ्ज एकत्रित किया। फिर भी मुझे आश्चर्य है कि, वह इतनी जल्दी कैसे क्षीण हो गया? मैंने तो पुण्यप्राप्य अक्षय लोकों की प्राप्ति की थी; किन्तु वे सब भी सहसा नष्ट हो गये। यह बात क्या है? भला ऐसे अक्षय पुण्य का इतना क्षणिक स्वर्गीय फल, कैसे नष्ट हो गया?

ब्रह्मा जी ने कहा -- हे राजन्! तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। वास्तव में तुम्हारा पुण्य-फल ऐसा ही था कि, तुम अक्षय स्वर्गीय सुख भोगते; किन्तु तुम्हारा सब किया कराया, समस्त अनर्थों की जड़ अभिमान ने, मिट्टी में मिला दिया। इसी कारण तुम्हें स्वर्ग से नीचे गिरना पड़ा। राजन्! सुनो। यह अक्षय स्वर्ग मद, मान, शठता, हिंसा, छल, कपट और बल से बिल्कुल दूर हट जाता है। स्वर्ग सुख चाहने वालों को चाहिये कि, वे ऊँच, नीच और मध्यस्थिति के भी मनुष्य का अपमान न करें। ऐसा करने वालों को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जो मनुष्य इस स्वर्गारोहण और स्वर्गपतन के इतिहास का मनन करते हैं, वे सब आपत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

हे राजा दुर्योधन! देखो, अभिमान के कारण तो राजा ययाति की यह दशा हुई और हठ के कारण मुनि गालव की वह दुर्दशा हुई, जिसे तुम अभी अभी सुन चुके हो। अतः तुम्हें चाहिये कि, तुम अपने हितैषी बन्धुओं की बात को मानो और उन्हींके कहने के अनुसार आचरण करो। याद रखो, आग्रह का परिणाम केवल सर्वनाश ही होता है। देखो राजन्! मनुष्य का दान, धर्म, तपश्चरण और यज्ञानुष्ठान सदा उसकी रक्षा किया करता है। यह कर्म कभी न्यून नहीं होते और केवल इनका फल भी कर्त्ता ही भोगता है और कोई दूसरा नहीं। यह पवित्र आख्यान सब प्रकार से मनुष्यों के धर्मार्थ काम की पूर्त्ति करता और उनके द्वारा रक्षा करता है।

यह आख्यान विद्वानों ने खोज निकाला है। इसके अनुसार आचरण करने वाला ही समस्त भूमण्डल का राज्य भोगता है।

एक सौ चौबीस का अध्याय

श्रीकृष्ण और दुर्योधन

श्रीनारद जी ने इस प्रकार दुर्योधन को समझाया। इसके उपरान्त धृतराष्ट्र ने कहा हे देवर्षि नारद! जो कुछ आप कहते हैं, वह सब ठीक है; किन्तु हे भगवन्! मैं क्या करूँ यह सब मेरी शक्ति के बाहर है।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! यह सब कह चुकने के बाद धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण जी से कहा हे केशव! आप जो कुछ भी मुझसे कह रहे हैं, वह सब धर्मानुकूल और न्याय नीति से अनुमोदित है तथा स्वर्ग के अक्षय सुख को देने वाला है; किन्तु मैं स्वाधीन नहीं हूँ और यह मेरा पुत्र दुर्योधन मुझे प्रसन्न करने वाले कामों को नहीं करता। अतएव आप इसी मूर्ख को समझाने का उद्योग कीजिये। क्योंकि वह मेरी, गान्धारी की, भीष्म की, महात्मा विदुर की तथा अन्य हितैषी बन्धुओं की भी भली बातें नहीं सुनता। हे मधुसूदन! इस पापी दुराचारी अभिमानी और क्रूरहृदय दुर्योधन को आप ही शिक्षा दीजिये। यदि आपने यह काम कर लिया तो मानों समस्त बन्धुओं का आशातीत उपकार किया।

यह सुन कर श्रीकृष्ण जी दुर्योधन को समझाते हुए कहने लगे—दुर्योधन! मेरी बातें ज़रा ध्यान से सुनो। मैं तुम्हारे बन्धुओं के और तुम्हारे दोनों के हित की बातें कहूँगा। तुमने शास्त्रों का अध्ययन किया है, तुम सदाचारी और बुद्धिमान हो। तुम्हें ऐसा काम कभी न करना चाहिये जैसा कि, तुम आज कल करने के लिये तैयार हो रहे हो। यह काम तो महानीचों, पामरों और नीच कुलों में उत्पन्न हुए मनुष्यों का है। आज तुम जैसे योग्य और कुलीन मनुष्य के हाथ से यह काम होना बड़े भारी आश्चर्य

और शोक का कारण होगा। देखो, तुम जो हठ कर रहे हो उससे बड़ा भारी अनर्थ हो जाने की पूर्ण और निश्चित सम्भावना है। तुम्हारा इस अधर्म-मार्ग पर चलना भयङ्कर आपदाओं का उत्पादक होगा। देखो, यदि तुम अपने बन्धु बान्धवों का और अपना कल्याण चाहते हो, तो इस अनर्थ कर्म से बचो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। तुम बुद्धिमान्, शूर वीर, धर्मात्मा पाण्डवों से सन्धि कर लो और अपने यश की रक्षा करो। यदि तुमने सन्धि कर ली तो तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बाल्हीक, सोमदत्त आदि सभी को बड़ी प्रसन्नता होगी। सन्धि करने से त्रैलोक्य का मङ्गल होगा। तुम कुलीन शास्त्रज्ञ तथा कारुणिक हो। इस कारण अपने पूज्य पिता और श्रद्धेय बन्धुओं की आज्ञा का उल्लंघन मत करो। पूज्य पिता की शिक्षाओं पर आचरण करने द्वारा बड़े बड़े अनर्थों से बच जाता है। महान् सङ्कटों के उपस्थित होने पर, मनुष्य को अपने पिता की शिक्षाएँ ही याद आया करती हैं। तुम्हारे पिता तथा उनके मन्त्रियों को पाण्डवों से सन्धि करने में बड़ी प्रसन्नता और भावी कल्याण प्रतीत हो रहा है। इस लिये तुम्हें भी इसको स्वीकार कर लेना चाहिये। जो प्राणी अपने हितैषियों की शिक्षा का निरादर कर विरुद्ध आचरण करता है, वह अत्यन्त दुःखी रहता है। उसके कर्मों का परिपाक विष का सा असर पैदा कर उस मनुष्य को भस्म कर डालता है। जो मूर्खतावश हितकारी बातों की अवहेलना कर विरुद्ध व्यवहार रखता है उसे अत्यन्त क्लेश होता है। वह सदैव पश्चात्ताप की भट्ठी में सुलगता रहता है; किन्तु जो अच्छी बात को मान कर उसके ऊपर आचरण करता है वह सदा सुखी रहता है। अविवेकी मनुष्य सदा शत्रुओं की प्रसन्नता का कारण हो ।। है। दुर्जनों की संगति में फँस कर मनुष्य को कभी चैन नहीं मिलता। वह अपने कुटुम्बियों को हार्दिक अनन्त क्लेश पहुँचाता है। जिसने अपने प्राचीन हितैषी सम्मति देने वाले मनुष्यों का कहना न मान कर नीचों की आज्ञा का पालन किया बस, समझ लो,

अब उस पर ऐसी भारी आपत्ति आने वाली है जिससे फिर कभी उसका उद्धार न होगा; किन्तु इसके विपरीत जो अपने अनुचित मत को समझाने बुझाने से त्याग कर हितैषी बन्धुओं की उचित सम्मति पर चलता है, वह सदा सुखी रहता है। शत्रुओं से प्रेम और स्वजन बन्धुओं से विरोध करने वाला मनुष्य ऐश्वर्यहीन हो कर नष्टभ्रष्ट हो जाता है। देखो दुर्योधन! पाण्डवों से वैर कर लेने पर तुम अपनी रक्षा नहीं कर पाओगे। तुम्हारा शत्रुमण्डल तुम्हें पद पद पर नीचा दिखावेगा और तुम प्रतीकार करने में असमर्थ होने के कारण भयङ्कर हार्दिक क्लेश का अनुभव करोगे। संसार में केवल तुम्हीं ऐसे हो जो अपने शूरवीर देवराज के समान पराक्रमी बन्धुओं से विरोध कर अपने रक्षित रहने और ऐश्वर्यशाली बने रहने की आशा रखते हो। पाण्डवों का जब से जन्म हुआ है, तभी से तुमने उन्हें अनेक क्लेश दिये हैं। छलों और प्रपञ्चों द्वारा उन्हें हानि पहुँचायी है। उन्हें धोखा दे कर नीचा दिखाया है; किन्तु उन्होंने कभी तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार नहीं किया। वे सदा तुम्हारे पिता की और तुम्हारी भलाई करने के लिये तैयार रहे हैं और अब भी हैं। अतः जैसा वे तुम्हारे साथ सद्व्यवहार करते हैं, वैसा ही तुम्हें भी करना चाहिये। देखो, दुर्योधन! बुद्धिमानों के वे ही काम होते हैं जिनसे धर्मार्थ के काम की सिद्धि होवे। जो सज्जन हैं और उच्च पुरुष हैं वे धर्म को ही मुख्य मान कर उसका पालन करते हैं; किन्तु मध्यश्रेणी के जीव सदा अर्थसिद्धि ही में मग्न रहते हैं और नीच पुरुष तो कामी होते ही हैं, उन्हें धर्म से कुछ वास्ता नहीं। वे तो निरन्तर काम कलह ही में अपना जीवन बिता देते हैं। हे राजन्! तुम्हें यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि, जो मनुष्य नीच और निन्दित साधनों द्वारा अर्थ और काम की सिद्धि करता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उस सिद्धि का आनन्द भी वह लूट नहीं पाता। इस लिये त्रिवर्ग-साधक को चाहिये कि, वह धर्म को मुख्य जान कर उसका आचरण करे। केवल धर्माचरण ही त्रिवर्ग-साधनों में मुख्य और उपादेय है। दुर्योधन! तुम उच्च वंश में पैदा

हो कर नीच उपायों से अर्थसिद्धि करना चाहते हो। यह हमें बड़ा बुरा मालूम पड़ता है। ऐसे कर्म से तुम्हारा यशस्वी निर्मल वंश कलङ्कित हो जावेगा और तुम कुलाङ्गार कहलाओगे। सज्जन महात्माओं के साथ छल कपट का व्यवहार करना अपने पैर में अपने आप ही कुल्हाड़ा मारने के समान है। मुझे तुम्हारी दशा देख कर बड़ा शोक हो रहा है। निश्चय ही तुम्हारी मति मारी गयी है। क्योंकि जिसकी बुद्धि खराब होती है, वही असल में दुष्कर्मों की ओर झुकता है; परन्तु जो बुद्धिमान् होता है, वह साधारण से साधारण मनुष्य का भी अपमान नहीं करता। बुद्धिहीन क्रोधी को भलाई बुराई का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। वह लौकिक और वैदिक सभी प्रमाणों का अपने कुतर्कों से खण्डन कर डालता है। देखो, दुर्योधन! कहना मानो इन दुर्जनों का साथ छोड़ दो और पाण्डव जो तुम्हारे स्वजन बन्धु और सज्जन सच्चे मित्र हैं, उनसे प्रेम करो। इसीसे तुम आनन्द में मग्न रह सकते हो। क्रोध में पड़ कर अपने वंश का सर्वनाश करने वाले बन्धुविरोध को त्याग दो और पाण्डवों से स्नेह कर उनकी भूमि उन्हें दे दो। तुम दुःशासन शकुनि और कर्ण को अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिये प्रस्तुत हो कर अपनी रक्षा चाहते हो; यह तुम्हारी भारी भूल है। याद रखो, बस ये ही तुम्हारी उन्नति ऐश्वर्य और शान्ति में रोड़ा अटकावेंगे। यह सब पाण्डवों के सामने क्षण भर भी तो रण में न ठहर सकेंगे। ये सारी की सारी सेनाएँ महाक्रोधी भीम की सूरत देखते ही सहम जावेंगी। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और जयद्रथ आदि त्रैलोक्य-विजयी अर्जुन के सम्मुख कायरों की तरह केवल खड़े के खड़े ही रह जावेंगे। इनका समस्त बल पराक्रम काफ़ूर हो जावेगा। इस लिये वीर-रस-साध्य संग्राम की बातें छोड़ो। दुर्योधन! तुम स्वयं इन राजाओं में से किसी ऐसे राजा को ला कर मेरे सामने खड़ा तो करो जो संग्राम में अर्जुन को परास्त कर सकुशल अपने घर को लौट आवे? इस लिये हठी बन कर सब बन्धुओं का संहार न कराओ। भला जिस अर्जुन से

खाण्डवप्रस्थ में यक्ष, गन्धर्व, सुरासुर, सर्प आदि सभी ने हार मान ली थी, उस अर्जुन को तू परास्त करने का दुःसाहस कर रहा है; यह कितनी मूर्खता-पूर्ण बात है। क्या तू विराट नगर के विजय से अर्जुन की रणकुशलता का परिचय नहीं पा सका है? भूतनाथ शङ्कर को भी जिस वीर ने अपने वीर्य पराक्रम से प्रसन्न कर लिया था, उसको परास्त कर डालना क्या तूने हँसी खेल समझ रखा है? पहिले तो स्वयम् अर्जुन ही अजेय है। दूसरे उसका सहायक मैं हूँ। अब भला अर्जुन को परास्त करने की कौन सामर्थ्य रखता है? दुर्योधन! याद रखो, अर्जुन पर विजयी वही वीर हो सकता है, जो भूमण्डल को उठाने में समर्थ, देवताओं को स्वर्ग से भ्रष्ट कर देने और क्रुद्ध हो कर प्रजा का संहार कर डालने में अतुल पराक्रमी होगा। इस लिये एक बार फिर अपने बन्धु बान्धवों, पिता, पुत्र और परिजनों की ओर देख और फिर इनके सर्वनाश का नग्न चित्र अपने हृदय पर अङ्कित कर के विचार कर कि, मैं क्या कर रहा हूँ। क्योंकि अब इनके जीवन मरण की समस्या केवल तूही हल कर सकता है। इस लिये प्रिय दुर्योधन! तू वही काम कर जिससे तेरा कुल जैसे अब तक सर्वश्रेष्ठ रहा है वैसा ही भविष्य में भी बना रहे। इन सब बन्धुओं के प्राण अकाल ही में काल कवलित न हों। देख महारथी वीर पाण्डवों ने सन्धि के बाद भी यही निश्चय कर लिया है कि, हम अपने पूज्य पिता धृतराष्ट्र ही के शासन में और वीर भ्राता दुर्योधन ही को युवराज पद से सुशोभित करेंगे। यह सुनहला समय तुझे फिर न मिलेगा। यदि इस समय तू चूक गया, तो बस इस चूक का सुधार कभी नहीं हो सकेगा। इस लिये दुराग्रह को त्याग कर और पाण्डवों को आधा राज्य दे कर, सन्धि कर ले। अपने पिता, पुत्र, बन्धु और बान्धव के साथ स्नेह का व्यवहार करते हुए राजलक्ष्मी का आनन्द लूट।

एक सौ पचीस का अध्याय

भीष्म और दुर्योधन

भगवान् वासुदेव के हितकारी उपदेश को सुन कर भीष्म पितामह ने राजा दुर्योधन से कहा—बेटा दुर्योधन ! देखो श्रीकृष्ण जी ने तुम्हें कैसी सुन्दर सीख दी है। वे चाहते हैं कि, तुम और तुम्हारी प्रजा सर्वदा आदर्श और जगन्मान्य बनी रहे। इस कारण इनकी बात को मानों और शान्त हो जाओ। बेटा ! मैं तो यही कहूँगा कि, यदि तुमने महात्मा कृष्ण के उपदेश को नहीं माना, तो तुम्हें सदा के लिये सुख, शान्ति तथा ऐश्वर्य से हाथ धो बैठना पड़ेगा। वासुदेव ने तुमसे जो कुछ भी कहा है वह सब धर्मानुकूल और न्याय-सङ्गत है। इस लिये तुम्हें उस पर आचरण करना ही चाहिये। इसके विपरीत करने से इस चमकती हुई राजलक्ष्मी को सब राजाओं के सम्मुख धृतराष्ट्र के जीते जी ही तुम अपनी दुष्टता से नष्ट कर डालोगे। तुम्हारा यह अभिमान तुम्हें तुम्हारे बन्धु बान्धवों, पुत्र, कलत्र, परिजन आदि के साथ साथ प्राणसङ्कट में डाल देगा। इस लिये मधुसूदन भगवान् कृष्ण जैसा कहते हैं, वैसा करो और शोकसागर में डूबे हुए अपने माता पिता का उद्धार करो। महात्मा विदुर और धृतराष्ट्र का कहना भी यही है। तुम्हें सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह सब तुम्हारे हितैषी और सच्चे बन्धु हैं। इनकी सम्मति में चलने से तुम सब दोषों से मुक्त रह कर यशस्वी और ऐश्वर्यशाली बन कर जीवन का आनन्द लूट सकोगे। मुझे शोक है बेटा ! इस बात का कि, इस वंश का कहीं सर्वनाश न हो जावे। तुम्हारा यह ढंग देख कर, मेरे सम्मुख भावी अमङ्गल का दृश्य नाचने लगता है। इस लिये बेटा ! अब यही ठीक है। पाण्डवों से अवश्य ही सन्धि करो और उन्हें उनका आधा राज्य लौटा दो।

जिस समय अपने बाबा भीष्म की इन बातों को सुन कर क्रोधी दुर्योधन लंबी लंबी गर्म साँसें खींच रहा था, उसी समय

द्रोणाचार्य ने उससे कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण जी और भीष्म पितामह यह दोनों ही आपको बड़ी शुभ सम्मति दे रहे हैं। यह दोनों बड़े बुद्धिमान् और राजनीति के विद्वान हैं। अतः इनकी शिक्षा अवश्य ही तुम्हें माननी चाहिये। अज्ञान में पड़ कर श्रीवासुदेव का तिरस्कार मत करो। देखो, यह जितने तुम्हें बढ़ावा दे कर संग्राम करने के लिये उकसा रहे हैं, वे सब खाली कहने के लिये ही हैं। काम पड़ने पर सब के सब नौ दो ग्यारह हो जावेंगे और विरोध का ढोल हम लोगों के गले में लटकाया जावेगे। बेटा, यह समझ रखो जिधर श्रीकृष्ण होंगे, उधर ही विजय होगा। इस लिये क्यों व्यर्थ बन्धुओं का नाश करने पर कमर कस रहे हो ? अर्जुन के पराक्रम की महिमा जैसी परशुराम जी ने बतलायी है, उससे भी अधिक अर्जुन में सामर्थ्य है। भगवान् श्रीकृष्ण का सामना तो देवता भी नहीं कर सकते हैं। इस लिये इनका कहना मान कर सन्धि ही कर लो। इसीमें भलाई है। बस मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। चाहे मानों या न मानों, यह तुम्हारी इच्छा है ?।

महात्मा विदुर ने कहा - दुर्योधन ! मुझे तुम्हारा तो कुछ शोक है नहीं; किन्तु शोक इन तुम्हारे बूढ़े माता पिता का है। क्योंकि ये बेचारे तुम्हारे जैसे नीच को अपना रक्षक बना कर, समस्त बन्धुओं का नाश हो जाने के बाद परकटे कबूतर की तरह इधर उधर असहाय हो कर मारे मारे फिरेंगे। तुम्हारे जैसे कुलाङ्गार पापी पुत्र को पैदा करने के कारण ही इन्हें भिखारी बन कर इधर उधर भटकना पड़ेगा। इससे शुश्रूषा में काटने योग्य वृद्धावस्था में यह दोनों न मालूम किन किन क्लेशों को सहन करेंगे। बस हमारे हृदय में रह रह कर यही एक हूक उठा करती है। मैंने तुम्हें सब कुछ पहिले ही से समझा रखा है; किन्तु विपरीत लक्षण देख कर, अब मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

उसके बाद राजा धृतराष्ट्र ने भी अपने पुत्र से कहा—बेटा दुर्योधन ! यह अवसर भूल करने का नहीं है। देखो श्रीकृष्ण की मध्यस्थता

में पाण्डवों से सन्धि कर लो और इनकी बात को न टालो। यह तुम्हारे हित के लिये इतनी दूर से आ कर सन्धि का प्रस्ताव कर रहे हैं। इस लिये इनके प्रस्ताव को अवश्य स्वीकार करो, अन्यथा तुम्हें पछताना पड़ेगा।

एक सौ छब्बीस का अध्याय

भीष्म द्रोण और दुर्योधन

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! धृतराष्ट्र की बातें सुन कर भीष्म और द्रोण जिनको दुर्योधन की इस दुष्टता पर बड़ा शोक हो रहा था, दुर्योधन से कहने लगे—दुर्योधन! देखो, हम यह चाहते हैं, कि जब तक महावीर अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष नहीं उठाता तथा जब तक धौम्य ऋषि इस भयङ्कर रणाग्नि में शत्रु रूप शल्य द्वारा होम नहीं करते, तब तक इस विरोध का अन्त हो जावे और अकारण प्रजा का सर्वनाश न हो तो अच्छा है। जब तक भीम अर्जुन रणाङ्गण में शत्रुओं का संहार करने के लिये न आवें तब तक इस भावी मार काट का अन्त हो जावे। जब तक गदाधारी भीम की गदा गजारोहियों और अश्वारोहियों के मस्तकों को छिन्न भिन्न कर, उन्हें भूमि पर नहीं पटक देती, तभी तक इन सब दुर्भावनाओं का विनाश हो कर पाण्डवों के साथ सन्धि हो जावे, जिससे हत्याकाण्ड का प्रारम्भ न हो। नकुल, सहदेव, विराट, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, शिशुपाल पुत्र आदि महारथी योद्धा महासागर में मगर मच्छों की तरह जब तक तेरी सेना में प्रविष्ट हो कर शस्त्रवर्षा नहीं करते, उसके पूर्व ही इस जनसंहार का अन्त हो जाना चाहिये। वीर महारथियों की बाणवृष्टि सुखोचित राजाओं के कोमल शरीरों पर होने के पूर्व ही इस सर्वनाश का अन्त हो जाना चाहिये। देखो, दुर्योधन! तुम्हें उचित है कि, तुम इस भावी महासमर के पूर्व ही धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों में अपना

मस्तक नवाओ और वे तुम्हें उठा कर अपने हृदय से लगा लेवें। उनका राजचिन्हों से अंकित दक्षिण हाथ तुम्हारे सिर पर रखा जावे जो कि विरोध की शान्ति का मुख्य चिन्ह है। तुम युधिष्ठिर के पास ऐसे भाव से बैठो जैसे एक छोटा भाई बड़े भाई के पास बैठता है और वे तेरी पीठ को अपने कोमल करों से सहरावें। महाबाहु वीर भीमसेन भी तुझे हृदय से लगावे और प्रेम की बातें करें। अर्जुन, नकुल, सहदेव जब यह तीनों तुझे प्रणाम कर चुकें, तब तू इन्हें अपनी छाती से लगा कर, इनका मस्तक सूँघना। उस समय इस अपूर्व सम्मेलन को देख कर, सभी राजा प्रेमाश्रुओं से सम्मेलन भवन को आनन्दित करें। चारों ओर इस सम्मेलन की सूचना दिलवा दें और आनन्द प्रेम के साथ निःशङ्क हो कर राजश्री का उपभोग करें।

एक सौ सत्ताईस का अध्याय

दुर्योधन का उत्तर

दुर्योधन इन उपदेशों को भला कब सुनने लगा? वह कौरव-समाज के बीच बड़ा लाल ताता हो कर श्री कृष्ण जी से कहने लगा—हे वासुदेव! ज़रा देख भाल कर और ज़बान सँभाल कर, बातचीत कर। तुझे सोच समझ कर बातचीत करनी चाहिये। केवल पाण्डवों पर अपना स्नेह होने के कारण ही मेरी निन्दा मत कर। केवल तू ही नहीं, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर भी मेरी निन्दा करते हैं। क्या इतने राजाओं में अकेला मैं ही निन्दा का पात्र हूँ। मैं बार बार इस पर सोचता विचारता हूँ; किन्तु मुझे इसमें कोई भी बुराई नहीं मालूम होती। इतने पर भी ये सब लोग मुझे दोष दे रहे हैं। हे केशव! सुन, मुझे तो कोई अपना अपराध ही नहीं मालुम होता। जिसके कारण ये लोग मेरी निन्दा करने पर कमर कस कर तैयार होते। देख, पाण्डवों ने स्वयं जुआ खेला। शकुनि ने उनका राज्य

आदि जुए में जीत लिया, भला बतलाओ इसमें मेरा क्या दोष है ! उन्होंने जो कुछ भी थोड़ा बहुत धन जीता था, वह सब भी मैंने उन्हें लौटा देने के लिये कह दिया था। हे मधुसूदन ! पाण्डवों के वनवास का कारण भी द्यूतक्रीडा ही हुई। इसमें भी हम अपना कुछ अपराध नहीं समझते। फिर भला पाण्डव हमसे क्यों विरोध करते हैं ? आप यह तो बतलाइये कि, हमने पाण्डवों का बिगाड़ा ही क्या है, जो वे सृञ्जयों के साथ हमें आ कर मार डालेंगे ? तू जो पाण्डवों के वीर चरित्रों का वर्णन कर और उनके कहे हुए भयानक सँदेशों को सुना कर, हमें डराना चाहता है सो यह न समझ कि, हम ऐसी गीदड़ भभकियों में आ जायँगे। हे माधव ! तूने हमें समझ क्या रखा है। यह तो बेचारे पाण्डव हैं। इनकी तो बिसाँत ही क्या है। हम इन्द्र से भी डरने वाले आसामी नहीं हैं। हे वासुदेव ! संग्राम में हमें पराजित करने वाला कोई है ही नहीं। देवता भी यदि आ जावें तो भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण आदि महारथियों के सामने से भागते ही देख पड़ेंगे। अच्छा, यही सही तेरे कथनानुसार हम युद्ध में मारे ही गये तो हानि क्या है ? यदि अपने धर्म का पालन करते हुए वीर गति से रणभूमि में हम प्राण त्याग देंगे तो और भी अच्छा है; वह समय भी तो आवे। हम तो बड़ी प्रतीक्षा में हैं। रणभूमि में शरशय्या पर शयन करने वाले वीर ही तो क्षात्र धर्म का यथोचित पालन करते हैं। इस लिये हमें रणभूमि में कट कर मर जाना स्वीकार है; किन्तु शत्रुओं के आगे मस्तक नवाना स्वीकार नहीं है। हे केशव ! तू ही बतला क्या ज़रा सी आजीविका के प्रश्न को हल करने के लिये अपने क्षात्र धर्म का परित्याग कर देना उचित है ? मनुष्य का धर्म है कि, वह कभी उद्योग को न छोड़े। जो पुरुष निरुद्योगी हो कर नम्रता ही से काम लेना चाहता है, वह मूर्ख है। बाँस की ग्रन्थि के समान मनुष्य को कठिन बना रहना चाहिये तथा कर्त्तव्यपथ से कभी भ्रष्ट न होना चाहिये। संसार में ऐसा व्यवहार करने से मनुष्य अवश्य सिद्धि प्राप्त करता है। देखो, मैं तो निरन्तर केवल धर्मरक्षा के

लिये ही ब्राह्मणों की वन्दना करता हूँ; किन्तु अपने क्षात्र धर्मानुकूल मैं दूसरों को अवश्य तृणसमान नगण्य समझता हूँ और यह मेरा सदा का मत है। देखो, मेरे पिता ने जो राज्य का भाग मुझे प्रदान किया है, मेरे जीते जी उसे कोई भी लेने की सामर्थ्य नहीं रखता। जब तक धृतराष्ट्र जीते तब तक कौरवों और पाण्डवों में से किसी एक पक्ष को तो अवश्य भिखारी बना रहना ही पड़ेगा। मैं प्राप्त किये हुए राज्य को लौटा नहीं सकता। क्योंकि मैं इस विषय में विवश हूँ। हे मधुसूदन! पहिली जैसी भूल अब क्या बार बार होती रहेगी? पहिले मेरी अज्ञानदशा में पाण्डवों को राज्य मिल गया था; किन्तु अब जब कि मैं समर्थ हूँ, तब भला ऐसा कैसे हो सकता है? राज्य तो राज्य, मैं तो इतनी भूमि भी पाण्डवों को नहीं दे सकता, जितनी कि सुई की नोक से बिंध सके।

एक सौ अट्ठाईस का अध्याय

श्रीकृष्ण का रोष

दुर्योधन की इस बात को सुन कर, महाराज श्रीकृष्ण जी की त्योरी चढ़ गयी और वे आँखें लाल कर के बोले—अच्छा दुर्योधन! तू बार बार वीरशैया की बात कह रहा है, इस लिये जा तुझे वीरशैया ही प्राप्त होगी। अब तू अपने मन्त्रिमण्डल सहित बड़े भारी संहार के लिये तैयार हो जा। तुझे अब मालूम हो जावेगा कि, मेरे समान पाण्डवों में कोई है या नहीं है? उपस्थित राजा लोगो! तुम सब को यह मालूम है कि, इसी दुष्ट ने पाण्डवों के ऐश्वर्य को असहन करते हुए, शकुनि द्वारा जुए का षड़यन्त्र रचा था। याद रखो, धर्मात्मा पाण्डव कभी कपटाचरण द्वारा अपने धर्म की हानि करने के लिये तैयार न होंगे।

दुर्योधन! तू अपने लिये समझता तो बड़ा बुद्धिमान् है; किन्तु है महामूर्ख। देख, जुआ बड़ी बुरी चीज़ है। इससे मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती

है। यह कलह की जड़ है। इससे बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। इस समय जो कुछ भी यह जनसंहार होने वाला है, वह सब तेरी ही करतूतों का फल है। दुर्योधन ! तेरे समान दूसरा कोई भी ऐसा नीच न होगा, जिसने अपनी गृहदेवियों का भरी सभा में अपमान किया हो; किन्तु तूने विशाल कौरवसमाज में द्रौपदी को बुलाया और उसका अपमान किया। जिस समय पराक्रमी पाण्डव वन को जा रहे थे, उस समय दुःशासन ने जो जो बातें कहीं थीं, वे सब बातें राजाओं से छिपी नहीं हैं। तुझे छोड़ कर ऐसा और कौन होगा, जो ऐसे उदार, पराक्रमी तथा धर्मात्मा अपने बान्धवों का अपमान करे। कर्ण, दुःशासन और तू इन तीनों ही ने पाण्डवों को दुःख देने, अपमानित और निर्वासित करने के सब सामान एकत्र किये थे। पाण्डवों की बाल्यावस्था ही में तूने उन्हें सताने के लिये भारी उद्योग किये थे; किन्तु पाण्डवों के सौभाग्य से तू बिलकुल असफल रहा। वारणावत नगर में तो तूने उन्हें भस्म कर डालने का भी प्रयत्न किया था और यह चाहा था कि, पाण्डवों की माता आदि सभी भस्म हो जावें, जिससे हमारा कोई भी कष्ट शेष न रहे। तेरी इन्हीं दुर्भावनाओं के कारण बेचारे पाण्डव गुप्त रीति से एकचक्रापुरी में एक ब्राह्मण के घर में जा कर रहे थे। तूने ही पाण्डवों को विष दिया और साँपों से कटवाया। कहाँ तक कहूँ पाण्डवों के मारने के लिये सभी प्रपञ्च तो तूने रचे; किन्तु वे कोई सफल न हुए। इतने पर भी तू यह कहता है कि, मैंने पाण्डवों का क्या अपराध किया है ? याद रख, यदि तूने पाण्डवों का राज्य उनको न सौंपा, तो तुझे यह ऐश्वर्यभोग न मिलेगा और आधे राज्य के बदले सारे राज्य को तू खो बैठेगा। तूने पाण्डवों पर बड़े बड़े अत्याचार किये हैं और अब भी इस गृह-कलह का तू ही एकमात्र कारण है। देख, दुर्योधन ! मुझे तुझसे कुछ बैर नहीं। यह जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, तेरी भलाई के लिये ही कह रहा हूँ। तुझे अपने माता, पिता, गुरु, भीष्म, महात्मा विदुर आदि पूज्य और विद्वान् लोग समझा रहे हैं; किन्तु तू कुछ नहीं सुनता। न मालूम

आज तू क्यों इतना हठ कर रहा है। अच्छा मुझे यही बतला कि, सन्धि कर लेने में तेरी हानि ही क्या है? आपस में प्रेम का व्यवहार और एकता होने से बड़ी अच्छी तरह सुख से जीवन व्यतीत होगा। तेरे सभी शत्रु तुझसे डरते रहेंगे और तू निष्कण्टक हो कर भूमि का शासन करेगा।

भगवान् वासुदेव का उपदेश अभी समाप्त होने भी न पाया था कि बीच ही में क्रोधी दुःशासन दुर्योधन से कहने लगा। हे राजन्! बस, बस, अब अधिक बातें न कीजिये। अभी आपको मालूम ही क्या है? यहाँ तो बड़ी बड़ी तैयारियाँ की जा रही हैं, जिनका कुछ ठिकाना नहीं। याद रखिये, यदि आप स्वयं अपनी इच्छा से पाण्डवों के साथ मेल नहीं करेंगे, तो आपकी मुश्कें बाँधी जावेंगी और आप पाण्डवों के हवाले किये जावेंगे। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा पिता जी ने यह निश्चय कर लिया है कि, यदि यह तीनों (कर्ण, दुःशासन, दुर्योधन) न मानें, तो ये तीनों बन्दी बना लिये जावें।

अभिमानी महानीच दुर्योधन अपने भाई दुःशासन की ये बातें सुनते ही और भी आगबबूला हो गया और सभा में बैठे हुए भीष्म, द्रोण, महात्मा विदुर, धृतराष्ट्र, बाल्हीक, श्रीकृष्ण आदि सब का अनादर करता हुआ सभास्थान से उठ कर जाने लगा। जब उसके भाई और मन्त्रियों ने देखा कि, दुर्योधन सभास्थान से बाहर जा रहा है, तब वे भी उसके पीछे पीछे उठ कर चले गये।

इस प्रकार सहामात्य सभाभवन से उठ कर जाने वाले दुर्योधन को देख कर, भीष्म जी ने कहा—हे राजाओ! जो मनुष्य क्रोध में भर कर हितकारी मित्रों और उनके उपदेशों की अवहेलना करता है, जो अन्याय अनीति और धर्माचार से गिर कर अपनी शक्ति खो बैठता है, वह शीघ्र ही आपत्ति में पड़ कर अपने शत्रुओं से हँसी कराता है। देखिये, यह लोभी राजा दुर्योधन दुष्टप्रकृति और महाक्रोधी है, यह ऐश्वर्य के मद में चूर हो कर, बड़े बुरे उपायों से काम ले रहा है। हे

वासुदेव ! मुझे तो इन बातों से यही जान पड़ता है कि, इस समस्त राजमण्डली का काल ही आ गया है। क्योंकि ये सब मन्त्रियों सहित दुर्योधन के पीछे लगे हुए हैं।

भीष्म की यह बात सुन कर, कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजाओ ! सुनो, सब से बड़ी भारी भूल तो कौरवों की यह है कि, उन्होंने दुष्ट दुर्योधन को पकड़ कर बन्दी नहीं बनाया। अतएव इस समय जो कुछ भी मैं करना चाहता हूँ वह सब आप लोग भी सुन लीजिये। मैं अपनी समझ से जिस बात को अच्छा समझता हूँ, वह आप लोगों से कहता हूँ। यदि आपको रुचे, तो उस पर आचरण करना। कंस बड़ा भारी दुराचारी राजा था। पिता की मौजूदगी ही में उसने उनसे राज्य छीन लिया था। अतएव उसने अपने प्राणों को खो दिया। दूसरा उग्रसेन का पुत्र कंस भी ऐसा ही था। उसके भी सम्बन्धियों ने उसके अत्याचारों से तंग हो कर उसे त्याग दिया था। जातीय बन्धुओं की हितकामना से मैंने उसे संग्राम में मार डाला और उग्रसेन को फिर राजसिंहासन पर बैठाया। सभी यादवों ने कंस का परित्याग कर आनन्द से जीवन बिताया। क्योंकि यदि एक मनुष्य के त्याग देने से कुल भर की रक्षा हो जावे, तो उसका अवश्य परित्याग कर देना चाहिये। देवासुर संग्राम के समय जब चारों ओर मार काट मच रही थी, देव दानवों में भारी हत्याकाण्ड शुरू हो गया था। उस समय लोकरक्षक प्रजापति ने कहा—दैत्य, दानव, असुर आदि सब हार जायँगे और आदित्य, वसु, रुद्र आदि सब देवताओं को स्वर्ग में स्थान मिलेगा। देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, भीषण संग्राम में क्रुद्ध हो कर एक दूसरे का संहार करेंगे। इस विचार से ब्रह्मा जी ने धर्म से कहा कि, इन दैत्य दानवों को बाँध लो और बाँध कर वरुण को सौंप दो। तब धर्म ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से उन दैत्य दानवों को पकड़ कर वरुण को सौंप दिया। वरुण ने उनको अपने दृढ़ पाशों से बाँध लिया और समुद्र में ले जा कर वे उनकी देख भाल करने लगे। इसी प्रकार दुर्योधन, कर्ण,

शकुनि, दुश्शासन आदि को भी बाँध लो और पाण्डवों को सौंप दो। क्योंकि कुल की रक्षा के लिये एक मनुष्य का त्याग कर देना चाहिये। ग्राम की रक्षा के लिये कुल का भी त्याग कर देना उचित है। एक देश की भलाई के हेतु ग्राम को छोड़ देना भला है और अपनी रक्षा के लिये तो पृथ्वी को भी छोड़ देना उचित है। इस लिये मेरी सम्मति तो यही है कि, आप लोग दुर्योधन को पकड़ लें और पाण्डवों से सन्धि कर लें। ऐसा करने से आप सब लोगों की प्राणरक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं।

एक सौ उन्तीस का अध्याय

गान्धारी का दुर्योधन को समझाना

भगवान् श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर, राजा धृतराष्ट्र बड़ी घबराहट के साथ महात्मा विदुर से बोले—हे विदुर! जल्दी जाओ। जरा गान्धारी को तो बुला लाओ। मैं और वह दोनों ही मिल कर इस दुष्ट दुर्योधन को समझावेंगे। सम्भव है कि, वह इसको समझा बुझा कर, श्रीकृष्ण की आज्ञा-पालन कराने को इसे तैयार कर लेवे। इस लोभी नीच दुर्योधन को सन्धि के लाभ समझा बुझा कर, मुझे विश्वास है, वह अवश्य श्रेय मार्ग पर ले आवेगी। सम्भव है वह हमारे भावी सर्वनाश की बात समझा और दुर्योधन को मना कर राह पर ले आवे।

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पा कर विदुर जी तुरन्त गान्धारी को बुला लाये। इसके उपरान्त धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा कि, देवि! देखो, तुम्हारा पुत्र मेरी आज्ञा नहीं मान रहा है और राज्य के लोभ में फँस कर, अपने प्राणों का भी बलिदान देने को तैयार हो रहा है। वह बड़ा ढीठ हो गया है और सज्जनों से द्वेष कर दुर्जनों से मित्रता रखता है। देखो, हितैषी बन्धुओं की बात को न मान कर, वह सभा छोड़ कर चला गया है।

राजा धृतराष्ट्र की इस बात को सुन कर, महारानी गान्धारी ने कहा—हे राजन्! आप अपने पुत्र को शीघ्र ही बुलवाइये। क्योंकि अशिष्ट और हठी तथा बन्धुओं से विरोध करने वाला कभी ऐश्वर्य प्राप्त नहीं कर सकता। धर्मार्थशून्य मनुष्य के लिये संसार में सुख है ही नहीं। हे राजन्! यह और किसी का दोष नहीं है, दोष केवल तुम्हारा ही है। तुमने ही इस अविनयी नीच पुत्र को राज्य का अधिकार दे कर उन्मत्त बना दिया है और इन सब अनर्थों के एक मात्र कारण तुम ही हो। तुम यह जानते हुए भी कि, मेरा पुत्र नीच, महाकामी, क्रोधी और लोभी है उसीके कहने में चला करते हो। तुममें अब इतनी सामर्थ्य नहीं है कि, तुम इस मूर्ख को ठीक राह पर ला सको। इस दुर्मति पुत्र को राज्य का अधिकारी बना कर, अब उसके फल को जो कि बन्धुविनाश रूप से तुम्हारे सामने उपस्थित है, भोगो। जिस समय तुम अपने प्रिय बन्धुओं से अलहदा हो कर दुःख पाओगे तब शत्रु लोग तुम्हें देख देख कर हँसेंगे। हे राजन्! जब तक आपत्तियों का प्रतीकार सहज ही में शान्ति के साथ हो जावे, तब तक कोई भी बुद्धिमान दण्ड का प्रयोग करना उचित नहीं समझता। इस प्रकार गान्धारी राजा को उनके दोष सुझा ही रही थीं कि, इतने में महात्मा विदुर दुर्योधन को समझा बुझा कर फिर सभा में ले आये। उस समय दुर्योधन का मुख क्रोध से बड़ा भयङ्कर हो रहा था। उसकी आँखे ताँबे के समान लाल थीं और काले साँप के समान वह लंबी लंबी फुँसकारें छोड़ रहा था।

कुमार्गी पुत्र को ऐसी दशा में सभा के बीच आया हुआ देख कर गान्धारी उसे डाँट डपट कर सन्धि कर लेने के लिये तैयार हो जाने की इच्छा से कहने लगी—बेटा दुर्योधन! देखो, मैं जो कुछ कह रही हूँ उसीमें तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की भलाई है। इस लिये मेरी बात को ध्यान से सुनो और उस पर आचरण करो। बेटा! महात्मा विदुर, भीष्म, द्रोण, श्रीकृष्ण और तुम्हारे पिता जी जैसा कह रहे हैं, उसीके अनुसार

पाण्डवों से सन्धि कर लो। इसीमें कल्याण है और हम लोगों का आदर है। पाण्डवों से सन्धि कर लेने के बाद तुम्हारा समय बड़े आनन्द में बीतेगा। याद रखो, जितेन्द्रिय मनुष्य ही राजलक्ष्मी का उपभोग कर सकते हैं। इन्द्रिय-लोलुप, नीच, दुराग्रही मनुष्य नहीं। काम, क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेने वाले राजाओं ही को ऐश्वर्य प्राप्त होता है। क्रोधी और नीच प्रकृति के मनुष्य बड़ी बड़ी आकांक्षायें रखते हैं; किन्तु जब वे पूरी हो जाती हैं, तब उस प्राप्त की हुई सम्पदा की वे रक्षा नहीं कर पाते। भारी ऐश्वर्य और साम्राज्य की चाहना रखने वाले को सब से पहले अपनी इन्द्रियों को स्वाधीन बनाना चाहिये तथा धर्माचरण से कभी विमुख न होना चाहिये। जिसकी इन्द्रियाँ स्वाधीन होती हैं, वह बड़ा बुद्धिमान् होता है। क्योंकि इन्द्रियदमन के द्वारा इस प्रकार बुद्धि बढ़ती है, जिस प्रकार घृत की आहुति से अग्नि की वृद्धि होती है। इसके विपरीत इन इन्द्रियों को स्वतन्त्रता दे दी जावे तो यह फिर नाश भी शीघ्रता से कर डालती हैं। जो राजा स्वयं आत्मविजयी न बन कर, अपने मन्त्रियों पर विजय प्राप्त कर शत्रुओं का दमन करने की लालसा करता है, वह मूर्ख स्वयं ही दूसरों के अधीन हो कर नष्ट हो जाता है; किन्तु जो आत्मविजयी है, उसके मन्त्री भी अवश्य उसके स्वाधीन रहते और वह उनके द्वारा अपने विजय की आकाँक्षाओं को अवश्य पूरा कर लेता है। देखो बेटा! विचारशील, विवेकी, इन्द्रियों के विषयों में न फँस कर धीरता के साथ दुष्टों का निग्रह करने वाले मनुष्य ही की लक्ष्मी सेवा किया करती है। जैसे मछलियाँ जाल के छोटे छेदों में फँस कर अपना प्राण गँवा देती हैं, वैसे ही मनुष्य भी काम, क्रोध रूपी दो बड़े छिद्रों में फँस कर, अपनी बुद्धि खो बैठते हैं और बुद्धिहीन मनुष्य मुर्दा के समान होता ही है। संसार से उदासीन हो चुकने पर भी जिसने अपने काम, क्रोध को वश में नहीं किया, उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि उस कामी जीव से स्वर्ग के देवता भी डरते हैं और इसी कारण स्वर्ग का द्वार बंद कर देते हैं। धर्मार्थ काम की सिद्धि और शत्रुओं

पर विजय प्राप्ति चाहने वाले के उचित है कि, वह अपनी इन्द्रियों को भली भाँति वश में करे। इस लिये बेटा ! यदि तुम चाहते हो कि, हम निःशङ्क हो कर, अनन्त काल तक राजलक्ष्मी का उपभोग करें, तो अपने वीर भाई पाण्डवों से अवश्य सन्धि कर लो। महात्मा विदुर, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि का यह कहना है कि, श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई भी नहीं जीत सकता, बिलकुल ठीक है ; अतः तुम अब भगवान् श्रीकृष्ण के शरण में जाओ। वे प्रसन्न हो कर तुम्हारा और पाण्डवों दोनों ही का कल्याण करेंगे। बेटा ! लड़ाई से कुछ लाभ नहीं। आपस में भाई भाई प्रेम से रहो। युद्ध में विजयप्राप्ति सदा सन्दिग्ध ही रहा करती है। देखो पहिले जो पाण्डवों के राज्य का भाग दिया गया था उसका फल तुम स्वयं भोग रहे हो। यह अकण्टक राज्य जिसके लिये तुम अपना सर्वनाश कर डालने पर भी तैयार हो रहे हो पाण्डवों की कृपा, वीरता और शूरता का ही फल है। यदि तुम्हें अपना ऐश्वर्य अचल रखना है. तो पाण्डवों के आधा राज्य प्रदान कर दो और आधा राज्य तुम्हारे लिये पर्याप्त है। इस समय तुम्हें सभी लोग समझा रहे हैं। उनकी आज्ञा पालन करने में तुम्हारा यश और कल्याण होगा। याद रखो, धर्मात्मा, यशस्वी, वीर और सदाचारी पाण्डवों से विरोध करने में तुम्हें राज्यसुख से हाथ धो बैठने पड़ेंगे। इस कारण उनसे सन्धि कर लो और उनका आधा राज्य उन्हें दे कर आनन्द से राजलक्ष्मी का भोग करो। तुमने उन्हें जो वनवास दिया था, यह भी बड़ा भारी अपराध था। इस एक ही अपराध का कोई प्रायश्चित्त नहीं है। अब आगे और अपराधों तथा पापों की गठरी बाँधना तुम्हें उचित नहीं है। पाण्डवों के राज्य के पचा जाने की तुममें तथा कर्ण, दुःशासन आदि किसी में भी शक्ति नहीं है। अतः अब इस गृह-कलह की शान्ति करने ही में भलाई है। प्रजाओं के नष्ट हो जाने पर, भला बतलाओ तुम किस पर राज्य करोगे। इस लिये क्रोध के अधीन हो कर सम्पूर्ण प्रजा और कौरवों का सर्वनाश न करो। देखो दुर्योधन ! तुम यह न समझना कि, भीष्म, द्रोण

आदि योद्धा तेरे लिये अपनी पूरी सामर्थ्य से सहायता देंगे। क्योंकि यह बुद्धिमान् तुम्हारे और पाण्डवों के राज्य को एक दृष्टि ही से देखते हैं; किन्तु जिधर धर्म अधिक होगा उधर ही इनका भी प्रेम अधिक होगा। इन्होंने तुम्हारा अन्न खाया है। इस कारण ये भले ही संग्राम में अपने प्राण समर्पण कर देवें, किन्तु यह सम्भव नहीं है कि, यह लोग धर्मराज की ओर क्रोधदृष्टि से देख सकें। देखो बेटा! संसार में लोभ से किसी को भी ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता। अतएव तुम भी लोभ को त्याग कर शान्ति धारण करो। इसीमें कल्याण है।

एक सौ तीस का अध्याय

श्रीकृष्ण को पकड़ने का सङ्केत

राजा दुर्योधन ने माता गान्धारी की भी वे सब नीति भरी बातें न मानीं और वह उसके सामने से उठ कर अपने उसी नीच मन्त्रिमण्डल में पहुँचा और वहाँ जा कर शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि के साथ इस प्रकार विचार करने लगा।

वह बोला—देखो, यह कृष्ण बड़ा हड़बड़िया है। प्रत्येक कार्य में शीघ्रता करना चाहता है। इसकी इच्छा है कि, हम दुर्योधन को भीष्म, द्रोण आदि के द्वारा पकड़वा देवें, किन्तु इसको हमीं लोग वैसे ही पकड़ लेवें तो अच्छा है; जैसे राजा बलि को इन्द्रदेव ने बरजोरी पकड़ लिया था। जब पाण्डव कृष्ण का पकड़ा जाना सुनेंगे, तब उनके सब हौसले पस्त हो जावेंगे। वे विष-दन्त-रहित साँप की तरह विवश हो जावेंगे। केवल यह कृष्ण ही पाण्डवों का रक्षक और शान्तिकारक है। इस एक के पकड़े जाने से पाण्डवों में फिर कुछ नहीं रहेगा। इस लिये अब अधिक शोच विचार करने की आवश्यकता नहीं है। धृतराष्ट्र को तो यों ही बड़बड़ाने दो, और इसे पकड़ कर बाँध लो।

कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि की चाण्डाल-चौकड़ी यह सलाह कर ही रही थी कि, महारथी सात्यकि ने उन लोगों की उन सब बातों को सुना। उसने सभाभवन के बाहर जा कर कृतवर्मा से कहा—देखो, जब तक मैं श्रीकृष्ण को बुला कर लाऊँ, तब तक तुम सेना को तैयार करो और सेनासहित सभाभवन के बाहर रहो। इस प्रकार कृतवर्मा को तैयार कर स्वयं श्रीकृष्ण जी से यह सब समाचार कहने के लिये सात्यकि सभाभवन में गये और धृतराष्ट्र, विदुर तथा श्रीकृष्ण जी से उन दुष्टों के सब के सब विचार इस प्रकार कह सुनाये।

सात्यकि ने कहा—मूर्ख! श्रीकृष्ण को बाँधना चाहते हैं; किन्तु ऐसा होना असम्भव है। यह देखो, यह दुष्ट आपस में कलह करने के लिये तैयार हैं। दूत को बन्धन में डालना धर्मार्थ के विरुद्ध है। जो दूत को पकड़ कर बाँधता है, उसकी सज्जन लोग निन्दा किया करते हैं। जैसे बालक आग को कपड़े में बाँधने का प्रयत्न करते हैं, वैसे ही मूर्ख भी श्रीकृष्ण को बन्धन में डालना चाहते हैं।

सात्यकि की बातों को सुन कर, दीर्घदर्शी विदुर ने कौरवसमाज में राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन्! इन तुम्हारे दुष्ट पुत्रों को काल ने घेर लिया है। यह सब श्रीकृष्ण पर बलात्कार अभियोग करने को तैयार हो रहे हैं। इसका फल अच्छा न होगा। ये सब मिल कर यह चाहते हैं कि, हम उपेन्द्र श्रीकृष्ण जी को पकड़ लेवें; किन्तु यह निश्चित है कि, जैसे आग में गिर कर पतंगे भस्म हो जाया करते हैं, वैसे ही ये लोग भी भस्म हो जावेंगे। यदि यह महापुरुष श्रीकृष्ण चाहें तो लड़ने की इच्छा से सम्मुख आये हुए इन सब को जैसे हाथियों को सिंह मार डालता है, वैसे ही मार सकते हैं; किन्तु यह धर्मात्मा हैं, यह कभी निन्दित पापाचरण करने के लिये तैयार नहीं हो सकते।

महात्मा विदुर की इन बातों को सुन कर, श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन्! कोई चिन्ता नहीं। यदि इन लोगों की यही इच्छा है कि, वे

मुझे परजोरी पकड़ लें, तो वस फिर क्या है? आप आज्ञा प्रदान कीजिये और खड़े खड़े तमाशा देखिये। यह मुझे पकड़ते हैं या मैं इन्हें पकड़ कर बाँधता हूँ। हे राजन्! मैं अकेला ही इन सब के लिये पर्याप्त हूँ। मैं कभी कोई निन्दित कर्म नहीं कर सकता। हाँ! यह तुम्हारे लोभी पुत्र अवश्य पाण्डवों के साथ द्वेष रखते हुए हिंसा कर सकते हैं। यदि इनकी ऐसी ही इच्छा है, तब तो युधिष्ठिर का काम बना बनाया है। मैं इन तुम्हारे पुत्रों और इनके अनुयायी सभी को पकड़ कर युधिष्ठिर को सौंप सकता हूँ; परन्तु मैं जिस हैसियत से आपके पास आया हूँ, उसके अनुसार मैं इस कर्म को करना उचित नहीं समझता। मैं आपके सम्मुख यह करना नहीं चाहता। हाँ, तुम्हारा पुत्र जो चाहे सो कर सकता है। प्रत्युत मैं स्वयं उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देता हूँ।

भगवान् वासुदेव की बातें सुन कर, महाराज धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—हे महात्मन्! आप फिर ज़रा दुर्योधन के पास जाइये और उसे यहाँ बुला लाइये। सम्भव है मेरे और मन्त्रियों के समझाने से वह फिर सुमार्ग पर आ जावे। महात्मा विदुर दुर्योधन की इच्छा न रहते हुए भी राजसभा में उसे ले आये। अब की बार उसके अन्य भाई भी साथ थे तथा अनेक राजा लोग उसे घेरे हुए थे।

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—रे नीच दुर्योधन! तू अपने पापात्मा मित्रों की सम्मति से बड़ा भारी नीच कर्म करने के लिये तैयार हो रहा है। याद रख, तुझ जैसा कुल-कलङ्क जो कुछ भी काम करने के लिये तैयार होगा, उसका वह काम कभी पूरा न होगा और संसार में उसका निरन्तर अपयश होगा। मूर्ख! मैंने सुना है कि, तू इन वासुदेव को अपने मन्त्रियों की सम्मति से क़ैद करना चाहता है; किन्तु याद रख, कोई भी न हो, बुरे विचार से तो इनको छूना भी असम्भव है। तेरी तो हस्ती ही क्या है? देवराज इन्द्र भी इन महापुरुष का बाल बाँका नहीं कर सकते। भला जिनका ऐसा प्रताप है, उनको पकड़ने की इच्छा करना, वैसा ही निर्मूल और हास्यजनक है

जैसा चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा करना। रे वज्र मूर्ख! क्या भगवान् के प्रताप को तू नहीं जानता है। सुरासुर गन्धर्व कोई भी इनको वैसे ही परास्त नहीं कर सकता, जैसे भूमि को सिर पर कोई धारण नहीं कर सकता। जैसा चन्द्रमा को कोई हाथ से छू नहीं सकता और वायु को पकड़ नहीं सकता, वैसे ही इन श्रीकृष्ण को भी संसार की कोई शक्ति नहीं पकड़ सकती।

राजा धृतराष्ट्र की बात सुन कर क्रोधी दुर्योधन से महात्मा विदुर ने कहा—हे दुर्योधन! मेरी यह थोड़ी सी बात और सुन ले। सौभ नगर के द्वार पर एक द्विविद नाम का वानर रहता था। उसने एक बार श्रीकृष्ण जी पर बड़ी भारी शिलावृष्टि करनी प्रारम्भ की। उसके पकड़ने के लिये उसने अनेक उपाय किये; किन्तु अन्त में उसने भी हार मान ली और इन्हें वह न बाँध सका। भला तू उन्हीं श्रीकृष्ण को बाँधने की इच्छा करता है? यह तेरी कैसी मूर्खता की बात है? प्राग्ज्योतिष नगर में भी नरकासुर ने अनेक दानवों की सहायता से इन्हें पकड़ना चाहा था; किन्तु उसका वह सब प्रयत्न भी निष्फल हुआ। अन्त में इन्हीं भगवान् ने नरकासुर का संहार कर, उसकी परमसुन्दरी कन्याओं से शास्त्रानुकूल विधि से विवाह कर लिया। इन्हीं श्रीकृष्ण ने निर्मोचन नगर में सहस्रों बली राक्षसों का संहार कर डाला था। बाल्यावस्था ही में महाभयङ्करी पूतना राक्षसी का प्राण-हरण किया। गौओं की रक्षार्थ गोवर्धन पर्वत को अँगुली पर धारण किया। अरिष्ट, धेनुक, चाणूर, अश्वराज और दुष्टात्मा कंस का भी इन्होंने संहार किया। जरासन्ध, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, महाबली बाण, तथा अन्य अनेक राजाओं का इन्होंने संग्राम में संहार किया। महाबली श्रीकृष्ण जी ने अग्नि, वरुण, को भी परास्त किया और पारिजातहरण के समय देवराज को भी जीत लिया था। क्षीरसागर में शयन करने वाले इन्हीं भगवान् वासुदेव ने मधु कैटभ नामक दैत्यों का संहार किया और वेदापहर्त्ता हयग्रीव को भी इन्होंने ही मारा था। हे मूर्ख दुर्योधन! यह कर्त्ता धर्त्ता होते हुए

भी किसी के अधीन हो कर कार्य नहीं करते। यह जो चाहें सो कर सकते हैं। तूने अभी भगवान् कृष्ण के स्वरूप को पहिचाना नहीं है। यह जब क्रोध करते हैं, तब भयानक विषधर के समान शत्रुओं के लिये भयङ्कर हो जाते हैं। यह महातेजस्वी सदाचारी और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। याद रख, तेरी भलाई चाहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण तुझे समझाने के लिये यहाँ आये हैं। यदि तूने भूल कर भी इनका अपमान किया और इन्हें क़ैद करने की इच्छा की, तो मन्त्रियों सहित जैसे आग में पतङ्गे भस्म हो जाते हैं, तू भस्म हो जावेगा।

एक सौ इकतीस का अध्याय

विराट रूप की झाँकी

जिस समय महात्मा विदुर दुर्योधन को इस प्रकार समझा रहे थे, उसी समय शत्रुओं का संहार करने हारे भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा—रे मूर्ख! तूने यह समझ रखा है कि, मैं अकेला हूँ, इस लिये मुझे पकड़ लेना कोई बड़ी बात नहीं है। पागल! तू यह नहीं जानता है कि, जहाँ मैं हूँ वहीं सब पाण्डव, अन्धक, वृष्णि, आदित्य, देवता, वसु, रुद्र, महर्षि आदि सब मौजूद रहते हैं। यह कह कर श्रीकृष्ण ज्यों ही हँसने लगे, त्यों ही उनके मुख से अनेक ब्रह्मादि देवता निकल पड़े। उनके शरीर से बिजली के समान चमकने वाली चिनगारियाँ निकलने लगीं। जो देवता भगवान् के शरीर से निकले वे सब अँगूठे के बराबर शरीरधारी थे। मस्तक पर ब्रह्मा, वक्षस्थल पर रुद्र, भुजाओं में लोकपाल और मुख में अग्नि प्रकट हुए। इसी प्रकार अन्य शरीर के अवयवों से आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनी-कुमार इन्द्र, पवन, विश्वदेव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस आदि प्रकट हो रहे थे। भगवान् की दोनों भुजाओं से अर्जुन धनुष ले कर और बलदेव हल ले कर प्रकट हुए और दाईं बाँईं ओर खड़े हो गये। भीम, युधिष्ठिर,

नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, आदि योद्धा अनेक महाशस्त्रों को ले कर उनके सम्मुख आ कर खड़े हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण की नाक कान मुख आदि शरीर के छिद्रों में से बड़ी भयानक अग्नि की ज्वालाएँ निकलने लगीं। भगवान् के इस भयानक स्वरूप को देख कर, सब राजाओं की विचित्र दशा हो गयी। उन्होंने भय के मारे आँखें मूँद लीं और त्राहि त्राहि करने लगे; किन्तु भीष्म, द्रोण, महात्मा विदुर सञ्जय और महर्षियों को ऐसी घबराहट नहीं हुई। क्योंकि भगवान् ने इन्हें पहिले ही से दिव्य दृष्टि दे रखी थी। इस महाश्चर्यकारी दृश्य को देख कर आकाश में दुन्दुभि-ध्वनि होने और दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी।

राजा धृतराष्ट्र ने भगवान् से कहा—हे महाराज! आप ही सब संसार का कल्याण करने वाले हैं। इस कारण मुझ दीन पर आप दया कीजिये। भगवन्! मुझे आप दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिये। मैं उस दृष्टि से केवल आप ही का दर्शन करना चाहता हूँ और किसी का नहीं। जब मैं आपका दर्शन कर चुकूँ तो आप उस दृष्टि का पुनः संहरण कर सकते हैं।

राजा का विनय सुन, भगवान् ने कहा—अच्छा आपके ऐसे दो नेत्र हों, जो किसी अन्य को न दीखें। भगवान् की कृपा से धृतराष्ट्र ने नेत्र प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दर्शन किया। इन सब आश्चर्य घटनाओं को देख कर, सब राजा लोग भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् के उस विचित्र स्वरूप-धारण करने के समय समुद्रों में खलबली मच गयी और भूमि डगमगाने लगी थी। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने अपनी सब विभूति को समेट लिया और ऋषियों की आज्ञा पा कर सात्यकि और कृतवर्मा के हाथों में हाथ डाले हँसते हुए सभा भवन से उठ कर चले आये। जैसे इन्द्र के पीछे पीछे देवता चला करते हैं, उसी प्रकार वे सब राजा लोग भी श्रीकृष्ण के पीछे पीछे चलने लगे; किन्तु घनश्याम श्रीभगवान् कृष्ण ने अपने पीछे आने वाली राजमण्डली की ओर नज़र भी नहीं की और वे सभाभवन के बाहर हो गये। इसके बाद दारुक नामक श्रीकृष्ण के सारथि ने उनका वह

दिव्य रथ जिसमें शैव्य, सुग्रीव नामक चार घोड़े जुते हुए थे, उनके सामने ला कर खड़ा किया। उस श्वेत रथ में अनेक प्रकार की झालरें लटकी हुई थीं और सिंह की खाल से वह मढ़ा हुआ था। भगवान् रथ को सामने खड़ा देख कर, उस पर बैठ गये। कृतवर्मा भी अपने रथ पर सवार हो गया।

इधर जब भगवान् श्रीकृष्ण चलने को तैयार हुए, तब राजा धृतराष्ट्र ने उनसे कहा—हे मधुसूदन! मेरी जैसी भी दशा है, वह सब आपने देख ली। मेरा अपने पुत्रों पर कितना अधिकार है, यह सब आप भली भाँति जान चुके हैं। मेरी हार्दिक इच्छा तो यही है कि, कौरवों और पाण्डवों में सन्धि हो जावे। मैं इसके लिये उद्योग भी ख़ूब करता हूँ। किन्तु क्या करूँ, मेरी चलती कुछ नहीं। अब आपको मुझ पर बिल्कुल सन्देह न करना चाहिये।

राजा की इन बातों को सुन कर भगवान् ने धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर, बाल्हीक और कृपाचार्य से कहा—मैंने तथा आप सब लोगों ने मूर्ख दुर्योधन को अपनी जान में ख़ूब अच्छी तरह से समझा दिया। इतने पर भी वह क्रोधी सभा-भवन से उठ कर चला गया। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह आप सब लोगों से छिपा नहीं है। इधर राजा धृतराष्ट्र कह रहे हैं कि, मेरी कोई बात चलती ही नहीं है; तब ऐसी परिस्थिति में मैं आप लोगों की आज्ञा ले कर धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाऊँगा। यह कह कर, भगवान् अपने दिव्य रथ पर सवार हो कर अपनी बुआ कुन्ती से मिलने के लिये राजमहल की ओर चले गये। इधर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि भी श्रीकृष्ण को थोड़ी दूर तक पहुँचा कर अपने अपने स्थान को लौट आये।

एक सौ बत्तीस का अध्याय

कुन्ती का सन्देश

अपनी बुआ कुन्ती के राजमहल में जा कर कृष्ण ने उनकी चरण-बन्दना की और कौरव-सभा में जो कुछ भी हुआ था, वह उन्हें कह सुनाया। वे बोले—बुआ जी! मैंने तथा अन्य ऋषियों ने दुर्योधन को खूब ऊँच नीच समझाया; किन्तु उसने एक बात भी न मानी। इन सब बातों से तो यही मालूम होता है कि, इन सब को काल ने घेर लिया है। इसी कारण यह हित की बातें नहीं मानते हैं। अब मैं केवल आपकी आज्ञा लेने के लिये यहाँ आया हूँ, क्योंकि मुझे अब पाण्डवों के पास जाना है। बुआ जी! मैं आपकी ओर से पाण्डवों को क्या कहूँ, जो कुछ आपको कहना हो कह दीजिये।

देवी कुन्ती ने कहा—हे प्रभो! देखो तुम यहाँ से जा कर धर्मराज युधिष्ठिर से कहना कि, हे पुत्र! तेरा धर्म पृथिवी की रक्षा करने का है। इस कारण यह धर्म तेरा बिलकुल नष्ट हुआ जा रहा है। जैसे भी हो सके, इस क्षात्र धर्म की तुझे रक्षा करनी चाहिये। जैसे अर्थ-ज्ञान-हीन मूर्ख वेदपाठी की बुद्धि केवल वेदाक्षरों पर ही रह जाती है, वैसे ही तेरी बुद्धि भी केवल एक धर्म ही को देखती है। देखो बेटा! विधाता ने क्षत्रियों को अपने भुज-दण्डों से उत्पन्न किया है। इस कारण उसे अपनी आजीविका बल वीर्य पराक्रम द्वारा ही करनी चाहिये। प्रजापालन करने वाले वीर क्षत्रियों के लिये प्रायः क्रूर कर्मों के करने के अनेक अवसर आ जाया करते हैं। इसके लिये मुझे एक बात याद आ गयी। मैं तुझे वही प्राचीन बात सुनाती हूँ सुन।

किसी समय राजर्षि मुचुकुन्द पर कुबेर जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और इस प्रसन्नता के उपलक्ष में उन्होंने उसे समस्त पृथ्वी दान कर दी; किन्तु मुचुकुन्द ने उसे स्वीकार नहीं किया और कहा—हे कुबेर जी! सुनिये!

मैं क्षत्रिय हूँ मैं अपनी आजीविका अपने पराक्रमार्जित ऐश्वर्य द्वारा ही करना चाहता हूँ, वैसे नहीं। यह सुन कर, कुबेर और भी प्रसन्न हुए। मुचुकुन्द ने फिर अपने बाहुबल से पृथ्वी को विजय किया और अनन्त राजलक्ष्मी का उपभोग किया। धर्मात्मा राजा की सुखी प्रजा जो कुछ भी धर्माचरण करती है, उसका चौथा भाग राजा को प्राप्त होता है। धर्मात्मा राजा देवलोक में और अधर्मी राजा नरक में भेजा जाता है। राजा को धर्मानुसार दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि दण्डनीति ही अज्ञानियों को अधर्म से मोड़ कर धर्म की ओर झुकाती है। धर्मात्मा राजा के शासन ही में सत्ययुग की प्रवृत्ति होती है। काल राजा का और राजा काल का उलट-फेर कर सकते हैं। इसमें कभी सन्देह मत करना। राजाओं के ऊपर ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की प्रवृत्ति निर्भर है। सत्य का विस्तार कराने वाले राजा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। त्रेता का विस्तार यथेष्ट स्वर्ग प्राप्ति का साधन नहीं है। द्वापर का प्रवर्त्तक राजा स्वर्ग के कुछ थोड़े से अंशों को प्राप्त होता है; किन्तु कलियुग का प्रवर्त्तक तो घोर नरक में पड़ता है। पापी राजा अखिल ब्रह्माण्ड को दूषित कर देता है। क्योंकि प्रजा का राजा को, राजा का प्रजा को पाप लगा करता है। इस लिये अपने पूर्वजों जैसा आचरण बनाओ। यह तुम्हारी आज कल की चाल ढाल पूर्वजों से बिल्कुल निराली और दुष्कीर्त्ति पैदा करने वाली है। अपमानित होने पर भी दयाधर्म का गीत गाने वाले राजा को कभी प्रजापालन का सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसी सहनशीलता और सन्तोष तो तेरे पिता ने, मैंने और वेदव्यास जी ने भी, तुझे नहीं सिखाया था। मैंने तो तुझे सदा दान, धर्म, यज्ञ, तप, बल, प्रज्ञा और आत्मबल की प्राप्ति करना ही सिखाया था और इन्हीं बातों का आशीर्वाद दिया था। देवताओं और सज्जनों की आराधना से अनेक मङ्गल होते हैं। परलोक में सुख प्राप्ति के लिये स्वाहा स्वधाकार का उपदेश किया गया है। क्षत्रिय तो सदा दान देना, यज्ञ करना, प्रजापालन करना—इन्हीं बातों की कामना किया करते हैं तथा

देवता और पितर भी उनको इन्हीं कामों में लगा हुआ देख कर, प्रसन्न रहते हैं। यह चाहे धर्म हो या अधर्म, किन्तु जब से तुम उत्पन्न हुए हो, तभी से तुम इन कर्मों में बँधे हुए हो। देखो कृष्ण! मेरे पुत्र विद्वान् और बुद्धिमान् होते हुए भी आज आजीविका के बिना दुःख पा रहे हैं। जिस दानवीर शूर पराक्रमी मनुष्य के पास जा कर अन्य भूखे प्यासे लोग, सन्तुष्ट हो कर लौटें, उससे बढ़ कर भला और धर्म क्या हो सकता है? धर्मात्मा राजा दान से, बल से, सत्य से, इस प्रकार तीनों उपायों से प्रजा को वश कर सकता है। ब्राह्मण-भिक्षा द्वारा अपनी आजीविका कर सकता है; किन्तु क्षत्रिय नहीं। उसे तो प्रजापालन, दुष्ट-निग्रह, शिष्ट-अनुग्रह आदि कर्म द्वारा ही अपना निर्वाह करना चाहिये। वैश्यों को व्यापार और शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा द्वारा निर्वाह करना चाहिये। तुम क्षत्रिय हो, इस लिये अपनी आजीविका को अपने भुजबल से पैदा करो। यही तुम्हारा धर्म है। तुम अपने पिता के राज्यभाग को साम, दान, दण्ड, भेद, इन चारों उपायों में से चाहे जिस उपाय से प्राप्त कर सकते हो। रे शत्रुओं की प्रसन्नता के कारण युधिष्ठिर! आज तुझ सरीखे कायर पुत्र को पैदा कर, मैं और लोगों के टुकड़ों पर अपना जीवन बिता रही हूँ। भला इससे अधिक दुःख की और क्या बात होगी। इस लिये अब क्षात्र धर्म के अनुसार संग्राम कर के या तो तू मर जा अथवा शत्रुओं को मार डाल; किन्तु यों अपने मृत पूर्वजों के आत्मा को दुःख न दे और भाइयों सहित पापी बन कर, नरक जाने का सामान मत इकट्ठा कर।

एक सौ तैंतीस का अध्याय

विदुला का उपाख्यान

कुन्ती बोली—हे कृष्ण! देखो इस विषय में मैं तुम्हें विदुला का संवाद सुनाती हूँ। इस संवाद में जो अंश धर्मराज को सुनाने के योग्य हो, उसे तुम जा कर सुना देना।

विदुला नाम की एक अत्यन्त पण्डिता यशस्विनी क्षत्रियाणी थी। वह अत्यन्त क्रोधना, क्षात्र धर्म में तत्पर रहने वाली, जितेन्द्रिया और दूरदर्शिनी स्त्री थी। एक बार वह सिन्धुदेश के राजा से परास्त हो जाने के कारण खिन्न हो कर सोये हुए अपने पुत्र की निन्दा करने लगी और बोली—हे पुत्र! जान पड़ता है, तू अपने पिता के औरस से उत्पन्न नहीं हुआ है। न मालूम तू मेरी कोख में कैसे आ गया। तू तो ऐसा क्रोधहीन है कि, कुछ कहा ही नहीं जा सकता। तेरी क्षत्रियों में तो गिनती नहीं हो सकती। तेरी बाहुएँ तो मुझे बिल्कुल नपुंसकों की सी मालूम होती हैं। प्राणों के रहते रहते निराश हो जाना, क्षत्रियों के धर्म के विरुद्ध कार्य है। तुच्छ वस्तुओं के द्वारा निर्वाह करते हुए तुझे अपने आत्मा का अपमान नहीं करना चाहिये। बल्कि निर्भय हो कर सर्वोच्च कल्याण की कामना करनी चाहिये। अरे महाकायर! उठ बैठ, क्या तुझे हार कर भी इस प्रकार निर्लज्जता की नींद सोना चाहिये। हाय! आज तूने अपने कुटुम्ब की कीर्त्ति का सर्वनाश कर दिया और अपने पूर्वजों के नाम को डुबो दिया। छोटी छोटी नदियाँ ही थोड़ा सा पानी पा कर उतरा चलती हैं, समुद्र नहीं। मूसे की अञ्जलि ज़रा सी वस्तु से ही भर जाती है। इसी प्रकार छोटे मनुष्य थोड़े ही में सन्तोष कर लेते हैं। जैसे महाविषधर की दाढ़ों को उखाड़ने की इच्छा से कोई मनुष्य मर जावे वैसे ही तू भी लड़ते लड़ते मर जावे तो अच्छा है; किन्तु इस कुत्ते की मौत मरना मेरी समझ में ठीक नहीं है। तेरे प्राण भले ही चले जावें; किन्तु तुझे एक क्षत्रिय वंश में पैदा होने के नाते अवश्य पराक्रम दिखलाना चाहिये। तू निर्भय हो कर संग्रामभूमि में विहार कर और पराक्रम दिखा। अथवा बाज पक्षी की भाँति केवल शत्रुओं के छिद्रों ही का अन्वेषण कर। तू तो आज मुर्दे की तरह पड़ा सो रहा है। परास्त हो कर इस प्रकार सोने में तुझे लज्जा नहीं आती? हे पुत्र! तू दीन बन कर अस्त न हो जाना; किन्तु अपने कर्मों से संसार में ख्याति प्राप्त कर। साम, दान, भेद इन मध्य उपायों को त्याग कर, केवल दण्ड ही का आश्रय ले कर, अपने वीर गर्जन से शत्रुओं

के हृदयों को दहला दे। एक बार तो प्रचण्ड पावक के समान प्रज्वलित हो कर शत्रुओं को भस्म करने की चेष्टा कर। यह भूसी की आग की तरह धुआँ देते हुए तेरा जीवन मुझे अच्छा नहीं लगता। परमेश्वर किसी भी राजा के यहाँ अति कोमल अथवा अति कठोर मनुष्य को जन्म न दे। यही अच्छी बात है। वीर पुरुष संग्रामभूमि में जा कर अपने पराक्रम द्वारा अपनी कीर्त्ति को बढ़ाना चाहता है; किन्तु कायर बन कर अपनी निन्दा कराने की इच्छा कभी नहीं करता। विद्वान् तन मन धन से कार्य करते रहते हैं और उसके फल की कामना नहीं करते। अतः हे पुत्र! या तो तू मर जा अथवा अपने धर्म का पालन कर। तुझे धर्मविमुख हो कर जीवित नहीं रहना चाहिये। अरे नीच! तूने अपने सारे पुण्य कर्मों पर पानी फेर दिया तथा जिससे तुझे थोड़ा बहुत सुख भी मिलता वह राज्य भी तूने शत्रुओं के हाथ सौंप दिया और फिर तू जी रहा है? शोक! शत्रुओं को तो जब अवसर पावे तभी परास्त करने का उद्योग करे। जल में तैरते समय, कुश्ती लड़ते समय, शत्रु जब कभी हाथ आ जाय, तभी टाँग पकड़ कर उसे चीर डाले। इसमें प्रमाद न करे। मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार काम चुन लेना चाहिये और उसका निश्चय करने के बाद भावी विघ्न बाधाओं से भयभीत न होना चाहिये। रे नराधम! यह कुल केवल तूने ही डुबो रखा है। याद रख, जो मनुष्य अपने शुभ आदर्श चरितों से संसार को आनन्दित नहीं करता, उसको मैं न स्त्री कह सकती हूँ और न पुरुष ही। दान, तप, सत्य, विद्या, धन, सम्पत्ति, इनमें से किसी भी एक गुण के द्वारा जो मनुष्य संसार में ख्याति नहीं प्राप्त करता, उसे यही समझना चाहिये कि, वह अपनी माता का केवल मलमूत्र है। देख, संसार में पुरुष वही कहलाता है, जो अपने तपश्चरण, विद्याध्ययन, और धन सम्पत्ति तथा शौर्य आदि गुणों के द्वारा मनुष्यों को परास्त करे। तेरी यह खोटी भिक्षावृत्ति मुझे लज्जित करती है। संसार में तेरा उपहास हो रहा है। क्योंकि जिस कर्म के करने से अपयश हो और कायरता की वृद्धि हो,

वह कार्य बुद्धिमान् को कभी भी नहीं करना चाहिये। जिस दीन दुर्बल मनुष्य की शत्रु प्रशंसा करें और जिसे दो दो दानों के लिये भी इधर उधर भटकना पड़े, उस पुरुष से उसके बन्धुओं को सुख नहीं मिलता। अपने देश, अपने घर और अपने समस्त साधनों को छोड़ कर, तू जङ्गलों में पड़ा हुआ है। मैं तो यही परमेश्वर से प्रार्थना करूँगी कि, हे भगवन्! संसार में कोई नारी मुझ सरीखे दीन, हीन, मलीन, कायर, कुलाङ्गार, भिक्षुक, कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले नराधम पुत्रों को पैदा न करे। रे पुत्र! मैं तो यही समझती हूँ कि, मैंने अपनी कोख से साक्षात् कलियुग ही को पैदा किया है। क्योंकि जैसे कलियुग, वंश का नाश और सज्जनों का अमङ्गल करने वाला है, वैसे ही तुम्हारे द्वारा भी यह सब हो रहा है। रे क्रोध और पराक्रम से हीन मेरे दूध को लजाने वाले पुत्र! यदि तू मेरी प्रसन्नता चाहता है, तो उठ और शत्रुओं का संहार कर। शत्रुओं का सर्व-नाश करने के लिये सदा तैयार रहना तथा उनसे दया का बर्त्ताव न करना ही सच्चा पौरुष और क्षात्रधर्म है। क्षमाशील शान्त मनुष्य कायर कहलाता है। सन्तोष और दयालुता से कोई भी क्षत्रिय ऐश्वर्यशाली नहीं हो सकता। कायर हो कर घर में पड़ा रहने वाला निःस्पृह दयालु मनुष्य कभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि परास्त होने का यही मुख्य कारण है। देख, तू इन सब अवगुणों को परित्याग कर। जब तक तू अपने हृदय को वज्र सा कठोर न बना लेगा, तब तक तेरा उद्धार न होगा। तू मनुष्य है, मनुष्य हो कर भी तूने यदि अपने अधिकार को प्राप्त करने का उद्योग न किया, तो तेरी मनुष्यता को धिक्कार है? स्त्रियों की तरह केवल अपने पेटपालन मात्र उद्योग करने वाले मनुष्य को मनुष्य बतलाना मूर्खता है। सिंह समान पराक्रमी वीर बैरियों का संहार करने वाले यशस्वी राजा के मर जाने पर भी उसकी प्रजा सुखी रहती है। देखो, वह राजा किसी न किसी दिन अवश्य अपने राजसिंहासन को पाता है, जो राजा सब विषय-वासनाओं को त्याग राजलक्ष्मी की तलाश में रहता हुआ

निरन्तर उद्योग करता है, उसीके मन्त्री तथा बन्धु बान्धव उस पर प्रसन्न भी रहते हैं।

माता के इस करुण हृदय-विदारक हार्दिक सन्ताप का वर्णन सुन कर, पुत्र ने माता से कहा—हे माता! आप मुझसे घृणा करती हैं। भला बतलाइये, जब मैं संसार में न रहूँगा; तब आपको फिर क्या सुख होगा? अपुत्रा बन कर संसार के ऐश्वर्य भला तुम पर कैसे भोगे जावेंगे? ऐसी दशा में तो तुम्हारा जीवन भी भार हो जाना चाहिये।

माता ने कहा—बेटा! सुन, जिन महादरिद्री लोगों को प्रतिदिन यह चिन्ता लगी रहती है कि, कल क्या खावेंगे; ऐसे निर्धनों के लोक में तुम्हारे शत्रुओं का निवास हो तथा तुम्हारे मित्रों का आत्मज्ञानी महापुरुषों के लोक में निवास हो; किन्तु बेटा! परिजन रहित और पराश्रय हो कर नीच पुरुषों का सा जीवन बिताना मुझे बड़ा बुरा प्रतीत होता है। बल्कि तुम्हारे आश्रय में रह कर अन्य बन्धु बान्धवों का पालन वैसे ही हो जैसे वर्षा द्वारा प्राणियों का और देवराज इन्द्र के आश्रय से देवताओं का होता है। बेटा सञ्जय! संसार में उसी मनुष्य का जीना सार्थक है, जिसके जीवन में अनेक प्राणियों का प्रतिपालन होता रहे। जो अपने बलवीर्य पराक्रम द्वारा अनेक बान्धवों की उन्नति करता है, उसीका जीना अच्छा है तथा उसी मनुष्य को परलोक में शुभ गति और इस लोक में ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति होती है।

एक सौ चौंतीस का अध्याय

क्षात्रधर्म का गूढ़तत्व

हे पुत्र! तू ऐसी परिस्थिति में भी नीच मनुष्यों के मार्ग पर जा रहा है, यह ठीक नहीं है। देख, जो क्षत्रिय अपने प्राणों के मोह में पड़ क्षात्रधर्म को भुला देता है और यथाशक्ति पराक्रम नहीं दर्साता, वह मनुष्य बड़ा

पक्का चोर है। जैसे किसी मरणासन्न रोगी को औषधि लाभकारी नहीं होती, वैसे ही आज तेरे हृदय पर भी मेरे यह नीतिवचन प्रभाव नहीं डाल पाते। देख बेटा! सिन्धुराज की प्रजा उतनी प्रसन्न नहीं है जितनी कि, तेरे पास रहने वाली प्रजा प्रसन्न है; किन्तु वह करे तो क्या करे? केवल दुर्बल और हतोत्साह होने के कारण ही वह वहाँ पड़ी हुई है। सिन्धुराज के और भी विरोधी हैं। वे भी तेरे पक्ष का उत्साह और पराक्रम देख कर सिन्धुराज का सामना करने के लिये तैयार हो जावेंगे। संसार में अजर अमर तो कोई है ही नहीं, इस लिये पूर्वोक्त सिन्धुराज के विरोधियों को अपने अधीन कर ऊँचे ऊँचे विशाल दुर्गों को विजय कर। बेटा! तेरा नाम सञ्जय है; किन्तु इस नाम के अनुसार तुझमें कोई गुण नहीं है। मैं तेरे नाम को सार्थक देखना चाहती हूँ। बेटा! जब तू छोटा सा था तभी किसी वृद्ध विद्वान् ब्राह्मण ने तुझे देख कर मुझसे कहा था कि, यह तेरा पुत्र पहिले तो बड़ा भारी क्लेश भोगेगा; किन्तु बाद को बड़े भारी ऐश्वर्य का अधिकारी होगा। बस इसी एक ब्राह्मण के वाक्य पर मेरा आशासूत्र अवलम्बित है। यही कारण है कि, मैं तुझसे बार बार शत्रुओं का संहार करने के लिये कह रही हूँ। जो मनुष्य अपनी कार्यसिद्धि के साथ साथ परायी भलाई का भी ध्यान रखता है, उसकी अवश्य ही श्रीवृद्धि होती है। देख, तू तो यह समझ ले कि, चाहे हमारी या हमारे पूर्वजों की हानि ही क्यों न हो; किन्तु युद्ध अवश्य करेंगे। जब तेरा ऐसा निश्चय हो जावेगा, तभी मुझे शान्ति होगी। मुझसे अब तेरी यह दशा देखी नहीं जाती। तेरी यहाँ नित्य यही चिन्ता लगी रहती है कि, आज क्या खा रहे हैं और कल क्या खावेंगे? इस घोर नारकी दशा में पड़ कर जीवित रहना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता है। देख बेटा! दारिद्र्य और मरण दो वस्तुएँ नहीं हैं। दरिद्रता तो मरने से भी बढ़ कर है। पति और पुत्र का मरण इतना दुःखदायी नहीं, जितना कि दरिद्रता है। मैं उच्च कुल में उत्पन्न हो कर, सर्वश्रेष्ठ वंश ही में ब्याही गयी,

मेरे सुख साम्राज्य का ठिकाना नहीं था। मेरे पतिदेव मेरा बड़ा आदर करते थे। मेरे सम्बन्धी मुझे उत्तम बहुमूल्य वस्त्राभरणों से सज्जित देख कर, प्रसन्न हुआ करते थे। सञ्जय! क्या तू अपनी स्त्री का दीन मलीन मुख और मेरा दुर्बल शरीर देख कर भी जीवित रहने की इच्छा करता है? बेटा! जब तेरी इस दरिद्रता को देख कर तेरे नौकर, चाकर, भाई, बन्धु, पुरोहित आदि सब त्याग देवेंगे, तब तेरी क्या दशा होगी? जैसे तू पहिले अनेक वीरचरित्रों द्वारा यश कमाता था, वैसे ही अब भी तुझे अपनी कीर्त्ति का सञ्चय करना चाहिये। मेरे हृदय का सन्ताप तभी शान्त हो सकता है, जब कि, तू फिर वही पराक्रम दिखावे। बेटा! तेरे पिता ने या मैंने कभी किसी भिक्षुक ब्राह्मण को निराश हो कर अपने द्वार से नहीं जाने दिया; किन्तु आज जब मेरे दरवाज़े से भिक्षुक हताश हो कर लौट जाते हैं, तब मुझे असीम कष्ट होता है। सञ्जय! क्या तुझे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है। याद रख, हम लोग दूसरों को आश्रय देने वाले हैं। दूसरों के आश्रय में रह कर उनकी आज्ञा पर नाचने वाले सेवक नहीं हैं। बस यदि आज से मुझे पराधीन रह कर, जीविका करनी पड़ी तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। इस लिये इस अथाह महासागर से मेरा उद्धार करने के लिये बेटा सञ्जय! तू जहाज़ बन जा। यदि इसके लिये तुझे प्राणों का बलिदान भी करना पड़े, तो उसकी कुछ भी पर्वाह न कर। जब तक तू अपने प्राणों का मोह नहीं त्यागेगा, तब तक तू कभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा। नपुंसकों ने कभी कहीं राजलक्ष्मी प्राप्त नहीं की है। वृत्रासुर का संहार करने के बाद ही इन्द्र को महेन्द्र की पदवी प्राप्त हुई थी। जिस समय महारथी योद्धाओं की सेना में जा कर पराक्रमी मनुष्य हलचल मचा देता है और विपक्षियों की सेना उसके प्रहारों से तितर बितर हो जाती है, तभी उसके शत्रु आ कर चरणों में गिर जाते हैं। राज्य से चाहे भले ही भ्रष्ट हो जाय; किन्तु शत्रुओं का तो जड़ ही से उच्छेदन कर देना ठीक है। शूरवीर पराक्रमी योद्धाओं ही के सब मनोरथ

सिद्ध होते हैं, कायरों के नहीं। तपोधन साधुओं के लिये स्वर्ग और पराक्रमी राजाओं के लिये राज्य स्वर्ग है। तेरा वह स्वर्गरूपी राज्य शत्रुओं ने छीन लिया है। इसलिये तू अब भयङ्कर वज्र सा तीक्ष्ण पराक्रमी बन कर शत्रुओं पर टूट पड़ और या तो रण में सम्मुख मर कर वीरगति प्राप्त कर या फिर अपना राज्य शत्रुओं से छीन ले। बेटा! शत्रुओं का संहार कर धर्मानुसार प्रजा का पालन करते हुए, मैं तुझे देखूँ, बस यही मेरी हार्दिक इच्छा है। मैं तुझे समृद्धि-शाली सम्राट् की दशा में देखना चाहती हूँ। तेरी यह दशा अब मुझसे नहीं देखी जायगी। एक ओर शत्रुओं का धावा हो रहा है और दूसरी ओर अनाथ प्रजा किसी को अपनी रक्षा के लिये न पा कर रो रही है। यह करुण दृश्य अब मेरी आँखें देखना नहीं चाहतीं। कायर बन कर सिन्धु देश की कन्याओं का चेला मत बन; बल्कि पराक्रमी बन कर राज्यसम्पदाओं का उपभोग कर। बेटा! तू जवान है, रूप-यौवन-सम्पन्न, महायशस्वी वीर क्षत्रियों का कुलभूषण है। तुझे शत्रुओं के पीछे पीछे दीन दुखियारा बन कर घूमता हुआ, मैं देखना नहीं चाहती। तेरे कुल में कोई भी ऐसा नहीं हुआ जो तेरी तरह शत्रुओं के पीछे घसिटता फिरा हो। विधाता ने क्षत्रियों के धर्म की जैसी रचना की है, उसीके अनुसार तुझे चलना चाहिये। अपने पूर्वजों के कर्त्तव्यों को स्मरण कर और इस हीन दशा को त्याग कर, तू अपना उद्धार कर। क्षत्रिय वंश में पैदा हो कर, कोई भी अपनी मानमर्यादा के विरुद्ध किसी की चाकरी नहीं करता। क्षत्रिय अपने उद्योग और पराक्रम से ऐश्वर्य पा कर सुखी होते हैं। वे किसी से दबते या झपते नहीं। रणभूमि में मदोन्मत्त हाथी की भाँति क्षत्रियों का बालक निर्भय घूमता है; किन्तु धर्ममर्यादा के रक्षार्थ विद्वान् ब्राह्मणों के चरणों में सिर ही नवाता है। क्षत्रिय चाहे कैसा ही असहाय क्यों न हो; किन्तु वह एक ब्राह्मण को छोड़ कर, अन्य किसी जाति से दबता नहीं; बल्कि उनका शासन करते हुए, दुष्टों का संहार करता है।

एक सौ पैंतीस का अध्याय

क्षत्रिय-धर्म

हे वीराङ्गने! हे मेरी माता! निश्चय तुम्हारा हृदय लोह के समान कठोर विधाता ने बनाया है। क्षत्रियों के आश्चर्य चरितों का वर्णन करना बड़ा ही दुर्लभ कार्य है। आप तो हमें संग्राम करने के लिये इस भाँति उपदेश देती हो जैसे कोई दूसरी माता दूसरे पुत्र को देती हो। भला तुम यह तो सोचो कि, मेरे मर जाने के बाद तुम्हें क्या सुख प्राप्त होगा? तुम अपुत्रिणी हो कर अपनी जीवनयात्रा कैसे क्लेश से करोगी। क्या इसका तुम्हें कुछ भी ध्यान नहीं है?

यह सुन कर माता ने कहा— पुत्र! सुन, विद्वान् लोग धर्मार्थ की हानि करने वाले कर्मों को कभी नहीं करते। इस कारण मैंने धर्मार्थ का अनुसन्धान करते हुए ही तुझे युद्ध करने के लिये बार बार उत्तेजित किया है। यह समय चूकने का नहीं है। यह समय तो अपने पराक्रम से शत्रुओं का संहार कर यश और कीर्त्ति एकत्रित करने का है। यदि तूने यह सुनहला अवसर यों ही सुस्ती और केवल शरीर की रक्षा में खो दिया तो बस फिर मामला समाप्त है। इसके बाद मैं भी तुझसे कुछ न कहूँगी। क्योंकि कायर और दुर्बल बेटे पर जो माता की ममता होती है, वह ममता ऐसी होती है जैसी गधी की अपने छोटे बेटे गधे पर। इस लिये यदि तू सत्पुत्र कहलाना चाहता है। तो इस नीच प्रकृति को परित्याग कर और वीरोचित कर्मों द्वारा मेरा सन्ताप दूर कर। जो लोग देह के विनाश ही को आत्मनाश समझ बैठे हैं; उन लोगों को महामूर्ख समझना चाहिये। इस क्षणिक देह का विनाश हो जाने पर आत्मविनाश नहीं होता। क्योंकि आत्मा नित्य शुद्ध है। इस कारण आत्म-हानि के भय से कायर मत बन और धर्मात्मा वीर क्षत्रियों के आदर्श जीवन के अनुसार अपना जीवन बना। देख सञ्जय! नीच, दुर्बुद्धि और अविनीत पुत्रों पौत्रों

वाले माता-पिताओं को कभी सुख शान्ति प्राप्त नहीं होती। वे निरन्तर इस लोक तथा परलोक में क्लेश ही भोगते रहते हैं। विधाता ने क्षत्रियों की रचना संग्राम कर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने ही के लिये की है। युद्ध में शत्रुओं का संहार करना ही क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य है। रणभूमि में देह त्यागने वाले राजर्षियों को इन्द्रलोक प्राप्त होता है। क्षत्रिय को शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेने पर जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द देवराज इन्द्र के लोक (स्वर्ग) में भी नहीं मिलता। धीर पुरुष अपमानित होने पर भी शत्रुओं का संहार किये बिना दम नहीं मारते। क्योंकि उन्हें तो तभी शान्ति प्राप्त होती है; जब वे शत्रुओं को जड़ से उखाड़ फेंकते हैं। संसार में प्रिय अप्रिय दोनों ही चीज़ों का समावेश है। इस कारण इनकी चिन्ता बिना किये क्षत्रिय को उचित है कि, वह सन्तोषी बन कर बैठ न रहे; बल्कि शत्रुओं का सर्वनाश कर डालने का सर्वदा उद्योग करता रहे। जैसे समुद्र में जा कर गङ्गा अदृश्य हो जाती हैं; वैसे ही मनुष्य भी शीघ्र ही कामनाओं में फँस कर नष्ट हो जाता है।

सञ्जय ने कहा—हे माता! मेरे साथ आप यह कैसा कठोर व्यवहार कर रही हैं। आपको तो अपने पुत्र पर दया ही करनी चाहिये। आपकी मुझे यह रणभूमि में प्रस्थान कराने की प्रेरणा सचमुच मातृहृदय (वत्सलता) के विपरीत है।

विदुला बोली—बेटा! तेरा कहना बिल्कुल ठीक है; किन्तु हम वीर क्षत्राणी हैं। इस लिये मेरा हृदय वज्र से भी कठोर है। मैं तो तेरी प्रशंसा उसी दिन करूँगी कि, जिस दिन तू सिन्धुराज को जीत कर और विजयश्री ले कर मेरे चरणों की वन्दना करेगा।

सञ्जय ने कहा—माता! सुनो, मैं इस समय धनहीन, जनहीन और बलहीन हो रहा हूँ। मेरी सहायता करने वाला संसार में कोई नहीं है। इसी कारण मैंने राज्य की ओर से अपना मुँह मोड़ लिया था; किन्तु जब

आप मुझे बारबार उत्तेजित कर रही हैं, तब आपसे ही मैं अपने विजय का उपाय पूँछता हूँ। बतलाइये कैसे मेरा विजय हो सकता है ?

विदुला ने कहा—देख बेटा ! यह बात मैं भी जानती हूँ कि, तू अत्यन्त असहाय है; किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, तू केवल इसी एक तुच्छ कारण से अपने आत्मा का निरादर करने लगे। बड़े आदमियों के सिद्धिलाभ, साधनों के बल पर ही नहीं प्राप्त होता है; बल्कि उनकी सिद्धि तो उनके आत्मिक बल पर निर्भर रहती है। केवल क्रोध से या केवल क्षमा ही से किसी को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं हुआ करती और कदाचित् हो भी जाय तो विद्वान् लोग उसको अनित्य समझ कर अपने स्वाभाविक अस्तित्व का तिरस्कार नहीं करते हैं। कर्मफलों की अनित्यता को देख कर जो लोग कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते उन्हें कोई फल भी नहीं मिलता; किन्तु जो कोई कुछ हाथ पैर हिलाया करते हैं। उन्हें सिद्धि अथवा असिद्धि कुछ न कुछ होती अवश्य है। मनुष्य को अपने दुःखों का प्रतीकार और शत्रुओं के ऐश्वर्य का संहार अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि जो मनुष्य इन कर्मों के करने में ढील डाल देता है। उसका उद्धार होना मुश्किल है। मैं अवश्य इस काम को समाप्त कर यशोलाभ करूँगा। इस प्रकार दृढ़ विचार के साथ मङ्गलाचरण पूर्वक जो कार्य किया जाता है। उससे अवश्य सफलता प्राप्त होती है। बेटा ! तूने तो बड़ी बड़ी कलायें और कौशल सीखे थे। वे क्या सब तू भूल गया ? बेटा ! उठ और उद्योग कर। हाथ पर हाथ धर बैठ कर, हानि करने से कुछ लाभ नहीं होता। इस लिये पुरुषार्थी बन कर, अपने क्रोधी और लोभी शत्रुओं को अपने अधीन कर। अपने सहायक अनुचरों का वेतन उचित समय पर ठीक ठीक दिया कर। उनके खान पान का ध्यान रख। सब से प्रिय मधुर वाणी बोल। इसीसे तेरा कल्याण होगा। जैसे हवा के झोकों से बादल हट जाता है, वैसे ही तू भी ऐसा करने पर शत्रुओं का संहार कर देगा। तेरे इस स्वरूप को देख कर, शत्रु भी तेरे शरण में आ जावेंगे। बलवान् शत्रु को वश में करने के लिये दूतों का और साम, दान,

तथा भेद नीति का प्रयोग करना चाहिये। इन उपायों से वह अवश्य वश में हो जावेगा। इस प्रकार दृढ़ विचार और उत्साह के साथ काम लेने के लिये यही उपाय पर्याप्त हैं। स्थानभ्रष्ट मनुष्य का सदा अपमान होता है। इस लिये यदि धन और धान्य तथा ऐश्वर्य चाहते हो, तो तुम्हें उचित है कि, तुम सब से पूर्व अपने राज्य को प्राप्त करो। धनी के मित्र बन्धु बान्धव अनेक लोग बन जाते हैं। अतः बेटा! तू भी धन एकत्र कर अपना और अपने मित्रों का उपकार कर।

एक सौ छत्तीस का अध्याय

क्षत्रियों का धर्म

विदुला बोली—बेटा! सुन, तू क्षत्रिय राजाओं के वंश में उत्पन्न हुआ है। राजाओं का धर्म है कि, वे कभी किसी भी आपत्ति के आ जाने पर डरें नहीं। यदि वे कभी भयभीत हो भी जावें तो प्रत्यक्ष में किसी को उनका भय प्रतीत न हो ऐसा आकार बनाये रखना चाहिये। धैर्य धारण कर शत्रुओं पर अपना आतङ्क जमाये रहें। यदि राजा को, मन्त्री तथा अन्य प्रजा यह जान लेवे कि, यह डर गया है तो वे सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं और उसका राज्य छीनने का प्रयत्न करने लगते हैं। इनमें से कुछ तो शत्रु से जा कर मिल जाते हैं, कुछ अपमानित हो कर राज्य छीन लेने का प्रयत्न करते हैं। भीत राजा की सहायता के लिये विरले ही पुरुष तैयार होते हैं। जो बड़े ही मित्र होंगे वे ही ऐसी दशा में साथ देते हैं; किन्तु शक्तिहीन झूठे मित्र तो पड़े पड़े भोजन किया करते हैं। उनसे कुछ लाभ नहीं, जो तेरे दुःख सुख के साथी तथा निरन्तर तेरी हितकामना करने वाले सच्चे मित्र हैं, उनसे तू प्रेम कर और सदा उनकी हितकामना करता हुआ अपने पौरुष का विस्तार कर। देख ऐसे जो कोई भी तेरे मित्र हों, उन्हें कभी अप्रसन्न न करना। मैंने तो केवल तेरा बल पुरुषार्थ जानने और हिम्मत बढ़ाने के हेतु

यह सब चेतावनी दी है। यदि तू इन मेरी बातों को ठीक समझता हो तथा इनके अनुसार चलना अपना धर्म समझता हो तो बस, बेटा सञ्जय ! उठ और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। बेटा ! तुझे मेरे धनकोष का हाल तो मालूम ही है। मेरे पास बड़ा भारी धन का भाण्डार है। हाँ कहाँ है ? इस बात को केवल मैं ही जानती हूँ। अस्तु मैं वह सारा का सारा धन तुझे दे दूँगी। इस लिये यदि निर्धनता के कारण अड़चन हो, तो वह इस प्रकार दूर हो ही जावेगी। अब रही हितैषियों की बात, सो तेरे हितैषी मित्र भी कुछ कम नहीं हैं। तेरे तो ऐसे ऐसे सच्चे मित्र मौजूद हैं कि, जो तेरे पीछे प्राण तक न्योछावर कर सकते हैं। बेटा ! देख विजय चाहने वाले किन्तु सुस्त राजा के मन्त्री तथा सहायक भी कायर हो जाते हैं। पूज्य माता के इन उपदेशों को सुन कर, क्षुद्रहृदय रखने वाले सञ्जय का भी अज्ञान नष्ट हो गया और वह संग्राम द्वारा शत्रुओं का संहार करने के लिये तैयार हो गया।

सञ्जय ने जब माता के उपदेश द्वारा आत्म-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया; तब अपनी माता विदुला से बोला—हे माता ! अब तुम मत घबराओ। मैं शीघ्र ही शत्रुओं का संहार कर राज्य को लौटा लूँगा। अन्यथा रणभूमि में प्राण दे दूँगा। मैं केवल तुम्हारे इन उपदेशों को सुनने की ही इच्छा से अब तक चुपचाप रहा था। अमृत के समान दुर्लभ आपके इन वचनों को सुन कर, मेरा हृदय आज अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। अब मैं अपने सहायकों सहित शत्रुओं पर चढ़ाई करने का प्रयत्न करता हूँ।

महारानी कुन्ती ने कहा—देखो केशव ! माता के उपदेशों द्वारा ही सञ्जय ने शत्रुओं का सर्वनाश कर डाला था। शत्रुओं से आक्रान्त एवं उद्विग्न राज्य को देख कर योग्य मन्त्री का कर्त्तव्य है कि, वह उत्तेजक तेजस्विता पूर्ण प्रभावशाली आख्यानों द्वारा उसके उत्साह को बढ़ावे। ऐसे इतिहासों के प्रभाव से वीर भाव प्राप्त कर, निर्बल राजा लोग भी शत्रुओं का संहार कर डालते हैं। यही नहीं, बल्कि गर्भवती स्त्रियाँ भी यदि ऐसी कथाओं

का निरन्तर चिन्तन करें, तो उन्हें भी वीर पुत्र की प्राप्ति हो। ऐसे वीरता पूर्ण व्याख्यानों का पाठ अलक्ष्मी का विनाश, ऐश्वर्य का प्रकाश और दानवीरता युद्धवीरता आदि अनेक गुणों का प्रादुर्भाव करता है।

एक सौ सैंतीस का अध्याय

कुन्ती का संदेश

हे केशव! जिस समय वीर अर्जुन गर्भ में था और मैं अनेक स्त्रियों से परिवेष्टित हो कर गपशप कर रही थी, उस समय आकाशवाणी हुई—हे कुन्ति! यह तेरा पुत्र इन्द्र के समान पराक्रमी हो कर संग्राम करने के लिये आये हुए सब कौरवों को जीत कर चक्रवर्ती राजा होगा। यह तेरा पुत्र वासुदेव की सहायता से अनेक शत्रुओं का संहार करेगा। इसके यश का स्वर्गलोक पर्यन्त विस्तार होगा। यह अपने भाइयों के साथ तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा। हे केशव! यह तो तुम स्वयं जानते ही हो कि, यह अर्जुन कैसा सत्यप्रतिज्ञ, शत्रु-संहार-कारी और बलवान है। इसको जीत लेना कोई सहज काम नहीं है। इस लिये हे कृष्ण! मैं चाहती हूँ कि अब वह आकाशवाणी सत्य हो जावे और उसका सत्य करना आपके ही अधीन है। मुझे उस सत्य वाणी पर पूरा विश्वास है। मैं संसार की रक्षा करने वाले धर्म को प्रणाम करती हूँ। तुम भीम और अर्जुन से जा कर कह देना कि, वीरांगनाएं जिस दिन के लिये वीर पुत्रों को उत्पन्न करती हैं, वह समय अब शीघ्र ही उपस्थित होने वाला है। तुम्हे अपनी वीर-प्रसविनी माता के दूध की लाज रखनी चाहिये। उत्तम पुरुष विरोध हो जाने पर किसी से अपमानित होना नहीं चाहते। हे कृष्ण! भीम जैसा दृढ़ वैर रखने हारा तो शायद ही कोई संसार में हो। वह जिसके साथ विरोध करता है, उसका सर्वनाश कर के ही छोड़ता है। हे माधव! सौभाग्यवती बहू द्रौपदी से कहना कि, तूने मेरे पुत्रों के साथ धर्म का अच्छा पालन

किया, इस कारण मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव के लिये भी मेरा यही सँदेश है। बेटा! तू प्राणों का मोह त्याग कर अपने नष्ट हुए ऐश्वर्य को प्राप्त करना। हे कृष्ण! मुझे पाण्डवों की वीरता, धर्मपरायणता और सहनशीलता को देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे जुए की हार का, प्राणप्रिय पुत्रों के वनवास का तथा पाण्डवों के राज्य भ्रष्ट होने का भी कुछ शोक नहीं है, किन्तु यदि कोई मुझे दुःख है, तो इसी बात का है कि, मेरी प्यारी पतिव्रता पुत्रवधू देवी द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया गया। आह! रजोधर्म में रहने वाली उस देवी की उस समय किसी ने भी रक्षा नहीं की। महाबली भीम और अर्जुन यदि क्रोध करें तो वे देवताओं को भी परास्त कर सकते हैं; किन्तु वे धर्मबन्धन में बँध कर, इन सब तिरस्कारों को सहते रहे। हे माधव! एक बार फिर उन्हें इन सब बातों का ध्यान दिला देना और मेरी ओर से कुशल पूँछना।

बस श्रीकृष्ण जी ने कुन्ती को प्रणाम कर राजमहल से बाहर आ भीष्म द्रोण आदि बड़े बड़े सब योद्धाओं को विदा किया और स्वयं रथ में सवार हो कर वे चले गये। इधर कौरव लोग अपने स्थान पर आ कर श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में अनेक आश्चर्यमय बातें कहने लगे। उन्होंने कहा कि यह सारा संसार अज्ञान से छाया हुआ है। दुर्योधन की मूर्खता के कारण यह सारी प्रजा नष्ट हो जावेगी। श्रीकृष्ण जी भी कर्ण के साथ बातचीत करते करते धीरे धीरे बहुत दूर निकल गये। इसके उपरान्त भगवान् ने कर्ण को भी विदा कर दिया, स्वयं आकाशचारी गरुड़ के समान वेगशाली घोड़ों वाले रथ से शीघ्र ही वे उपप्लव्य नामक पाण्डवों के निवासस्थान पर पहुँच गये।

एक सौ अड़तीस का अध्याय

भीष्म जी का पुनः उद्योग

महारथी भीष्म और द्रोण आदि ने दुर्योधन से कहा—हे पुरुष-सिंह ! महारानी कुन्ती ने श्रीकृष्ण से पाण्डवों के लिये जो संदेश कहला भेजा है, वह धर्मार्थपूर्ण न्यायसङ्गत तथा अत्यन्त भयङ्कर है। पाण्डव भगवान् वासुदेव की सम्मति से वैसा ही करेंगे और विना राज्य लिये शान्त न होंगे। देखो, पाण्डवों ने बड़े बड़े क्लेशों को और पाशविक अत्याचारों को भी खूब सहन किया है। जब कौरव-समाज में द्रौपदी का चीर-हरण किया गया था, तब वे पाचों भाई धर्मबन्धन में बँधे हुए थे। इस कारण तुम्हारी सभी अनुचित बातों को सहते और सुनते रहे; किन्तु अब वह समय नहीं रहा। निश्चय ही धर्मराज अपने वीर इन्द्रसमान पराक्रमी भ्राताओं की तथा वासुदेव श्रीकृष्ण की सहायता से तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगे। गोहरण के समय हम लोगों को परास्त करने वाले वीर अर्जुन के पराक्रम से तो तुम परिचित ही हो। उस धनुर्धारी वीर ने ही भयङ्कर रुद्रास्त्र द्वारा निवात कवचों का नाश किया और घोषयात्रा में तो हे महाराज ! तुम्हें और तुम्हारे महामन्त्री कर्ण को भी उसी शक्तिशाली वीर अर्जुन ने गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाया था। इस लिये इन सब बातों पर विचार करो और अपने भविष्य को सुखमय बनाओ। यह सारा का सारा ब्रह्माण्ड प्रलयकालीन महाकाल के कराल गाल में अब जाना ही चाहता है। हे राजन् ! इसकी रक्षा तुम्हीं कर सकते हो। पाण्डवों से सन्धि कर लेने ही में आपकी भलाई है। धर्मात्मा परमकारुणिक महात्मा युधिष्ठिर के पास जा कर उन्हें प्रणाम करो। उनसे वैर कर के तुम्हें कभी सुख शान्ति न मिलेगी। जिस समय तुम छल कपट त्याग कर अपने मन्त्रियों सहित धर्म-राज के चरणों में जा पड़ोगे, उस समय वे तुम्हें तुरन्त उठा कर अपनी छाती से लगा लेंगे। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी तुमसे प्रेम करेंगे और

संसार में तुम्हारा और पाण्डवों का जय जयकार होगा। इस अपूर्व सम्मेलन को देख कर समस्त राजमण्डली आनन्द के आँसू बहावेगी। इस लिये लड़ने लड़ाने की बात छोड़ो और अभिमान त्याग कर पाण्डवों से सन्धि कर लो। संग्राम में बड़े बड़े वीर योद्धाओं का संहार होगा और भूमण्डल निर्वीर हो जायगा। तुम्हारे सम्बन्धी तुम्हें समझा रहे हैं, उनका कहना मानो। आज कल क्षत्रिय जाति के सर्वनाश की सूचना देने वाले अनेक उत्पात हो रहे हैं। प्रतिकूल नक्षत्रों का उदय होना, पशु पक्षियों का भयङ्कर स्वरूप दीखना, यह सब कुलक्षण क्षत्रियों के भावी सर्वनाश ही के सूचक हैं। तुम्हारी सेना में प्रति दिन उल्कापात हुआ करते हैं। हाथी घोड़े आदि वाहन अपनी अपनी शालाओं में, बँधे आँसू बहाया करते हैं। सेना के चारों ओर गिद्ध मड़राया करते हैं। राजभवनों में वह आनन्द नहीं रहा। प्रज्वलित दिशाओं की ओर मुँह उठाये गीदड़ रोया करते हैं। हे राजन्! यह सारे के सारे अशकुन किसी महान् आपत्ति ही के लक्षण हैं। इस लिये तुम अपने हितकारी सच्चे मित्रों की सम्मति से काम करो। संग्राम का नाम न लो और पाण्डवों से मेल कर लो। इतने पर भी यदि तुम हम लोगों की बात नहीं मानोगे तो याद रखो, रणचण्डी के चेतने पर भी और भीम अर्जुन के भयङ्कर बाणों की बौछार देख कर, तुम्हें पीछे पछताना पड़ेगा।

एक सौ उन्तालीस का अध्याय

द्रोण का हितोपदेश

राजा दुर्योधन की भौंहें इन बातों को सुन कर टेढ़ी हो गयीं। क्रोध से मुँह तमतमा उठा। उसके चेहरे पर उदासी छा गयी और आँखें नीची हो गयीं। जवाब में इन सब बातों के उसके मुँह से कुछ भी न निकला।

दुर्योधन की इस उदासी और चुप्पी को देख कर पितामह भीष्म ने कहा—भाई ! हमें तो यही बड़े क्लेश की बात मालूम होती है कि, अपनी सेवा करने वाले सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मणभक्त, एवं वीर अर्जुन से हमें लड़ना पड़ेगा ।

द्रोणाचार्य बोले—मुझे तो अर्जुन से बड़ा स्नेह है । मैं अपने पुत्र अश्वत्थामा से भी बढ़ कर उसे स्नेहदृष्टि से देखता हूँ । वह मेरा विनम्र हो कर सदा सम्मान किया करता है । आह ! आज इस क्षात्रधर्म को शतशः धिक्कार है जो प्राणों से भी प्रिय अर्जुन के साथ संग्राम करने की प्रेरणा कर रहा है । आज जो अर्जुन धनुर्धारियों में अनुपमेय माना जा रहा है यह सब मेरी ही कृपा का फल है । जैसे यज्ञ में मूर्खों का सत्कार नहीं होता, वैसे ही दुष्ट दुराचारी और शठ मनुष्य का भी सज्जनों में आदर नहीं होता । पापी को पापकर्म से नहीं रोका जा सकता और पुण्यात्मा को कोई पुण्यमार्ग से विचलित कर देने की शक्ति नहीं रखता । दुर्योधन ! तूने अनेक प्रपञ्च-रचनाओं द्वारा पाण्डवों को क्लेश पहुँचाया है ; किन्तु वे धर्मात्मा सदा तेरा भला ही चाहते हैं । यह सब तेरे ही कर्मों का परिणाम प्रकट होने वाला है । तुझे तेरे पिता ने, महात्मा विदुर ने, श्रीकृष्ण ने, मैंने और भीष्म पितामह आदि अनेक हितैषी बन्धुओं ने समझाया ; किन्तु तू किसी की भी बात नहीं मानता । अपने पास बलवती सेना को देख कर तुझे घमंड हो गया है और तू यह चाहता है कि, मैं भयङ्कर ग्राह आदि जीवों से भरे हुए महासागर को स्वयं तैर कर पार कर जाऊँ । तूने समझ रखा है कि, मैं चारों ओर से सुरक्षित हूँ ; किन्तु तुझे यह नहीं मालूम है कि, तू अपने चारों ओर रक्षक रूप से रहने वाले भक्षकों से घिरा हुआ है । तू इस अज्ञान के कारण ही अपने पराये को भूल गया है और धर्मराज के राज्य को अपना समझ उसे हड़प जाने का प्रयत्न कर रहा है । यद्यपि इस समय धर्मराज तपस्वियों की भाँति अपने परिवार के साथ वन में रहते हैं, तो भी उन्हें परास्त करने की किसी में भी सामर्थ्य

नहीं है। जिस कुवेर की आज्ञा में समस्त राजमण्डली चाकरों की भाँति रहा करती है, उन्हीं कुवेर के यहाँ पहुँच कर, धर्मराज ने बड़ा सम्मान पाया था तथा अनेक बहुमूल्य पदार्थों को ले कर वे वहाँ से लौटे थे। वे ही धर्मराज आज तेरे राज्य पर चढ़ाई करना चाहते हैं। हम तो अनेक पुण्य कर्म करते करते कृतकृत्य हो चुके हैं; किन्तु बेटा! अब तेरा कुशल नहीं; यह तू निश्चय समझ लेना। तपस्विनी पतिव्रता देवी द्रौपदी जिनकी मङ्गलकामना करने वाली हैं, उन पाण्डवों को हरा देना कोई सहज काम नहीं है। जिस धर्मराज के श्रीकृष्ण मन्त्री हों और वीर अर्जुन सहायक हों, उसे भला तू कैसे परास्त कर सकता है। तपोधन विद्वान् ब्राह्मण जिसके लिये निरन्तर विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद देते हैं, उस धर्मराज को तू कैसे परास्त करेगा? अपने बन्धु बान्धवों को दुःख-महासागर में से निकालने की इच्छा रखने वाले को उचित है कि, वह अपने स्वजनों से कभी विरोध न करे। ऐसा करने ही से उसका कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं। इस लिये बेटा! तू भी पाण्डवों से सन्धि कर ले।

एक सौ चालीस का अध्याय

श्रीकृष्ण और कर्ण

राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—सञ्जय! श्रीकृष्ण जी जब हस्तिनापुर से उपप्लव्य को जाने लगे थे, तब कर्ण को बहुत दूर तक अपने साथ ले गये थे। क्या तुम यह बतला सकते हो कि, उन्होंने कर्ण से क्या क्या कहा था? मुझे उन सब बातों के जानने की बड़ी लालसा हो रही है।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्ण जी ने जो कुछ भी कहा था वह सब मैं आपको सुनाता हूँ।

वासुदेव जी ने कर्ण से कहा—हे कर्ण! तुमने बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मणों की आराधना की है। उनके पास शिष्य भाव से रहते हुए वैदिक सिद्धान्तों का तुमने मनन किया है। तुम धर्मशास्त्रों के सूक्ष्म सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित हो। देखो कन्या और पुत्र दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह कि, जो विवाह से पूर्व पैदा हो और दूसरा वह जो विवाह होने के बाद पति के यहाँ पहुँचने से पहिले पैदा हो। इनमें पहिले का नाम 'कानीन' और दूसरे का नाम 'सहोढ' है। सहोढ पुत्र विवाह करने वाले का ही पुत्र माना जाता है। हे कर्ण! तुम्हारा भी जन्म इसी प्रकार हुआ है। इस कारण तुम राजा पाण्डु के सहोढ पुत्र हो। धर्मानुसार तुम्हें राजा होना चाहिये। इस लिये तुम अब मेरे साथ चलो। तुम्हारे पिता के पक्ष के तो पाण्डव हैं और माता के पक्ष के यादव हैं। इस प्रकार तुम्हें स्व और पर पक्ष का अब विचार करना चाहिये। जब तुम मेरे साथ चलोगे तब पाण्डव तुम्हारा बड़े भाई के समान सम्मान करेंगे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र अभिमन्यु तथा अन्धक वृष्णियों के साथ तुम्हारे चरणों में आ कर सिर नवावेंगे। राजा तथा राजकन्याएँ सोने चाँदी और मिट्टी के पात्रों में पवित्र तीर्थजल भर कर तुम्हें स्नान करावेंगी तथा देवी द्रौपदी भी छठे दिन तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ करेंगी। मैं यह चाहता हूँ कि, महामुनि धौम्य तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये यज्ञ करें और वेदज्ञ ब्राह्मण तुम्हारा आज ही अभिषेक कर देवें। पाण्डवों के पूज्य पुरोहित महर्षि धौम्य तथा पाण्डव, द्रौपदी के पुत्र और पाञ्चाल आदि देशों के राजा सब मिल कर तुम्हें आज भूमण्डल का सम्राट बना दें। पाँचों पाण्डव युवराज बन कर तुम्हारी सेवा करें। महाबली भीमसेन श्वेत छत्र ले कर तुम्हारे पीछे खड़े होवें। अर्जुन आदि तुम्हारे भाई चँवर डुलाते मुझे देख पड़ें। यही मेरी हार्दिक इच्छा है। वेगशाली घोड़ों वाले रथ पर बैठाल कर तुम्हारा सारथ्य स्वयं अर्जुन करेगा और अभिमन्यु भी तुम्हारी सेवा में सदा बना रहेगा। नकुल, सहदेव, शिखण्डी और द्रौपदी के पुत्र तुम्हारे अनुचर हो कर रहेंगे।

हम सब यादव तथा अन्य राजा लोग तुम्हारे पारिवारिक बन्धुओं के समान आज्ञाकारी हो कर रहेंगे। हे कर्ण ! तुम अपने भाई पाण्डवों के साथ रह कर राजलक्ष्मी का उपभोग करते हुए धर्म का आचरण करो। कुन्तल, आन्ध्र, चूचुप, द्रविड़ तथा वेणु वंशी राजे भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। हे कर्ण ! नक्षत्रराशि से परिवेष्ठित चन्द्रदेव के समान तुम पाण्डवों के साथ रहते हुए ऐश्वर्य का उपभोग करो। अन्त में मैं तुम्हें यही आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम्हारे मित्र तुमसे सदा प्रसन्न रहें और शत्रुओं के यहाँ नित नूतन आपत्तियाँ आती रहें। तुम्हारी प्रीति अपने भाई पाण्डवों से सदा बनी रहे बस यही मेरी मङ्गलकामना है।

एक सौ इकतालीस का अध्याय

कर्ण की विचारदृढ़ता

महावीर कर्ण ने कहा—हे केशव ! मेरी हितकामना से तथा मुझ पर स्नेह रखने के कारण आप जो कुछ भी कह रहे हैं बिलकुल ठीक है। मैं धर्मानुसार पाण्डु का ही पुत्र हूँ तथा राज्याभिषेक के लिये जो आप कह रहे हैं वह सब भी न्यायसङ्गत है। मेरी माता जब कन्या थी तब उसने सूर्यदेव द्वारा गर्भधारण किया और उनके आज्ञानुसार ही गर्भ से उत्पन्न होते ही मुझे त्याग दिया था और वह त्याग ऐसी निर्दयता के साथ किया गया था कि, जिसमें मेरे जीने मरने का कुछ ध्यान नहीं था। इसके बाद राजा अधिरथ मुझे उठा ले गये और मेरी रक्षा का उचित प्रबन्ध करते हुए उन्होंने मुझे राधा नाम वाली दासी को सौंप दिया। मुझ पर स्नेह होने के कारण राधा के स्तनों से दूध निकलने लगा। उसने पुत्र से भी अधिक स्नेह के साथ मेरा पालन किया। अब हे केशव ! तुम्हीं बतलाओ मैं माता के समान मल मूत्र उठाने वाली राधा के पिण्डों का लोप कैसे कर सकता हूँ ? उधर राजा अधिरथ भी अपने औरस पुत्र की तरह मुझ पर स्नेह

रखते हैं। उन्होंने मेरे समस्त संस्कार वैदिक विधि से कराये हैं। यदि उनका मुझ पर प्रेम न होता, तो वे क्यों मुझे लाते और मेरा लालन पालन करते? मैं भी उनका वैसा ही सन्मान करता हूँ जैसा कि, एक पुत्र को पिता का करना चाहिये। ब्राह्मणों की आज्ञा से मेरा वसुषेण नाम रखा गया है तथा सूतकुल की अनेक स्त्रियों से मेरा विवाह भी कर दिया गया है। मेरा प्रेम-सूत्र उन स्त्रियों में बड़ी मज़बूती के साथ बँधा है। अपने पुत्रों पौत्रों में मेरी ममता है। हे गोविन्द! अब बतलाइये मैं कैसे इन अपने बन्धुओं को छोड़ सकता हूँ? अब तो चाहे कोई विश्वब्रह्माण्ड का भी ऐश्वर्य प्रदान कर इन बन्धुओं को छुटाना चाहे तो यह नहीं छूट सकते। हे माधव! मैं सूतवंश के साथ रहता हुआ अनेक यज्ञ और अनेक विवाह सम्बन्ध कर चुका हूँ। मैंने १३ वर्ष बराबर कौरवों में रहते हुए राज्यश्री का भी उपभोग किया है। दुर्योधन जो आज पाण्डवों से युद्ध करने की ठान रहा है, वह सब मेरे ही बल भरोसे पर है। द्विरथ युद्ध में अर्जुन का विपक्षी बन कर मैं ही सामने आऊँगा। मैं अब आपकी आज्ञा को मान कर अपने परम मित्र दुर्योधन के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। हे माधव! यदि मैं अब अर्जुन के साथ न लड़ूँ तो मेरी और अर्जुन दोनों ही की अपकीर्त्ति होगी। मधुसूदन! पाण्डव तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं और तुम भी उन पर स्नेह रखते हो। इस कारण उनकी भलाई के लिये सब बातें उनसे कह भी देना। अच्छा अब हे मधुसूदन! मैं आपसे एक विनय यह और करना चाहता हूँ कि, मेरी और आपकी जो बातें हुई हैं, उन्हें तुम किसी के आगे प्रकट न करना। क्योंकि इनको गुप्त रखने ही में भलाई है। हे माधव! यदि धर्मराज युधिष्ठिर को ये बातें मालूम हो गयीं और उन्हें पता चल गया कि कर्ण मेरा बड़ा भाई है, तो वे राजसिंहासन को कभी स्वीकार न करेंगे और मुझे ही समस्त राज्य का अधिकार दे देंगे और मैं वह राज्य दुर्योधन को दे दूँगा। इस कारण तुम मेरा परिचय गुप्त ही रखना। मैं यह चाहता हूँ कि, तुम जिनके सहायक और अर्जुन जिनका छोटा भाई है वे

धर्मराज सदा के लिये ही हस्तिनापुर के राजा हो जावें। धर्मराज के लिये तो भूमण्डल एक साधारण देश के समान है। क्योंकि महारथी भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, द्रुपदपुत्र, उत्तमौजा, चंदीश्वर, सोमदत्त के पुत्र, कुन्ति-भोज, शङ्ख आदि अनेक महारथी उनके पास एकत्रित हैं। हे वासुदेव! महाराज दुर्योधन के इस शस्त्रयज्ञ में आप ही को उपद्रष्टा (मध्यस्थ) बनना पड़ेगा। आप इस यज्ञ में अध्वर्यु होंगे और कवचधारी महावीर अर्जुन इस रण-यज्ञ का होता होगा। अर्जुन का गाण्डीव धनुष स्रुवा, पराक्रमी राजाओं का वीर्य बल ही घृत और अर्जुन के पाशुपत, ऐन्द्र, ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र ही महामन्त्रों का स्वरूप धारण करेंगे। अपने पिता अर्जुन से भी बढ़कर शक्ति-सामर्थ्य-शाली वीर अभिमन्यु इस महायज्ञ का उद्गाता और सिंह समान गरजने वाला भीम इसमें प्रस्तोता बनेगा। महा-तपस्वी धर्मराज ब्रह्मा का आसन ग्रहण करेंगे। शङ्खों दुन्दभियों तथा महा-रथियों की ध्वनि और गर्जनाएँ ही सुब्रह्मण्य मन्त्रों का काम करेंगी। इस संग्राम में अध्वर्य वीरशिरोमणि नकुल और सहदेव, शामित्र (प्रोक्षित पशुओं के संहारक) बनेंगे। विचित्र दण्डों से शोभायमान रथों की पक्तियाँ ही इस महायज्ञ के यज्ञस्तम्भ होंगी। हे वासुदेव! कर्ण, नालीक और नाराच ही आहुति पहुँचाने वाले चम्मच का काम करेंगे। तोमर सोमरस के कलशों का, धनुष सोमोत्पवन का, खड्गराशि कपालों का कपाल पुरोडास पात्रों का, रुधिर-धारा हवि का, शक्तियाँ समिधाओं का, गदाएँ परिधिकाष्ठों का, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के शिष्य सभासदों का काम देंगे। इस रणयज्ञ में गाण्डीवधारी अर्जुन के तथा द्रोणाचार्य अश्वत्थामा आदि महारथियों के तीक्ष्ण बाण सोमचमच का काम देंगे। अपनी सेना रूपिणी पत्नी के साथ राजा दुर्योधन इस यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं। इसमें महारथी सात्यकि ही अध्वर्यु के साथ मन्त्रोच्चारण का कार्य करेंगे। हे केशव! इस विस्तृत महायज्ञ में जब अतिरात्र नामक महायज्ञ का विस्तार आधी रात के समय होगा, तब महाबली घटोत्कच शामित्र का कार्य करने के

लिये नियुक्त किया जावेगा। राजा द्रुपद के यज्ञ से उत्पन्न हुआ बली धृष्टद्युम्न इस यज्ञ की दक्षिणा होगा। हे केशव! दुर्योधन की प्रसन्नता के लिये जो कटु वचन मैंने पाण्डवों के प्रति कहे थे उनको याद कर अब मुझे बड़ा भारी खेद होता है। इसका प्रायश्चित्त भी तभी होगा जब कि आप मुझे वीर अर्जुन के बाणों से रणभूमि में मरा हुआ देख लेंगे। जब महारथी भीम दुःशासन का रुधिर-पान करेंगे, तब इस यज्ञ का सोमपान समझा जावेगा हे जनार्दन! जब धृष्टद्युम्न और शिखण्डी दोनों मिल कर पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य को मार डालेंगे, तब इस रण महायज्ञ का अवसान होगा। दुर्योधन आदि कौरवों का संहार हो जाने के बाद जब उनकी पुत्र और पौत्रवधुएं भयङ्कर जन्तुओं से पूर्ण इस रणभूमि में आ कर रोवेंगी और उनके निमित्त स्नान करेंगी, तभी इस महायज्ञ का अवभृथ स्नान समझा जावेगा; किन्तु हे पावन महापुरुष श्रीकृष्ण, विद्यावयोवृद्ध क्षत्रियों का व्यर्थ संहार न होने पावे। शस्त्रास्त्रों द्वारा पवित्र कुरुक्षेत्र में त्रैलोक्य का क्षत्र मण्डल लड़ कर मारा जावेगा। इस लिये आप इस विषय में वैसे जो चाहें सो करें; किन्तु यह ध्यान रहे कि, इस महायज्ञ में मरने वालों की अधिक संख्या में सद्गति होनी चाहिये। जब तक नदियों और पर्वतों की स्थिति है; तब तक इस महाकीर्त्ति का गान होता रहेगा। क्षत्रियों के यशोधन स्वरूप इस महाभारत के संग्राम का वर्णन ब्राह्मण लोग सदा किया करेंगे। हे माधव! आप इन सब बातों को प्रकाशित न करते हुए ही वीर अर्जुन को मेरे साथ लड़ने के लिये लाइयेगा।

एक सौ बयालीस का अध्याय

कर्ण की धमकी

महावीर कर्ण की इन बातों को सुन कर श्रीवासुदेव हँस कर कहने लगे—हे कर्ण! मालूम होता है कि, तुममें राज्यलोभ बिल्कुल नहीं है।

अन्यथा क्या तुम मेरे दिये हुए भूमण्डल के राज्य को स्वीकार न करते ? बस इसीसे मुझे प्रतीत होता है कि, पाण्डव अवश्य विजयी होंगे। महारथी अर्जुन की ध्वजा भी ऊँची हो कर फहराने लगी है। देवराज इन्द्र की ध्वजा के समान अर्जुन की ध्वजा को भी विश्वकर्मा ने बड़ी कारीगरी के साथ बनाया है। इस ध्वजा में अनेक प्रकार की माया और भूत भरे हुए हैं जो संग्रामकाल में अर्जुन की सहायता करते हैं। हे कर्ण ! वह देख, अर्जुन की ध्वजा कितनी ऊँची है। यह चार कोस ऊँची और आड़ी फैल कर कैसी शोभायमान हो रही है; किन्तु इसमें विचित्रता यह है कि, यह किसी वृक्ष या पर्वत में अटकती नहीं। संग्रामभूमि में जब श्वेत घोड़ों वाले रथ पर सवार हुए अर्जुन को आग्नेय और वायव्य आदि अनेक अस्त्र छोड़ते हुए देखोगे, तब तुम निश्चय धर्मार्थ, काम, मोक्ष से भ्रष्ट हो कर मर जावोगे। हे कर्ण ! अपनी सेना की रक्षार्थ तपश्चरण और जप करते हुए धर्मात्मा युधिष्ठिर के जब तुम दर्शन करोगे, तब भी तुम्हारा यही हाल हो जावेगा। महाबली भीमसेन जब दुःशासन के रुधिर को पी कर, मदोन्मत्त मद चुआने वाले हाथी की तरह संग्रामभूमि में तुम्हें देख पड़ेगा, तब तुम्हारी विचित्र दुर्दशा हो जायगी। जब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह, जयद्रथ, और दुर्योधन आदि को तुम अर्जुन द्वारा अवरुद्ध देखोगे, तब तुम्हें भी अवश्य काल के गाल में प्रवेश करना पड़ेगा। जिस समय कौरवों की सेना में घुस कर मस्त हाथी की तरह खलभली मचा देने वाले वीर नकुल सहदेव को तुम देखोगे, तब तुम्हें साक्षात् यमराज का दर्शन हो जावेगा। देखो कर्ण ! तुम यहाँ से जा कर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि से यह कह देना कि, यह समय बड़ा अच्छा है। इसमें खाने पीने और ईंधन आदि का भली भाँति प्रबन्ध किया जा सकता है। इस समय वनों और उपवनों में सम्पूर्ण औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ लहलहा रही हैं। कहीं भी कीच, पानी, मक्खी, मच्छर आदि की कुछ भी बाधा नहीं है। आज कल जल बड़ा शीतल और स्वादिष्ट हो रहा है। आज से सातवें रोज़ अमावास्या का

पर्व है । विद्वानों का कहना है कि, इस तिथि का दैवत इन्द्र है । अतएव इसी दिन संग्राम प्रारम्भ हो जाना अच्छा है । दुर्योधन की सहायता करने के लिये जो राजा लोग आये हों, उन सब से यह सन्देश कह देना । तुम्हारी कामना के अनुसार दुर्योधन की सहायतार्थ संग्राम करने वाले सब के सब नरपाल और राजकुमार शस्त्रों द्वारा मृत्यु पा कर स्वर्ग को चले जावेंगे ।

एक सौ तैंतालीस का अध्याय

कर्ण-कथित अपशकुन और ग्रहस्थिति

सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण जी की इस बात को सुन कर, कर्ण श्रीवासुदेव का सम्मान करता हुआ बोला—हे वासुदेव ! आप सब कुछ जानते हुए भी क्यों मुझे मोह में डाल रहे हैं ? यह तो समय पृथिवी के विनाश का ही उपस्थित हो रहा है । इस विनाश के कारण शकुनि, दुर्योधन दुःशासन और मैं हूँ । निश्चय ही कौरव और पाण्डवों में भयङ्कर संग्राम छिड़ने वाला है । दुर्योधन की सहायतार्थ आने वाले राजा लोग राजकुमार सब के सब भयङ्कर शस्त्रों की अग्नि में भस्म हो कर यमलोक जाने की तैयारी कर रहे हैं । हे माधव ! आज कल अनेक भयङ्कर उत्पात और स्वप्न देखने में आ रहे हैं । शरीर में ऐसी विचित्रता के साथ रोमाञ्च हुआ करता है, जिनसे यही मालूम होता है कि, बस इस युद्ध में कौरवों को परास्त होना पड़ेगा और पाण्डवों की जीत होगी । देखिये, तीव्र शक्ति वाला शनिश्चर प्राणियों को आज कल बड़ा दुःखी कर रहा है और उसकी दृष्टि प्राजापत्य नक्षत्र पर भी पड़ रही है । मङ्गल वक्रगति से ज्येष्ठा नक्षत्र की प्रदक्षिणा करता हुआ, मित्र दैवत अनुराधा नक्षत्र से मिलना चाहता है । जिसका मित्रों के संहार को छोड़ कर और कुछ फल हो ही नहीं सकता । राहु, चित्रा नक्षत्र को पीड़ा दे रहा है । इससे भी यही मालूम होता है कि, कौरवों पर कोई विशेष भयङ्कर आपत्ति आने वाली

है। चन्द्रदेव के बीच में रहने वाला कलङ्क अपने स्थान से चलायमान होने लगा है तथा राहु सूर्य के समीप बढ़ने लगा है और बड़े गर्जन तर्जन के साथ उल्कापात हुआ करते हैं। हे माधव! हाथियों का भयङ्कर ध्वनि से चिंघाड़ना तथा घोड़ों का खाना पीना त्याग कर, आँसू बहाते रहना बड़ा कुलक्षण और भावी भयङ्कर आपत्ति की सूचना है। हे मधुसूदन! दुर्योधन की सेना चाहे थोड़ा ही भोजन क्यों न करे; किन्तु उसे अधिक परिमाण में पाखाना पेशाब होता है, यह भी पराजय के पूरे लक्षण हैं। हे वासुदेव! यह भी सुना गया है कि, पाण्डवों के वाहन सदा प्रसन्न रहते और हरिण उनकी दक्षिण ओर हो कर निकला करते हैं। यह सब पाण्डवों के विजय के लक्षण हैं; किन्तु दुर्योधन के विषय में यह बिलकुल विपरीत हो रहा है। मृग दुर्योधन की बाईं ओर हो कर आते जाते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि, बिना मनुष्य के ही अदृश्य वाणी की तरह बातें चीतें भी होती हुई सुन पड़ती हैं। यह सब कौरवों की हार ही के लक्षण हैं। हंस, सारस, चातक आदि पक्षी सदा पाण्डवों के लिये शुभ शकुन दिखलाते हुए उनके पीछे उड़ा करते हैं। गिद्ध, कौए, बगले, बाज, राक्षस, नाहर तथा मक्खियाँ कौरवों के पीछे पीछे उड़ कर उन्हें मृत्यु की सूचना दे रही हैं। दुर्योधन की सेना में तथा कुओं में बैल के पुकारने जैसी आवाज़ होती है। उसकी सेना की दुन्दुभियाँ तो बजतीं नहीं; किन्तु पाण्डवों के ढोल बिना बजाये ही बजा करते हैं। आकाश से माँस और रक्त की वर्षा होती है तथा बादलों की घटाओं से घिरे हुए आकाश में गन्धर्वनगर, क़िले और क़िलों के चारों तरफ़ जलपूर्ण परिखाएँ दीखती हैं। सूर्यमण्डल के चारों ओर काले मण्डल दीखते हैं। सायं और प्रातः सूर्योदय और सूर्यास्त के समय स्यार बड़े भयङ्कर शब्द किया करते हैं। हे माधव! क्या यह चिन्ह कौरवों के पराजय का नहीं है? एक आँख वाले काने पक्षी भयानक रूप में आ कर, मल मूत्र विसर्जन करते हैं। काली गर्दन और लाल पैर वाले पक्षी, दुर्योधन के सम्मुख आ कर उड़ा करते हैं। यह भी एक बड़े भारी पराजय का चिन्ह

है। दुर्योधन ब्राह्मण तथा गुरुजनों से तथा भक्त सेवकों से भी अब द्वेष करने लगा है। इस कारण भी उसे पराजित होना चाहिये। पूर्व दिशा लाल रंग की, दक्षिण दिशा शस्त्रवर्णी श्याम रंग की, पश्चिम दिशा कच्चे वर्त्तन के वर्ण अर्थात् मटीले रंग की और उत्तर दिशा शङ्ख समान श्वेत वर्ण की दिखलायी देती है। दुर्योधन को सारी दिशाएँ प्रज्वलित सी दिखलायीं पड़तीं हैं और आने वाले भय की सूचना देतीं हैं। हे जनार्दन! मैंने एक बार भ्राताओं सहित धर्मराज को स्वप्न में सहस्त्र स्तम्भों वाले राजमहल पर चढ़ते देखा है। सब के सब पाण्डव श्वेत वस्त्रों से सजे सजाये श्वेत आसनों पर विराजमान मुझे दिखलायी देते हैं। हे पुरुषोत्तम! मैंने आपको भी स्वप्न में देखा है और वह इस दशा में देखा है कि, आप रुधिर-प्लावित भूमि को अपनी आँतों में लपेटे चले जा रहे हैं। धर्मराज को एक बार मैंने देखा कि, वे हड्डियों के ढेर पर बैठे हुए सोने के थाल में घी और खीर बड़ी प्रसन्नता के साथ उड़ा रहे हैं और यह भी देखा कि, वे इस पृथिवी को निगले चले जा रहे हैं। इससे भी यह मालूम होता है कि, धर्मराज आपसे ली हुई पृथिवी को अवश्य भोगेंगे। भीमसेन की भी ऐसी ही मूर्त्ति मैंने एक बार देखी है। वे पर्वत पर बैठे हुए पृथिवी को निगल रहे थे। इन सब का फल यही है कि, भीमसेन अवश्य इस महासंग्राम में कौरवों का सर्वनाश करेगा। हे केशव! मुझे तो यही प्रतीत होता कि, धार्मिक पक्ष का सदा विजय होता है। वीर अर्जुन तुम्हारे साथ श्वेत हाथी पर बैठे हुए राज्यश्री शोभित हो रहे थे। यह भी मैंने देखा है। हे कृष्ण! मुझे अब विश्वास हो गया कि, तुम संग्राम में अवश्य दुर्योधन आदि कौरवों का सर्वनाश करोगे। हे मधुसूदन! नकुल, सहदेव और वीर सात्यकि इनको भी मैंने श्वेतवस्त्र धारण किये हुए रत्नजटित केयूर और मणिमुक्ताओं की माला पहिने पालकी में सवार हो कर जाते देखा है इन तीनों के सिरों पर श्वेतछत्र और श्वेत पगड़ियाँ शोभित हो रहीं थीं।

अब ज़रा धृतराष्ट्र के सैनिकों और पुत्रों की भी दशा सुन लो।

हे जनार्दन ! अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा आदि अन्य राजा लोग भी लाल पगड़ी धारण किये मैंने देखे हैं। भीष्म और द्रोण दोनों महारथी मेरे और दुर्योधन के साथ ऊँटों वाले रथ पर बैठे हुए मुझे दिखलायी दिये। हम चारों का प्रस्थान दक्षिण दिशा की ओर था। इससे बस यही प्रतीत होता है कि, हम लोग शीघ्र ही यमधाम पहुँचेंगे। गाण्डीव धनुष की प्रचण्ड अग्नि ज्वाला शीघ्र ही सब राजाओं को भस्म कर डालेगी।

कर्ण की इन सब बातों को सुन कर, श्रीकृष्ण ने कहा—हे कर्ण ! यह सब बातें भी ठीक हैं; किन्तु इन सब से भी बढ़ कर संसार के संहार का प्रमाण यह है कि, तू हमारी बात को नहीं मानता। देखो कर्ण ! जब प्राणियों का विनाश-काल समीप आता है, तब अन्याय भी न्याय सा मालूम होता है। चाहे कैसा ही फिर प्रयत्न क्यों न किया जावे, वह भावी कभी भी हृदय से दूर नहीं होती।

कर्ण ने कहा—हे जनार्दन ! यदि हम लोग इस महासंग्राम के बाद जीवित रहे, तो फिर तुम्हारा दर्शन करेंगे अथवा अब हमारा और तुम्हारा सम्मेलन स्वर्ग ही में होगा।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! कर्ण ने यह कह कर, श्रीकृष्ण को छाती से चिपटा लिया और उनसे आज्ञा ले कर वह अपने सुन्दर सुवर्णरथ पर आ कर बैठ गया तथा अत्यन्त उदासीन मन से हमारे साथ लौट आया। श्रीकृष्ण भी सात्यकि के साथ अत्यन्त शीघ्रता से चले गये।

एक सौ चौवालीस का अध्याय

कर्ण और कुन्ती

वैशम्पायन जी बोले—इस प्रकार जब श्रीकृष्ण कौरवों को समझा बुझा कर भी कौरवों और पाण्डवों की सन्धि के विषय में हताश हो कर लौट

गये गये एक दिन महात्मा विदुर महारानी कुन्ती के पास आ कर बड़ी विकलता के साथ यह कहने लगे कि, हे महारानी! तुम यह तो जानती ही होवोगी कि, मैं कभी कौरव पाण्डवों के परस्पर युद्ध करने कराने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं सदा से चिल्ला कर यही कह रहा हूँ कि, देख दुर्योधन! पाण्डव तेरे भाई हैं और वे बड़े धर्मात्मा तथा तुझसे स्नेह रखने वाले हैं; किन्तु मैं करूँ तो क्या करूँ। वह तो मेरी बात सुनना ही नहीं चाहता। न मालूम उसकी बुद्धि ऐसी क्यों हो गयी है! धर्मराज युधिष्ठिर, चेदि, केकय, पाञ्चाल राजाओं से तथा भीम, नकुल, सहदेव और वीर अर्जुन द्वारा प्रबल सहायवान् हैं और आज कल उपप्लव्य नामक स्थान में ठहरे हुए हैं। वे पाँचों भाई पूर्ण सामर्थ्यवान् होते हुए भी दुर्बलों के समान धर्माचरण करना चाहते हैं। वे यह नहीं चाहते कि, हम अपने बन्धुओं से विरोध करें; परन्तु राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो कर भी पुत्रमोह में फँस कर, कुमार्ग के पथिक बन रहे हैं और वे शान्त होना नहीं चाहते। जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और शकुनि आदि कुमन्त्रियों के कारण पाण्डवों में परस्पर अवश्य ही कलह होगा। जो लोग इस अधार्मिक महाविरोध को धर्म समझ कर, बढ़ा रहे हैं; उन लोगों को इसका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। कौरवों के द्वारा किये गये इस अकारण धर्मोच्छेद को सुन कर, भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसे क्लेश न हो। श्रीकृष्ण का इस समय आगमन इसी लिये हुआ था कि, जैसे भी हो सके पाण्डवों और कौरवों में मेल हो जावे; किन्तु वे बेचारे भी निराश हो कर लौट गये। अतएव पाण्डव अब अवश्य संग्राम करने की तैयारियाँ करेंगे। हाय! कौरवों की इस अनीति से वीरों का संहार हो जावेगा। जब मैं इस ओर विचार करता हूँ तब मुझे बड़ी बेचैनी हो जाती है। रात दिन इसी चिन्ता में नींद नहीं आती।

कौरवों के हितैषी महात्मा विदुर की इस बात को सुन कर, महारानी कुन्ती लंबी श्वासें लेती हुई अपने मन में विचारने लगीं कि, आह! इस धनैश्वर्य को शतशः धिक्कार है कि, जिसके कारण

यह सब बन्धु-विनाश उपस्थित हो रहा है। पाञ्चाल और चेदि देश के राजा या पाण्डव मिल कर कौरवों का संहार करेंगे। इससे अधिक भला और क्या दुःख की बात हो सकती है ? संग्राम से कुटुम्ब का नाश हो जायगा, जब मैं इस बात को सोचती हूँ; तब मुझे बड़ा क्लेश होता है। इधर जब अपने अपमानित जीवन की ओर निहारती हूँ, तब पूर्वोक्त बातों का कुछ भी ध्यान नहीं आता। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदि महारथियों की ओर देख कर, मुझे और भी भय होता है ; किन्तु मुझे विश्वास है, द्रोणाचार्य कभी भी अपने शिष्य पर हार्दिक रोष से शस्त्र न चलावेंगे। पितामह भीष्म काफी स्नेह रखते हैं। अब रही कर्ण की बात सो वह तो बड़ा भारी दुराचारी और दुष्टप्रकृति का मनुष्य है। वह सदा से पाण्डवों का शत्रु बना रह कर, दुर्योधन का मित्र बना बैठा है। अतएव आज मैं कर्ण के पास जा कर गुप्तरीति से उसे समझाती हूँ और जैसे भी होगा; वैसे उसे पाण्डवों की तरफ झुकाऊँगी। उसे अभी अपने जन्म का भी हाल मालूम न होगा, आज वह सब भी उसे बता दूँगी। जब मैं राजा कुन्तिभोज के राजमहलों में रहती थी; तब दुर्वासा मुनि ने आ कर मुझे देवताओं के आवाहन का मन्त्र दे कर यह वरदान दिया था कि, तू सन्तान की कामना से जिस किसी भी देवता को बुलाना चाहेगी, बुला लेगी। जब मैं यह वरदान पा चुकी, तब मैंने बाल-सुलभ चपलता तथा नारी-स्वभाव से प्रेरित हो कर, मन्त्र के बलाबल तथा ब्राह्मण-वाक्य की परीक्षा करने के हेतु तरह तरह की चिन्ताएँ करना प्रारम्भ कीं। मुझे बड़ी उत्कण्ठा पैदा हो गयी। उस समय मुझे अनेक सखियाँ और दाइयाँ घेरे रहा करती थीं। इस कारण रह रह कर मेरे मन में यही विचार उठता था कि, मैं अपने इस दोष को कैसे छिपाऊँ और अपने पिता की प्रतिष्ठा को कैसे रखूँ ? वह कौन सा उपाय है, जिससे मैं निरपराधिनी रह कर, आत्म-सम्मान की पात्री बनूँ। अस्तु, इन सब विचारों को त्याग कर, मैं एकान्त स्थान में गयी और वहाँ जा कर, मैंने दुर्वासा मुनि को प्रणाम

किया तथा कौतूहल-वश सूर्यदेव का आवाहन करने लगी। सूर्यदेव आये और उनसे मेरे यह गर्भ रह गया। कन्यावस्था में भी मैंने इस गर्भ की बड़े प्रयत्न से रक्षा की थी। कर्ण भी इस बात को सुन कर अवश्य अपने भाई पाण्डवों का हित साधन करेगा।

इस प्रकार सोच विचार कर, कुन्ती भागीरथी के किनारे कर्ण से मिलने गयी। उस समय वीर कर्ण बड़े भक्तिभाव से गले तक गङ्गाजल में विलीन रह कर सूर्य की ओर मुँह किये जप कर रहा था। महारानी कुन्ती उसकी वेदध्वनि को सुन कर उसके पूजन की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगी। सुकुमारी महारानी कुन्ती धूप की तीव्रता से घबड़ा कर कर्ण के शरीर की छाया में खड़ी रही। महाबली कर्ण बराबर दो पहर तक उसी प्रकार जप करता रहा। जब उसकी पीठ पर धूप पहुँची, तब वह अपना पूजन समाप्त कर ज्योंही पीछे को फिरा त्योंही उसने अपने पीछे महारानी कुन्ती को खड़ा पाया और उसके चरणों में सिर नवा कर बोला।

एक सौ पैंतालीस का अध्याय

कुन्ती पर कटाक्ष

कर्ण ने कहा—मैं अधिरथसुत कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये, आपने यहाँ आने का क्यों कष्ट किया? मेरे योग्य क्या सेवा है?

कुन्ती ने कहा—बेटा! यह तू क्या कह रहा है? तू तो कुन्ती का पुत्र है। राधेय या अधिरथ का नहीं और न तू सूतकुल ही में पैदा हुआ है। तू मेरा कानीन ज्येष्ठ पुत्र है। कुन्तिभोज के भवन में तेरा जन्म हुआ था। अतएव तू राधा का पुत्र नहीं है; किन्तु मेरा ही पुत्र है। तुझे मैंने देवताओं से कुण्डल कवच आदि से सुशोभित पिता के घर प्राप्त किया था। वही तू अज्ञानवश अपने भाई पाण्डवों को छोड़ कर, दुष्ट कौरवों की

सेवा करता है। हे पुत्र ! यह तुझे नहीं सोहता। बेटा ! मनुष्यों का मुख्य धर्म यही है कि, वे अपने माता पिता को जैसे भी हो सके सदा प्रसन्न रखें। इस लिये पहिले जिस युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी को अर्जुन ने जीता था और बीच में नीच कौरवों ने जिसे छल कपट से छीन लिया है, उस राजश्री का उपभोग कर तुझे इन कौरवों का संहार करना चाहिये। आज यह दुष्ट कौरव, कर्ण और अर्जुन के अपूर्व सम्मेलन को देखें और तुझे प्रणाम करें। जैसे श्रीकृष्ण और बलराम एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं, वैसे ही अर्जुन और कर्ण भी आपस में प्रेम करें। बेटा ! जब तुम दोनों भाई मिल जावोगे, तब तुझे संसार में कोई भी काम असाध्य न रहेगा। हे पुत्र ! जैसे देवताओं से परिवेष्ठित महायज्ञ में ब्रह्मा की शोभा होती है ; वैसे ही जब तू पाण्डवों से मिलेगा, तब तेरी शोभा होगी। तू अपने सब गुणवान् वीर भाइयों में बड़ा और श्रेष्ठ है। तेरे मुँह से अपने लिये सूतपुत्र का शब्द सुन कर, मुझे बड़ा सन्ताप होता है। बेटा ! तू तो देवपुत्र है। तू अपने को सूतपुत्र क्यों बतलाता है ?

एक सौ छियालीस का अध्याय

कर्ण का रोष

इस प्रकार कर्ण को समझा कर, ज्यों ही कुन्ती चुप हुई; त्यों ही सूर्य-मण्डल से भी यही शब्द सुन पड़ा कि, हे कर्ण ! कुन्ती ने जो कुछ भी कहा है, बिल्कुल ठीक है। यदि तू इसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करेगा, तो तेरा सदा कल्याण होगा। इस प्रकार माता कुन्ती और पिता सूर्य की बातों से भी दृढ़प्रतिज्ञ वीर कर्ण की बुद्धि विचलित न हुई और वह कुन्ती से कहने लगा—हे क्षत्रियाणी ! आपने अभी जो कुछ भी मुझसे कहा है, उस पर मुझे विश्वास नहीं है। क्योंकि यदि मैं इस समय तेरी आज्ञा के अनुसार काम करने लगूँ, तो मेरी सद्गति में बाधा पड़ेगी। तूने मेरे साथ बड़ा भारी

अन्याय किया है। तेरे कारण मेरी जाति का नाश हो गया है, तूने मुझे पैदा होते ही उठा कर फेंक दिया। इसी कारण आज मुझे कोई नहीं जानता। मैं क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हो कर भी क्षात्र संस्कारों से हीन हूँ। इन सब बातों का एक मात्र तू ही कारण है। इस कारण संसार में तेरी बराबर मेरा कोई दूसरा शत्रु नहीं हो सकता। जब मेरे संस्कार होने का समय था: तब तो तू चुप बैठी रही और अब जब कि, मेरे संस्कारों का समय बीत गया: तब तू मुझे अपनाने के लिये आयी है। आज जब तेरा काम अटका है, तब तू मेरी माता बन कर, मुझे समझाने आयी है। इससे पहले कभी तूने मुझ पर प्रेम न किया। हाँ, यह बात निश्चय है कि, श्रीकृष्ण के साथी अर्जुन से सभी डरते हैं, किन्तु यदि अब मैं कौरवों को त्याग कर, पाण्डवों से जा मिलूँ, तो क्या मुझे संसार कायर न कहेगा? इससे पहिले तो पाण्डव मेरे कोई नहीं थे; किन्तु अब यदि मैं उन्हें भाई मान कर उनसे प्रेम करने लगूँ तो बतलाओ मुझे क्षत्रिय-संसार क्या कहेगा? कौरवों ने मेरा बड़ा आदर सत्कार किया तथा अनेक ऐश्वर्य सामग्रियाँ मुझे प्रदान कीं, फिर भला मैं उनके इस उपकार को अब कैसे भूल जाऊँ? जो कौरव देव-राज इन्द्र की तरह मेरा आदर और शत्रुओं से शत्रुता ठान कर, मेरी सेवा करते हैं; उन्हें मैं कैसे भूल जाऊँ? कौरवों ने केवल मुझीको इस संग्राम रूपी महासागर से पार लगाने वाली नौका समझ रखा है। वे मुझे अपना समझ कर, मुझ पर विजय की आशा बाँधे हुए हैं। भला बतलाओ, मैं उनकी आशाओं पर सहसा कैसे पानी फेर दूँ? कौरवों का तो यह निश्चय मरण-काल है ही। ऐसे समय मुझे भी अपने प्राणों की बलि दे कर, उनके अन्न का बदला चुकाना चाहिये। अपने पालन पोषण करने वालों का समय पड़ने पर अवश्य सहायक होना चाहिये। जो लोग ऐसा नहीं करते, वे महाअपराधी, राक्षस और कृतघ्न कहलाते हैं, उनके लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं और वे सदा दुःखी, दीन, मलीन और यशोविहीन रहा करते हैं। अतएव मैं कौरवों की भलाई के लिये तेरे पुत्रों के साथ अवश्य लड़ूँगा।

यह बात बिल्कुल निःस्सन्देह हैं, मैं सज्जनों की तरह क्रूरताहीन धर्म का परित्याग नहीं कर सकता और न तेरी ही इन स्वार्थपूर्ण बातों में आ सकता हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि, तेरा मेरे पास आना निष्फल न होगा। मैं तेरे पुत्रों के मारने की सामर्थ्य रखता हुआ भी, उन्हें नहीं मारूँगा। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीम में से, मैं किसी को भी नहीं मारूँगा। मैं तो केवल अर्जुन ही से संग्राम करूँगा। क्योंकि अर्जुन को मार कर मेरा और मुझे मार कर अर्जुन का यश होगा। तेरे हर तरह पाँच पुत्र रहेंगे। यदि अर्जुन मारा गया तो पाँचवाँ मैं रहूँगा और यदि मैं मारा गया तो पाँचवाँ अर्जुन रहेगा।

कर्ण की इन बातों को सुन कर काँपती हुई कुन्ती ने कर्ण को छाती से लगा कर कहा—बेटा! जैसा तू कहता है वही होगा। कौरवों का सर्वनाश होना ही है। तूने अपने चार भाइयों को अभय प्रदान किया है। इसका ध्यान रखना, परमेश्वर तेरा कल्याण करें। यह कह कर कुन्ती और कर्ण दोनों अपने अपने स्थानों को चले गये।

एक सौ सैंतालीस का अध्याय

भीष्म का इतिहास

इधर भगवान् वासुदेव जब हस्तिनापुर से लौट कर उपप्लव्य नामक पाण्डवों के निवासस्थान पर पहुँचे, तब उन्होंने पाण्डवों से कौरवों का सब समाचार कह सुनाया और बहुत देर तक सलाह करते रहे। वे प्रवास के परिश्रम से थके हुए थे, इस कारण विश्राम करने के लिये अपने विश्राम-भवन में चले गये। सायंकाल होने पर पाण्डवों ने अन्य विराट् आदि राजाओं को भी बिदा किया तथा स्वयं सन्ध्योपासन करने के लिये चले गये। नित्य नियमों से निवृत्त हो कर, पुनः पाण्डवों ने सम्मति लेने के लिये श्रीकृष्ण जी को बुलवाया। भगवान् के आने पर सब से पहिला सवाल

धर्मराज ने यह किया कि, हे प्रभो! आपने हस्तिनापुर जा कर, दुर्योधन से क्या कहा था?

वासुदेव ने कहा—हे धर्मराज! मैंने तो हस्तिनापुर पहुँच कर, दुर्योधन से न्यायसङ्गत, धर्मयुक्त और हितकारी बातें कही थीं, किन्तु उस दुष्टमति ने एक भी न मानी।

धर्मराज ने पूँछा—हे केशव! जिस समय दुर्योधन ने आपकी बातों को अस्वीकार किया; तब पितामह भीष्म क्या यों ही चुपचाप बैठे रहे? उन्होंने कुछ दुर्योधन से नहीं कहा? गान्धारी, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर आदि पूज्य बन्धुजन क्या उस समय वहाँ नहीं थे और यदि थे तो क्या वे सब के सब मौन ही बैठे रहे? हे केशव! कौरवसमाज में सम्मिलित होने वाली क्या सभी राजमण्डली उस समय गूंगी हो रही थी? हे प्रभो! महालोभी एवं नीच दुर्योधन की धृष्टता को दूर करने के जो कुछ भी उपाय हस्तिनापुर के लोगों ने किये हों, वे सब मुझे सुनाइये। यद्यपि आपने आते ही यह सब बातें मुझे सुनायी हैं; तथापि वे मेरे मन से इस समय उतर गयी हैं। इस कारण मैं आपसे पुनः पूछना चाहता हूँ कि यदि आपका समय व्यर्थ न जावे तो उन्हें फिर से दुहरा दीजिये। प्रभो! मुझे तो अब आपका ही सहारा है। आप ही हमारे नाथ, गुरु, बन्धु और रक्षक हैं।

वासुदेव ने कहा—हे धर्मराज! सुनो, कौरवसमाज में जा कर, मुझे जो कुछ भी कहना था, मैंने कहा; किन्तु मेरी बातें समाप्त होते ही दुर्योधन ने उन मेरे हितकारी उपदेशों की बड़ी ही हँसी उड़ायी। यह देख कर पितामह भीष्म जी बड़े अप्रसन्न हुए और दुर्योधन से कहने लगे—रे दुर्योधन! देख, हम जो कुछ भी कहते हैं वह तेरे और तेरे कुटुम्ब भर के कल्याण के लिये कहते हैं। हमारा इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। तुझे हम लोगों की सम्मति के अनुसार काम कर अपने कुटुम्ब का हित करना चाहिये। मेरे पिता राजा शन्तनु संसार में बड़े प्रसिद्ध राजा थे, उनका मैं ही अकेला एक पुत्र था। इस कारण उन्हें यह इच्छा हुई कि, मेरे एक

बलवान पुत्र और होता तो अच्छा था। क्योंकि विद्वान् लोग एक पुत्र के पिता को भी अपुत्रक ही समझते हैं। वे अपने वंश की रक्षा के लिये और कीर्त्ति के लिये निरन्तर चिन्ता करने लगे। जब मुझे यह बात मालूम हुई, तो मैंने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की और माता सत्यवती को स्वयं ला कर उनको सौंप दिया। मैं आज तक अपनी उस प्रतिज्ञा पर अटल हूँ। राज-पाट परित्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक अपने प्रतिज्ञानुसार मुझे जो कुछ मिलता है, उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ। ये सब बातें तुमसे भी छिपी नहीं हैं। उसी मेरी माता सत्यवती के गर्भ से विचित्रवीर्य नामक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ जो कुरुवंश की रक्षा करने वाला था। पिता जी के स्वर्ग चले जाने पर, मैंने अपने उस छोटे भाई विचित्रवीर्य को राजगद्दी दे दी और मैं स्वयं उसका सेवक बन कर रहा। जब वह विवाहयोग्य हुआ, तब मैंने राजाओं को जीत कर, उसके योग्य कन्या ला कर दी। जब परशुराम के साथ मेरा युद्ध हुआ, तब वह विचित्रवीर्य परशुराम के भय से पुरजन सहित भाग आया था। विवाह हो जाने के बाद विचित्रवीर्य भोग-विलास में फँस गया। इस कारण उसे यक्ष्मा हो गया और वह मर गया। उसकी मृत्यु के बाद देश में चारों ओर अराजकता छा गयी। दुर्भिक्ष पड़ने लगा। प्रजा भूखों मरने लगी, तब सारी की सारी प्रजा मेरे पास आयी और कहने लगी। हे राजन्! आज कल सारी प्रजा पर बड़ी आपत्ति आयी हुई है। प्रजा को कराल काल अपने विकराल गालों में दबाये लिये जा रहा है। अब आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूषिक, राजभय आदि छहों ईतियों से हम सब लोग बचे रहें। महाराज! आपकी प्रजा में अनेक आधिव्याधियाँ फैली हुई हैं। प्रजा निरन्तर नष्ट होती चली जा रही है। आप उसकी रक्षा करें। यही हमारी आपसे प्रार्थना है। हे दुर्योधन! प्रजा की इस करुणकथा को सुन कर भी, मैं विचलित नहीं हुआ और मैंने अपने सदाचार, प्रतिज्ञा आदि का सदा पूरा ध्यान रखा। इधर मेरी माता सत्यवती, आचार्य, पुरोहित, परिजन, पुरजन आदि सभी बड़े

आग्रह के साथ मेरे पीछे पड़ गये और राज्य स्वीकार कर लेने के लिये मुझे समझाने बुझाने लगे। तब मैंने भी उन सब के हाथ जोड़ कर अपने पिता की प्रतिष्ठा को बढ़ाते हुए कहा—मेरे प्यारे हितैषी बन्धुओं! मैं आप लोगों की आज्ञा तथा सम्मति के अनुसार अवश्य कार्य करता; किन्तु क्या करूँ विवश हूँ। अपने इस भरतकुल के हेतु ही, मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण कर, राजपाट बन्धु बान्धव आदि सभी का परित्याग कर दिया है। अतएव मैं अब इस राज्य के बोझे को अपने ऊपर लेना नहीं चाहता। अपनी माता सत्यवती के हाथ जोड़ कर मैंने उनसे कहा—यद्यपि मैं राजा शन्तनु का औरस पुत्र हूँ, तथापि मैं ऐसी प्रतिज्ञा के सूत्र में बँधा हुआ हूँ कि, जिसको तोड़ डालना कम से कम मेरे लिये तो कठिन ही है। हे राजन्! यह सब समझाने के बाद मैंने अपनी माँ से यह भी कह दिया कि, हे माता! मैंने यह प्रतिज्ञा आपके कारण ही की है। सारी प्रजा और माता को इस प्रकार समझा बुझा कर अपने छोटे भाई की रानियों से पुत्र प्राप्त करने की लालसा से, मैंने वेदव्यास जी से प्रार्थना की और उन्होंने विचित्रवीर्य की रानियों के उदर से तीन पुत्र उत्पन्न किये। उन तीनों पुत्रों में तुम्हारे पिता अँधे थे। इस कारण उन्हें राजसिंहासन नहीं मिला। अतः पाण्डु राजा बनाया गया। इस लिये उसके पुत्र पाण्डव आधे राज्य के अधिकारी हैं। तुम्हें चाहिये कि तुम बिना झगड़ा किये ही, उन्हें आधा राज्य दे दो। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मेरे जीवित रहते याद रखो, यदि तुम मेरी आज्ञा में चलोगे, तो तुम्हें कभी कोई कष्ट न होगा। इस लिये मेरा कहना मान कर अपने वंश और यश की रक्षा करो। मैं तुम्हें तथा पाण्डवों को दो नहीं समझता और न गान्धारी धृतराष्ट्र और महात्मा विदुर ही कुछ भेदभाव रखते हैं। देखो बेटा! अनुभवी वयो-वृद्ध मनुष्यों की सम्मति के अनुसार काम करने से तुम्हारा कल्याण होगा। इस लिये कहना मानो और पाण्डवों के हिस्से का आधा राज्य उन्हें दे दो।

एक सौ अड़तालीस का अध्याय

कौरव राजसभा में द्रोण की उक्ति

हे धर्मराज ! भीष्म जी जब इस तरह दुर्योधन को निज इतिहास वर्णन कर समझा चुके, तब द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—हे दुर्योधन ! जैसे राजा शन्तनु अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करने में सदा तत्पर रहते थे तथा जैसे आज पितामह भीष्म इस अपने कुल की रक्षा करते हैं, वैसे ही राजा पाण्डु भी अपने कुल के यश मान मर्यादा की रक्षा के लिये सदा तैयार रहते थे। तुम्हारे पिता अन्धे होने के कारण राज्य के अनधिकारी थे और महात्मा विदुर दासीपुत्र होने के कारण अनधिकारी थे। यह सब होते हुए भी उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र और विदुर को अपना राज्य सौंप दिया था। मनस्वी धृतराष्ट्र को अपना राज्य सौंप कर, राजा पाण्डु सपत्नीक वन को चले गये। महात्मा विदुर भी परम विनयी सेवक की तरह राजसिंहासन के समीप बैठ कर धृतराष्ट्र पर चँवर डुलाया करते थे। राजा पाण्डु भी अपने भाइयों को राज्यभार सौंप चुकने के बाद, बड़ी निश्चिन्तता के साथ विचरने लगे। प्रजा ने भी राजा पाण्डु ही की तरह धृतराष्ट्र की सेवा करनी आरम्भ कर दी। धनसंग्रह करने और नौकरों की देखभाल करने तथा दान देने के काम पर महात्मा विदुर नियुक्त थे। पितामह भीष्म सन्धि विग्रह तथा राजाओं को धन देने और लेने आदि कामों के निरीक्षण पर नियुक्त किये गये थे। महात्मा विदुर का अधिक समय धृतराष्ट्र की सेवा ही में बीतता था। हे दुर्योधन ! तू ऐसे भ्रातृभक्त और पितृभक्त राजर्षियों के निर्मल कुल में उत्पन्न हो कर नीच अकुलीन मनुष्यों की भाँति अपने भाई बान्धवों से विरोध कर रहा है। भला यह क्या कम शोक की बात है ? मैं धन के लालच से या और किसी कामना से ये सब बातें नहीं कह रहा हूँ, बल्कि तेरी कल्याणकामना ही से प्रेरित हो कर, कह रहा हूँ। मुझे तुझसे आजीविका की लालसा नहीं है। मेरे

विषय में तो केवल यही बात है कि, जहाँ भीष्म जी हैं वहाँ द्रोण अवश्य होगा। इस कारण पितामह भीष्म जो कुछ भी कहते हैं, तुम्हें वही करना चाहिये। हे शत्रुनाशन! पाण्डवों को आधा राज्य दे डालो। मैं तुम्हें और उन्हें दोनों ही को अपना शिष्य समझता हूँ। मुझे जितना प्रेम अश्वत्थामा से है उतना ही अर्जुन से भी है। बस, अब तुम्हें अपना भला बुरा स्वयं सोचना चाहिये और यह समझ कर कि, धार्मिक पक्ष का सदा विजय होता है, तुम्हें पाण्डवों से सन्धि कर लेनी चाहिये।

द्रोणाचार्य के चुप होते ही महात्मा विदुर ने कहा—हे पितामह भीष्म! अब जो कुछ मैं निवेदन कर रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो। आपने पहिले प्रनष्ट हुए कौरवों के यश को पुनः जीवित किया था। जब इस बात का मुझे ध्यान आता है, तब मेरा हृदय गद्गद हो जाता है; किन्तु आप सदा उस महान् कार्य की उपेक्षा ही किया करते हैं। मेरी सम्मति में अपने कुल का सर्वनाश करने की इच्छा करने वाले इस दुर्योधन का अब इस वंश के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आपको इस अनार्य, लोभी, कृतघ्नी, कुलाङ्गार, दुर्योधन की एक भी बात अब नहीं माननी चाहिये। यह दुर्बुद्धि, धर्मार्थ का विवेक न रखने वाला अपने पूज्य पिता की भी तो आज्ञा का पालन नहीं करता। अतः एकमात्र इसी कारण से समस्त कुल का सर्वनाश हो जावेगा। अब आपको वही उपाय करना चाहिये जिससे कौरव नष्ट न हों। आपने मुझे और धृतराष्ट्र को तो चित्र सा बना कर एक स्थान पर टाँग दिया है। हे पितामह! क्या आप प्रजापति के समान हमें ऊँचा चढ़ा कर, अब हमारा नाश करने के लिये कटिबद्ध हो रहे हैं। जैसे ब्रह्मा सृष्टि रच कर उसका संहार कर देते हैं, वैसे ही आप भी हमें नष्ट करना चाहते हैं। कहिये न, यही बात है न, या कुछ और है? आप इस सर्वनाश की उपेक्षा कर रहे हैं। इससे मालूम होता है कि, निश्चय कौरवों का सर्वनाश समीप है। इस कारण आपकी भी बुद्धि विपरीत हो गयी है। अब आप मेरे और धृतराष्ट्र के साथ वन को चलिये अन्यथा इस

दुर्मति दुर्योधन को बाँध कर राज्य की रक्षा कीजिये। हाय! मुझे तो अब किसी ओर भी शान्ति नहीं मिलती। चारों ओर प्रलयकारी दृश्य ही प्रतीत होता है। महात्मा विदुर शोक से उद्विग्न हो गये और आगे कुछ भी न कह सके।

इसके बाद महारानी गान्धारी ने कुल के सर्वनाश से भयभीत हो कर, सब राजाओं के सम्मुख और नीच दुर्योधन के सामने यह कहा ऐ सभासदो! आप ध्यानपूर्वक सुनिये। मैं इस नीच कुलाङ्गार दुर्योधन के मन्त्रियों की और दुर्योधन की सारी अक्षम्य कुचेष्टाएँ सुनाती हूँ; वह कौरवों का राज्य सब कौरवों के उपभोग में सदा से आता रहा है। किन्तु आज यह अन्यायी दुर्योधन अपनी क्रूरमति से इस सारे राज्य का नाश कर डालेगा। इस समय प्रजा का शासन करने वाले बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और महात्मा विदुर हैं। तू इनका अपमान कर के किस प्रकार अपने स्वार्थ और महानीच प्रवृत्ति को पूरा करने का साहस कर रहा है। तेरा तो कोई अधिकार ही नहीं है; किन्तु जो राजा धृतराष्ट्र और महात्मा विदुर अधिकारी हैं, वे भी तो पितामह भीष्म के सम्मुख पराधीन हैं। पितामह भीष्म पूर्ण धर्मात्मा हैं। अतएव वे राज्य की लालसा न रखते हुए अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं। यह राज्य राजा पाण्डु का है। अतएव इस पर सिवाय पाण्डवों के और किसी का अधिकार ही नहीं हो सकता। यदि कोई इस राज्य के लेने की इच्छा कर सकता है, तो वे पाण्डव ही हैं और उन्हींको मिलना चाहिये। इस कारण सत्य-प्रतिज्ञ पितामह भीष्म जी के आज्ञानुसार हम सब को चलना चाहिये और पाण्डवों का राज्य पाण्डवों को दे देना चाहिये। महात्मा विदुर और भीष्म पितामह के अनुसार चलने में कोई आशङ्का की बात नहीं हो सकती। इस कारण उचित यही है कि, धर्मराज युधिष्ठिर अपने न्यायपूर्वक पाये हुए राज्य का शासन करें और इस सर्व-संहारी संग्राम की इतिश्री ही बनी रहे, श्रीगणेश न होने पावे।

एक सौ उनचास का अध्याय

कुरुवंश की कथा

श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—हे राजन्! फिर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—दुर्योधन! अब सावधान हो कर मेरी बातें सुन। यदि तू कुछ भी मुझमें भक्ति रखता है, तो जैसा मैं कहता हूँ, वैसा कर। इसीमें तेरी भलाई होगी। प्राचीन समय के सोम प्रजापति से छठाँ पुरुष नहुष का पुत्र ययाति हुआ था। इस ययाति के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सब से बड़ा यदु और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुआ पुरु सब से छोटा था। बड़ा पुत्र यदु देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और शुक्राचार्य का दौहित्र (धेवता) था। वह बड़ा घमंडी और बलवान् था। अपने माता, पिता और बान्धवों का सदा अपमान किया करता था। महाबली यदु ने कुछ ही दिनों में सब राजाओं को परास्त कर स्वाधीन कर लिया और हस्तिनापुर में रहने लगा। राजा ययाति इन्हीं अनेक कारणों से यदु से अप्रसन्न रहता था; किन्तु यह नीच पुत्र कभी अपने पिता की अप्रसन्नता पर पश्चात्ताप नहीं करता था। एक दिन राजा ययाति ने उसे राजसिंहासन से उतार दिया और उसकी सहायता करने वाले भाइयों को भी शाप दे दिया और अपने आज्ञाकारी छोटे पुत्र पुरु को राजसिंहासन पर बैठा दिया। देखो, राज्य का अधिकारी बड़ा पुत्र यदि अभिमानी होता है, तो अनधिकारी छोटे पुत्र को भी राज्य दे दिया जाता है। इसी प्रकार प्रपितामह प्रतीप भी बड़े भारी धर्मनिष्ठ और बलवान् राजा थे। उनके भी देवापी, बाल्हीक और शान्तनु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। देवापी बड़ा प्रतापी और राजा प्रजा के मनों को मोहित करने वाला पितृसेवक और धर्मनिष्ठ था; किन्तु एक बड़ा दोष उसमें यह था कि, उसके कोढ़ था। वैसे वह बड़ा ही पवित्र, सदाचारी, ब्रह्मण्य और दृढ़ प्रतिज्ञा वाला था। यों तो इन तीनों भाइयों में अपूर्व प्रेम था; किन्तु बाल्हीक और शान्तनु इन दो भाइयों में कुछ स्नेह की मात्रा

अधिक थी। कुछ काल बाद राजा प्रतीप वृद्ध हुए। उन्होंने चाहा कि, अब मैं पुत्र को राज्य दे कर, तपोवन में जा तपश्चर्या करूँ। बड़े पुत्र देवापी के राज्याभिषेक के लिये सब तैयारियाँ हो चुकी थीं; किन्तु विद्वान् ब्राह्मणों तथा प्रजा की यह इच्छा नहीं थी कि, देवापी का राज्याभिषेक किया जावे। अन्त में राजा प्रतीप को बड़ा क्लेश हुआ। वे पुत्र के लिये सदा मन में खिन्न रहे। देखो, देवापी सर्व-स्वामि-गुण-सम्पन्न होता हुआ भी केवल एक कुष्ठ के कारण ही राज्य का अनधिकारी ठहराया गया। देवता लोग भी हीनाङ्ग राजा से घृणा करते हैं। यही कारण था कि, उन विद्वान् ब्राह्मणों ने महाराज प्रतीप को ऐसा करने से रोका था। (देवापी तपश्चरण करने के लिये तपोवन में और बाल्हीक भी समृद्धिशाली राज्य को त्याग कर अपने मामा के पास चला गया। इस प्रकार अब केवल अपने पिता के आज्ञानुसार छोटे पुत्र शान्तनु राज्य का शासन करने लगे) हे दुर्योधन! इसी प्रकार नेत्रहीनता के कारण अनधिकारी होते हुए भी राजा पाण्डु ने मेरे सम्मानार्थ सारे का सारा राज्य-शासन मुझे प्रदान कर दिया था। राजा पाण्डु मुझसे छोटे थे; किन्तु राज्य के अनधिकारी नहीं थे; बल्कि अनधिकारी मैं था। यह उनका राज्य है, अतएव उनके पुत्र पाण्डवों ही को मिलना चाहिये। जब मेरा ही अधिकार नहीं, तब भला तेरा अधिकार कैसे हो जावेगा? न तू राजा है और न राज्य पाने का अधिकारी राजपुत्र ही है। फिर क्यों तू यह व्यर्थ का राज्यलोभ अपने मन में रखता है? धर्मराज इसके पाने का अधिकारी है। इस कारण उसे यह राज्य मिलना चाहिये। वही इस कौरवकुल का रक्षक, शासक और पोषक है। अप्रमाद, क्षमा, प्रतिष्ठा, तितिक्षा, दम, सरलता आदि सब राजाओं के गुण धर्मराज युधिष्ठिर में मौजूद हैं। रे दुर्योधन! तू लोभी नीच और पापबुद्धि रखने हारा, कौरवकुलाङ्गार है, जो व्यर्थ दूसरों के भाग को लेने की इच्छा करता है। भला तू कैसे दूसरों के राज्य को छीन सकता है? देख दुर्योधन, यदि तू अपने बन्धुओं सहित कुछ दिन और सुख से जीना चाहता है, तो बस अब शीघ्र

ही पाण्डवों से सन्धि कर ले और उनका आधा राज्य उनको समर्पण कर दे। व्यर्थ के मोह में फँस कर सर्वनाश का श्रीगणेश न कर।

एक सौ पचास का अध्याय

श्रीकृष्ण कथित संदेश का मर्म

हे धर्मराज युधिष्ठिर! इस प्रकार प्रायः सभी हितैषी एवं पूज्य बन्धुओं ने दुष्ट दुर्योधन को समझाया; किन्तु उसने किसी की एक न मानी। प्रत्युत वह क्रोध से लाल ताता हो कर तथा अपने नीच मरणोन्मुख मन्त्रियों को साथ ले कर सभास्थान से बाहर चला गया। उसने राजभवन में जा कर सब राजाओं से कहा—आज पुष्य नक्षत्र है। इस कारण आप सब लोग युद्ध का श्रीगणेश करने के लिये भीष्म जी को अपना सेनापति बना कर, कुरुक्षेत्र में चले जाइये। दुर्योधन के आज्ञानुसार आज उसकी सेनाएँ पितामह भीष्म को सेनापति बना कर कुरुक्षेत्र में गयी हैं। कौरवों की एकादश अक्षौहिणी सेना के नायक तालध्वज भीष्म पितामह हैं। अब आप जो उचित समझें करें। मुझसे जो कुछ कौरवसभा में बातचीत हुई थी, वह मैंने आपको सुनायी। मैंने सब से पहिले तो साम का ही प्रयोग कर आपस में दोनों पक्षों को मिलाने का प्रयत्न किया था; किन्तु सब व्यर्थ हो गया। तदनन्तर मैंने कर्ण से भेद नीति का प्रारम्भ किया और चाहा कि, कर्ण को उनकी ओर से तोड़ लूँ; किन्तु वह भी न हो सका। फिर और राजाओं के प्रति भेदनीति का प्रयोग किया। अन्त में सब ही में असफलता रही। मैंने आपके सब अमानुषिक कर्मों का वर्णन किया और राजाओं को फोड़ कर आपकी ओर मिलाना चाहा, किन्तु होनहार बलवान होने के कारण सब प्रयत्न विफल हुए। दान का प्रयोग भी मैंने दुर्योधन को इस प्रकार समझाते हुए किया था कि, देखो दुर्योधन! समस्त पाण्डव पराक्रमी हो कर भी, मान एवं प्रभुता त्याग, तुम्हीं को राज्य दे कर,

धृतराष्ट्र, विदुर और भीम के अधीन हो जाँयगे और तुम्हारी सेवा करेंगे। इस लिये इन पूज्य हितैषी बन्धुओं ने जो तुमसे कहा है, उसीके अनुसार काम करो। तुम सम्पूर्ण पृथिवी का शासन भले ही करो; किन्तु पाण्डवों को केवल पाँच ग्राम दे दो। तुम्हारे पिता का धर्म है कि, वे पाण्डवों का भरण पोषण करें। यह सब कुछ समझाने बुझाने पर भी उसने हाँ नहीं की। अतएव अब उस पापी को अवश्य दण्ड मिलना चाहिये। वह अब साम, दान और भेद का अधिकारी नहीं रहा। हे राजन्! मरणोन्मुख राजे कुरुक्षेत्र की ओर विदा हो चुके हैं। कौरव बिना युद्ध के राज्य नहीं देंगे। उनका मरणकाल अब समीप आ पहुँचा है। अतः अब आप भी अवश्य तैयारियाँ कीजिये।

[सैन्यनिर्याण पर्व]

एक सौ इक्यावन का अध्याय

पाण्डवों के सेनापति

वैशम्पायन मुनि ने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र की बातें सुन कर, धर्मराज ने अपने भाइयों से कहा। कौरवों की सारी बातें श्रीकृष्ण जी से आप लोगों ने अभी सुन ही लीं? अब आप लोगों को अपनी सेनाओं के विभाग कर डालने चाहिये। वह जो सात अक्षौहिणी सेना है, इसके सेनापतियों के नाम भी मैं तुम्हें सुनाये देता हूँ। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान तथा पराक्रमी भीम। ये सैन्य-विधान-कुशल सात वीर, अपने प्राण रहते कभी युद्ध से विमुख न होंगे। ये सब सेनापति धर्मज्ञ, नीति-वेत्ता, विद्वान् लज्जाशील और शूरवीर हैं। ये बाण-युद्ध-प्रवीण, सब अस्त्रों शस्त्रों का प्रयोग जानने वाले हैं। किन्तु महासंग्राम में पितामह भीष्म की भयङ्कर बाणवर्षा का सहन करने वाला कौन पुरुष होगा; यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे उस महापुरुष का नाम

बतला दो, जिसमें भीष्म पितामह के सम्मुख सेनापति बन कर जाने की सामर्थ्य हो।

सहदेव ने कहा—हे राजन्! मेरी सम्मति तो यह है कि, मत्स्येश्वर महाराज विराट के सेनापति बनाया जावे। क्योंकि ये महाबली और हमारी हितकामना करने वाले और हमारे बन्धुओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। ये हमारे दुःख को अपना दुःख समझते हैं। हम लोग इनके आश्रय में रहते हुए ही राज्य प्राप्त करने का उद्योग कर रहे हैं। ये धनुर्विद्या-विशारद एवं युद्ध में कुशल हैं। ये ही भीष्म पितामह आदि बली महारथियों के आक्रमण को सह सकेंगे।

इसके बाद सहदेव के भाई नकुल ने कहा—विद्या, वय, धैर्य और कुल आदि अनेक कारणों से मत्स्यपति विराट हमारे सेनापति बनने के योग्य हैं। ये महापराक्रमी, विद्वान् और अस्त्र-विद्या-विशारद हैं। ये सत्यप्रतिज्ञ हैं। इन्होंने भरद्वाज ऋषि से अस्त्रविद्या सीखी है। इनको हरएक कोई दबा ले यह सम्भव नहीं है। भीष्म पितामह आदि से तो इनकी पहिले ही से बड़ी भारी अनबन चली आ रही है। ये हमारे पूर्ण हितैषी बन्धु हैं और हमारी रक्षा के लिये प्राणों का भी बलिदान कर सकते हैं। द्रोणाचार्य इनके मित्र हैं। अतएव जब भीष्म सहित गुरु द्रोण इनके सम्मुख आवेंगे, तब वे निश्चय ही इनसे पराजित हो कर जावेंगे।

इस प्रकार नकुल सहदेव की सम्मति के सुन कर, इन्द्र समान पराक्रमी वीर अर्जुन बोला—जो यह निरन्तर तपश्चरण और ऋषियों की आराधना कर के अग्निवर्ण महाबली एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ है; जो धनुष, कवच और खड्ग आदि अनेक शस्त्रास्त्रों से सज्जित हो कर मेघ के समान गम्भीर घोष करता हुआ दिव्याश्व युक्त रथ में विराजमान है और जिसकी मूर्त्ति, बाहु, वक्षःस्थल, स्कन्ध और पराक्रम सिंह के समान हैं; जो महाबली, परम सुन्दर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और वीर हैं; सो यह धृष्टद्युम्न ही मेरी सम्मति में भीष्म के विषपूर्ण सर्पों के समान भयङ्कर और साक्षात् कालाग्नि सदृश बाणों को सहन कर सकता है। हे राजन्! मैं इस महाबली के सिवाय किसी को भी

भीष्म के आक्रमणों को सहन कर सकने वाला नहीं समझता। इस कारण मैं तो इसी महाबली को सेनापति बनाने के योग्य समझता हूँ।

भीम ने कहा—हे राजन्! सिद्ध तथा ऋषियों का कहना है कि, शिखण्डी ने केवल भीष्म को मारने के लिये जन्म लिया है। शत्रुओं पर शस्त्र वर्षाते समय वह महारथी साक्षात् परशुराम सा प्रतीत होता है। संग्राम में दिव्य रथ पर विराजमान और शस्त्रसज्जित शिखण्डी को हराने वाला मुझे तो कोई दीखता नहीं। द्वन्द्व युद्ध में भी भीष्म पर विजय प्राप्त करने वाला एकमात्र शिखण्डी ही है। इस कारण मैं तो इसीको सेनापति बनाने की सम्मति देता हूँ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—देखो, पूर्ण पुरुषोत्तमावतार भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण जी सब के सारासार, बलाबल तथा गूढ़ाशय को जानते हैं। अतः ये जिसे बतलावेंगे, उसीको मैं अपना सेनापति बनाऊँगा। चाहे वह शस्त्रास्त्र-विद्या जानता हो या न जानता हो, बली हो या न हो, कायर हो चाहे वीर हो; किन्तु सेनापति वही बनेगा, जिसे वासुदेव बतलावेंगे। हमारे जय पराजय के एकमात्र कारण श्रीकृष्ण ही हैं। हमारा धन, जन, ऐश्वर्य और सर्वस्व भी इन्हींके अधीन है। धाता विधाता जो कुछ भी समझो ये ही हैं। इनसे विमुख हो कर, हम लोगों को सिद्धि की आशा छोड़ देनी चाहिये। यह समय रात्रि का है। यदि केशव सेनापति का नाम बतादें, तो हम रात में माङ्गलिक मंत्रों द्वारा उसका अभिषेक कर लेते और प्रातः-काल स्वस्तिवाचन पाठ करा के, उसे अनेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित कर, रण-भूमि की ओर भेज देते।

धर्मराज युधिष्ठिर की इन बातों को सुन कर, महात्मा श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे महाराज! पहिले जितने नाम आपने गिनाये, वे सब मेरी सम्मति में सेना-पति होने के योग्य हैं। ये सभी लोग बड़े पराक्रमी हैं। यदि यह पूर्णतया अपनी वीरता दिखलाना चाहें, तो इनके सम्मुख देवराज इन्द्र भी नहीं ठहर सकते। फिर इन पापी कौरवों की तो गिनती ही क्या है? हे राजन्! मैंने तो

इस महायुद्ध को रोकने का बड़ा भारी प्रयत्न किया था; किन्तु क्या किया जावे। मैंने तो उद्योग द्वारा अपने धर्मऋण का परिशोध कर लिया तथा दोष देने वालों का मैं निन्दापात्र भी नहीं रहा। धृतराष्ट्र पुत्र बड़ा भारी अज्ञानी है, वह यह समझता है कि, मैं बड़ा भारी अस्त्र-विद्या-विशारद हूँ। इस लिये उस दुष्ट घमंडी को झुकाने के लिये मुझे बड़ी सावधानी के साथ तैयारी करनी चाहिये। महाबली भीम, पराक्रमी अर्जुन और क्रुद्ध नकुल, सहदेव तथा युयुधान सहित धृष्टद्युम्न को देख कर, कौरव रण में खड़े न रह सकेंगे। राजा विराट, द्रुपद और अभिमन्यु सहित द्रौपदी के पाँचों पुत्र निश्चय संग्राम में कौरवों की सेना का संहार करेंगे। हमारी बलशालिनी सेना के भी शस्त्र-वर्षण को कोई माई का लाल सह नहीं सकता! यह सात अक्षौहिणी सेना ही ग्यारह अक्षौहिणी सेना पर विजय प्राप्त करेगी। मेरी सम्मति में सेनापति धृष्टद्युम्न ही को बनाना चाहिये। भगवान् के मुँह से यह शब्द निकलते ही समस्त राजमण्डली प्रसन्न हो गयी। बड़ी शीघ्रता के साथ युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। चारों ओर से हाथियों की चिंघारें और घोड़ों की हिनहिनाहट सुनायी देने लगी! शङ्ख, दुन्दुभियाँ आदि मारू बाजे बजाये गये। सग्रामभूमि की यात्रा की तैयारी करने की हड़बड़ी में कोई किसी को पुकार रहा था, कोई कोई कवच पहिन रहा था तो कोई अस्त्र शस्त्र धारण कर रहा था। तात्पर्य यह है कि, सेना का उस समय का हर्ष अत्यन्त मङ्गलजनक था। उस समय पाण्डवों की सेना का दृश्य ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई क्षुब्ध महासागर उमड़ा चला आ रहा हो। पाण्डवों की सेना के आगे महाबली भीम, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदी के पुत्र, द्रुपदपुत्र, धृष्टद्युम्न सब महारथी चले जा रहे थे। जैसे अमावस और पूर्णिमा के दिन समुद्र-गर्जन हुआ करता है, वैसे ही युद्धार्थ प्रस्थान करने वाले योद्धाओं की गर्जना स्वर्ग तक पहुँच रही थी। दुर्धर्ष कवचधारिणी सेना बड़ी प्रसन्नता के साथ चली जा रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर बाजार-हाट से भोजन सामग्री, तथा अन्यान्य उपयोगी सामान

एकत्र कर रहे थे। अनेक अस्त्र शस्त्र, यन्त्र तथा वैद्य चिकित्सक भी साथ में जा रहे थे। धर्मराज को पहुँचाने के हेतु द्रौपदी भी आयी थी; किन्तु वह थोड़ी दूर तक पहुँचा कर उपप्लव्य स्थान को लौट गयी। अपने योग्य और रक्षणीय स्थानों की भली भाँति रक्षा कर, पाण्डव लोग विद्वान् ब्राह्मणों और योग्य राजसैनिकों की रक्षा करते हुए, दिव्य रथों में सवार हो कर विशाल सैनिक दल के साथ कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हो गये। केकय के पाँचों राजकुमार, धृष्टकेतु, काशिराजपुत्र अभिभू, श्रेणिमान्, वसुदान, अपराजित शिखण्डी आदि महापराक्रमी राजमण्डल शस्त्र अस्त्र कवच आदि से सज कर धर्मराज को चारों ओर से घेर उनका अनुचर बन कर चलने लगा। सेना के पिछले भाग में राजा विराट, याज्ञसेन, धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज आदि, चालीस हज़ार रथ, दो लाख घोड़े, साठ हज़ार हाथी और दो लक्ष पैदलों को लिये हुए, चले जा रहे थे। सात्यकि, अनाधृष्टि, चेकितान और चेदीश्वर, अर्जुन और श्रीकृष्ण को घेर कर, जा रहे थे। वीर गर्जना करते हुए पाण्डव योद्धा कुरुक्षेत्र की भूमि में पहुँच गये। श्रीकृष्ण अर्जुन तथा अन्य पाण्डवों के योद्धाओं ने शङ्खध्वनि करना प्रारम्भ किया। भयङ्कर वज्रगर्जन के समान पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि सुन कर, सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गये। इस प्रकार शङ्खों दुन्दुभियों की ध्वनि से मिल कर महान् शब्द हुआ और वीरों का सिंहनाद आकाश, पाताल, दिशाओं और विदिशाओं को प्रतिध्वनित करने लगा।

एक सौ बावन का अध्याय

पाण्डवों की शिविर-रचना

धर्मराज युधिष्ठिर ने शस्यश्यामला समतल कुरुक्षेत्र की भूमि में अपना शिविर बनाया। उन्होंने तीर्थ, आश्रम, देवमन्दिर और श्मशान आदि स्थानों को बचा दिया था। मार्ग के परिश्रम से सब लोग तथा वाहन थके हुए

थे। अतः कुछ विश्राम कर चुकने के बाद, राजा युधिष्ठिर अनेक राजाओं के साथ वहाँ भ्रमण करने लगे। इधर श्रीकृष्ण और अर्जुन दुर्योधन के शतशः रक्षकों को भगाते हुए भ्रमण करने लगे। महारथी धृष्टद्युम्न, सात्यकि और युयुधान छावनी डालने के लिये भूमि नापने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण जी ने कुरुक्षेत्र में पुण्य पवित्र-सलिला हिरण्यवती नामक नदी के समीप अपनी रक्षा के लिये एक परिखा खुदवा कर थाना बनवा दिया। जैसे शिविर श्रीकृष्ण जी ने पाण्डवों का बनवाया था, वैसा ही शिविर अन्य राजाओं का भी बनवाया। इन सब राजाओं के महामूल्यवान् भोजनादि सामग्रियों से भरे हुए शिविर ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे, मानों भूमण्डल पर विमान खड़े हों। प्रत्येक छावनी में योग्य वैद्य और अच्छे अच्छे शिल्पकार सब सामग्रियों सहित वैतनिक रूप से नियुक्त कर दिये गये थे। धर्मराज ने छावनियों में कवच, अन्यान्य शस्त्र, भाथे, तोमर, फरसे, ऋष्टि, यन्त्र, धनुष, प्रत्यंचा, शहद, घी. भूसा, अग्नि, लाख, घास आदि सब सामान पर्याप्त रूप से भरवा दिया था। लोहे के सकण्टक कवचों को धारण करने वाले और हज़ारों वीरों के सामने भी युद्ध से न हटने वाले हाथियों का समूह पर्वतों के समान प्रतीत होता था। हे राजन्! इस प्रकार पाण्डवों का कुरुक्षेत्र में आना सुन कर, उनका स्नेही मित्रमण्डल उनसे मिलने के लिये आने लगा। यज्ञों में सोमरस का पान करने वाले ब्रह्मचारी राजा लोग पाण्डवों की विजयकामना करते हुए पाण्डवों की छावनी में आने लगे।

एक सौ तिरपन का अध्याय

कौरवों द्वारा निज सैन्य की सम्हाल

जनमेजय ने पूछा—हे वैशम्पायन! श्रीकृष्ण की रक्षा में अपनी सेना सहित लड़ने की इच्छा से कुरुक्षेत्र में आये हुए धर्मराज को सुन कर, दुर्योधन ने क्या किया? जैसे इन्द्रदेव की आदित्य आदि रक्षा करते हैं; वैसे

वृष्णिवंशी राजाओं तथा अन्य राजाओं से परिवेष्टित धर्मराज को देख कर कौरवदल में जैसी घबराहट हुई, वह मैं सब आपसे कहता हूँ, सुनिये। जब हस्तिनापुर से श्रीकृष्ण जी उपप्लव्य नामक पाण्डवों के निवास-स्थान पर पहुँच गये, तब दुर्योधन ने दुःशासन और शकुनि को बुला कर कहा—देखो, श्रीकृष्ण सन्धि कराने के लिये ही यहाँ आये थे, सो उनकी दाल तो यहाँ गली नहीं। इस कारण अवश्य वे क्रुद्ध हो कर संग्राम के लिये पाण्डवों को उभाड़ेंगे। श्रीकृष्ण यह चाहते ही हैं कि, मेरा और पाण्डवों का संग्राम हो। भीम अर्जुन दोनों ही उनके कहने में हैं। धर्मराज युधिष्ठिर प्रायः भीमसेन के अनुकूल रहा करते हैं तथा उनका मैंने द्यूतसभा में अपमान भी खूब किया था। विराट और द्रुपद से भी मेरा पूरा पूरा वैर है। वे दोनों भी श्रीकृष्ण के अनुचर हैं और पाण्डवों के सेनापति हैं। इस लिये यह बड़ा भयङ्कर संग्राम होगा। अब आप लोगों को प्रमादहीन होकर सावधानी के साथ संग्राम की तैयारियाँ करनी चाहिये। कुरुक्षेत्र की भूमि में बड़े बड़े ऐसे शिविर बनाइये जिन्हें शत्रु लोग नष्ट न कर सकें। शिविर ऐसे स्थानों पर होने चाहिये जहाँ पर जल और इंधन सहज में मिल सके। मार्ग ऐसे दुर्गम बनाओ जिनसे रसद बराबर आती जाती रहे और शत्रु उसे रोक न सकें। उन सब शिविरों में अस्त्र, शस्त्र, ध्वजा, पताका शोभित हों और नगर से बाहर समभूमि पर मार्ग बनाओ। सब को घोषणा दे दो कि, कल शत्रुओं पर चढ़ाई की जावेगी।

बस, राजा दुर्योधन की आज्ञा से शिल्पियों ने बड़ी शीघ्रता से शिविर-रचना कर दी और उनमें सब सामग्रियों को भरवा दिया। क्रोधी राजाओं ने भी राजा दुर्योधन की युद्ध-घोषणा सुन कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन सब ने चन्दन, केयूर आदि से सुशोभित अपने भुजाओं को देखना भालना शुरू किया तथा पगड़ियाँ बाँध वे युद्ध के साज से सुसज्जित होने लगे। वे अपने अपने आसनों से उठ कर कोई हाथी, कोई घोड़े और कोई अपने रथों को सजाने लगे। वे अपने योग्य कवचों, अस्त्रों और शस्त्रों का संग्रह करने लगे। सोने के

समान चमकने वाले वस्त्र पैदल सैनिकों ने धारण कर लिये। हे राजन्! प्रसन्न मनुष्यों से परिवेष्टित उस समय राजा दुर्योधन का वह नगर ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई बड़ा भारी उत्सव हो रहा हो। जनता जिसमें भयङ्कर भँवरों की तरह प्रतीत होती हैं और रथ हाथी घोड़े जिसके मगर मच्छ हैं, शङ्खों दुन्दुभियों की गर्जना मानों उसकी गर्जना है और धन रत्न का कोष रूपी रत्नाकर जिसमें निर्मल शस्त्रफेन समान प्रतीत होते हैं, विचित्र वस्त्र और कवचों की तरङ्गों वाला और बाज़ार रूपी महाकुण्डों से पूर्ण वह कौरव महासागर वीर योद्धागणरूपी चन्द्रोदय के कारण क्षुब्ध सा हो रहा था।

एक सौ चौवन का अध्याय

श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन की बातचीत

धर्मराज युधिष्ठिर को रह रह कर दुर्योधन की वे ही बातें, जो श्रीकृष्ण जी ने उन्हें सुनायी थीं, याद आने लगीं और वे वासुदेव से कहने लगे—महाराज! मेरी समझ में यह नहीं आता कि, मूर्ख दुर्योधन ने ऐसा क्यों कहा? हे माधव! अब हमें आप कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि, जिससे हम लोग अपने धर्म से भ्रष्ट न हों। हे प्रभो! आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और मेरे भाइयों के आशय को भी समझ चुके हैं। विदुर भीष्म तथा महारानी कुन्ती का भी विचार आपसे छिपा नहीं है। धृतराष्ट्र के विचार आपको मालूम हैं। इस लिये आप हमें उचित उपदेश और सम्मति प्रदान कीजिये कि, हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है?

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन्! हमने कौरवों को बहुत कुछ समझाया बुझाया; किन्तु उस नीच दुर्योधन ने एक बात भी न मानी। भीष्म विदुर आदि योग्य मनुष्यों की भी सत् शिक्षाओं का उसने उल्लङ्घन ही किया। वह दुर्मति केवल कर्ण के बल भरोसे उछल रहा है। उसे कीर्त्ति, अकीर्त्ति, धर्माधर्म का कुछ भी विचार नहीं है। वह

तो यह समझता कि, मैंने विश्व ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर लिया है। अविवेकी दुर्योधन ने मुझे क़ैद करना चाहा था ; किन्तु उसकी वह कामना पूरी न हो सकी। हे राजन्! एक महात्मा विदुर को छोड़ कर भीष्म, द्रोण आदि सभी दुर्योधन के अनुकूल हैं। इसी कारण इन लोगों ने कुछ ऐसा ही समझाया बुझाया था। शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि महामूर्ख और दुर्जनों की गोष्ठी में दुर्योधन सदा रहा करता है और वह इन लोगों द्वारा की गयी आपकी निन्दा को निरन्तर सुनता रहता है। आपके विषय में दुर्योधन ने जो कुछ कहा वह सब कहने सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है और न कुछ उससे लाभ ही है। संक्षेप में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि, नीच दुर्योधन के विचार और व्यवहार आदि आपके विषय में अच्छे नहीं हैं। आपकी इस महाचमू में जो दोष नहीं हैं, वे सब के सब दोष दुर्मति दुर्योधन में भरे हुए हैं। अब तो हमारी भी इच्छा यही है कि, अपनी, योग्य राजलक्ष्मी को कभी न छोड़ना चाहिये तथा कौरवों को अवश्य संग्राम में परास्त करना चाहिये। जनार्दन श्रीकृष्ण की इन बातों को सुन कर समस्त राजमण्डली धर्मराज का मुख निहारने लगी। धर्मराज ने भी अपना मुख ताकने वाले राजाओं का अभिप्राय जान कर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि से सम्मति ले कर युद्ध की घोषणा कर दी। धर्मराज की आज्ञा पाते ही पाण्डव सेना में हर्षध्वनि होने लगी, राजाओं का उत्साह बढ़ गया ; किन्तु धर्मराज इस महासंग्राम की बात से चिन्तित हो रहे थे।

उन्होंने लंबी लंबी श्वासें लेते हुए भीमसेन और अर्जुन को बुला कर कहा—देखो, जिस अनर्थ से बचे रहने के लिये आप हम सब लोग भयङ्कर वनवास भोगने के लिये गये थे, आज वही अनर्थ हमारे सामने फिर उपस्थित है। मैं यह चाहता था कि, संग्राम न हो ; किन्तु हज़ार प्रयत्न करने पर भी मेरी यह कामना पूरी न हो पायी हम लोग मान्य तथा स्नेहपात्र, गुरुजनों और बन्धुओं के साथ कैसे लड़ेंगे ? क्या हम इन्हें मार कर, विजयश्री प्राप्त कर के सुख शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ?

धर्मराज की बात को सुन कर वीर अर्जुन ने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्ण जी ने अभी आपके सम्मुख कुन्ती और विदुर की जो बातें कही हैं; उन पर आपने विचार किया या नहीं? मुझे तो माता कुन्ती और महात्मा विदुर पर पूरा विश्वास है कि, वे अधर्म की और झूठी बात कभी नहीं कह सकते। अब जब कि युद्ध-घोषणा हो चुकी है, तब पीछे पैर रखना भी क्षात्रधर्म के विरुद्ध और निन्दनीय है।

श्रीकृष्ण जी मुस्कुराते हुए अर्जुन से बोले—हे अर्जुन! यह बिलकुल ठीक बात है। अब संग्राम से विमुख हो कर बैठे रहना भारी भूल है। इस प्रकार सम्मति से संग्राम करना निश्चय कर धर्मराज ने वह रात बड़े आनन्द के साथ बितायी।

एक सौ पचपन का अध्याय

दुर्योधन की वाहिनी

प्रातः काल होते ही राजा दुर्योधन ने अपनी एकादश अक्षौहिणी सेना को कई भागों में बाँट दिया। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल चारों को उत्तम मध्यम और निम्न प्रकार से विभाजित कर आगे पीछे और मध्य में रख दिया। टूटे हुए रथों में लगाने के काष्ठ, भाथे, रथों को आच्छादन करने वाले व्याघ्रचर्म, तोमर, काँटेदार दण्ड, लाठियाँ, धनुष, पताका, शत्रुसंहारी पाश, तेल, गुड़, राल, बालू, साँपों से भरे घड़े, छुरी, तलवार, साल, भिन्दिपाल, हल, विशाक्त तोमर, विषरस भरी पिचकारियाँ, कुल्हाड़ी, कुदाल आदि शस्त्र और युद्ध में घायल मनुष्यों के घावों में लगा कर भरने के लिये मोंम, तैलसिञ्चित रेशमी वस्त्र, पुराना घी आदि सब युद्ध की सामग्रियाँ शूरवीर योद्धाओं ने अपने साथ ले लीं। राजा दुर्योधन ने शूरवीर अस्त्र-शस्त्र-विद्या में चतुर अश्व-विद्या-कुशल राजाओं को सारथी बनाया। प्रत्येक रथ में उत्तम जाति के चार चार घोड़े जुते हुए थे।

अमङ्गल शान्ति के हेतु औषधियाँ रखी गयी थीं। रथों पर ध्वजा पताकाएँ और घोड़ों के मस्तकों पर मुक्तामणि की मालाएँ शोभित हो रही थीं। रथों को उत्तम बहुमूल्य वस्त्रों द्वारा सजा कर उनमें अनेक शस्त्रास्त्र भरे गये और दो दो घोड़ों पर एक एक सारथि रखा गया था, जो अस्त्र शस्त्र चलाने में चतुर और अश्व-चालन-विद्या में निपुण था। ऐसे दो हज़ार रथ कौरवों की सेना में विद्यमान थे। जैसे रथ सजाये गये थे, वैसे ही हाथियों की भी सजावट की गयी थी। प्रत्येक हाथी पर सात सात मनुष्य बैठाये गये थे। ऐसा मालूम होता था कि, मानों रत्नों के पहाड़ सम्मुख खड़े हैं। प्रत्येक हाथी पर दो अङ्कुशधारी फीलवान, दो धनुर्धारी, दो खड्गधारी योद्धा तथा दो शक्ति और त्रिशूलधारी योद्धा बैठे हुए थे। वीर दुर्योधन की वह सेना कवच-शस्त्र-धारी योद्धाओं से परिपूर्ण हो रही थी। शिक्षित और अनेक ध्वजा पताकाओं से शोभित अश्वों का तो दृश्य ही निराला था। वे सब अपने मालिकों के सङ्केत पर विविध गतियों से अपना कौशल दिखला रहे थे। विविधाकार और रूप रङ्ग वाले कवच और शस्त्रों को धारण करने वाले लाखों पैदल सुन्दर मालाएँ धारण किये हुए सेना में शोभित हो रहे थे। प्रत्येक रथ के पीछे दस हाथी प्रत्येक हाथी के पीछे दस घोड़े और प्रत्येक घोड़े के पीछे दस दस पैदल रक्षक रूप से चल रहे थे अर्थात् एक रथ के साथ दस हाथी, सौ घोड़े और एक सहस्र पैदल चलते थे। सेना की शृंखला बाँधने और उसे विभक्त करने के हेतु एक रथ के साथ पाँच हाथी और प्रत्येक हाथी के साथ सौ घोड़े तथा प्रत्येक घोड़े के साथ सात पैदलों की नियुक्ति की जाती थी। पाँच सौ हाथी और पाँच सौ रथों की एक सेना कहलाती है। दस सेना की एक पृतना और दस पृतनाओं की एक वाहिनी मानी गयी है। सेना, पृतना, ध्वजिनी, वाहिनी आदि नाम से अक्षौहिणी सेना का ही बोध होता है। इस प्रकार ग्यारह अक्षौहिणी कौरवों की और सात अक्षौहिणी पाण्डवों की सब मिला कर अठारह अक्षौहणी सेना कुरुक्षेत्र में एकट्ठी हो गयीं। ढाई सौ मनुष्यों के समूह

को पत्ति कहते हैं ऐसी तीन पत्तियों का एक सेनामुख अथवा गुल्म कहलाता है। तीन गुल्मों का एक गण होता है। राजा दुर्योधन की सहायता के लिये ऐसे अनेक गण आये हुए थे। संग्राम छिड़ने के पूर्व दुर्योधन ने योद्धाओं की परीक्षा की और उन्हें सेनापति के पद पर नियुक्त किया। द्रोणाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण, शकुनि, राजा वाल्हीक नामक महारथियों से राजा दुर्योधन ने बातचीत की और उन्हें सेनापति बनाया। उन वीर सेनापतियों की पूजा राजा दुर्योधन स्वयं बड़े विनीत भाव से किया करता था, शेष सारी राजमण्डली भी दुर्योधन का मङ्गल चाहती थी।

एक सौ छप्पन का अध्याय

सेनापति पद पर भीष्म का अभिषेक

इसके बाद राजा दुर्योधन अन्य सब राजाओं के साथ पितामह भीष्म के पास जा हाथ जोड़ कर यह कहने लगा—हे पितामह! सेना चाहे कितनी ही बड़ी और बलवती क्यों न हो तो भी वह बिना सेनापति के संग्रामाङ्गण में आ कर चीटियों की भाँति नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। संसार के जीवों की रुचि बड़ी विचित्र होती है। कहीं भी दो मनुष्यों की एक सी बुद्धि नहीं होती। सेनापतियों को भी एक दूसरे से स्पर्धा होती ही है। देखिये, एक बार हैहय वंशी नरपालों से लड़ने के लिये अपनी अपनी कुशध्वजाओं को उठा कर ब्राह्मण लोग आ पहुँचे। उन ब्राह्मणों के पीछे पीछे शूद्र और वैश्य चल पड़े। इस प्रकार एक ओर तो क्षत्रियों का जमघट हुआ और दूसरी ओर ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों का जमघट हुआ। खूब ज़ोर शोर के साथ संग्राम होने लगा। थोड़ी देर बाद ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों में भगदड़ मच गयी। वीर क्षत्रिय वैसे ही अविचल रूप से रणभूमि में डटे रहे। क्षत्रियों की इस रणस्थिरता को देख कर, ब्राह्मणों ने उनसे पूछा कि, भाई!

यह क्या बात है? हम लोग संख्या में तुम सब से अधिक होते हुए भी हिम्मत हार कर भाग निकले और तुम वैसे ही खड़े हो।

तब क्षत्रियों ने कहा—देखिये, हम लोग सब अपने एक सेनापति की आज्ञा में चलते हैं और आप लोग सब अपनी मनमानी घरजानी करते हैं। इसी कारण आप लोग पराजित हो जाते हैं। यह सुन कर ब्राह्मणों ने भी अपने पक्ष के एक वीर को सेनापति बना लिया और फिर युद्ध कर के क्षत्रियों को परास्त कर दिया। इस लिये जो योग्य रणकुशल वीर सेनापति के शासन में रहते हुए युद्ध करते हैं, वे सदा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। आप शुक्र के समान नीतिशास्त्र के ज्ञाता और मेरे परम हितैषी बन्धु हैं। आपसे काल भी डरता है, इस कारण आप ही हमारे सेनापति होवें। जैसे यक्षों में कुबेर, देवों में इन्द्र, पक्षियों में गरुड़, पर्वतों में सुमेरु और किरण वालों में भगवान भास्कर और औषधियों में चन्द्रदेव अधिपति माने जाते हैं; वैसे ही आप भी हम लोगों पर अपना आधिपत्य रखिये। हम सब लोग आपके आज्ञानुसार कार्य करें और आप हमारी रक्षा कीजिये। बिना आपके आधिपत्य के हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त न कर सकेंगे।

राजा दुर्योधन की इस प्रार्थना को सुन कर, भीष्म जी ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। तुम और पाण्डव मुझे दोनों ही प्यारे हो, उन्हें मैं सुसम्मति प्रदान करूँगा और तुम लोगों की रक्षार्थ युद्ध करूँगा; किन्तु एक कठिन समस्या यह आ पड़ी है कि, वीर अर्जुन को छोड़ कर मेरे साथ युद्ध करने वाला और कोई पृथिवी पर नहीं है, जिसके साथ मैं युद्ध कर सकूँ। वह दिव्यास्त्रधारी वीर अर्जुन मुझसे प्रकट हो कर, कभी युद्ध न करेगा। मैं यदि चाहूँ तो अपने तेज, बल, वीर्य के प्रभाव से दैत्य, दानव, देव आदि से पूर्ण इस विश्व ब्रह्माण्ड को भी क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट कर सकता हूँ। किन्तु मुझमें यह शक्ति नहीं है कि, मैं पाण्डु के पुत्रों का संहार कर सकूँ। हाँ, यह बात अवश्य है कि, मैं प्रति दिन दस हज़ार योद्धाओं को अवश्य मारा करूँगा। संग्राम में चाहे वे मुझ पर प्रहार करें या न करें; किन्तु

में अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दस हज़ार भटों को तो अवश्य ही लुढ़का दिया करूँगा। सेनापति के पद को स्वीकार करने के लिये जो तुम मुझसे आग्रह कर रहे हो सो इसके विषय में मेरी एक बात तुम्हें माननी होगी। वह यह है कि, रणभूमि में या तो कर्ण ही पहिले लड़ें या मैं। क्योंकि कर्ण मेरे साथ स्पर्द्धा रखता है।

पितामह भीष्म की इस बात को सुन कर, कर्ण ने स्वयं ही यह कहा—हे राजन्! मैं तब तक युद्ध न करूँगा, जब तक कि भीष्म मारे न जावेंगे। इनके मारे जाने पर अर्जुन के साथ मैं लड़ूँगा। इन सब बातों के निश्चय हो जाने पर दुर्योधन ने भी भीष्म पितामह का, बड़ी प्रसन्नता के साथ सेनापति के पद पर अभिषेक किया। हर्ष-सूचक नगाड़े शङ्ख, तोरई, शहनाई आदि बाजे बजने लगे। हाथी चिंघाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। मेघशून्य आकाश से शोणितवर्षा होने लगी। वज्र गर्जन और भूकम्प आदि उपद्रवों से योद्धाओं के हृदय दहल गये। प्रज्वलित अंगार, आकाश से गिरने लगे और आकाशवाणियाँ होने लगीं। जिस समय भीष्म पितामह सेनाध्यक्ष के पद पर अभिषिक्त हुए, उस समय भावी भयङ्कर आपत्ति की सूचना देने वाली गीदड़ियों ने रोना भी प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार भीष्म को सेनापति बना कर असंख्य गौएँ और सुवर्ण आदि ब्राह्मणों को दान कर आशीर्वाद लेता हुआ दुर्योधन, सेना सहित कुरुक्षेत्र में पहुँच गया। वहाँ जा कर कर्ण और दुर्योधन दोनों ही ने योग्य और समस्थल जहाँ ईंधन जल आदि की सुविधा थी, देख कर अपनी सेना का शिविर बनवाया, जिसकी शोभा भी हस्तिनापुर से कम नहीं थी।

एक सौ सत्तावन का अध्याय

बलराम का तीर्थाटन के लिये प्रस्थान

यह सुन कर राजा जनमेजय ने वैशम्पायन से पूँछा—हे वैशम्पायन जी! यह तो कहिये कि, जब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, राजशिरोमणि, बुद्धि में बृहस्पति, गाम्भीर्य में सागर, क्षमा में भूमि, स्थिरता में हिमालय, तेजस्वियों में सूर्य, औदार्य में प्रजापति ब्रह्मा और शत्रुविजेताओं में देवराज इन्द्र के समान, अखण्ड बालब्रह्मचारी गाङ्गेय भीष्म पितामह को दुर्योधन ने अपना सेनापति नियुक्त कर लिया और भीम, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण जी को यह मालूम हो गया कि, बस अब आज से इस महारण रूपी यज्ञ में भीष्म जो चिरकाल के लिये दीक्षित हो चुके, तब इन सब लोगों ने क्या किया? अर्जुन तथा श्रीकृष्ण जी ने जो कुछ भी उस समय किया और कहा हो, वह भी मुझसे आप कहिये। आपके इस विजय-काव्य को सुन कर मुझे बड़ी भारी उत्कण्ठा पैदा हो गयी है।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! तुम्हें धर्मराज युधिष्ठिर की धीरता का परिचय मैं इसी तुम्हारे प्रश्न के उत्तर से दिलाये देता हूँ। देखो, धर्मराज ने चौदह वर्ष बराबर बड़ी बड़ी आपत्तियों का सामना करते हुए भी कभी अपने धर्म का उल्लङ्घन नहीं किया। वे सदा क्षमा और शान्ति के साथ अब तक सारी विघ्न बाधाओं का स्वागत करते चले आये। इस कारण उन्हें आपद्धर्म का अच्छा अनुभव प्राप्त हो गया है। उन्होंने इन सब समाचारों की सूचना पाते ही अपने भाइयों तथा श्रीकृष्ण जी को अपने पास बैठाल कर, बड़ी सान्त्वना के साथ यह कहा—मेरे प्यारे वीर भाइयो! अब ज़रा सावधानी के साथ अपने अपने कवच धारण कर लो और अस्त्र शस्त्रों से सज्जित हो जाओ। क्योंकि तुम्हें सब से पहिले वीर-केसरी पितामह भीष्म ही का सामना करना पड़ेगा। तुम लोग अपनी सेना को सात भागों में बाँट कर, उनके सेनापति नियुक्त कर दो।

यह सुन कर श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे राजन् ! आपने यह समयोचित प्रस्ताव किया है। मेरी भी यही सम्मति है कि, अब सेनापतियों ही का चुनाव होना चाहिये। क्योंकि अब समय अधिक नहीं रहा। धर्मराज अपनी बात का श्रीकृष्ण जी को अनुमोदन करते हुए देख कर प्रसन्न हुए और उन्होंने तुरन्त विराट, द्रुपद, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी, और सहदेव को बुला कर शास्त्रोक्त विधि से अपनी सेना का आधिपत्य समर्पित किया और इन सब सेनापतियों का अधिपति धृष्टद्युम्न को बनाया। धृष्टद्युम्न ने केवल द्रोणाचार्य का संहार करने के लिये ही प्रचण्ड पावक से जन्म ग्रहण किया था। सब सेनाध्यक्षों के भी अध्यक्ष अर्जुन बनाये गये और अर्जुन पर भी शासन करने वाले श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन का सारथ्य स्वीकार किया। हे महाराज ! जब युद्धकाल बिलकुल समीप आ पहुँचा, तब श्याम-वस्त्र-धारी महाबलशाली श्रीबलराम जी भी अक्रूर उद्धव, साम्ब और चारुदेष्ण के साथ पाण्डवों की छावनी में आये। श्रीबलराम जी को आते देख श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य सब राजा लोग उठ कर खड़े हो गये और उनका आदर सत्कार किया। श्रीकृष्ण ने तथा अन्य राजाओं ने बलदेव जी को नतमाथ प्रणाम किया।

बलदेव जी वृद्ध राजा विराट और द्रुपद को प्रणाम कर, धर्मराज के पास आसन पर बैठ गये और श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए कहने लगे—यह जो हमारे सम्मुख महाभयङ्कर सर्वनाशकारी संग्राम उपस्थित है, यह एक दैवलीला है। इसका रोकना असम्भव है। मैं आप सब सम्बन्धी जनों को विजय प्राप्त कर प्रसन्नमुख देखने की सदा कामना किया करता हूँ। याद रखिये, समुपस्थित यह सारी राज-मण्डली नष्ट हो जावेगी। यह ऐसा भयङ्कर सर्वनाश होगा कि, इसमें शोणित की सरिताएं बह जावेंगी। मैंने बार बार श्रीकृष्ण जी से कहा था कि, तुम सब सम्बन्धियों में एक सा ही अपना व्यवहार रखना। हमारे लिये पाण्डव और दुर्योधन दोनों एक से हैं। इस कारण तुम्हें दोनों की

सहायता करनी चाहिये। क्योंकि वह भी तुमसे कई बार सहायता करने की प्रार्थना कर चुका है; किन्तु केवल एक अर्जुन के कारण श्रीकृष्ण जी ने मेरा कहना नहीं माना। क्योंकि अर्जुन को देखते ही श्रीकृष्ण सुध बुध भूल जाते हैं। हे राजन्! मेरा और श्रीकृष्ण जी दोनों ही का यह निश्चित विचार है कि युद्ध में पाण्डवों का विजय होगा। मैं श्रीकृष्ण के बिना क्षण भर भी जीना नहीं चाहता। इसी कारण मैं इनके सभी कामों में सम्मिलित हो जाता हूँ। राजा दुर्योधन और भीम ये दोनों ही मेरे प्रिय शिष्य हैं। इस कारण मेरा दोनों पर ही समान स्नेह है। मैं कौरवों के नाश को देख कर चुप नहीं रह सकता। मुझे अब अवश्य सरस्वती। आदि तीर्थों में भ्रमण करना पड़ेगा। क्योंकि न यह हत्याकाण्ड मेरे सम्मुख होगा और न मुझे क्रोध आवेगा। इस बात को सुन कर, पाण्डव आदि सभी ने उन्हें आज्ञा दे दी और वे तीर्थयात्रा के लिये चले गये।

एक सौ अट्ठावन का अध्याय

रुक्मी की सहायता

श्रीबलराम जी के चले जाने के बाद ही दक्षिण देश का राजा रुक्मी जो बड़ा बलवान्, धनुषधारियों में शिरोमणि, सत्य सङ्कल्प, दृढ़प्रतिज्ञ और देवराज का मित्र था, मेघ के समान गर्जना करता हुआ, अपने दल बल सहित पाण्डवों के पास आ पहुँचा। वह वीर, सिंहद्रुम का शिष्य था और धनुर्वेद की चारों विद्याओं का पण्डित था। उसने गाण्डीव और शार्ङ्ग धनुष के समान लक्षणों वाला विजय नामक धनुष भी देवराज इन्द्र से प्राप्त कर लिया था। शत्रुओं के सैन्य को नाश करने वाले शार्ङ्ग धनुष को, श्रीकृष्ण गाण्डीव को अर्जुन और विजय नामक महाधनुप को महावीर रुक्मी धारण करता था। श्रीकृष्ण ने मुर दैत्य के अन्त्रपाश को काट कर नरकासुर का संहार किया था और अदिति के मणिजटित कुण्डल और

१६०० स्त्रियाँ तथा शार्ङ्ग धनुष को भी प्राप्त किया था। पहले जब श्रीकृष्ण जी ने रुक्मिणी-हरण किया था, तब यह रुक्मी बड़ा क्रुद्ध हुआ था और श्रीकृष्ण जी को मारने के लिये अपनी प्रबल सेना के साथ इनके पीछे दौड़ पड़ा था; किन्तु श्रीकृष्ण का सामना होते ही इसे परास्त होना पड़ा। वह बेचारा इसी लज्जा के कारण कुण्डिनपुर में न घुस सका। जिस स्थान पर श्रीकृष्ण जी ने इसे हराया था वहाँ पर भोजकट, नामक एक सुन्दर नगर बसाया गया। हे राजन्! वह नगर अब भी विशाल सैन्य, धन, धान्य आदि से भरा पूरा विद्यमान है। उसी भोजकट नगर का महाबली राजा पाण्डवों की सहायतार्थ एक अक्षौहिणी सेना ले कर आ पहुँचा। वह कवच और धनुष को धारण किये हुए था और श्रीकृष्ण जी को प्रसन्न करने के लिये अपनी शुभ्र पताका फहराता हुआ पाण्डवों की महासेना में आ मिला। धर्मराज ने ज्यों ही उसे आते देखा त्यों ही वे उसके पास जा कर उससे मिले और उसका यथोचित सत्कार किया।

रुक्मी ने भी धर्मराज के अतिथि सत्कार को स्वीकार कर, विश्रामभवन में प्रवेश किया और विश्राम कर चुकने के बाद वह वीरमण्डली में आया और अर्जुन से कहने लगा—हे अर्जुन! घबराने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारी सहायता के लिये तैयार हो कर आया हूँ। मुझे अपने पराक्रम पर पूरा विश्वास है। इस लिये सेना के जिस विभाग में भी तुम मुझे खड़ा कर दोगे, उस विभाग ही के शत्रुओं का मैं सर्वनाश कर डालूँगा। भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि किसी से भी मुझे भय नहीं है। चाहे ये सब राजा लोग इकट्ठे हो कर ही क्यों न मुझ पर चढ़ाई कर दें; किन्तु मेरा ये लोग बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मैं समस्त पृथ्वी को जीत कर तुम्हें दे दूँगा। धर्मराज के तथा अर्जुन श्रीकृष्ण आदि महावीरों के सम्मुख रुक्मी की इन बातों को सुन कर, अर्जुन ने श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए कहा—हे राजन्! मैं वीर पाण्डु का पुत्र हूँ। श्रीकृष्ण मेरी सहायता कर रहे हैं। मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ और स्वयं गाण्डीव धनुष को धारण किये हुए हूँ।

फिर बतलाइये मैं आपसे यह कब कह सकता हूँ कि, मैं डर गया। घोष-यात्रा में जब गन्धर्वों से मेरा संग्राम हुआ था, तब मेरा सहायक कौन था? खाण्डवदाह के समय मेरा कौन सहायक था? निवातकवच और कालकेय दैत्यों के युद्ध में तथा विराट नगर में कौरवों के साथ संग्राम करते समय मेरा कौन सहायक था? मैंने इन्द्र, वरुण, यम और शङ्कर आदि देवों की तथा भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि गुरुजनों की आराधना कर दिव्य अस्त्र शस्त्र और गाण्डीव धनुष को पाया है। ऐसी दशा में आप ही बतलाइये कि, मैं ऐसे कायर वचन कब किसी से कह सकता हूँ? हे राजन्! मुझ सरीखा वीर पुरुष तो इन्द्र के साथ संग्राम होने पर भी ऐसे वाक्य अपने मुँह से नहीं निकाल सकता। न मैं युद्ध से डरता ही हूँ और न मुझे सहायता ही की आवश्यकता है। यदि आपकी इच्छा हो और आपको अवकाश हो तो आप यहाँ ठहर सकते हैं और यदि न हो तो आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ आप चले जावें।

वीर अर्जुन के इस उपेक्षापूर्ण उत्तर को सुन कर, रुक्मी जैसे आया था वैसे ही चला गया और दुर्योधन के पास जा कर भी उसने इसी प्रकार कहा। तब वीरताभिमानी दुर्योधन ने भी उसको फटकार दिया और वह बेचारा अपमानित हो कर चला गया। इस प्रकार रुक्मी और श्रीबलदेव जी दोनों ही महाभारत के संग्राम में सम्मिलित न हुए। अस्तु, रुक्मी के चले जाने पर, पाण्डवों ने फिर विचार करना आरम्भ किया। धर्मराज की वीर मण्डली से शोभित सभा, नक्षत्र-मालाओं से शोभित आकाश के समान सुन्दर प्रतीत होती थी।

एक सौ उनसठ का अध्याय

कर्म की गति

जनमेजय ने कहा—हे विप्रदेव! जब सब सेना कुरुक्षेत्र में मोर्चेबंदी के साथ खड़ी हो गयी, तब काल के वश में हुए कौरवों ने क्या किया?

वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय ! जब सेना तैयार हो गयी, तब राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा कि, हे सञ्जय ! तुम यहाँ आओ और कौरव पाण्डवों के समाचार मुझे सुनाओ। मैं भाग्य के सम्मुख पुरुषार्थ को सामर्थ्य-हीन समझता हूँ। अतएव मुझे यह निश्चय है कि, इस युद्ध का अन्तिम परिणाम सर्वनाश ही है। यह सब कुछ जानते हुए मैं भी अपने कपटी ज्वारी तथा अत्याचारी पुत्र को इस महाअनर्थकारी कार्य से नहीं रोक सकता। मैं इन सब दोषों को जानता हूँ; किन्तु जब दुर्योधन से मिलता हूँ, तब सब भूल जाता हूँ। इस कारण होनहार हो कर ही रहेगी; किन्तु यह बात अवश्य है कि, क्षत्रियों के लिये संग्राम में प्राण-विसर्जन कर देना बड़ा प्रशंसनीय कार्य है।

यह सुन कर सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! आप जैसा चाहते हैं, आपका प्रश्न भी वैसा ही है। दुर्योधन के सिर पर यह दोष लगाना उचित नहीं। देखिये, मैं जो कुछ कहता हूँ, ध्यान से सुनिये। जो मनुष्य अपने दुराचारों से क्लेश पावे और फिर देवताओं और समय को दोषी ठहरावे, उसके समान संसार में कोई मूर्ख ही नहीं है। नीच कर्म करने वाले का तो तत्काल ही संहार कर डालना चाहिये। अपना राज हार जाने के बाद भी पाण्डवों ने जिन अपमानों को सहन किया, वे सब अपमान केवल आपके ही कारण सहे गये थे। अब जो यह सर्वसंहारी संग्राम आरम्भ हुआ है, उसका भी सब हाल आप सुनिये। तदनन्तर आपको यह मालूम हो जावेगा कि, इसके सम्बन्ध में मनुष्य का कुछ भी दोष नहीं है। वह तो पराधीन है। कठपुतली की तरह किसी दूसरे की प्रेरणा से नाचता रहता है। मनुष्यों के शुभाशुभ कर्म करने के विषय में हमें तीन प्रकार के मत मालूम होते हैं। पहिला तो यह कि, परमेश्वर की आज्ञा ही से मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है। दूसरा पक्ष यह मानता है कि, नहीं इस विषय में दैवेच्छा गरीयसी का मत मानना ही ठीक है। तीसरा पक्ष है कि, यह सब कुछ नहीं, केवल पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुकूल ही मनुष्य

सदाचारी और दुराचारी होता है। आप इन तीनों पक्षों में से किसी एक पक्ष (मत) के अनुसार ही आपत्ति में आ पड़े हैं। इस लिये जो मैं कहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये और समझिये।

[अथोलूकदूतागमन पर्व]

एक सौ साठ का अध्याय

एक बिलाव और चूहे की कहानी

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! सुनो; महात्मा पाण्डवों की छावनी को हिरण्यवती नदी के किनारे पड़ा देख कर, कौरवों ने भी रणशास्त्र विधि के अनुसार अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया। राजा दुर्योधन अपनी सेनाओं को ठहरा कर आने वाले अन्य राजाओं का यथोचित सत्कार करने लगा तथा पृथक् पृथक् सेनाओं के अंश नियुक्त करने कराने में वह व्यस्त हो गया। इस प्रकार सब प्रबन्ध कर चुकने के बाद दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि, दुःशासन को बुलाया और उनके साथ वह कुछ गुप्त विचार करने लगा। अन्त में कुछ निश्चय कर चुकने के बाद उलूक को बुला कर कहा कि, तुम शीघ्र ही सोमकों और पाण्डवों के पास जा कर श्रीकृष्ण को सुनाते हुए, निर्भीक हो कर यह कहना कि, जिसके लिये आप लोग वर्षों से चिल्ला रहे थे, वही युद्धकाल अब आ कर उपस्थित हुआ है। कौरवों और पाण्डवों का यह महासंग्राम बड़ा भयङ्कर होगा। हे वीर अर्जुन ! तुमने जो श्रीकृष्ण की सहायता पा कर वीर गर्जना करते हुए आत्मप्रशंसा की थी, उस प्रशंसा को सार्थक कर दिखाने का बस यही समय है। अब देखें, तुम कैसे दृढ़प्रतिज्ञ हो। अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर के दिखलाओ, तो हम भी जानें। और देखो उलूक ! सोमक और केकय के वंशों के राजाओं में बैठे कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर से भी कहना कि, देखो, तुम धर्मात्मा

तो बनते हो; किन्तु अधर्म के कार्यों को करते हो। इस तुम्हारी बगुला-भक्ति को धिक्कार है। मैंने तो यही सोचा था कि, तुम संसार को अभय-प्रदान करने वाले हो; किन्तु मेरा विचार नितान्त भ्रमपूर्ण निकला। तुम्हीं इस सर्वसंहार के कारण हो। सचमुच तुम्हारे बराबर संसार में कोई भी क्रूर न होगा। देखो, मुझे इस समय एक प्रह्लाद का वाक्य याद आ गया। वह भी तुम्हें सुनाता हूँ। देवताओं ने जब उसका राज्य छीन लिया था; तब उसने कहा था। हे देवताओ! जिन धर्मध्वजियों की ऊँची धर्मध्वजाएँ फहरा रही हैं और जिनके भीतर महापातक छिपे हुए हैं, उन्हें ही वैडालव्रत कहा गया है। देखो, इस विषय में नारद जी की कही हुई एक कथा मुझे याद आ गयी है। वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बार एक बुड्ढा बिलाव गङ्गा किनारे जा कर, बैठ गया और बड़ा जप तप करने का ढोंग दिखलाने लगा। वह सब जानवरों को हाथ उठा कर अपने धर्मात्मापन की प्रशंसा कर के अपने ऊपर विश्वास कराने की चेष्टा करने लगा। उसकी ऐसी धर्मनिष्ठा और वैराग्यभरी धर्मकथाएँ देख और सुन कर पक्षियों तथा अन्य जन्तुओं को भी उस पर विश्वास हो गया और वे निर्भय हो कर, उसके पास आने जाने लगे। इस प्रकार अपने ऊपर पक्षियों का विश्वास और अनुराग देख कर उस बिलाव ने अपने मन में सोचा कि, बस अब मेरी तपस्या का फल मिलने वाला है, अब निश्चय मेरा मनोरथ सिद्ध हो जावेगा। हे राजन्! इस प्रकार वह और भी अधिक अपने धर्म-ढोंग को रचने लगा। कुछ दिनों बाद चूहों का एक झुंड उधर से आ निकला। धर्मात्मा बिलाव की प्रशंसा तो सर्वत्र फैल ही चुकी थी। चूहों ने भी अपने मन में सोचा कि, चलो इन बिलाव महात्मा को अपना मामा बना लें और यह हमारे यहाँ, चल कर रहें और हमारे जितने शत्रु हैं उनका संहार करें। यह सोच कर वे सब चूहे उसके पास गये और प्रणाम कर के कहने लगे कि, महाराज! हम लोग आपकी प्रशंसा सुन कर, आपके शरण में आये हैं। आप बड़े तपस्वी, धर्मात्मा और महाबुद्धिमान् हैं। यदि आप हम पर

अनुग्रह करें तो हमारा कल्याण हो सकता है। हे महाराज! जैसे देवराज इन्द्र देवताओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही आप भी हमारी रक्षा कीजिये। यह सुन कर मूषकों के महाशत्रु उस धर्मध्वजी बिलाव ने कहा—देखो, बच्चों! हम लोग तपस्वी हैं। संसार के झंझटों से अलग रहने ही में हमारी भलाई है। हम तप भी करें और तुम्हारी रक्षा का कार्य भी करें यह असम्भव सा प्रतीत होता है; किन्तु अब जब तुम लोग हमारे शरण में आये हो तब हमें किसी न किसी प्रकार तुम्हारा रक्षण करना ही चाहिये; किन्तु एक बात है, मुझे देखो मैं बड़ा वृद्ध हूँ और दूसरे तपश्चर्या करते करते मेरा शरीर और भी अधिक दुर्बल हो गया है। इस कारण तुम्हारा यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि, तुम सब मेरी आज्ञा का पालन किया करो और मुझे नदी तट पर प्रतिदिन पहुँचा जाया करो। हे राजन्! मूर्ख चूहों ने उसकी इन बातों को स्वीकार कर लिया और बालक बूढ़े आदि सभी पारिवारिक चूहों को उसे सौंप दिया। फिर क्या था, धर्मराज बिलाव जी अब तो लगे एक एक कर के चूहों को गटकने! धीरे धीरे चूहों की संख्या कम होने लगी और बिलाव जी मोटे ताज़े होने लगे। यह देख कर बचे हुए चूहों ने एक दिन आपस में कहा कि भाई! यह बात क्या है? हमारी संख्या तो दिन दिन घटती जाती है और हमारे मामा जी कसाई के कूकुर की तरह मोटे ताज़े और बलिष्ठ होते चले जा रहे हैं।

यह सुन कर उनमें से डिण्डक नामक एक बूढ़े चूहे ने कहा अच्छा, तुम लोग ऐसा करो कि, सब एक साथ मिल कर नदी तट पर जाओ और मैं पीछे से पूज्य मामा जी के साथ साथ आता हूँ। सब चूहों ने भी डिण्डक महाशय की बात मान ली और वे लोग सब मिल कर आगे ही नदीकिनारे की ओर चल दिये। धर्मध्वजी बिलाव महाशय वैसे तो बड़े चालाक थे; किन्तु अब की बार चूहों की इस गुप्तमन्त्रणा को न समझ सके। उन्होंने इधर उधर देख तुरन्त ही उस बूढ़े डिण्डक चूहे को चट कर लिया। तब तो सब के सब चूहे इकट्ठे हो कर सोचने लगे और उनमें से कौलिक नामक

चूहे ने उन सब चूहों से कहा कि भाई ! तुम लोग बड़े मूर्ख हो। हमें तो यह मालूम होता है कि, हमारे मामा जी सच्चे भगत नहीं हैं, बल्कि बगला भगत हैं। यह महा कपटी हैं और हम लोगों को मारने खाने के लिये ही इन्होंने यह सब ढोंग रचा है। देखो इसकी सब से बढ़िया पहचान यह है कि, फल फूल और शाक खाने वाले की विष्ठा में कभी बाल नहीं निकलते। देखो न, यह तो बढ़ता चला जा रहा है और हम लोग कम होते चले जा रहे हैं। यह सुन कर सब चूहे वहाँ से भाग गये और बिलाव भी अपनी पोल खुल जाने के कारण वहाँ से रफूचक्कर हो गया।

हे धर्मराज ! वैसे ही तुम भी विडालव्रत धारण कर चूहों में बिलाव की तरह बन्धुओं से व्यवहार करते हो। तुम्हारी बातें कुछ और हैं और काम कुछ और हैं। तुमने केवल धोखा देने के लिये ही वेदाभ्यास किया है।

देखो, अपने अजातशत्रु इस नाम पर हरताल पोत दो और क्षत्रियत्व का कुछ भी अभिमान हो तो सब कार्यों को करो। अपने बाहुबल द्वारा भूमण्डल का विजय कर ब्राह्मणों को दान करो और पितरों को पिण्डदान दो। तुम्हारी दुखिया माता बहुत दिनों से रो रही है। उसके आँसू पोंछो और शत्रुओं का सर्वनाश कर यशोलाभ करो। तुमने हमसे केवल पाँच ग्राम माँगे थे सो वैसे हम दे भी देते। हमारे लिये यह काम कठिन नहीं था; किन्तु हमें तो किसी न किसी बहाने से पाण्डवों को कुपित कर उनसे युद्ध करना था। इस लिये मैंने तुम्हारी उस प्रार्थना की उपेक्षा कर दी। केवल इसी कारण से उस दुष्ट विदुर का भी परित्याग कर दिया था और तुम्हें लाक्षागृह (लाख के मकान) में भस्म कर डालने का उद्योग किया था। धर्मराज जी ! इन सब बातों को याद करो और अब थोड़ी देर के लिये मर्द बन कर सामने आ जाओ। इस प्रकार पर्दे में छिपे रहने से अब काम न चलेगा। इधर जब हमारे यहाँ श्रीकृष्ण तुम्हारा संदेशा ले कर आये थे तब तुमने उनसे यह कहला भेजा था कि, हम सन्धि और विग्रह दोनों ही करने के लिये तैयार हैं। खैर, सन्धि की बात तो जाने दो वह तो मेरे जीवित

रहते हो सकती नहीं; किन्तु अब संग्राम के लिये तैयार हो जाओ, जो क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। तुम तो अपने क्षात्र धर्म के लिये संसार में प्रसिद्ध हो रहे हो न। वैसे तो तुम अपनी वीरता की बड़ी भारी डींगें मारा करते हो। भला यह तो बतलाओ कि, जब हम और तुम दोनों ही बल, वीर्य, पराक्रम और कुलीनता में बराबर हैं तो तुमने फिर कृष्ण का सहारा क्यों लिया है? जैसे मैं द्रोणाचार्य, कृपाचार्य का शिष्य हूँ वैसे ही तुम भी हो।

हे दूतराज! देखो, वहाँ श्रीकृष्ण भी बैठे होंगे। इस लिये उनसे भी कानखोल कर कह देना कि, महाराज! आप भी अब ज़रा सावधान हो जाइये। आपको पाण्डवों का सहायक समझ कर निर्दोष नहीं छोड़ दिया जावेगा। लड़ने को आओ तो अपना भी पूरा पूरा प्रबन्ध कर के आना। जैसी जादूगरी तुमने सभा में आ कर दिखलायी थी, वैसी जादूगरी या आपके वैसे मायाजाल संग्राम में आ कर केवल वीरों के क्रोध ही को बढ़ावेंगे। संग्राम-भूमि में भी आ कर दिखाना। हम भी कुछ कम मायावी, नहीं हैं। आकाश, पाताल, इन्द्रलोक आदि सभी जगह हम माया के प्रभाव से पहुँच सकते हैं। जैसे तुमने अपने शरीर को विचित्र बना कर हमें डराना चाहा था वह सब जादूगरी भी हमें खूब मालूम है; किन्तु इन बातों से कुछ लाभ नहीं, और न कोई कार्य ही सिद्ध होता है। क्योंकि प्राणियों को अपने स्वाधीन कर लेना सहज काम नहीं है। यह शक्ति तो विधाता को छोड़ कर और किसी में है ही नहीं। और सुनो, सञ्जय के द्वारा तुमने यह भी सँदेशा भेजा था कि, मैं संग्राम में कौरवों का सर्वनाश कर के पाण्डवों को राज्य प्रदान करूँगा। क्योंकि दुर्योधन का वैर मुझसे और अर्जुन से है। इस लिये अब आ जाओ और अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा करो। अब आप सब लोग आ कर रण में अपना अपना पौरुष दिखलाइये। हम भी तो देखें कि आप लोग जितना कहते हैं उतना करते भी हैं या नहीं। जो मनुष्य बैरियों के बलाबल को जान कर केवल अपने पुरुषार्थ से बैरियों को विध्वंस करता है, वही श्रेष्ठ कहलाता है।

वासुदेव जो महाराज ! आप भाग्यशाली हैं। तभी तो बिना कुछ किये ही चारों ओर आपकी प्रशंसा के पुल बँध गये। हमें तो सच्चा हाल अब मालूम हुआ है कि, वे लोग जिनमें आपकी धाक जमी हुई है, दाढ़ी और मूँछ के होते हुए भी बड़े भारी नपुंसक हैं। अन्यथा आपसा कंस का एक साधारण सेवक क्या नाम पैदा कर सकता था? महात्मा जी! अभी तक आप नामर्दों ही में खेलते कूदते रहे हैं। मुझ सरीखे योद्धा के सामने जब आप आवेंगे, तब आपको आटा दाल का भाव मालूम होगा।

हे उलूक ! वहाँ पर महामूर्ख भोजनभट्ट भीम भी तुम्हें मिलेगा। उससे कहना कि, देख तुझे मैंने राजा विराट के यहाँ बल्लव नामक रसोइया तो बना ही दिया था। पहले जो तूने भरी सभा में प्रतिज्ञा की थी उसे भूल मत जाना। तू अगर पी सके तो दुःशासन का शोणित पान अवश्य करना और अपने प्रतिज्ञानुसार कौरवों का एक साथ ही सर्वनाश कर डालने से भी मत चूकना। अरे ! तू तो पूरा उदरम्भरि (भोजनभट्ट, पेट्ट) है। तुझे तो केवल भोज्य और पेय पदार्थों में नियुक्त रखना चाहिये। भला लड़ाई में कभी भोजनभट्टों ने विजय प्राप्त की है। इस पर भी यदि कुछ हिम्मत हो तो आजा मैदान में ; किन्तु यह निश्चय रखना कि तू मारा मेरे ही हाथ से जावेगा। रे भीम ! सभा में तेरा बकना बिल्कुल व्यर्थ ही था।

अच्छा हे दूतश्रेष्ठ ! इसके बाद तू नकुल से कहना कि, रे नकुल ! अब तू सँभल जा और युद्ध में आ कर पराक्रम दिखला। हमें यह भी देखना है कि, युधिष्ठिर का तुझ पर कितना प्रेम है और हम लोगों से तेरा कितना द्वेष है। ज़रा फिर से द्रौपदी पर पड़े हुए क्लेशों को याद कर लेना। इसी प्रकार सहदेव को भी अच्छी तरह सावधान कर देना। राजा विराट और द्रुपद से कहना कि, सेवकों ने स्वामी के और स्वामी ने सेवकों के गुण दोषों पर आज तक कभी ध्यान नहीं दिया। इसी कारण तू आज हमसे लड़ने आया है और यह समझता है कि, यह दुर्योधन नीच और दुराचारी होने के कारण राज्य के योग्य नहीं है। तुम सब मिल कर मुझे मारने और पाण्डवों की सहायता करने के लिये सहर्ष आना।

हे उलूक ! धृष्टद्युम्न से कहना कि, तू जिस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था, वह अब आ गया। जब रणभूमि में द्रोणाचार्य से तेरी भेंट होगी, तब तुझे मालूम होगा, कि मैंने क्या किया और मुझे क्या करना चाहिये था ? अपनी मित्र मण्डली सहित आ कर अपना कौशल दिखला। महाबाहु शिखण्डी से कहना, देख पितामह भीष्म तो तुझे नपुंसक समझ कर तुझसे लड़ेंगे नहीं, बस फिर क्या है ? तू मौज से निर्भय हो कर रणभूमि में अपना पराक्रम दिखलाना। क्योंकि हम लोगों को तेरी शूरता देखने की बड़ी लालसा है। देख रे उलूक ! श्रीकृष्ण को सुना कर अर्जुन से कहना कि, तू या तो हम सब लोगों का शीघ्र ही संहार कर पृथ्वी का शासन कर। जैसी कि तेरी प्रतिज्ञा है, अन्यथा हम लोग ही तेरा संहार कर तुझे धराशायी बना देंगे। अपने वनवास की व्यथाओं और द्रौपदी के अपमान का बार बार ध्यान कर के पुरुषत्व प्राप्त कर वीराङ्गना क्षत्राणियाँ जिस दिन के लिये प्रवीर पुत्रों को पैदा करती हैं, वह समय अब आ पहुँचा है। अब मैदान में आ जा और अपनी अस्त्र शस्त्र कुशलता दिखला। स्वदेश से परदेश में गये हुए किस दुखिया और अपराधी का हृदय नहीं दुःखित होता। कुलीन और वीर तो सभी पाये धन को हड़प कर जाने वाले पापी का राज्य विनष्ट कर देने के लिये हाथ धोये बैठे रहते हैं। अब तुझे अपनी बड़ी बड़ी बातों का हर समय ख़याल रखना चाहिये। क्योंकि अब यही समय उन सब को पूरा करने का है। देखो कर्त्तव्यशील कर्म कर के दिखला देने वाले को ही हम तो भला आदमी समझते हैं और जो केवल मुँह से बड़बड़ लगाये रहता है कर्त्ता कुछ नहीं, वही हमारी दृष्टि में नीच है। मनुष्य को परिस्थिति और राज्य की रक्षा प्राणपण से करनी चाहिये। सो तेरी यह दोनों चीज़ें शोचनीय हैं। राज्य शत्रुओं के अधिकार में है और रहने के लिये कहीं निश्चित एक झोंपड़ी तक भी तेरे पास नहीं है। जब हम जुए में हारी हुई द्रौपदी को सभा में बलात्कार से ले आये थे, तब वीरता रखने वाले या पुरुष नामधारी सभी को उस कर्म से क्रोध आया होगा। हे अर्जुन ! जब तक तू इन सब का उद्धार न कर ले तब तक मैं तो

तुझे बड़ा छटा हुआ कायर समझता हूँ। मेरी आज्ञा से तुझे बारह वर्ष तो वन में और एक वर्ष पर्यन्त विराट देश में गुप्त निवास करना पड़ा था। अरे निर्वीर्य! कम से कम इन्हीं सब हीन बातों को सोच समझ कर, तू कुछ थोड़ी देर के लिये पौरुष धारण कर ले। तुझे और तेरे भाई के लिये जो गालियाँ देते हैं आज उन पर तुझे क्यों नहीं क्रोध आता? अरे पागल! क्रोध ही तो वीरता का चिन्ह है। इस लिये शूरता, वीरता और क्रोधीपन का घमण्ड रखने वाले हे अर्जुन! आज आ कर अपनी वीरता क्यों नहीं दिखलाता। अब आज कल का समय बड़ा अच्छा है। कुरुक्षेत्र का स्थान भी पङ्करहित और निर्मल है। तेरे रथ के घोड़े भी खूब मज़बूत हैं। इस लिये अपने हिमायती कृष्ण को साथ ले कर कल प्रातःकाल ही लड़ने के लिये चल दे। जैसे कोई विना पहाड़ पर चढ़े ही अपनी बड़ाई बघारने लगे, तो निश्चय समझ लो कि, यह मनुष्य बड़ा भारी नीच है, वैसे ही तू भी करता तो कुछ है नहीं और बातें बहुत बनाता है। कुछ पौरुष और पराक्रम दिखला। भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि महारथियों को परास्त किये बिना ही तू राज्य ले लेना चाहता है। रे मूर्ख! धनुर्वेदाचार्य गुरु द्रोण को जीत कर स्वयं विजयश्री को भोगने की तू इच्छा करता है। यह तेरा मनोरथ फूँक से पहाड़ को उड़ाने का प्रयत्न करने वाले के समान व्यर्थ है। भला कभी वायु से पर्वत भी पेड़ों की तरह उखाड़े जा सकते हैं। क्या कहीं आकाश भूमि पर आ सकता है? अधिक क्या? कालचक्र के भी पलट जाने पर यह तेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। याद रख कि, द्रोणाचार्य से लड़ने के बाद कोई भी सकुशल अपने घर को नहीं लौट सकता? द्रोणाचार्य और भीष्म इन दोनों के शस्त्रों में यह गुण है कि, वे कभी ख़ाली नहीं जाते। यह जिसे मारना चाहें वह फिर जीवित रह नहीं सकता। अरे निर्बुद्धि! तू तो कुए का मेंढक है। तू मेरी सेना में आये हुए चारों दिशाओं के राजाओं को क्या पहिचाने? देख, मेरी यह देवसेना संग्राम के लिये तुली खड़ी है। इस अपार सैन्य-

महासागर में पड़ कर तुझे पीछे से पछताना पड़ेगा। हे उलूक! जब तू धर्मराज को यह सब सुना चुके तब वीर अर्जुन से फिर यह कहना कि, हे अर्जुन! यह तो हम भी जानते हैं कि, तेरे पास दो तूणीर ऐसे हैं जो कभी ख़ाली नहीं होते तथा अग्निदेव ने तुझे दिव्य रथ और ध्वजा प्रदान की हैं। इस कारण अब तू बकवाद तो अधिक ज़्यादः कर मत किन्तु काम कर, युद्ध करने ही से तेरा कार्य सिद्ध हो सकता है। मैं तेरे बल वीर्य को, तेरे गाण्डीव धनुष की शक्ति को तथा श्रीकृष्ण की सहायता आदि को भी अच्छी तरह जानता हूँ तथा मैंने तेरा राज्य छीन लिया है यह बात भी जानता हूँ। केवल कुलीन होने के कारण ही मनुष्य विजयी नहीं बन जाता। अनुकूलता और प्रतिकूलता तो विधाता के अधीन है। देख, तेरह वर्ष तक तुझे दुःखी बना कर वनवास दिया और राज्य स्वयं मैंने भोगा तथा भविष्यत् में भी तुझे भाइयों सहित मार कर मैं आनन्द करूँगा। रे नीच! यह तो बता कि, तब तेरा गाण्डीव और भीम की गदा कहाँ चली गयी थी जब कि, मैंने तुम लोगों को जुए में जीता था। देख मैंने तुझसे दासकर्म करवाया। तेरा भाई भीम राजा विराट के यहाँ जा कर रसोई बनाया करता था। यह सब मेरे ही पराक्रम का फल है। तू हिजड़ा बन कर कन्याओं को नाचना गाना सिखाया करता था। यह सब भी मेरी ही करतूतें थीं। तूने यह समझ रखा है कि, श्रीकृष्ण के भय से दुर्योधन तुझे राज्य दे देगा। यह तेरी भारी भूल है? भले ही चाहे तू श्रीकृष्ण को साथ में ले कर आना। मायावी, कपटी, जादूगरों से वीरों को कभी क्लेश या भय नहीं होता। बल्कि उन्हें देख कर वे और भी क्रुद्ध हो जाते हैं। याद रख, मेरे अमोघ शस्त्रों के सामने हज़ारों कृष्ण अर्जुन, मारे मारे फिरेंगे और उन्हें कोई रक्षास्थान भी प्राप्त न होगा। पितामह भीष्म के साथ लड़ने की इच्छा रखने वाला अपने मस्तक से विशाल शैल को चूर्ण करना चाहता है और भुजाओं से महासागर पार करना चाहता है। इस जन-महासागर में कृपाचार्य महामत्स्य हैं, विविंशति सर्पराज हैं,

वृहद्बल भयङ्कर तूफान के समान हैं, सोमदत्त का पुत्र मत्स्य है, भीष्म महावेग हैं, द्रोण महाग्राह हैं, कर्ण और शल्य महाभ्रमर के समान हैं, काम्बोजपति वाड़वाग्नि, दुःशासन महावेग और शल एवं शल्य महा-मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध सर्प और नक्र हैं, जयद्रथ द्वीप है, पुरुमित्र उसकी अगाधता है, दुर्मर्षण रूप इसमें जल है तथा इसका प्रपात स्वरूप शकुनि है; इस शस्त्रसमूह से शोभित सैन्य-महासागर में जब तू घुसेगा और घबरा कर अचेत हो जावेगा तभी तेरे बन्धु बान्धवों का नाश किया जावेगा; तब तू पछतावेगा। जैसे पापियों को स्वर्ग से निराश होना पड़ता है, वैसे ही तुझमें भी इस राज्य के लेने की लालसा नहीं रह जायगी। इस लिये बस शान्त हो जा। जैसे बिना तप के स्वर्ग दुर्लभ है, वैसे ही तुझे भी राज्य का मिलना दुर्लभ ही नहीं बल्कि असम्भव है।

एक सौ इकसठ का अध्याय

उलूक का दूत बन कर पाण्डवों के निकट गमन

सञ्जय ने कहा—हे धृतराष्ट्र! दुर्योधन की आज्ञा पा कर उलूक पाण्डवों की छावनी में गया और वहाँ जा कर राजा युधिष्ठिर से बोला कि, हे धर्मराज! आप दूतों के धर्म को जानते हैं। इस कारण मैं आपको दुर्योधन का सँदेश सुनाता हूँ। आप मुझसे अप्रसन्न न हों।

धर्मराज ने कहा—हे उलूक! तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। तुम निःशङ्क हो कर दुर्मति दुर्योधन का संदेश कहो। इस प्रकार अभय वचन पा कर दुर्योधन का सन्देश उलूक ने सब राजाओं के बीच में बैठे हुए धर्मराज से कहना आरम्भ किया।

वह बोला—महाराज! दुर्योधन ने कहा है कि, आप जब जुए में हार गये थे, तब दुर्योधन ने द्रौपदी को भरी सभा में बलात्कार से बुलाया था। यह देख कर, प्रत्येक पुरुषत्वाभिमानी को क्रोध आना उचित है।

जब तुम्हें वनवास दिया गया, तब तुम बारह वर्ष वन में रहे और एक वर्ष बराबर तुमने राजा विराट की सेवकाई की। इस कारण अब तुम इन सब अपमानों को याद कर के सच्चे वीर पुरुष बन जाओ। भीमसेन ने जो दुःशासन का शोणित पान करने का प्रण किया है, वह भी यदि सामर्थ्य रखता हो तो उसका रुधिर पान कर लेवे। अस्त्रों शस्त्रों में देवताओं का आवाहन हो चुका है। मार्ग साफ़, स्वच्छ, समान और पङ्करहित हो गया है। कुरुक्षेत्र की भूमि अब संग्राम के सर्वथा योग्य है। इधर आपके अश्व आदि भी खूब परिपुष्ट हैं। इस कारण आप श्रीकृष्ण को साथ ले कर कल अवश्य ही रणक्षेत्र में उपस्थित हों। देखो धर्मराज! यह व्यर्थ की बकवाद छोड़ो। ऊँट जब तक पहाड़ तक नहीं पहुँचता, तभी तक बलबलाया करता है और जब पहुँच जाता है, तब उसे आटे दाल का भाव मालूम हो जाता है। इसलिये तुम भीष्म पितामह, शल्य, कर्ण, दुःशासन, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, आदि के सामने आये बिना ही डींगे क्यों मारते हो? महाराज! बिना इनको जीते यह चाहो कि, हमें राज्य मिल जावे यह बात तीनों कालों में भी असम्भव है। महारथी द्रोणाचार्य को परास्त कर लेने वाला आदमी सुमेरु पर्वत को हिला सकता है और स्वर्ग को भूमि पर ला सकता है? तथा पर्वत को उड़ा सकता है, भीष्म और द्रोणाचार्य जिसको मारना चाहे उसका जीवित रहना असम्भव है। तुम तो कुछ क्या? बिलकुल कूप-मण्डूक के समान ही मुझे मालूम होते हो। क्योंकि तुम ने चारों दिशाओं से आये हुए इस महासैन्य को और राजाओं को नहीं पहिचाना। रे मूर्ख! अपार महासागर के समान दुर्धर्ष सैन्य के साथ रहने वाले मेरे साथ तू क्या लड़ सकता है?

धर्मराज को यह सन्देशा सुना चुकने के बाद दूतराज उलूक ने अर्जुन की ओर मुँह फेर कर कहा—हे अर्जुन! तुम भी बड़े बकवादी हो। देखो कार्यसिद्धि कुछ कर दिखाने पर ही होती है। अतः प्रलाप करना त्यागो और संग्राम करो। देखो अर्जुन! प्रायः मुँह से सभी बड़बड़ाया करते हैं; किन्तु

उनके काम सिद्ध नहीं होते। कार्यसिद्धि के लिये कर्म करने की आवश्यकता है। तुम्हारे कृष्ण सहायक हैं। तुम्हारे पास महाप्रचण्ड गाण्डीव धनुष है। तुम एक अद्वितीय योद्धा हो यह सब जानते हुए भी मैंने तुम्हारा राज्य छीन लिया है। पराये मनुष्यों को स्वाधीन या प्रसन्न कर लेना हँसी खेल नहीं है। यह महान् कार्य तो केवल विधाता के ही अधीन है। केवल कुलीन होने मात्र ही से विजय क्यों प्राप्त नहीं होती। जब तू वनवास में था तब से अब तक मैंने बराबर राज्य भोगा और, अब भी तेरे भाइयों को मार कर राज्य भोगूँगा। भीम का बल और तुम्हारा गाण्डीव धनुष तब कहाँ गया था जब कि, मैंने तुम्हें जुए में जीत लिया था। हे अर्जुन! मेरे प्रभाव को तो तुम भली भाँति जानते ही हो। देखो राजा विराट के यहाँ बेचारा भीम तो रसोई बनाते बनाते थक जाता था और तुम सिर पर औरतों की सी चोटी रख कर कन्याओं को नृत्यगान सिखाया करते थे। छली प्रपञ्ची और जादूगरों से वीर लोग नहीं डरा करते; बल्कि उन पर और क्रुद्ध हुआ करते हैं। तुमने यह समझ रखा होगा कि, दुर्योधन श्रीकृष्ण के भय से राज्य मुझे लौटा देगा सो यह बात स्वप्न में भी मत विचारना।

हे मूर्ख! मेरे अमोघ अस्त्रों के सम्मुख एक कृष्ण की तो बात ही क्या है, असंख्यों कृष्ण और अर्जुन न ठहर सकेंगे। जो मनुष्य भीष्म से युद्ध करना चाहता है वह पर्वत को फूँक से उड़ाना चाहता है और भुजाओं से समुद्र को तैरना चाहता है। इस जनमहासागर में कृपाचार्य महामत्स्य, विविंशति महासर्प, बृहद्बल भयङ्कर तूफ़ान, सोमदत्त महातिमिंगल मत्स्य, भीष्म अनन्त प्रवाह, द्रोण ग्राह, कर्ण तथा शल्य मगर और भ्रमर हैं। काम्बोज-पति वड़वाग्नि, दुःशासन ओघ, शल शल्य मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध नक्र और सर्प हैं, जयद्रथ द्वीप, पुरुमित्र अगाधता तथा दुर्मर्षण जल और शकुनि किनारा हैं। ऐसे शस्त्रों से युक्त एवं भयङ्कर सैन्यमहासागर में जब फँस जाओगे; तब तुम्हें होश आवेगा। जब तुम्हारे बन्धु बान्धव मर जावेंगे

तब जैसे पापी की स्वर्गकामना नष्ट हो जाती है, वैसे ही तेरी राज्यप्राप्ति की इच्छा भी समूल नष्ट हो जावेगी। इस लिये तुम चुपचाप जा कर बैठ रहो पापियों को स्वर्ग नहीं मिला करती और हिजड़ों को राज्य नहीं मिलता।

एक सौ बासठ का अध्याय

पाण्डवों का उलूक द्वारा कौरवों को संदेसा

सञ्जय बोले—हे धृतराष्ट्र! इसके बाद भी उलूक ने अर्जुन को दुर्योधन का भेजा हुआ संदेशा सुनाना आरम्भ किया। उस समय क्रोधी सर्प के समान अर्जुन का अन्तरात्मा अत्यन्त खिन्न होने लगा। एक तो कौरवों के कपट व्यहार से पाण्डव पहिले ही से जले बैठे थे दूसरे अब उलूक के वाक्यों पर उन्हें क्रोध उपजा। वे सब अपने अपने आसनों से उठ कर खड़े हो गये और महाक्रुद्ध सर्पों की तरह बाहुओं को फटकारने लगे। भीम अपने आरक्त विशाल नेत्रों से श्रीकृष्ण की ओर देखने लगा। भीम की इस प्रलयकारिणी भयङ्कर दृष्टि को देख कर श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उलूक से कहा कि, अच्छा, अब तुम शीघ्र ही दुर्योधन के पास जा कर कहो कि, हम लोगों ने तुम्हारी सब बातें सुन लीं और समझ लीं। तुम्हारा निमन्त्रण हम सहर्ष स्वीकार करते हैं।

इसके बाद श्रीकृष्ण के चुप हो जाने पर भी उलूक ने फिर दुर्योधन का सन्देश कहना आरम्भ कर दिया। अस्तु उन विषमय वाक्यबाणों के प्रहार से अर्जुन को बड़ा क्रोध आया और वह झल्ला उठा तथा अन्य राजा लोग भी उसके इस प्रकार के अपमान को न सह सके और क्रोध से उबलने लगे। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, केकयभ्राता घटोत्कच, अभिमन्यु, धृष्टकेतु, भीम, नकुल, सहदेव सब लाल ताते हो गये।

इस प्रकार राजाओं के भयङ्कर क्रोधाग्नि को देख कर, भीम दाँतों को

कटकटाने, हाथ मलने और ओठों को चाटने लगा और बड़ी शीघ्रता से उठ कर उलूक से बोला—हे मूर्ख! दुर्योधन का सँदेश निर्बल मनुष्यों को उत्साहित करने के लिये है। उसको हमने सुन लिया अब ज़रा तू हमारी बात सुन। यह मेरी बातें कर्ण शकुनि आदि को सुनाते हुए दुर्योधन से कहना कि हे नीच दुर्योधन! हम लोग केवल अपने बड़े भाई की प्रसन्नता के लिये ही अब तक तेरे अपराधों को सहन करते आये हैं। इस कारण तुझे यह हम लोगों की कृपा समझनी चाहिये। केवल कुल की मंगलकामना से ही श्रीकृष्ण को सन्धि का सँदेशा ले कर तुम लोगों के पास भेजा था; किन्तु तू कुछ और ही समझता है। अच्छी बात है तो तू अब कल आ कर हम से संग्राम करना, तुझे काल ने घेर लिया है। अरे पापात्मन्! मैं तुझे और तेरे भाइयों को अवश्य ही मार डालूँगा। घबरा मत जैसे तू कहता है वैसे ही होगा। याद रख, मेरा वचन कभी झूँठा नहीं हो सकता। चाहे समुद्र सूख जावे पहाड़ भूमि पर आ गिरे। हे मूर्ख! तेरी सहायता चाहे सम्पूर्ण देवता ही आ कर क्यों न करें; किन्तु पाण्डवों की प्रतिज्ञा अवश्य पूरी हो कर रहेगी। मैं दुष्ट दुःशासन के रुधिर का पान अवश्य ही करूँगा। मैं क्षत्रियों की सभा में जो कुछ भी कहता हूँ, वह बिल्कुल सत्य और अपनी शपथ खा कर कहता हूँ। उस समय चाहे कोई भी मेरे सम्मुख तुम लोगों की सहायता करने आवे, मैं निश्चय उसे भी यमलोक पहुँचा दूँगा।

भीम की बातें समाप्त होते ही सहदेव की भी आँखे लाल हो गयीं और वे क्रोध में आ कर बोले कि, हे उलूक! जा अपने पिता से कान खोल कर कह देना कि, इस सारे झगड़े की जड़ तू ही है। आज यदि धृतराष्ट्र से तेरा कोई सम्बन्ध न होता तो निश्चय कौरव और पाण्डवों में बैर न बँधता; किन्तु तू तो बैर की साक्षात् मूर्ति है। तेरा जन्म ही कुल के नाश के लिये हुआ है। तुझ सा पापी भला कौन होगा? हे उलूक! तेरा पिता जन्म ही से हमारे साथ शत्रुता रखता है। इस कारण उसके सम्मुख पहिले तेरा संहार कर मैं कौरवों और पाण्डवों के विरोध का

अन्त करूँगा। इसके बाद सब के देखते देखते ही दुष्ट शकुनि का वध करूँगा।

भीम और सहदेव की बातें सुन कर अर्जुन ने हँस कर भीम से कहा—भाई साहब! अब आप यह निश्चय रखिये कि, जिन लोगों ने आपके साथ बैर ठाना है, वे अब इस पृथ्वी पर हैं ही नहीं। वे चाहे कितने ही सुरक्षित मन्दिर में क्यों न बैठे रहें, तो भी उन्हें कालपाश में बँधा ही समझिये। यह उलूक तो दूत है। इससे कोई कठोर बात नहीं कहनी चाहिये। क्योंकि उसका तो कुछ दोष है नहीं। उससे तो जैसा संदेशा स्वामि कहेंगे वे वैसा ही आ कर कह देते हैं। इस प्रकार अर्जुन ने भीम को समझा बुझा कर धृष्टद्युम्न आदि बन्धुओं से कहा कि, आप लोगों ने नीच दुर्योधन का सँदेश सुन ही लिया। आप लोगों को मेरी और कृष्ण की निन्दा सुन कर अत्यन्त क्रोध हुआ होगा। अच्छा अब मैं आपके आशीर्वाद और श्रीकृष्ण के प्रताप से इन क्षुद्र कीट क्षत्रियों को कुछ भी नहीं समझता हूँ। अतएव यदि आप मुझे इस दुर्योधन के संदेश का उत्तर देने की आज्ञा प्रदान करें तो मैं उत्तर दे दूँ। यह उलूक दुर्योधन को जा कर सुना देगा। यदि आप लोगों की सम्मति न हो तो कल रणभूमि ही में उसके इन सब प्रलापों का खरा जवाब दे दूँगा। क्योंकि बातों में उत्तर प्रत्युत्तर करना वीरों का काम नहीं है।

अर्जुन की सब राजाओं ने प्रशंसा की। इसके उपरान्त, श्रीधर्मराज जी सब राजाओं के सम्मुख बड़े शान्त भाव से दुर्योधन को सँदेश भेजने के लिये उलूक से कहने लगे—दुर्योधन! याद रख कोई भी राजा ऐसा न होगा जो अपमानित हो कर शान्त रह सके; किन्तु मैंने तेरे सब अपमानों को अब तक शान्त भाव से सहन किया है। अब मैं तेरी बातें सुन कर आज उनका उत्तर भेज रहा हूँ। रे कुलकलङ्की, वैरमूर्त्ति, नीच दुर्योधन! तूने सदा पाण्डवों के साथ कपट किया है; परन्तु याद रख, सच्चा क्षत्रिय वही है, जो अपने पराक्रम की प्रशंसा कर, आवाहन किये हुए शत्रुओं

को संग्रामभूमि में परास्त करता है । रे नीच ! यदि तू हमें रण में पुकार रहा है, तो देख भीष्म या लक्ष्मण की सहायता से उन्हें आगे रख कर हमारे सम्मुख रण में मत आना; किन्तु अपनी और अपने सेवकों की वीरता का भरोसा कर उनके साथ ही पाण्डवों से रणभूमि में लड़ना । जो स्वयं निर्बल हो कर औरों के भरोसे शत्रुओं के लिये संग्रामघोषणा देता है, वही नपुंसक कहलाता है । तूने कर्ण आदि के बल पर गर्व कर रखा है और हमारे सामने वीरता की डींग हाँकता है ।

श्रीकृष्ण बोले—हे उलूक ! यह दो बातें हमारी भी अपने राजा दुर्योधन से कह देना कि, श्रीकृष्ण से पाण्डवों ने सारथि बनने के लिये कहा है. सो वह केवल सारथ्य ही करेंगे, लड़ेंगे नहीं । इस कारण डरो नहीं और पुरुषार्थी बन कर सवेरे संग्राम में आ जाओ; किन्तु यह याद रखना, अन्त में तुम सब मेरे ही क्रोधाग्नि में भस्म हो जावोगे; किन्तु मैं इस समय ऐसा न कर केवल अर्जुन का सारथ्य ही करूँगा । आकाश में, पाताल में, चाहे जहाँ तू क्यों न चला जावे; किन्तु प्रातःकाल वीर अर्जुन का रथ तेरे सम्मुख ही होगा । तू भीम की बात को झूँठ समझता है, लेकिन याद रख कि, दुःशासन का शोणितपान भीम ने आज ही कर लिया । धर्मराज युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन आदि महावीर तुझ जैसे कीट की कुछ भी पर्वाह नहीं करते ।

एक सौ तिरसठ का अध्याय

पाण्डवों का दुर्योधन को सन्देश

हे राजा धृतराष्ट्र ! दुर्योधन के सन्देशे को सुन कर वीर अर्जुन क्रुद्ध हो और लाल लाल आँखें कर तथा भुजा उठा, उलूक को सुनाता हुआ कहने लगा ।—संसार में मैं तो उसीको वीर और असली क्षत्रिय समझता हूँ जो अपने बल वीर्य पराक्रम के भरोसे शत्रुओं को युद्ध के लिये आह्वान करता है;

किन्तु जो दूसरों के भरोसे ऐंठता और युद्धघोषणा करता है, वह भीरु है और क्षत्रियों में अधम है। रे मूर्ख दुर्योधन! तू निर्बल होता हुआ भी सबल बन कर अपनी धाक जमाने के लिये शत्रुओं का आह्वान कर रहा है। रे पापात्मन्! तूने महावीर भीष्म जी को मरणदीक्षा प्रदान की है। ऐसे सच्चे हितैषी के साथ यह व्यवहार करने पर भी तू अपने को बुद्धिमान और बलवान् समझता है? रे कुलाङ्गार! तूने यह समझ रखा है कि, पाण्डव दयालु और धर्मात्मा हैं। इस कारण वृद्ध भीष्म पर दया करेंगे और उन्हें नहीं मारेंगे; किन्तु यह तेरा विचार बिल्कुल भ्रमपूर्ण है। याद रख, मैं सब से पहिले भीष्म ही को मारूँगा। उलूक! तू जा कर दुर्योधन से कह देना कि, प्रातःकाल होते ही भयङ्कर जनसंहार का आरम्भ हो जायेगा। पितामह भीष्म केवल कौरवों की प्रशंसा करने के बहाने सभा में यह कह चुके हैं। हे राजन्! दुर्योधन आप घबराइये नहीं। मैं समस्त सृञ्जयों और शाल्वदेशी राजाओं को यदि चाहूँ तो क्षण भर में नष्ट कर सकता हूँ। मूर्ख दुर्योधन यह समझ कर और निर्भीक हो गया है, किन्तु यह असम्भव है कि, दुर्योधन हम सब पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर सके। तू केवल इस घमण्ड के कारण ही इस अनर्थ कर्म पर ध्यान नहीं देता है। याद रख, मैं सब से पहिले पितामह भीष्म ही का संहार कर डालूँगा। इस कारण जब भीष्म रणभूमि में आने लगें, तब तू भी उनकी रक्षा के लिये अपने सुन्दर रथ में बैठ कर आना और उन्हें बचाना। अन्यथा मैं तो सब से पहिले भीष्म ही को रथ पर से लुढ़का दूँगा। याद रख जब तू अपनी सेना के प्रधान नेता भीष्म को बाणों से छिपा हुआ देखेगा तब तुझे मेरी ये सब बातें याद आवेगीं। देख, अब भीमसेन भी अपनी वह प्रतिज्ञा पूरी करेगा, जो उसने सभा में दुःशासन के रुधिरपान के निमित्त की है। रे दुर्योधन! अपने धर्म को परित्याग करने का व्यर्थ बकवाद करने का तथा अन्यों की सहायता पर घमण्ड करने का तुझे अब शीघ्र ही विषमय परिणाम प्राप्त होने वाला है। जब हम और श्रीकृष्ण क्रुद्ध

हो कर रणभूमि में शाक पात की तरह तेरे सहायकों का संहार करेंगे, तब तुझे अपने जीवन से भी निराश हो जाना पड़ेगा। भीष्म द्रोण, कर्ण आदि के मर जाने पर तुझे राज्य सम्पति, पुत्र, कलत्र तथा अपने जीवन से भी घृणा हो जावेगी। अपने भाई बन्धुओं के मरण को सुन कर तथा भीम द्वारा किये गये प्रबल प्रहारों को देख कर, तुझे अपने कर्मों पर पश्चात्ताप होगा। हे उलूक! बस अब मैं और अधिक प्रतिज्ञाएँ नहीं करना चाहता; किन्तु यह सब मेरी बातें सच्ची होंगी।

धर्मराज ने भी उलूक से कहा—देखो, दुर्योधन से कहना कि, वह अपने आचारों से मेरे आचारों की परीक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि मैं सत्यासत्य के भेदों से परिचित हूँ। देखो भाई! मैं तो चींटी तक को अपने शरीर से दुःख देना नहीं चाहता हूँ; किन्तु क्या करूँ तुमने तो मेरी बात ही नहीं मानी। यदि तुम मुझे योंही ग्राम दे देते, तो आज यह सर्वनाश का समय उपस्थित न होता। क्या मुझे अपने कुटुम्बियों के विनाश का शोक न होगा? तू लालच में आ कर चाहे जो कुछ कहे और करे जब तूने श्रीकृष्ण की ही बात नहीं मानी, तब भला तुझे अब कौन समझा सकता है? बस अब अधिक कहना व्यर्थ है तेरी जो इच्छा हो सो कर हमने तेरा सन्देशा खूब सुना और समझ लिया है।

इसके बाद भीमसेन ने उलूक से कहा—अब दुर्योधन से जा कर कह कि, भीम अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी अवश्य करेगा। इस कारण तू अपनी रक्षा का स्थान ढूँढ़ रख। मैं कौरवों का काल हूँ। तेरे बन्धुओं को मार कर अपनी तीक्ष्ण गदा से तेरी भी जाँघ तोड़ूँगा। यह अभिमन्यु तेरी समस्त राजमण्डली के लिये महाकाल है। अब मैं कौरवों के नष्ट करने में कोर कसर न रखूँगा। एक और मेरी बात सुन ले। धर्मराज के सम्मुख मैं तुझे मारूँगा और तेरी लाश पर खड़ा होऊँगा।

इसके बाद नकुल और सहदेव ने भी कहा—हे उलूक! दुर्योधन से कहना कि, यह जो कुछ तेरी बुद्धि में आज कल समा रहा है, वह महान अनर्थों का

उत्पादक होगा। हम लोगों का इसमें कुछ भी दोष नहीं है। क्योंकि हम लोग बराबर तेरी आज्ञाओं का पालन करते चले आये हैं। जैसे आजकल तू हमारे क्लेशों को देख कर प्रसन्न होता और गर्व करता है, वैसे ही तू अपने बन्धुओं के संहार होने पर पश्चात्ताप के आँसू बहावेगा।

राजा द्रुपद और विराट ने भी दुर्योधन से कहा—देखो, कल तुम्हें हमारे पुरुषार्थ का कुछ न कुछ पता अवश्य ही चल जावेगा।

शिखण्डी ने उलूक से कहा—दुर्योधन से कहना कि, अब तू शीघ्र ही मेरे बल को देखेगा और जिन भीष्म की बदौलत तू ऐंठ रहा है, उन्हें तो मैं क्षण भर में रथ से नीचे गिरा दूँगा। अन्य सब वीरों के देखते देखते उन्हें यमराज के धाम में पहुँचा दूँगा।

धृष्टद्युम्न ने कहा—मैं द्रोणाचार्य का सपरिवार संहार कर डालूँगा। मैं अपने पूर्वजों के चरित्र का अवश्य ही अनुसरण करूँगा।

इसके उपरान्त धर्मराज ने उलूक से कहा कि, तू जा कर दुर्योधन से कहना कि, मैं किसी दशा में भी अपने बन्धुविनाश का कारण बनना नहीं चाहता, किन्तु यह सब तेरे ही कर्मों का फल है। बस हमें जो कुछ कहना था कह दिया। हे उलूक! अब तेरी इच्छा यदि जाने की हो तो शीघ्र ही चला जा इस प्रकार धर्मराज की आज्ञा पा कर उलूक वहाँ से चल दिया और दुर्योधन के पास आ कर अर्जुन का सन्देश, जैसा उन्होंने कहा था वैसा ही सुना दिया। उलूक की बातें सुनने के बाद, दुर्योधन ने शकुनि, कर्ण और दुःशासन को बुला कर कहा कि, आप लोग अपनी और अपने मित्र राजाओं की सेना के लिये आज्ञा दे दो। कल प्रातःकाल होने के पहिले सब के सब सेनापति युद्ध की तैयारी कर, रणभूमि में पहुँच जावें। बस कर्ण ने दूतों को आज्ञा दी। वे सब राजाओं और सेनापतियों को सूचना देने के लिये सेनानिवेशों में घूमने लगे और सर्वत्र यह घोषणा कर दी गयी कि, कल प्रातःकाल, रणभूमि में सब को पहुँच जाना चाहिये।

एक सौ चौंसठ का अध्याय

सेनापतियों की योजना

इधर राजा युधिष्ठिर ने भी धृष्टद्युम्न को अपनी सेना का प्रधान सेनापति बना कर, समस्त सेना सहित रणभूमि के लिये भेज दिया। महारथी अर्जुन आदि उसकी रक्षा करने वाले थे। सब सेना के आगे महाबली धृष्टद्युम्न, चलता था। जिसने द्रोणाचार्य को पकड़ने की प्रतिज्ञा की थी। जैसी जैसी जिसके पास सेना थी, वैसा वैसा ही उसे उत्साह था। अर्जुन कर्ण के साथ, भीम दुर्योधन के साथ युद्ध करेंगे। धृष्टद्युम्न शल्य के साथ, उत्तमौजा कृपाचार्य के साथ, नकुल अश्वत्थामा के साथ लड़ेंगे। युयुधान जयद्रथ से, शिखण्डी भीष्म से, सहदेव शकुनि से, चेकितान शल से, द्रौपदी के पुत्र त्रिगर्तों से, अभिमन्यु वृषसेन से लड़ें यही सेनापति की आज्ञा हुई। धृष्टद्युम्न ने फिर सब सेना की व्यूहरचना की और पाण्डवों की ओर से विजय प्राप्ति के लिये प्राणपण से तैयार हो गया।

[रथातिरथ-संख्यान पर्व]

एक सौ पैंसठ का अध्याय

भीष्म और दुर्योधन

राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सञ्जय! जब अर्जुन ने भीष्म के मारने की प्रतिज्ञा कर ली, तब मेरे मूर्ख दुर्बुद्धि पुत्रों ने क्या किया? भाई! मैं तो यह जानता हूँ कि, श्रीकृष्ण की सहायता से धनुर्धारी अर्जुन अवश्य भीष्म जी को मार डालेगा। हे सञ्जय! जब अर्जुन की प्रतिज्ञा भीष्म ने सुनी, तब उन्होंने जो उत्तर दिया हो, वह भी सुनाओ। कौरवों

के प्रधान सेनापति भीष्म जी ने जो कुछ भी पराक्रम दिखलाया हो, उसका भी वर्णन करो।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब भीष्म जी सेनापति के पद पर नियुक्त हो गये, तब वे दुर्योधन से कहने लगे कि, हे दुर्योधन! मैं आज तेरा सेनापति बना हूँ। अब तुझे किसी प्रकार का भी सन्देह न करना चाहिये। मैं सेना की व्यूहरचना और सैनिकों से काम लेना आदि सब बातें खूब जानता हूँ। शत्रुओं पर चढ़ाई करना उनके शस्त्राघातों को रोक देना आदि रण के कार्य बृहस्पति के आज्ञानुसार मैं भली भाँति जानता हूँ। देव, गन्धर्व, मनुष्य आदि जैसी व्यूहरचना कर पाण्डवों को आश्चर्य में डाल देना यह मेरा सब से पहिला काम होगा। तुम अपनी चिन्ता को दूर करो। मैं निःछल होकर पाण्डवों की सेना का सर्वनाश करूँगा।

यह सुन कर दुर्योधन ने कहा—हे महाबाहो! इस साधारण युद्ध की तो बात ही क्या है, मैं देवों, गन्धर्वों के भी युद्ध से नहीं डरता। जब मैं ऐसा निर्भीक हूँ, तब भला बतलाइये पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य सरीखे अलौकिक सामर्थ्यशाली महारथियों की रक्षा में रहते हुए मुझे क्यों कर भय हो सकता है। आप दोनों का होना ही मेरे विजय की सूचना दे रहा है। मैं आपकी कृपा से देवताओं का राज्य भी प्राप्त कर सकता हूँ। किन्तु मैं यह चाहता हूँ कि, मुझे यह मालूम हो जावे कि, आपके रथी महारथी कितने हैं और शत्रुओं के कितने हैं?

भीष्म जी ने कहा—अब तुम पहिले अपनी सेना के ही रथी अतिरथी और महारथियों को सुनो। हे दुर्योधन! तुम्हारी सेना में वैसे तो अनन्त रथी महारथी हैं; किन्तु मैं उनमें से प्रधानों को गिनाये देता हूँ। पहिले तो अपने सौ भाइयों सहित तुम्हीं महारथी हो। तुम सब लोग अस्त्र शस्त्र प्रवीण महाधैर्य-शाली और युद्धविद्या में चतुर हो। तुम बड़े उत्साही हो और तुमने पाण्डवों से कलह ठाना है। निश्चय ही तुम लोग संग्राम में पाञ्चालों का नाश करोगे। मैं तो तुम्हारा सेनापति हूँ ही। इस कारण मैं भी पाण्डवों

का तिरस्कार कर, वैरियों का विनाश करूँगा। मैं अपने मुँह अपनी प्रशंसा कैसे कर सकता हूँ। मुझे तो तुम जानते ही हो। इधर भोजवंशीय कृतवर्मा तुम्हारे सैन्य में अतिरथी है। उसके अस्त्र शस्त्र अमोघ हैं। वह दूर ही से शत्रुओं को मार गिरावेगा। इन्द्र जैसे राक्षसों को मार गिराता है; वैसे ही वह कृतवर्मा भी शत्रुओं का सर्वनाश कर डालेगा। मद्रराज शल्य भी बड़ा महारथी और युद्ध-विशारद है। वह तो श्रीकृष्ण से भी स्पर्द्धा रखने वाला है। वह केवल अपने भानजों (नकुल सहदेव) को छोड़ कर अन्य सब पाण्डवों से युद्ध करेगा। यह रण-महासागर में समस्त शत्रुओं को डुबो देगा। रण-कुशल भूरिश्रवा भी तुम्हारी सेना का एक मुख्य वीर है। वह वैरियों का विनाश करने का प्रयत्न करेगा और उन्हें यमलोक पहुँचावेगा। द्विरथी जयद्रथ भी महापराक्रमी है। इसने जब द्रौपदीहरण किया था, तब पाण्डवों ने इसे बड़ा कष्ट दिया था। इस कारण वह भी प्राचीन शत्रुता को याद कर, खूब संग्राम करेगा। उसने तो पाण्डवों के केवल मारने के लिये ही तीव्र तपश्चर्या, कर, वरदान प्राप्त किया है। अतः वह प्राणों का मोह त्याग अवश्य शत्रु-संहार करेगा।

एक सौ छियासठ का अध्याय

कौरवों में रथियों का परिचय

हे राजन्! काम्भोजपति सुदक्षिण भी तुम्हारी युद्ध में पूरी सहायता करेगा। यह रथियों में सब से अधिक पराक्रमी है। यह जिस समय शस्त्र वर्षा करेगा, उस समय शत्रुओं के छक्के छूट जावेंगे। इसके सहायक अन्य राजा भी बहुत से हो जावेंगे। राजा नील रथी है, वह खूब पराक्रम दिखला कर शत्रुओं पर आक्रमण करेगा। माहिष्मती का राजा पाण्डवों का पहिले ही से शत्रु बना बैठा है, इस कारण वह भी अवश्य तेरी सहायता करेगा।

अवन्तीपति राजा विन्द अनुविन्द भी महारथी हैं, ये दोनों बड़े युद्धकुशल और पराक्रमी हैं। ये दोनों सिंह हैं। जिस समय खड्ग बाण, प्राश और धनुष आदि अस्त्रों शस्त्रों द्वारा शत्रुओं पर आक्रमण करेंगे, उस समय उनका कचूमर निकाल देंगे। ये दोनों सेनाओं में भयङ्कर काल के समान निर्भय हो कर घूमा करते हैं। पाँचों त्रिगर्त मुख्य भी बड़े महारथी हैं और इनकी शत्रुता विराट नगर पर चढ़ाई के समय पाण्डवों से हो गयी है। इस कारण यह लोग भी पाण्डवों का नाश करने में कुछ उठा न रखेंगे। जैसे नदी में मगर मच्छ क्षोभ पैदा कर देते हैं वैसे ही यह सब भी पाण्डवों में क्षोभ और विनाश उपस्थित कर देंगे। इन सब त्रिगर्त महारथियों में सत्यरथ मुख्य है। इन पाँचों का विरोध पाण्डवों की दिग्विजय यात्रा से आरम्भ हो गया है। इस कारण यह पाण्डवों का अवश्य ही संहार करेंगे। तेरा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासन का पुत्र यह दोनों ही तरुण और युद्ध चतुर हैं तथा रथी हैं। इनका पराक्रम भी बड़ा असह्य है। रथी दण्डधार भी अपनी सेना की रक्षा करता हुआ तुम्हारी ओर से लड़ेगा। महारथी कृपाचार्य तो सब रथियों के अध्यक्ष ही ठहरे। इनकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। वे अपने प्राणों की पर्वाह न कर तेरे दुश्मनों को मार गिरावेंगे। जैसे स्वामिकार्त्तिकेय रण में अजेय हैं, वैसे ही यह भी किसी से परास्त नहीं हो सकते। हे दुर्योधन! यह तो बड़ी भयङ्कर सेनाओं को भी भस्म कर सकते हैं।

एक सौ सरसठ का अध्याय

कौरव पक्षीय वीरों का परिचय

हे दुर्योधन! शकुनि रथी है और वह भी खूब युद्ध करेगा तथा शकुनि की वायु जैसी वेगवती सेना भी अत्यन्त रणकुशल और निर्भीक है।

महाशक्तिशाली धनुर्धारी वीर अश्वत्थामा महारथी है। इस लिये वह बड़े बड़े वीरों के सम्मुख अपना युद्धकौशल दिखलावेगा। जैसे गाण्डीव धनुष से निरन्तर एक के बाद एक बाण निकलते चले जाते हैं, वैसे ही इस अश्वत्थामा के बाण भी निरन्तर शत्रुओं पर छूटते रहते हैं। यह महापराक्रमी यदि चाहे तो त्रिलोकी को भस्म कर सकता है। यह उदार बुद्धि वाला तपःप्रभाव-सम्पन्न महाबली द्रोणाचार्य का पुत्र है; किन्तु इसमें एक महादोष यह है कि, यह अपने प्राणों का बड़ा मोह रखता है। यदि यह दोष इसमें न होता तो निश्चय यही एक वीर सब पाण्डवों को परास्त कर डालता। इसके पिता बड़े पराक्रमी हैं। यह और वे दोनों ही मिल कर शत्रुओं का सर्वनाश कर डालेंगे। द्रोणाचार्य सब के गुरु हैं, वे सृञ्जयों का अवश्य ही संहार कर डालेंगे; किन्तु उन्हें अर्जुन से प्रेम अवश्य है। इस कारण वे अर्जुन को कभी न मारेंगे और अधिक क्या वे अश्वत्थामा से भी अधिक अर्जुन पर स्नेह रखते हैं। राजा पौरव भी महारथी है। वह सब शत्रुओं को अपनी सेना द्वारा काँट छाँट कर बराबर कर देता है। राजकुमार बृहद्बल भी एक रथी है। वह शत्रुसेना में क्रुद्ध यमराज के समान बिचरेगा। इसके वीर योद्धा भी तुम्हारे शत्रुओं का संहार करेंगे। कर्णपुत्र वृषसेन रथी है। वह भी कुछ कम शक्तिशाली नहीं है। महाप्रतापी जरासन्ध भी शत्रुओं को रणभूमि में खदेड़ डालेगा। वह रथ पर चढ़ कर शत्रुओं पर धावा करेगा। यह युद्धभूमि से पीछे कभी न हटेगा। सेनापति सत्यवान भी बड़ा शूरवीर है। रण का नाम सुनते ही उसके पेट में लड्डू फूटने लगते हैं और वह तुरन्त रथ पर बैठे हुए शत्रुओं के सम्मुख छलाँगें मारता हुआ जा पहुँचता है। इस कारण वह भी तुम्हारी पूरी सहायता करेगा। राक्षसराज अलम्बुश भी बड़ा कठिन कर्म करने वाला और अनेक संग्रामों को जीतने वाला महारथी है। वह सब से अच्छा महारथी, वीर और मायावी है। इस कारण वह सेना के बाहर भीतर सब ओर निर्भीक हो कर, शत्रुओं का संहार करता हुआ घूमेगा। भगदत्त बड़ा वीर है।

अर्जुन के साथ एक बार लड़ भी चुका है। बहुत बड़ा प्रचण्ड और युद्ध-विद्या में कुशल है। अर्जुन से जब इसका संग्राम हुआ, तब इसने सोचा कि, चलो इन्द्र हमारा मित्र है और यह इन्द्र का पुत्र है। इस लिये उसने भी अर्जुन के साथ मैत्री कर ली। जैसे ऐरावत पर चढ़ कर देवराज इन्द्र देवताओं की सेना के साथ दानवों पर चढ़ाई करते हैं, वैसे ही यह भी हम लोगों के साथ शत्रुओं का सर्वनाश करेगा।

एक सौ अड़सठ का अध्याय

कर्ण का बिगड़ खड़ा होना

हे राजन्! अचल और वृषक नाम के दोनों भ्राता रथी हैं। वे बड़े दुर्धर्ष और पराक्रमी हैं और तेरे शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। यह तेरा महामन्त्री कर्ण जिसके कारण तू आज इस भयङ्कर संग्राम में सम्मिलित हुआ है बड़ा नीच और कठोर है। इसीने तुझे उत्तेजना दे दे कर यह युद्ध ठनवाया है। इसे न रथी कह सकते और न महारथी ही कह सकते हैं। यह अत्यन्त दयालु होने के कारण तथा परशुराम जी के शाप से दिव्य कुण्डल, कवच और विद्या आदि सब कुछ खो बैठा है। इस कारण मैं इसे आधा रथी समझता हूँ। यदि यह अर्जुन के साथ लड़ेगा तो निश्चय ही जीवित न रहेगा।

यह सुन कर द्रोणाचार्य ने कहा—हे भीष्म जी! आप बिलकुल ठीक कहते हैं। यह कर्ण ऐसा ही है, यह जहाँ लड़ने गया वहाँ से परास्त हो कर ही भागा है। मैं भी इसे आधा रथी समझता हूँ।

यह सुन कर कर्ण को बड़ा भारी क्रोध हुआ और वह कटुवचन बोलता हुआ आँखें फाड़कर कहने लगा—हे पितामह! तुम मुझ निरपराधी का निरन्तर अपमान किया करते हो; किन्तु यह सब मैं केवल दुर्योधन के कारण सहन

कर लेता हूँ। तुम मुझे बिलकुल मूढ़ ही समझते हो। तुम्हारे कहने का सब को विश्वास हो जायगा और सारा संसार मुझे अर्धरथी ही मानने लगेगा। क्योंकि यह सब जानते हैं कि, तुम झूठ नहीं बोला करते। तुम कभी मुझे अच्छा नहीं बतलाते और मेरी निन्दा किया करते हो। इस कारण तुम मुझे कौरवों के पूरे शत्रु प्रतीत होते हो। देखो अत्यन्त बूढ़ा होना, बाल श्वेत हो जाना, बड़े कुटुम्ब वाला होना इनमें से किसी बात से भी भीष्म को महारथी नहीं कहा जा सकता। क्षत्रिय बल से, ब्राह्मण वेदों के ज्ञान से, वैश्य धन से और शूद्र अवस्था से बड़े माने जाते हैं। तुम काम और मोह से पूर्ण हो। इस कारण रथी, अतिरथी और महारथी का भेद निकाला करते हो। हे महावीर दुर्योधन! तनिक सोच विचार कर काम कर और इस अपने शत्रु भीष्म का परित्याग कर दे। जब अपनी सेना ही में भेद-भाव पड़ जावे, तब भला फिर कैसे कल्याण हो सकता है? इन सब नर-वीरों के सामने मेरी निन्दा कर के भीष्म ने सब को मेरी ओर से सन्देह में डाल दिया है। आप मुझे समझते क्या हैं? मैं अकेला ही सब पाण्डव-सेना को भगा दूँगा। यह भीष्म जी तो केवल सेना के ज्ञान ही में कुशल हैं। जैसे सिंह को देख कर गाएँ इधर उधर भागने लगती हैं; वैसे ही मुझे और मेरे अमोघ बाणों को देख कर पाञ्चालदेशीय राजाओं के सहित पाण्डव लोग भाग निकलेंगे। कहाँ युद्ध और कहाँ भयङ्कर संहारी, कहाँ बेचारे मरणोन्मुख बूढ़े बाबा भीष्म और कहाँ गुप्त मन्त्र की मनोहर सूक्तियाँ? यह बुड्ढा अकेला हो कर भी सारे संसार के साथ स्पर्द्धा रखता है। इसके कोई आँख तले ही नहीं आता। इसे सब के पुरुषत्व पर सन्देह ही बना रहता है। हे राजा दुर्योधन! शास्त्रकारों की आज्ञा है कि, वृद्धों की बातें अवश्य माने, किन्तु आवश्यकता से अधिक जो बूढ़े हो गये हैं, अर्थात् जो सठिया गये हों उनकी बातों पर विशेष ध्यान न दे। क्योंकि उनमें और बालकों में कोई अन्तर नहीं है। हे राजन्! मैं तो अकेला ही समस्त पाण्डवों की सेना का संहार कर सकता हूँ; किन्तु

इस लिये फिर उदास हो जाता हूँ कि, मारूँगा मैं और बड़ाई होगी भीष्म की। हे राजन् ! जब तुमने भीष्म के सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया है, तब यश उन्हींको मिलेगा। अतः भीष्म जब तक जीवित हैं, तब तक मैं कभी नहीं लड़ूँगा, किन्तु जब भीष्म मारे जायँगे ; तब मैं समस्त महारथियों के साथ लड़ूँगा।

भीष्म जी बोले—चिरकाल से मैं जिस महासमर का अनुमान कर रहा था, उसी महासमर का भार दुर्योधन की ओर से मेरे कन्धों पर आ पड़ा है। हे सूतपुत्र ! ऐसे रोमाञ्चकारी समय के उपस्थित होने पर मैं नहीं चाहता कि, हमारे दल में पारस्परिक मतभेद उपस्थित हो, इसीसे तू तभी तक जीवित है। हे कर्ण ! मैं बूढ़ा अवश्य हूँ। तो भी तुझ सरीखे बालक को अपना पराक्रम प्रदर्शित कर, तेरी युद्धलालसा और जीवित रहने की आकांक्षा को दूर कर देना चाहता हूँ। जब जमदग्निनन्दन परशुराम ही बड़े बड़े अस्त्रों का प्रयोग कर मुझे ज़रा भी पीड़ित नहीं कर सके, तब तू है ही किस गिनती में। अरे नीच ! अरे कुल-कलङ्क ! जो सत्पुरुष होते हैं, वे अपने बल की डींगे नहीं हाँका करते ; पर क्या करूँ, विवश हो मुझे अपना बखान तेरे सामने करना पड़ता है। जब काशिराज के यहाँ राजकुमारियों का स्वयम्बर हुआ था, तब उसमें मैंने अकेले ही, वहाँ एकत्रित समस्त राजाओं को परास्त कर दिया था और मैं काशिराज की तीनों राजकुमारियों को ले आया था। रण में सामान्य तथा विशेष बलवान सहस्रों राजाओं को उनकी सेनाओं सहित मैंने अकेले ही परास्त किया था। तुझ जैसे झगड़े की मूर्त्ति के कारण कौरवों के ऊपर भी बड़ा भारी सङ्कट पड़ने वाला है। अतः अब तू पुरुष बन कर अपने नाश के लिये उद्योग कर। रे परम दुष्टबुद्धि ! तू जिस अर्जुन से सदा स्पर्द्धा किया करता है, उस अर्जुन के साथ अब तू लड़ो और मैं देखूँ कि, तू उस रण से सकुशल लौट कर आ गया है।

तदनन्तर प्रतापी दुर्योधन ने भीष्म पितामह से कहा—हे गङ्गानन्दन !

आप मेरी ओर देखें, आपको बड़ा भारी काम करना है। अतः आप ऐसा उपाय सोचें, जिससे मेरी भलाई हो। मुझे तो आप दोनों ही से बड़ी आशा है। अब आप मुझे पुनः प्रतिपक्षियों के सैन्यबल का वर्णन सुनावें। हे कुरुवंशी राजन्! मैं शत्रुओं के बलाबल को जानना चाहता हूँ। क्योंकि कल सवेरे ही से तो युद्ध आरम्भ हो जायगा।

एक सौ उनहत्तर का अध्याय

पाण्डवपक्षीय वीरगण

भीष्म पितामह कहने लगे—दुर्योधन! तुम्हारी सेना के जो रथी, महारथी एवं अर्धरथी थे, उनका व्योरा तो मैं तुम्हें बतला हो चुका। अब तुम पाण्डव सैन्य के वीरों का व्योरा भी सुन लो। हे राजन्! यदि तुम्हें पाण्डव-सैन्य के रथियों आदि का व्योरा सुनना अभीष्ट है, तो तुम इन समस्त राजाओं के बीच बैठ कर उसे सुनो। हे तात! प्रथम तो मैं महाराज युधिष्ठिर का नाम लूँगा। क्योंकि वे स्वयं एक महारथी हैं। अतः वे अग्नि की तरह शत्रुसैन्य को सन्तप्त करते हुए रणक्षेत्र में घूमेंगे। दूसरा भीमसेन है। वह अकेला ही आठ महारथियों के समान है। गदायुद्ध और बाणयुद्ध में उसकी टक्कर का एक भी महारथी नहीं है। भीम में दस सहस्र गजों का बल है। वह बड़ा अभिमानी और तेजस्वी है। अतः वह मनुष्य नहीं; किन्तु देवतावत् है। भीम के अतिरिक्त माद्री के दोनों पुत्र भी अर्थात् नकुल और सहदेव भी रथी हैं। वे दोनों रूप और तेज में अश्विनीकुमारों के समान हैं। वे पाण्डवसेना के आगे खड़े हो कर एवं अपने ऊपर पड़े हुए दुःखों को स्मरण कर, इन्द्र की तरह समरभूमि में घूमेंगे। इसमें मुझे तिल बराबर भी सन्देह नहीं है। वे साल वृक्ष जैसे ऊँचे हैं और बड़े बलवान हैं। सामान्य जनों से पाँचों पाण्डव एक एक

बालिश्त लँबे हैं। उनके शरीर सिंह की तरह दृढ़ हैं और उनके शरीर वज्र से परिपूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि, वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हैं, तपस्वी हैं, लज्जालु हैं और बड़े भयङ्कर पुरुषसिंह और पुरुष-व्याघ्र हैं। वे दौड़ने में, शस्त्रों के प्रहार में और शत्रु को मसल डालने में अलौकिक पुरुष हैं। हे भरतसत्तम! आरम्भ में उन्होंने दिग्विजय के समय समस्त राजाओं को परास्त किया था। हे कुरुवंशी राजन्! उन पाण्डवों के अस्त्र और बाण ऐसे हैं कि, उनका प्रहार कोई सह नहीं सकता। यही नहीं उनके धनुषों पर डोरी भी कोई नहीं चढ़ा सकता। न तो उनकी भारी गदाओं को उछालने की और न उनके बाणों को फेंकने की किसी में शक्ति है। वे जब छोटी अवस्था के थे, तब ही वे तुम सब लोगों की अपेक्षा तेज़ दौड़ने में, निशाना लगाने में, मर्मस्थलों को पीड़ित करने में, और घूसेबाज़ी में चढ़ बढ़ कर थे। पाण्डव रणभूमि में आते ही हमारी सेना का नाश कर डालेंगे। इस लिये उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। वे ढूँढ़ कर हर एक राजा को मार डालेंगे। राजसूय यज्ञ में जो कुछ हुआ था वह तो तुम प्रत्यक्ष देख ही चुके हो। जब लड़ाई शुरु होगी तब कौरव द्वारा दिये गये द्रौपदी के दुःखों को तथा जुए के समय कहे गये तीव्र वचनों को स्मरण कर, पाण्डव समरभूमि में रुद्रों की तरह घूमेंगे। फिर उन अक्लान्त नेत्र अर्जुन के कृष्ण सहायक हैं। उसके समान रथी उभय सैन्यदलों में दूसरा कोई नहीं है। पहले भी उसकी टक्कर का वीर देवताओं, नागों, राक्षसों और यक्षों में कोई न था। तब मनुष्यों में तो कोई निकल ही कैसे सकता है। यही नहीं आगे भी अर्जुन के समान रथी होना असम्भव है। महाराज! बुद्धिमान अर्जुन का रथ सब सामग्रियों से भरपूर है। श्रीकृष्ण उसके सारथि हैं। वह स्वयं बड़ा भारी योद्धा है। उसके पास दिव्य गाण्डीव धनुष है। पवन के समान शीघ्रगामी उसके रथ के घोड़े हैं। उसके शरीर पर दिव्य कवच है। वह कवच किसी भी शस्त्र के प्रहार से नहीं बिंध सकता। उसके पास अक्षय्य तूणीर हैं। महेन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम, वरुण,

के दिये हुए अस्त्रों का उसके पास बड़ा भारी समूह है। उसके पास ऐसी गदाएँ हैं जिन्हें देखते ही डर लगता है। वज्रादि मुख्य अस्त्र शस्त्र भी उसके पास हैं। अर्जुन ने अकेले ही हिरण्य-पुरवासी दैत्यों को नष्ट कर डाला था। उसके समान अन्य रथी कोई नहीं है। वह बड़ी भुजाओं वाला बड़ा बलवान और सत्यपराक्रमी है। जब वह क्रुद्ध होगा तब वह तेरी सेना को नष्ट कर डालेगा। साथ ही वह अपनी सेना की रक्षा भी कर लेगा। हे राजेन्द्र! उभय सेनाओं में बाणों की वर्षा करने वाले अर्जुन के सामने आक्रमणकारी यदि कोई है, तो एक मात्र मैं ही हूँ। मेरे अतिरिक्त यह द्रोणाचार्य हैं। तीसरा कोई नहीं है। जैसे ग्रीष्मऋतु समाप्त होने पर पवन की प्रेरणा से मेघघटा चढ़ आती है, वैसे ही श्रीकृष्ण की सहायता से सम्पन्न अर्जुन भी सकल सामग्री के साथ हमारे ऊपर चढ़ आवेगा; किन्तु वह अवस्था में तरुण तथा काम करने में चतुर है। साथ ही हम दोनों बूढ़े हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीष्म जी के वचन सुन कर, उस समय वहाँ उपस्थित राजाओं के आभूषण ढीले पड़ गये और चन्दन चर्चित भुजाएं भी शिथिल पड़ गयीं। उन्हें मानों पाण्डवों का पूर्वकालीन पराक्रम प्रत्यक्ष देख पड़ने लगा।

एक सौ सत्तर का अध्याय

पाण्डवपक्षीय रथी एवं महारथी

भीष्म जी कहने लगे—हे महाराज! द्रौपदी के पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराटनन्दन उत्तर को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ। अभिमन्यु रथ-यूथ-पतियों का यूथपति है। रणकौशल में वह अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान है और शत्रुओं का नाश करने वाला है। वह बड़ी फुर्ती से अस्त्र

चलाता है और विचित्र ढंग से लड़ता है। वह मनस्वी एवं बड़ा दृढ़व्रती है। वह अपने ऊपर पड़े हुए क्लेशों को स्मरण कर, घोर युद्ध करेगा। हे राजन्! वृष्णि वंश के वीरमण्डल में बड़ा भारी क्रोधी और निर्भय सात्यकि भी रथ-पतियों का यूथपति है। उत्तमौजा को और पराक्रमी अभिमन्यु को भी मैं उत्तम रथी मानता हूँ। हे भारत! पाण्डवों की सेना में भी लाखों रथ, हाथी और घुड़-सवार हैं। वे कुन्तीनन्दन को प्रसन्न करने की इच्छा से, शरीरपात होने तक युद्ध करेंगे। पवन और अग्नि की तरह एक दूसरे को सहायता दे, वे पाण्डवों को साथ ले तुम्हारी सेना में घुसेंगे। युद्ध में अजेय एवं वृद्ध राजा विराट और राजा द्रुपद भी महापुरुष हैं। इन दोनों को भी मैं महापराक्रमी और महारथी मानता हूँ। ये दोनों बूढ़े हैं, तो भी क्षात्र धर्म में प्रेम रखते हैं। पाण्डवों के सम्बन्धी ये वीर तथा बली हैं। ये दोनों धनुर्धर आर्यधर्म को निभाने वाले हैं। इनमें जैसा स्नेह है, वैसी ही इनमें वीरता भी है। अतः वे शूरों के नियमानुसार रणमार्ग में खड़े हो कर अपनी शक्ति के अनुसार पूरा प्रयत्न करेंगे। हे कुरुसत्तम! विशाल बाहु बड़े बड़े वीर योद्धा भी कारण विशेष वश युद्ध में कभी बड़ी शूरता दिखलाते हैं और कभी कायरता। ये दोनों महाधनुर्धर मरणोन्मुख होने पर भी, शरीर में प्राण रहते घोर युद्ध करेंगे। ये दोनों युद्ध के समय बड़ी उग्रता धारण करते हैं। इन्हें पाण्डवों के प्रति अपना हितूपना दिखाना है। अतः युद्ध के समय ये दोनों बड़ा पराक्रम प्रदर्शित करेंगे। जगत्प्रसिद्ध वीर धनुर्धर राजा विराट और द्रुपद अपना वचन निभाने के लिये रण में अपने शरीरों तक की ममता न करेंगे।

एक सौ इकहत्तर का अध्याय

पाण्डवपक्षीय महारथियों का वर्णन

भीष्म जी ने कहा—हे राजन्। पाण्डवों की ओर से लड़ने वालों में परपुरञ्जय पाञ्चाल-राजनन्दन शिखण्डी को भी मैं महारथी समझता हूँ।

यह पुरुष अपने पहले जन्म के स्त्रीत्व को त्याग कर, युद्ध करेगा और नामवरी पैदा करेगा। शिखण्डी के अधीन प्रभद्रकों और पांचालों की बड़ी भारी सेना है। रथियों का दल ले कर शिखण्डी बड़ा भारी काम करेगा। हे भारत! द्रोणशिष्य धृष्टद्युम्न भी महारथी और अतिरथी है। वह पाण्डवों की समस्त सेना का अधिपति है। जैसे युगान्त के समय पिनाकपाणि शङ्कर महाक्रोध में भर कर संसार का संहार करते हैं, वैसे ही धृष्टद्युम्न भी शत्रुसंहार करेगा। जैसे देवताओं की सेना की गणना नहीं वैसे ही धृष्टद्युम्न की अधीनस्थ सेना भी अगणित है। धृष्टद्युम्न का पुत्र क्षत्रधर्मा अर्धरथी है। क्योंकि उसने बाल्यावस्था के कारण अभी पूरा पूरा अस्त्राभ्यास नहीं कर पाया। शिशुपालनन्दन धृष्टकेतु भी वीर, महारथी, बड़ा धनुर्धर और पाण्डवों का नातेदार है। यह चेदि देश का वीर राजा भी अपने पुत्र को साथ ले कर, महारथियों जैसा पराक्रम दिखलावेगा। हे राजेन्द्र! क्षात्रधर्मप्रेमी और परपुरञ्जय राजा क्षत्रदेव भी पाण्डवों की ओर का महारथी है। मेरा मत तो यही है। जयन्त, अमितौजा और सत्यजित्, जो पाञ्चालराज के महाबली पुत्र भी महारथी हैं। हे तात! वे जब क्रोध में भर जाँयगे, तब वे हाथियों की तरह लड़ेंगे। अज और भोज भी बड़े पराक्रमी और महारथी हैं। वे वीर और बलवान हैं और यथाशक्ति पाण्डवों की ओर से युद्ध कर शत्रुसंहार करेंगे। हे राजेन्द्र! युद्धदुर्मद पाचों केकय भ्राता भी अस्त्र चलाने में बड़े फुर्तीले हैं और विविध प्रकार के युद्धों में प्रवीण हैं। वे दृढ पराक्रमी और महारथी हैं। वे लाल रंग की ध्वजा वाले हैं। कौशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख तथा मदिराश्व नामक समस्त योद्धा भी महारथी होने के कारण सब प्रकार की रण-विद्या में कुशल हैं और बड़े बलवान हैं। हे महाराज! वार्धक्षेमी राजा को और चित्रायुध राजा को भी मैं उत्तम रथी मानता हूँ। चित्रायुध राजा युद्ध की शोभा है और अर्जुन का अनुयायी है। पाण्डव पक्षीय राजा चेकितान और सत्यधृति सिंह के समान बलवान हैं और निस्सन्देह बड़े उदार रथी हैं। सेनाविन्दु और क्रोधवन्त नामक योद्धा भी बड़े वीर हैं और

श्रीकृष्ण एवं भीमसेन के समान ही बली भी हैं। वे भी तुम्हारे वीर सैनिकों के साथ युद्ध करेंगे। महारथी द्रोणाचार्य और मेरे समान ही तुम उनको भी महारथी समझो। वह प्रशंसनीय वीर बड़ी फुर्ती के साथ अस्त्र चलाता है। शत्रु-पुरञ्जय काशीनरेश भी मेरी समझ में एक अच्छा रथी हैं। राजा द्रुपद का तरुण पुत्र सत्यजित् जो युद्ध में पराक्रम दिखाने वाला तथा प्रशंसा के योग्य रणकौशल दिखाने वाला है। वह अकेला आठ रथियों के समान है। वह धृष्टद्युम्न की टक्कर का अतिरथी है। वह यशःप्राप्ति के लिये, रण में बड़ा विक्रम प्रदर्शित करेगा। पाण्डवों के सैन्य में पाण्ड्य नामक एक राजा है, जिसका पाण्डवों पर प्रेम है। वह बड़ा वीर, पराक्रमी, धुरन्धर और बड़ा दृढ़ धनुष धारण करने वाला है। उसकी भी गणना उनके महारथियों में है। इनके अतिरिक्त श्रेणीमान् तथा वसुदान नाम के राजाओं को भी मैं अतिरथी समझता हूँ।

एक सौ बहत्तर का अध्याय

पाण्डवपक्षीय महारथी और अतिरथी

भीष्म पितामह बोले—हे राजन् ! पाण्डवों की ओर राजा रोचमान भी एक महारथी है। युद्ध छिड़ने पर वह भी देवता की तरह युद्ध करेगा। पुरुजित् कुन्तिभोज भी बड़ा धनुषधारी और महाबली है। वह भीमसेन का मामा लगता है। मैं उसे भी अतिरथी मानता हूँ। यह कुन्तिभोज वीर, बड़ा धनुषधारी, कृतकृत्य, चतुर, नाना प्रकार की युद्ध कलाओं को जानने वाला, सामर्थ्यवान और एक श्रेष्ठ रथी है। जैसे इन्द्र दानवों के साथ युद्ध करते हैं, वैसे ही कुन्तिभोज पराक्रम के साथ तेरी सेना से युद्ध करने वाला है। इस राजा के समस्त योद्धा भी प्रसिद्ध और लड़ने में चतुर हैं। वह वीर राजा पाण्डवों का प्रिय है और उनकी भलाई किया करता है। वह अपने भाँजों

के लिये बड़ा काम करेगा। हे महाराज! भीमसेन-सुत घटोत्कच, जो हिडिम्बा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, रथियों के मण्डल का महाधिपति है और बड़ा मायावी है। उस मायावी को युद्ध बड़ा प्रिय है। वह भी लड़ाई छिड़ने पर शत्रुओं से लड़ेगा। उसके अधीनस्थ अन्य वीर राक्षस और उसके मंत्री भी लड़ेंगे। इन वीरों के अतिरिक्त पाण्डवों की ओर से बहुत से और राजा लोग भी लड़ने आवेंगे और श्रीकृष्ण के प्रमुखत्व में लड़ेंगे। पाण्डवों के प्रधान रथी और अतिरथी भी महेन्द्र तुल्य पराक्रमी अर्जुन की रक्षा में धर्मराज की भयावनी सेना के साथ समरभूमि में युद्ध करेंगे। मैं उन मायावियों और विजयाभिलाषियों के साथ, विजयकामना से लड़ूँगा अवश्य; किन्तु जय-पराजय भाग्याधीन है। चक्रधारी श्रीकृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन सायंकाल के समय जब समरक्षेत्र में आवेंगे, तब मुझे तुम्हारी ओर से उनका प्रतिपक्षी बन, उनके साथ लड़ना पड़ेगा। इतना ही नहीं, मुझे तो पाण्डवों के अन्य आक्रमणकारी सेनापतियों का भी सामना करना पड़ेगा। मैंने तुम्हें पाण्डवों के रथी, अतिरथी और अर्धरथियों का प्रधान क्रम से वर्णन सुना दिया। जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण और अन्य राजाओं को आगे बढ़ने से रोकूँगा; किन्तु हे महाबाहो! पाञ्चालराज का पुत्र शिखण्डी यदि मेरे ऊपर बाण प्रहार करेगा, तो मैं उस पर हाथ नहीं उठाऊँगा। पिता को अपने ऊपर प्रसन्न रखने के लिये मैंने हाथ आये हुए राज्य को त्याग दिया और आजन्म व्रत धारण किया। मैंने ही चित्राङ्गद को कौरवों के राजसिंहासन पर बिठाया था। फिर बालक विचित्रवीर्य का युवराज के पद पर अभिषेक कर दिया था। यह बात सब लोगों को विदित है। सब राजाओं के सामने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण की प्रतिज्ञा कर, मैं तब से कभी न तो किसी स्त्री के सामने जाता हूँ और न अगले जन्म की स्त्री के आगे जो इस जन्म में पुरुष के रूप में हो, जा कर, उस पर हाथ उठाता हूँ। यदि तूने कभी सुना हो तो याद कर ले कि, शिखण्डी पूर्वजन्म में स्त्री था। वह प्रथम कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ था? किन्तु अब वह पुरुष है।

अतएव मैं उसके साथ न लड़ूँगा। इसके अतिरिक्त मैं प्रतिपक्षी समस्त राजाओं के साथ लड़ूँगा; किन्तु कुन्ती के पाँचों पाण्डवों से न लड़ूँगा।

[अम्बोपाख्यान पर्व]

एक सौ तिहत्तर का पर्व

काशिराज की राजकुमारियों के हरण का वृत्तान्त

दुर्योधन ने कहा! हे राजन्! आप तो प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि, आप समस्त पाञ्चाल राजकुमारों का वध करेंगे। फिर हथियार उठाये आततायी शिखण्डी को अपने ऊपर आक्रमण करने को आते देख, आप उसे क्यों न मारेंगे? आप अपनी प्रतिज्ञा के विपरीत शिखण्डी को क्यों न मारेंगे? आप बतलावें इसका क्या कारण है?

भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन! शिखण्डी को देख कर भी मैं उस पर अस्त्र न चलाऊँगा, इसका कारण तू और अन्य सब राजा लोग भी सुन लें। मेरे लोकप्रसिद्ध धर्मात्मा महाराज शान्तनु जब आयु पूर्ण होने पर स्वर्गवासी हुए, तब मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, अपने भाई चित्राङ्गद को राजसिंहासन पर बिठाया। फिर जब चित्राङ्गद भी मर गया; तब मैंने अपनी माता सत्यवती की सलाह से विचित्रवीर्य का यथाविधि राज्याभिषेक करवाया। उस समय विचित्रवीर्य की अवस्था कम थी, तिस पर भी मैंने उसीको राजा बनाया। विचित्रवीर्य राजा होने पर भी सब काम मेरी अनुमति ही से किया करता था। उसके वयस्क होने पर मुझे उसके विवाह की चिन्ता हुई। इसी बीच में मैंने सुना कि, काशीनरेश की अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी तीन अनुपम रूपवती कन्याओं का स्वयम्बर होने वाला है। उस स्वयम्बर में पृथिवी के समस्त नरपतियों को आमंत्रण भेजा गया है। उन तीनों राजकुमारियों में अम्बा सर्वज्येष्ठा, अम्बिका मध्यमा और अम्बालिका कनिष्ठा

थी। मैं एकाकी रथ पर सवार हो, काशीपुरी में पहुँचा और वहाँ स्वयम्बर-मण्डप में खड़ीं सुसज्जित तीनों राजकुमारियों को तथा आमंत्रित अनेक राजाओं को देखा। वे राजा लोग खूब सजधज कर वहाँ बैठे हुए थे। वहाँ जाने पर मुझे यह भी अवगत हुआ कि, जिस राजा के बाहुओं में बल हो वह उन तीनों को ले जा सकता है। उन तीनों के विवाह के लिये उनके पिता की ऐसी प्रतिज्ञा थी। इस पर मैंने तीनों राजकुमारियों को अपने रथ पर बिठा लिया और वहाँ लड़ने के लिये समागत राजाओं से बारम्बार मैंने कहा—शान्तनुनन्दन भीष्म तीनों राजकुमारियों को सब के सामने बरजोरी लिये जाता है, अतः तुम सब अपने बल का परिचय दे कर, इन्हें छुटाओ।

मेरे वचनों को सुन कर, समस्त राजा लोग कुपित हो गये और हथियार उठा मुझ पर आक्रमण करने को तैयार हुए। वे लोग अपने अपने सारथियों से कहने लगे कि, रथों को तैयार करो, तैयार करो। इसके बाद रथी हाथियों के साथ, गजारूढ़ योद्धा गजों के साथ, हृष्टपुष्ट घुड़सवार अपने घोड़ों के साथ मेरी ओर झपटे और रथियों ने मण्डलाकार व्यूह सा बना मुझे चारों ओर से घेर लिया; किन्तु मैंने बाणवृष्टि कर, उन सब को वैसे ही चारों ओर से मारना आरम्भ किया, जैसे इन्द्र बाणवृष्टि से दानवों को मारता है। मैंने अनायास उन आक्रमणकारी राजाओं की विचित्र सुनहली ध्वजाओं को पैने बाणों के प्रहारों से काट काट कर गिरा दिया। इतना ही नहीं—बल्कि एकाएक बाण मार कर, भूमि पर गिरा दिया। मेरे हाथ की फुर्ती से आक्रमणकारी राजा घबड़ा उठे और भाग खड़े हुए। देखते देखते समरभूमि शून्य हो गयी। तब मैं उन राजाओं को हरा कर, हस्तिनापुर में चला आया। हे राजन्! मैं भाई के लिये जिन कन्याओं को लाया था, उन्हें सत्यवती के सामने जा खड़ा किया। साथ ही उनके पीछे काशी में जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन भी मैंने सत्यवती को सुना दिया।

एक सौ चौहत्तर का अध्याय

अम्बा की प्रार्थना

भीष्म जी कहने लगे—हे भरतसत्तम! फिर मैं वीरप्रसविनी कैवर्त्त कुमारी निज माता सत्यवती के निकट जा कर और उनके चरणों में प्रणाम कर, इस प्रकार कहने लगा—हे माता! इन वीरशुल्का राजकुमारियों को मैं स्वयम्बर में आये हुए राजाओं को जीत कर विचित्रवीर्य के लिये हर लाया हूँ। यह सुन मेरी माता सत्यवती ने मेरा मस्तक सूंघा और हर्ष के आँसू बहाती हुई वह बोली कि बेटा! तेरा विजय हुआ। यह बहुत अच्छा हुआ। तदनन्तर सत्यवती की अनुमति से उन राजकुमारियों के विवाह की तैयारी होने लगी।

उस समय काशिराज की बड़ी राजकुमारी ने लजाते हुए यह कहा—हे भीष्म जी आप धर्मज्ञ हैं और समस्त शास्त्रों में प्रवीण हैं। अतः मैं धर्मानुमोदित जो बात कहती हूँ। उसे आप सुनें और तदनुसार ही काम करें। मैं अपने मन में पहले ही राजा शाल्व को अपना पति वरण कर चुकी हूँ और मेरे पिता से छिपा कर वह भी मेरे साथ चुपके चुपके प्रेमसूत्र में आबद्ध हो चुका है। अतः अन्य पति की इच्छा रखने वाली मुझको आप कुरुवंशी हो कर और राजधर्म के विरुद्ध, अपने नगर में क्योंकर रख सकते हैं। हे महाबाहो! आप भली भाँति सोच विचार कर जो कर्त्तव्य हो उसे आरम्भ करें। राजा शाल्व मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। अतः आप मुझे उसके निकट जाने की आज्ञा दें। हे महाभुज! हे धर्मात्माश्रेष्ठ!! मैंने सुना है कि, आप इस भूतल पर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हैं। अतः अपने बड़प्पन पर ध्यान दे कर, आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें।

एक सौ पचहत्तर का अध्याय

अम्बा और तपस्वी

भीष्म जी कहते हैं—हे राजन् ! इस पर मैंने सत्यवती, मंत्रियों, ऋत्विजों और पुरोहितों की अनुमति से काशिराज की ज्येष्ठा राजकुमारी अम्बा को जाने की आज्ञा दी और वह तुरन्त राजा शाल्व के नगर में चली गयी। उसकी रक्षा के लिये उसके साथ दाई और वृद्ध ब्राह्मण भेजे गये।

[नोट—प्राचीन काल में स्त्रियों की रक्षा का कैसा प्रबन्ध किया जाता था—यह बात इससे सहज में जानी जा सकती है। अम्बा की रक्षा के लिये युवा नहीं, वृद्ध ब्राह्मण भेजे गये थे। मूल में लिखा है—

" वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता "।]

अम्बा जब शाल्व के पास गयी और उसने कहा—हे महाबाहो ! हे राजन् ! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।

इस पर राजा शाल्व ने मुसक्या कर कहा—हे वरवर्णिनि ! मैं दूसरे की वरी हुई स्त्री को अपनी भार्या नहीं बनाना चाहता। हे कल्याणी ! तू भीष्म के पास पुनः लौट कर चली जा। भीष्म जी ने तुझे बरजोरी हर लिया है। अतः मैं अब तुझे ग्रहण करना नहीं चाहता। भीष्म जी लड़ाई में सब राजाओं को परास्त कर, मुझ पर प्रीति करने वाली तुझको, हाथ पकड़ कर ले गये थे। अतः तू तो दूसरे की स्त्री हो चुकी। अतः अब मैं तुझे स्त्री रूप से ग्रहण नहीं कर सकता। मैं जब दूसरों को धर्मोपदेश देता हूँ ; तब जान बूझ कर मैं परपूर्वा (दूसरे की विवाहिता) स्त्री को कैसे अपने घर में रख सकता हूँ। हे कल्याणी ! तू जहाँ चाहे वहाँ चली जा ; जिससे तेरी जवानी वृथा न जाय।

इस पर अम्बा ने शाल्व से कहा—मैं मदनशर से पीड़ित हूँ। अतः आप मुझसे जाने की बात न करें। ऐसा कभी नहीं हुआ। भीष्म जी मुझे

मेरी इच्छा से नहीं ले गये थे। वे तो समस्त राजाओं को हरा कर, मुझ विलाप करती हुई को बरबस पकड़ कर ले गये। अतः आप इस दासी को अपनी सेवा में लें क्योंकि इसका तो कुछ भी अपराध नहीं है। भक्त का त्याग धर्मशास्त्रानुसार प्रशंसा की बात नहीं है। युद्ध में कभी पीछे पैर न रखने वाले भीष्म की आज्ञा ही से मैं आपके पास आयी हूँ। हे राजन्! महाबाहु भीष्म जी ने अपने लिये मेरी इच्छा नहीं की थी, उन्होंने तो अपने भाई के लिये यह काम किया था। यह बात मैंने सुनी है। हे राजन्! मेरी छोटी बहिन अम्बिका और अम्बालिका को भी भीष्म जी हर लाये थे। भीष्म जी ने अपने छोटे भाई के साथ उन दोनों का विवाह कर दिया है। मैं अपने सिर की शपथ खा कर आपसे कहती हूँ कि, मैं आपको छोड़ अन्य किसी के साथ विवाह करना नहीं चाहती। हे राजेन्द्र! मैं किसी दूसरे के साथ विवाह हो जाने बाद आपके पास नहीं आयी हूँ। मैं आपसे सत्य ही सत्य कहती हूँ और अपनी शपथ खा कर आपसे सत्य ही कहती हूँ कि, मेरा अभी तक किसी के साथ विवाह नहीं हुआ। मैं अभी क्वारी हूँ और अपनी इच्छा से आपके निकट आयी हूँ और आपकी अपने ऊपर कृपा चाहती हूँ।

जब अम्बा ने इस प्रकार कहा, तब भी शाल्व ने उसे वैसे ही त्याग दिया, जैसे साँप केंचुल को त्याग देता है। अम्बा ने अनेक विधि अनुनय विनय किया, किन्तु शाल्व ने उसका कहना न माना। अन्त में अम्बा को बड़ा रोष उत्पन्न हुआ। मारे क्रोध के उसके नेत्र सजल हो गये और आवेश में भर वह अस्फुट वचन बोली—राजन्! आपने तो मेरा त्याग कर ही दिया; किन्तु मैं जहाँ जाऊँगी वहाँ महात्मा मेरी रक्षा करेंगे। क्योंकि सत्य विचलित नहीं होता। अम्बा ने ये बातें करुणोत्पादक ढंग से कही थीं, उसके विलाप को सुन, लोगों का हृदय पसीज उठा था।

किन्तु शाल्व के मन पर उसकी इन बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा और उसने उसे त्याग ही दिया। उसने बार बार अम्बा से कहा कि, तुझे भीष्म जी ने ग्रहण किया है, तू यहाँ से चली जा, चली जा।

अल्पमति राजा शाल्व के यह कहने पर, बेचारा दुःखियारी अम्बा टटीरी की तरह विलाप करती हुई उसकी राजधानी के बाहिर निकल आयी।

भीष्म जी कहने लगे—हे राजन्! दुःखियारी अम्बा ने राजधानी के बाहिर आ अपने मन में सोचा कि, इस पृथिवी पर मुझ जैसी दुःखिनी स्त्री और कोई न होगी। क्योंकि उधर तो घर वाले छूटे, इधर राजा शाल्व ने भी मुझे त्याग दिया। अब हस्तिनापुर लौट कर जाना भी मेरे लिये सम्भव नहीं है। क्योंकि भीष्म जी से मैंने जब शाल्व के प्रति अपनी प्रीति का हाल कहा, तब उन्होंने यहाँ आने की मुझे अनुमति दी थी। अतः इसमें मैं उन्हें क्या दोष दे सकती हूँ, इसमें तो मेरा ही दोष है। यह सब तो मेरी ही करतूत है। जब अन्य राजाओं में घोर युद्ध हो रहा था, तब मैं शाल्व के लिये भीष्म के रथ से नीचे क्यों न कूद पड़ी? मैं मूढ़ की तरह उनके रथ पर ही क्यों बैठी रही? उसीका यह फल मुझे मिला है। भीष्म जी को और मेरे मन्दमति मूढ़ पिता को भी धिक्कार है? मेरे पिता ने वीर्यशुल्का ठहरा मुझे पराक्रम रूपी मूल्य से एक पुंश्चली स्त्री की तरह स्वयम्वर सभा में खड़ा कर, घर से निकाल दिया। नहीं-नहीं-इनको नहीं-मुझे तो अपने आप को धिक्कारना चाहिये। साथ ही विधाता को भी, जिसके अन्याय से मुझे इस विपत्ति में फँसना पड़ा है। मनुष्य को वही मिलता है जो उसके भाग्य में होता है; किन्तु मेरी इस विपत्ति की जड़ तो शन्तनु-नन्दन भीष्म ही हैं। अतः अब तप से अथवा युद्ध से अपने इस वैर का बदला तो भीष्म जी से लेना चाहिये। इस समय मुझे यही उचित जान पड़ता है। वे ही मेरी इस विपत्ति का कारण हैं। किन्तु युद्ध में भीष्म को हराने का साहस करने वाला मुझे तो कोई राजा देख नहीं पड़ता; इस प्रकार अपने मन में विचार करती अम्बा नगरी के बाहिर आ गयी और तपस्वियों के आश्रम में जा पहुँची। उस दिन की रात उसने तपस्वियों के आश्रमों में रह कर ही बितायी। अगले दिन अपनी बीती उन तपस्वियों को सुना, उस शुचिस्मिता कन्या ने कहा कि, भीष्म मुझे स्वयम्वर मण्डप से हर लाये हैं और पीछे मेरा त्याग कर दिया

है। फिर जब मैं राजा शाल्व के निकट गयी, तब उन्होंने भी मुझे त्याग दिया। इस प्रकार अम्बा ने अपना वृत्तान्त उन ऋषियों से कहा।

[नोट:—अम्बा का यह कहना कि, भीष्म ने उसे त्याग दिया—नितान्त मिथ्या था। वह तो स्वयं खुशामद कर भीष्म जी से अनुमति ले राजा शाल्व के पास आयी थी।]

उस आश्रम में एक सुव्रत मुनि थे, जो समस्त शास्त्रों और उपनिषदों में सब के गुरु थे। उस श्रुति-स्मार्त-कर्म-परायण मुनि ने आतुर हो कर उस दुखियारी बाला से कहा—हे महाभागा! हे कल्याणी! तेरी जो ऐसी दशा हुई है, उसमें हम आश्रमवासी तपस्वी महात्मा कर ही क्या सकते हैं?

हे राजन्! यह सुन कर उस कन्या ने मुनि से कहा। आप मुझ पर कृपा करें। मैं संन्यासिनी होना चाहती हूँ। मैं घोर तप करूँगी। मुझ अभागिनी ने पूर्वजन्म में जो पाप कर्म किये हैं, उन्हींका यह सब फल है। मैं अब अपने स्वजनों के पास लौट कर नहीं जाऊँगी। क्योंकि राजा शाल्व ने मेरा अपमान कर मुझे निकाल दिया है। हे अनघ! मैं तप सम्बन्धी विधि का उपदेश आपसे ग्रहण करना चाहती हूँ। अतः आप मुझे उपदेश दें। इसे मैं अपने ऊपर आपका अनुग्रह मानूँगी। इस पर महात्मा और कर्मकाण्ड में कुशल उस ब्राह्मण ने संसार के दृष्टान्तों से, वेदवाक्यों से और युक्तियों से उस कन्या को यथोचित उपदेश दे कर शान्त किया। उन्होंने कहा कि, प्रारब्ध का लिखा अमिट है। वह बिना भोगे नहीं क्षीण होता। साथ ही उससे यह भी प्रतिज्ञा की कि, मैं और आश्रमवासी समस्त ब्राह्मण तुझे तप करने में मदद देंगे।

एक सौ छिहत्तर का अध्याय

अम्बा और होत्रवाहन

भीष्म ने कहा—तदनन्तर उस कन्या के कार्य साधन के लिये तत्पर वे सब सोचने लगे कि, उस कन्या के लिये क्या करना चाहिये ? कितने ही लोगों ने कहा कि, इसे इसके पिता के घर पहुँचा देना चाहिये और कितने ही मेरे पास आ कर मुझे समझाने की बात सोचने लगे। उनमें से कई एक ने यह सम्मति दी कि, राजा शाल्व के निकट चल कर और उसे समझा बुझा कर, उसके साथ अम्बा का विवाह करवा दिया जाय। इस पर कई एक कहने लगे कि, जब राजा शाल्व इसका (अम्बा का) एक बार तिरस्कार कर चुका है, तब इस कन्या को उसके यहाँ पुनः भेजना उचित नहीं है।

इस तरह परस्पर वादविवाद कर, उन लोगों ने उस कन्या से कहा—जब तेरे साथ इस प्रकार का व्यवहार हो चुका है, तब इसमें हम व्रतधारी पड़ कर, कर ही क्या सकते हैं ? हे कल्याणि ! जोगिन बनने का आग्रह तो तू कर मत; किन्तु हम जो बातें अब तेरी भलाई के लिये कहते हैं, उन्हें सुन। अब तू यहाँ से अपने पिता के घर लौट जा। वहाँ जाने से तेरा कल्याण होगा। वह तुझे अपने घर में रख लेगा और तुझ जैसी सब गुनआगरी को वहाँ किसी प्रकार का कष्ट न होगा। तेरे लिये पिता के तत्वावधान में रहना, अन्य की देखरेख में रहने की अपेक्षा सर्वथा श्रेयस्कर है। क्योंकि स्त्री के लिये सर्वोत्तम तो पति की सेवा में रहना है; किन्तु यदि स्त्री पतिसुख से वञ्चित हो, तो उसके लिये पिता का घर ही कल्याणप्रद है। जोगिन बनना कोई खिलवाड़ नहीं है, यह बड़ा दुःखदायी है। विशेष कर कुमारी के लिये तो इधर उधर घूमते फिरना बड़ा दुःखप्रद है। हे भामिनी ! तू राजपुत्री है। अतः

स्वभाव ही से कोमल है। अतः तुझे देश विदेश घूमने फिरने में बड़ा कष्ट होगा।

[नोटः—मूल पाठ यह है :—

प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः।

इससे क्या यह समझा जाय कि, स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह संन्यास ग्रहण की शास्त्राज्ञा है? नहीं, शास्त्रों में स्त्रियों के लिये संन्यास ग्रहण का विधान नहीं पाया जाता है। अतः यहाँ प्रव्रज्या का दूसरा अर्थ देश विदेश घूमना फिरना ठीक होगा।]

तिस पर तू राजकुमारी है, कोमलाङ्गी है। देश विदेश घूमने फिरने में बड़ी बड़ी बुराइयाँ हैं। यदि तू अपने पिता के घर में रहेगी तो तुझे कष्ट न होगा। फिर अन्य तपस्वियों ने भी उसे उपदेश देते हुए कहा कि, यदि तू वन में अकेली रहेगी तो (शिकार खेलने को वन में आने वाले) राजा लोग तेरे साथ विवाह करने के लिये तेरे ऊपर दबाव डालेंगे। अतः तू वन में रहने का विचार त्याग दे।

अम्बा बोली—मेरा लौट कर काशी में पिता के घर जाना अब असम्भव है। क्योंकि वहाँ जाने पर मेरी बिरादरी के लोग मेरा उपहास करेंगे। यद्यपि जन्म से मैं अपने पिता के घर में रही हूँ; तथापि अब मैं वहाँ नहीं रहूँगी। मैं तो अपना अगला जन्म बनाने को तप करूँगी, जिससे अगले जन्म में भी मुझे ऐसा दुःख न झेलना पड़े।

भीष्म जी बोले—वे तपस्वी उस कन्या के विषय में आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि, इतने ही में वहाँ होत्रवाहन नामक राजर्षि तपस्वी जा पहुँचा। उन तपस्वियों ने होत्रवाहन का अर्घ्य पाद्यादि से सत्कार किया। जब राजा बैठ कर विश्राम करने लगा, तब वह ऋषियों से बोला कि, आप लोग क्या बातचीत कर रहे थे? क्या मैं भी उसे सुन सकता हूँ?

इस पर उन ऋषियों ने उस राजकुमारी का पुनः प्रसङ्ग छेड़ा। अम्बा की दुःखभरी कथा सुन होत्रवाहन बड़ा दुःखी हुआ। कन्या की भोली-भाली सूरत देख तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन के मन में दया आ गयी। हे दुर्योधन! होत्रवाहन, अम्बा का नाना था। अतः उसने काँपते हुए उसको उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया और उसे धैर्य धराने लगा। उस राजा ने कन्या से आनुपूर्वी समस्त वृत्तान्त पूछा। अम्बा ने सब हाल उसे सुना दिया। राजर्षि को सुन कर बड़ा दुःख हुआ। साथ ही उसने उसका काम कर देना स्वीकार किया और अत्यन्त दुःखी हो होत्रवाहन ने अम्बा से कहा कि, हे भद्रे, मैं तेरा नाना हूँ अतः तू अपने पिता के घर न जा कर, मेरे घर रह। हे बेटी! मैं तेरा कष्ट दूर करूँगा। तू मेरे पास रहना। तेरे कृश शरीर को देख जान पड़ता है कि, तुझे यह दुःख बहुत अखरा है। हे बेटी! तू मेरे कहने से जमदग्निनन्दन तपस्वी परशुराम के पास जा। वे तेरे इस महान् दुःख को दूर करेंगे। जब तू परशुराम जी के निकट उनके शरण में पहुँच जाय, तब भीष्म के पास सन्देसा भेजना। तब यदि भीष्म जी न मानेंगे तो परशुराम जी उन्हें मार डालेंगे। अतः तू प्रलयकालीन अग्नि के समान तेजस्वी परशुराम के पास जा। वह महा-तपस्वी तुझे सीधे रास्ते पर ले जावेंगे। यह सुन वह कन्या आँसू बहाती हुई अपने नाना से बोली कि, मैं नतमाथ आपको प्रणाम करती हूँ। मैं आपका कहना मान, परशुराम के निकट जाती हूँ। आज ही उन जगत्-प्रसिद्ध आर्य परशुराम जी के मैं जा कर दर्शन करती हूँ। आप मुझे यह तो बतला दें कि, परशुराम जी मेरे इस बड़े भारी दुःख को कैसे दूर करेंगे और मुझे उनके निकट किस प्रकार जाना उचित है।

होत्रवाहन बोले—हे भद्रे! तेरी और उनकी भेंट बड़े गहन वन में होगी। इन दिनों वे सत्यप्रतिज्ञ और महाबलवान्, ऋषि उग्र तप कर रहे हैं। वेदज्ञ परशुराम जी अप्सराओं से सेवित पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्राचल पर सदा रहा करते हैं। वहाँ जा कर तू उनसे मिल और मैंने जैसे तुझे

बतलाया है, वैसे तू करना। हे भद्रे! तेरा कल्याण होगा। तू उन तपस्वी को नतमाथ प्रणाम करना और अपने मन की बात उनको जता देना।

राजा होत्रवाहन और अम्बा में अभी वार्तालाप हो ही रहा था कि, इतने में वहाँ अकृतव्रण जा पहुँचे। उनको देख वहाँ उपस्थित समस्त मुनि तथा वयोवृद्ध सृञ्जयवंशी राजा होत्रवाहन भी उठ खड़े हुए। उन सब ने अकृतव्रण का यथोचित सत्कार किया और अकृतव्रण ने उसे ग्रहण किया। तदनन्तर सब लोग अकृतव्रण को घेर कर बैठ गये। हे राजेन्द्र! प्रीति हर्ष और मोद में भर वे लोग विविध मनोहर, कार्यसाधक और हित की अनेक बातें करने लगे। बातचीत में होत्रवाहन ने अकृतव्रण से महर्षिश्रेष्ठ परशुराम जी का हाल पूछा कि, क्या उनका दर्शन मिल सकता है?

अकृतव्रण ने कहा—हे महाराज! बातचीत करते समय जब आपकी चर्चा चल पड़ती है, तब परशुराम जी आपको अपना प्रिय मित्र बतलाते हैं। कल सबेरे परशुराम जी आपसे मिलने यहाँ आवेंगे, तब आपको उनका दर्शन हो जायगा। हे राजर्षे! बतलाइये यह कन्या वन में क्यों आयी है? यह किसकी बेटी है और यह आपकी कौन है?

होत्रवाहन ने कहा—प्रभो! यह मेरी धेवती (दौहित्री) है और काशिराज की प्यारी बड़ी पुत्री है। यह स्वयंम्वर में दोनों बहनों के साथ विवाह के लिये खड़ी थी। हे तपोधन! अम्बा नाम्नी काशिराज की प्रसिद्ध राजपुत्री यही है। स्वयम्बर-सभा में अपनी दोनों बहिनों के साथ यह भी खड़ी थी। इसकी छोटी बहिनों के नाम हैं अम्बिका और अम्बालिका। हे ब्रह्मर्षे! उस समय इन कन्याओं के साथ विवाह करने को बहुत से क्षत्रिय एकत्रित हुए थे; किन्तु शान्तनुपुत्र शुद्धमना भीष्म जी सब राजाओं को परास्त कर काशिराज की तीनों कन्याओं को हर कर हस्तिनापुर ले गये।

वहाँ पहुँच सत्यवती के सब हाल कह सुनाया। तदनन्तर अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ उन तीनों कन्याओं का विवाह किये जाने की आज्ञा दी। विचित्रवीर्य के जब मङ्गलाचार हो चुके और वह विवाह-कङ्कण कलाई में बाँध और उबटन लगवा कर बैठे, तब मंत्रियों के बीच बैठे हुए भीष्म से अम्बा ने कहा कि, मैं तो अपने मन से वीर शाल्व के वर बना चुकी हूँ। अतः दूसरे के चाहने वाली मेरे साथ अपने भाई का विवाह करना आपको उचित नहीं।

अम्बा की इस बात को सुन कर भीष्म ने मंत्रियों से परामर्श कर और सत्यवती के मतानुसार इस कन्या को जाने की आज्ञा दे दी। तब यह प्रसन्न हुई और राजा शाल्व के पास जा कर उससे ये समयोचित वचन कहे। हे श्रेष्ठ राजन्! भीष्म ने मुझे छोड़ दिया है। अतः आप मुझे धर्मानुसार स्वीकार कीजिये। मैं पहले ही से मन ही मन आपको वर चुकी हूँ; किन्तु राजा शाल्व को इसके चरित्र के विषय में सन्देह हुआ और उन्होंने इसका तिरस्कार कर दिया। तब से यह कन्या इस तपोवन में आ कर रहती है और तपस्या में मग्न है। जब मैं यहाँ आया और इसने अपना वंशपरिचय दिया; तब मैंने इसे पहचाना। इसकी धारणा है कि, इसके दुःख का कारण भीष्म हैं।

तदनन्तर अम्बा ने अकृतव्रण जी से कहा—हे भगवन्! राजा होत्रवाहन का कथन ठीक है। यह मेरी माता के पिता सृञ्जयवंशी राजा होत्रवाहन हैं। हे तपोधन! मैं अब लौट कर अपने पिता की नगरी में जाना नहीं चाहती। क्योंकि वहाँ जाने में मुझे अपमान का भय है और लज्जा जान पड़ती है। परशुराम जी मुझसे जो कुछ करने को कहेंगे मैं वही करूँगी। हे भगवन्! मैंने अब यही निश्चय किया है।

एक सौ सतहत्तर का अध्याय

अम्बा-परशुराम-संवाद

अकृतव्रण बोले—हे अम्बा! तू मुझे यह बात ठीक ठीक बता दे कि, तू अब क्या करना चाहती है? इस समय तुझ पर दो आपत्तियाँ आयी हुई हैं। प्रथम तो अपना सारा जीवन कन्या के स्वरूप में बिताना और दूसरा शत्रुओं का सर्वनाश करना। तू शत्रुसंहार करना चाहती है या अपने इस कन्या स्वरूप को बदलना चाहती है? यदि तुझे राजा शाल्व के साथ शादी करने की इच्छा हो तो परशुराम जी राजा शाल्व के साथ विवाह भी करा सकते हैं तथा यदि तू गाङ्गेय भीष्म को ही रण में परास्त हुआ देखना चाहती है तो भी परशुराम इसके लिये तैयार हो जावेंगे। हे कन्ये! तेरी और तेरे नाना होत्रवाहन की सम्मति के अनुसार ही काम किया जावेगा; किन्तु यह विचार आज निश्चित हो जाना चाहिये।

अम्बा ने कहा—हे भगवान्! भीष्म मेरे मन की बात को बिना जाने ही मुझे हर ले गये थे। उन्हें यह नहीं मालूम था कि, यह अपने मन में राजा शाल्व को वर चुकी है। अब आपको स्वयं विचार कर न्यायानुकूल बातों का उपाय करना चाहिये। कुरु-कुल-भूषण महात्मा भीष्म के तथा राजा शाल्व के विषय में आप जैसा भी उचित और न्यायसङ्गत व्यवहार करना चाहें, करें। मैंने तो जो बातें जैसी थीं वैसी आपको कह सुनायीं।

यह सुन कर अकृतव्रण ने कहा—हे भद्रे! तुम्हारी यह बात बिलकुल न्याय-सङ्गत है। यदि भीष्म तुम्हें हर कर हस्तिनापुर को न ले जाता, तो राजा शाल्व परशुराम के कहने पर अवश्य तुम्हें स्वीकार कर लेता; किन्तु भीष्म ने जो तेरा अपहरण किया, इसी कारण राजा शाल्व को तुझ पर सन्देह हो गया है। भीष्म अपने पुरुषत्व पर बड़ा गर्व करता है और उसने काशी को भी जीत लिया है। इस कारण तू भीष्म ही से बदला ले।

अम्बा बोली—हे ब्रह्मदेव! बस, मेरे मन में भी हर समय यही बात समायी रहती है कि, मैं भीष्म को रण में परास्त कर अपने जी को शान्ति करूँ। राजा शाल्व और भीष्म इन दोनों में से कौन दोषी है। केवल आप मुझे यही बतला दीजिये। हे राजन्! उनको इसी प्रकार बातें करते हुए पूरा एक दिन और एक रात बीत गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल के समय महातेजस्वी जटाजूट एवं कौपीनधारी परशुराम स्वयं उस तपोवन में पधारे। उनके साथ अनेक धनुपधारी मुनि और उनके शिष्य थे, जो बड़े उदारमना और तपस्वी थे। हे राजेन्द्र! परशुराम को आया हुआ देख कर, सब मुनि महर्षि और राजा होत्रवाहन तथा वह कन्या आदि सब उठ कर खड़े हो गये। शास्त्रोक्त विधि से मधुपर्क आदि अतिथि सत्कार को स्वीकार कर परशुराम उन सब तपस्वियों के बीच में बैठ गये। राजा होत्रवाहन और परशुराम जी में अनेक अतीत घटनाओं की चर्चाएँ होती रहीं।

इसके उपरान्त परशुराम से राजा होत्रवाहन ने समयानुसार यों कहना आरम्भ किया। हे प्रभो! यह काशिराज की पुत्री अम्बा है। यह आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहती है। कृपया इसकी विनती को आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

यह सुन कर परशुराम जी ने अम्बा से कहा—हे कन्ये! तू जो कुछ भी कहना चाहे वह मुझसे निःसङ्कोच हो कर कह दे।

अम्बा ने नतमाथ हो कर परशुराम जी को प्रणाम किया और करुण-क्रन्दन करती हुई परशुराम जी के शरण में पहुँची।

परशुराम ने कहा—हे कन्ये! तू निःसङ्कोच हो कर जो कुछ कहना चाहती है कह और मुझे भी होत्रवाहन के समान समझ कर मुझसे अपनी व्यथा का वर्णन कर।

अम्बा बोली—हे भगवन्! आज मैं परम पवित्र व्रतधारी आपके

शरण में आयी हूँ। हे प्रभो! मैं बड़े भारी दुःखसागर में डूबी हुई हूँ। अब आप ही इससे मेरा उद्धार कर सकते हैं।

भीष्म ने कहा—हे राजन्! भृगुनन्दन परशुराम उस कन्या के नये रूप यौवन और सुकुमारता को देख कर अपने मन में सोचने लगे कि, न जाने यह कन्या क्या कहेगी? अन्त में बहुत सोच विचार के साथ उस कन्या से उन्होंने कहा—हे कन्ये! तू अब अपनी सारी कथा मुझे शीघ्र ही सुना जा। भार्गव की इस आज्ञा को सुन कर उसने अपनी सारी कथा जो कुछ भी उस पर बीती थी कह सुनायी।

अम्बा की कथा सुनने के बाद परशुराम ने उससे कहा—हे सुन्दरि! मैं तुझे फिर भीष्म जी के पास ही भेजे देता हूँ। वह अवश्य मेरे आज्ञानुसार ही काम करेगा। यदि भीष्म मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, तो मैं उन्हें सपरिवार अपने तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा भस्म कर डालूँगा। इसके अतिरिक्त यदि तेरी इच्छा हो तो मैं राजा शाल्व को भी तेरे साथ विवाह कर लेने के लिये राज़ी कर सकता हूँ।

अम्बा ने कहा—हे भार्गव! भीष्म ने राजा शाल्व से मेरे प्रेम का हाल जान कर मुझे उनके पास भेज दिया था; किन्तु राजा शाल्व ने मेरे विनय को स्वीकार नहीं किया। उन्हें मेरे चरित पर शङ्का हो गयी थी। अब आप इन सब बातों पर स्वयं विचार कीजिये और जो उचित्र हो वह कीजिये। वास्तव में मेरे क्लेश का कारण ब्रह्मचारी भीष्म ही हैं। यदि वह मेरा हरण न करता तो निश्चय ही शाल्वपति मुझे स्वीकार कर लेते। हे भृगुवंशमणे! जिनके कारण आज मैं भयङ्कर वन पर्वतों पर भटकती फिरती हूँ और असीम क्लेश भोग रही हूँ, उन्हीं भीष्म का तुम संहार करो। हे परशुराम जी! उन्होंने मेरा बलात्कार से हरण किया है। इस लिये वे महानीच हैं। उन्होंने एक बार काशी को जीत लिया है। इस कारण वे गर्व करते हैं। अतएव उन्हें उनके कर्मों का फल चखाना चाहिये। हे प्रभो! जिस समय बलात्कार से भीष्म ने मेरे हृदय को दुखाया था, उसी ——

मैंने यह निश्चय कर लिया था कि, इसका अवश्य संहार करूँ। हे भार्गव! जैसे वृत्रासुर को देवराज इन्द्र ने मारा था, उसी प्रकार आप भी भीष्म का संहार कर मेरी अभिलाषा पूरी कीजिये।

एक सौ अठहत्तर का अध्याय

कुरुक्षेत्र में परशुराम और भीष्म के युद्ध का समारोह

भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन! जब परशुराम ने भीष्म के संहार करने का आग्रह करने वाली उस कन्या को अत्यन्त दुःखित देखा, तब उससे कहा कि, हे काशिराज की पुत्री! मैं केवल ब्रह्मज्ञानियों के कार्य की सिद्धि के लिये ही शस्त्र उठाता हूँ अन्यथा नहीं। इस लिये अब तू बता कि, मैं क्या उपाय करूँ। वाणी मात्र से ही मैं तेरा सब कुछ काम कर सकता हूँ। राजा शाल्व और भीष्म दोनों ही मेरे बड़े आज्ञाकारी हैं। वे मेरी बात को कभी नहीं टाल सकते। इस कारण तू घबड़ा नहीं। मैं तेरा काम अवश्य ही करूँगा; परन्तु बिना ब्राह्मणों की आज्ञा पाये, मैं कभी शस्त्र धारण नहीं कर सकता। ऐसा मेरा नियम है।

अम्बा बोली—महाराज! आप चाहे जो उपाय करें। आपको मेरा दुःख तो दूर करना ही चाहिये और वह दुःख बिना भीष्म का संहार किये दूर हो नहीं सकता।

परशुराम ने कहा—हे पुत्रि! तू और भी खूब सोच समझ ले। याद रख भीष्म तेरे लिये अत्यन्त पूजनीय और प्रणाम करने योग्य है। उनसे यदि मैं कहूँ तो वे मेरी आज्ञा पा कर अवश्य तेरे चरणों में आ कर अपना सिर रख देंगे।

परशुराम जी के ये वचन सुन कर, उन तपस्वियों में सब से वृद्ध और तेजस्वी एक तपस्वी ने कहा—हे महाराज! यह दुःखिनी कन्या आपके शरण में

आयी है। इस लिये इसका दुःख तो आपको दूर ही कर देना चाहिये। इसमें आपकी हानि ही क्या है? अब भीष्म आपके पास आ कर यह कह दें कि, आपसे मैं परास्त हुआ और अब आपकी जो आज्ञा होगी उसका मैं पालन करूँगा। बस, इतने ही से इस कन्या का मनोरथ पूरा हो जावेगा तथा आपकी बात भी रह जायगी। हे महामुने! आपकी दूसरी प्रतिज्ञा यह भी तो है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जो कोई भी ब्राह्मणों से द्वेष करेगा, वह मेरे क्रोधाग्नि में अवश्य भस्म होगा तथा जो मेरे शरण में आवेगा उसका परित्याग मैं प्राण रहते कभी भी न करूँगा। हे भगवन्! आपकी प्रतिज्ञा यह भी तो है कि, जो वीर समस्त क्षत्रियों का संहार कर डालेगा, मैं उसका भी संहार करूँगा। इस लिये कुरुवंशी और विजयी वीर भीष्म का आपको अपनी प्रतिज्ञानुसार अवश्य संहार करना चाहिये।

परशुराम ने कहा—हे महर्षे! मैं अपनी प्राचीन प्रतिज्ञाओं को भूला नहीं हूँ; किन्तु मैं यह चाहता हूँ कि, जब तक समझाने से काम चल जावे, तब तक युद्ध करना बुद्धिमानी का काम नहीं है। हे महादेव! काशिराज की कन्या के इस महान् कार्य के करने के निमित्त मैं स्वयं इसे साथ ले कर भीष्म के पास जाऊँगा। विजयी भीष्म यदि मेरी बात न मानेंगे तो मैं अवश्य ही संग्राम में उनका गर्वोन्नत मस्तक नीचा कर दूँगा। यह मेरा निश्चित और अटल विचार है; संसार में कोई भी प्राणी मेरे बाणों के प्रहार को सहन नहीं कर सकता। यह तो आपको अनेक बार क्षत्रियों के साथ युद्ध करने पर मालूम ही हो चुका है। यह कह कर महातपस्वी परशुराम जी मुनियों सहित भीष्म के पास जाने की तैयारी करने लगे। अस्तु, प्रातःकाल सन्ध्या हवन आदि नित्य कर्मों से निबट कर, मुनियों सहित तथा अम्बा को अपने साथ ले कर परशुराम जी भीष्म को मारने की इच्छा से कुरुक्षेत्र में अपने साथ आये हुए सब तपस्वियों सहित सरस्वती के किनारे ठहर गये। तीसरे दिन परशुराम ने मेरे पास कहला कर भेजा कि, हे राजन्! मैं तेरे पास किसी विशेष

काम से आया हूँ। इस लिये तू मेरा काम कर, मैं भी महाबली तपस्वियों में श्रेष्ठ पूज्य परशुराम जी को आया हुआ सुन कर बड़ी भक्ति के साथ शीघ्र ही उनके पास पहुँचा। हे राजन्यमणे! मैं जब उनके दर्शनों के लिये गया, तब अपने साथ अनेक ऋत्विज ब्राह्मणों को लेता गया था, और एक गौ भी मेरे साथ थी।

परशुराम ने मुझे अपने समीप आया हुआ देख कर, बड़ी प्रसन्नता से मेरा आतिथ्य स्वीकार किया और कहा—हे भीष्म! जब तुम्हें निवाह करने की तनिक भी लालसा नहीं थी तब फिर तुमने काशिराज की कन्या का हरण क्यों किया और फिर इसे त्याग क्यों दिया? भला बतलाओ जब तुमने अपने स्पर्श से इसका स्त्रीधर्म बिलकुल नष्ट कर दिया तब अब इसे कौन स्वीकार कर सकता है? हे भरतश्रेष्ठ! केवल तुम्हारे अपहरण के कारण ही राजा शाल्व ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस लिये अब तुम मेरी आज्ञा से इसे स्वीकार करो। मैं यह चाहता हूँ कि, यह कन्या भी अपने धर्म से भ्रष्ट न हो और तुम्हारे शरीर से राजाओं का अपमान भी न हो।

इसके बाद परशुराम जी को उदास देख कर मैंने कहा—हे महाराज! अपने भाई के साथ तो अब मैं इस कन्या का सम्बन्ध कर नहीं सकता। क्योंकि इसने यहाँ आते ही मुझसे यह कह दिया था कि, मेरी राजा शाल्व पर प्रीति है। मैंने भी इसके कहने के अनुसार इसे राजा शाल्व के यहाँ जाने की आज्ञा दे दी और यह चली भी गयी। महाराज! सुनिये। मैं भय, निन्दा, लालच तथा कामनाओं के अधीन हो कर अपने क्षात्रधर्म का परित्याग कभी भी नहीं कर सकता। क्योंकि यह मेरा अटल और दृढ़ व्रत है।

हे राजन्! मेरे इस उत्तर को सुन कर, परशुराम जी ने आँखे तरेर कर कहा—हे राजन्! यदि तू मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेगा, तो मैं तुझे तेरे मन्त्रियों सहित मार डालूँगा। इस पर मैंने परशुराम जी से अनेक

अनुनय-विनय-पूर्ण वचन कहे ; किन्तु वे शान्त न हुए । उनका क्रोध बढ़ता ही गया । यह देख कर मैंने उन्हें नतमाथ प्रणाम किया और पूछा कि, हे भगवन् ! आप जो मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं इसका कारण क्या है ? महाराज ! मैं तो आपका शिष्य हूँ, बाल्यकाल में आप ही ने तो मुझे चार प्रकार की शस्त्रविद्या सिखलायी थी।

यह सुन कर परशुराम मुझसे और भी गर्म हो कर बोले—रे भीष्म ! तू मेरा शिष्य बन कर भी मेरी आज्ञा का पालन नहीं करता । याद रख जब तक तू मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं करेगा तब तक तुझे शान्ति मिलना कठिन है । तूने ही इस कन्या का अपहरण कर स्त्रीधर्म से इसे भ्रष्ट कर दिया है । अतएव इसका पति इसे स्वीकर नहीं करता । तू बड़ा भारी धर्मज्ञ है । इस कारण इस कन्या को ग्रहण कर ले और अपने वंश का उद्धार कर ।

शत्रु-विजयी परशुराम की पूर्वोक्त बातों को सुन कर, मैंने कहा—हे महर्षे ! आपका यह सब परिश्रम व्यर्थ है । मैं इस कन्या को छोड़ चुका हूँ । इस कारण अब मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता । आप मेरे गुरुदेव हैं । इसीसे मैं आपका अनुनय विनय कर रहा हूँ । आप ही बतलाइये, परपुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री को कौन अपने घर में महा-विषैली सर्पिणी की तरह बिना जाने पूछे रख सकता है । महाराज ! स्त्रियों में महासंहार करवा डालने का बड़ा भारी दोष होता है । हे गुरुदेव ! यह काम तो मैं साक्षात् इन्द्र भी यदि मुझ पर कुपित हो जावें, तौ भी नहीं कर सकता । अब आप चाहे प्रसन्न हों या अप्रसन्न इसकी मुझे पर्वाह नहीं । जो कुछ भी आपको करना धरना हो शीघ्र ही कर डालिये । देर करना व्यर्थ है । हे महात्मन् ! महात्मा मरुत देव का एक श्लोक पुराणों में पाया जाता है जिसका सारांश यह है कि, किंकर्त्तव्य-विमूढ़, घमंडी और कुमार्गगामी गुरुदेव का भी परित्याग कर देना चाहिये । अब तक मैंने आपको अपना गुरुदेव समझ सम्मान की दृष्टि से देखा ; किन्तु अब

मुझे मालूम हो गया कि, आप गुरुधर्म से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। अतएव मैं आपसे लड़ूँगा। मैं समर में ब्राह्मण गुरुदेव का वध नहीं करता तथा तपोवृद्ध जनों का तो मैं बड़ा ही आदर किया करता हूँ। यही कारण है कि मैंने अब तक आपको क्षमा किया, किन्तु यदि ब्राह्मण भी क्षत्रियों की तरह शस्त्र बाँध कर मुझसे लड़ने को आवे और संग्रामभूमि से भागे नहीं तो मैं उसे भी बिना मारे नहीं छोड़ता। क्योंकि शास्त्रों की आज्ञा है कि, ऐसे ब्राह्मण का संहार करने से ब्रह्महत्या का पातक नहीं लगता। मैं क्षत्रिय होने के कारण क्षात्रधर्म का ही पालन किया करता हूँ। जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ही बर्त्ताव करना चाहिये। इस व्यवहार से कभी मनुष्य के धर्म का नाश नहीं होता। राजनैतिक और धार्मिक कामों में कुशल और देशकाल के जानने वाले मनुष्य को यदि धार्मिक विषय में सन्देह हो जावे, तो वह कभी अपने कार्य को सिद्ध नहीं कर सकता; किन्तु निःसंशय हो कर धर्मानुष्ठान करने वाले मनुष्य ही को श्रेष्ठ समझना चाहिये। आप इस संशयात्मक कार्य में भी अन्याय कार्य कर रहे हैं। इस कारण मैं आपसे अवश्य ही संग्राम करूँगा। अब आप मेरा भुजबल और अलौकिक पराक्रम देखिये। मैं इस दशा में भी आपको अपनी वीरता दिखलाऊँगा। अब आप मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करने के लिये तैयार हो जाइये। आप रण-भूमि में मेरे साथ तीक्ष्ण बाणों द्वारा पवित्र हो कर सीधे देवलोक को प्रस्थान करोगे। हे तपोधन राम! आप लौट जाइये और कल कुरुक्षेत्र में आप मुझसे लड़ने के लिये आइयेगा। मैं आपको वहीं मिलूँगा। हे प्रभो! जिस कुरुक्षेत्र में आपने असंख्य क्षत्रियों के रुधिर से अपने पिता के लिये अञ्जलि प्रदान की थी और शुद्धि-स्नान किया था, उसी कुरुक्षेत्र में मैं भी आपका संहार कर और क्षत्रियों को तृप्त कर, दसवें दिन शुद्धि स्नान करूँगा। क्योंकि गुरु अथवा पिता की मृत्यु के बाद शिष्य अथवा पुत्र की शुद्धि दसवें दिन ही हुआ करती है। इस लिये आप मेरे साथ युद्ध करने के लिये अवश्य ही कुरुक्षेत्र में आवें। क्योंकि आप केवल नाम के ब्राह्मण हैं। मैं

ही आपका घमंड दूर करूँगा। आप जो अपनी वारंवार प्रशंसा किया करते हैं कि, मैंने अकेले ही अनेक क्षत्रियों का संहार कर डाला, सो मैं आपको इसका उत्तर देता हूँ। महाराज! जब आपने पराक्रम दिखलाया था तब मैं या मेरे समान और कोई योद्धा नहीं था। आप केवल तृण समान कायरों पर पराक्रम दिखला कर ही अपने को वीरशिरोमणि समझने लगे थे; परन्तु हे महाबाहु! आपके इस युद्ध के घमंड को चूर करने वाले भीष्म का जन्म तो अब हुआ है। इस लिये सावधान हो जाइये। निःसन्देह मैं आपके घमण्ड को चूर कर डालूँगा।

हे दुर्योधन! यह सुन कर परशुराम जी बोले कि, हे भीष्म! मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि, तू मेरे साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो रहा है। मैं भी कुरुक्षेत्र में तुझसे संग्राम करूँगा। तू अवश्य कुरुक्षेत्र में मुझसे लड़ने के लिये आना। उस रणक्षेत्र में मैं सैकड़ों बाणों से तुझे मार गिराऊँगा और तेरे इस शरीर को गिद्ध कौवे आदि खा जाँयेगें। तेरी इस दशा को सिद्ध महात्माओं से सेवित तेरी माता गङ्गा भी देखेगी। उस निर्दोष महाभागिनी गङ्गा देवी ने तुझ जैसे मूर्ख और उतावले कलह-प्रिय पुत्र को पैदा किया है। इस लिये वह रोने के योग्य न होती हुई भी रोवेगी।

हे दुर्योधन! परशुराम ने मुझसे ललकार कर कहा कि, रे मदान्ध भीष्म! तू रथ शस्त्र आदि सभी युद्ध की सामग्रियों को ले कर मेरे साथ ही कुरुक्षेत्र में चल। यह सुन कर मैंने भी बहुत अच्छा कह कर परशुराम जी को प्रणाम किया। इसके उपरान्त परशुराज जी कुरुक्षेत्र चले गये और मैंने हस्तिनापुर आ कर सारा हाल सत्यवती से कहा। माता सत्यवती ने यह सुन कर मेरी विजयकामना करते हुए मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने भी ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराया। मैं श्वेत घोड़ों वाले अस्त्रों शस्त्रों से पूर्ण रथ पर सवार हो गया। महावीर, अश्व-शास्त्र-विशारद, युद्ध में चतुर एवं कुलीन मेरा सारथि रथ पर बड़ी सावधानी के साथ बैठा हुआ था। मैं सुन्दर कवच पहिने और श्वेत धनुष हाथ में लिये तथा सिर

पर भी श्वेत पगड़ी बाँधे हुए था। हे राजन्! जब मैं हस्तिनापुर से कुरु-क्षेत्र के लिये चल दिया, तब सब लोग मुझे आशीर्वाद देते हुए मेरी स्तुति करने लगे। वहाँ जा कर लड़ने से पहिले मैंने अपना दिव्य शङ्ख बजाया। जिससे सब तपस्वी ब्राह्मण और इन्द्रादि देवता भी उस दिव्य संग्राम को देखने की लालसा से एकत्र हो गये। बादल गरजने लगे। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। परशुराम के साथ आये हुए तपस्वियों ने रण दर्शन की लालसा से रणभूमि को घेर लिया था।

इतने में मेरी माता गङ्गादेवी भी मेरे पास आयीं और कहने लगीं—हे पुत्र! तुम यह क्या करना चाहते हो? मैं अभी जामदग्नि के पास जा कर कहती हूँ कि, तुम अपने शिष्य भीष्म के साथ संग्राम न करो। गङ्गादेवी ने मुझसे कहा कि, देख! तुझे ब्राह्मण परशुराम जी से युद्ध न करना चाहिये। वह वीर महादेव के समान पराक्रमी और क्षत्रियों का संहार करने वाला है। उसे न पहिचान कर ही तू उसके साथ संग्राम करना चाहता है।

इसके बाद मैंने अपनी माता गङ्गादेवी को सारा हाल कह सुनाया। काशिराज की कन्या का हाल और स्वयंवर का वृत्तान्त भी सब कह दिया। मेरी सब बातों को सुन कर मेरी माता परशुराम जी के पास गयी और उनसे क्षमा माँगती हुई कहने लगी कि, हे महाराज! आप अपने शिष्य भीष्म से संग्राम न कीजिये।

यह सुन कर परशुराम बोले—मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। आप भीष्म को ही संग्राम करने से लौटा लो। वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं करता। इस कारण ही मैं उससे लड़ना चाहता हूँ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! पुत्रवत्सला गङ्गादेवी फिर भीष्म के पास पहुँची; किन्तु क्रोधी भीष्म ने उसका कहना नहीं माना। इसके बाद भृगुवंशमणि परशुराम ने समरभूमि में आ कर, भीष्म को लड़ने के लिये पुकारा।

एक सौ उन्नासी का अध्याय

परशुराम-भीष्म-संग्राम

इसके बाद—हे दुर्योधन ! मैंने परशुराम से कहा कि, हे महाराज ! मैं स्वयं रथ पर सवार हो कर भूमि पर खड़े हुए आपसे कभी नहीं लड़ सकता। यदि आप मुझसे लड़ना चाहते हैं, तो कवच धारण कर रथ पर सवार हो जाइये।

यह सुन कर परशुराम मुस्कुराये और मुझसे बोले—हे भीष्म ! पृथिवी मेरा रथ, वेद मेरे घोड़े, पवन मेरा सारथी, वेदमाता गायत्री और सरस्वती सावित्री ही मेरा अभेद्य कवच हैं। मैं इनके द्वारा ही अपने शरीर की रक्षा करता हुआ तेरे साथ लड़ूँगा। बस यह कहने के बाद ही वे मुझ पर भयङ्कर बाण वर्षा करने लगे तथा उसी समय मैंने देखा कि श्रीपरशुराम जी बड़े लंबे चौड़े अनुपम अद्भुत और दिव्य रथ पर बैठे हुए हैं। यह सुवर्ण-मण्डित रथ दिव्य घोड़ों से युक्त था। परशुराम जी के शरीर पर जो कवच था, वह सूर्य चन्द्र के चिन्हों से अङ्कित तथा उनके हाथ में धनुष, पीठ पर दो तूणीर, हाथों में चमड़े के दस्ताने और अंगुलियों में लोहे की कड़ियाँ थीं। युद्धार्थी परशुराम का सारथ्य वेदज्ञ अकृतव्रण कर रहा था। इसके बाद परशुराम जी मुझे प्रसन्न करते हुए रण के लिये मुझे ललकारने लगे और कहने लगे कि आओ भीष्म ! अब आओ सामने ! सूर्य समान तेजस्वी महाबली क्षत्रियों का संहार करने वाले परशुराम के साथ संग्राम करने के लिये मैं अकेला ही चला गया था। सब से पहिले परशुराम ने मेरे तीन बाण मारे। इसके बाद मैं तुरन्त ही अपने घोड़ों को रोक कर रथ पर से उतर पड़ा और पैदल ही परशुराम जी के पास गया। शास्त्रोक्त विधि से उनकी मैंने पूजा की और कहा कि हे राम ! आप मेरे गुरुदेव हैं। आपसे आज मैं युद्ध करने के लिये आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ। इस लिये आप मुझे आशीर्वाद दीजिये कि, मेरा विजय होवे।

यह सुनकर परशुराम ने कहा— हे भीष्म ! सचमुच अपना कल्याण चाहने वाले को ऐसा ही विनम्र होना चाहिये तथा गुरुजनों के साथ संग्राम करने वालों का भी यही धर्म है। हे भीष्म ! तू सावधानी के साथ युद्ध कर। आज तू यदि मेरे पास न आता तो मैं अवश्य तुझे शाप दे देता; किन्तु मैं तुझे आशीर्वाद नहीं दे सकता। अब तू जा और युद्ध कर। मैं तेरे इस विनीत व्यवहार से तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसके बाद मैं परशुराम को प्रणाम कर अपने रथ पर आ गया और शङ्ख बजाने लगा। हे दुर्योधन ! परशुराम और मेरा बहुत दिनों तक बराबर संग्राम होता रहा। इस संग्राम में उन्होंने मेरे एक सौ उनसठ बाण मारे थे। यद्यपि उन बाणों से मेरे सारथि और घोड़े सब ढक गये थे, तो भी मैं अपना दुर्भेद्य कवच पहिने हुए बराबर रणभूमि में उनके सम्मुख खड़ा रहा।

इसके उपरान्त मैंने देवताओं को प्रणाम कर, कुछ हँसते हुए परशुराम से कहा—हे ब्रह्मदेव ! यद्यपि आपने मर्यादा को उल्लंघन किया है, तो भी मैं अब तक आपके आचार्यपन की प्रतिष्ठा करता चला आ रहा हूँ। आपके शरीर में रहने वाले वेदों पर, आपके ब्राह्मणत्व पर और आपके तपश्चरण पर मैं प्रहार नहीं करता और न कर ही सकता हूँ; परन्तु मैं आपके क्षात्रधर्म पर ही प्रहार कर रहा हूँ। अस्त्र शस्त्र धारण करने वाला ब्राह्मण भी क्षत्रिय ही होता है। अब आप मेरे धनुष का पराक्रम और भुजाओं का बल देखिये। देखिये मैं तीक्ष्ण बाणों द्वारा आपके इस धनुष को अभी काट कर फेंके देता हूँ। यह कह कर मैंने एक ही तीक्ष्ण भल्ल बाण मारा था कि, उनके धनुष की कोटि कट कर भूमि पर गिर पड़ी। उसी प्रकार उनके रथ पर भी नतपर्व कङ्क पत्र वाले सौ बाण मैंने मारे। वे सब बाण उनके शरीर में घुस गये और ख़ून की वमन करते हुए कुछ काल बाद वे लौट आये। जैसे लाल धातु से सुमेरु पर्वत की शोभा होती है, वैसे ही लोहूलुहान हुए परशुराम शोभित हो रहे थे। हे राजन् ! उस समय परशुराम हेमन्त के रक्त शोक के और वसन्त के पुष्पित ढाक की तरह शोभा पा रहे

थे। इसके उपरान्त परशुराम जी ने और दूसरा धनुष ले कर मुझ पर बड़ी भारी बाणवर्षा की। प्रचण्ड अग्नि और विषधरों के समान भयङ्कर वे बाण वास्तव में उस समय मेरे मर्मस्थानों को विदीर्ण करने लगे थे और मैं भय से काँपने लगा था। अस्तु मैंने धैर्य धारण किया और बड़े साहस के साथ परशुराम जी के ऊपर भयङ्कर बाणवर्षा करनी आरम्भ कर दी। सर्पों के समान ज़हरीले तथा अग्नि और चन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी, मेरे तीक्ष्ण बाणों के आक्रमण से परशुराम जो उस समय व्याकुल हो गये। यह देख कर मुझे बड़ी दया आयी और मैंने अपने मन को धिक्कार दे कर कहा कि संग्राम और क्षात्रधर्म इन दोनों को धिक्कार है। हे राजन्! इस प्रकार शोकोद्वेग के कारण मैंने यही बात बारंबार कही कि, आज क्षात्रधर्म का पालन करने के लिये मैंने यह बड़ा भारी अधम काम किया है। प्रथम तो गुरु और उस पर भी वेदवेत्ता महात्मा के साथ मैंने ऐसी शत्रुता का व्यवहार किया। बस यह सोचने पर ही मैंने परशुराम जी पर फिर बाण नहीं चलाये। इतने में शाम हो गयी और सूर्यदेव के अस्त हो जाने पर युद्ध बंद हो गया।

एक सौ अस्सी का अध्याय

युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग

भीष्म ने कहा—हे राजन्! इसके बाद मेरे चतुर सारथि ने अपने, मेरे तथा घोड़ों के शरीरों में घुसे हुए सब बाण निकाले। घोड़ों को रथ से खोल दिया। जब वे लोटपोट चुके तब उन्हें स्नान करा कर श्रमरहित किया तथा रथ में जोड़ कर दूसरे दिन फिर प्रातःकाल से मेरा और परशुराम का युद्ध छिड़ गया। जब कवच धारण किये हुए रथ में सवार मुझे परशुराम जी ने आते देखा; तब वे तुरन्त ही अपना रथ तैयार

करा कर मेरे सामने आ गये। युद्धार्थी भार्गव को आते देख कर मैंने अपना धनुष भूमि पर पटक दिया और स्वयं रथ से उतर कर उन्हें प्रणाम कर, मैं फिर रथ पर जा बैठा और लड़ने की इच्छा से उनके सम्मुख निर्भय हो कर डटा रहा। अनन्तर वे मुझ पर और मैं उन पर भयङ्कर बाण-वर्षा करने लगा। परशुराम जी अत्यन्त ही क्रोध में भर गये थे। उन्होंने मुझ पर बड़े भयङ्कर सर्पों के समान धकधकाते हुए अनेक बाण छोड़े; किन्तु मैंने भी तीक्ष्ण भालों को मार मार कर, उन सब बाणों को आकाश ही में काट डाला। तब उन्होंने अन्य दिव्य अस्त्र मुझ पर छोड़े; परन्तु मैंने उन्हें भी अपने बाणों से रोक दिया। इस प्रकार हे राजन्! जिस समय हम दोनों ही अपनी अपनी रणकुशलता दिखला रहे थे, उस समय आकाश में बड़ी भारी गर्जना होने लगी। मेरे वायव्यास्त्र का उन्होंने अपने गुह्यकास्त्र से नाश कर दिया। उसी प्रकार मेरे आग्नेयास्त्र को भी वीर परशुराम ने अपने वारुणास्त्र से शान्त कर दिया। इस तरह मैंने परशुराम जी के और उन्होंने मेरे दिव्यास्त्रों को रोका था। इसके उपरान्त ब्रह्मदेवता परशुराम जी मेरी दहिनी ओर आये और तीक्ष्ण बाणों से उन्होंने मेरी छाती को बींध दिया। बस फिर क्या था। मैं मूर्छित हो गया। मेरा बुद्धिमान सारथि मुझे रणभूमि से बाहर ले आया। हे राजन्! इस प्रकार मुझे मूर्छित और रणक्षेत्र से बाहर गया हुआ देख कर, अकृतव्रण आदि सब परशुराम के सेवक और वह कन्या अम्बा भी बहुत प्रसन्न हुई और वे सब लोग बड़ा कोलाहल मचाने लगे। कुछ देर बाद जब मुझे होश आया, तब मैंने अपने सारथि से कहा कि, हे सारथे! अब मैं ठीक हो गया हूँ। इस लिये जहाँ परशुराम जी हों वहीं मुझे ले चल। पवन-समान-वेग-शाली घोड़ों के द्वारा, मेरा रथ कुछ काल बाद ही रणभूमि में परशुराम जी के सामने पहुँच गया। जाते ही मैंने अत्यन्त क्रोध में भर कर, परशुराम जी पर भयङ्कर बाण बर्साना आरम्भ किया। रण में सीधे जाने वाले मेरे बाण जैसे जैसे परशुराम जी पर आक्रमण करने लगे, वैसे वैसे पराशुराम जी भी मेरे ऊपर मेरे एक

एक बाण के बदले में दो दो बाण मारने लगे तथा मेरे सब बाणों के उन्होंने तीन तीन टुकड़े कर डाले। इस प्रकार परशुराम जी ने मेरे सैकड़ों बाण बेकार कर डाले। यह देख कर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने परशुराम का संहार करने के लिये काल के समान एक बड़ा भयङ्कर तीक्ष्ण बाण छोड़ा। उस बाण के आघात से मूर्छित हो कर परशुराम भूमि पर लुढ़क गये। हे राजन्! जैसे सूर्य देव के गिरने से संसार में हाहाकार मच जाता है, वैसे ही परशुराम के गिरते ही सब लोगों में हाहाकार और घबड़ाहट मच गयी। सारे तपस्वियों ने समझा कि, परशुराम ने रणभूमि में प्राण त्याग दिये। इस कारण अम्बा सहित वे सब महात्मा लोग उनकी ओर दौड़ गये। वे लोग अनेक शीतल उपचारों द्वारा उनकी विजयकामना करते हुए, उन्हें चैतन्य करने की चेष्टा करने लगे।

चेत में आते ही परशुराम जी ने धनुष पर बाण चढ़ा कर मुझसे कहा—रे भीष्म! ठहर जा, मैं अभी तीक्ष्ण बाण द्वारा तेरा संहार करता हूँ। उसी समय उन्होंने मेरे दहिने कंधे में एक बड़ा तीक्ष्ण बाण मारा, जिसके आघात से मैं बड़ी घबराहट के साथ वृक्ष की तरह एक ओर को लचक कर झुक गया। उसके बाद परशुराम जी ने तुरन्त एक शस्त्र छोड़ कर मेरे घोड़ों को मार डाला और बड़ी धीरता के साथ वे पंखों से युक्त बाणों से मुझ पर आक्रमण करने लगे। हे राजन्! मैंने भी अनेक बाण छोड़े, किन्तु वे सब बाण आकाश ही में रह गये। इस प्रकार मेरे और परशुराम के बाणों से आकाश एकदम आच्छादित हो गया। भूमि पर धूप का आना भी एक दम रुक गया। आकाश विहारी वायु देव भी घने मेघमण्डल की तरह बाणों से रुक गया तथा वायु के कम्पन और सूर्य की किरणों के स्पर्श से बाणों से आग पैदा हो गयी और वे जलने लगे। इस प्रकार असंख्यों प्रज्वलित बाण भूमि पर गिरने लगे। परशुराम जी ने कुछ देर बाद फिर मुझ पर प्रकोप किया और असंख्यों भयङ्कर बाण मुझ पर छोड़े।। मैं भी अपने भयङ्कर बाणों से उनके बाणों की बराबर

काट छाँट करता रहा। हे दुर्योधन ! इस प्रकार कुरुक्षेत्र के मैदान में जब परशुराम जी को और मुझे लड़ते लड़ते शाम हो गयी, तब परशुराम रणभूमि से बाहर चले गये।

एक सौ इक्यासी का अध्याय

परशुराम और भीष्म का घोर युद्ध

भीष्म बोले—हे भरतवंश श्रेष्ठ ! इसके बाद दूसरे दिन भी परशुराम जी के साथ मेरा भयङ्कर संग्राम हुआ। महाबली धर्मात्मा परशुराम जी अनेक दिव्य अस्त्रों की मुझ पर वर्षा करने लगे। मैंने भी अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उनके साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इधर जब मैंने परशुराम जी के समस्त शस्त्रों को काटना आरम्भ कर दिया, तब वे भी बड़े क्रुद्ध हो गये और जी जान से मुझे परास्त करने की कोशिश करने लगे। जब उनके सारे अस्त्र बेकार हो गये, तब उन्होंने काल की सूचना देने वाली सी एक भयङ्कर गदा मुझ पर फेंकी। वह गदा सब संसार में प्रकाश करती हुई मेरी ओर आने लगी। मैंने अपने बाण से उसके तीन टुकड़े कर डाले, इसके बाद बड़ा सुन्दर शीतल, मंद, सुगन्ध पवन बहने लगा। इस महाशस्त्र को व्यर्थ गया देख कर परशुराम क्रोध से जलने लगे और फिर उन्होंने प्राणसंहारिणी कई एक शक्तियों का मुझ पर प्रहार किया, जिनका वर्णन मैं नहीं कर सकता। जैसे संसार का संहार करने के लिये बारह आदित्यों का एक साथ प्रकाश हुआ करता है, वैसे ही उन प्रचण्ड बारह शक्तियों को एक साथ अपनी ओर आते देख कर मैं घबरा गया। फिर मैंने अपने बारह बाणों द्वारा उन शक्तियों को काट कर फेंक दिया और अपनी रक्षा की। फिर भी परशुराम जी ने अनेक सुवर्ण-दण्ड-मण्डित महाशक्तियों का मेरे संहार के निमित्त प्रयोग किया। उनमें से बड़ी भयङ्कर उल्काएँ निकल रही थीं। मैंने अपनी ढाल से उन शक्तियों को रोका और तलवार से काट

कर उनको फेंक भी दिया। फिर परशुराम जी के घोड़ों और सारथि पर मैंने बाणवृष्टि करनी आरम्भ कर दी। जब वे सारी शक्तियाँ मेरे बाणों से छिन्न भिन्न हो कर भूमि पर गिर पड़ीं; तब परशुराम जी ने क्रुद्ध हो कर एक भयङ्कर दिव्यास्त्र मुझ पर छोड़ा तथा टीढ़ी दल के समान मेरे शरीर पर मेरे सारथि और घोड़ों पर बाणवर्षा होने लगी। मेरा रथ घोड़े सारथि और हम सब ही बाणों से आच्छादित हो गये। रथ का जुआ, पहिया, धुरी और हाल आदि सब कट गये। तब फिर मुझे भी क्रोध आया और मैं गुरुदेव पर भयङ्कर शस्त्र बर्साने लगा। वैदिक समष्टि स्वरूप वे गुरुदेव मेरे बाणों से बिंध गये और उनके शरीर से खून बहने लगा। उस समय जैसे परशुराम मेरे बाणों से व्याकुल हो रहे थे वैसे ही मैं भी उनके बाणों से व्याकुल हो रहा था। इतने में सायंकाल हो गया और लड़ाई बंद हो गयी।

एक सौ बयासी का अध्याय

परशुराम और भीष्म के युद्ध में वसुओं का आगमन

भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन! प्रातः काल फिर हम दोनों का संग्राम छिड़ गया। जैसे घनमण्डल पर्वतों पर वारिवर्षा करता है, वैसे ही परशुराम जी पैंतरा बदल बदल कर, मुझ पर बाण बर्साने लगे। परशुराम जी की असह्य बाणवर्षा को न सह कर मेरा स्नेही सारथि रथ पर से घायल हो कर नीचे गिर पड़ा और एक दो घड़ी के बाद वह मर भी गया। उसकी मृत्यु से मुझे भी बड़ा दुःख हुआ। उस समय मैं उन्मत्त हो कर बाण बर्षाने लगा। मेरी इस क्षिप्रकारिता को देख कर, परशुराम जी ने भी मुझ पर मृत्यु की तरह भयङ्कर एक बाण छोड़ा, वह बाण मेरी छाती में आ कर लगा और मैं मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। हे राजन्! उस समय परशुराम जी अपने साथियों सहित मुझे मरा जान कर, अत्यन्त प्रसन्न हुए और मेघसमान

गम्भीर गर्जना करने लगे तथा मेरे साथ युद्ध देखने की लालसा से आये हुए जितने कौरव थे वे सब मुझे धराशायी देख कर व्याकुल हो गये। इसके उपरान्त मैंने क्या देखा कि, मेरे चारों ओर ब्राह्मण वेष धारण किये हुए आठों वसु खड़े हैं और मुझे अपने हाथों पर उठाये हुए हैं। इस कारण मैं भूमि से बिल्कुल अलहदा था और मुझे यह मालूम हुआ कि, मैं आकाश में ही साँस ले रहा हूँ। इसके बाद उन ब्राह्मणों ने मुझे सावधान किया और कहा कि, तू घबरावे मत, तेरा कल्याण होगा। इसके उपरान्त मैंने देखा कि, मेरे सामने श्रीमती गङ्गा देवी मेरी माता मुझे दर्शन दे रही हैं। वे संग्रामभूमि में मेरे रथ के घोड़ों को पकड़े हुए थीं। मैंने माता के चरणों में प्रणाम किया और मैं फिर रथ पर सवार हो गया। जब मैं अचेत था, तब मेरी माता मेरे रथों के घोड़ों और रथ में रखी हुई सामग्री की रक्षा कर रही थीं। मैंने प्रणाम कर चुकने के बाद उन्हें उनके स्थान पर पहुँचा दिया। समय थोड़ा ही था इस कारण मैं बड़ी शीघ्रता से अपने घोड़ों को भगा कर रणभूमि में परशुराम जी के पास जा युद्ध करने लगा। अब की बार मैंने बड़ी शीघ्रता के साथ हृदय को विदीर्ण करने वाला एक बाण परशुराम जी के मारा। उस बाण के लगते ही परशुराम भूमि पर गिर पड़े उनके धनुष बाण हाथ से छूट पड़े। महर्षि परशुराम के धराशायी होते ही बादलों ने शोणित वर्षा करना आरम्भ कर दिया। बड़ी भारी गड़गड़ाहट के साथ बिजलियाँ भूमि पर गिरने लगीं। सूर्यग्रहण होने लगा। झञ्झावात बहने लगा और भूकम्प होने लगा। गिद्ध और कौओं से रणभूमि भर गयी। दिशायें जलने लगीं, गीदड़ रोने लगे, बिना बजाये ही ढोल, ताशे और नगाड़े बजने लगे। इस प्रकार के उत्पात परशुराम जी के मूर्च्छित हो कर धराशायी होने पर होने लगे। कुछ काल उपरान्त परशुराम जी फिर सचेत हो कर बड़े क्रोध के साथ मुझ पर आक्रमण करने लगे। उन्होंने भयङ्कर धनुष हाथ में ले कर, मुझ पर एक विषाक्त बाण चलाना चाहा कि, इतने में सब मुनियों ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

निदान, उन्होंने वह बाण मेरे ऊपर नहीं छोड़ा। कुछ देर बाद ही भगवान् सूर्यदेव अपनी मन्त्रमयी किरणों सहित अस्त हो गये। रात हो गयी। सुन्दर शीतल सुगन्धित वायु बहने लगा। इस कारण हम दोनों का संग्राम बंद हो गया।

एक सौ तिरासी का अध्याय

भीष्म को अस्त्र विशेष की प्राप्ति

भीष्म जी ने कहा—हे राजन्! तब मैं रात को ब्राह्मण, पितर, देवता, यक्ष, गन्धर्व तथा अन्य राजर्षियों को भी प्रणाम कर अपने एकान्त शयनागार में पहुँचा और मन में सोचने लगा कि, मेरे और परशुराम जी के संग्राम को छिड़े आज कई दिन हो गये। जब तक इसका अन्त होगा तब तक तो प्रजा का बड़ा भारी संहार हो जावेगा। महापराक्रमी परशुराम को संग्राम में परास्त कर देना मेरी शक्ति के बाहर है। यदि मैं परशुराम को हरा सकता होऊँ तो आज रात्रि में मुझे देवता दर्शन देवें। यह कह कर मैं दाईं करवट से सो गया। रात्रि के पिछले पहर में मैंने देखा कि, मैं रथ से नीचे गिर पड़ा हूँ; किन्तु आठ ब्राह्मणों ने मुझे अपने हाथों में रोक रखा है और वे मुझे समझा रहे हैं कि, हे भीष्म! डरो मत, तेरा कल्याण होगा। हे राजन्! उन ब्राह्मणों ने स्वप्न में मुझसे क्या कहा था वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ। हे गाङ्गेय भीष्म! डरो मत। खड़े हो जाओ। हम सब तुम्हारी रक्षा करने वाले हैं। क्योंकि तुम हमारे ही शरीर हो। रण में तुम्हारा विजय होगा। यदि तुम इस शस्त्र को जान जाओगे तो तुम्हारा कोई भी अमङ्गल न होगा। पूर्वजन्म में तुम इस शस्त्र को जानते भी थे। विश्वकर्मा का बनाया हुआ यह प्रस्वापास्त्र है। इसके देवता प्रजापति हैं। संसार में अभी तक इसका जानने वाला कोई है नहीं। हे भीष्म! यह शस्त्र स्मरण करते ही तुम्हारे पास आ जावेगा।

फिर तुम इसको धनुष पर चढ़ाना और परशुराम को परास्त कर देना। इससे परशुराम जी नहीं मरेंगे, केवल वे मूर्च्छित हो जावेंगे। इस प्रकार तुम्हारा विजय भी हो जावेगा और तुम्हें कोई पातक भी न लगेगा। इसके उपरान्त उन्हें अपने सम्बोधनास्त्र से सचेत कर देना। तुम कल यही करना। क्योंकि सोते में और मरे हुए में कुछ अन्तर नहीं होता है। वैसे तो परशुराम जी अमर हैं, उन्हें कोई मार ही नहीं सकता है; किन्तु इस प्रस्वापन अस्त्र से उन्हें सुला देना सम्भव है। हे राजेन्द्र! वे आठों ब्राह्मण मुझसे यह कह कर, अन्तर्धान हो गये।

एक सौ चौरासी का अध्याय

आपस में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग

जब रात बीत गयी और सबेरा हो गया, तब मुझे बड़ा भारी हर्ष हुआ। रह रह कर मुझे वही रात वाला स्वप्न याद आने लगा। मेरा और परशुराम जी का संग्राम फिर छिड़ गया। अब की बार का संग्राम बड़ा भयानक और रोमाञ्चकारी था। परशुराम जी की वेगशाली बाणों की वर्षा, मुझ पर होने लगी। मैं भी उनके शस्त्रों की रोकथाम करने लगा। अपने परिश्रम को बारम्बार व्यर्थ होते देख कर, परशुराम जी क्रोध में भर गये और अब की बार फिर उन्होंने मुझ पर शक्ति का प्रहार किया। यह शक्ति वज्र की तरह तीक्ष्ण और कालदण्ड के समान भयङ्कर कान्ति वाली थी। इसकी प्रचण्डता को देख कर तो, यही प्रतीत होता था कि, यह न केवल मुझे ही बल्कि समस्त संसार ही को भस्म कर डालेगी। वह शक्ति आ कर मेरी हँसली में लगी, जिसके आघात से मैं पर्वत के समान भूमि पर गिर गया और मेरे घाव से रक्त बहने लगा। हे राजन्! फिर तो मुझे भी उन पर बड़ा भारी क्रोध आया। मैंने भी महाभयङ्कर एक बाण उन पर छोड़ा। वह बाण उनके माथे में घुस गया। उस समय

परशुराम शिखर वाले पर्वत की तरह शोभित होने लगे। परशुराम ने भी इसके उत्तर में एक महाकाल तुल्य तीक्ष्ण बाण मेरे मारा और वह मेरी छाती को फोड़ता हुआ बाहर निकल गया। मैं लोहूलुहान हो कर भूमि पर गिर पड़ा। मैं फिर बड़ी शीघ्रता से उठ बैठा और मैंने परशुराम पर शक्ति का प्रयोग किया। मेरी शक्ति ने परशुराम की छाती को फोड़ दिया और वे व्याकुल हो कर काँपने लगे। उनकी यह दशा देख कर उनके परम मित्र तपस्वी अकृतव्रण उन्हें समझाने लगे। कुछ देर बाद सावधान हो कर परशुराम जी ने मुझ पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। मैंने भी बदले में ब्रह्मास्त्र ही छोड़ा। वह मेरा छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र उस समय प्रलयकाल का दृश्य दिखलाने लगा। हे राजन्! वह ब्रह्मास्त्र परशुराम के पास तक तो पहुँचा नहीं, बल्कि आपस में ही टकराने लगा। उन दोनों ब्रह्मास्त्रों के संघर्ष से आकाश जलने लगा और प्राणियों में खलभली मच गयी। ऋषि गन्धर्व आदि भी अत्यन्त दुःखी हुए। वन पर्वत और भूमि भी डगमगाने लगी। दशों दिशाएँ धुँधली हो गयीं। आकाश में आग लग गयी। देवासुर राक्षसादि सब घबराने लगे। इसके उपरान्त ही मैंने ब्रह्मवादियों के कथनानुसार शुभ अवसर समझ कर ज्यों ही प्रस्वाप अस्त्र का मन में ध्यान किया त्यों ही वह प्रगट हो गया।

एक सौ पचासी का अध्याय

युद्धावसान

हे दुर्योधन! मैंने प्रस्वाप नामक शस्त्र परशुराम जी के ऊपर चलाने को हाथ में लिया ही था कि, अन्तरिक्ष में कोलाहल होने लगा और सब देवताओं ने मुझसे कहा—हे भीष्म! सावधान, परशुराम जी पर यह प्रस्वापास्त्र कभी न छोड़ना। देवर्षि नारद ने मेरे सम्मुख आ कर कहा कि, देखो, भीष्म! वे सब देवगण खड़े हुए मना कर रहे हैं कि, तुम परशुराम

पर प्रस्वापास्त्र कभी न छोड़ना। श्रीपरशुराम जी तपस्वी और ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हैं और साथ ही तुम्हारे गुरु भी हैं। इस लिये तुम्हारे लिये यही उचित है कि, तुम इनका अपमान न कर सम्मान ही करो। जब नारद जी यह कह रहे थे तब मैंने देखा कि, वे आठ वसु भी वहाँ पर खड़े और मुस्करा कर मुझसे कह रहे थे कि, हे भीष्म! जैसा नारद जी कह रहे हैं, वैसा ही तुम करो। इनकी आज्ञा संसार का कल्याण करने वाली है। बस मैंने भी प्रस्वापास्त्र को धनुष से हटा लिया और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। यह देखते ही परशुराम जी ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा कि, मैं बड़ा मूर्ख और दुर्बुद्धि हूँ। आज भीष्म ने मुझे परास्त किया। परशुराम ने कुछ देर बाद देखा कि, उनके पिता जमदग्नि और उनके बाबा दोनों ही स्वर्ग से उनके पास आये हुए हैं। वे सब संग्रामभूमि में परशुराम को घेर कर खड़े हो गये और समझाने लगे कि, हे बेटा! देखो सावधान, फिर ऐसा साहस कभी मत करना। भीष्म जैसे क्षत्रिय के साथ संग्राम करने के लिये तैयार हो जाना, भलाई का काम नहीं है। देखो, परशुराम! युद्ध करना केवल क्षत्रियों का ही धर्म है। ब्राह्मणों का तो धर्म केवल वेदाध्ययन और व्रताराधन और तपश्चरण ही है। पहिले भी हम कई बार तुम्हें बतला चुके हैं कि, शस्त्र धारण करना बड़ा भयङ्कर काम है और वह तुमने धारण किया है। भीष्म के साथ युद्ध करने से तुम्हारा अपमान होगा। इस कारण तुम अब रणभूमि से चले जाओ। अब भी तुम ऐसा करो कि, शस्त्रों को त्याग कर तपस्या करने लगो। तुम्हारा धनुष धारण करना तो सफल हो ही गया। सब देवताओं ने भीष्म को भी युद्ध करने से रोक दिया है और अब तुम भी लड़ना बंद कर दो।

परशुराम जी के पितृगण ने मुझको भी भली भाँति समझाया। वे बोले कि, परशुराम तुम्हारे गुरु हैं। तुम इनकी पूजा करो। तुम रणभूमि में ब्राह्मण का सत्कार करो। हम तुमसे बड़े हैं, इसी कारण तुम्हें समझा रहे हैं। फिर उन लोगों ने परशुराम से कहा कि, बेटा! तू जीवित है यही बड़े

भाग्य की बात है। भीष्म अष्ट वसुओं में से एक वसु हैं। वही अब शान्तनु का पुत्र भीष्म रूप से प्रकट हुआ है। उसको तू परास्त नहीं कर सकता। अर्जुन पाण्डवों में श्रेष्ठ पूर्वजन्म का देवता नर का अवतार है। इस महारथी वीर के द्वारा ही ब्रह्मा ने भीष्म की मृत्यु बतलायी है। यह सुन कर परशुराम ने पितरों से कहा कि, मैं युद्ध से तो विमुख हो नहीं सकता। क्योंकि यह मैंने प्रतिज्ञा कर ली है। हाँ, यदि भीष्म चाहे तो वह रणभूमि से लौट कर जा सकता है। मैं तो इस रणभूमि से तिल भर भी पीछे नहीं हटूँगा।

इसके उपरान्त ऋचीक नामक मुनि, देवर्षि नारद के साथ, मेरे पास आये और बोले हे—बेटा! तुम ब्रह्मर्षि परशुराम का सम्मान करो और लड़ाई बंद कर दो। मैंने भी अपने क्षात्रधर्मानुसार उन्हें उत्तर दिया कि मेरा यह दृढ़ मत है कि, चाहे मेरे पीछे से भी क्यों न असंख्य बाणों की वर्षा हो; किन्तु मैं रणभूमि से पीछे पैर कभी न रखूँगा। लोभ से, भय से, कृपणता से अथवा किसी और विभीषिका से भी मैं अपने धर्म का परित्याग कभी नहीं कर सकता। हे राजन्! इसके बाद मेरी माता भागीरथी, नारद मुनि आदि सब इकट्ठे हो कर परशुराम के पास जा कर बोले कि, हे भार्गव! ब्राह्मणों के हृदय से करुणा का कभी सर्वथा लोप नहीं होता। इस कारण आप ही अब शान्त हो जाइये। देखो, लड़ाई बंद कर दो। तुम्हारा संहार करना भीष्म के लिये और भीष्म का संहार करना तुम्हारे लिये, बिलकुल ही अनुचित है। इस प्रकार जब वे सब लोग परशुराम को घेर कर खड़े हो गये, तब उन्होंने अपने पिता पितामह आदि के आग्रह से अपने शस्त्र भूमि पर रख दिये। इसके बाद रणभूमि ही में खड़े खड़े फिर मैंने उन्हीं आठ ब्राह्मणों को फिर देखा।

उन्होंने मुझसे बड़ी नम्रता के साथ कहा—हे भीष्म! तू अपने गुरुदेव परशुराम जी के पास जा और संसार का कल्याण कर। उधर जब मैंने देखा कि, परशुराम जी भी अब शान्त हो गये हैं, तो मैंने भी हथियार छोड़ परशुराम जी के पास जा, उन्हें प्रणाम किया। परशुराम जी ने मुझे देख कर,

बड़े प्रेम के साथ कहा, हे भीष्म! तूने इस युद्ध में मुझे खूब ही प्रसन्न किया है। इस कारण अब तू जा। इसके बाद परशुराम ने उस कन्या अम्बा को बुला कर सब लोगों के सामने बड़ी दीन वाणी में कहा।

एक सौ छियासी का अध्याय

अम्बा का कन्या रूप से जन्म

परशुराम बोले—हे कन्ये! मैंने इन सब लोगों के सम्मुख भीष्म के परास्त करने का अपनी शक्ति के अनुसार बड़ा भारी प्रयत्न किया; किन्तु इस दिव्य शस्त्रधारी अनूठे योद्धा को मैं परास्त न कर सका। अब मुझमें इससे अधिक शक्ति, बल, सामर्थ्य, शौर्य, वीर्य आदि कुछ भी नहीं है। इस लिये अब तेरी जहाँ जाने की इच्छा हो, वहाँ चली जा। इसके अतिरिक्त और जो कुछ तू मेरे योग्य कार्य बतलावेगी सो मैं करने को तैयार हूँ। भीष्म ने मुझे अनेक दिव्यास्त्रों को मार मार कर हरा दिया है। इस कारण तू उसी वीर के पास जा। वही तेरा उद्धार कर सकते हैं। यह कह कर परशुराम जी चुप हो गये और हाँफने लगे।

कन्या ने कहा—हे भगवन्! आपका कहना बिल्कुल ठीक है। इन उदार महारथी भीष्म को देवता भी नहीं जीत सकते। आपने तो यथाशक्ति मेरा काम किया। आपका इसमें कुछ भी दोष नहीं है; किन्तु हाँ. मैं अब भीष्म के पास तो कभी जाऊँगी ही नहीं। भला अब मैं भीष्म के शरण में कैसे जा सकती हूँ? अब तो मैं वहीं जाऊँगी, जहाँ कि, मैं स्वयं भीष्म का संहार करने में समर्थ होऊँगी।

यह कह कर, वह क्रोधना कन्या मेरे सर्वनाश के लिये तपस्या करने को चली गयी। उधर परशुराम जी भी सब से मिल भेंट कर महेन्द्राचल पर चले गये। मैं भी ब्राह्मणों की स्तुति और आशीर्वादों के साथ साथ अपने रथ पर सवार हो कर, हस्तिनापुर आया और सब हाल

अपनी माता सत्यवती को कह सुनाया। माता सत्यवती ने यह सब समाचार सुन कर मेरा अभिनन्दन किया। काशिराज की पुत्री अम्बा का हाल जानने के लिये मैंने अनेक बुद्धिमान् पुरुषों को नियत कर दिया। मेरा हित चाहने वाले उन दूतों ने उसकी प्रतिक्षण की चेष्टाओं का समाचार मुझ तक पहुँचाना आरम्भ कर दिया। जब वह कन्या वन में तप करने के विचार से निकल गयी थी, तभी मुझे बड़ी व्याकुलता हो गयी थी। हे राजन्! महातपस्वी ब्रह्मज्ञानी परशुराम जी को छोड़ कर आज तक किसी ने भी युद्ध में मुझे न हरा पाया। जब मैंने इस विषय की बातें देवर्षि नारद और भगवान् वेदव्यास जी से कहीं, तब उन्होंने मुझसे कहा कि, भीष्म! तुम काशिराज की कन्या के लिये व्यर्थ चिन्ता न करो। दैव के विधान को पलटने वाला संसार में कोई नहीं है।

अस्तु काशिराज की पुत्री यमुना के किनारे एक आश्रम में चली गयी और तप करने लगी। पहिले तो वह कन्या छः मास बराबर काठ की मूर्त्ति के समान खड़ी खड़ी बिना कुछ खाये पिये केवल वायु पान करती हुई तप करने लगी। इस कारण उसका शरीर कृश हो गया। शरीर मलिन और केशों में लटें पड़ गयीं। इसके बाद उसने एक वर्ष बराबर यमुना जल में खड़े खड़े तपस्या की। वृक्षों से स्वयं गिरे हुए फूलों पत्तों को, खा कर उसने एक वर्ष तक तप किया। इस प्रकार बारह वर्ष तक रात दिन बराबर कठिन तप कर के उस कन्या ने भूमि को सन्तप्त कर दिया। उसके सम्बन्धियों ने चाहा भी कि, उसे तप करने से रोक दिया जावे; किन्तु उसे कोई रोक नहीं सका। इसके बाद वह कन्या यमुना के तट को छोड़ कर सिद्ध तपस्वियों के तपोवनों में घूमने लगी और अनेक तीर्थों में स्नान करने लगी। वह महर्षि उलूकनन्दन और च्यवन आदि महात्माओं के आश्रमों में घूमती हुई ब्रह्मा जी के ब्रह्मावर्त स्थान में पहुँची। वहाँ से देवताओं के यज्ञस्थान प्रयाग में, प्रयाग से देवारण्य में, देवारण्य से भोगवती तीर्थ में जा कर वह कौशिक ऋषि के आश्रम में पहुँची। कौशिक के आश्रम से माण्डव्य के आश्रम में, माण्डव्य के आश्रम

से दिलीप के आश्रम में, दिलीप के आश्रम से परशुरामकुण्ड और गर्ग के आश्रम में पहुँची। इस प्रकार अम्बा ने अनेक व्रतों का अनुष्ठान करके पूर्वोक्त तीर्थों में स्नान भी किया। हे राजन्! एक दिन मेरी माता भागीरथी ने उस कन्या से कहा कि, हे कन्ये! तू इतनी कठिन तपस्या क्यों कर रही है? इसका रहस्य कुछ मुझे भी तो बतला।

उस कन्या ने कहा—हे भागीरथी! सुन, भीष्म ने परशुराम जी को जीत लिया है तथा जब वह शस्त्र उठा कर खड़ा हो जावे तब उसके सामने आने वाला मुझे तो कोई राजा दिखलायी देता नहीं। इस कारण मैं भीष्म को परास्त करने के लिये ही यह कठिन तप कर रही हूँ। हे देवि! मेरी सारी साधना का परिणाम यही है कि, मैं भीष्म के वध का उपाय सोचूँ और खोज निकालूँ। इसी लिये मैं समस्त भूमण्डल पर घूम रही हूँ।

यह सुन कर गङ्गादेवी ने कहा—हे तपस्विनी कन्यके! यह तेरी कुटिल कामना है। इसके लिये तुझे परिश्रम नहीं करना चाहिये। यह कभी पूरी नहीं हो सकती। हे कन्ये! यदि तू इस कामना की पूर्त्ति के लिये ही तप करती करती मर गयी तो याद रख, तुझे एक वक्रगामिनी नदी का जन्म प्राप्त होगा और केवल चार मास ही तेरे भीतर जल रहेगा। बाकी छः मास तू सूखी पड़ी रहेगी। तू संसार की दृष्टि में नीच और दुष्ट तीर्थ होगी। बड़े बड़े ग्राह मगरों से तेरा स्वरूप और भयङ्कर हो जावेगा। यह कह कर मेरी माता गङ्गा अपने स्थान को चली गयी और वह कन्या आठवें दशवें मास केवल जल और वायु पान कर, वहाँ तपस्या करने लगी। हे बेटा दुर्योधन! इसके बाद फिर वह अम्बा अनेक तीर्थों में घूमती हुई वत्स देश में पहुँची। वहाँ वह अपने तप के प्रभाव से आधे शरीर से अम्बा नामक नदी के रूप में प्रकट हो गयी। इस नदी में केवल चौमासे ही में जल रहता था। यह बड़ी भयङ्कर और दुस्तर जल वाली हो गयी थी। इस प्रकार आधे शरीर से नदी और आधे शरीर से वत्स देश के राजा की पुत्री के रूप में उसने जन्म लिया।

एक सौ सत्तासी का अध्याय

अम्बा का अग्नि में जल मरना

भीष्म ने कहा—हे राजन्! इस जन्म में तो वह कन्या तपश्चरण कर ही रही थी; किन्तु उसने उस जन्म में भी तीव्र तपश्चरण करने का निश्चय कर लिया। उसका यह निश्चय देख कर सब तपस्वियों ने उसे इस मार्ग से हटाने का प्रयत्न किया और उसे उसका कर्त्तव्य समझाया।

कन्या ने ऋषियों से कहा—भीष्म ने मेरा अपमान कर मुझे पतिधर्म से भ्रष्ट किया है। इस लिये भीष्म को मारने के लिये ही मैंने दीक्षा ली है। किसी साँसारिक सुख के लिये नहीं; मुझे भीष्म को मार कर ही शान्ति मिल सकती है। आह! इस भीष्म के कारण ही मैं अपने स्वर्गीय पति धर्म से वञ्चित हुई हूँ और इस लोक में न स्त्री हूँ न पुरुष ही हूँ। सब तरह मेरा धर्म नष्ट हो गया। जीवन व्यर्थ गया। इस कारण हे ऋषियों! मैं जब तक युद्ध में भीष्म को न मार लूँगी; तब तक अपने व्रत को समाप्त नहीं कर सकती। यह मेरा दृढ़ सङ्कल्प है। मैं इस कायर स्त्री-शरीर से घबरा गयी हूँ। इस लिये पुरुष शरीर प्राप्त करने के निमित्त तपस्या कर रही हूँ। मैं पुरुष बन कर भीष्म का संहार करूँगी। इस लिये आप लोग मेरे साधन में विघ्न न डालिये। उन महर्षियों और अम्बा में ये सब बातें हो ही रही थीं कि, वहीं पर त्रिशूलधारी शिव जी महाराज ने अपने दर्शन दिये और उस कन्या से कहा—वर माँग। कन्या ने भी मेरे पराजय के लिये वर माँगा, तब शिव जी ने कहा कि, तू युद्ध में भीष्म को परास्त करेगी।

कन्या ने कहा—हे भगवन्! मैं तो स्त्री हूँ, किस प्रकार युद्ध में भीष्म का संहार करूँगी। मेरा हृदय शूरता से शून्य है। हे गिरीश! सच बतलाओ मैं किस उपाय से उनका संहार कर सकती हूँ। हे प्रभो! वही उपाय कीजिये जिससे कि, आपका यह वरदान बिलकुल सच्चा हो जावे।

यह सुन कर वृषभध्वज शङ्कर ने कहा—मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। तू अवश्य संग्राम में भीष्म को मारेगी। तुझे पुरुष शरीर प्राप्त होगा और दूसरे जन्म में भी तुझे इन सब बातों का ज्ञान रहेगा। तू राजा द्रुपद का पुत्र होगी। शस्त्रविद्या में चतुर, अनेक युद्ध कलाओं में पटु और पुरुषों में माननीय होगी। मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही होगा। जन्म लेने के कुछ दिनों बाद ही तुझे पुरुषत्व प्राप्त होगा। यह कह कर जटाधारी भगवान् शङ्कर सब के देखते देखते अन्तर्धान हो गये।

इसके उपरान्त सुन्दराङ्गी अम्बा ने सब महर्षियों के सम्मुख ही वन से लकड़ियाँ एकत्र कीं और यमुना के एक द्वीप में प्रचण्ड चिता रची। जब चिता खूब जलने लगी, तब वह यह कह कर कि, मैं संग्राम में भीष्म का संहार करूँगी, उसमें कूद पड़ी।

एक सौ अट्ठासी का अध्याय

राजा द्रुपद के घर में शिखण्डी का जन्म

यह सुन कर दुर्योधन ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—हे पितामह! मुझे यह तो बतलाओ कि, शिखण्डी पहिले स्त्री तथा फिर पुरुष कैसे हो गया?

पितामह भीष्म ने कहा—हे राजन्! राजा द्रुपद के पहिले कोई पुत्र नहीं था। इस कारण उन्हीं दिनों राजा द्रुपद ने भी पुत्रप्राप्ति के लिये महादेव जी को प्रसन्न किया था। वह भी मेरा संहार करने वाले पुत्र ही की इच्छा करता था। इसी कारण महादेव से उसने कहा था कि, हे प्रभो! मेरे कन्या न हो, बल्कि पुत्र हो हो। मैं अपने शत्रु भीष्म से बदला लेने के लिये वीर पुत्र को चाहता हूँ। राजा द्रुपद की प्रार्थना को सुन कर, देवादिदेव श्री महादेव जी ने राजा से कहा कि, हे राजन्! तेरे ऐसा पुत्र होगा कि, जो पहिले तो स्त्री होगा और फिर पुरुष होगा। इस लिये हे राजन्! अब

तपस्या करना छोड़ कर अपने घर जा। मेरे वाक्य कभी मिथ्या नहीं होते बस राजा द्रुपद तपस्या छोड़ कर अपने नगर में आ गये और अपनी रानी से बोले कि मैंने पुत्र की कामना से तप किया है। शङ्कर ने भी मुझसे प्रसन्न हो कर कहा है कि, तेरे यहाँ एक कन्या का जन्म होगा और वह कन्या फिर पुरुष हो जावेगी। यह सुन कर मैंने शङ्कर की बड़ी विनती की; किन्तु उन्होंने कहा कि, नहीं अब कुछ हो नहीं सकता। तुम्हारे प्रारब्ध में यही है। कन्या होगी और वह कुछ काल बाद ही पुत्र भी हो जावेगी। अनन्तर ऋतुस्नान कर चुकने के बाद द्रुपद की रानी ने पति-समागम किया और राजा द्रुपद के वीर्य से गर्भ धारण किया। हे राजन्! राजा द्रुपद पुत्र की लालसा से अपनी रानी की खूब सेवा करने लगा। उसकी प्रत्येक इच्छाओं की पूर्त्ति के लिये सदा तत्पर रहता था। रानी ने भी अपनी सारी इच्छाएँ पूर्ण कर लीं। दसवें मास राजा द्रुपद की सुन्दरी रानी के गर्भ से एक महारूप-वती पुत्री उत्पन्न हुई; किन्तु रानी ने सर्वत्र यही प्रकाशित किया कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है तथा उस कन्या के सारे संस्कार भी पुत्रों की भाँति ही विधि पूर्वक किये कराये गये। केवल द्रुपद तो इसकी असलियत को जानते थे और कोई नहीं जानता था। राजा द्रुपद को श्रीमहादेव जी के वाक्यों पर विश्वास था। इस कारण उसने भी अपना पुत्र कह कर कन्या को छिपा लिया। इस नवजात शिशु का नाम शिखण्डी रक्खा गया। केवल मैं ही अपने विश्वासपात्र दूत तथा नारद जी के वाक्य द्वारा और अम्बा की तपस्या आदि का हाल जानने के कारण, इस बात को जानता था।

एक सौ नवासी का अध्याय

द्रुपद पर चढ़ाई

इसके बाद राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री की शिक्षा दीक्षा का भी उचित प्रबन्ध कर दिया। वे उसे शस्त्रास्त्र-विद्या और युद्धकला की शिक्षा

देने लगे। शस्त्रास्त्र विद्या सीखने के लिये वह द्रोणाचार्य का शिष्य हुआ। शिखण्डी को पुरुषों सरीखा वेष बनाने के लिये, द्रुपद की महारानी सदा प्रेरित करती रहती थी परन्तु बेचारे राजा द्रुपद अपनी कन्या की जवानी को देख कर शोक करने और रानी से कहने लगे—प्रिये! मुझे इस कन्या की जवानी देख कर मुझे बड़ा शोक हो रहा है। भगवान् शङ्कर के वाक्य पर केवल विश्वास होने के कारण ही मैंने इसका कन्यापन छिपा रखा है।

रानी ने कहा—महाराज! घबड़ाइये नहीं विश्वास कीजिये। भगवान् शङ्कर की वाणी कभी झूँठ नहीं हो सकती। क्योंकि त्रिलोकीनाथ कभी झूँठ नहीं बोल सकते। यदि आपको मेरी सम्मति उचित लगे तो उसको सुन कर आप वैसा ही काम करें। आप शास्त्रविधि से इस पुत्र का किसी कुलीन कन्या के साथ विवाह कर दें। क्योंकि शङ्कर का वचन कभी भी मिथ्या न होगा। यह मेरा पक्का निश्चय है। इस प्रकार उन दोनों राजा रानी ने आपस में सलाह कर दशार्ण देश के राजा की पुत्री के साथ विवाह कर देना निश्चय किया। राजा द्रुपद ने अनेक वीर राजाओं की चरितावली का भलीभाँति निरीक्षण कर दशार्ण देश की राजपुत्री के साथ शिखण्डी का विवाह निश्चय किया। दशार्ण देशाधीश राजा हिरण्यवर्मा ने भी अपनी कन्या का शिखण्डी के साथ वरण कर दिया। वह राजा अत्यन्त उदार महाबली और बड़ी भारी सेना रखने वाला था। विवाह हो जाने के बाद शिखण्डी और वह हिरण्य-वर्मा की पुत्री दोनों ही धीरे धीरे तरुण होने लगे। विवाह करने के बाद ही शिखण्डी कम्पिल नगर में आ कर रहने लगा। इधर इसकी स्त्री हिरण्यवर्मा की पुत्री को भी यह बात मालूम हो गयी कि, यह मेरा पति पुरुष नहीं वरन् स्त्री है। बेचारी राजकुमारी ने सब हाल अपनी धाई और सखियों से कह दिया। जब यह हाल सखियों और धाइयों ने सुना, तब वे अत्यन्त दुखित हुईं और सब हाल दूतियों द्वारा महाराज के पास भेज दिया। इस भयङ्कर वञ्चना का हाल सुन कर, हिरण्यवर्मा को बड़ा क्रोध आया। इधर शिखण्डी भी अपने इस गुप्त रहस्य को छिपाये रखने के कारण राजमहल

में ही पड़ी रहने लगी। राजा हिरण्यवर्मा ने क्रोध में आ कर एक दूत द्रुपद के पास भेजा। वह दूत राजा को एकान्त में ले गया और बोला कि, हे राजन्! तुमने राजा हिरण्यवर्मा को बड़ा भारी धोखा दिया है। इस कारण उन्होंने अत्यन्त अप्रसन्न हो कर तुमसे यह कहा है कि, हे राजन्! तूने मेरा बड़ा अपमान किया और मुझे धोखा दिया है। तूने छल से अपनी कन्या के विवाह के लिये मेरी कन्या की याचना की थी। इस लिये अब तू इस भयङ्कर पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये सपरिवार और सामात्य एवं सपुरोहित तैयार हो जा। मैं तेरा सर्वनाश किये बिना न मानूँगा। तुझे अब मारने के लिये तैयार बैठा रहना चाहिये।

एक सौ नब्बे का अध्याय

द्रुपद का रानी से प्रश्न करना

भीष्म जी ने कहा—हे दुर्योधन! उस समय दूत से यह संदेशा सुन कर, राजा द्रुपद की विचित्र दशा हो रही थी। वे एक पकड़े हुए चोर की तरह उस समय एक शब्द भी अपने मुँह से न निकाल सके। कुछ काल बाद उन्होंने राजा हिरण्यवर्मा के पास अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि, महाराज! जैसा आप समझते हैं, वैसा नहीं है। परन्तु समधी महाराज को भी अपने विश्वासपात्र सेवकों से यह पूरा पता लग गया कि, वास्तव में राजा द्रुपद की वह कन्या ही है पुत्र नहीं। अन्त में उन्होंने इस कठिन और असह्य वञ्चना का बदला लेने के लिये राजा द्रुपद पर शीघ्र ही चढ़ाई करने का विचार निश्चय कर लिया। दशार्णपति राजा हिरण्यवर्मा ने अपने सारे बलवान मित्रों को अपनी इस असह्य विडम्बना का समाचार भिजवा दिया और मित्रों की सेना को एकत्र कर चढ़ाई करने के पूर्व अपने मन्त्रियों से विचार किया। मन्त्रशाला में उपस्थित हुए सभी राजाओं ने यह निश्चय किया कि, हे राजन्! यदि राजा द्रुपद का शिखण्डी कन्या हुआ

तो हम लोग निःसन्देह उस शिखण्डी कन्या के सहित राजा द्रुपद को क़ैद में डाल कर या वैसे ही मार डालेंगे और पाञ्चालदेश के राजसिंहासन पर किसी अन्य राजा का अभिषेक कर देंगे। अस्तु, यह सम्मति हो जाने के बाद राजा हिरण्यवर्मा ने फिर राजा द्रुपद के पास दूत भेजा और कहलाया कि, रे नीच द्रुपद! अब तू सावधान हो जा, मैं तेरा संहार करने के लिये आ रहा हूँ। हे दुर्योधन! राजा द्रुपद तो वैसे ही डरपोंक स्वभाव का था। इस कारण वह घबरा गया और हिरण्यवर्मा के पास दूत को भेज कर वह मूर्च्छित हो गया और अपनी स्त्री के पास जा कर कहने लगा कि, हे प्रिये! महाक्रोधी बलवान हिरण्यवर्मा जो कि मेरा समधी है मुझ पर चढ़ाई करने को आ रहा है। प्रिये! जिस शिखण्डी को तूने अपना पुत्र प्रसिद्ध किया है वह कन्या है ही। हाय! हम लोगों ने बड़ा बुरा काम किया। राजा हिरण्यवर्मा को भी इस बात का अपने विश्वस्त सेवकों द्वारा पक्का पक्का हाल मालूम हो गया है। वह मुझे इस धोखे का फल देने के लिये अपने मित्रों की बड़ी भयङ्कर सेना साथ ले कर मुझे मारने को चला आ रहा है। प्रिये! अब तुम बतलाओ मैं क्या उपाय करूँ? इस बालिका शिखण्डिनी पर और तुम पर भी बड़ी भारी आफत आने वाली है। इस लिये अब तुम ही इस भय से अपनी और अपनी पुत्री आदि की रक्षा करो। हे प्रिये! तुम घबराओ मत तुमने पुत्री को पुत्र बतला कर मुझे भी असमञ्जस में डाल दिया है। सो यह तुमने ठीक नहीं किया। अस्तु, अब मैं तत्त्व बात को प्रकाशित कर के अपनी और तुम सब लोगों की रक्षा करूँगा। मैंने राजा हिरण्यवर्मा को धोखा दिया है। इस लिये उसके कोप से बचने का कोई ठीक उपाय बतलाओ। यद्यपि राजा द्रुपद पहिले से ही इन सब बातों को जानता था, तब भी उसने औरों के सामने अनजान हो कर यह सब बातें पूंछी कि जिससे यह सब भेद भूल चूक में पड़ कर लुप्त हो जावे।

एक सौ इक्यानवे का अध्याय

शिखण्डी द्वारा स्थूणाकर्ण यक्ष का स्तव

भीष्म ने कहा—हे महावीर दुर्योधन ! पति की ये बातें सुन कर शिखण्डी की माता ने सब बातें सच्ची सच्ची कह दीं। उसने कहा यह शिखण्डी मेरा पुत्र नहीं, बल्कि कन्या है। हे राजन् ! मेरे पहिले भी कोई पुत्र नहीं था। मैं अपनी सौतों के भय से इस कन्या के जन्म को छिपा गयी और मैंने इसे पुत्र बतला दिया। उस समय आपने भी इस बात को स्वीकार कर, इस कन्या के सब संस्कार पुत्रों के समान ही किये थे। उसके बाद शङ्कर जी के वचनों पर विश्वास होने के कारण ही आपने इसका विवाह दशार्णपति राजा हिरण्यवर्मा की कन्या के साथ कर दिया। क्योंकि महादेव का वाक्य था कि, तुम्हारी कन्या कुछ काल बाद पुरुष हो जावेगी। राजा द्रुपद ने यह सारा का सारा और सच्चा समाचार मन्त्रियों को सुना दिया और इसके बाद वह अपनी प्रजा की रक्षा के उपाय सोचने लगा। हे दुर्योधन ! उस समय राजा और मन्त्रियों में यही निश्चय हुआ कि, जब हिरण्यवर्मा आवे तब उससे यही कहा जावे कि, आप तो हमारे घनिष्ठ बन्धु हैं। भला हम आपके साथ चालबाज़ी करेंगे ? राजा द्रुपद का नगर वैसे ही सुरक्षित था, किन्तु फिर भी उन्होंने उसकी रक्षा का विशेष प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। राजा द्रुपद भय के मारे व्याकुल हो रहे थे। जब उन्हें अपने सम्बन्धी हिरण्यवर्मा को प्रसन्न करने वाला कोई भी उपाय न सूझ पड़ा, तब उन्होंने सारी चिन्ताओं को छोड़ भगवान् का आराधन करना आरम्भ कर दिया। हे दुर्योधन ! जब परमभक्त राजा द्रुपद पूजा करने लगे, तब उनकी रानी ने उनसे कहा कि, महाराज ! देवताओं का आराधन तो प्रति दिन प्रत्येक पुरुष को करना चाहिये और दुःख के समय तो प्रायः लोग ईश्वराराधन करते ही हैं। अब आप देवपूजन की निर्विघ्न समाप्ति के लिये ब्राह्मणों का पूजन कीजिये। उन्हें दान दक्षिणा द्वारा

सन्तुष्ट कर यज्ञ कीजिये और मन में यह ध्यान कीजिये कि, दशार्णपति हिरण्यवाहन बिना युद्ध किये ही लौट जावें। देवताओं के आशीर्वाद से तुम्हारे समस्त काम ठीक होंगे। जैसी अभी अभी अपने मन्त्रियों से आप सलाह कर रहे हैं, वैसी ही रक्षा का प्रबन्ध कीजिये; जिससे प्रजा को कष्ट न हो। काम उसी मनुष्य का सिद्ध हुआ करता है जो परमेश्वर में विश्वास रखने के साथ ही साथ अपने शरीर से उद्योग भी करता रहता है। निरुद्योगी विश्वासी को भी सिद्धि नहीं प्राप्त हुआ करती है। इसलिये विश्वास और उद्योग इन दोनों की आवश्यकता है। इस प्रकार शोकग्रस्त और व्याकुल माता पिता की इन बातों को सुन कर, वह तपस्विनी कन्या शिखण्डनी अत्यन्त लज्जित हो गयी और सोचने लगी कि, हा! आज यह दोनों मेरे कारण से इतने दुःखित हो रहे हैं। मैं अब ऐसी दशा में जीवित रहना भी उचित नहीं समझती। यह निश्चय कर के वह कन्या घर को त्याग कर निर्जन वन में पहुँची। उसी वन में स्थूणाकर्ण नाम का एक यक्ष रहता था। उसके भय से उस वन में कोई पुरुष नहीं आता जाता था। वहाँ उसका बड़ा विशाल भवन बना हुआ था। चूने की अस्तरकारी किया और पुता हुआ वह भवन सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित हो रहा था। द्रुपद की पुत्री शिखण्डिनी उसी महल में घुस गयी और बिना कुछ खाये पिये अपने शरीर को सुखाने लगी। कुछ ही दिनों बाद उस स्थूणाकर्ण ने प्रसन्न हो कर उस कन्या को दर्शन दिये और कहा कि, अरी कन्या! तू क्यों इतनी कठिन साधना कर रही है? बोल तेरी क्या इच्छा है? मैं तेरी कामना पूरी करूँगा। शिखण्डी ने उस यक्ष से कहा कि, आप जाइये और अपना काम देखिये। आप मेरी मनोकामना पूरी नहीं कर सकते हैं, परन्तु उसने कहा नहीं, तू बतला। मैं तेरी कामना क्षण भर में सिद्ध कर दूँगा। मैं वरदान दे सकता हूँ। क्योंकि मैं यक्षराज कुबेर का अनुचर हूँ। तू अपनी अभिलाषा को प्रगट कर। यह सुन कर शिखण्डी ने अपना सारा हाल उससे कह दिया।

वह बोली—हे यक्ष ! मेरे पिता निःसन्तान हैं और वह अब शीघ्र ही स्वर्ग सिधार जावेंगे। क्योंकि दशार्ण देश का राजा हिरण्यवर्मा उन पर चढ़ाई करने आ रहे हैं। वह राजा बड़ा बलवान्, कवचधारी और धनुर्धर है। इस कारण मेरे माता पिता की उससे रक्षा कीजिये। हे यक्ष ! आपने मेरा दुःख दूर करने की प्रतिज्ञा की है। इस लिये अब ऐसा अनुग्रह कीजिये जिससे मैं परम सुन्दर एक बलवान पुरुष बन जाऊँ। हे महायक्ष ! जब तक वह राजा मेरी नगरी में न आवे तब तक आप मेरी यह अभिलाषा पूरी कर दें।

एक सौ बानवे का अध्याय

शिखण्डी का स्त्री से पुरुष होना

भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन ! मन्दभाग्य वह यक्ष कुछ काल तक तो कन्या की यह प्रार्थना सुन कर मन ही मन कुछ बिचारा। तदनन्तर वह शिखण्डी से बोला—हे कन्ये ! तेरा यह काम कुछ कठिन नहीं है। अवश्य ही हो जावेगा। हाँ, मुझे थोड़ा दुःख सहना पड़ेगा और वह यह कि, तुझे मैं अपना पुरुषत्व दे दूँगा किन्तु तुझे भी नियत समय के बाद मुझे मेरा पुरुषत्व लौटा देना पड़ेगा। मैं कामरूप आकाशचारी यक्ष हूँ। तू मेरी कृपा से प्राप्त हुए पुरुषत्व से अपने नगर और माता पिता आदि कुटुम्बियों की रक्षा कर; किन्तु यदि तू मेरे पुरुषत्व को लौटाने की सच्ची प्रतिज्ञा करेगी तो मैं अवश्य ही तेरा काम पूरा कर दूँगा।

शिखण्डी ने कहा—हे यक्षराज ! मैं कुछ काल के बाद अपना रूप लेलूँगी और आपका रूप आपको लौटा दूँगी। राजा हिरण्यवर्मा के लौट जाने के बाद मैं स्वयं आ कर आपका शरीर आपको दे दूँगी।

हे दुर्योधन ! यक्ष और शिखण्डी इन दोनों ने आपस में प्रतिज्ञा कर के आपस में शरीरों की बदलौवल कर ली। शिखण्डी पुरुष और यक्ष स्त्री

बन गया। बस फिर क्या था, पुरुष बन कर शिखण्डी अपनी राजधानी में आ कर माता पिता से मिला तथा यक्ष का और अपना सारा हाल भी उनसे कह दिया। राजा द्रुपद को और रानी को इस घटना को सुन कर बड़ा हर्ष हुआ। शिव जी का वचन सत्य हुआ देख कर राजा द्रुपद ने हिरण्यवर्मा के पास फौरन दूत भेजा और कहलाया कि, मेरा पुत्र पुरुष है। आप विश्वास कीजिये। राजा हिरण्यवर्मा उस समय शोक में मग्न था। इस कारण क्रोध में भर कर वह तुरन्त ही काम्पिल्य नगर पर चढ़ आया और राजा द्रुपद के पास सन्देशा भेजा कि, रे नीच! तूने जो मुझे धोखा दिया है उसका अब तू फल भोग। जब वह दूत राजा द्रुपद के यहाँ पहुँचा; तब उसके पुत्र शिखण्डी ने उसका आदर सत्कार करने के लिये उसे एक बैल भेट किया; किन्तु उस दूत ने उसे स्वीकार नहीं किया और अपने स्वामी का सन्देशा सुनाना आरम्भ किया।

वह बोला—हे राजन्! महाबली राजा हिरण्यवर्मा ने कहा है कि, तूने मुझे बड़ा धोखा दिया है। अपनी पुत्री के साथ मेरी पुत्री का विवाह कर लिया है। इस लिये इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये तू तैयार हो जा और मेरे साथ युद्ध कर। मैं तेरे मन्त्री पुत्र और ब्राह्मणों सहित तेरा क्षण भर में नाश कर डालूँगा। यह सब बातें उस दूत ने बड़ी धमकी के साथ कहीं।

यह सुन कर राजा द्रुपद ने उन दूतराज पुरोहित जी से बड़ी नम्रता के साथ कहा कि, महाराज! आपके राजा साहब का सन्देश मैंने सुन लिया। अब इसका उत्तर मेरा ही दूत वहाँ जा कर दे आवेगा। यह कह कर राजा द्रुपद ने भी एक वेदज्ञ ब्राह्मण को अपना दूत बना कर राजा हिरण्यवर्मा के पास भेज दिया। दूत ने राजा हिरण्यवर्मा के पास जा कर कहा कि, महाराज! आप चलिये और स्वयं ही चल कर देख लीजिये। राजा द्रुपद ने कहा है कि, मेरा पुत्र, पुत्र है कन्या नहीं है। आपसे जिसने यह झूठ बात कही है, उसका आप विश्वास न करें। क्रोधी राजा हिरण्यवर्मा ने

सुन्दरी युवतियों को शिखण्डी की परीक्षा के लिये भेजा। वे स्त्रियाँ आयीं और शिखण्डी की परीक्षा कर के चली गयीं। हिरण्यवर्मा को शिखण्डी के पुरुष होने का हाल जा कर उन्होंने सुना दिया। यह हाल सुन कर दशार्णपति बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रुपद की राजधानी में आ कर आतिथ्य ग्रहण किया और वहीं ठहर गये। राजा हिरण्यवर्मा ने प्रसन्न हो कर शिखण्डी को अनेक हाथी घोड़े, गौ, रथ, दासियाँ आदि भेंट कीं। राजा द्रुपद ने हिरण्यवर्मा का अच्छा आदर सत्कार किया। वह भी सन्देह दूर हो जाने के कारण अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। अन्त में अपनी पुत्री को डाँट डपट कर, वह अपनी राजधानी को चला गया और शिखण्डी भी अपना विजय देख कर, अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

इधर यक्षराज कुवेर मनुष्य वाहन पर बैठ कर लोकों में घूमते घूमते स्थूणाकर्ण यक्ष के स्थान पर आ पहुँचे और उसके सुन्दर सुगन्धित और विचित्र भवन में घुस गये। यक्ष का भवन खस से महँक रहा था। अगर-बत्तियाँ सुलग रही थीं। ध्वजा पताकाओं से वह सजाया हुआ था। भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, पेय और लेह्य पदार्थों से वह भवन भरा हुआ था। अनेक मणि माणिक्य और सोने की मालाओं से वह भवन जगमगा रहा था। ऐसे सुन्दर भवन को देख कर वे यक्षराज कुबेर उसके मुख्य महल के समीप पहुँच कर यक्षों से कहने लगे। हे यक्षो! यह क्या बात है कि, स्थूणाकर्ण के महल के समीप भी आ कर हम लोगों की उससे भेंट नहीं होती है। उसे मेरे आने का समाचार पाते ही मेरी सेवा में आ कर उपस्थित होना चाहिये था। इस लिये मैं उसे दण्ड देना चाहता हूँ।

यह सुन कर यक्षों ने कहा कि, महाराज! राजा द्रुपद के यहाँ एक शिखण्डी नाम की कन्या है। बस उसीको स्थूणाकर्ण ने अपना पुरुष चिन्ह दे दिया है और वह स्वयं स्त्री हो कर अपने घर में बैठा है। इस कारण वह आपके सम्मुख आने में लज्जित होता है। बस उसकी

अनुपस्थिति का यही एक कारण है। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।

यह सुन कर कुवेर ने यक्षों से कहा कि, तुम उसे मेरे सामने ले आओ। मैं उसे दण्ड दूँगा। अनन्तर स्थूणाकर्ण लज्जित होता हुआ यक्षपति के सम्मुख आया। उस समय क्रोध में भर कर कुवेर ने उसे शाप दिया कि, रे यक्ष याद रख आज से यह नीच स्त्री रूप ही में रहेगा। शाप देने के बाद फिर यक्षपति ने कहा—रे नीच! आज तूने यक्षों का बड़ा भारी अपमान किया है। तूने अपना पुरुषत्व तो शिखण्डी को दे दिया और स्वयं स्त्री बना बैठा है। तूने तो यह तीन लोक से न्यारी रीति कर दिखलायी। इस कारण आज से तू स्त्री और वह पुरुष रहेगा।

यह सुन कर सब यक्षों ने कुवेर से बार बार यही प्रार्थना की कि महाराज! ऐसा न कीजिये। आप इस अपने शाप की अवधि बाँध दीजिये।

यक्षों की प्रार्थना सुन कर कुवेर ने शाप की अवधि बाँधने के विचार से उन यक्षों से कहा—हे यक्ष! जब शिखण्डी युद्ध में मर जावेगा तब यह स्थूणाकर्ण का वही प्राचीन पुरुष शरीर उसे फिर प्राप्त हो जावेगा। बस मेरा आशीर्वाद है।

हे दुर्योधन! इस प्रकार अपने मनोरथ को पूर्ण हुआ देख कर, सब यक्षों ने कुवेर का बड़ा आदर सत्कार किया और कुवेर भी आतिथ्य स्वीकार कर बात की बात में अपनी राजधानी अलकापुरी की ओर सिधारे। जिस समय स्थूणाकर्ण कुवेर के शाप से अपने महल में स्त्री बना बैठा था, उसी समय नियत समय के पूरा हो जाने पर शिखण्डी भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्थूणाकर्ण का पुरुषत्व लौटाने के लिये वहाँ पहुँचा। शिखण्डी ने स्थूणाकर्ण से कहा—हे भगवन्! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।

स्थूणाकर्ण ने कहा—मैं तेरी इस सत्यता से अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ, किन्तु भगवान् कुवेर ने तेरे कारण ही मुझे यह शाप दिया है कि, शिखण्डी के मरने के बाद ही तुझे पुरुषपन प्राप्त होगा। इस लिये अब

जा और लोक लोकान्तरों में निर्भय हो कर विहार कर। तेरे जाते ही मुझे यक्षपति कुबेर के दर्शन हुए थे और तभी मुझे उन्होंने शाप भी दिया था। यह मेरे पूर्व कर्मों का फल है। इसमें किसी का कोई दोष नहीं है।

यह सुन कर शिखण्डी बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने नगर को लौट गया और अनेक सुगन्धित स्वादिष्ट भोजनों द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों और ग्राम्य देवताओं की पूजा की। राजा द्रुपद और उसके सब कुटुम्बी भी इस समाचार को सुन अत्यन्त हर्षित हुए। अस्तु शिखण्डी गुरु द्रोणाचार्य का शिष्य बना और तुम्हारे तथा धृष्टद्युम्न के साथ ही साथ उसने चारों प्रकार की बाणविद्या सीख ली। हे दुर्योधन! जब मुझे इन सब बातों का पता लगाना था; तब मैंने अपने ऐसे दूत भेजे थे कि, जो देखने में लूले, लँगड़े और अन्धे बहरे से दिखलायी देते थे।

हे राजन्! बस राजा द्रुपद के पुत्र शिखण्डी के स्त्री से पुरुष बनने की यही कथा है। यह शिखण्डी पहिले काशिराज की पुत्री अम्बा थी और उसके बाद राजा द्रुपद की पुत्री हुई और अब यक्ष के प्रभाव से वह पुरुष हो गया है। यही शिखण्डी रण में यदि शस्त्र ले कर मेरे सम्मुख आवेगा तो मैं इसकी ओर दृष्टि भी न करूँगा तथा शस्त्रों का परित्याग कर युद्ध करना बंद कर दूँगा। मैं हिजड़ों पर शस्त्र चलाने में अपना अपमान समझता हूँ। शिखण्डी का यदि मैं संहार करूँगा तो निश्चय ही मेरी लोग निन्दा करेंगे और कहेंगे कि, देखो! बाल ब्रह्मचारी भीष्म ने स्त्री पर हाथ उठाया।

वैशम्पायन ने कहा—भीष्म की इन सब बातों को सुन कर, कौरवेश्वर दुर्योधन कुछ काल तक तो मौन रहा और कुछ सोच विचार कर उसने यह निश्चय कर लिया कि, हाँ भीष्म जी का कहना बिलकुल यथार्थ है।

एक सौ तिरानबे का अध्याय

भीष्मादि का सामर्थ्य

सञ्जय बोले—हे धृतराष्ट्र ! रात बीत जाने पर प्रभात हुआ। तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने अपनी सेना के बीच खड़े हो कर पितामह भीष्म से पूछा कि—हे भीष्म जी ! असंख्य मनुष्य हाथियों घोड़ों और महारथियों द्वारा सज्जित पाण्डवों का यह सैन्यदल हमसे लड़ने के लिये तैयार हो रहा है। इसकी रक्षा करने हारे भीम, अर्जुन, सेनापति धृष्टद्युम्न आदि हैं। अत्यन्त निर्भीक समुद्र से गम्भीर पाण्डवों के इस सैन्य-महासागर को देवता भी क्षुब्ध नहीं कर सकते। हे बाबा ! यह तो बतलाओ आप और कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य जी इस सेना का संहार कितने दिनों में कर सकते हैं ? महाबली कर्ण और अश्वत्थामा कितने दिनों में इस सेना का सर्वनाश कर सकते हैं? क्योंकि आप सब लोग मेरी सेना के मुख्य दिव्यास्त्र-वेत्ताओं में से हैं। मैं इस विषय को सुनने और समझने की सदा चेष्टा किया करता हूँ। इस लिये आप मुझसे कहिये।

भीष्म बोले—हे राजन् ! तुमने जो शत्रुओं की निर्बलता और सबलता सम्बन्धी प्रश्न किया है वह बिलकुल ठीक और समयोचित है। देखो, अब मैं तुम्हें अपने बल, पराक्रम, शक्ति और शस्त्रों का परिचय कराता हूँ। धर्मयुद्ध तो वह कहलाता है जिसमें सरल और सच्चे योद्धा के साथ सरलता और सचाई के साथ लड़ा जावे और मायावी के साथ मायावी की तरह लड़ा जावे। हे दुर्योधन ! यदि मैं पाण्डवों की सेना का विभाग कर, नित्य प्रातःकाल उन्हीका संहार करने लगूँ तो मैं दस दस हज़ार योद्धाओं और एक एक हज़ार रथियों का प्रति दिन संहार कर सकता हूँ। हे राजन् ! मैं अपना दृढ़ कवच धारण कर पाण्डवों की सेना का और काल के समान विनाशकारी संहार कर सकता हूँ। यदि मैं रणभूमि में

भयङ्कर शस्त्रों की वर्षा करने लगूँ तो निश्चय एक मास में पाण्डवों की सेना का सर्वनाश कर सकता हूँ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! भीष्म की यह बात सुन कर फिर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य जी से भी यही प्रश्न किया। द्रोणाचार्य जी भी राजा के इस प्रश्न को सुन कर कहने लगे कि हे राजन्! यद्यपि मैं वृद्ध हूँ और शक्ति सामर्थ्य से हीन हूँ तौ भी मैं भीष्म जी के समान ही संग्राम में अपनी भयङ्कर बाणवर्षा द्वारा एक मास में ही शत्रुओं को भस्म कर डालने की सामर्थ्य रखता हूँ। इसी प्रकार कृपाचार्य जी ने भी दो मास में शत्रुओं के संहार कर डालने की बात कही। वीर अश्वत्थामा ने तो कहा कि, मैं केवल दस रात ही में सब पाण्डवों का सर्वनाश कर सकता हूँ। जब राजा दुर्योधन ने कर्ण से पूछा तब उस महावीर दिव्यास्त्रधारी कर्ण ने केवल पाँच रात ही में पाण्डवों का संहार कर डालने की प्रतिज्ञा कर ली। गाङ्गेय भीष्म कर्ण की इस प्रतिज्ञा को सुन कर बड़े ज़ोर से खिल-खिला कर हँस पड़े और कर्ण को डपट कर उससे बोले—अरे राधेय! शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् कृष्ण के साथ रथ पर सवार हो कर आने वाले अर्जुन के साथ जब तक तेरी रण में भेंट नहीं होती; तभी तक तू ये सब बातें कह रहा है; किन्तु जब तेरा और अर्जुन का सामना होगा, क्या तू तब भी ऐसी बढ़ बढ़ कर बातें कहेगा?

एक सौ चौरानबे का अध्याय

अर्जुन का निज पराक्रम वर्णन

श्रीवैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय! जब धर्मराज युधिष्ठिर को यह सब समाचार मालूम हुए, तब उन्होंने अपने भाइयों को एकान्त में बुलाया और कहा कि, भाइयों! दुर्योधन की सेना में जो मेरे गुप्तचर काम कर रहे हैं, उन्होंने आज आ कर यह समाचार दिया है कि, दुर्योधन ने

आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म से और द्रोणाचार्य से यह बात जा कर पूछी कि, आप कितने दिनों में पाण्डवों का सर्वनाश कर सकते हैं ? इस प्रश्न को सुन कर इन दोनों महानुभावों ने यह उत्तर दिया कि, हम दोनों ही एक मास में ससैन्य पाण्डवों का संहार कर सकते हैं। इधर कृपाचार्य और अश्वत्थामा से जब यह प्रश्न किया गया तब कृपाचार्य ने दो मास और अश्वत्थामा ने दस दिन ही में पाण्डवों के संहार कर डालने की बात कही; परन्तु जब दिव्यास्त्रों के प्रयोग में चतुर अङ्गराज कर्ण से यह प्रश्न किया गया, तब उसने सिर्फ पाँच दिवस ही में पाण्डवों को परास्त कर देने की प्रतिज्ञा की। इस लिये हे अर्जुन ! मैं भी तुम सब लोगों से यही सुनना चाहता हूँ कि, तुम कितने दिनों में कौरवों का नाश कर सकते हो ?

अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर की यह बात सुन कर वीर अर्जुन श्रीकृष्ण की ओर एक बार दृष्टि डाल कर इस प्रकार कहने लगे कि—महाराज ! कौरवों की सेना के यह सब वीर योद्धा बड़े रणकुशल और महारथी हैं और निःसन्देह हमारा संहार कर सकते हैं; किन्तु मैं तो आपसे सच्ची बात यह कहता हूँ कि, आप अपने मन में चिन्ता करना छोड़ दीजिये। मैं केवल एक रथ ही से अकेले श्रीकृष्ण की सहायता पा कर, इन सब कौरवों का संहार कर सकता हूँ। मैं देवताओं सहित त्रैलोक्य की स्थावर जङ्गमात्मक भूत, भविष्यत वर्त्तमान के समस्त प्राणियों को क्षण भर में नष्ट कर सकता हूँ। इसका मुझे पूरा विश्वास है। आपको यह तो विदित ही होगा कि, मैंने ही पहिले कपट किरात-वेषधारी श्री शङ्कर जी से द्वन्द्व युद्ध किया था और अन्त में उन्होंने प्रसन्न हो कर एक दिव्य अस्त्र मुझे दिया था वह महास्त्र मेरे पास है। महाराज ! भगवान् शङ्कर इसी महास्त्र से प्रलय का कार्य किया करते हैं। इस महास्त्र का प्रयोग करना भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि कोई भी कौरवों का वीर नहीं जानता है। अस्तु संग्रामभूमि में देवताओं के शस्त्रों से मनुष्यों पर प्रहार करना अनुचित है। हम लोग बड़ी सरलता से शत्रुओं को परास्त कर देंगे।

दूसरे तुम्हारे जितने भी सहायक राजा लोग हैं, वे भी बड़े वीर और दिव्य अस्त्रों शस्त्रों के जानने वाले संग्राम में सहर्ष आत्मसमर्पण करने को तैयार हैं। यह लोग सभी यज्ञ कर के अवभृथ स्नान किये हुए हैं। समरभूमि में देवताओं की भी यह सामर्थ्य नहीं है कि, वे इन्हें परास्त कर सकें। शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीम, नकुल, सहदेव, युधामन्यु. उत्तमौजा, आदि भी युद्धकौशल में भीष्म और द्रोणाचार्य के समान हैं। राजा विराट, द्रुपद, महाबाहु शङ्ख, हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच, महाबली अञ्जनवर्मा तथा जो हमारा परम सहायक शिवि का पुत्र है वह, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, वीर अभिमन्यु और स्वयं आप तीनों लोकों का संहार कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! आप तो ऐसे हैं कि, जिसकी ओर एक वार आप क्रुद्धदृष्टि से देख देंगे वह नष्ट हो जायगा।

एक सौ पञ्चानबे का अध्याय

कौरव सैन्य का आक्रमण

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन्! इसके उपरान्त दुर्योधन ने प्रातःकाल होते ही सब सेना को पाण्डवों पर चढ़ाई करने के लिये आज्ञा दे दी। आज्ञा पाते ही सब राजाओं ने स्नान किया, स्वच्छ सफेद वस्त्र और सुगन्धित मालाएँ धारण कीं तथा अपनी अपनी ध्वजा पताका ले कर ब्राह्मणों के स्वस्तिवाचन और मंगल पाठ को सुन, वे पाण्डवों से लड़ने के लिये चल दिये। वे सब के सब शूर वीर वेदज्ञ, पवित्र, सदाचारी स्वतंत्रता पूर्वक निर्भीक हो कर संग्राम करने वाले थे। वे सब वीर आपस में बड़े विश्वास के साथ एकाग्रमन हो कर शत्रुओं का संहार करने के लिये चल दिये। सब से प्रथम अवन्त देशी विंद और अनुविंद वाल्हीक के साथ, तथा केकय देश के राजे द्रोणाचार्य की अध्यक्षता में लड़ने को चले। इनके बाद अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ, शकुनि, पूर्वपश्चिमोत्तर; दक्षिण आदि सभी

देशों के राजे शक, किरात, यवन, शिवि और वशाति आदि वीरों ने अपनी अपनी सेनाओं के मण्डल बना कर प्रस्थान किया। इस सेना-मण्डल के बाद ससैन्य कृतवर्मा, महारथी त्रिगर्त्त तथा अपने भ्राताओं सहित दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल्य, बृहद्रथ आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों की अध्यक्षता में संग्राम के लिये चल दिये। उस समय दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र अपने शरीर पर सुन्दर और दृढ़ कवच धारण किये हुए कुरुक्षेत्र के आधे पिछले भाग में खड़े हुए थे। वह छावनी उस समय ऐसी जान पड़ती थी, मानों कोई दूसरा हस्तिनापुर हो। नगर में रहने वाले बुद्धिमान् लोग भी उस छावनी और नगर के भेद को नहीं पहिचान पाते थे। राजा दुर्योधन ने अन्य राजाओं के लिये भी अनेक सुन्दर शिविर बनवा दिये थे। पाँच योजन तक बराबर गोलाई के साथ असंख्यों सेना के पड़ाव पड़े हुए थे। सब सामग्रियों से भरे हुए उन शिविरों में अपनी सेनाओं के सहित सब राजा लोग जा पहुँचे। उन आये हुए राजाओं को तथा उनके हाथी घोड़े आदि वाहनों और नौकरों के लिये राजा दुर्योधन अच्छे से अच्छे भोज्य पदार्थादि भेजने का प्रबन्ध करने लगा। इसके अतिरिक्त कारीगर, सूत, मागध, स्तुतिपाठक, वैश्य, वेश्या, दूत, दर्शक आदि जो पीछे से आये थे उन सब का सम्मान भी दुर्योधन स्वयं करता था तथा उनके भी ठहरने का अलग अलग प्रबन्ध किया गया था।

एक सौ छियानबे का अध्याय

पाण्डव सैन्य का रणप्रयाण

इधर धर्मराज युधिष्ठिर ने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरों को संग्रामभूमि में जाने की आज्ञा दी। चेदि देश के और करूषक तथा काशी के राजाओं को तथा अपने सेनापति धृष्टकेतु को भी आज्ञा प्रदान की। विराट, द्रुपद, युयुधान, शिखण्डी, पाञ्चाल राजा के दोनों पुत्र उत्तमौजा और युधामन्यु,

आदि विचित्र वेशधारी राजा लोग आज्ञा को सुन कर घृताहुति से प्रज्वलित यज्ञशाला की अग्नि के समान आकाश में प्रकाश करने वाले नक्षत्रों की तरह शोभित हो रहे थे। सारी सेना का उचित सत्कार कर चुकने के बाद धर्मराज ने सेना को संग्रामभूमि के लिये विदा कर दिया और स्वयं राजाओं के वाहनों के लिये, राजाओं के लिये और कारीगर आदि सेवक समुदाय के लिये उत्तम से उत्तम भोजनों का प्रबन्ध करने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने अभिमन्यु की संरक्षता में बृहत् और द्रौपदी के पुत्रों को रण-भूमि में जाने की आज्ञा दी तथा एक दूसरा दल भीम युयुधान और अर्जुन के साथ युद्धभूमि में भेजा। योद्धाओं के लिये वह समय बड़ी प्रसन्नता का था। वे अपने अपने कवचों, घोड़ों और रथों को सजा रहे थे और रण की तैयारी में इधर उधर भागते फिरते और हुंकारें भरते थे। इस प्रकार जब सब सेना को भेज चुके, तब धर्मराज स्वयं विराट, द्रुपद तथा अन्य राजाओं के साथ रणभूमि की ओर चल दिये। उस समय भयानक शूरवीरों से युक्त सेनापति धृष्टद्युम्न की अध्यक्षता में चलने वाली वह सेना अग्रभाग में, मन्द-मन्द-वाहिनी गङ्गा की तरह शोभित हो रही थी।

अभी सेना कुछ ही दूर पहुँची थी कि, युधिष्ठिर ने दुर्योधन को भ्रम में डालने के लिये सेना की रचना में फिर अन्तर कर दिया। द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, प्रभद्रकों का समूह, दस हज़ार घुड़सवार, दो हज़ार हाथी, दस हज़ार पैदल, पाँच सौ रथियों का एक सेनादल भीमसेन को सौंपा और उन्हें प्रथम सेनादल के रूप में आगे चलने की आज्ञा प्रदान की। विराट, जयत्सेन, युधामन्यु और उत्तमौजा को ; जो बड़े बली और गदायुद्ध में चतुर सेनादल के मध्यभाग में रहने की आज्ञा दी। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी सेना के मध्यभाग में ही चल रहे थे। पहिले लड़ चुकने वाले युद्धप्रिय योद्धा उस समय बड़े क्रुद्ध हो रहे थे, उनके सम्मुख पाण्डवसेना के बीस हज़ार घुड़सवार, पाँच हज़ार गजारोही, रथी तथा धनुषों और गदाओं को धारण करने वाले असंख्यों पैदल चले जा रहे थे। जिस सैन्य

महासागर में धर्मराज विद्यमान थे, उसके आस पास भी अनेक राजा लोग जा रहे थे। हे राजन् ! इनके अतिरिक्त असंख्य अश्वारोही, गजारोही, रथी, महारथी और पैदल साथ में चल रहे थे। साथ ही साथ महारथी चेकितान तथा चेदीश्वर भी चले जा रहे थे। वृष्णियों में महावीर धनुषधारी सात्यकि भी असंख्य रथियों के साथ सेना को प्रोत्साहित करता हुआ कुरुक्षेत्र की ओर चला जा रहा था। सेना के पृष्ठभाग में जङ्घास्थान की रक्षा करते हुए महात्मा क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव चले जा रहे थे। इसके अतिरिक्त गाड़ियाँ सवारियाँ, दूकानें, अनेक वाहन, हाथी, घोड़े, बालक, स्त्रियाँ, कृश दुर्बल शरीर वाले मनुष्यों की और धनकोष की रक्षा करते धर्मराज युधिष्ठिर कुरुक्षेत्र की ओर बढ़े चले जा रहे थे। सत्य-दृढ़-सङ्कल्प वाला युद्धकुशल सौचित्ति, श्रेणीमान, वसुदान, काशिराज के पुत्र अभिभू आदि तथा इनके अनुगामी रथ, सुसज्जित दस हज़ार घोड़े और अनुभवी कुलीन मद चुआने वाले मेघमण्डल के समान श्यामवर्ण बीस हज़ार हाथी भी राजा युधिष्ठिर के पीछे पीछे जा रहे थे। महाराज युधिष्ठिर की सात अक्षौहिणी सेना में रहने वाले जो सतहत्तर हज़ार मस्त हाथी थे, वे भी धर्मराज के पीछे पीछे चले जा रहे थे। हे भारतश्रेष्ठ ! राजा युधिष्ठिर की सेना उस समय बड़ी भयङ्कर प्रतीत होती थी। उसी सेना का आश्रय ले कर धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन के साथ संग्राम किया था। इस हस्तिसेना के अतिरिक्त सैकड़ों हज़ारों वीर गर्जना करने वाले योद्धा तथा उनकी असंख्य सेनाएँ युधिष्ठिर के पीछे चली जा रही थीं। हे राजन् ! उस समय रणभूमि में हजारों लाखों योद्धाओं की भेरियाँ और शङ्ख बज रहे थे।

उद्योगपर्व समाप्त